



मनाली (कुस्त) की उपत्यका में  
नयनाभिराम हिमश्रृंगो के तले  
ता. २६ सितम्बर से ५ अक्टूबर १९७० तक  
बहुचर्चित भगवान कृष्ण के विभिन्न पहलुओं और जीवन स्तर पर  
आचार्यश्री रजनीश के साक्षिघ्य में  
जिज्ञासु मित्रों और साधकों के बीच  
अयत गहराई से विचार विमर्श हुआ।  
मीमांसा, व्याख्या या टीका को एक ओर छोड़ कर  
आचार्यश्री कृष्ण के  
एक-एक आयाम और एक-एक स्तर को  
मात्र उघाड़ते चले गये।  
प्रस्तुत संकलन उसी अभिव्यक्ति का शब्दाकान है।

## अन्तर्पस्तु

● यह ग्रथ : क्या और क्यो ?— प्रो गणपतिचंद्र भण्डारी एम ए	११
● विषय प्रवेश	१९
<b>पर्व एक</b>	<b>४१</b>
कृष्ण सबधी चर्चा का मूलाधार	...
मन्याम और दुखवाद	४३
मामान्य जीवन में दुःख	४७
कृष्ण और पूर्णविनार	५०
	५५
<b>पर्व दो</b>	<b>७७</b>
अहकार और निरहकारिता	७९
शैन्य और बहुआयामिता	८४
बुद्ध पूर्णता के पश्चात्	९९
<b>पर्व : तीन</b>	<b>१०१</b>
कृष्ण का जन्म कब	१०३
कृष्ण के वर्णित शरीर की काल-गणना	१११
कृष्ण का धर्म से आशय	११५
स्वधर्म की महत्ता	१२१
कृष्ण गुरु नहीं	१२१
'सशयात्मा विनश्यति . '	१२६

<b>पर्व चार</b>	... १२९
कृष्ण के अवतरण का आधार	... १३१
जब-जब धर्म की हानि होती है	. १३५
परिद्राणाय साधूना विनाशायच दुष्कृताम्	. १३७
जो राम में प्रगटा वही कृष्ण में प्रगटा	१३८
कृष्ण-चरित्र अनुकरणीय या चिन्तनीय	. १४१
<b>पर्व : पाँच</b>	... १४५
कृष्ण-जन्म की स्थिति और क्राइस्ट से साम्य	१४७
मर्वधर्मान् परित्यज्य मामेक शरण इज	१५४
गीता के कृष्ण, आगदत के कृष्ण	... १५४
गीता कृष्ण का प्रामाणिक वचन	. १५४
वस्त्रहरण लीला और निरावरणता के प्रथम पुरस्कर्ता कृष्ण	... १६१
अनैतिकता की व्याख्या	१६७
कृष्ण और कृष्णा द्वौपदी	... १६७
कृष्ण का साँवला रंग	. १६७
आध्यात्मिक सभोग	.. १७३
कृष्ण के जीवन की समग्रता में राधा का योग	. १७५
<b>पर्व : छः</b>	... १८१
विवाह स्थागत अनैतिक	. १८३
प्रेम का आधार और बच्चों की समस्या	.. १८४
जीवन एक उत्सव	१८८
रामभक्त हनुमान, कृष्ण भक्त भीरा	.. १८८
अवतारों के दाढ़ी-मूँछ क्यों नहीं	... १८९
कर्म और उत्सव	... १९७
चित्त के पार चित्त के साथ	.. १९९
स्वधर्म विगुण कैसे	... २०१
<b>पर्व : सात</b>	... २०५
कृष्ण की बाल्य कथाएँ और प्रतीक	... २०७
मुख में ब्रह्माङ दर्शन और दिव्य दृष्टि	... २११
विनाशायच दुष्कृताम्	... २१६

मार्गल मेकलुहन का सूत मुरली जीवात्मा परमात्मा का मार्ग्यम	२१९
प्रार्थना और प्रार्थनापूर्णता	२२३
कृष्ण का पाचजन्य और मुदर्शनचक्र	२२५
बालभीकि द्वारा राम के पहिले ही रामकथा लिखना	२२८
माटिन बूबर की परम्परा	२२९
स्मृति की स्थिति और उपयोग	२३०
प्रगट जगत में जो भी अद्वित होता है अकारण नहीं	२३१
क्या कृष्ण में कुछ भी दोष सम्बद्ध नहीं	२३२

### पर्व : आठ

रासविहारी और कहलाये ब्रह्मचारी	२३९
कुञ्जा और कृष्ण का समानगम	२४४
राम हनुमान कृष्ण भीरा की निजता	२४७
गो भक्ति गो माता गो वध	२५०

### पर्व : नौ

धर्म और राजनीति	२५९
साम्य घटनाएँ	२६५
अशावतार पूर्णवितार	२६७
कृष्ण की असहिष्णुता और शिशुपाल	२७०
अपहरण भूषण कृष्ण	२७१
कष्ट की याचना कुन्ती की	२७३
भक्त का दुख	२७५
कृष्ण किसी के भक्त नहीं फिर भक्ति की महिमा कैसी	२७६
कृष्ण प्रेम की कसौटी	२७७
कृष्णार्जुन युद्ध	२७९
तटस्थता	२८१
क्राइस्ट का वक्तव्य	२८४
अति विनम्र ही अति कठोर	२८६

### पर्व : दस

द्वौपदी का चरित्र	२८९
तीन मुट्ठी चाबल पर त्रिलोक का वैभव	२९६

दारिद्र्य और अर्थ व्यवस्था	... २९८
चुने हुओं का वर्ग	... ३०२
कृष्ण सुदामा का लेन-देन	... ३०४
द्वौपदी का बृहद् अनुराग	.. ३०६
मानवी अश का छोर	... ३०८
कालियावन और मुजकुन्द	... ३१०
<b>पर्व : गयारह</b>	<b>३१५</b>
कृष्ण की पूर्णता	. ३१७
जैन तीर्थंकरों की एक आयामिता	. ३१८
दमन और सयम	.. ३१८
'एग्जिस्टेंस प्रिसीड़्स इसेस'	.. ३२०
'पूर्ण मैं' और 'न मैं'	. ३२४
साधना और उपासना की दिशा	... ३२५
साधना उपासना का फर्क	.. ३२७
महावीर की साधना कृष्ण की सिद्धि	३२८
<b>पर्व : बारह</b>	<b>३४६</b>
कृष्ण से आत्म साक्षात्कार	३४५
सकीर्तन का उपयोग	३४५
अचिन्त्य भेदभेद	३५३
कृष्ण चेतना आनंदोलन	३५५
गरीब समाज और गरीब व्यक्ति	.. ३५९
गिन्नबगं का चिन्तक वर्ग पर प्रभाव नहीं	. ३५९
बीज शब्द और ओम का अन्तर्भव	... ३६४
<b>पर्व : तेरह</b>	<b>३७१</b>
आत्म-स्मरण तथा कर्म अकर्म विकार्म	. ३७६
योग और सन्यास	.. ३८२
शकर की परिभाषा	... ३८६
परिवर्तन ही असत्य का पर्याय	... ३८९
शकर का 'कॉम्प्रोमाइज'	... ३९२

दृष्टिधा सौभाग्य	... ३९२
गीता पर टीकाएँ	.. ३९३
शकर और तिलक का जोड़	... ३९४
अरविंद की 'सुप्रामेन्टल' की बात	... ३९७
<b>पर्व : चौदह</b>	... ४०५
अरविंद का कृष्ण-दर्शन	. ४०७
अर्जुन का व्यक्तित्व	. ४११
बुद्ध पूर्णिमा लामा आत्मा से सबध स्थापन	४१३
आत्मा का पुनर्जन्म	.. ४१७
समर्पण और सम्बन्ध	४२४
<b>पर्व : पन्द्रह</b>	.. ४२९
अरविंद और योगी लेले	. ४३१
एलिस बेली के सदेश	... ४३४
आपके कोई गुरु या 'मास्टर'	.. ४४४
कुरुक्षेत्र में क्या चार घटे गीता चली	... ४५०
तीव्र स्मृति वाली आत्माएँ	.. ४५०
कृष्ण और नेमीनाथ	४५३
आस्तिक और नास्तिक	४५६
<b>पर्व : सोलह</b>	.. ४६१
अनादि सत्य	... ४६३
कृष्ण के श्रेष्ठत्व की घोषणा	.. ४६८
कृष्ण का अनुकरण	. ४७१
<b>पर्व : सतत्त्व</b>	.. ४७९
अनासक्ति	.. ४८१
कर्म सन्यास और निष्काम कर्म	... ४९०
निष्काम और निष्क्रियता	.. ४९८
समान व्यसन की मैत्री	. ५०३
समत्व की उपलब्धि ही स्वर्ग	.. ५०६

<b>पर्व : अठारह</b>	... ५०९
जीवन के 'रिचुअल्स' और यश	.. ५११
जन्मबन्धन की प्रतीति से मुक्ति	.. ५१८
नपुसकता का अनुपात	५२८
बधैनारीश्वर	.. ५२८
जैन शास्त्रों में स्त्री को मोक्ष नहीं	५३१
<b>पर्व : उन्नीस</b>	५३३
महाबीर की वीतरागता क्राइस्ट की होली इनडिफरेंस	५३५
बुद्ध की उपेक्षा और कृष्ण की अनासक्ति	.. ५३५
सुख-दुःख में अनुद्विग्न वह स्थितप्रश्न	५४५
उत्तरायण दक्षिणायन का सूर्य	५४५
स्थितप्रश्न और भक्ति	५५१
कृष्ण का विराट आकर्षण	५५५
संक्ष और कृष्ण	५५५
<b>पर्व : बीस</b>	५६७
चुनाव 'कॉस' या वशी का	५६९
बासुरी के बावजूद महाभारत	, ५७४
कृष्ण आत्मसात कैसे हो	५८१
मनुष्य की सभ्यता कृष्ण की ममक्ष से ही सहज हो सकेगी	५८४
समापन	.. ५८६



# क्या और क्यों ? यह ग्रंथ

देखिए ! यदि आप को अभी किसी अनिवार्य कार्य से बाहर जाना हो, समय पर दफ्तर पहुँचना हो, किसी 'एग्रेजेंट' के पालन की शिष्टता निभानी हो, ट्रेन या बस पकड़नी हो अथवा ऐसा ही कोई जन्य कार्य करना हो जिसमें समय की पाबन्दी का प्रश्न सर्वोपरि हो, तो इस पुस्तक को खोलकर इसकी ८-१० पक्कियाँ भी पढ़ने की भूल न करे ! और यदि कर बैठे, तो निश्चय मानिए आपको यह पुस्तक पकड़ लेगी और आपकी ट्रेन छूट जाएगी । दफ्तरवाले आपकी राह देखते ही रह जाएंगे और आपका दिल और दिमाल एक विचित्र प्यास की छटपटाहट लिये जिजासा और समाधान की पटरियों पर दौड़ता हुआ न जाने किस आनन्द लोक में जा पहुँचे । मेरा कथन आपको भले ही कुछ अतिशयोक्तिपूर्ण लगे, पर मेरे लिए तो यह अनुभूत सत्य है—इसीलिए आपको भी सावधान कर रहा हूँ ! आचार्य रजनीश की वाणी में कुछ ऐसा ही जादू है—ऐसी ही पकड़ है और फिर इस पुस्तक का तो विषय ही है आकर्षण की प्रतिमूर्ति और पूर्णता के रहस्यमय प्रतीक भगवान कृष्ण ! योगेश्वर कृष्ण ! रसिकबिहारी कृष्ण ! गोपेश्वर कृष्ण !

भगवान कृष्ण ! विश्व-इतिहास के एक अद्भुत महामुरुष ! आश्चर्यजनक अक्षितत्व ! एक ऐसी हस्ती कि जिसका कोई जवाब नहीं—'अणोरणीयान' और

‘महतोमहीयान’। वे योगी भी हैं और भोगी भी, (और दोनों से उपर भी!) वे नर्तक भी हैं, योद्धा भी। गवाले भी, राजा भी। उत्कट प्रेमी भी और नितान्त निर्मोही भी। नीतिज्ञ ऐसे कि पाच पाड़वों को लाखों के सैन्यबल पर विजय दिला दें, और विनम्र इतने कि राजसूय यज्ञ में अतिथियों के चरण प्रक्षालन का भार स्वयं अपने पर ले। महान् इतने कि “सेस, गनेस, दिनेस, महेस, सुरेसहु जाहि निरतर ध्यावे” और लघु इतने कि, “ताहि अहीर की छोहरियां छछिया भरि छाछ ये नाच नचावे।” आरम्भ से अत तक विरोधाभासों और असगतियों से पूर्ण जीवन। बस्तुत इन विरोधों में ही कृष्ण की पूर्णता का रहस्य छिपा है। जीवन की अट्टालिका एक दूसरे के विरोध में रखी गई इंटों से ही तो निर्मित है। मृत्यु के बिना जीवन की, दुःख के बिना सुख की, अधिकार के बिना प्रकाश की और हिंसा के बिना अहिंसा की कल्पना ही असभ्मव हो जाएगी। वास्तव में ये हिन्दू एक ही मिक्के के दो पहलू हैं जिसमें से एक का सप्तह और दूसरे का त्याग असभ्मव है और हम हैं कि इसी भ्रामक प्रयाम में उलझे हुए पूरा जीवन ‘हाय-हाय करते करते बिता देते हैं।’ इसी से कृष्ण कृष्ण है और हम हम हैं। जीवन के इस मूल-भूत रहस्य को आचार्य रजनीश ने इस पुस्तक में जिसनी सरलता से समझाया है, वैसी सुन्दर और स्पष्ट व्याख्या अन्यत्र मिलनी दुलंभ है।

कृष्ण जीवन को ममग्र और सहज रूप में स्वीकारते हैं। वे जीवन के तथाकथित ‘असुन्दर’ पक्ष को भी उनने ही प्रेम से स्वीकारते हैं जितने प्रेम से ‘मुन्दर’ पक्ष को। उनके जीवन पथ में राधा जैसी सुदर्शनी आती है तो वह भी स्वीकार है, और कुञ्जा जैसी कुबड़ी आ जाती है तो वह भी। उननी ही सहजता से स्वीकार है। गोकुल में थे, तो रमते रहे गाप-गोपागनाओं के प्रेम में, और मथुरा गये, तो भूल गये गोकुल की प्रेम लीलाएँ और जट गये राजकाज में। वे सृष्टि निर्माती काम ऊर्जा को भी सहज रूप में स्वीकार करते हैं—न दमन, न निषेध। सम्भव है उम युग में भी वैदिक युग की भाति नन्नारी के सहज और स्वच्छन्द समर्ग को सामाजिक मान्यता प्राप्त रही हो, अन्यथा कृष्ण की स्वच्छन्द प्रेम-कीड़ाओं को अमामाजिक और अनैतिक व्यवहार घोषित करके प्राचीन धर्मकार उनकी बुराई किये बिना कभी न रहते। परन्तु वे तो जन-जन के हृदय में उपास्य देव बनकर युग-युग से अपना आसन जमाये हुए हैं और उनका वह आमन अदिग है। केवल हिन्दू ही नहीं रमखान जैसे भावुक मुसलमान भी उनमें मनुष्यता के पूर्ण और सहज रूप के दर्शन करके गा उठे थे—

“मानुरा हाँ तो वही रसखानि बसाँ छाज गोकुल गांव के ग्वारन।

जो पसु हौं तो कहा बस मेरो, चरों नित नन्द की धेनु मझारन॥”

बुद्ध, महावीर और ईसा आदि अन्य दिव्य पुरुषों ने जहां जीवन के शुभ को ही स्वीकार किया और 'अशुभ' का दमन किया वहां कृष्ण ने शुभ और अशुभ दोनों को उनके सहज रूप में स्वीकारा। इधर परम्परागत चितन से अस्तित्व हमारी बुद्धि भी जीवन को खड़ खड़ करके देखने की आदी है, औले और बुरे, शुभ और अशुभ में भेद करके समझने की अभ्यस्त है, अत बुद्ध, महावीर और ईसा के क्रिया-कलाप और उनकी साधना तो हमारी समझ में आ जाती है परतु कृष्ण के विरोधाभासपूर्ण जीवन का औचित्य समझना हमारे लिए कठिन हो जाता है। यही कारण है कि सहज जीवन के अतिशय दमन पर आधारित हमारी आधुनिक सस्कृति में जन्मे-पले कुछ विद्वानों ने गोकुल और महाभारत के कृष्ण को भिन्न बताकर दो कृष्ण होने की कल्पना कर डाली तो कुछ ने उनकी प्रेम कीड़ाओं को मिथ्या अतिशयोक्तिया बता कर सतोष किया और कुछ अन्यों ने तो कृष्ण जैसी विभूति के अस्तित्व पर ही प्रश्न-चिन्ह लड़ा कर दिया है।

आचार्य रजनीश कृष्ण के लोक-प्रसिद्ध रूप को ही स्वीकार करके चले हैं और उन्हे अपना मनोवाच्छ्रित रूप देने के प्रयत्नों को उन विचारकों की दमित प्रवृत्तियों का ही परिचायक मानते हैं।

आचार्य रजनीश के अनुसार श्रीकृष्ण को 'व्यक्तित्व' की अपेक्षा अस्तित्व मात्र मानना ही अधिक उचित है। वे पूर्ण हैं, शून्य हैं, अखड़नीय है जिन्हे 'सु' और 'कु' में भेद करने की अभ्यस्त बुद्धि सही रूप में ग्रहण नहीं कर पाती। कृष्ण तो दर्पण की तरह स्वच्छ, निलिप्त और व्यक्तित्वहीन है—जैसे दर्पण में हर व्यक्ति अपना प्रतिबिम्ब देख सकता है पर उन प्रतिबिम्बों में से कोई भी दर्पण का अपना व्यक्तित्व नहीं होता। उसी प्रकार कृष्ण में भी हर व्यक्ति अपना मनोवाच्छ्रित कृष्ण रूप निहार सकता है, पर उसे उनका निश्चित स्वरूप नहीं माना जा सकता। वे वास्तव में “जिन्हे रही मावना जैसी, प्रभु भूरति तिन्ह देखो तैसी” चौपाई को ही चरितार्थ करते हैं। गीता में भी तो स्वयं कृष्ण यही कहते हैं कि जो भक्त मुझे जिस रूप में भजता है मैं उसे उसी रूप में प्राप्त होता हूँ।

इसी से कृष्ण के क्रिया-कलाप को 'चरित्र' सज्जा न देकर 'लीला' कहा गया है। उन्होंने जो कुछ किया वह अभिनय मात्र था क्योंकि वे सर्वथा निलिप्त और कर्तृत्व मावना से मुक्त थे। सूर-साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान् डा ब्रजेश्वर दर्मा के विचार भी इस सदर्भ में अबलोकनीय हैं। वे कहते हैं, “वास्तव में तथ्य यही है कि कृष्ण चरित जीवन के वास्तविक चित्रण अथवा आदर्श चित्रण के रूप में रचा ही नहीं गया, उनका चरित वास्तव में परमात्मा की लीला मात्र है जिसका प्रयोगन लीलानन्द के अति-

रिक्त अन्य कुछ नहीं। उसका उद्देश्य असाध्य आनन्द में जीवन की आध्यात्मिक परिषुर्णता की व्यज्ञना करना ही है। भक्त कवियों ने उस आनन्द का रूप स्त्री-पुरुष के रति-भाव में कल्पित किया है— श्रीकृष्ण परम आनन्दरूप में परम पुरुष है और उनकी पराशक्तिरूपा राधा हैं जिनके संयोग में ही परमानन्द की परि-पूर्णता सिद्ध होती है।” (हिंदी साहित्य कोश सागर)

ऐतिहासिक दृष्टि से कृष्ण का उल्लेख विशेष रूप से ऋग्वेद, छादोरण्य उपनिषद्, ब्राह्मण प्रथो, बौद्ध जातक कथाओं, विभिन्न पुराणों, भागवत और महाभारत में मिलता है, जिनमें से वैदिक साहित्य के कृष्ण तो भागवत और महाभारत दोनों के कृष्ण से सर्वांगा भिन्न हैं परं शेष प्रथों के वर्णनों में किसी के कृष्ण भागवत के लीलामय तथा ज्ञानद-विलास-प्रिय कृष्ण से मिलते हैं तो किसी के महाभारत के योगेश्वर कृष्ण से। परन्तु भाश्चर्य की बात यह है कि पुराणों में कृष्ण की एक सर्वांधिक प्रिय परमसुदरी गोपी का उल्लेख तो मिलता है, पर ‘राधा’ वहाँ कही नहीं है। राधा का सर्वप्रथम उल्लेख हाल रचित ‘गाटा सत्तसई’ नामक प्राकृत भाषा के ग्रन्थ में मिलता है जिसे कुछ विद्वान् प्रथम शताब्दी और कुछ सातवीं शताब्दी ईस्वी का मानते हैं। ऐसे ही कुछ कारणों से चितनशील व्यक्तियों के मन में कृष्ण सम्बन्धी जनक प्रश्न समय समय पर उठने रहे हैं और विभिन्न धर्माचार्य एवं साहित्याचार्य उनका समाधान भी अपने ढंग से करते रहे हैं।

ऐसे ही प्रश्नों का समाधान आचार्य रजनीश ने भी अपने मनाली (कुल्लू) २६ सितम्बर १९७० से ५ अक्टूबर १९७० के साड़ना शिविर में किया था। उन्हीं प्रबन्धों का सग्रह प्रस्तुत ग्रन्थ में हुआ है और उन्हें प्रश्नोत्तर रूप में ही प्रकाशित किया जा रहा है।

आचार्य रजनीश एक अत्यर्जनी मत-दृष्टा युवा ऋषि है। वे दार्शनिक गुरुत्यों को तो चुटकियों में सुलझाते ही हैं, जीवन की अन्य ज्वलत समस्याओं की भी जैसी सरल, तकनीपूर्ण और वैज्ञानिक व्याख्या करते हैं, वह उनके पाठित्य की अपेक्षा अतदृष्टि की ही अधिक परिचायक है। चाहे राजनीति का प्रसाग आ जाए, चाहे समाजशास्त्र का, चाहे शिक्षा की समस्या हो चाहे सैक्स की, चाहे व्यायारिक महत्व का विषय हो, चाहे विज्ञान का, उनकी व्याख्या सम्बन्धित विषय की नवीनतम ज्ञानकारी से युक्त होती है और उसका आधार प्राचीन शास्त्रोक्तियों का अन्धानुकरण न होकर वैज्ञानिक विश्लेषण और तार्किक विवेचन ही होता है। विभिन्न विषयों की ऐसी तलस्तरी व्याख्या कोई अतदृष्टि प्राप्त जानी महात्मा ही कर सकता है, पुस्तकीय ज्ञानकारी बटोरनेवाला पड़ित नहीं। वे अत्यत-

निर्भीक महात्मा हैं और अपनी बात दृढ़ता पूर्वक कहते हैं, फिर जाहे वह आधुनिक नैतिक वा सामाजिक मानवाओं से विफरीश ही क्यों न जाती हो। सब से बड़ी बात यह, कि वे किसी सम्बद्धता से बचे नहीं हैं। वे जितने अधिकार पूर्वक कृष्ण पर बोलते हैं, उतनी ही गहराई से महायीर पर भी, इसा मसीह पर भी, दुर्घट और लाभोंसे पर भी ! वे न किसी के अनुयायी हैं और न किसी का अनुकरण करने की सलाह ही देते हैं। वे महापुरुषों के जीवन को चित्तनीय मानते हैं, अनुकरणीय नहीं, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे से भिन्न परिस्थितियों में जन्मता और जीता है, बत वह जो है, वही हो सकता है, उससे भिन्न कुछ नहीं हो सकता । व्यापक स्वधर्मों विषयः परमहस्यनुष्ठितात् । स्वधर्में निष्ठनं भ्येः परधर्मर्थं भयावहः ॥ मे 'स्वधर्मं' का अर्थ उन्होंने व्यक्ति की इसी 'निजता' से लिया है । 'निजता' का अनुकरण स्वतंत्रता है, 'परता' का परतंत्रता । हम अपने ही मार्ग पर चल कर मुक्त हो सकते हैं, किसी अन्य का अधानुकरण करके नहीं । इसी प्रसग मे उन्होंने बताया है कि कृष्ण ने गीता के उपदेश द्वारा अर्जुन को जो वह था, उससे भिन्न कुछ और बनाने का प्रयत्न नहीं किया है, केवल जो वह था उसे उधाड़ा भर है । अपनी भूली हुई निजता का स्मरण मात्र कराया है । उक्त श्लोक का यही आशय है कि अपने ढय से मरना भी उत्तम है पर दूसरे के ढग से जीना मरने से भी बुरा है ।

मनाली साधना-शिविर मे आवार्य रजनीश से कृष्ण सम्बन्धी विविध प्रकार के अनेक प्रश्न पूछे गये और उन्होंने उनके विस्तृत उत्तर अपने प्रवचनों द्वारा दिये । इन प्रश्नों मे गोपाल कृष्ण की बाल-लीलाओं सम्बन्धी प्रश्न भी हैं और गोपीबलभ रूप की प्रेम-कीड़ों सम्बन्धी भी । उनके योगेश्वर रूप मे गीता के सारगमित उपदेश सम्बन्धी जिज्ञासाएँ भी हैं और महाभारत एवम् गोकुल के जीवन मे विरोधाभास सम्बन्धी भी ।

एक सज्जन को आपत्ति है कि कृष्ण केवल सुदामा की दरिद्रता दूर करके ही क्यों रह गये, उन्होंने समाज की अर्थ-व्यवस्था ही बदल डालने के विषय मे क्यों न सोचा, तो एक अन्य मित्र ने यह प्रश्न उठाया है कि गीता के दसवे अध्याय मे कृष्ण ने स्वय को प्रत्येक वर्ग का श्रेष्ठ प्रतिनिधि हो बताया है, तो क्या वे निम्न और निकृष्ट वर्ग का प्रतिनिधित्व नहीं करते ? एक भाई ने तो हिसाब लगा कर यह भी सवाल उठाया है कि गीता के पारायण मे लगभग चार घण्टे लगते हैं, तो क्या कुरुक्षेत्र के मैदान मे कृष्णार्जुन सवाद के समय चार घण्टे तक मुद्द स्थगित रहा ? ऐसे पचीसों प्रश्नों के प्राय असाधारण उत्तर आपको इस ग्रन्थ मे मिलेंगे । इसके अतिरिक्त प्रासादिक चर्चा के रूप मे अनेक विषयों

पर आचार्यांशु के मौलिक और तथ्यपूर्ण विचार भी इस प्रथ में पढ़ने का सुअवसर आपको प्राप्त होगा, जैसे—बहा, बिष्णु और महेश क्या हैं? क्या इन्हें आधुनिक विज्ञान के अनुसार सृजन प्रक्रिया के मूलतत्त्व प्रोटान, इलेक्ट्रान और न्यूट्रान के प्रतीक माना जा सकता है? क्या जीसस की उपाधि 'क्राइस्ट' का 'कृष्ट' या कृष्ण से कोई सम्बन्ध है? जीसस और कृष्ण के जीवन की घटनाओं में कोई साम्य है?

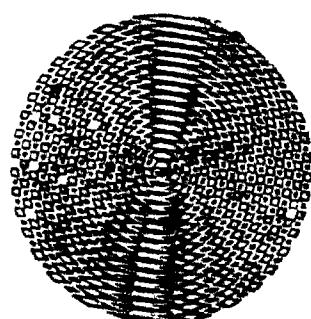
सक्षेप में मैं यही कहना चाहता हूँ कि कृष्ण के जीवन और सिद्धातों के किसी भी अध्येता का ज्ञान इस पुस्तक का अध्ययन किये बिना अपूर्ण ही रहेगा। मेरा काम आपको इस जीवन रस से परिपूर्ण अध्यात्म गगा को एक ज्ञानी मान दिखाना था, अब गगा आपके समझ है, इसमें डुबकी लगाइए और आनन्द में खो जाइए!

**गणपतिचन्द्र भंडारी**

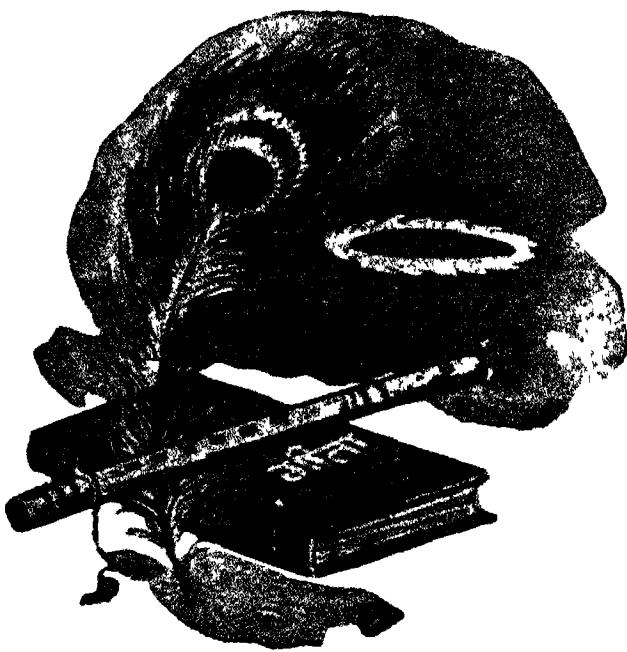
प्राध्यापक, हिन्दी विभाग,

जोधपुर विश्वविद्यालय,

जोधपुर (राजस्थान)



हमारा वर्तमान युग उस भविष्य के  
करीब पहुंच रहा है जहाँ कृष्ण की  
प्रतिमा निखरती जाएगी और एक  
हंसता हुआ धर्म, एक नाचता हुआ  
धर्म जल्दी ही निर्मित होगा। धर्म की  
बुनियादों में कृष्ण का पत्थर  
जखर रहना चाहिए



## विषय प्रवेश

कृष्ण का व्यक्तित्व बहुत अनूठा है। अनूठेपन की पहली बात तो यह है कि कृष्ण हुए तो अतीत में, लेकिन हुए भविष्य में। मनुष्य अभी भी इस योग्य नहीं हो पाया कि कृष्ण का समसामयिक बन सके। अभी भी कृष्ण मनुष्य की समझ के बाहर है। भविष्य में ही यह सम्भव हो पायेगा कि कृष्ण को हम समझ सके। इसके कुछ कारण हैं। सबसे बड़ा कारण तो यह है कि कृष्ण अकेले ही ऐसे व्यक्ति हैं जो धर्म की तरल गहराइयों और ऊचाइयों पर होकर भी गम्भीर नहीं है, उदास नहीं हैं, रोते हुए नहीं हैं। साधारणत सन्त का लक्षण ही रोता हुआ होना है —जिन्दगी से उदास, हारा हुआ, भागा हुआ। कृष्ण ही अकेले नाचते हुए व्यक्ति है — हसते हुए, गीत गाते हुए। कृष्ण को छोड़िए। अतीत का सारा धर्म उदास, आसुओं से भरा हुआ है। हसता हुआ धर्म, जीवन को समग्र रूप से स्वीकार करने वाला धर्म, अभी पैदा होने को है। निश्चित ही पुराना धर्म मर गया है और पुराना ईश्वर भी जिसे हम अब तक ईश्वर समझते थे, जो हमारी धारणा थी, वह भी मर गई है। जीसस के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वह कभी हसे नहीं। शायद जीसस का यह उदास व्यक्तित्व और सूली पर लटका हुआ उनका शरीर ही हम दुखी चित्त लोगों को बहुत आकर्षण का कारण बन गया है। महावीर या बुद्ध बहुत गहरे अर्थों में इस जीवन के विरोधी हैं—कोई और जीवन है परलोक में, कोई भोक्ता है उसके पक्षपाती हैं। समस्त धर्मों ने दो हिस्से कर रखे हैं जीवन के—एक वह जो स्वीकार योग्य है, एक वह जो इन्कार के योग्य है। कृष्ण अकेले ही समग्र जीवन को पूरा ही स्वीकार किये हुए हैं। जीवन की समग्रता की स्वीकृति उनके व्यक्तित्व में फ़लित हुई है। इसलिए, इस देश में सभी अवतारों को

आशिक अवतार कहा है, कृष्ण को पूर्ण अवतार कहा है। राम भी अंश ही है वरमात्मा के। लेकिन कृष्ण पूरे ही परमात्मा है। और यह कहने का, यह सोचने का, ऐसा समझने का कारण है। और वह कारण यह है कि कृष्ण ने सभी कुछ आत्मसात कर लिया है।

अल्बर्ट श्वाइत्जर ने भारतीय धर्म की आलोचना में एक बड़ी कीमत की बात कही है और वह यह है कि भारत का धर्म जीवन निषेधक 'लाइफ निगेटिव' है। यह बात बहुत दूर तक सच है यदि कृष्ण को विचार में न लिया जाय। यदि कृष्ण को विचार में ले लिया जाय, तो यह बात एकदम ही गलत हो जाती है। श्वाइत्जर यदि कृष्ण को समझते तो ऐसी बात न कहते। लेकिन, कृष्ण की कोई व्यापक छाया अभी हमारे विश्व पर नहीं पड़ी है। यह अकेले हुख के भहासागर में नाचते हुए एक छोटे से बीर है। या ऐसा समझिए—उदास, निषेध, दमन और निदा के बड़े मरुस्थल में एक बहुत छोटे से नाचते हुए उदान है। वह हमारे पूरे जीवन की धारा को नहीं प्रभावित कर पाये। हम ही इस योग्य न थे, हम उन्हे आत्मसात न कर पाये।

मनुष्य का मन अबतक द्वैत पर सोचता रहा, द्वन्द्व करके सोचता रहा कि शरीर को इन्कार करना है, आत्मा को स्वीकार करना है। आत्मा और शरीर को लड़ा देना है। परलोक को स्वीकार कर लेना है, इहलोक को इन्कार कर देना है। इहलोक और परलोक को लड़ा देना है। स्वभावत यदि हम शरीर को इन्कार कर देंगे तो जीवन उदास हो जाएगा। जीवन के सारे वस्त्र और सारा स्वास्थ्य, जीवन का सारा संगीत और सारी सवेदनाएँ शरीर से आ रही है, तो शरीर को जो धर्म इन्कार कर देगा तो वह पीतवर्ण हो जाएगा। रक्त शून्य हो जाएगा। लाली खो देगा। वह पीले पत्ते की तरह सूखा हुआ धर्म होगा। उस धर्म की मान्यता जिनके मन में बैठी थी वह भी पीले पत्ते की वरह गिरने की तैयारी में सलग्न है। मरने के लिए तैयार है। कृष्ण अकेले हैं जो शरीर को उसकी समग्रता में स्वीकार कर लेते हैं—उसकी 'टोटलिटी' में। यह एक आयाम में नहीं, सभी आयाम में सच है। शायद कृष्ण को छोड़कर पूरी मनुष्यता के इतिहास में जरस्थुस्त्र एक दूसरा आदमी है जिसकी बाबत यह कहा जाता है कि वह जन्म लेते ही हसा है। सभी बच्चे रोते हैं। एक बच्चा सिर्फ मनुष्यता के इतिहास में जन्म लेकर हसा है। यह सूचक है इस बात का कि हँसती हुई मनुष्यता पैदा नहीं हो पायी। कृष्ण को हसनी हुई मनुष्यता ही स्वीकार हो सकी, इसलिए कृष्ण का बहुत भविष्य है। फायड से पूर्व धर्म की जो दुनिया थी

वह फायड के पश्चात् नहीं हो सकती थी। एक बड़ी क्रान्ति घटित हो गयी है और वह बड़ी दरार पड़ गयी है मनुष्य की चेतना में। हम जहाँ थे फायड के पहले अब हम वही कभी नहीं पहुँच सकेंगे। एक नया शिखर कूँ लिया गया है और एक नयी समझ पैदा हो गयी है। वह बात समझ लेनी चाहिए। पुराना धर्म मिस्खाता था आदमी को दमन — 'सप्रेशन'। काम है, क्रोध है, लोभ है, सभी को दबाना है और नष्ट कर देना है। तभी आत्मा उपलब्ध होगी और तभी परमात्मा उपलब्ध होगा। यह लडाई बहुत लम्बी चली है। इस लडाई के हजारों माल के इतिहास में मुश्किल से दस-पाच लोग हैं जिनको हम कह पायें कि उन्होंने परमात्मा को पा लिया। एक अर्थ में यह लडाई सफल नहीं हुई। क्योंकि, अरबों-खरबों लोग बिना परमात्मा को पाये भरे हैं। जहर कही कोई बुनियादी भूल है। यह ऐसे ही है जैसे कि कोई माली पचास करोड़ पौधे लगाये और एक पौधे में फूल आ जाय और फिर भी हम उस माली के शास्त्र को मानते चले जाय और हम कहे कि देखो एक पौधे में फूल आये और हम इस बात का स्थाल ही भूल जाय कि पचास करोड़ पौधों में से अगर एक पौधे में फूल आये हैं, तो यह माली की बजह से न आये होंगे, यह माली से किसी तरह बच गया होगा पौधा इसलिए आ गये हैं। यदि माली के पचास करोड़ पौधे जिन में फूल नहीं आते, पत्ते नहीं लगते, सूखे ठूँठ रह जाते हैं तो एक बुद्ध, एक महावीर, एक क्राइस्ट अगर परमात्मा को उपलब्ध हो जाते हैं तो द्वन्द्वग्रस्त धर्मों के बावजूद यह कोई धर्मों की सफलता का प्रमाण नहीं है। धर्मों की सफलता का प्रमाण तो तब होगा, माली को तब सफल समझा जाएगा, जब पचास करोड़ पौधों में फूल लगें और एक भी न लग पाये, तो क्षमा करना ही होगा। तब यह कहा जा सकेगा कि यह पौधे की ही गलती होगी। इसमें माली की गलती नहीं हो सकती। पौधा बच गया होगा माली से, इसलिए भूख गया है, इसलिए फूल नहीं आये।

फायड के साथ ही एक नयी चेतना का जन्म हुआ और वह यह कि दमन गलत है। दमन मनुष्य को आत्महिमा में डाल देता है। आदमी अपने से ही लड़ने लगे तो सिर्फ नष्ट हो सकता है। अगर मैं अपने बाये और दाये हाथ को लडाऊ, तो न तो बाया न दाया जीतेगा, लेकिन मैं हार जाऊगा। दोनों हाथ लड़ेंगे और मैं मिटूगा। तो, दमन ने मनुष्य को आत्मघाती बना दिया। उसने अपनी ही हत्या अपने हाथों कर ली। फायड के बाद जो चेतना का जन्म हुआ है, और जो समझ आयी है, उस समझ के लिए कृष्ण ही अकेले सार्थक मालूम पड़ते हैं या मनुष्य जाति के इतिहास में कृष्ण अकेले हैं जो दमनवादी नहीं हैं। वे जीवन के

सब द्वन्द्वों को स्वीकार किए हुए हैं। वे प्रेम से भागते नहीं, वे पुरुष होकर स्त्री से पलायन नहीं करते, वे परमात्मा को अनुभव करते हुए युद्ध से विमुख नहीं होते। वे करुणा और प्रेम से भरे होते हुए भी युद्ध में लड़ने की सामर्थ्य रखते हैं। अहिंसक चित्त है उनका, फिर भी हिंसा के ठेठ दावानल में उतर जाते हैं। अमृत की स्वीकृति है उनकी, लेकिन जहर से कोई भय भी नहीं है। और, सच तो यह है कि जिसे भी अमृत का पता चल गया है उसे जहर का भय मिट जाना चाहिए। ऐसा अमृत ही क्या जो जहर से डरता चला जाय। जिसे अहिंसा का सूक्ष्म मिल गया उसे हिंसा का भय मिट जाना चाहिए। ऐसी अहिंसा ही क्या, जो अभी हिंसा से भयभीत और घबड़ायी हुई है। ऐसी आत्मा ही क्या, जो शरीर से भी डरती है और बचती भी है। और, ऐसे परमात्मा का क्या अर्थ है, जो मारे समार को अपने आलिगन में न ले सकता हो। कृष्ण द्वन्द्व को एक साथ स्वीकार कर लेते हैं। इसलिए, द्वन्द्व के अनीन हो जाते हैं।

भविष्य के लिए कृष्ण की बड़ी आवश्यकता है और भविष्य में कृष्ण का मूल्य निरतर बढ़ना ही जाने का है। जब कि सबके मूल्य फीके पड़ जाएंगे, और द्वन्द्व भरे धर्म जबकि पीछे अन्धेरे में डूब जायेंगे और इतिहास की राख उन्हें दबादेगी, तब भी कृष्ण का अगार चमकता हुआ रहेगा तथा और भी निवरेगा। क्योंकि, पहली दफा मनुष्य इस योग्य होगा कि कृष्ण को समझ पायेगा, नहीं तो समझना बड़ा कठिन है। आमान है यह बात समझना कि एक आदमी सासार को छोड़कर चला जाय और शान्त हो जाय। कठिन है इम बात को समझना कि सासार के सधर्ष के बीच में खड़ा होकर शान्त हो जाय। आमान है यह बात समझ लेना कि एक आदमी विरक्त हो जाय। आसक्ति से सम्बन्ध तोड़ के भाग जाय। कठिन है यह बात समझनी कि जीवन के सारे उपद्रवों के बीच, जीवन के सारे उपद्रवों में लिप्त, जीवन के सारे दूर-दराज कोहरे और आधियों में खड़ा हुआ 'दिया' हिलता न हो, उसकी लीं कपटी न हो। कठिन है यह समझना। इसलिए, कृष्ण को समझना बहुत कठिन है। निकटतम जो कृष्ण के थे वे भी नहीं समझ सकते थे। लेकिन, पहली दफा एक महान प्रयोग हुआ है। पहली दफा आदमी में अपनी शक्ति का पूरा परीक्षण कृष्ण ने किया। ऐसा परीक्षण कि सम्बन्धों में रहते हुए असबद्ध रहा जा सके। युद्ध के क्षण में भी करुणा न मिटे। हिंसा की तलवार हाथ में हो तो भी प्रेम का दिया मन से न बुझे। इसलिए कृष्ण को जिन्होंने पूजा भी है, जिन्होंने आराधना भी की है उन्होंने भी कृष्ण के टुकड़े-टुकड़े करके की है। सूरदास के कृष्ण कभी बच्चे से बड़े नहीं हो पाये। बड़े कृष्ण के साथ

खतरा है। सूरदास बदाश्त न कर सके। क्योंकि, बाल कृष्ण अगर गांवों की स्त्रियों को छेड़ आता है तो हमें बहुत कठिनाई नहीं है। लेकिन, युद्धा कृष्ण जब गांवों की स्त्रियों को छेड़ देगा तो फिर बहुत मुश्किल हो जाएगी। फिर हमें समझना बहुत मुश्किल हो जाएगा, क्योंकि हम अपने ही तल पर तो समझ सकते हैं। हमारे अपने तल के अतिरिक्त समझने का हमारे पास कोई उपाय नहीं है। कोई कृष्ण के एक रूप को चुन लेगा, कोई दूसरे रूप को चुन लेगा, तो गीता से प्रेम करने वाले भागवत की उपेक्षा कर जायेगे, क्योंकि भागवत का कृष्ण और ही है। भागवत को प्रेम करने वाले गीता की चर्चा में न पड़ेंगे। क्योंकि कहा राग-रग और कहा युद्ध का मैदान। इनके बीच कोई ताल-भेल नहीं है। शायद कृष्ण से बड़ा विरोधी को एक साथ पी लेने वाला कोई व्यक्तित्व ही नहीं है। इसलिए, कृष्ण की एक-एक शक्ल को लोगों ने पकड़ लिया है। जो जिसे प्रीतिकर लगी है उसे छाट लिया है। बाकी शक्ल को उसने निकाल दिया है। गांधी गीता को माना कहते हैं, लेकिन गीता को आत्मसात नहीं कर सके। क्योंकि गांधी की अर्हिसा युद्ध की सम्भावनाओं को कहा रखेगी?

इस सन्दर्भ में राम और कृष्ण को एक साथ ले तो लगता है राम बड़े गम्भीर हैं। कृष्ण गम्भीर नहीं है। राम मर्यादाओं से बघे हुए व्यक्ति हैं। मर्यादाओं के बाहर वे एक कदम भी नहीं बढ़ेंगे। मर्यादा पर वे सब कुर्बान कर देंगे। कृष्ण के जीवन में मर्यादा जैसी कोई चीज़ नहीं है। उनका जीवन अमर्याद, पूर्ण स्वतंत्र है, जिसकी कोई सीमा नहीं, जो कही भी जा सकता है। ऐसी कोई जगह नहीं जहा वह सके। ऐसी कोई सीमा नहीं जहा वह भयभीत हो और कदम को ठहराये। यह अमर्यादा भी कृष्ण के आत्म-अनुभव का अतिम फल है। तो, हिंसा भी बेमानी हो गयी है वहा, क्योंकि हिंसा हो नहीं सकती। और जहा हिंसा ही बेमानी हो गई है वहा अर्हिसा भी बेमानी हो जाती है। जब तक हिंसा सार्थक है और हिंसा हो सकती है तभी तक अर्हिसा भी सार्थक है। असल में हिंसक अपने को मानना भौतिकवाद है, अर्हिसक अपने को मानना इसी भौतिकवाद का दूसरा छोर है। एक मानता है, मैं मार डालूगा। एक मानता है, मैं मारूगा नहीं, मैं मारने को राजी ही नहीं हूँ। लेकिन, दोनों मानते हैं कि मारा जा सकता है। ऐसा अध्यात्म जो युद्ध को भी खेल मान लेता है और जीवन की सारी दशाओं—राग की, प्रेम की, भोग की, काम की, योग की, ध्यान की समस्त दशाओं को एक साथ स्वीकार कर लेता है। इस समग्रता के दर्शन को समझने की सम्भावना रोज़ बढ़ती जा रही है। क्योंकि अब हमें कुछ बाते पता

चली हैं जो कभी भी पता नहीं थी। लेकिन कृष्ण को निश्चित ही पता रही है। जैसे, हमें आज जाकर पता चला है कि शरीर और आत्मा जैसी दो चीजें नहीं हैं। आत्मा का जो छोर दिखाई पड़ता है वह शरीर है, और शरीर का जो छोर दिखाई नहीं पड़ता है वह आत्मा है। परमात्मा और सासार जैसी दो चीजें नहीं हैं। परमात्मा और प्रकृति जैसा द्वन्द्व नहीं है कही। परमात्मा का जो हिस्सा दुश्य हो गया है वह प्रकृति है, जो अदृश्य है वह परमात्मा है। कहीं भी कोई ऐसी जगह नहीं है जहा प्रकृति खत्म होती है और परमात्मा शुरू होता है। बस प्रकृति ही लीन होते होते परमात्मा बन जाती है। परमात्मा ही प्रकट होते होते प्रकृति बन जाता है। अद्वैत का यही अर्थ है। और इस अद्वैत की अगर हमें धारणा स्पष्ट हो जाय, इसकी प्रतीति हो जाय, तो कृष्ण को समझा जा सकता है। साथ ही भविष्य में कृष्ण का मूल्य और कृष्ण की सार्थकता और ज्यादा बढ़ने को है। तब कृष्ण मनुष्य के और निकट आ जायेंगे।

बड़े लम्बे सधर्व और बड़े लम्बे ज्ञान की खोज के बाद ज्ञात हो सका है कि जिन शक्तियों से हम लड़ते हैं वे शक्तिया हमारी हैं और वो हम ही हैं। इसलिए, उनसे लड़ने से बड़ा कोई पागलपन नहीं हो सकता। और यह भी ज्ञात हुआ है कि जिससे हम लड़ते हैं हम सदा के लिए उसी से छिरे रह जाते हैं। और यह भी ज्ञात हुआ है कि जिस से हम लड़ने हैं उसे हम कभी रूपान्तरित नहीं कर पाते, उसका 'ट्रांसफर्मेशन' नहीं होता। अगर कोई व्यक्ति काम से लड़ेगा तो उसके जीवन में ब्रह्मचर्य कभी भी घटित नहीं होगा। अगर ब्रह्मचर्य घटित हो सकता है तो एक ही उपाय है कि वह काम की ऊर्जा को कैसे रूपान्तरित करे। काम की ऊर्जा से लड़ना नहीं है, काम की ऊर्जा से संहयोग करना है। काम की ऊर्जा से दुष्मनी नहीं लेनी है, काम की ऊर्जा से मैत्री साधनी है। हम सिर्फ उसी को बदल सकते हैं जिससे हमारी मैत्री है। जिसके हम शब्द हो गये उसके बदलने का सवाल नहीं। जिसके हम शब्द हो गये उसको समझने का भी उपाय नहीं। समझ भी हम उसे ही सकते हैं जिससे हमारी मैत्री हो। जो हमें निकृष्टतम् दिखाई दे रहा है वह भी श्रेष्ठतम् का ही छोर है। पर्वत का जो बहुत ऊपर का शिखर है वह, और पर्वत के पास की जो बहुत गहरी स्तर्वाई है वह, दो घटनाएँ नहीं हैं। यह एक ही घटना के दो हिस्से हैं। यह जो स्तर्वाई बनी है, यह पर्वत के ऊपर उठने से बनी है। यह जो पर्वत ऊपर उठ सका है यह स्तर्वाई के बनने से ऊपर उठ सका है। यह दो चीजें नहीं हैं। यह पर्वत और स्तर्वाई हमारी भाषा में दो हैं, अस्तित्व

मेरे एक ही चीज के दो छोर हैं। 'नीत्से' का एक बहुत कीमती बच्चन है। नीत्से ने कहा है जिस वृक्ष को आकाश की ऊचाई ढूनी है उसे अपनी जड़ पाताल की गहराई तक पहुँचानी पड़ती है। अगर कोई वृक्ष अपनी जड़ों को पाताल तक पहुँचाने से डरता है, तो उसे आकाश तक पहुँचने की आकाशका भी छोड़ देनी पड़ती है। असल में जितनी ऊचाई हो, उतने गहरे भी जाना पड़ता है। जितना ऊचा जाना है, उतने ही नीचे भी जाना पड़ता है। नीचाई और ऊचाई दो चीजें नहीं हैं। एक ही चीज के दो आयाम हैं और वे सदा समानुपाती हैं। एक ही अनुपात में बढ़ते हैं। मनुष्य के मन ने सदा चाहा कि वह चुनाव कर ले, सदा चाहा कि स्वर्ग को बचा ले और नक्क को छोड़ दे। उसने चाहा कि शान्ति को बचा ले, तनाव को छोड़ दे। उसने चाहा कि शुभ को बचा ले, अशुभ को छोड़ दे। उसने चाहा, प्रकाश-ही-प्रकाश रहे, अन्धकार न रहे। मनुष्य के मन ने अस्तित्व को दो हिस्सों में तोड़ के एक हिस्से का चुनाव किया और दूसरे को इन्कार किया। इससे द्वन्द्व पैदा हुआ, इससे द्वैत पैदा हुआ। कृष्ण दोनों को एक साथ स्वीकार करने के प्रतीक हैं। और, जो दोनों को एक साथ स्वीकार करता है वही पूर्ण है, नहीं तो अपूर्ण ही रह जाएगा। जितने को चुनेगा उतना हिस्सा रह जायेगा और जिसमें इन्कार करेगा उससे सदा बधा रहेगा, उससे बाहर नहीं जा सकता। जो व्यक्ति काम का दमन करेगा उसका चित्त कामुक से कामुक होता चला जाएगा। इसलिए, जो सस्कृति, जो धर्म काम का दमन सिखाता है, वह सस्कृति, वह धर्म कामुकता पैदा कर रहा है।

अब हमें दिखाई पड़ना शुरू हुआ है कि काम की ऊर्जा, जो 'सेक्स इनर्जी' है वही ऊर्ध्व गमन करती है। ब्रह्मचर्य के उच्चतम शिखरों को छू पाती है। जीवन में किसी से भागना नहीं है और जीवन में किसी को छोड़ना नहीं है। जीवन को पूरा ही स्वीकार करके जीना है। उसको जो समग्रता से जीता है वह जीवन की पूर्णता को उपलब्ध हो जाता है। इसलिए, मैं कहता हूँ कि भविष्य के सन्दर्भ में कृष्ण का बहुत मूल्य है। हमारा वर्तमान युग उस भविष्य के करीब पहुँच रहा है जहाँ कृष्ण की प्रतिमा निखरती जाएगी और एक हस्ता हुआ धर्म, एक नाचता हुआ धर्म जल्दी ही निर्मित होगा। धर्म की बुनियादों में कृष्ण का पर्याय जल्द रहना चाहिए।

प्रश्न कृष्ण चाहते तो महाभारत का युद्ध रोक सकते थे लेकिन उन्होंने बैसा नहीं किया और भारत का उससे पतन हुआ, जिसकी बहुत बड़ी जिम्मेदारी कृष्ण पर है, कृष्ण पर इसका लांछन स्वयं सकता है?

उत्तर युद्ध और शान्ति के सम्बन्ध में भी बात यही है। हम चाहते हैं शान्ति ही बचे, सधर्ष न बचे। हम फिर चुनाव शुरू करते हैं। और जगत् द्वन्द्वों का सम्मेलन है। जगत् बृहद् विरोधी स्वरों का सम्यक् संगीत है। जगत् इक्सुरा नहीं हो सकता। मैंने सुना है कि एक आदमी कोई वाद्य यद्र बजाता था और वह तार पर एक ही जगह अगुली रखकर घटो उसी जगह को रगड़ता रहता था। घर के लोग तो परेशान हो ही गये, उसके पास-पडोस के लोग भी परेशान हो गये। अनेक लोगों ने उससे प्रार्थना की कि हम लोगों ने बहुत वाद्य बजाने वाले देखें, लेकिन सभी का हाथ सरकता है, सभी के भिन्न स्वर निकलते हैं, तुमने यह क्या राग ले रखा है? उस आदमी ने कहा—“वह इसलिए कि वे अभी ठीक स्थान खोज रहे हैं। मैंने ठीक स्थान पा लिया है। मैं ठीक स्थान पर रुका हुआ हूँ। इसलिए मुझे अब कोई लोग की जरूरत नहीं है।” हमारा मन भी यही कर सकता है कि हम एक ही स्वर चुन लें जीवन का। लेकिन, एक ही स्वर मिर्फ़ मृत्यु में हो सकता है। जीवन तो विरोधी स्वरों पर ही खड़ा होगा। तुमने अगर किसी मकान के दरवाजे पर ‘आर्च’ (भेहराब) देखा है बना हुआ—कितनी विरोधी इंटे लगी हुई है उसमें। ये विरोधी इंटे एक-दूसरे के विरोध में खड़ी होने की वजह से भवन के बड़े बजन को उठा लेती है। कोई सोच सकता है कि इन्हे एक ही दिशा में क्यों न लगा दे? फिर तो भवन गिरेगा, फिर भवन बनेगा नहीं।

जीवन की सारी व्यवस्था विरोधी स्वरों के तनाव पर है। युद्ध भी उस तनाव का हिस्सा है। युद्ध नुकसान ही पहुँचाये ऐसा जो सोचते हैं वह गलत सोचते हैं, वह अधूरा सोचते हैं। अगर हम मनुष्यता के विकास को समझ लें, तो हमें पता चलेगा कि मनुष्यता के विकास का अधिकतम हिस्सा युद्धों के भाष्यम से हुआ है। आज मनुष्य के पास जो कुछ है वह सब उमने प्राथमिक रूप से युद्धों में खोजा है। अगर आज हमें दिखाई पड़ते हैं कि सारी पृथ्वी पर रास्ते फैल गये हैं, तो पहली दफा वे रास्ते युद्धों के लिए बने थे, फौजों को भेजने के लिए बने थे। दो आदमियों को मिलाने के लिए नहीं बने थे, बारात ले जाने के लिए नहीं बने थे। और भी जितने साधन हैं, जैसे अगर आज हम बड़े मकान देख रहे हैं तो पहले बड़ा मकान नहीं बना था, बड़ा किला बना था और वह युद्ध की जरूरत थी। पहली दीवाल दुश्यन के खिलाफ़ लड़ने के लिए बनायी गयी थी। फिर दीवाले बनी और अब आकाश को छूते हुए मकान है। आज हम सोच भी नहीं सकते कि आकाश को छूता हुआ मकान युद्ध की जरूरत है। मनुष्य के पास जितनी भी सम्पन्नता है, जितने भी साधन हैं, जितने भी वैज्ञानिक

अविष्कार हैं, वे सब युद्ध के माध्यम से हुए हैं। असल में युद्ध ऐसे तनावों की स्थिति पैदा कर देता है, ऐसी चुनौती कि हमारे भीतर जो सोयी शक्तिया हैं, उन सबको जाग कर सकिय होना पड़ता है। शाति के क्षण में हम आलस्य में हो सकते हैं, तमस में हो सकते हैं। युद्ध हमारे राजस को उभारता है। हमारे भीतर सोयी शक्तियों को चुनौती के मौके पर उठना ही पड़ता है। इसलिए युद्ध के क्षण में हम साधारण नहीं रह जाते हैं, हम असाधारण हो जाते हैं और मनुष्य का मस्तिष्क अपनी पूरी शक्ति से काम करने लगता है। युद्ध में एक छलाग लग जाती है मनुष्य की प्रतिभा की, जो कि शाति के काल में सैकड़ों बर्बादी में नहीं लग पाती।

अनेक लोगों का ऐसा स्थाल है कि अगर कृष्ण ने महाभारत का युद्ध रोका होता तो भारत बड़ा सपन्न होता, भारत ने बड़े विकास के शिखर छू लिये होते। बात इसके बिल्कुल उल्टी है। अगर हमें कृष्ण जैसे दस-पाँच और भारत के इतिहास में मिले होते और हमने एक महाभारत नहीं, दस-पाँच महाभारत लड़े होते, तो हम विकास के शिखरों पर होते। महाभारत को हुए अन्दाजन पाच हजार से ज्यादा वर्ष हुए होगे। पाच हजार वर्षों में हमने इधर कोई बड़ा युद्ध नहीं किया। बाकी हमारी लडाइयों की कोई ज्यादा कीमत नहीं है, वे छोटे-मोटे झगड़े हैं, उनको युद्ध कहना भी उचित नहीं है। पाच हजार वर्षों से हमने कोई बड़ा युद्ध नहीं लड़ा। अगर छोटे युद्धों की वजह से हानि हुई होती और विद्वस हुआ होता तब तो हमें पृथ्वी पर सबसे ज्यादा सपन्न और विकास-मान होना चाहिए था। लेकिन, हालते उल्टी है। जिन मुल्कों ने बड़े युद्ध लड़े हैं, वे बहुत विकासमान हैं और बहुत सम्पन्न हैं। पहले महायुद्ध के बाद लोग सोच रहे थे कि जर्मनी अब सदा के लिए डूब जाएगा, लेकिन दूसरे महायुद्ध में जर्मनी पहले महायुद्ध के जर्मनी से अनन्तगुना शक्तिशाली हो कर प्रकट हुआ—सिर्फ बीस साल के फासले पर। कोई [सोच भी नहीं सकता था कि पहले महायुद्ध के बाद दूसरा महायुद्ध जर्मनी कर सकेगा। दो-चार सौ साल तक कुछ भी नहीं कर सकेगा, इसकी ही सभावना थी। इन बीस सालों में जर्मनी अनन्त-गुना शक्तिशाली होकर बाहर आया। पहले महायुद्ध ने [उसकी शक्तियों को जिस तीव्रता पर पहुँचा दिया, उस तीव्रता का उसने [उपर्योग कर लिया। पिछले दूसरे महायुद्ध में लगता था कि अब तो शायद युद्ध का होना मुश्किल हो जायगा। लेकिन, दो देश जो सबसे ज्यादा मिटे थे—जर्मनी और जापान—वे दोनों के दोनों फिर सपन्न होकर खड़े हो गये हैं। आज जापान को देखकर

कोई कह सकता है कि बीस साल पहले एटम बम इसी मुल्क पर गिरा था ? हिन्दुस्तान को देखकर जरूर हम कह सकते हैं कि एटम बम गिरते ही रहे होने इस पर । हमारी दुर्दशा देखकर लगता है कि यहां पर तो युद्ध होता ही रहा होगा । महाभारत के कारण हिन्दुस्तान का बहुत हित नहीं हुआ, क्योंकि महाभारत की छाया में हिन्दुस्तान में जो शिक्षक पैदा हुए वे सब युद्ध विरोधी थे । उन्होंने महाभारत का शोषण किया और कहा कि ऐसा युद्ध और ऐसी हिसा । न अब युद्ध करना है, न अब हिसा करनी है । अब लड़ना ही नहीं है । महाभारत के पीछे कृष्ण की क्षमता के व्यक्तियों की श्रृंखला हम पैदा नहीं कर पाये, अन्यथा महाभारत ने जिस ऊचाई से हमारे देश को लहर को छुआ था, हम हर बार इससे ज्यादा ऊचाई की इस लहर को छू सकते थे और शायद आज हम पूर्वी पर सबसे ज्यादा सपन्न और सबसे ज्यादा विकसित समाज होते । यह भी सोचने जैसा है कि महाभारत जैसा युद्ध विपन्न समाजों में घटित नहीं होता । युद्ध होने के लिए भी सपन्न होना जरूरी है और सपन्नता के लिए भी युद्ध का होना जरूरी है । आज करीब करीब पश्चिम उस जगह है जहां महाभारत के दिनों में हम पहुंच गये थे । आज जितने अस्त्र-शस्त्रों की बाते हैं, करीब करीब वे सभी अस्त्र-शस्त्र किसी न किसी रूप में महाभारत में प्रयोग किये गये थे । बड़ा सपन्न, बड़ा प्रतिभाशाली और बहुत वैज्ञानिक उन्नति का शिखर था वह । उम युद्ध के बाद ही निराशा के क्षण ने हमे पकड़ा । उम निराशा के क्षण का दुरुपयोग हुआ । उस निराशा के क्षण को पश्चिम में भी पकड़ा है कुछ ने । पश्चिम भी भयभीत हो गया है । और पश्चिम का अगर पतन होगा तो वह पश्चिम में जो शानिवादी है, उनकी दृश्य से होगा । अगर पश्चिम ने शानिवादियों की बात मान ली तो वह वही पहुंच जायगा जैसे महाभारत के बाद हम पहुंचे हैं । हिन्दुस्तान ने शानिवादियों की बात मान ली थी, इसलिए पांच हजार साल का लबा चक्कर चला । इसे थोड़ा सोच लेना जरूरी है ।

कृष्ण युद्धवादी नहीं है, लेकिन युद्ध को भी जीवन के खेल का हिस्सा मानते हैं । वे युद्धवार नहीं हैं, किसी का मिटाने की कोई आकांक्षा नहीं है, किसी को दुख देने का कोई ख्याल नहीं है । युद्ध न हो उसके सारे उपाय उन्होंने कर लिये थे । लेकिन जीवन की, शक्ति की और धर्म की कीमत पर युद्ध को बचाने के लिए वे राजी न थे । आखिर किसी भी चीज के बचाने की एक सोमा है । वे युद्ध को इसलिए नहीं करना चाहते थे कि जीवन को कोई नुकसान न पहुंच सके । लेकिन अगर युद्ध के न होने से ही जीवन को

नुकसान पहुंच रहा है, तो फिर क्या अर्थ रह जायेगा इस शाति का ! आखिर शातिवादी यही तो कहता कि युद्ध न हो, कही शाति खड़ित न हो जाय। लेकिन अगर युद्ध के न होने से ही शाति खड़ित हो रही है, तो उसे एक निरायक युद्ध की सामर्थ्य चाहिए। तो कृष्ण असल में युद्धखोर या युद्धवादी नहीं है। लेकिन युद्ध से भयभीत और युद्ध से भागने वाले पलायनवादी भी नहीं है। कृष्ण कहते हैं कि युद्ध न हो तो ठीक, लेकिन युद्ध होना ही हो, तो भागना ठीक नहीं है। अगर युद्ध होना ही हो और ऐसा क्षण आ जाय कि मनुष्य के मगल के लिए और मनुष्य के हित के लिए युद्ध अनिवार्य हो जाय तो उस अनिवार्य युद्ध को फिर आनंद से स्वीकार कर ले। फिर उसे बोझ की तरह ढोना भी ठीक नहीं, क्योंकि जो बोझ की तरह युद्ध में जायेगा उसकी हार सुनिश्चित है। जो सिर्फ रक्षा के लिए युद्ध में जायगा उसकी हार भी सुनिश्चित है। क्योंकि रक्षा के भाव से भरा हुआ 'डिफेसिव' जो चित्त है, लड़ने में सामर्थ्य और शौर्य नहीं दिखा पाता, वह सिर्फ बचाव के ही उपाय करता रहता है और सिकुड़ता जाता है। तो कृष्ण लड़ने को भी आनन्द बनाने को कहने हैं—दूसरे को दुख पहुंचाने का सवाल ही नहीं है। लेकिन जिन्दगी में चुनाव सदा अनुपात के हैं—शुभफलित होगा या अशुभ ? जरूरी नहीं है कि युद्ध से अशुभ ही फलित होगा। कभी युद्ध न करने से भी अशुभ फलित हो सकता है।

यह देश हमारा हजार साल तक गुलाम रहा। यह हमारे युद्ध करने की क्षमता की क्षीणता का परिणाम था। पाच हजार वर्ष से गरीब और दीन-हीन देश—हमारे शौर्य और हमारे व्यक्तित्व में जो अभय चाहिए उसकी कमी का परिणाम है। जो फैलाव चाहिए, विस्तार का जो भाव चाहिए उसकी कमी का परिणाम है। तो कृष्ण के कारण नुकसान नहीं हुआ, कृष्ण की शृखला नहीं पैदा हो सकी, हम और कृष्ण पैदा नहीं कर सके, इसलिए नष्ट हो गये। महाभारत के युद्ध के बाद स्वाभाविक था कि निराशावादी सर्व प्रसुख हो। सदा होता है। और निराशावादी शिक्षक लोगों को समझायें कि व्यर्थ था यह सब—देखो, कितनी हानि हो गयी है ! और वह स्वर हमारे मन में बैठ गया है। तभी तो पाच हजार साल से हम डरी हुई कौम है। जो कौम भरने से डर जाय और युद्ध से डर जाय, वह कौम बहुत गहरे में जीने से भी डर जाती है। हम जीने से भी डर गये हैं। हम काप रहे हैं। न हम जी रहे हैं, न हम मर रहे हैं। हम दोनों के बीच में त्रिशकु की भाति है। अब मेरी

समझ यह है कि बट्टेन्ड रसेल या गाधी या विनोबा—इनकी बात अगर दुनिया मान लेगी तो नुकसान होगा। युद्ध से भय की कोई जरूरत नहीं है। अब पृथ्वी युद्ध के लिए बहुत छोटी पड़ गयी है, यह बात जरूर है। असल में युद्ध के लिए भी जगह चाहिए। हमारे पास साधन इतने बड़े हो गये हैं कि अब पृथ्वी पर युद्ध नहीं हो सकेगा, यह बात जरूर सच है। लेकिन यह इस लिए सच नहीं है कि शातिवादी की बात भय के कारण मानने योग्य है। यह इसलिए सच कि अब हमारे पास साधन बड़े हैं और पृथ्वी छोटी है। अब युद्ध का विस्तार बढ़ेगा—वादतारों पर, मगर पर, ग्रहो-उपग्रहों पर—कहीं युद्ध शुरू होगा। वैज्ञानिकों का अदाज है कि लगभग पचास करोड़ ग्रह होने चाहिए मारे जगत में जिन पर जीवन होगा। तो आदमी भयभीत हो गया है कि हाइड्रोजन बम मत बनाओ, एटम बम मत बनाओ। अगर इससे भयभीत आदमी की बात को मान लिया गया, तो इस जगत के विस्तार पर जो अधियान हो सकता है, जो यात्रा हो सकती है, वह नहीं हो पायेगी। अब पृथ्वी जहर उस जगह पहुंच गयी है जहा युद्ध बेमानी है। लेकिन यह किसलिए हुआ है, यह भी समझने जैसी बात है। युद्ध आज अर्थहीन हो गया है, इसलिए नहीं कि शातिवादी की बात समझ में आ गयी, युद्ध इसलिए अर्थहीन हो गया कि युद्ध के विज्ञान का पूरा विकास हो गया है, 'टोटल वार' का विकास हो गया है। युद्ध इतना समझ हो गया है अब, कि पृथ्वी पर लाना बेमानी है। क्योंकि युद्ध का तभी तक अर्थ है जब कोई जीतता हो और कोई हारता हो। अब जो युद्ध होगा उसमें न कोई जीतेगा, न कोई हारेगा, उसमें दोनों एक साथ मर जायेंगे। अब युद्ध का पृथ्वी पर कोई मतलब नहीं है। और मैं मानता हूँ कि इसी वजह से पृथ्वी अब एक हो जायेगी। अब एक 'ग्लोबल विलेज' से ज्यादा उसकी हालत नहीं है, जमीन एक छोटा-सा गाव हो गयी है, ज्याद गाव से भी छोटी। दो गावों के बीच यात्रा में जितना समय लगता था अब पूरी पृथ्वी का चक्कर लगाने में उतना समय नहीं लगता है। अब पृथ्वी पर अगर युद्ध होता है तो वह नासमझी की बात है। इसका यह मतलब नहीं है कि युद्ध नहीं हो, इसका यह मतलब नहीं है कि युद्ध अब नहीं होगे। युद्ध तो होते रहेंगे, लेकिन नयी भूमियों पर होंगे, नयी यात्राएं होगी उनकी और नये अधियान होंगे। युद्ध बन्द नहीं हुआ, इसने समझाने वालों के बाद भी। वह बन्द नहीं हो सकता। वह जीवन का हिस्सा है। अब मह बड़े मजे की बात है कि युद्ध से क्या पैदा हुआ? अगर हम बहुत गौर से देखें तो हमारे सहयोग की, 'कोआपरेशन'

की सारी व्यवस्था युद्ध के लिए पैदा हुई है। 'कोआपरेशन फॉर काफिल्क' सारा सहयोग सधर्ष के लिए है। अगर जमीन पर युद्ध न हो तो कोई 'कोआपरेशन', कोई सहयोग नहीं।

तो कृष्ण को समझना बहुत जरूरी है। कृष्ण शातिवादी नहीं है, कृष्ण युद्धवादी नहीं है। असल भे 'वाद' का मतलब होता है कि दो से से हम एक को चुने। कृष्ण अ-वादी है। कृष्ण कहते हैं शाति से सुख फलित होता है तो स्वागत है। युद्ध से सुख फलित होता है तो स्वागत है। कृष्ण कहते हैं, जिससे मगल-यात्रा गतिमान होती है, जिससे धर्म विकसित होता है, जिससे जीवन में आनंद की सभावना बढ़ती है। उसका स्वागत है। ऐसा स्वागत चाहिए भी। हमारा देश अगर कृष्ण को समझा होता तो हम इस भाँति नपुसक न हो गये होते। हमने बहुत अच्छी अच्छी बातों के पीछे बहुत बहुत न मालूम कैसी कुरुपत्ताएं छिपा रखी हैं। हमारी अहिंसा की बात के पीछे हमारी कायरता छिप के बैठ गयी है। हमारे युद्ध-विरोध के पीछे हमारे मरने का डर छिपकर बैठ गया है लेकिन हमारे युद्ध न करने से युद्ध बन्द नहीं होता। कोई और हम पर युद्ध जारी रखता है। हम लड़ने न जाये, इससे लड़ाई बन्द नहीं होती, सिर्फ हम गुलाम बनते हैं। हम लड़ाइयों में धसीटे जाते रहे हैं सदा। अब यह बड़े मजे की बात है कि हम नहीं लड़े, कोई हम पर हाथी हो गया और हमें गुलाम बना लिया, फिर हम उसकी फौजों में लड़ते रहे। लड़ाई बन्द नहीं हुई। कभी हम मुगलों की फौज में लड़े, कभी हम तुकों की फौज में लड़े, कभी हूणों की फौज में लड़े। हम गुलाम ही रहे और अपनी गुलामी को बचाने के लिए लड़ते रहे। फिर हम अप्रेजो की फौज में लड़े। लड़ाई तो बन्द नहीं हुई। बस इतना ही हो गया कि वैसे हम अपनी स्वतत्त्वता के लिए लड़ते, अपने जीवन के लिए लड़ते, फिर हम अपनी परततता के लिए लड़े। यह दुखद फल हुआ। यह महाभारत के कारण नहीं हुआ, यह सिर्फ हम महाभारत की हिम्मत न जुटा पाये उसके कारण हुआ। इसलिए मैं कहता हूँ कि कृष्ण को समझना थोड़ा मुश्किल तो है। बहुत आसान है समझ लेना एक युद्धवादी की बात —एक हिटलर, एक मुसो-लिनी, एक चर्गेज, एक तैमूर, एक नेपोलियन, एक सिकदर की बात। युद्धखोरों की बात समझ लेना बहुत आसान है। वे कहते हैं कि युद्ध ही जीवन है। शातिवादी बटोंड रसेल है, गाधी है, उनकी बात भी समझ लेना बहुत आसान है— वे कहते हैं कि नहीं, शाति ही जीवन है। कृष्ण की बात समझनी बहुत मुश्किल है, क्योंकि वह कहते हैं कि जीवन इन दोनों द्वारों से युजरता है।

वह शांति से भी गुजरता है, वह युद्ध से भी गुजरता है। और अगर तुम्हें शांति बनाये रखनी हो, तो तुम्हे युद्ध की समस्ये रखनी होगी। और अगर तुम्हे युद्ध जारी रखना है, तो तुम्हे शांति की तैयारी भी करनी होगी। ये दो पैर हैं जीवन के। इनमें से एक को भी काटा तो लगड़े और पगु हो जाते हैं। तैमूर, चोर और मुसोलिनी भी लगड़े हैं, गांधी और रसेल भी लगड़े हैं। उनके एक-एक पैर हैं। उनसे गति नहीं हो सकती। इसलिए अगर एक-एक पैर वाले आदमी रहे तो फिर एक पैर मुसोलिनी का चलता है, एक पैर गांधी का चलता है। जब मुसोलिनी अपना युद्ध कर लेता है, हिटलर, स्टालिन अपने युद्ध से गुजर जाते हैं, तब रसेल, गांधी और विनोबा की बात हमें एकदम अपील करने लगती है। पर दस - बीस साल इनकी बात अपील करती है। चूंकि एक लगड़ा पैर ज्यादा दिन नहीं चल सकता, तो दूसरे पैर की जरूरत पड़ जाती है। उमपर कोई माओ खड़ा होगा, फिर कोई और खड़ा होगा। फिर युद्ध बीच में आता है। कृष्ण के पास दोनों पैर हैं। कृष्ण लगड़े आदमी नहीं है। और मैं मानता हूँ कि दोनों पैर प्रत्येक के पास होने चाहिए। जो आदमी लड़न सके उसमें कुछ कमी होती है, और जो आदमी लड़न सके वह आदमी ठीक अर्थों में शात भी नहीं हो पाता। वह लगड़ा हो जाता है। जो आदमी शात न हो सके, वह विकसित ही जाना है। और जो आदमी शात न हो सके वह लड़ेगा कैसे? लड़ने के लिए भी एक शांति चाहिए। कृष्ण इस अर्थ में भी भविष्य के लिए उपयोगी है। क्योंकि भविष्य में यदि निर्णयिक एक बात तय होती है कि सारी दुनिया को शांतिवादी बनाना है तो एक तरह का मुर्दापन द्या जायगा। लेकिन शांतिवादी मानेगा नहीं, वह अपना जुलूस निकालता रहेगा और शांति के नारे लगाता रहेगा। लेकिन युद्धखोर अपने युद्ध की तैयारी करता रहेगा। फैशन बदलते रहते हैं। दम-बीस साल इसका प्रभाव रहता है। और ये दोनों एक दूसरे के साझे में काम चलाते रहते हैं। कृष्ण की बात समग्र जीवन की है और अगर हमारी समझ में आ जाय, तो न तो शांति को छोड़ने की जरूरत है, न युद्ध को छोड़ने की जरूरत है। लेकिन युद्ध के तल बदलते जायेंगे। अगर आदमी आदमी से न लड़े तो सब आदमी मिलकर प्रकृति से लड़ना शुरू कर देंगे।

अब यह जरा सोचने जैसी बात है कि जिन कौमों में युद्ध चलते रहे, उन्हीं कौमों के लिए विज्ञान भी विकसित हुआ, क्योंकि लड़ने की क्षमता है उनमें। वे आदमी से भी लड़ते हैं, रस मिलता है तो प्रकृति से भी लड़ लेते हैं। लेकिन हमारी कौम ने महाभारत के बाद प्रकृति से भी कोई लड़ाई

नहीं लड़ी। हम आधी से भी नहीं लड़े, पहाड़ से भी नहीं लड़े, प्रकृति के किसी तत्व से भी नहीं लड़े, इसलिए हमारे देश में विज्ञान विकसित नहीं हुआ हम प्रकृति से लड़ेगे तो विकास होगा। आदमी लड़ता रहे, तो आज वह जमीन की प्रकृति से लड़ेगा और जमीन के राज सौज लेगा। फिर कल वह चाद तारे की प्रकृति से लड़ेगा। उसका अभियान रुकेगा नहीं। इसलिए ध्यान रहे, जो समाज युद्ध में ढूबे और उबरे, वही समाज चाद पर भी अपने आदमी को उतार पाये हैं। हम नहीं उतार पाये, शहरिवादी नहीं उतार पाये। और चाद आज नहीं कल, युद्ध के अर्थ में बड़ा कीमती है। क्योंकि आने वाले युद्ध में जिसके हाथ चाद पर लग जायेंगे पृथ्वी उसके ही हाथों में होगी। इसलिए अब जगड़ा पृथ्वी से हट गया है। पर यह सब—जैसे फिलीपाईन है, वियतनाम है, कम्बोडिया है या कुछ और है या हिन्दुस्तान है, पाकिस्तान है, इन सब में लडाई-जगड़े नहीं, ये तो सिर्फ नासमझों के चित्त को उलझा रखने की तरकीबे हैं। असली लडाई अब दूसरे तल पर शुरू हो गयी है। चाद पर जाने की दौड़ का बहुत गहरा अर्थ दूसरा ही है। वह अर्थ यह है कि जिसके हाथ में कल चांद होगा उसको पृथ्वी पर चुनौती देने का कोई उपाय नहीं रह गया है। उसके एटम और उसके हाईड्रोजन बम की तोरें चाद से पृथ्वी की तरफ लगी होंगी। एक एक मुल्क के ऊपर उड़कर बम खिराने की जरूरत न रह जायेगी, मुल्क अपने आप बम के ताप के सामने आते रहेंगे हर चौबीस घण्टे में। धूमती रहती है पृथ्वी पूरे दक्षत, सामने आते रहते हैं विभिन्न मुल्क अपने आप। तब अलग अलग किसी मुल्क पर आकर एटम को खिराने की जरूरत नहीं है। इसलिए, अरबों डालर जो सचं हुआ, एक आदमी को चाद पर उतारने में, यह कोई खेल नहीं था। इसमें कुछ कारण थे पीछे, और कौन पहले उतार देता है वह जरूरी था। यह दौड़ दौसी ही है जैसे एक दौड़ आज से कोई तीन सौ साल पहले योरोप से एशिया की तरफ लग गयी थी। सारे जहाज एशिया की तरफ आगे जा रहे थे—पुर्तगाज भी, स्पेनिश भी और अग्रेज भी, फ्रेंच भी और जर्मन भी—सब आगे जा रहे थे। तीन सौ साल पहले जैसे एशिया की जमीन पर कब्जा करना जरूरी हो गया था विस्तार-वादी के लिए, विकास के लिए, वह अब बेमानी हो गया। अब कोई मतलब नहीं रहा। एशिया के लोग समझ रहे हैं कि हमारी स्वतंत्रता की लडाई ने हमको आजाद किया है। इसमें आधी ही सचाई है। आधी सचाई तो दूसरी है, और वह यह है कि अब एशिया की जमीन पर कब्जा करने का कोई मतलब नहीं रह चका। यह बात सत्य हो गयी है, वह दौर सत्य हो गया है।

अब तो लडाई कही और दूसरी जमीन पर कब्जा करने की है। अब वहाँ दृष्टि चली गयी है। अब वहाँ की दौड़ है। कल चांदनारों पर और दूर तक दौड़ हो जायेगी। शक्ति का एक अभियान है जीवन में। उस अभियान में जो मुद्रापन को पकड़ लेते हैं वे धीरे धीरे नष्ट हो जाते हैं। हम ऐसी ही नष्ट हो गयी कौम है। इसलिए, कृष्ण का सदेश बड़ा अर्थपूर्ण है। हमारे लिए ही नहीं, मैं मानता हूँ, पश्चिम भी उस जगह खड़ा हो गया है, जहा उसे निष्णायिक लडाई शायद एक बार और लड़नी पड़े। निश्चित ही वह लडाई पृथ्वी पर नहीं होगी।

इस निष्णायिक लडाई में क्या होगा? शायद हालने किर वैसी खड़ी हो जायेगी जो महाभारत के समय थी। महाभारत के समय भी दो वर्ग थे—एक वर्ग या जो निपट भौतिकवादी था, जिसकी पूरी दृष्टि शरीर के अतिरिक्त किसी को स्वीकार नहीं करती थी। जिसकी दृष्टि भोग के अतिरिक्त किसी तरह के योग के लिए कोई क्षमता न रखती थी। जिन्दगी थी भोग, लूट-खसोट। जिन्दगी शरीर और शरीर की इद्रियों के बाहर कोई अर्थ न रखती थी। उसी वर्ग के सिलाफ वह सधर्ष हुआ था। कृष्ण को युस सधर्ष को करवाना पड़ा था। वह जरूरी हो गया था कि शुभ की शक्तिया कमज़ोर और नपुसक सिद्ध न हो। वह अशुभ की शक्तियों के सामने खड़ी हो सके। आज किर करीब-करीब हालत वैसी हो गयी है, और हो जायेगी बीस साल के भीतर। एक तरफ भौतिक-वाद, 'मैटीरियलिज्म' अपनी पूरी ताकत के साथ खड़ा हो जायगा और दूसरी तरफ शुभ की कमज़ोर ताकते। शुभ में एक बुनियादी कमज़ोरी है। वह लड़ने से हटना चाहता है। अर्जुन भला आदमी है। अर्जुन शब्द का मतलब होता है सीधा-सादा। तिरछा-विरछा जरा भी नहीं। बहुत सीधा-सादा आदमी है, सरल चित्त है। देखता है कि फिजूल की क्षणिक कौन करे? अर्जुन सदा ही हटता रहा है। क्योंकि, जो सीधा-सादा आदमी है वह हट जाता है, वह कहता है, मत क्षणिक करो। कृष्ण अर्जुन से कही ज्यादा सरल है, लेकिन सीधे-सादे नहीं है। कृष्ण की सरलता की कोई माप नहीं है, लेकिन सरलता कमज़ोरी नहीं है और सरलता पलायन नहीं है। वे जम के खड़े हो गये हैं, वे नहीं भागने देंगे।

हो सकता है शायद, फिर पृथ्वी दो हिस्सों में बट जाये। सदा ऐसा होता है जब ऐसे निष्णायिक क्षण आ जाते हैं, या लड़ने की बात होती है तो उसमे गाढ़ी और बिनोबा और रसेल काम नहीं देते, क्योंकि एक वर्ष में वे सब अर्जुन हैं। वे कहेंगे कि हट जाओ, वे कहेंगे कि मर जाओ, लेकिन

लड़ो यत । कृष्ण जैसे व्यक्तित्व की बड़ी जरूरत है जो कहे कि शुभ को भी लड़ना चाहिए, शुभ को भी तलवार हाथ में लेने की हिम्मत रखनी चाहिए । शुभ जब हाथ में तलवार लेता है तो किसी का अशुभ नहीं होता है । अशुभ हो नहीं सकता, क्योंकि लड़ने के लिए कोई लड़ाई नहीं है, लेकिन अशुभ न जीत पाये, इसलिए लड़ाई है । तो धीरे-धीरे दो हिस्से दुनिया के बट जायेंगे—यानी एक हिस्सा भौतिकवादी होगा और एक हिस्सा स्वतत्त्वता, लोकतत्त्व, व्यक्तित्व और जीवन के मूल्यों के लिए होगा । लेकिन, क्या ऐसे दूसरे शुभ के वर्ग को कृष्ण मिल सकते हैं? मिल सकते हैं । क्योंकि, जब भी मनुष्य की स्थितिया ऐसी जगह आ जाती है जहा कि कुछ निरण्यिक घटना घटने को होती है तब हमारी स्थितियां उस चेतना को भी पुकार लेती हैं, उस चेतना को भी जन्म दे देती है, और वह व्यक्तित्व भी जन्म पा जाता है । इसलिए मैं कहता हूँ कि कृष्ण का भविष्य के लिए बहुत अर्थ है ।

महाभारत के बाद हिन्दुस्तान में बहुत अच्छे आदमी हुए—बुद्ध हैं, महाबीर हैं, इनकी अच्छाई की कोई कमी नहीं है, इनकी अच्छाई की कोई सीमा नहीं । लेकिन, इनकी अच्छाई के प्रभाव में मुल्क सिकुड़ गया । हमारा चित्त सिकुड़ गया और उस सिकुड़े हुए चिन पर सारी दुनिया के आक्रमक टूट पड़े । आक्रमण करने ही हम नहीं जाते हैं, आक्रमण को बुलाते भी हमी हैं, अत जब तुम किसी को मारते हो तभी तुम जिम्मेवार नहीं होते, जब तुम किसी को मार खाते हो तब भी तुम ही जिम्मेवार होते हो । क्योंकि, किसी के चेहरे पर चाटा मारना भी एक कृत्य है, जिसमें पचास प्रतिशत तुम जिम्मेवार हो, पचास प्रतिशत वह आदमी जिम्मेवार है जिसने चाटे को नियमित किया, सहा, स्वीकार किया, बुलाया, कि मारो । अगर तुमको कोई चाटा मारता है तो पचास प्रतिशत तुम भी जिम्मेवार होते हो, तुम बुलाते हो । अच्छे आदमियों की इस लबी कतार में, निपट अच्छे आदमियों ने, इस मुल्क के मन को सिकोड़ दिया, उन्होंने बुलाया, आमतण दिया कि आओ । हमारा आमतण मानकर बहुत लोग आये, उन्होंने हमे वर्षों तक गुलाम रखा, दबाया, परेशान किया । लेकिन, अभी भी हमारी मनोदशा सकोच की है, हम फिर किसी को बुला सकते हैं । अगर कल माओं प्रवेश कर जाये इस मुल्क में, तो उसका जिम्मेवार अकेला माओं नहीं होगा । लेनिन ने बहुत वर्षों पहले एक भविष्यवाणी की थी कि मास्को से कम्युनिजम पेरिंग और कलकत्ता होता हुआ लदन पहुँचेगा । उसकी भविष्यवाणी बड़ी सही मालूम पड़ती है । पेरिंग तो पहुँच गया, कलकत्ते से उसकी परम्पराति सुनायी

पड़ने लगी है। लदन ज्यादा दूर नहीं है। अब कलकत्ते में कम्प्युनिजम को प्रवेश करने में कोई कठिनाई नहीं है, क्योंकि भारत का नाम सिकुड़ा हुआ है, वह आ जायेगा, उसको स्वीकार करके देश और दब जायेगा।

इसलिए, इस देश को तो कृष्ण पर पुनर्विचार करना ही चाहिए।

प्रश्न कृष्ण यदि आज होते तो यह विश्व जो दो गुटों में बंटा है, उसमें किस गुट का पक्ष लेते ?

उत्तर असल में जब भी ऐसा सकट का क्षण होता है, जब कि निर्णय करना हो कि कौन शुभ है, कौन अशुभ है, तब सदा ही कठिनाई होती है। महाभारत काल में भी आसान नहीं थी बात। क्योंकि, उस तरफ दुर्योधन ही नहीं था और अर्जुन ही थे, उस तरफ अच्छे लोग भी थे। और इस तरफ, कृष्ण ही नहीं थे अर्जुन ही नहीं थे, इस तरफ बुरे लोग भी थे। निर्णय एक क्षण में तय करना सदा ही मुश्किल होता है। दुर्योधन किस लिए लड़ता था ? आदमी उसके पास अच्छे थे या बुरे, यह उतना मूल्यवान नहीं है। वह लड़ किस लिए रहा था, उस लड़ने के मूल्य क्या थे ? कृष्ण अगर लड़ने को प्रेरित कर रहे थे अर्जुन को, तो मूल्य क्या थे ? बड़े से बड़ा निर्णयिक मूल्य था – न्याय, 'जस्टिस'। न्याय क्या था, न्याययुक्त क्या था ? यदि आज हमें फिर यह निर्णय करना पड़े कि न्याययुक्त क्या है तो मेरी समझ में, स्वतंत्रता न्याय है, परतंत्रता अन्याय है। जो चुप, जो वर्ग, जो गुट मनुष्य को किसी तरह की परतंत्रता में ढकेलता हो, वह अन्याय का पक्ष है। उस तरफ अच्छे आदमी भी हो सकते हैं, क्योंकि अच्छे आदमी जरूरी नहीं हैं कि दूरदृष्टा हो। वे कन्धधूँड भी हो सकते हैं। उनको भी पता नहीं होता कि वह जो कर रहे हैं वह बुरे के पक्ष में जा रहा है।

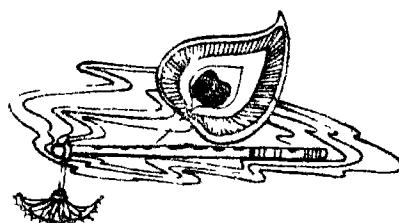
स्वतंत्रता बहुत ही कसौटी की बात है। मनुष्य की स्वतंत्रता जिस बात से बढ़ती हो, ऐसा समाज, ऐसा जगत् चाहिए। जिस बात से स्वतंत्रता कम होती हो ऐसा समाज और ऐसा जगत् नहीं चाहिए। स्वभावत जो लोग परतंत्रता लाना भी चाहेंगे वे भी परतंत्रता शब्द का उपयोग नहीं करेंगे। वे भी ऐसे शब्द खोजेंगे जिनसे परतंत्रता आती हो, लेकिन परतंत्रता का भाव न प्रकट होता हो। ऐसा एक नया शब्द 'समानता' है। यह शब्द बहुत चालाकी से भरा हुआ है। कृष्ण लोग हैं जो स्वतंत्रता को एक तरफ काटकर समानता की गुहार करते हैं। वे कहते हैं कि समानता चाहिए। वे यह भी कहते हैं कि समानता के बिना स्वतंत्रता कैसे हो सकती है ? वे कहते हैं कि प्राथमिक चीज समानता है। और, यह बात समझ

मेरे न भी पड़ेगी अनेकों को, क्योंकि ठीक ही तो बात है, सब लोग समान नहीं, तो सब लोग स्वतंत्र कैसे हो सकते हैं? और तब यदि समानता को लाने के लिए स्वतंत्रता काटनी भी पड़ती हो, तो फिर हम तैयार हो जायेंगे। अब यह बड़े मजेदार तर्क है। समानता इसलिए लानी है कि स्वतंत्रता आ सके, और स्वतंत्रता इसलिए काटनी पड़ती है, क्योंकि समानता लानी है। और एक बार स्वतंत्रता खोने के बाद उसे लाना बहुत असभव है। कौन लायेगा? मैं तुमसे कहता हूँ, यहा सब इकट्ठे हैं, मैं इनको भी कहता हूँ कि तुम सबको समान करने के लिए सबको पहले जजीर पहननी पड़ेगी। किसी के हाथ बड़े हैं, किसी के पैर छोटे हैं तो सबको समान करने के लिए पहले जजीर डाल दी जायगी, फिर सबके हाथ-पैर काट के हम सबको समान कर देंगे। लेकिन, जो सबको समान करेगा वह तो असमान ही रह जायेगा! वह तो आप सबके बाहर हो जायेगा, उसके हाथ तो खुले होंगे! जजीर नहीं होगी, लेकिन उसके हाथ में तलवार होगी। और एक बार जब सबके हाथों में जजीर होगी और कुछ लोगों के हाथों में तलवारे होगी और हाथ-पैर कट चुके होंगे, तब तुम करोगे क्या? ऐसा स्वाल था मार्क्स का कि एक बार समानता लाने के लिए स्वतंत्रता खोनी पड़ेगी, व्यक्तिगत स्वतंत्रता नष्ट करनी पड़ेगी, एक अधिनायकशाही, एक डिक्टेटरशिप चाहिए मुल्क में। फिर जब पूरा हो जायगा काम समानता का, तब स्वतंत्रता दे दी जायेगी। लेकिन, जिनके हाथ में इतनी ताकत होगी सबको समान करने की, वे भला स्वतंत्रता देंगे? लक्षण नहीं दिखायी पड़ने। बल्कि, जिननी ताकत उनकी बढ़ जाती है और जितना दूसरा आदमी पगु हो जाता है, उतनी हो स्वतंत्रता की बात खत्म हो जाती है। क्योंकि पगु पूछ भी नहीं सकते, आवाज भी नहीं उठा सकते, बगावत भी नहीं कर सकते। समानता की आड़ में स्वतंत्रता कटेगी और स्वतंत्रता एक बार कट जाय तो लौट आना बहुत मुश्किल मामला है। क्योंकि, जब स्वतंत्रता कट जाती है, तो काटनेवाला स्वतंत्रता के भविष्य की सभावनाओं की भी काट देता है। दूसरी बात यह कि स्वतंत्रता तो एक बिल्कुल ही सहज तत्व है जो प्रत्येक को मिलना चाहिए, और समानता बिल्कुल असहज बात है जो मिल नहीं सकती। यह अमनोवैज्ञानिक बात है कि हम आदमी को समान करे। आदमी समान हो नहीं सकता। आदमी समान है ही नहीं। आदमी मूलत असमान है। स्वतंत्रता जल्द चाहिए। इतनी स्वतंत्रता चाहिए, कि जो व्यक्ति जो हो सकता है वह हो सके, उसमें उसको पूरा मौका चाहिए।

मेरी दृष्टि में स्वतंत्रता का पक्ष कृष्ण का पक्ष है। समानता का नहीं हो सकता। स्वतंत्रता हो तो धीरे-धीरे असमानता कम हो सकती है। ध्यान रहे, मैं कह रहा हूँ,

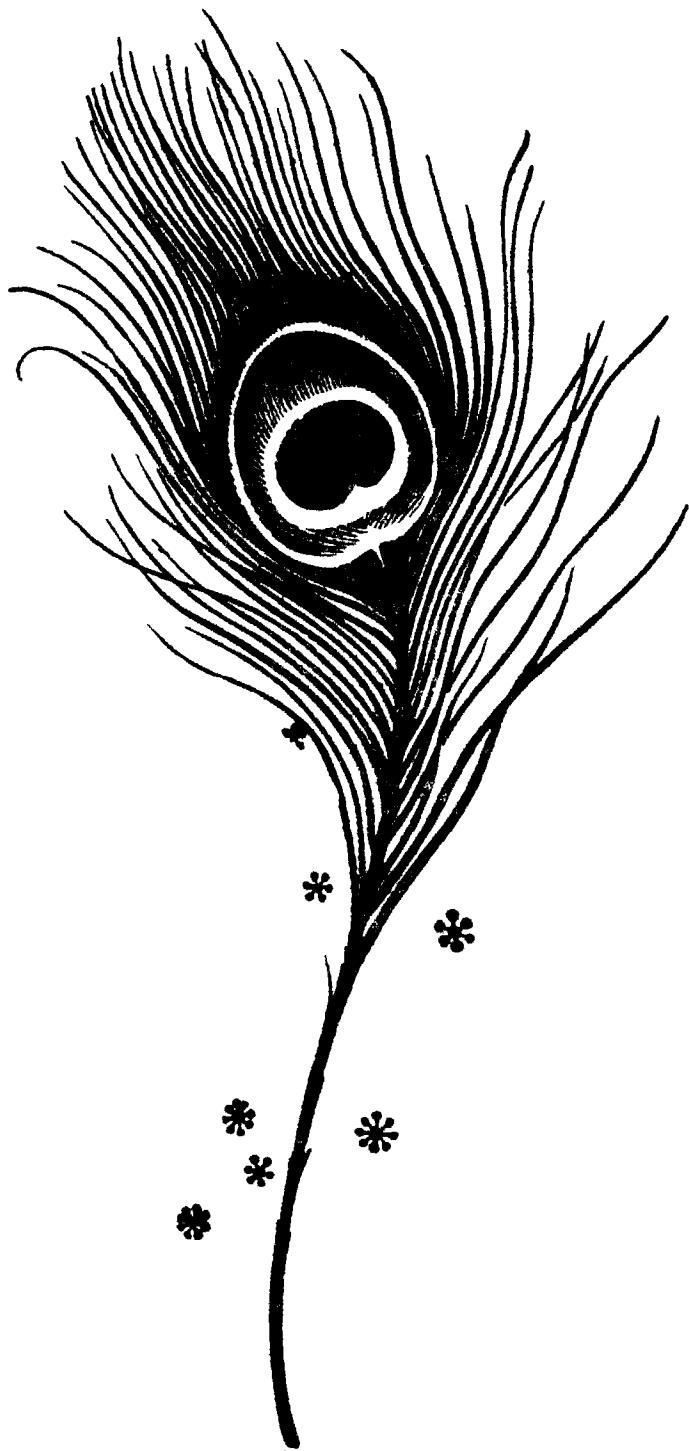
असमानता कम हो सकती है। यह नहीं कह रहा हूँ कि समानता आ सकती है। लेकिन, समानता अगर जबरदस्ती थोपी जाय तो स्वतंत्रता कम होती चली जायगी। जबरदस्ती कोई भी थोपी गयी चीज परतंत्रता का पर्याय है। तो, फिर मूल्य चुनने पड़ेगे। व्यक्ति का मूल्य कीमती है सदा से ही। जो अशुभ है वह व्यक्ति को मूल्य नहीं देना चाहता। क्योंकि व्यक्ति ही विद्रोह का तत्व है, इसलिए अशुभ की शक्तिया समूह को मानती है, व्यक्ति को नहीं मानती। और, यह भी जानकर तुम हैरान होगे कि अगर तुम्हे कोई अशुभ काम करना हो, तो व्यक्ति से करवाना बहुत मुश्किल है, समूह से करवाना सदा आसान है। एक अकेले हिन्दू से भस्त्रजद में आग लगानी बहुत मुश्किल है, हिन्दुओं की भीड़ से लगानी बहुत आमान है। एक अकेले मुसलमान से हिन्दू बच्चे की छाती से छुरा धुसवाना बहुत कठिन है, लेकिन मुसलमानों की भीड़ से बिल्कुल आसान है। असल में जितनी बड़ी भीड़ होती है, आत्मा उतनी कम हो जाती है, क्योंकि आत्मा के होने का जो तत्व है वह व्यक्तिगत दायित्व है, 'इन्डीवीजुअल रिसपामिलिटी' है। जब मैं तुम्हारी छाती में छुरा भोकता हूँ तो मेरा अत करण कहता है कि क्या कर रहे हो? लेकिन, जब मैं एक भीड़ के साथ चलता हूँ, आग लगती है तो मैं सिर्फ भीड़ का हिस्सा होता हूँ। मेरा अत करण कभी भी नहीं कहता कि तुम क्या कर रहे हो? मैं कहता हूँ लोग कर रहे हैं, हिन्दू कर रहे हैं, मैं तो सिर्फ माथ हूँ। मुझे कभी व्यक्तिगत रूप से जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है। अशुभ सदा ही समाज को आकर्षित करना चाहता है, अशुभ भीड़ पर निर्भर करता है और अशुभ चाहता है कि व्यक्ति मिट जाय, भीड़ रह जाय। शुभ व्यक्ति को स्वीकार करता है और चाहता है भीड़ धीरे-धीरे खन्म हो जाय और व्यक्ति रह जाये। व्यक्ति रहेगे तो सबध रहेगे, लेकिन वह भीड़ नहीं होगी, वह समाज होगा। यह भी थोड़ा समझ लेने जैसा है—जहा व्यक्ति हो वही समाज हो सकता है और जहा व्यक्ति की सत्ता कम हो जाय वहा सिर्फ भीड़ रहती है, समाज नहीं रहता। समाज और भीड़ में इतना ही फर्क है। व्यक्तियों के अतरसबध का नाम समाज है, लेकिन व्यक्ति होना चाहिए। मैं स्वतंत्र रूप से तुमसे स्वतंत्र व्यक्ति के नाते जब सबधित होता हूँ, तो समाज बनता है। एक जेलखाने में समाज नहीं होता। सिर्फ भीड़ होती है। कैदी भी सबधित होते हैं, एक दूसरे को देखकर हसते भी हैं, सिगरेट-बीड़ी भी भेज देते हैं, लेकिन वहा भीड़ होती है, समाज नहीं होता। वे सब वहा इकट्ठे किये गये हैं। अपनी स्वतंत्रता का उनका चुनाव नहीं है। इसलिए स्वतंत्रता, व्यक्ति, व्यक्तित्व, आत्मा, धर्म, अदृश्य और अज्ञात की सभावना जिस पक्ष की ओर प्रबल होगी उसी तरफ शुभ की चेतना होगी।

प्रबल कह रहा हूँ इसलिए, क्योंकि सिर्फ होना ही इस बात का निर्णायक नहीं होता कि बहुत इस पक्ष की तरफ है और उस पक्ष की तरफ बिल्कुल नहीं है। राम और रावण लडते हैं तब भी पक्का नहीं होता है, बहुत साफ नहीं होता है, क्योंकि रावण में भी थोड़ा राम तो होता ही है और राम में थोड़ा रावण तो होता ही है। कौरव में थोड़ा पाढ़व तो होता ही है, पाढ़व में भी थोड़ा कौरव होता ही है। ऐसा कोई अच्छे से अच्छा आदमी नहीं है पृथ्वी पर, जिसमें बुरा थोड़ा-सा न हो। और ऐसा बुरा आदमी भी नहीं स्वेच्छा जा सकता,\* जिसने थोड़ा-सा अच्छा न हो। इसलिए, सदाल सदा अनुपात का और प्रबलता का है। स्वतन्त्रता, व्यक्ति, आत्मा, धर्म—ये मूल्य हैं जिनकी तरफ शुभ की चेतना होगी।



## पर्व : एक

कृष्ण सबंधी चर्चा का मूलाधार  
सामान्य जीवन में दुष्कृति  
सम्यात्र और दुखदाता  
कृष्ण और पूर्णवितार





प्रश्न आपको थीकृष्ण पर बोलने की प्रेरणा कंसे व क्यो हुई ? इस लम्बी चर्चा का मूल आधार क्या है ?

उत्तर : यदि सोचना हो, बोलना हो, समझना हो तो कृष्ण से ज्यादा महत्त्व-पूर्ण व्यक्ति खोजना मुश्किल है। ऐसा नहीं कि और महत्त्वपूर्ण व्यक्ति नहीं हुए, ऐसा भी नहीं कि और महत्त्वपूर्ण व्यक्ति नहीं होगे। लेकिन कृष्ण का महत्त्व अतीत के लिए कम और भविष्य के लिए ज्यादा है। सच तो यह है कि कृष्ण अपने समय के कम से कम पाच हजार वर्ष पहले पैदा हुए। सभी महत्त्वपूर्ण व्यक्ति अपने

समय के पहले पैदा होते हैं, और सभी गैर महत्वपूर्ण व्यक्ति अपने समय के बाद पैदा होते हैं। महत्वपूर्ण और गैर महत्वपूर्ण व्यक्ति में इतना ही फर्क है। सभी साधारण व्यक्ति अपने समय के साथ पैदा होते हैं। कृष्ण तो अपने समय के बहुत पहले पैदा हुए। शायद आने वाले भविष्य में हम उन्हें समझने के योग्य हो सके। अतीत कृष्ण को समझने के योग्य नहीं हो सका। यह भी स्थाल कर ले कि जिसे हम समझने में योग्य नहीं हो पाते, जो हमारी समझ के बाहर छूट जाता है, उसकी हम पूजा करने लगते हैं। या तो हम गाली देते हैं, या हम प्रशंसा करते हैं। दोनों ही पूजाएँ हैं। एक शत्रु की है, एक मित्र की है। जिसे हम नहीं समझ पाते, उसे हम भगवान बना लेते हैं। असल में अपनी नासमझी को स्वीकार करना बहुत कठिन होता है, दूसरे को भगवान बना देना बहुत आसान होता है। लेकिन दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जिसे हम नहीं समझ पाते, उसे हम आखिर क्या कहें? इसीलिए हम उसे भगवान कहना शुरू कर देते हैं। भगवान कहने का कुल मतलब इतना है कि जैसे हम भगवान को नहीं समझ रहे हैं वैसे ही इस व्यक्ति को भी नहीं समझ पा रहे हैं। जैसे भगवान अबूझ है वैसे यह व्यक्ति भी अबूझ है। जैसे भगवान रहस्य है वैसे यह भी रहस्य है। जैसे भगवान को हम नहीं छू पाते, पकड़ पाते, स्पर्श कर पाते, वैसे ही इस व्यक्ति का भी नहीं छू पाते हैं, नहीं पकड़ पाते हैं। जैसे भगवान सदा ही जानने को शेष रह जाता है वैसे यह व्यक्ति मी सदा जानने को शेष रह जाता है। अपितु समय के पहले जो लोग पैदा हो जाते हैं, उनकी पूजा शुरू हो जाती है। लेकिन, वक्त करीब आ रहा है, जब कृष्ण की पूजा का अर्थ नहीं होगा, कृष्ण को जिया जा सकेगा। इसीलिए कृष्ण को चुना है, चर्चा के लिए, क्योंकि आने वाले भविष्य के सदर्भ में सबसे मार्गिक व्यक्तित्व उन्हीं का मुझे मालूम पड़ता है।

दो तीन बातें इस सम्बन्ध में आपसे कहूँ एक बात—कृष्ण को छोड़कर दुनिया के समस्त अद्भुत व्यक्ति — चाहे महावीर, चाहे बुद्ध, चाहे क्राइस्ट, या कोई और — ये सभी परलोक के लिए जो रहे थे, आने वाले किसी जीवन के लिए, मोक्ष के लिए, स्वर्ग के लिए।<sup>1</sup> मनुष्य का पूरा अतीत पृथ्वी पर इतना दुखद था कि पृथ्वी पर तो जीना ही सम्भव नहीं था। पूरा अतीत इतनी पीड़ा, इतनी 'सफरिंग', इतनी कठिनाइयों का था कि इस पृथ्वी के जीवन को स्वीकार करना मुश्किल था। अतीत के समस्त धर्म पृथ्वी को अस्वीकार करने वाले धर्म हैं, अकेले कृष्ण को छोड़कर। कृष्ण इस पृथ्वी के पूरे जीवन को पूरा ही स्वीकार करते हैं। वे किसी परलोक में जीने वाले व्यक्ति नहीं हैं, इसी लोक

मेरे जीने वाले व्यक्ति हैं। बुद्ध-महावीर का मोक्ष इस पृथ्वी के पार कहीं दूर है, कृष्ण का मोक्ष पृथ्वी पर, यही और अभी है।

इस जीवन की, जिसे हम जानते हैं, इतनी गहरी स्वीकृति किसी व्यक्ति ने कभी भी नहीं दी है। आने वाले भविष्य में पृथ्वी पर दुख कम हो जायेगे, सुख बढ़ जायेगे और पहली बार पृथ्वी पर त्यागवादी व्यक्तियों की स्वीकृति मुश्किल हो जायेगी। दुखी समाज त्याग को स्वीकार कर सकता है, सुखी समाज त्याग को स्वीकार नहीं कर सकता। दुखी समाज में त्याग, सत्यास, 'रिनन्सिएशन', समाज को या जीवन को छोड़कर भाग जाना अर्थपूर्ण हो सकता है, सुखी समाज में अर्थपूर्ण नहीं हो सकता। क्योंकि दुखी समाज में कोई कह सकता है कि सिवाय दुख के जीवन में क्या है? हम छोड़कर जाते हैं। सुखी समाज में यह नहीं कहा जा सकता कि जीवन में सिवाय दुख के क्या है। अर्थहीन हो जायेगी यह बात। इसलिए त्याग-वादी धर्म को कोई बात भविष्य के लिए सार्थक नहीं है। विज्ञान उन सारे दुखों को अलग कर देगा जो जिन्दगी में दुख मालूम पड़ते थे। बुद्ध ने कहा है—जन्म दुख है, जीवन दुख है। जरा दुख है, मृत्यु दुख है। ये सब दुख अब मिटाये जा सकेंगे। जन्म दुख नहीं होगा—न मा के लिए, न बेटे के लिए। जीवन दुख नहीं होगा—बीमारिया काटी जा सकेगी। जरा नहीं होगी, बुढ़ापे से आदमी को जल्दी ही बचा लिया जा सकेगा और जीवन को लम्बा भी किया जा सकेगा। इतना लम्बा किया जा सकेगा। कि तब विचारणीय यह नहीं होगा कि आदमी क्यों मर जाता है? विचारणीय यह होगा कि आदमी इतका लम्बा क्यों जिये? निकट भविष्य में सब हो जाने वाला है। उस दिन बुद्ध का वचन—जन्म दुख है, जरा दुख है, जीवन दुख है, मृत्यु दुख है, समझना बहुत मुश्किल हो जायेगा। उस दिन कृष्ण की बासुरी सार्थक हो सकेगी। उस दिन कृष्ण का गीत और कृष्ण का नृत्य सार्थक हो सकेगा। उस दिन जीवन सुख है यह चारों ओर नाच उठेगी घटना। जीवन सुख है, इसके फूल चारों ओर खिल जायेंगे। इन फूलों के बीच मेरे नगन खड़े हुए महावीर का सन्दर्भ स्थो जाता है। इन फूलों के बीच मेरे जीवन के प्रति पीठ करके जाने वाले व्यक्तित्व का अर्थ स्थो जाता है। इन फूलों के बीच मेरे तो जो नाच सकेगा वही सार्थक हो सकेगा। इसलिए मैं सोचता हूँ कि कृष्ण की उपयोगिता रोज रोज बढ़ती जाने वाली है।

बभी तक हम सोच ही नहीं सकते कि धार्मिक आदमी के ओरों पर बासुरी कैसे है? अभी तक हम सोच नहीं सकते कि धार्मिक आदमी, और मोर का पंख लगाकर नाच कैसे रहा है? धार्मिक आदमी प्रेम कैसे कर सकता है, गीत कैसे भा-

सकता है ? धार्मिक आदमी का हमारे मन में स्थाल ही यह है कि जो जीवन को छोड़ रहा है, त्याग रहा है। उसके ओठ से गीत नहीं उठ सकते, उसके ओठ से दुःख की आह उठ सकती है। उसके ओठों पर बासुरी नहीं हो सकती। यह असभव है। इसलिए कृष्ण को समझना अतीत को करीब करीब असभव हुआ। कृष्ण को समझा ही नहीं जा सका। इसलिए अतीत के सदर्भ में कृष्ण बहुत ही बेमानी, बहुत एब्सर्ड, बहुत असगत ठहरे। किन्तु भविष्य के सदर्भ में कृष्ण रोज सगत होते चले जायेंगे और ऐसा धर्म पृथ्वी पर शीघ्र ही पैदा हो जायेगा जो नाच सकता है, गा सकता है, खुश हो सकता है। जहा अतीत का ममम्त धर्म रोता हुआ, उदास, हारा हुआ, थका हुआ, पलायनवादी, एस्केपिस्ट है वहां भविष्य का धर्म जीवन को, जीवन के रस को स्वीकार करने वाला, आनन्द से, अनुग्रह से नाचने वाला, हसने वाला धर्म होने वाला है।

जीवन की यह जो सभावना है, इन सभावनाओं को स्थाल में रखकर कृष्ण पर बात करने का मैने विचार किया है। हमें भी समझना मुश्किल पड़ेगा क्योंकि हम भी अतीत के दुःख के सकारों से ही भरे हुए हैं। धर्म को हम भी आसुओं से जोड़ते हैं, बासुरियों से नहीं। शायद ही हमने कोई ऐसा आदमी देखा हो जो इसलिए सन्यासी हो गया हो कि जीवन में बहुत आनन्द है। हाँ, किसी की पत्नी मर गयी और जीवन दुख हो गया, तो वह सन्यासी हो गया है। किसी का धन लो गया, दिवालिया हो गया, आखे आसुओं से भर गयी है, तो सन्यासी हो गया है। कोई उदास है, दुखी है, पीड़ित है और सन्यासी हो गया है। दुख से सन्यास निकला है, लेकिन आनन्द से ? आनन्द से सन्यास नहीं निकला।

कृष्ण मेरे लिए एक ही व्यक्ति है जो आनन्द से सन्यासी है। निश्चित ही आनन्द से जो सन्यासी है वह दुख वाले सन्यासी से आमूल रूप से भिन्न होगा। जैसे मैं कह रहा हूँ कि भविष्य का धर्म आनन्द का होगा, वैसे यह भी कहता हूँ कि भविष्य का सन्यासी आनन्द से सन्यासी होगा। इसलिए नहीं कि एक परिवार दुख दे रहा था इसलिए वह सब छोड़कर सन्यासी हो गया, बल्कि एक परिवार उसके आनन्द के लिए बहुत छोटा पड़ता था इसलिए पूरी पृथ्वी को परिवार बनाने के लिए सन्यासी हो गया। इसलिए नहीं कि एक प्रेम जीवन में बन्धन बन गया है, इसलिए कोई प्रेम को छोड़कर सन्यासी हो गया, बल्कि इसलिए कि एक प्रेम इतने आनन्द के लिए बहुत छोटा था, सारी पृथ्वी का प्रेम जरूरी था इसलिए सन्यासी हो गया है। जीवन की स्वीकृति, जीवन के आनन्द और जीवन के स्स से निकले हुए सन्यास को जो समझ पायेगा, वह कृष्ण को भी समझ पायेगा। भविष्य

मेरे अगर कोई कहेगा कि मैं दुख के कारण सन्यासी हो गया तो हम कहेंगे कि [दुख से कोई सन्यासी कैसे हो सकता है ? दुख से जो सन्यास निकलेगा वह आनन्द से ले आने वाला नहीं होगा]। क्योंकि दुख से जो सन्यास निकलेगा वह दुख को कम कर सकता है। भले ही आनन्द को पैदा नहीं कर सकता। आनन्द से जिस सन्यास का जन्म होगा, जो उस आनन्द से पैदा होगी, वही आनन्द के साथर तक पहुँच सकेगी। क्योंकि तब आनन्द को बढ़ाना ही साधना होगी। अतीत की साधना दुख को कम करने की साधना थी। दुख को कम करनेवाला साधक दुख को कम कर लेगा, लेकिन वह 'निगेटिव', नकारात्मक होगा। ज्यादा से ज्यादा उपलब्धि उसकी उदासी की होगी, जो दुख का क्षीणतम रूप है। इसलिए हमारा सन्यासी उदास, हारा हुआ, भागा हुआ सन्यासी है, जीवन्त और आनन्द से नाचता हुआ सन्यासी नहीं है।

आनन्द के सन्यास की इस सभावना के कारण जानकर ही मैंने कृष्ण को चुना कि उन पर बात करूँ। ऐसा नहीं है कि कृष्ण पर बाते नहीं की गयी है, लेकिन कृष्ण पर जिन्होंने बाते की है वे भी दुख से भरे हुए सन्यासी थे। इसलिए कृष्ण की आज तक की व्याख्या कृष्ण के साथ अन्याय करती रही है। करेगी ही। अगर शकर कृष्ण की व्याख्या करेंगे तो एक उल्टा ही आदमी कृष्ण की व्याख्या कर रहा है। शकर की व्याख्या कृष्ण के साथ न्यायसंगत नहीं हो सकती। कृष्ण की व्याख्या अतीत में सगत हो ही नहीं सकी। क्योंकि जो व्याख्याकार थे, जो कृष्ण पर कह रहे थे, बोल रहे थे, वे सब दुख से आये हुए थे। वे इस जगत को माया सिद्ध करना चाहते थे। वे इस जगत को असार कहना चाहते थे और कृष्ण इस जगत को सार कह रहे हैं। इस जगत को भागवत्, 'डिवाइन', दिव्य कह रहे हैं। कृष्ण के लिए सब स्वीकार है। अस्वीकार कुछ ही नहीं। 'टोटल एक्सेप्ट्बिलिटी'—समस्त को स्वीकार कर लेने का आव। ऐसा व्यक्तित्व कभी पैदा ही नहो हुआ है। धीरे धीरे जब हम बात करेंगे तो बहुत बाते स्थाल में आ सकेगी। मेरे लिए 'कृष्ण' शब्द भविष्य के लिए बहुशंगित और बहुसूचक है। इसलिए इसपर बात करने को तय किया है।

प्रश्न आपने कहा कि बुद्ध और महाबीर जैसे सन्यासी दुखवादी हैं लेकिन सन्यास उनके बैश्वपूर्ण जीवन से निकला है। सन्यास उनके बैश्व का अगला चरण है। इसलिए उसके आधार में आप दुख को नहीं रख सकेंगे ?

उत्तर : नहीं, मैंने महाबीर और बुद्ध को दुखवादी सन्यासी नहीं कहा।

अतीत का सन्यास दुखवादी था । महाबीर का व्यक्तित्व भी अगर हम देखें, और बुद्ध का व्यक्तित्व अगर देखें, तो वो भी जीवन को छोड़ने वाला है । महाबीर और बुद्ध दुखवादी हैं, ऐसा मैंने नहीं कहा, क्योंकि मैं महाबीर और बुद्ध को मानता हूँ कि उन्होंने पाया । महाबीर का दुख बहुत भिक्ष है । महाबीर का दुख, सुख की ऊब है । बुद्ध का दुख, सुख से ऊब जाना है । उनका दुख, सुख का अभाव नहीं है, 'एव्सेस' नहीं है । ऐसा नहीं है कि महाबीर को सुख की कमी थी इसलिए वह सन्यासी हो गये । न, अति सुख हो जाय तो सुख व्यर्थ हो जाता है । लेकिन फिर भी वे सुख को छोड़कर गये । छोड़ना उन्हें अब भी सार्थक है । सुख तो निरर्थक हुआ लेकिन छोड़ना सार्थक रहा । कृष्ण को सुख भी व्यर्थ है, छोड़ना भी व्यर्थ है । कृष्ण के लिए व्यर्थता की गहराई बहुत ज्यादा है ।

समझो, अगर मैं किसी चीज को पकड़ता हूँ तो भी मेरे लिए उसमे कुछ अर्थ है । और अगर मैं उसे छोड़ता हूँ तो भी निषेधात्मक अर्थ है । नहीं छोड़ना तो दुख पाऊगा, इतना अर्थ तो है ही । महाबीर और बुद्ध का सन्यास दुख से निकला, ऐसा मैं नहीं कहता । सुख से ही निकला, लेकिन सुख की ऊब से निकला । वे किसी और बड़े सुख की खोज में इस सुख को छोड़कर चले गये । कृष्ण में उनसे भेद है । कृष्ण किसी बड़े सुख की खोज में इस सुख को छोड़ कर नहीं जाते । इस सुख को भी उस बड़े सुख की खोज की सीढ़ी ही बनाते हैं, छोड़कर नहीं जाते । इस सुख में और उस सुख में उन्हें विरोध नहीं दिखायी पड़ता । वह जो बड़ा सुख है, इसी सुख का विस्तार है । वह इसी गीत की अगली कड़ी है । वह नृत्य का अगला चरण है । वह जो बड़ा सुख है, वह जो आनन्द है, वह इस सुख का विरोधी नहीं है बल्कि कृष्ण के लिए इस सुख में भी उस बड़े आनन्द की ही झलक है, यह उसकी ही शुरुआत है । बुद्ध और महाबीर भी सुख से ही जाते हैं । लेकिन उनकी दृष्टि छोड़ने की दृष्टि है । वह जो छोड़ने की दृष्टि है वह हम दुखवादियों को और भी महत्वपूर्ण मालूम पड़ी । बुद्ध और महाबीर सुख से ऊब कर गये हैं, लेकिन हम दुखी लोगों को ऐसा लगा है कि दुख से ही गये हैं । तो बुद्ध और महाबीर की व्याख्या भी हमने जो की है वह भी दुखवादियों की व्याख्या है । जैसे कृष्ण के साथ अन्याय हुआ, उससे थोड़ा कम सही, लेकिन बुद्ध और महाबीर के साथ भी अन्याय हुआ है ।

हम दुखी हैं । हम जब छोड़कर जाते हैं तो दुख के कारण छोड़कर जाते हैं । बुद्ध और महाबीर जब छोड़कर जाते हैं तो सुख के कारण छोड़कर जाते हैं । हमने और बुद्ध और महाबीर में भी फर्क है । हमारे छोड़ने का मूल बाधार दुख होता है,

उनके छोड़ने का मूल आधार सुख हीता है। हैं तो वे भी सुख से गये हुए सन्नासी, लेकिन कृष्ण में और उनमें भी एक फर्क है। वह फर्क यह है कि वे सुख छोड़कर गये हैं कृष्ण छोड़कर नहीं जा रहे हैं, कृष्ण स्वीकार कर रहे हैं जो है। असल में सुख को छोड़ने योग्य भी नहीं पा रहे हैं वह, भोगने योग्य का सवाल ही नहीं है। जीवन जैसा है, उसमें कृष्ण भी रद्दोबदल करने की कृष्ण की कोई इच्छा नहीं है।

एक फकीर ने कही कहा है अपनी एक प्रार्थना में कि हे परमात्मा ! तू तो मुझे स्वीकार है लेकिन तेरी दुनिया नहीं। सभी फकीर यही कहेगे कि तू तो मुझे स्वीकार है लेकिन तेरी दुनिया नहीं। ये नास्तिक से उल्टे हैं। नास्तिक कहता है कि तेरी दुनिया तो स्वीकार है, तू नहीं। आस्तिक कहता है, तेरी दुनिया नहीं, तू स्वीकार है। ये दोनों एक ही सिवके के दोहरे पहलू हुए। कृष्ण की आस्तिकता बहुत अद्भुत है। कहना चाहिए, कृष्ण ही आस्तिक है। वे कहते हैं तू भी स्वीकार है, तेरी दुनिया भी स्वीकार है। और यह स्वीकृति इतनी गहरी है कि कहा तेरी दुनिया समाप्त होती है और कहा तू शुरू होता है, यह तथ करना मुश्किल है। असल में तेरी दुनिया भी तेरा फैला हुआ हाथ है और तू तेरी दुनिया का छिपा हुआ अन्तररतम है। इससे ज्यादा कोई फर्क नहीं है।

कृष्ण समस्त को स्वीकार कर रहे हैं, इसे ध्यान में रखना जरूरी है — दुख को भी नहीं छोड़ रहे, सुख को भी नहीं छोड़ रहे हैं। छोड़ने का भाव ही नहीं है। छोड़ने की बात ही नहीं है। छोड़ने से ही, अगर हम ठीक से समझते तो व्यक्ति शुरू हो जाता है। जैसे हम छोड़ते हैं, 'मैं' शुरू हो जाता है। लेकिन अगर हम कृष्ण छोड़ते ही नहीं तो मेरे होने का उपाय ही नहीं। इसलिए कृष्ण-सा निरहंकारी व्यक्तित्व खोजना मुश्किल है। और निरहकारी है इसलिए ही उन्हे अहकार की बात करने में भी कोई कठिनाई नहीं होती। वह अर्जुन से कह सकते हैं, तू सबको छोड़कर मेरी शरण में आ जा। यह बड़े मजे की बात है, यह बड़े अहकार की घोषणा है। इससे ज्यादा 'हगोइस्ट' घोषणा क्या होगी कि कोई आदमी किसी को कहे कि तू सबको छोड़ और मेरी शरण में आ जा ! हमको भी दिखायी पड़ता है कि यह अहकार की घोषणा है, क्या कृष्ण को दिखायी नहीं पड़ा होगा ? इतनी अकल तो रही ही होगी जितनी हमरे हैं। इतना तो कृष्ण को भी दिखायी पड़ सकता है कि अहकार की घोषणा है ! लेकिन इसे वह बड़ी सहजता से कह सके। यह वह आवमी कह सकता है, जिसके पास अहकार हो ही नहीं। यह वही आदमी कह सकता है कि आ आ मेरी शरण में, जिसको 'मेरे' का कोई पता ही कु

नहीं। इसलिए जब वह कह रहे हैं कि 'आ आ मेरी शरण' तब वह यही कह रहे हैं कि 'शरण मे आ जा', छोड़ दे सब। अपना होना छोड़ दे और जीवन जैसा है उसे स्वीकार कर ले। बड़े मजे की बात है, कृष्ण अर्जुन को कह रहे हैं कि तू युद्ध में लड़। अगर दोनों की बातों को देखें तो अर्जुन ज्यादा धार्मिक मालूम पड़ता है। कृष्ण की बात बहुत धार्मिक नहीं मालूम पड़ती। कृष्ण कहते हैं, लड़। अर्जुन कहता है, मारूगा, दुख होगा, पीड़ा होगी, वे अपने हैं, प्रियजन हैं, सम्बन्धी हैं मिल हैं, गुरु हैं। इनको मारूगा, बहुत दुख होगा। इन सबको मार कर मैं बड़े ऐ बड़ा सुख भी न चाहूगा। इससे तो बेहतर है कि मैं भाग जाऊँ और भीख मार लूँ। आत्मबात कर लूँ वह भी सरल मालूम पड़ता है बजाय इन सबको मारने के। कौन धार्मिक होगा जो कहेगा कि कृष्ण को अर्जुन जो कह रहा है, वह गलत कह रहा है। सभी धार्मिक कहेंगे, ठीक कहता है। अर्जुन के मन में धर्मबुद्धि पैदा हुई लेकिन कृष्ण उससे कहते हैं कि तू विचलित हो गया। तेरी धर्मबुद्धि नष्ट हो गयी। क्योंकि कृष्ण यह कहते हैं कि पागल, तू सोचता है कि किसी को मार सकेगा, कोई मरता है कभी? तू सोचता है कि ये जो लड़े हैं तू इन्हें बचा सकेगा, कोई किसी को बचा सका है कभी? तू सोचता है, तू युद्ध से बच सकेगा, लेकिन तू अहिंसक हो सकेगा? लेकिन जहा 'भै' है, सुद को बचाना है, वहा अहिंसा हो सकती है? नहीं, जो आ गया है, उसे स्वीकार कर अपने को छोड़ और लड़। जो सामने है उसमे ढूब। सामने युद्ध है, सामने कोई मंदिर नहीं है। सामने कोई प्राचीना नहीं चल रही है, सामने कोई भजन कीर्तन नहीं हो रहा है कि उसमे ढूब। सामने युद्ध है। लेकिन कृष्ण कहते हैं, इसमे तू ढूब। अपने को छोड़। तू कौन है? और एक बहुत मजे की बात कहते हैं कि जिन्हे तू देखता है कि मरेंगे, मैं जानता हूँ कि वे पहले ही मर चुके हैं। वे सिर्फ मरने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। तू ज्यादा से ज्यादा निमित्त हो सकता है। तू अपने को ऐसा भाव मान कि तू मार रहा है क्योंकि ऐसा मानने पर तू निमित्त न रह जाएगा, कर्ता हो जाएगा। तू ऐसा भी न मान कि अगर तू छोड़कर भागेगा तो तू सोचेगा कि तूने बचाया है। तब भी ध्रम होगा। न तेरे बचाने से ही कोई बचेगे न तेरे मारने से ही कोई मरेंगे। तू इसमे पूरा हो, इसमे पूरा ढूब। जो तुम्हपर आ गया है तू उसे पूरा निभा। और पूरा तू तभी निभा सकता है जब तू अपनी बुद्धि छोड़। तू यह छोड़ कि मैं हूँ, तू 'भै' के दृष्टिकोण से देखना छोड़।

इसको अगर ठीक से समझे तो इसका मतलब क्या हुआ? इसका मतलब यह हुआ कि अगर कोई मैं के दृष्टिकोण को छोड़े तो कर्ता न रह जाएगा, अभिनेता

ही रह सकता है। मैं राम हूँ और भेरी सीता लो जाय तब मैं जिस भाँति रोझा, और एक रामलीला में काम करूँ और सीता लो जाय तब भी रोझा। हो सकता है यह रोना भेरा असली राम के रोने से ज्यादा कुशल हो। होगा ही। क्योंकि असली राम को रिहर्सल का कोई भौका नहीं। सीता एक ही बार खोती है। जब लो जाती है तभी पता चलता है। इसकी कोई पूर्व तैयारी भी नहीं होती, और राम पूरे कर्ता की तरह इब जाते हैं। चिल्लाते हैं, रोते हैं, दुखी हैं, पीड़ित हैं। इसलिए राम को इस देश ने कभी पूर्ण अवतार नहीं कहा। पूरे अभिनेता भी के नहीं हैं। एक्टिंग अधूरी है। करते हैं और चूक चूक जाते हैं। कर्ता हो जाते हैं। इसलिए राम के अवस्थित्व को हम 'चरित्र' कहते हैं। अभिनेता का कोई चरित्र नहीं होता। अभिनेता की लीला होती है, खेल होता है। इसलिए कृष्ण के चरित्र को हम 'लीला' कहते हैं। कृष्ण की है—लीला, वह कृष्ण-लीला है। राम का है—चरित्र, वह राम-चरित्र है। चरित्र बड़ी गम्भीर थीज है। उसमें होना पड़ता है। चुनाव करना पड़ता है कि यह करना है और यह नहीं करना है। यह शुभ है और यह अशुभ है। अर्जुन चरित्रदान बनना आहता था और कृष्ण उसको लीलादान बनाने के लिए उत्सुक है। अर्जुन कहता था, मैं यह न करूँ, यह बुरा है। और यह करूँ तो अच्छा है। कृष्ण कहते हैं, तू अपने को थीच में खड़ा भत कर, और जो सामने आ जाता है उसे होने दे। यह पूर्ण स्वीकृति है। इस पूरी स्वीकृति में कुछ भी छोड़ना नहीं है। बड़ी कठिन है बात, क्योंकि पूर्ण स्वीकृति का भतलब है, न कुछ अशुभ है, न कुछ शुभ है। न अच्छा है, न बुरा है। न सुख है, न दुःख है। पूर्ण स्वीकृति का भतलब है कि हमारी वह जो दृन्दात्मक सोचने की अवस्था है, हम जो दो में तोड़कर ही सोचते हैं सब चीजों को, वह गयी। कृष्ण कहते हैं, न कोई जन्म है, न कोई मृत्यु है। न कोई जन्मा है, न कोई मरेगा इसलिए तू बेफिक्की से कूद। न कोई मारता है, न कोई बचाता है इसलिए तू बेफिक्की से खेल। कृष्ण यह कह रहे हैं कि तेरी दृन्द में सोचने की जो आदत है कि यह ठीक है, यह मैं करूँ और यह ठीक नहीं है, यह मैं नहीं करूँ, यह तू छोड। इस पूर्वी पर जो भी है वह परमात्मा है। इसलिए ठीक और नीर ठीक का फासला नहीं किया जा सकता। बड़ी कठिन है यह बात। नैतिक भन को तो बड़ी कठिन पड़ेगी। इसलिए कृष्ण नैतिक भन को जितने कठिन पड़े हैं, उतना अनैतिक आदमी कठिन नहीं पड़ता। अनैतिक आदमी को नैतिक आदमी निपट जाता है कह कर कि बुरा है। कृष्ण को क्या कहे? बुरा कहते भी नहीं बनता क्योंकि आदमी बुरा दिखायी पड़ता नहीं। अच्छे कहने की हिम्मत जुटाने वाले बहुत कम लोग हैं क्योंकि अच्छा कहने तो यह आदमी ऐसी बातों में अर्जुन को डाल रहा है जो कि बुरी है। इसलिए

गांधी जी ने जब कृष्ण पर बात शुरू की तो उनको बड़ी कठिनाई हो गयी। क्योंकि सच तो यह था कि गांधी जी से मेलजोल था अर्जुन का। कृष्ण का कोई भी मेल-जोल नहीं हो सकता। कृष्ण युद्ध में कुदा रहे हैं। गांधी क्या करे? कृष्ण इतने बुरे हो कि साफ साफ तय हो जाय कि बुरे हैं तो गांधी छुटकारा पा सकते हैं। लेकिन वह साफ साफ तय हो नहीं सकता, क्योंकि कृष्ण को बुरा और भला दोनों स्वीकार है। वह भले हैं। चरम कोटि के भले हैं और चरम कोटि के बुरे हैं, और एक साथ हैं। उनका भलापन तो साफ है। उनका बुरापन भी है। उस बुरेपन को गांधी क्या करे? तो गांधी को सिवाय इसके कोई उपाय नहीं रह जाता कि वह कहे कि यह सारा युद्ध 'पैरेबल' है, कहानी है। 'मिथ' है, पुराण कथा है। यह युद्ध कभी हुआ नहीं। क्योंकि कृष्ण असली युद्ध में कैसे अर्जुन को उतार सकते हैं? अगर युद्ध असल में हुआ हो तो युद्ध हिंसा हो जायेगी। तब गांधी को एक ही उपाय है कि वह कहे कि यह सारी कथा है। और यह जो युद्ध हो रहा है यह असली युद्ध नहीं है। इस प्रकार गांधी पुराने द्वन्द्व पर वापस लौट जाते हैं जिसके सिलाक कृष्ण है। गांधी कहते हैं, यह अच्छाई और बुराई का युद्ध है। पाण्डव अच्छे हैं और कौरव बुरे हैं। वही पुराना अच्छे और बुरे का द्वन्द्व जिसमें कृष्ण कह रहे हैं कि अच्छे की तरफ से लड़। यह रास्ता उन्हें खोज लेना पड़ा है। पूरी कथा को झूठ कहना पड़ा। पूरी कथा को काव्य कहना पड़ा। लेकिन कृष्ण को बहुत बक्त हुआ। कृष्ण और गांधी के बीच पाच हजार साल का फासला पड़ता है। इसलिए किसी पाच हजार साल पुरानी कहानी को 'मिथ' कहना, कल्पना कहना कठिन नहीं है।

जैनों का इतना फासला नहीं था इसलिए जैन कृष्ण की कथा को कहानी नहीं कह सके। वह घटना घटी है। जैन चिन्तन उतना ही पुराना है जितने वेद पुराने हैं। जैनों के पहले तीर्थंकर का नाम वेद में उपलब्ध है। हिन्दू और जैनों की प्राचीनता वित्कुल बराबर है। जैन इन्कार नहीं कर सकते थे कि युद्ध नहीं हुआ, और कृष्ण ने युद्ध नहीं करवाया। अब जैन क्या करे? अगर उनको भी मुविधा होती तो जो गांधी ने किया, जो कि बहुत गहरे मन से जैन थे शरीर से हिन्दू थे, वही जैन भी करते। गांधी तो पुराण कह कर टाल सके, जैन नहीं टाल सकते थे। वह समसामयिक थे। अपितु उन्हें कृष्ण को नर्क में डालना पड़ा। उन्हें अपने शास्त्रों में लिखना पड़ा कि कृष्ण नर्क गये। इतनी बड़ी हिंसा करवा कर कोई आदमी नर्क न जाए तो चीटी मारने वाले का क्या होगा? इतनी बड़ी हिंसा करके भी कोई नर्क न जाय तो मुह पर पट्टी बाधने वाले को स्वर्ग कैसे मिलेगा? बहुत मुश्किल हो जायगा। कृष्ण को नर्क में डालना पड़ा। यह सम-

सामरिक लोगो का अवतरण है। अगर बकल ज्यादा गुजर जाता तो कृष्ण की अच्छाई इतनी थी कि नर्क में डालना भी मुश्किल हो जाता। मुश्किल उनके भी पड़ा। इसलिए उनको दूसरी कहानी भी गढ़नी पड़ी। कृष्ण आदमी तो अद्भुत था। युद्ध तो करवाया था, वह सच है। नाचा था स्त्रियों के साथ, वह सच है। स्त्रियों के कपड़े उधाड़कर झाड़ पर बैठ गया था, वह भी सच है। आदमी अच्छा था, काम बुरे किये थे वह भी सच है। तो नर्क में डालकर भी चैन नहीं पड़ सकता कि कैसे इतने अच्छे आदमी को नर्क में डाल दे। क्योंकि फिर अच्छे आदमी भी सदिग्द हो जायेगे कि इतना अच्छा आदमी नर्क में डाल दिया जाय, तो अच्छे आदमियों को फिर पक्का नहीं हो सकता स्वर्ग जाने का। इसलिए जैनों को दूभरी बात भी तय करनी पड़ी कि कृष्ण आने वाले कल्प में पहले जैन तीर्थकर होंगे। उधर नर्क में डालना पड़ा, इधर आने वाले कल्प में पहले तीर्थकर की जगह भी देनी पड़ी। यह बैलेस, यह सतुलन खोजना पड़ा क्योंकि यह नर्क में भेजने जैसा तो आदमी नहीं है। लेकिन भेजना भी पड़ेगा क्योंकि नैतिकता कहती है कि यह आदमी ठीक नहीं है। परन्तु इस आदमी का व्यक्तित्व कहता है कि यह आदमी तो तीर्थकर होने योग्य है। तो यही रास्ता बन सकता था कि इसे फिलहाल नर्क में डालो और भविष्य में पहला तीर्थकर बनाओ। जब सारी सृष्टि नष्ट हो जायेगी और फिर से नई सृष्टि शुरू होगी तो पहला तीर्थकर, —यह 'कम्पनसेशन' है। यह सात्वना है अपने मन को। कृष्ण को इससे कुछ लेना देना नहीं है। गांधी के लिए सुविधा है कि वे एक माथ निपटा दे दोनों बातें — न नर्क में डालें, न पहला तीर्थकर बनायें। पूरी कथा को कह दें कहानी। युद्ध कभी हुआ नहीं, सिर्फ़ एक प्रबोध कथा है। गांधी की तकलीफ वही है जो जैनों की है। वह अर्हिसा की तकलीफ है। अर्हिसा नहीं मान सकती कि हिंसा की कोई भी जगह हो सकती है। वही शुभ की तकलीफ है। शुभ कैसे माने कि अशुभ की भी सुविधा हो सकती है।

लेकिन कृष्ण कहते हैं, जगत दृन्द का मेल है। वहाँ दोनों एक साथ है। न ऐसा कभी हुआ कि हिंसा न हो, न ऐसा कभी हुआ कि अर्हिसा न हो। इसलिए जो भी एक को चुनते हैं वह अधूरे को चुनते हैं और कभी भी तृप्त नहीं हो सकते। ऐसा कभी भी नहीं हुआ कि अन्धेरा न हो, ऐसा कभी नहीं हुआ कि प्रकाश न हो। इसलिए जो एक को चुनते हैं वह अधूरे को चुनते हैं। और अधूरे को चुनने वाला तनाव में पड़ा ही रहेगा। क्योंकि शेष आधा मिट सकता नहीं, वह सदा मौजूद है। और मजा तो यह है कि जिस आधे को हम चुनते हैं वह उस बाकी आधे पर ही ठहरा होता है। जिसको हम चुनते नहीं, इन्कार करते हैं। सारी अर्हिसा हिंसा

पर ही खड़ी होती है। सारा प्रकाश अन्धेरे के ही कारण होता है। सारी भलाई अशुभ की ही पृष्ठभूमि में जन्मती और जीती है। सब सन्त दूसरे छोर पर, वह जो दुरे आदमी खड़े हैं, उनसे ही बधे होते हैं। 'पोलेरेटीज' जो हैं वह सभी एक दूसरे से बैंधी होती हैं। ऊपर नीचे से बधा है, दुरा भले से बधा है, नकं स्वर्ग से बधा है। ये ध्रुव हैं एक ही सत्य के। और कृष्ण कहते हैं, दोनों को स्वीकार करो, क्योंकि दोनों हैं। दोनों से राजी हो जाओ, क्यों कि दोनों हैं। चुनाव ही मत करो। अगर कहें तो कृष्ण पहले आदमी हैं जो 'च्वाइसलेसनेस' की बात करते हैं। चुनाव-रहितता की बात कहते हैं। वह कहते हैं, चुनो ही मत। चुना कि भूल में पड़े। चुना कि भटके। चुना कि आधे का क्या होगा? वह आधा भी है। और यह हमारे हाथ में नहीं कि वह नहीं हो जाय। हमारे हाथ में कुछ भी नहीं है, वह है। हम नहीं ये तब भी या, हम नहीं होगे तब भी होगा। लेकिन नैतिक मन, या जो अब तक धार्मिक समझा जाता रहा है उसकी बड़ी कठिनाई है। वह दृढ़ में जीता है। वह शुभ और अशुभ को बाटकर जीता है। उसका सारा मजा अशुभ की निन्दा में है। तभी वह शुभ में मजा ले पाता है। सत का सारा मजा असत के विरोध में है, अन्यथा वह मजा नहीं ले पाता। स्वर्ग जाने का सारा सुख नकं में गये लोगों के दुख पर खड़ा है। अगर स्वर्ग में जो लोग हैं उनको एकदम पता चल जाय कि नकं है ही नहीं, तो स्वर्ण के लोग एकदम दुखी हो जाय। अगर नकं है ही नहीं तो बेकार सब मेहनत गयी। वे चोर और वे बदमाश जिन्हें नकं भेजना चाहा था वे सब स्वर्ग में ही आ गये हैं, क्योंकि वे जायेंगे कहा? स्वर्ग में जो रस है वह नकं में दुख भोगनेवाले लोगों पर खड़ा है। अमीर का जो सुख है वह गरीब की गरीबी में है, अमीर की अमीरी में नहीं है। अच्छे आदमी का जो सुख है वह दुरे आदमी के दुरे होने में है, अच्छे आदमी के अच्छे होने में नहीं है। जिस दिन सारे लोग अच्छे हो जायेंगे उस दिन साधु का मजा चला जायेगा। साधु बिलकुल ही अर्थहीन मालूम पड़ेगा। हो सकता है कि उस बक्त साधु कुछ लोगों को तैयार करे कि तुम असाधु हो जाओ अन्यथा मेरा क्या होगा? इस जगत की सारी अर्थवत्ता विरोध में है किन्तु वास्तव में इस जगत को जो पूरा देखेगा वह पायेगा कि जिसे हम दुरा कहते हैं वह अच्छे का ही छोर है। जिसे हम अच्छा कहते हैं वह दुरे का छोर है।

कृष्ण चुनावरहित है, कृष्ण समग्र है। 'इन्टीग्रेटेड' हैं। और इसीलिए पूर्ण हैं और इसीलिए हमने किसी दूसरे व्यक्ति के पूर्ण होने की बात नहीं कही, क्यों कि वह अधूरा होगा ही। राम कैसे पूर्ण हो सकते हैं? वह अधूरे होगे ही। आधे का उनका चुनाव है। जो नहीं चुनता वही पूरा हो सकता है। लेकिन जो नहीं चुनता

उसे कठिनाइयों में पड़ना पड़ेगा । क्योंकि उसकी जिन्दगी में वह भी कभी कभी दिल्लायी पड़ेगा जो अन्धेरा है । और वह भी कभी कभी दिल्लायी पड़ेगा जो उजाला है । उसकी जिन्दगी धूप-चाव का तालमेल होगी । उसकी जिन्दगी सीधी और एकरस नहीं हो सकती । एकरस जिन्दगी उनकी ही हो सकती है जिनका चुनाव है । एक जिन्दगी के कोने को वह साफ सुधरा कर सकते हैं, लेकिन जिस कचरे को उन्होंने हटाया है वह जिन्दगी के किसी दूसरे कोने में इकट्ठा होता रहेगा । लेकिन जिसने पूरे मकान को स्वीकार कर लिया है—कचरे को भी स्वीकार कर लिया, धूप को भी और अन्धेरे को भी—तब उसका क्या होगा? उस आदमी की बाबत हमारी दूषिति क्या होगी? हमारा चुनाव ही हमारी नजर होगी । हम कह सकते हैं, यह आदमी बुरा है क्योंकि अगर हम बुरा उसमें देखना चाहे तो दिल्लायी पड़ जायेगा । हम कह सकते हैं, यह आदमी भला है क्योंकि हम भला देखना चाहे तो दिल्लायी पड़ जायेगा । उसमें दोनों हैं । दोनों भी हमारी भाषा की बजह से कहना पड़ते हैं । उसमें तो एक ही है । लेकिन उस एक के ही दोनों पहलू हैं । इसलिए, बुद्ध और महावीर को मैं मानता हूँ कि उनका चुनाव है । वे शुभ हैं, पूर्ण शुभ हैं, और इसलिए पूर्ण नहीं हो सकते । क्योंकि पूर्ण में उस अशुभ का क्या होगा? बुद्ध, महावीर और कृष्ण को एक साथ खड़ा करे तो हमें बुद्ध और महावीर ज्यादा आकर्षक मालूम होंगे । ज्यादा साफ सुधरे और निखरे दिल्लायी पड़ेंगे । घब्बा ही नहीं है उनकी चादर पर । चादर बिल्कुल साफ सुधरी है, एकदम शुभ्र है । उसमें काले की कोई गोट भी नहीं है । कृष्ण थोड़े थोड़े सन्देह में छोड़ जायेंगे । कृष्ण सदा ही सन्देह में छोड़ गये हैं । इस आदमी में दोनों बातें एक साथ हैं । यह महावीर जैसा शुभ्र भी है, और अशुभ में किसको रखें महावीर के मुकाबले? यह चंगेज या हिटलर जैसा अशुभ्र भी होने की हिम्मत रखता है । अगर हम महावीर को युद्ध में तलवार लेकर खड़ा कर सके, जो हम करन सकेंगे, तो वैसा है यह आदमी । या अगर हम चंगेज को राजी कर ले कि वह महावीर जैसा हो जाय, सब छोड़कर नम्म खड़ा हो जाय, शान्त और निर्मल हो जाय, जो हम करन सकेंगे, तो वैसा है यह आदमी । लेकिन इस आदमी के साथ क्या करे? निर्णय क्या करे? कृष्ण के साथ सब निर्णय टूट जाता है, कृष्ण के साथ अनिर्णयक रहना पड़ेगा । इसलिए कृष्ण के साथ केवल वे ही खड़े हो सकते हैं जो निर्णय लेते ही नहीं । कृष्ण के साथ निर्णय लेने वाला चित्त बहुत जल्दी भाग जायेगा । क्योंकि जब उसे शुभ दिल्लायी पड़ेगा तब पैर पकड़ लेगा और जब अशुभ दिल्लायी पड़ेगा तब क्या करेगा? इसलिए कृष्ण के भक्तों ने भी चुनाव किया है । अगर सूर कृष्ण की बहुत चर्चा करते हैं तो बालपन की बहुत चर्चा करते हैं, बाद का हिस्सा छोड़ देते हैं ।

वह सूर की हिम्मत के बाहर है। सूर तो बहुत कमजोर हिम्मत के आदमी हैं, आखे फोड़ ली है एक स्त्री को देखने के डर से। यह जरा सोचने जैसा है कि ये आखे किसी स्त्री के प्रेम में न डाले, ये आखे किसी वासना में न ले जाय सूरदास ने अपनी आखे फोड़ ली है। यह आदमी कृष्ण को पूरा स्वीकार कर सकेगा? बड़ा प्रेम है सूर का कृष्ण से। शायद कम ही लोगों का ऐसा प्रेम रहा है। तो फिर कृष्ण को इसे दो हिस्सों में बाटना पड़ेगा। बालपन के कृष्ण को यह पकड़ लेगा। युवा कृष्ण को छोड़ देगा। क्योंकि युवा कृष्ण समझ के बाहर है। क्योंकि युवा कृष्ण समझ में आ सकता था अगर सूर आखे न फोड़ लेते। तब सूरदास से सगति बैठ जाती। लेकिन युवा कृष्ण की आखे – ऐसी आखे ही कम लोगों के पास रही है। इतनी स्त्रिया आकर्षित हो जाय, ऐसी आखे पाना बहुत मुश्किल है। बड़ा सवाल यह नहीं है कि इतनी स्त्रिया कैसे आकर्षित हुई, बड़ा सवाल यह है कि एक आदमी की आखो पर! यह आकर्षण असाधारण रहा होगा। ये आखे 'मेगनेटिक' रही होगी, ये आखे बड़ा चुम्बक रही होगी। सूरदास के पास इतनी कीमती आखें नहीं थीं क्योंकि सूरदास ही उत्सुक थे, कोई स्त्री उत्सुक थीं इसका मुझे पता नहीं है।

सूरदास कैसे चुनाव करेगे? क्या करेगे? तो बच्चे को पकड़ लेगे, स्वीकार कर लेगे बालकृष्ण को। इसलिए कृष्ण पर रखे गये शास्त्र भी चुनाव के शास्त्र हैं। सूरदाम किसी और कृष्ण को पकड़ते हैं, केशवदास किसी और कृष्ण को पकड़ते हैं। केशव बालकृष्ण में विलकूल उत्सुक नहीं है। केशव का मन राग और रग का मन है। केशव का मन युवा का मन है। वह आखे फोड़नेवाला मन नहीं है। रात भी आख बन्द न करनी पड़े ऐसा मन है। केशव क्या करेगे? केशव बालकृष्ण की बात ही भूल जायेगे, उससे कुछ लेना देना नहीं। वह उम कृष्ण को चुन लेगे जो नाच रहा है। इसलिए नहीं कि कृष्ण के नाचने को समझ रहे हैं वह, बल्कि इसलिए कि नाचने वाला उनका मन है। इसलिए कृष्ण पर नाचना थोप लेगे। उस कृष्ण को पकड़ लेगे जो स्त्रियों के वस्त्र लेकर वृक्ष पर चढ़ गया है, नग्न छोड़कर। इसलिए नहीं कि कृष्ण जिस तरह उन स्त्रियों को नग्न छोड़ गया था उसे केशव समझ सकते हैं। बल्कि इसलिए कि स्त्रियों को नग्न करना चाहते हैं। तो केशव का अपना चुनाव है। सूर का अपना चुनाव है। भागवत अलग कृष्ण की बात करती है, गीता अलग कृष्ण की बात करती है। यह सब चुनाव बट गये हैं, क्योंकि यह आदमी पूरा है और इसे पूरा पचा लेने का साहस पूरे आदमी में ही हो सकता है। अधूरा आदमी इसमें से बाट लेगा, छाट लेगा। कहेगा इतने तक ठीक, इसके आगे आख बन्द कर लेते हैं। इसके आगे तुम नहीं हो। या इसके आगे होगे भी, तो कहानी

हो। या इसके आगे होओये भी तो नके मे पाल आओये। अगर इसके आगे भी तुम हो तो हमारे काम के नहीं हो।

इसलिए कृष्ण के व्यक्तित्व पर मील के पत्थर लगा दिये हैं। सबके अपना अपना हिस्सा बाट लिया है। जिसको जो प्रीतिकर लगता है वह चुन लेता है, लेकिन कृष्ण एक सागर की तरह है जिसमे हम अपना घाट भले बना ले, वह घाट पूरे सागर पर नहीं बनता है। वह घाट हमारी जमीन पर ही बनता है, हम पर ही बनता है, वह सागर का बन्धन नहीं है। वह हमारी समझ की सूचना है। इसलिए मैं तो पूरे कृष्ण की बात करूगा जो बात बहुत जगह अबूझ हो जायेगी, बहुत जगह मुश्किल मे भी ढाल देगी, और बहुत जगह आपकी समझ के बाहर भी जाने लगेगी। वहाँ आप थोड़ा समझकर बाहर चलने की भी हिम्मत करता। नहीं तो आप अपनी समझ की जगह रह जायेगे। वह मील का पत्थर आ जायेगा। उसके आगे का कृष्ण आपके काम का न रह जायेगा। कृष्ण अगर है काम के, तो पूरे के पूरे है। कोई भी व्यक्ति पूरा ही काम का होता है। काट काट कर, मुर्दा अग हाथ मे आते ही जिन्दा आदमी भमान्त हो जाता है। इसलिए जिन्होने भी कृष्ण को काटा है, किसी के हाथ मे हाथ है कृष्ण का, किसी के पास पैर है, किसी के पास आख है, किसी के पास गला है, लेकिन पूरे कृष्ण हाथ मे नहीं हो सकते। पूरे कृष्ण के हाथ मे होने की तो एक ही सम्भावना है कि आप पूरे को बिना चुने समझने को राजी हो जाय और यह समझना बड़े आनन्द की यात्रा होगी, क्योंकि समझने मे आप भी पूरे हो सकते हैं। इस समझने मे आपका पूरा होना भी शुरू हो जायेगा। अगर इस समझने के लिए आप राजी हुए और चुनाव न किया तो आप अचानक भीतर पायेगे कि आपके भी विरोधी छोर धुलने-मिलने लगे। आपकी भी धूप-छाव एक होने लगी। आपके भीतर भी वह जो कटा कटा व्यक्तित्व है, वह अखण्ड होने लगा। आप भी योग को उपलब्ध होने लगे।

कृष्ण के लिए योग का एक ही अर्थ है – अखण्ड, एक हो जाना। योग की दृष्टि अखण्ड ही हो सकती है। योग का भतलब है 'दी टोटल', जोड़। इसलिए कृष्ण को महायोगी कहा जा सका। योगी तो बहुत है लेकिन वह भी योगी नहीं है, क्योंकि जोह वहा नहीं है, सब चुनाव है। 'च्वाइसलेसनेस' वहा नहीं है। इस अखण्ड कृष्ण की चर्चा कठिन तो पड़ेगी, बहुत कठिन पड़ेगी, क्योंकि बुद्धि की जो 'केटेगरीज' है, बुद्धि के सोचने के जो मापदण्ड हैं वह बड़े हुए हैं, बटखरे हैं बुद्धि के। इससे बहुत फर्क नहीं पड़ता कि किसी के पास पुराने बाट हैं और किसी के पास नये बाट हैं। इससे फर्क नहीं पड़ता कि भेदिक प्रणाली के बाट है कि पुराना

सेर, पुराना पाव या पुराने छटाक हैं। बुद्धि चाहे पुरानी हो चाहे नयी, बुद्धि चाहे अतीत की हो चाहे आज की, चाहे प्राचीन बुद्धि हो शास्त्रों की, चाहे नयी हो विज्ञान की, इससे फर्क नहीं पड़ता। बुद्धि का एक घर्म है कि वह बांटकर चलती है, तोड़कर चलती है। निर्णय करती है, यह ठीक और यह गलत। अगर आपको कृष्ण को समझना हो तो इन दस दिनों में निर्णय ही गत करना। इन दस दिनों में सुनना, समझना, निर्णय गत करना। और जहां जहां नासमझी की जगह आ जाय कि अब समझ में नहीं आता वहां वहां फिर गत करना बल्कि नासमझी में भी जाने की हिम्मत करना। 'ईशनल' बहुत जगह आ जायेगा क्योंकि कृष्ण को 'ईशनल' नहीं बनाया जा सकता। कृष्ण को बुद्धिगत नहीं बनाया जा सकता, वह जो बबुद्धि है, जो बुद्धि असीत है वह भी वहा है। इसलिए कृष्ण को तर्कयुक्त ढाँचों में बिठाना असम्भव है। वह तर्क भानते नहीं, वह स्पष्ट भानते नहीं। वह सब खण्डों में बहते चले जाते हैं। हमारे थाट भानते नहीं, सब घाटों को छूते हैं, इसलिए कठिनाई पड़ेगी। बड़ी कठिनाई यही पड़ेगी कि आपका थाट चुकने लगेगा और कृष्ण न चुकेगे। वह कहेंगे, मैं आगे भी हूँ। तुम्हारा थाट भी मैं छूता हूँ, लेकिन मैं और थाट भी छूता हूँ। मैं बुरे के थाट पर भी लहरे पहुंचाता हूँ, भले के थाट पर भी लहरे पहुंचाता हूँ। शान्ति का मेरा छोर नहीं और युद्ध में मैं चक लेकर भी लड़ा हो जाता हूँ। प्रेम का मेरा अन्त नहीं, लेकिन तलवार से गर्दन भी काट सकता हूँ। सन्यासी मैं पूरा हूँ, लेकिन गृहस्थी होने में मुझे कोई पीढ़ा नहीं। परमात्मा से मेरा बड़ा लगाव है, लेकिन सासार से रसी भर कम नहीं है। न मैं सासार के लिए परमात्मा छोड़ सकता, न परमात्मा के लिए सासार को छोड़ सकता हूँ। मैंने तो पूरे के लिए राजी होने की कसम ले ली। मैं हर रग में रहूँगा। इसलिए कृष्ण को अभी तक पूरा गत नहीं मिला। अर्जुन भी नहीं था। नहीं तो इतनी मेहनत न करनी पड़ती। युद्ध के मैदान पर गीता जैसा लम्बा वक्तव्य देना पड़ा हो तो हम सोच सकते हैं कि अर्जुन कैसा शकाशील, कैसा सदेही, कैसा तर्क उठाने वाला व्यक्तित्व रहा होगा। युद्ध की रणधेरी बज चुकी हो, सेनाएं बामने सामने लड़ी हो गयी हो, युद्ध का घट्टनाद शुरू हो गया हो और वहां इतनी लम्बी गीता समझानी पड़े! अर्जुन यों राजी नहीं हो गया होगा। उसकी बुद्धि बार बार जोर मारती रही कि आप ऐसा भी कहते हैं और आप ऐसा भी कहते हैं? वह बार बार जो सवाल उठाता है वह 'कण्ट्राडिक्षण' के हैं। वह कृष्ण से कहता है कि आपमें विरोधाभास है। आप एक तरफ ऐसा भी कहते हैं और दूसरी तरफ ऐसा भी कहते हैं? आप दोनों बातें कहते हो? उसके सारे सवाल गीता में बड़े तकंसगत हैं। वह यही कह

रहा है कि तुम यह भी कहते हो और वह भी कहते हो ? तो फिर मेरी समझ में नहीं आता । अब तुम मुझे फिर से समझाओ । कृष्ण जैसा पूरा व्यक्ति भी उसे समझा नहीं पाता । जब समझाने से थक जाते हैं तो फिर वे दूसरा उपाय करते हैं । अपने को पूरा दिखा देते हैं । क्योंकि यह आदमी मानता नहीं और यह तर्क जो उठाता है ठीक ही उठाता है । कृष्ण भी समझते हैं कि तर्क तो ठीक है । पर कृष्ण की बाते उसे उल्टी लगती हैं, 'इनकसिस्टेंट' लगती हैं । वर्जुन यही कहता है कि 'कसिस्टेंसी' चाहता हूँ, संगति चाहता हूँ, हे कृष्ण ! तुम संगति बताओ । तुम जो कहते हो उस से मुझे भ्रम आले मेर बालो, उससे तुम भुजे 'कन्फ्यूज़' मत करो । लेकिन कृष्ण उसको 'कन्फ्यूज' किये चले जाते हैं । वह एक बक्तव्य देते नहीं कि तत्काल दूसरा देते हैं जो उसका खण्डन कर जाता है । करणा-मरणा भी समझाये चले जाते हैं, हिसा भी करवाने की बात कहे चले जाते हैं ।

ऐसा जो आदमी है, उसके पास फिर एक ही उपाय रह गया । युद्ध की घड़ी बढ़ी जाती है, योद्धा सब तैयार हैं, लगामे खिच गयी हैं और यह आदमी मानता नहीं, और इसी आदमी पर सब निर्भर है । यह भाग जाय तो सब गडबड़ हो जायगा । यह सारा स्त्रेल, यह सारा नाटक, इतना बड़ा इत्तजाम, यह सब व्यर्थ हो जायगा । जब थक जाते हैं कृष्ण, तो उसको अपना पूरा रूप ही दिखा देते हैं । पूरे रूप को देखकर वह घबड़ा जाता है । कोई भी घबड़ा जायेगा । पूरे रूप का मतलब ही यह है कि वे सारे विरोधाभासों के साथ इकट्ठे मौजूद हो जाते हैं । उनके भीतर सब दिखायी देने लगता है — जन्म भी और मरण भी और सब एक साथ । हमें सुविधा पड़ती है — सत्तर साल पहले जन्म होता है, सत्तर साल बाद मरना होता है । दोनों में इतना फासला होता है कि व्यवस्था बिठा लेते हैं कि जन्म अलग चीज है, मृत्यु अलग चीज । पर वहा तो एक साथ जन्म और मृत्यु दिखने लगते हैं उनके भीतर । एक साथ जगत बनता और विसर्जित होता दिखायी पड़ने लगता है । एक साथ भीज और बृक्ष दिखायी पड़ने लगते हैं । एक साथ प्रलय आती है और सुजन होने लगता है । वह घबड़ा जाता है; वह कहता है कि बन्द करो अपना यह रूप । मैं मर जाऊगा । मैं इसे और नहीं देख सकता । इसे बन्द करो । लेकिन इसके बाद वह सबाल नहीं उठाता । इसके बाद एक बात उसे दिखायी पड़ जाती है कि जिन्हे हम असमिया कहते हैं, विरोध कहते हैं वे एक सत्य के हिस्से हैं । वह युद्ध में चला आता है । इसका यह मतलब मत समझ लेना कि वह राजी होकर गया । वह राजी होकर नहीं आ पाया । दिखायी तो पड़ गया उसे, लेकिन उसकी बुद्धि सबाल उठाती है । बुद्धि का काम ही सबाल उठाना है । तो जितने सबाल आपको मुझसे उठाने हों, उठाना । लेकिन कृष्ण को समझाने में सबाल मत उठाना । आपकी सारी

बुद्धि मुख्यपर लगाना । लेकिन कृष्ण बहुत जगह बुद्धि को छोड़कर निर्बुद्धि में प्रवेश करने लगे । बहुत धीर्घ की, बहुत साहस की बहा जरूरत पड़ेगी, वहा चलने को राजी होना । आपका प्रकाशित क्षेत्र स्थो जायेगा । अन्देरा शुरू होना । अप्सके द्वार दरबाजे वहा दिखायी नहीं पड़ेगे । वहा साफ सुधरे रास्ते नहीं होंगे, वहा सब 'मिस्टीरियस' और रहस्यपूर्ण हो जायेगा । वहा चीजे पुरानी रूपरेखा और पुराने आकार में नहीं होंगी । वहा सब आकार ढावाडोल हो जायेगे । वहा सब समतियां गिर जायेगी, सब विरोध गिर जायेंगे और तभी आपको उस विराट के निकट पहुँचने का मौका मिल सकता है । और अगर आप राजी हुए तो कुछ ऐसा नहीं है कि अर्जुन की कोई विशेष योग्यता थी कि उसको विराट दिखायी पड़ा । सभी उतनी योग्यता के पात्र हैं । और जो सबाल अर्जुन ने उठाये थे वह कोई भी उठा सकता है । लेकिन अगर आप भी उस रहस्यपूर्ण में, उस मिस्टीरियम में, वह जो बुद्धि के पार चला जाता है, चलने को राजी हुए तो विराट की प्रतीति आपको भी हो सकती है । वह विराट आपके सामने भी आ सकता है । उस विराट को लाने की ही मैं कोशिश करूँगा, उस विराट का ही व्यक्तिवाची नाम कृष्ण है । कृष्ण से कुछ बहुत लेना देना नहीं है । वह जो विराट है, समस्त का जोड़ है, उसका ही प्रतीकवाची नाम कृष्ण है । इसलिए बहुत बार चर्चा कृष्ण से इधर उधर छूट जायेगी, उससे घबड़ा मत जाना । मैं तो उस विराट की तरफ ही पूरे समय कोशिश करूँगा । अगर आप राजी हुए तो घटना घट सकती है । कुरुक्षेत्र में ही घटे, ऐसा कुछ नहीं, मनाली में भी घट सकती है ।

**प्रश्न** आचार्यजी, चर्चा को आगे बढ़ाने के पहले पीछे का एक प्वाइट छूट गया था जो स्पष्ट कर लू । बुद्ध के दुख की धारणा जीवन का तथ्य है फिर तथ्य को सामने रखने में क्या गलती है? जैसा सामान्य जीवन अभी है, क्या उसमें दुख नहीं है?

उत्तर दुख जीवन का तथ्य है, लेकिन अकेला दुख ही जीवन का तथ्य नहीं है, सुख भी जीवन का तथ्य है । और जितना बड़ा तथ्य दुख है उससे छोटा तथ्य सुख नहीं है । और जब हम दुख को ही तथ्य मानकर बैठ जाते हैं तो अतथ्य हो जाता है, 'फिक्शन' हो जाता है । क्योंकि तब सुख कहां छोड़ दिया? अगर जीवन में दुख ही होता तो बुद्ध को किसी को समझाने की जरूरत न पड़ती । और बुद्ध इतना समझाते हैं लोगों को, फिर भी कोई मार्ग तो जाता नहीं । हम भी दुख में रहते हैं, लेकिन फिर भी भाग नहीं जाते । दुख से भिन्न भी कुछ होना चाहिए जो अटका लेता है, जो रोक लेता है ।

“ किसी को प्रेम करने में दुःख है । क्योंकि प्रेम की अपनी कठिनाइयाँ, अपनी जटिलताएं हैं । क्योंकि किसी को प्रेम करने में अगर सुख न हो तो इतने दुख को छोलने को कौन राजी होगा ? यदि कण भर सुख के लिए पहाड़ भर दुख पर लेता है आदमी तो मानना होगा कि कण भर सुख की तीव्रता पहाड़ भर दुख से ज्यादा होगी । सुख भी सत्य है । समस्त भगवादी सिफं दुख पर जोर देते हैं, इसलिए वह असत्य हो जाता है । समस्त भगवादी सुख पर जोर देते हैं, इसलिए वह असत्य हो जाता है । भौतिकवादी सुख पर जोर देते हैं, इसलिए वह असत्य हो जाता है । वह कहते हैं, दुख है हो नहीं, सुख ही सत्य है । वही जैसा मैंने कहा तब आधे सत्य असत्य हो जाते हैं । सत्य होगा तो पूरा ही होगा आधा नहीं हो सकता । कोई कहे, जन्म ही है तो असत्य हो जाता है । क्योंकि जन्म के साथ मृत्यु है । कोई कहे मृत्यु ही है तो असत्य हो जाता है । क्योंकि मृत्यु के साथ जन्म है । जीवन दुख है, ऐसा अगर अकेला ही प्रचारित हो तो यह असत्य हो जाता है । लेकिन जीवन सुख-दुख है, ऐसा तथ्य है । इसे और गौर से देखें तो हर सुख के साथ दुख जुड़ा है । हर दुख के साथ सुख जुड़ा है । इसे और गहरे देखें तो पता लगाना मुश्किल हो जायेगा कि दुख कब सुख हो जाता है, सुख कब दुख हो जाता है । ‘ट्रासफरेबल’ है । ‘कन्वर्टीबल’ भी है । एक दूसरे में बदलते भी चले जाते हैं । ऐसा रोज ही होता है । असल में ‘एम्फेसिस’ का ही शायद फर्क है । जो चीज आज मुझे सुख मालूम पड़ती है, कल दुख मालूम पड़ने लगती है । जो कल मुझे सुख मालूम पड़ती थी वह आज दुख मालूम पड़ने लगती है । अभी मैं आपको गले लगा लू, सुख मालूम पड़ता है । फिर मिनट, दो मिनट न छोड़ तो दुख शुरू हो जाता है । आधी घड़ी न छोड़ तो आप आसपास देखते हैं कि कोई पुलिस वाला उपलब्ध होगा कि नहीं होगा । अब कैसे होगा छूटना ? इसलिए जो जानते हैं, वह आपके छूटने के पहले छोड़ देते हैं । जो नहीं जानते वे अपने सुख को दुख बना लेते हैं और कोई कठिनाई नहीं है । हाथ लिया हाथ में कि छोड़ना शुरू कर देना, अन्यथा बहुत जल्दी दुख शुरू हो जायेगा । हम सभी अपने सुख को दुख बना लेते हैं । सुख को हम छोड़ना नहीं चाहते तो जोर से पकड़ते हैं । जोर से पकड़ते हैं कि दुख हो जाता है । फिर जिसको इतने जोर से पकड़ा उसको छोड़ने में भी मुश्किल हो जाती है । दुख को हम एकदम छोड़ना चाहते हैं । छोड़ना चाहते हैं इसलिए दुख गहरा हो जाता है । पकड़े रहें दुख को भी तो थोड़ी देर में पायेंगे कि सुख हो गया । दुख का भतलब है, शायद हम अपरिचित हैं, थोड़ी देर में परिचित हो जायेंगे । सुख का भी भतलब है, शायद हम अपरिचित हैं और थोड़ी देर में परिचित हो जायेंगे और परिचय सब बदल देगा ।

मैंने सुना है एक आदमी की बाबत कि वह एक नये गांव में गया। किसी आदमी से उसने रूपये उधार माँगे। उस आदमी ने कहा, अजीब है आप भी। मैं आपको बिल्कुल नहीं जानता और आप रूपये माँगते हैं। उस आदमी ने कहा, मैं अजीब हूँ कि तुम ? मैं अपना गांव इसलिए छोड़कर आया क्योंकि वहाँ लोग कहते हैं कि हम तुम्हें भली भाति जानते हैं कैसे उधार दें। और तुम इस गांव में कहते हो, हम जानते नहीं हैं, इसलिए नहीं देंगे। जब भली भाति जान लोगे तब दोगे। लेकिन पुराने गांव में सब लोग भली भाति जानते थे और वहाँ इसलिए नहीं देते हैं। अब मैं कहा जाऊँ ? ऐसा भी कोई गांव है जहाँ मुझे रूपये उधार मिल सकते हैं ?

हम सब भी – हम जो तोड़कर देखते हैं, उससे कठिनाई शुरू होती है। नहीं, ऐसा कोई गांव नहीं है। सब गांव एक जैसे हैं। ऐसी कोई जगह नहीं है जहाँ सुख ही सुख है। ऐसी कोई जगह नहीं है जहाँ दुख ही दुख है। इसलिए स्वर्ग और नर्क सिर्फ कल्पनाएँ हैं। वह हमारी हसी कल्पना की दौड़ है कि एक जगह हमने दुख ही दुख इकट्ठा कर दिया है, एक जगह हमने सुख ही सुख इकट्ठा कर दिया है। नहीं, जिन्दगी जहा भी है वहा सुख भी है, दुख भी है। नर्क में भी विश्राम के सुख होने और स्वर्ग में भी थक जाने के दुख होगे।

बर्टन्ड रसल ने कही एक बात कही है कि मैं स्वर्ग न जाना चाहूँगा क्योंकि जहा सुख ही सुख होगा वहा सुख मालूम कैसे पड़ेगा। जहाँ कोई बीमार ही नहीं पड़ता होगा वहाँ स्वास्थ्य का पता कैसे चलेगा ? और जहा जो भी आहिए हो, मिल जाता होगा, वहा मिलने का क्या सुख होगा ? मिलने का सुख, न मिलने की लम्बाई से आता है। इसलिए तो जो चीज मिल जाती है, हम समाप्त हो जाते हैं। प्रतीक्षा में ही सब सुख होता है। नहीं मिलता, सुख ही सुख होता है। मिला कि हाथ एकदम ज्ञाली हो जाता है। हम फिर पूछने लगते हैं, अब किसके लिए दुखी हो ? अर्थात् अब हम किसके लिए सुख माँगें प्रतीक्षा में। अब हम किसकी प्रतीक्षा करे, अब हम क्या पाने की राह देखें जिसमें सुख मिले ?

रथचाहूँड नाम का एक बहुत बड़ा अरबपति मर रहा था। एक कहानी उसकी बाबत प्रचलित है, पता नहीं सच है या क्षूठ है। उसने अपने बेटे से कहा कि तूने देख ही लिया होगा मेरी जिन्दगी से कि अरबों रूपये हो, तब भी सुख नहीं मिलता। धन सुख नहीं है। सपत्ति सुख नहीं है। उसके बेटे ने कहा, देख लिया आपकी जिन्दगी से। लेकिन एक और बात भी देखी कि धन पास में हो तो

बनने मन का दुख चुना जा सकता है। उस बेटे ने कहा, घन पास हो तो 'मूँ कैल हव योर औन च्चाइस आँफ सफारिग एण्ड च्चाइस इज फ्लीजफ्लूल'। उसने कहा, वह जो चुनाव है वह बड़ा सुख का है। इतना मैं आनंदा हूँ कि सुखी तो आप न जे लेकिन जो भी दुख चाहते थे, चुन लेते थे। एक गरीब आदमी जो भी दुख चाहे नहीं चुन सकता। गरीब और अमीर के दुख में बहुत फर्क नहीं होता, चुनाव में फर्क होता है। गरीब को उसी स्त्री के साथ दुख भोगना पड़ता है जो मिल जायी। अमीर वह स्त्रिया चुन लेता है जिनके साथ दुख भोगना नहीं। लेकिन वह भी कोई कम सुख है। जिनको हम सुख-दुख कहते हैं, बहुत गहरे में जावेंगे, तो वह एक ही चीज के दो रूप है। आयद एक ही चीज की सघनताएं, 'डेस्ट्रीटीज' हैं। फिर जो दुख मेरे लिए मुझ है, वह आपके लिए सुख हो सकता है। मेरे पास अगर करोड़ रुपये हैं और पचास लाख रुपये मैं लो दू, फिर भी मेरे पास पचास लाख रुपये बचेंगे, लेकिन मैं दुखी हो जाऊँगा। आपके पास अगर पचास लाख रुपये नहीं हैं और आपको पचास लाख मिल जाय तो हम दोनों की स्थिति एक होगी। मेरे पास भी पचास होंगे लेकिन मैं रोऊँगा छाती पीटकर और आपके पास भी पचास होंगे और आप नाचेंगे छाती ठोक कर। हम दोनों की स्थिति यह होगी, पचास मेरे पास भी होंगे, लेकिन मैंने पचास लोये और पचास आपके पास भी होंगे, लेकिन आपने पचास पाये। लेकिन व्यान रहे, आप कितनी देर तक । छाती ठोककर नींवेंगे, क्योंकि जिसके पास पचास लाख हो जाते हैं उसके पास पचास लाख लोने की सम्भावना हो जाती है। और मैं कितनी देर रोऊँगा पचास लाख लो गये उनके लिए। क्योंकि जो पचास लाख लोता है वह फिर पचास लाख पैदा करने में लग जाता है। लोजने में लग जाता है। नहीं, न मेरा सुख आपका सुख बन सकता है, न मेरा दुख आपका दुख बन सकता है। सुख और दुख आकाश में छा गयी बदलिया जैसे हैं—जाते हैं, जाते हैं। लेकिन दोनों ही सत्य हैं।

दोनों ही सत्य हैं, यह भी कहना पड़ता है क्योंकि हमारी सारी भाषा दो को मानकर बल्ती है। एक ही सत्य है जो कभी सुख जैसा दिलायी पड़ता है, कभी दुख जैसा। सुख और दुख हमारे 'इन्टरप्रिटेशन' हैं। सुख और दुख हमारी व्याख्याएं हैं। हम किस चीज की क्या व्याख्या करते हैं, इसपर सबकुछ निमंर करता है। और व्याख्याएं हजार चीजों पर निमंर होती हैं। लेकिन दोनों ही एक साथ सत्य हैं अगर यह स्मरण में आ जाय तो फिर बुद्ध का सत्य अधूरा मालूम पड़ेगा। 'एमफैटिक' मालूम पड़ेगा। हालांकि कारणर होणा। बुद्ध को शिव्य मिल जावेंगे करोड़ों, कृष्ण को नहीं मिल सकेंगे। आर्बांक को अनुशासी मिल जावेंगे अरबों, कृष्ण को नहीं मिल सकेंगे। दोनों चुनाव करते हैं। एक अति का चुनाव

करते हैं और साक कह देते हैं कि चीजें ऐसी हैं। और जब हमें चीजें वैसी दिखायी पड़ती हैं तो हम कहते हैं कि बिल्कुल ठीक कहते हैं। तुम्हें भी बुद्ध हर हालत में ठीक दिखायी न पड़ेगे। तुम्हें भी उस हालत में ठीक दिखायी पड़ेगे जब तुम दुख में हो। अगर तुम दुख में नहीं हो तो बुद्ध ठीक दिखायी नहीं मालूम पड़ेगे। सुखी आदमी बुद्ध की उपेक्षा कर जायेगे। परन्तु जो अभी अपने को सुखी समझ रहा है, दुखी होते ही बुद्ध के बचन सार्थक होने शुरू हो जायेंगे उसे। इसमें बुद्ध सार्थक हो रहे हैं कि आप? लेकिन कृष्ण हमेशा बेबूझ रहेगे। आप चाहे दुख में हो तो भी बेबूझ रहेगे, आप चाहे सुख में हो तो भी बेबूझ रहेगे। कृष्ण तो जब आप दोनों में एक साथ एक जैसे राजी हो जाय तो आपकी सूझबूझ में आना शुरू होगे। जिस दिन आप कह सके, दुख है तो भी राजी और सुख है तो भी राजी। जिस दिन आप कह सके कि दुख है, यह भी आने वाला सुख है, और सुख है, यह भी आने वाला दुख है। जिस दिन आप कह सके कि हम इन दोनों को अलग नाम ही नहीं देते, अब हमने नाम देना ही बन्द कर दिया है। अब जो आ जाता है आ जाता है। अब हम व्याख्या ही नहीं करते। उस दिन आप कहां होंगे? उम दिन आप आनन्द में होंगे। उस दिन आप सुख में भी नहीं होंगे, दुख में भी नहीं होंगे। आपने व्याख्याएं बन्द कर दी। जिस आदमी ने व्याख्याएं बन्द कर दी घटनाओं की, वह आदमी आनन्द में प्रविष्ट हो जाता है। और जो आनन्द में है वह कृष्ण को समझ सकेगा। वही समझ सकेगा।

आनन्द का मतलब यह नहीं है कि अब दुख नहीं आयेंगे। आनन्द का मतलब यह है कि अब आप ऐसी व्याख्या नहीं करेंगे जो उन्हें दुख बना दे। आनन्द का यह मतलब नहीं है कि अब सुख ही सुख आये चले जायेंगे। नहीं, आनन्द का इतना ही मतलब है कि अब आप वे व्याख्याएं छोड़ देंगे जो उन्हें सुख बनाती थीं या सुख की सतत माग करवाती थीं। अब चीजें जैसी होंगी, होंगी। धूप धूप होंगी, छाया छाया होंगी। कभी धूप होंगी, कभी छाया होंगी। और अब आप उनसे प्रभावित होना बन्द हो जायेंगे, क्योंकि अब आप जानते हैं कि चीजें आती हैं, चीजें चली जाती हैं। और आप पर सब आता है और जाता है फिर भी आप आप ही रह जाते हैं। और यह रह जाना है, यह जो रिमेनिंग, यह जो पीछे आपकी चेतना है यही कृष्ण चेतना है। जिसको 'कृष्ण कासेसनेस' कहें, वह यह घड़ी है जब सुख और दुख आते हैं और जाते हैं और आप देखते रहते हैं। आप कहते हैं, सुख आया, सुख गया। और यह भी दूसरों की व्याख्या है, मेरी नहीं। यह भी कि दूसरे इसको सुख कहते हैं और दूसरे इसको दुख कहते हैं जो आया। यह भी मेरी व्याख्या नहीं है। ऐसा हो रहा है, मूँहसे गुजर

रहा है। तब आप आनन्दित होगे। कृष्ण के लिए जो सार्थक है जीवन का शब्द, वह आनन्द है। दुख और सुख दोनों सार्थक नहीं हैं। वह आनन्द को ही बाटकर पैदा किये गये हैं। जिस आनन्द को आप स्वीकार करते हैं उसे सुख कहते हैं और जिस आनन्द को आप स्वीकार नहीं करते उसको दुख कहते हैं। वह आनन्द को दो हिस्सों में बाट कर पैदा की गयी व्याख्या है। इसलिए जब तक आप उस आनन्द को स्वीकार करते हैं वह सुख है और जब नहीं करते वह दुख हो जाता है। आनन्द सत्य है, पूर्ण सत्य है। इसलिए आनन्द से उल्टा कोई शब्द नहीं है। सुख का उल्टा दुख है। प्रेम का उल्टा धृणा है। बन्धन का उल्टा मुक्ति है। आनन्द का कोई उल्टा शब्द नहीं है। आनन्द से उल्टी कोई अवस्था ही नहीं है। आनन्द से उल्टी भी अगर कोई अवस्था है तो यह सुख दुख की ही कह सकते हैं, और कोई उल्टी अवस्था नहीं है। इसलिए स्वर्ग के खिलाफ नक्क है लेकिन मोक्ष के खिलाफ कुछ भी नहीं है। क्योंकि मोक्ष आनन्द की अवस्था है। उसके खिलाफ कोई जगह बनाने का उपाय नहीं है। मोक्ष का मतलब ही यह है, कि अब सुख दुख दोनों के लिए एक-सा राजीपन आ गया, एक-सी स्वीकृति का भाव आ गया।

**प्रश्न** . कृष्ण को पूर्णवितार कहने के क्या कारण है? कुछ और नये कारण बतायें और चौसठ कलाओं के सन्दर्भ में सविस्तार प्रकाश डालें।

उत्तर पूर्ण कहने का और कोई कारण नहीं है, जो व्यक्ति शून्य हो जाता है वह पूर्ण हो जाता है। शून्यता पूर्ण की भूमिका है। अगर ठीक से कहे तो शून्य ही एकमात्र पूर्ण है। इसलिए आप आधा शून्य नहीं स्त्रीच सकते, जामेट्री में भी नहीं स्त्रीच सकते। आप अगर कहे कि मैंने आधा शून्य स्त्रीचा तो यह शून्य नहीं रह जायगा। आधा शून्य होता ही नहीं। शून्य सदा पूर्ण ही होता है। पूरा ही होता है, अधूरे का कोई मतलब ही नहीं होता। शून्य के दो हिस्से कैसे कहिएगा? और जिसके दो हिस्से हो जाय उसको शून्य कैसे कहिएगा? शून्य कटता नहीं, बटता नहीं, 'इन्डीवीजिबल' है। विभाजन नहीं होता। जहा से विभाजन शुरू होता है वहा से मध्या शुरू हो जाती है। इसलिए शून्य के बाद हमें एक से शुरू करना पड़ता है। एक, दो, तीन... यह फिर सत्य की दुनिया है। सब सत्याएं शून्य से निकलती और शून्य में खो जाती हैं। शून्य एकमात्र पूर्ण है। शून्य कौन हो सकता है? वही जो पूर्ण हो सकता है। कृष्ण को पूर्ण कहने का अर्थ है। क्योंकि आदमी बिल्कुल शून्य है। शून्य वह हो सकता है जिसका कोई चुनाव नहीं, जिसका चुनाव है वह तो कुछ हो जया। उसने 'समबड़ीनेस' स्वीकार कर ली। उसने कहा कि मैं कृ४

चोर-वह कुछ हो गया, शून्य कट गया। उसने कहा, मैं सात्रु! वह कट गया। शून्य कट गया। यह आदमी कुछ हो गया। इसने कुछ होने को स्वीकार कर लिया, 'समबड़ीनेस' आ गयी, 'नियगनेस' लो गयी। अगर कृष्ण से जाकर कोई पूछे कि तुम कौन हो? तो कृष्ण कोई सार्थक उत्तर नहीं दे सकते, चुप ही रह सकते हैं। कोई भी उत्तर देंगे तो चुनाव शुरू हो जायेगा। वह कुछ हो जायेंगे। असल में जिसको सब कुछ होना है उसे ना कुछ होने की तैयारी चाहिए। जेन फकीरों के बीच एक 'कोड' है। वह कहते हैं, "वन हू हेज टु बी एवरीब्हेयर, मस्ट नाट बी ऐनीब्हेयर" -जिसे सब कही होना हो उसे कही नहीं होना चाहिए या न कही होना चाहिए। जो सब होना चाहता है, वह कुछ नहीं हो सकता। कैसे कुछ होगा? कुछ और सब का क्या मेल होगा? चुनाव नहीं, च्वाइसलैसेनेस शून्यता ला देती है। फिर आप जो हैं, लेकिन कह नहीं सकते कौन हैं, क्या है? इसलिए अर्जुन उससे पूछता है कि आप बतलायें आप कौन हैं? तो उत्तर नहीं देते, अपने को ही बता देते हैं। उसमें भी मबह है। पूर्ण का तो बहुत गहरा कारण उनका शून्य व्यक्तित्व है। जो कुछ है, वह अडचन में पड़ेगा। क्योंकि जिन्दगी ऐसी जगह उसको ले जायेगी जहा उसका कुछ होना बन्धन हो जायेगा। अगर मैंने कुछ भी होने का तय किया तो जिन्दगी उन घडियों को भी लायेगी जब मेरा कुछ होना ही मेरे लिए मुश्किल पड़ जायगी।

कबीर के घर बहुत लोग रुकते थे और कबीर सबको कहते, खाना खा जाओ। एक दिन बड़ी मुश्किल हो गयी। कबीर के बेटे ने कहा, कब तक यह चलेगा। हम उधारी से दबे जाते हैं। तो कबीर ने कहा, उधारी लेते रहो। उसके बेटे ने कहा, चुकायेगा कौन? कबीर ने कहा, जो देता है वही चुका भी लेगा, हम क्यों फिकर करे। लेकिन बेटे की समझ में न आया। वह गणित और हिसाब किताब का आदमी था। उसने कहा, बातों से कुछ नहीं चलेगा। यह कोई अद्यात्म नहीं है। यहा जिनसे हम लेते हैं वह मार्गते हैं। और न देंगे तो चोर हो जायेंगे। बैर्डमान सिद्ध होंगे। कबीर ने कहा, मिद्द हो जाय। इसमें हर्ज क्या है? और अगर लोगों ने हमें बैर्डमान कहा, तो हमारा क्या बिगड़ जायेगा? लेकिन बेटे ने कहा, नहीं, यह हमारी बदाश्त के बाहर है। आप कृपा करके इतने उपद्रव में न डालकर लोगों से 'खाना खाये यहा' आग्रह करना बन्द कर दें। कबीर ने कहा, होगा तो हो जायेगा। लेकिन दूसरे दिन फिर लोग आये और कबीर ने कहा, खाना खाकर जाना। लोगों ने खाना खाया और उसके लड़के ने कहा, वह नहीं हुआ। कबीर ने कहा, मैं कोई बचन नहीं दे सकता क्योंकि मैं कोई बन्धन में नहीं पड़ सकता। हो जायेगा तो हो जायेगा। किसी दिन नहीं कहूँगा तो नहीं कहूँगा और जब तक होता है, कहना निकलता है तो कहता हूँ। उस लड़के ने कहा, फिर अब ज्यादा नहीं चल

सकेगी वात । अब तो भुजे चोरी ही करनी पड़ेगी । उधार भी देमे को गांव में कोई तैयार नहीं है । तो कबीर ने कहा, पागल, यह पहले ही क्यों न सोचा, उधारी की आकृष्ट से बचने के लिए । लेकिन बेटा बड़ी मुश्किल में पड़ गया । क्योंकि कबीर साधु, सदा अच्छी वात कहता रहा । यह हो क्या गया ? बेटे ने कहा, परीक्षा ही कर ले, कहीं मह मजाक तो नहीं है । तो रात उसने कबीर को उठाया कि मैं चोरी को जाता हूँ, आप भी साथ चलें ? कबीर ने कहा, जब उठा ही लिया है तो चला चलता हूँ । बेटे ने सोचा, क्या सच में ही ये चोरी को 'राजी हो जायेंगे ? लेकिन बेटा भी कबीर का था । उसने सोचा इतनी जल्दी लौट जाना ठीक नहीं, हो सकता है मजाक ही हो । वह गया । उसने जाकर दीवाल तोड़नी शुरू की, सेष लगायी । कबीर किनारे खड़े थे । उसने देखा कि वह अभी भी कुछ नहीं कहते कि अब रुक जाओ । लेकिन वह डर रहा है । कबीर उसे कहते हैं, डरते क्यों हो ? क्या मजे की वात है, वह कहता है, चोरी कर रहे हैं और डरे न ? कबीर ने कहा डरते हो, इसलिए अपने को चोर समझ रहे हो, नहीं तो और कारण ही क्या चोर समझने का । डरो भत, और ठीक से खुदाई करो नहीं तो घर के लोगों की नाहक नीद खराब हो जायेगी । बेटे ने किसी तरह खुदाई की, सोचा कि शायद मजाक यहाँ खत्म हो जायेगा । उसने कहा, भीतर चले । कबीर ने कहा, चलो । भीतर गये । कोई छन्द तो चुराना न था, भोजन की ही तकलीफ थी । तो एक गेहू का बोरा खींचकर बाहर निकाला । जब बोरा बाहर निकल आया तो कबीर ने कहा, अब तो सुबह भी होने के करीब हो गयी, नीद में कोई बाधा भी न पड़ेगी । घर के लोगों को जगाकर कह आओ कि हम गेहू का एक बोरा चुराये लिए जाते हैं । तो उसके बेटे ने कहा, चोरी करने आये हैं कि कोई साहूकारी करने आये हैं ? कबीर ने कहा, लेकिन घर के लोगों को परेशानी होगी कि कहा गया, क्या हुआ, ढूँढ़ने की मुसीबत होगी ।

कबीर की इस घटना को कबीर को मानने वाला छाट ही जाता है । क्योंकि यह बेबूझ हो गयी वात । कबीर साधु है कि कबीर चोर है, तथ करना मुश्किल है । चोर होने में कोई कमी नहीं, चोरी की गयी है । साधु होने में जरा शक नहीं क्योंकि कहता है, डरता क्यों है, क्योंकि कहता है, जगा कर घर के लोगों को खबर कर दे, उनको परेशानी न हो । वह लोगें न कि कौन ले गया । नाहक मुसीबत में न पड़े । लड़का कहता है कि घर में खबर करना जाकर तो वह चोर समझेंगे । कबीर कहता है, चोरी तो की है तो चोर है । इसमें वह समझेंगे तो गलत तो न समझेंगे, ठीक ही समझेंगे । वह लड़का कहता है कि गांव भर में खबर फैल जायेगी कि तुम चोर हो ॥ कौन आयेगा सुम्हारे पास ? कबीर ने कहा, तेरी मुसीबत मिटेगी, न कोई आयेगा,

न मैं खाने के लिए कहूँगा । मगर उस लड़के की समझ में नहीं आता, वह सारी बात उल्टी होती चली जाती है ।

कृष्ण के पूरे होने का दूसरा अर्थ है कि कृष्ण के जीवन में वह सब कुछ है जो एक ही जीवन में होना मुश्किल है । असम्भव लगता है । सब कुछ है – विरोधी, ठीक विरोधी । कृष्ण से ज्यादा असगत, ‘इनकसिस्टेंट’ व्यक्तित्व नहीं है । जीसस के व्यक्तित्व में एक सगति है, महावीर के व्यक्तित्व में एक सगति है, बुद्ध के व्यक्तित्व में एक तर्क है, सगतिपूर्ण व्यवस्था है । एक ‘सिस्टम’ है, बुद्ध का एक हिस्सा समझ लो तो पूरे बुद्ध समझ में आ जाते हैं । रामकृष्ण ने कहा कि एक साधु समझ लो, सब साधु समझ में आते हैं । यह कृष्ण को बाबत न लगेगा । रामकृष्ण ने कहा कि समुद्र की एक बूद समझ लो तो पूरा समुद्र समझ में आ जाता है, लेकिन कृष्ण की बाबत न लगेगा । समुद्र एकरस है । एक बूद चखो तो खारी है, दूसरी बूद चखो तो खारी है । सब नमक ही है । लेकिन कृष्ण में शक्कर भी मिल सकती है, तो पक्का नहीं कि पडोस की बूद में शक्कर हो ही । कृष्ण का व्यक्तित्व जो है भव रस है । ठीक ऐसी ही उनके व्यक्तित्व में मारी कलाए हैं । कृष्ण कलाकार नहीं है, क्योंकि कलाकार में एक कला होती है । कृष्ण कला ही है । तब सब पूरा हो जाता है । और इसलिए, जिन्होंने उनको देखा, जाना, पहचाना, उनको सब नरह की अतिशयोक्ति करनी पड़ी । हम सबकी बाबत ‘एकजन्मरेशन’ से बच सकते हैं या एक ही दिशा में ‘एकजन्मरेट’ कर सकते हैं । कृष्ण के साथ कठिनाई खड़ी हो जाती है क्योंकि हमारे पास जो अति आसिरी शब्द है वह हमें उपयोग करने पड़ेगा । वे ठण्डे और गरम एक साथ हैं । ऐसे पानी भी ठण्डा और गरम एक साथ ही होता है । हमारी व्याख्या से कठिनाई खड़ी होती है । हम ठण्डे और गर्म को अलग अलग कर देते हैं । हम बाट देते हैं दो हिस्से में । पानी का गरम और ठण्डा होना आपके प्रति रिलेटिव है, आपके प्रति सापेक्ष है । अगर आप एक हाथ मिगड़ी पर रखकर गरम कर ले और एक बर्फ रखकर ठण्डा कर ले और फिर एक ही बाल्टी में डाल लें तो आप उसी मुश्किल में पड़ जायेंगे जो कृष्ण के साथ खड़ी होती है । तब पानी ठण्डा और गरम दोनों मालूम पड़ेगा । एक हाथ कहेगा ठण्डा है, एक हाथ कहेगा गरम है । हाथ असल में जो भी खबर देगा है वह अपनी सापेक्षता में, अपनी ‘रिलेटीविटी’ में देता है । अगर आप कृष्ण को प्रेम करने वाली राधा से पूछेंगे तो वह कुछ और खबर देगी कि कृष्ण कौन है । वह इसे पूर्ण भगवान शायद न भी कहे या शायद कहे, वह उस पर निर्भर होगा । कृष्ण पर निर्भर नहीं होगा । राधा पर ही निर्भर होगा । वह ‘रिलेटिव’ है । अगर राधा ने किसी और स्त्री के साथ कृष्ण को नाचते देख लिया तो भगवान कहना

उसे बहुत मुश्किल पड़ेगा। अब यह पानी बिल्कुल ठण्डा मालूम पड़ेगा। पानी भी न मालूम पड़े, यह भी हो सकता है। लेकिन कृष्ण अगर राधा के साथ नाचे हैं तो वह इतना पूरा नाचते हैं। उसके साथ भी, कि उसे लगता है पूरे ही उसके हैं। तब वह उन्हे भगवान भी कह सकती है। सभी राधाएं, जब उनके साथ पूरा कोई नाचता है तो उसे भगवान कह देती हैं। लेकिन क्षण भर में वह आदमी शैतान भी हो सकता है। लेकिन ये सारे वक्तव्य सापेक्ष वक्तव्य हैं। अर्जुन से पूछियेगा, पाण्डवों से पूछियेगा तो कृष्ण भगवान मालूम होगे। कौरवों से पूछियेगा तो यह आदमी भगवान कैसे मालूम होगा? इस आदमी से ज्यादा शैतान और कौन होगा! यही तो कौरवों की पराय बनता है, यही तो उनकी मूल्य बनता है।

कृष्ण कौन है, इसके हजार वक्तव्य हो सकते हैं। लेकिन बुद्ध कौन हैं, इसकी बाबत वक्तव्य हजार नहीं होगे। क्योंकि बुद्ध जो है, वह सब सापेक्ष सबधों से अपने को अलग कर लेते हैं। इसलिए वह एक रस है। उन्हे कहीं से भी चखो, वह खारे है। इसलिए बुद्ध की बाबत बहुत विवाद सड़ा नहीं होता। बुद्ध एकरस है। उन्हे पहचान सकते हैं कि वह ऐसे हैं। उनकी बाबत हमारे 'स्टेटमेंट' का, वक्तव्य का अर्थ हो सकता है। कृष्ण हमारे 'स्टेटमेंट' को धोखा दे जायेंगे। और चूंकि उन्होंने सभी वक्तव्यों को धोखा दिया इसलिए मैं कहता हूँ कि वह पूर्ण है। कोई वक्तव्य उनको पूरा नहीं घेर पाता, कुछ बाकी रह जाता है और उल्टे वक्तव्य से घेरना पड़ता है। और सभी वक्तव्य मिलकर ही उनको घेर पाते हैं तो विरोधी हो जाते हैं।

कृष्ण की पूर्णता का अर्थ सिर्फ इतना ही है कि कृष्ण के पास अपने जैसा कोई व्यक्तित्व नहीं है। वह खाली अस्तित्व है। 'एकजीस्टेंस' है, अस्तित्व है—बस, खाली। कहे कि दर्पण की तरह है। जो उसके सामने आ जाता है वही उसमें दिखायी पड़ता है। 'ही जस्ट मिरस'। जब जो दिखायी पड़ जाता है वही दिखायी पड़ता है। जब आपको अपनी शक्ति उसमें दिखायी पड़ती है तो आप सोचते हैं, मेरे जैसे हैं। आप हटे नहीं कि वह शक्ति गयी, और कृष्ण फिर खाली है। जो भी सामने आता है वह अपने जैसा बता देता है। ये सभी खबर देते हैं कि कृष्ण मेरे जैसे हैं। गीता में जिसने क्षाका उसने कह दिया कि गीता मेरे जैसी है, इसलिए हजार टीकाए हो गयी। बुद्ध के बचनों की इतनी टीकाए नहीं हैं। उसका कारण है। जीसस के बचनों की इतनी टीकाए नहीं हैं। दस पाच टीकाए हैं, क्योंकि उनमें फासले बहुत कम हैं। असल में हजार अर्थ कृष्ण पर ही थोपे जा सकते हैं। बुद्ध पर थोपे नहीं जा सकते। बुद्ध जो कहते हैं, 'डेफिनेट' है। सुनि-

स्वित है। बक्तव्य पूरा है, साफ है, सुधरा है, तकन्युक्त है। वह जो कहते हैं उसमें थोड़े बहुत फर्क हो सकते हैं हमारी बुद्धि के अनुसार, लेकिन बहुत फर्क नहीं हो सकते। ऐसे ही महावीर पर अगर कोई झगड़ा हुआ है तो केवल दो पथ बन सके। उनमें भी बहुत ज्यादा झगड़ा नहीं है। बहुत छोटी बातों पर झगड़ा है कि महावीर नम्म थे या नहीं थे। महावीर के बक्तव्य से झगड़ा नहीं है। श्वेताम्बरों द्विगम्बरों में महावीर के बक्तव्य पर कोई झगड़ा नहीं है। महावीर का बक्तव्य साफ है। महावीर पर पथ नहीं खड़े किये जा सकते। कृष्ण पर भी पथ खड़े नहीं किये जा सकते। लेकिन कारण बिल्कुल उल्टा है। कृष्ण पर पथ खड़े करो तो लाख खड़े हो सकते हैं और फिर भी कृष्ण पीछे बाकी बच जायेंगे कि नये पथ बनाना चाहे कोई तो नयी भूमि उपलब्ध हो जायेगी। इसलिए कृष्ण पर पथ तो खड़े नहीं हुए, व्याख्याएं खड़ी हुईं। बहुत अनूठी घटना घटी कृष्ण पर। जीसस पर पथ खड़े हो गये। व्याख्याएं हो गयी, दो या तीन। दो या तीन पथ हो गये। कृष्ण पर पथ खड़ा नहीं हो मका इस अर्थ में, व्याख्याएं खड़ी हुईं। गीता की हजार व्याख्याएं हैं। और एक व्याख्या दूसरी व्याख्या की बिल्कुल दुश्मन है। रामानुज जो व्याख्या करेंगे तो शकर को कह मकने हैं कि तुम बिल्कुल ही मूढ़ हो। तुम कुछ जानते ही नहीं। तुम्हे कृष्ण का कुछ पता ही नहीं है। शकर जो व्याख्या करेंगे उसमें रामानुज को कह सकेंगे कि बिल्कुल नासमझ हो, तुम्हे कुछ पता ही नहीं। और दोनों सही हो सकते हैं। कोई कठिनाई नहीं है। कारण सिर्फ इतना है कि कृष्ण का व्यक्तित्व सुनिश्चित नहीं है, उमकी रूप रेखा नहीं है, निराकार है। इस अर्थ में भी पूर्ण है, क्योंकि सिर्फ पूर्ण ही निराकार हो सकता है।

और भी व्याख्याएं हैं — इसलिए मैं कहता हूँ कि गीता की कोई भी व्याख्या कृष्ण की व्याख्या नहीं है। जिन्होंने व्याख्या की हैं वे उनकी ही व्याख्याएं हैं। शकर जो जानते हैं उसकी व्याख्या गीता में खोज लेते हैं और मिल जाती हैं। शकर खोज लेते हैं कि जगत माया है। रामानुज खोज लेते हैं कि भक्ति-माया है। तिलक खोज लेते हैं कि कर्म-दार है। गाढ़ी गीता में भी खोज लेते हैं कि अहिंसा सत्य है। इसमें कोई अडचन नहीं आती किसी को भी। कृष्ण किसी को बाधा नहीं देते। सबका स्वागत है। दर्पण की तरह है, अपनी भाकल देखो, हट जाओ। इस प्रकार बहुत अर्थों में वह पूर्ण है। और पूर्ण बहुत अर्थों में ही होंगे क्योंकि अगर एकाथ्र अर्थों में ही पूर्ण है तो अपूर्ण हो जायेंगे। क्योंकि एक अर्थ में जो पूर्ण है, उस अर्थ में तो महावीर भी पूर्ण हैं। एक अर्थ में जीसस भी पूर्ण हैं। एक व्यक्तित्व की पूर्णता तो जीसस है ही। यानी, शायद उस तरह के व्यक्तित्व में कुछ बचा नहीं है जो कि

जीसस में नहीं है। जैसे गुलाब पूर्ण है। चमेली की तरह नहीं, गुलाब की तरह। चमेली की तरह गुलाब कैसे पूर्ण हो सकता है? चमेली की तरह चमेली ही पूर्ण होती है। लेकिन चमेली गुलाब की तरह पूर्ण नहीं हो सकती।

बुद्ध पूर्ण है, महावीर पूर्ण है। क्राइस्ट पूर्ण है, बहुत और अर्थों में, बहुत अपूर्ण अर्थों में। एक व्यक्तित्व की दिशा को उन्होंने पूरा छू डाला है। उस दिशा में कुछ वाकी नहीं छोड़ा। लेकिन कृष्ण की पूर्णता बहुत भिन्न है। वह 'वन डाय-मेशनल' नहीं है, एक आयामी नहीं है। 'मल्टी डायमेशनल' है। वह वहु आयामी है। वह सभी दिशाओं में प्रवेश कर जाता है। वह चोर है तो पूरे चोर है और साथ है तो पूरे साथ है। याद करते हैं तो पूरा याद करते हैं, भूलते हैं तो पूरा ही भूल जाते हैं। इसलिए जब छोड़कर चले गये एक जगह को तो उम जगह को भूल गये है। उस जगह के लोग परेशान हैं, रो रहे हैं, चिल्ला रहे हैं और कृष्ण को बहुत कठोर ठहरा रहे हैं। बाकी वह बेचारा कठोर जरा भी नहीं है या पूर्ण है कठोरता में। जो पूरा याद करता है वह आदमी पूरा भूल जाता है। जो आधा आधा याद करता है, वह आधा आधा याद रखता है। दर्पण आपको पूरा झलका देता है, मामला सत्त्व हो गया। बात निपट गयी, आप चले गये दर्पण खाली हो गया। वह जहा पहुच गये हैं वही पहुच गये हैं। जिसको प्रेम करना पड़ रहा है उसको वह प्रेम कर रहे हैं। जिससे लड़ना पड़ रहा है उससे लड़ रहे हैं। जो उनके सामने है वह है। यह 'मल्टी डायमेशनल' है। तो पूर्णता कृष्ण की वहु आयामी है। जब एक आयाम में पूर्ण होना बहुत निटिन है, तो वहु आयाम में पूर्ण होना, कठिन कहना भी उचित नहीं, अमर्भव है। लेकिन असभव भी घटित होता है और तभी चमत्कार हो जाता है, जब अमर्भव घटित होता है तो 'मिरेकल' हो जाता है। कृष्ण का व्यक्तित्व बिल्कुल चमत्कार है। वह बिल्कुल 'मिरेकल' है।

हम सब तरह के व्यक्तियों की तुलना खोज सकते हैं। महावीर और बुद्ध के व्यक्तित्व बड़े समिक्षिकट हैं। बहुत थोड़े फर्क हैं। जो है वे भी बाह्य व्यक्तित्व के फर्क हैं। भीतरी अन्तरास्मा बड़ी एक जैसी है। लेकिन कृष्ण की तुलना हम खोजने जाय तो मुश्किल में पड़ जायेंगे। इस पृथ्वी पर अब तक नहीं हो सकी। स्वभावत इस तरह के असभव व्यक्तित्व को कुछ फायदे होंगे, कुछ नुकसान होंगे। जो व्यक्ति सभी आयामों में पूर्ण होगा वह किसी भी एक आयाम के पूर्ण व्यक्तित्व के सामने उस आयाम में फीका पड़ जायेगा। जैसे महावीर की सारी शक्ति एक आयाम में लगती है।

अबर उस आयाम में कृष्ण महावीर के साथ लड़े होंगे तो फीके पड़ जायेंगे।

क्योंकि उनकी शक्ति बहुआयामी है। वह सबमें फैली हुई है। इसलिए अगर एक एक के सामने हम कृष्ण को खड़ा करे तो कृष्ण जीत न पायेगे। क्राइस्ट के साथ हार जायेगे अगर उसी आयाम में खड़ा कर दें। लेकिन अगर हम समग्र व्यक्तित्व को सोचे तो बात ही और हो जायेगी। तब महावीर, बुद्ध और क्राइस्ट जीत नहीं सकते। बहुआयामी व्यक्तित्व – यानी एक ऐसे फूल की हम कल्पना करे जो ज़ुही भी हो जाता है कभी, जो कमल भी हो जाता है, गुलाब भी हो जाता है, कभी धास का फूल भी हो जाता है और आकाश कुसुम भी हो जाता है। सब हो जाता है। जब भी हम जाते हैं तब पाते हैं कि कुछ और हो गया। कृष्ण के व्यक्तित्व में एक विस्तार है, एक 'एक्सटेशन' है। फैलाव है, अनन्तीन फैलाव है। इसलिए कृष्ण की पूर्णता का अर्थ अनन्तता है। महावीर की पूर्णता का अर्थ एक दिशा को पूरा उपलब्ध कर लेना है। उस दिशा में उन्होंने कुछ भी नहीं छोड़ा। अब कोई साधु कुछ पा नहीं सकेगा उस दिशा में भी महावीर ने पा लिया। पर जो व्यक्ति एक डायमेशन में पूर्ण होया, स्वभावत दूसरे डायमेशन में बिल्कुल अपारचित हो जायेगा। दूसरे आयाम में उसकी कोई गति नहीं होगी। कृष्ण कुशलता से चोरी कर सकते हैं। महावीर एकदम बेकाम चोर साबित होगे। पकड़ ही जाने-वाले हैं। कृष्ण कुशलता से युद्ध भी लड़ सकते हैं। बुद्ध न लड़ सकेगे। जीसम की हम कल्पना ही नहीं कर सकते कि वे बासुरी बजा सकते हैं, लेकिन कृष्ण शूली पर चढ़ सकते हैं। कृष्ण को शूली पर चढ़ने में दिक्कत न आयेगी। बिल्कुल मजे से चढ़ जायेंगे। इसकी कल्पना करने में कोई आन्तरिक कठिनाई न पड़ेगी कि कृष्ण को शूली लग जाय लेकिन क्राइस्ट बासुरी बजाये, यह बड़ा मुश्किल है – क्योंकि क्राइस्ट का व्यक्तित्व ऐसा सोचा ही नहीं जा सकता। इसाई तो कहते हैं, 'जीसस नेवर लाफ्ड' जीसस कभी हँसे ही नहीं। हँसे ही नहीं तो बासुरी बजाना और पैर पर पैर रखकर मोर मुकुट बाघकर झड़े हो जाना हो तो जीसस कहेगे इससे शूली बेहतर। शूली बिल्कुल 'ऐट ईज'। शूली पर लटक कर वह जितने खुश थे मैं सोचता हूँ जिन्दगी में कभी नहीं थे। शूली पर लटककर वह कह सके, इन सबको माफ कर देना। शूली पर लटक कर वह बड़ी शार्ति से गुजर सके। यह आयाम उनका आयाम है। इस आयाम में उन्हे कोई अड़चन न आयी।

परन्तु कृष्ण का मामला बहुत मुश्किल है। कृष्ण के मामले में 'प्रिडिक्शन' नहीं हो सकता कि क्या होगा? कुछ भी नहीं कहा जा सकता कि आदमी शूली पर मरेगा, कि आदमी फूल-हारो में मरेगा, कि यह आदमी बड़ी भीड़ में मरेगा। क्या होगा इसका? और मरे भी तो वे एक ऐसी जगह – चुपचाप एक

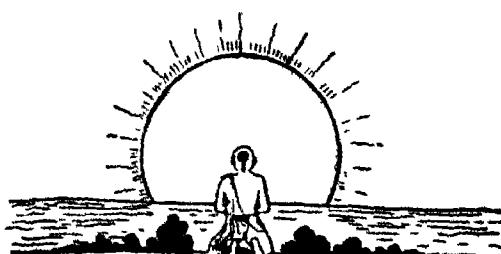
वृक्ष के नीचे लेटे हुए। कुछ बात ही न थी मरने की। किसी ने समझा कि हरिण दिखायी पड़ रहा है उनका पैर। तीर मार दिया और वह मर गये। इतनी 'एक्सीडेंटल' मौत किसी की भी नहीं है। सबकी मौत में भी एक निश्चय है, कृष्ण की मौत बिल्कुल अनिश्चित है। ऐसे मरते हैं वह बेकाम ढग से कि जिसकी कोई युटिलिटी नहीं मालूम होती, कोई उपयोगिता नहीं मालूम होती। जीसस की मौत काम आयी। सच तो यह है कि अगर जीसस को शूली न लगती तो दुनिया में 'क्रिश्चयनिटी' होती ही नहीं, जो जीसस की वजह से नहीं है, क्रास की वजह से है। इस आदमी को कौन जानता था? शूली महत्वपूर्ण बनी, इसलिए 'क्रास' प्रतीक बन गया ईसाइयत का। वही है घटना जिसने ईसाइयत को जन्म दिया। आज जीसस दुनिया में है तो उसका मतलब है, वह 'कूसीफिकेशन' की वजह से है। लेकिन कृष्ण की मौत तो बड़ी बेमानी है। बड़ी अजीब सी है। यह भी कोई मरने का ढग है? ऐसे भी कोई आदमी मरते हैं? आप लेटे हैं वृक्ष के नीचे, कि कोई तीर मार दे। बिना कुछ स्वबर दिये, बिना कुछ बात हुए – अकारण। कोई ऐतिहासिक घटना नहीं बनती कृष्ण की मौत से। बस ऐसे ही आते हैं और चले जाते हैं, जैसे फूल खिलते हैं और मुर्सा जाते हैं। कब गिर जाते हैं, किस साल, कुछ पता नहीं चलता। कौन सी हवा या झोका गिरा जाता है, उस पर कोई सील नहीं होती। बहुआयामी होने के कारण कुछ कहा नहीं जा सकता कि क्या हो जायेगा? कृष्ण के व्यक्तित्व में कौन से फूल खिलेगे? इसको इस तरह सोचे कि अगर महावीर और पचास साल जिन्दा रहे तो हम कह सकते हैं कि जिन्दगी कैसी होगी। अगर जीसस और पचास साल जिन्दा रहे तो क्या होने वाला है, हम कह सकते हैं। 'प्रिडिक्टेबल' है। क्योंतो की पकड़ के भीतर है। वे जो करेंगे वह पिछले वर्षों की पुनरुक्ति ही होनेवाली है। लेकिन कृष्ण को अगर दस दिन भी मिल जाय, तो इन दस दिनों में क्या क्या होगा इस दुनिया में, बिल्कुल नहीं कहा जा सकता। क्योंकि पिछली कोई पुनरुक्ति होनेवाली नहीं है। यह आदमी किसी हिसाब से जी ही नहीं रहा है। गैर हिसाब से जी रहा है। जो हो जायेगा हो जायेगा। इन जर्दी में भी एक 'इनफिनीटी' है। कहीं चीजें पूरी होती मालूम नहीं पड़ती।

पूर्ण तिरं वही है, जो पूरा होता मालूम नहीं पड़ता। जो पूरा हो जाता है वह किसी अर्थ में समाप्त हो जाता है। अब यह बहुत उल्टा लगेगा, क्योंकि हमारा आमतौर से स्थाल यह होता है कि 'पूर्ण' का मतलब यह है कि जो समाप्त हो जाता है। जिसके आगे कुछ बचता नहीं। अगर आपका ऐसा अर्थ है पूर्ण का तो अपको 'वन डायमेशनल परफेक्शन' का स्थाल है। आपको एक आयाम में पूर्णता का स्थाल है। कृष्ण की पूर्णता ऐसी नहीं है जो समाप्त हो जाती है। कृष्ण की पूर्णता

का मतलब यह है कि कितना ही यह आदमी जिये और चले और रहे, यह समाप्त नहीं होने वाला है। यह सदा शेष रह जायेगा। इसलिए उपनिषदों ने जो पूर्ण की व्याख्या की है वही ठीक है। उपनिषद कहते हैं, पूर्ण से पूर्ण को भी निकाल लो तो भी ऐसे पूर्ण शेष रह जाता है। अगर हम कृष्ण से हजार कृष्णों को निकालते चले जाय तो भी वह आदमी ऐसे शेष रह जायेगा और फिर कृष्णों को निकाल सकता है। उसमें कोई कठिनाई नहीं पड़ेगी। उसे कोई अड़चन न आयेगी क्योंकि वह कुछ भी हो सकता है। महाबीर को हम आज पैदा नहीं कर सकते। आज पैदा करना मुश्किल हो जायेगा। क्योंकि महाबीर एक सिचुएशन, एक विशेष परिस्थिति में, एक आयाम में पूर्ण हुए। वह आयाम उसी स्थिति में पूर्ण हो सकता है। जीसस को आज पैदा नहीं किया जा सकता। अगर आज जीसस को हम पैदा करे तो कोई शूली ही नहीं लगायेगा, पहली बात। वह कितना ही शोर-गुल मचाये, लोग कहेंगे, 'निगलेक्ट'। क्योंकि पहले ही गलती की शूली लगाकर। आज एक अरब आदमी ईसाई हो गये। अब आज कोई यहूदी शूली नहीं लगायेगा जीसस को। वह कहेगा झकझट में नहीं पड़ो इस आदमी की। इसको जो कहना है कहने दो, जो करना है करने दो। क्योंकि जिन्दा रहकर वे बहुत थोड़े लोगों को उत्सुक कर पाये। मरकर उन्होंने उत्सुकता बहुत पैदा की। जीसम के वक्त में जिस दिन एक लाख आदमी जीसस को शूली लगाने इकट्ठे हुए, तो सिर्फ आठ दस आदमी ऐसे थे जो उन को प्रेम करने वाले थे एक लाख आदमियों में। वह आठ दम भी इतने हिम्मतवर नहीं थे कि अगर उनसे कोई पूछता कि तुम जीसस के साथी हो तो वे कहते कि नहीं हम जानते ही नहीं जीसस को। शूली लग जाने के बाद जिसने उनकी लाश नीचे उतारी वह कोई सज्जन या अच्छे घर की महिला नहीं थी। क्योंकि अच्छे घर तक जीसम का प्रभाव पहुंचना मुश्किल था। वह एक बेश्या थी। वह हिम्मत जुटा सकी कि अब मेरा और क्या कोई बिगड़ेगा। उसने जीसस की लाश को उतारा। आज जीसस को 'निगलेक्ट' किया जा सकता है क्योंकि उनके वक्तव्य बड़े 'इनोसेट' थे और अगर 'निगलेक्ट' न किया जाय तो हम उनको पागल समझ सकते हैं। क्योंकि जिन बातों पर झगड़ा हुआ है वह यथा कि जीसस कहते हैं, मैं ईश्वर-पुत्र हूँ। हम कहेंगे, कहने दो, बिगड़ता क्या है। इसमें हजार क्या है? कहो ईश्वर-पुत्र। जीसस को आने के लिए वही 'मोमेट' चुनना पड़ा जो था। इसलिए जीसस 'हिस्टारिक' है। इसलिए आप ध्यान रखें कि सिर्फ जीसस को मानने वाले लोगों ने हिस्ट्री पैदा की दुनिया में। बाकी लोग हिस्ट्री पैदा नहीं कर सके। इतिहास जीसस से शुरू होता है। इसलिए आकस्मिक नहीं है कि मन् और सदी जीसस से चलती है। जीसस एक 'हिस्टारिक'

घटना और एक खास 'हिस्टारिक' मोमेंट में ही हो सकते हैं। कृष्ण की हमने कोई कहानी नहीं लिखी है। कोई पक्का पता नहीं है कि यह आदमी किस तारीख में हुआ और किस तारीख में मरा। इसका पता रखना बेकार है। यह किसी भी तारीख को हो सकता है। यह कभी भी हो सकता है। यह किसी भी स्थिति में काम आ जायेगा। क्योंकि कोई अप्राप्त ही नहीं है अपने होने की। इसका अपना कोई आग्रह नहीं कि मैं ऐसा होऊँगा। अगर आपका आग्रह है कि आप ऐसे होगे तो आपको उस विशेष स्थिति की जरूरत पड़ेगी। किन्तु आपका कोई आग्रह नहीं ह, आप कहते हैं कि चलेगा। महावीर तो नन्हे का आग्रह करेगे। कृष्ण जो हैं, वह पतली मोहड़ी का फुलपैट भी पहन सकते हैं। कोई अडचन न आयेगी, बल्कि वह कहेगे कि पहले क्यों नहीं बनाया। मैं उसी वक्त पहनता। उन्हे कोई युग अडचन नहीं दे सकता। वे किसी भी युग में खड़े हो जायेंगे और राजी हो जायेंगे। वे उसी युग के हो जायेंगे और उसी युग में उनका फूल खिल सकता है। इसलिए मैं कहता हूँ कि सभी—महावीर, बुद्ध या जीसस 'हिस्टारिक पर्सनलटीज' हैं। ऐतिहासिक व्यक्तित्व हैं। इसका मतलब यह नहीं है कि वह हुए हैं और कृष्ण नहीं हुए। हुए तो कृष्ण भी हैं लेकिन कृष्ण इस अर्थ में 'हिस्टारिक' नहीं है, इस अर्थ में ऐतिहासिक नहीं है।

कृष्ण पुराण पुरुष है, कथा पुरुष है, अभिनेता है। वे कभी भी हो सकते हैं। उनका चरित्र का कोई मोह नहीं है। वह विशेष राधा को न मारेंगे। कोई भी राधा कारण हो सकती है। विशेष समय न मारेंगे, कोई भी समय उनके लिए अर्थपूर्ण हो सकता है। जरूरी नहीं कि वह बासुरी ही बजाये। किसी भी युग का बाद उन्हे काम दे जायेगा। इस अर्थ में पूर्ण हैं। पूर्ण में से कितना ही निकाल ले, वह व्यक्ति फिर शेष रह जाता है। वह फिर हो सकता है।



**पर्व : दो**

अहंकार और निर अहंकारिता  
शून्य और बहुआयामिता  
बुद्ध पूर्णता के परमात्





प्रश्न सारी गीता में कृष्ण परम अहंकारी मालूम पड़ते हैं। लेकिन आपने सुबह के प्रवचन में दर्शाया कि निरहकारी होने से ही कृष्ण कह सके कि 'सब छोड़ कर मेरी शरण में आ।' मे ही सब कुछ हूँ - अदि ..! लेकिन बुद्ध और महबीर ऐसा नहीं कहते हैं। क्या इनको निरहकारिता मिथ्या मिथ्या है? उनका भौतिक अन्तर क्या है?

उत्तर : निरहकारिता दो ढग से उपलब्ध हो सकती है। एक तो इस ढग से उपलब्ध हो सकती है कि कोई अपने को मिटाता चला जाय। अपने को

समाप्त करता चला जाय। अपने को काटता चला जाय। और ऐसी घड़ी आ जाय कि फिर काटने को कुछ न बचे। तो निरहकारिता उपलब्ध होती है। लेकिन यह निरहकारिता 'निरेटिव' है, नकारात्मक है। और इसमें यह अहकार बहुत गहरे में शेष रह ही जायेगा कि मैंने अपने अहकार को काट दिया है।

एक और ढग से भी निरहकारिता उपलब्ध होती है, कि कोई अपने को फैलाता चला जाय और इतना बड़ा करता चला जाय कि उसके अलावा फिर कुछ शेष ही न रह जाय। वही शेष रह जाय। सब उसमें समा जाय। तब भी निरहकारिता, 'इगोलेसनेस' उपलब्ध होती है। लेकिन तब पीछे कहने को इतना भी नहीं रह जाता कि मैं निर-अहकारी हो गया हूँ। जो लोग अहकार को काट कर चलेंगे वे लोग अन्तत आत्मा को उपलब्ध होंगे। आत्मा का अर्थ होगा, उनका अतिम अहकार शेष रह जायगा कि 'मैं हूँ'। मैं की ओर सारी चीजें नष्ट हो जायेंगी, शुद्ध 'मैं' ही शेष रह जायेगा। लेकिन जो व्यक्ति अहकार को काटकर चलेगा वह कभी परमात्मा को उपलब्ध नहीं होगा। जो व्यक्ति अहकार को भी भी विस्तीर्ण करता चला जायगा, इतना विस्तीर्ण कि सब उसमें समा जाय, उस दिन आत्मा का बोध नहीं रह जायेगा, परमात्मा का ही बोध रह जायेगा। कृष्ण का जो व्यक्तित्व है वह 'पोजिटिव' है, विधायक है। वह निषेधात्मक नहीं है। वे जीवन में किसी भी चीज का निषेध नहीं करते। वे अहकार का भी निषेध करते नहीं। वे तो कहने हैं कि अहकार को इतना बड़ा कर लो कि सभी उसमें समा जाय। तू बचे ही न, तो फिर स्वयं को मैं कहने का कोई उपाय नहीं रह जायगा। हम अपने को मैं तभी तक कह सकते हैं जब तक तू बाहर अलग खड़ा है। तू के विरोध में ही मैं की आवाज है। तू गिर जाय, तू न बचे, तो मैं भी बचूगा नहीं। इसलिए उपनिषद के कृष्ण कह सके, 'अह ब्रह्मास्मि'। वह यह कह सके, मैं ही ब्रह्म हूँ। इसका यह मतलब नहीं कि तू ब्रह्म नहीं है। इसका मतलब यह कि तू तो है ही कहा, मैं ही हूँ। वह जो हवाओं में लहरा रहा है वह भी मैं हूँ, वह जो बृक्षों में लहर खा रहा है वह भी मैं ही हूँ। वह जो जन्मा है वह भी मैं ही हूँ, जो मरेगा वह भी मैं ही हूँ। वह जो पृथ्वी है वह भी मैं ही हूँ, जो आकाश है वह भी मैं ही हूँ। मेरे अतिरिक्त कोई भी नहीं है। इसलिए अब मैं के बचने के लिए कोई जगह नहीं बची। मैं किससे कहूँ कि मैं हूँ। किसके विरोध में कहूँ कि मैं हूँ। तो कृष्ण का पूरा का पूरा व्यक्तित्व विराट के साथ फैलाव का है, विस्तार का है। इसलिए कृष्ण कह सकते हैं मैं ब्रह्म हूँ। इसमें कोई अहकार नहीं है। यह भाषा का ही मैं का प्रयोग है। मैं जैसा कोई पीछे बचा नहीं।

एक हूसरा रास्ता, जो मैंने कहा निषेध का है, उनकार का है, इन्कार का है, तोड़ने का है, त्याग का है। छोड़ते जाय। धन 'मैं' को मजबूत करता है, धन को छोड़ दे। अमीर का अहकार होता है, लेकिन गरीब का नहीं होता है, इस भूल में मत पड़ना। गरीब का भी अहकार होता है पर वह गरीब होता है, 'पुजर इगे' होता है। धन का दावा नहीं कर सकता। गृहस्थी का अहकार होता है, लेकिन सन्यासी का नहीं होता है, ऐसा मत सोचना। सन्यासी का भी अहकार होता है। अगर मैं छोड़ता चला जाऊँ और जिन जिन चीजों से अहकार बढ़ता है, मजबूत होता है, वह सब छोड़ दूँ। धन छोड़ दूँ, मकान छोड़ दूँ, पत्नी छोड़ दूँ, बच्चे छोड़ दूँ, घर भार छोड़ दूँ तो मेरे अहकार को टिकने को कोई जगह न रह जायेगी, कोई खूटी न रह जायेगी जहाँ मैं अहकार को टाग सकूँ और कह सकूँ कि मैं धनी हूँ, कह सकूँ कि मैं ज्ञानी हूँ, कह सकूँ कि मैं त्यागी हूँ। ऐसी कोई जगह न रह जायेगी, लेकिन इससे मैं मिट नहीं जाऊँगा। और जब मेरे मैं को टिकने के लिए कोई खूटी नहीं रहेगी तो मैं फिर बहुत सूझम में मुझसे ही टिका रह जायेगा। फिर आखिर मेरे ही रह जाऊँगा।

यह जो मैं का सूक्ष्म अनुभव है, यह निषेध से उपलब्ध होगा। बहुत लोग इसमें अटके रह जा सकते हैं, बहुत से लोग अटक कर रह जाते हैं। क्योंकि यह दिखायी भी नहीं पड़ता, यह बहुत सूक्ष्म है। धनी का अहकार दिखायी पड़ता है, त्यागी का कैसे दिखायी पड़ेगा? धनी का अहकार क्या है, कि मेरे पास धन है। त्यागी का अहकार क्या है, कि मैंने त्याग किया है। कि मैंने धन छोड़ा है। गृहस्थी का अहकार दिखायी पड़ता है, — यह रहा उसका घर, यह रही उसकी सीमा। सन्यासी का अहकार दिखायी नहीं पड़ता। लेकिन उसकी भी सीमाएँ हैं। वह हिन्दू है, मुसलमान है, ईसाई है, जैन है। उसके भी आश्रय है, उसकी भी सीमाएँ हैं, उसके भी बन्धन है, वह भी अटका है। लेकिन वह दिखायी नहीं पड़ता। यह जो घड़ी है निषेध की, इससे कोई अटक सकता है। अगर अटक जाय तो लगेगा बिल्कुल निरहकारी है। क्योंकि वह 'मैं' शब्द का भी उपयोग न करेगा। मैं भी छोड़ देगा। इससे कोई कर्क नहीं पड़ता। लेकिन इससे भी पार जाना पड़ेगा। महाकीर और बुद्ध इसके पार तो चले जाते हैं लेकिन यह पार जाना, उस आखिरी सूक्ष्म 'मैं' के पार जाना उन्हे बहुत ही कठिन पड़ता है। वही असली तपश्चर्याहै। बड़ी तपश्चर्या की बात हो जाती है क्योंकि जो मेरे पास था, जो मेरा था उसको तो छोड़ दिया। वह गया। अब मैं ही बचा हूँ, अब इसको कैसे छोड़ूँगा? इसको कैसे छोड़ियेगा? इसलिए निषेध की प्रक्रिया से अगर हजार लोग चलेंगे तो एक ही आदमी निरहकारिता तक पहुँच पाता है। तौ सौ निन्यानवे आदमी सूझम

मैं पर खड़े होकर रह जाते हैं। महावीर तो निकल जायेगे लेकिन महावीर के पीछे चलने वाला सन्यासी अटक जायेगा। अति दुख्ह है यह बात। सहारे तोड़ देना तो बहुत आसान है। जिन सहारों से मेरा मैं मजबूत होता है मैं उनको गिरा सकता हूँ, लेकिन फिर मैं बच रहूँगा, उसको कैसे गिराऊँगा?

तो निषेध से चलने वाले व्यक्ति की जो तकलीफ है वह आखिरी क्षण में है और विद्येय से चलने वाले की जो तकलीफ है वह पहले क्षण में है। पहले स्टेज पर विद्येय से चलने वाले को बड़ी कठिनाई आती है कि तू को कैसे इन्कार कर दू। तू है। दिखायी पड़ रहा है। उसको कैसे इन्कार करूँ? कृष्ण की साधना की तकलीफ, पहले चरण पर है। असली तकलीफ वही है, इसके बाद फिर कोई तकलीफ नहीं होगी। महावीर और बुद्ध की साधना की असली तकलीफ आखिरी चरण पर है। पहले बहुत आसान है मामला। आखिरी क्षण में, जब कि मैं के सब सहारे टूट जायेगे तो शुद्ध मैं बच रहेगा। 'प्युरीफाईड इंगो' रह जायेगी। उसको कैसे छोड़ियेगा? उसको छोड़ने का क्या करियेगा?

पहले चरण पर जो करना पड़ेगा विद्यायक माधव को, वही अतिम चरण पर निषेध के साधक को करना पड़ेगा। पहले चरण पर विद्येय का साधक क्या करेगा? वह तू मेरी भी मैं को खोजने की कोशिश करेगा। निषेध का साधक अतिम चरण पर क्या करेगा? वह मैं मेरे तू को खोजने की कोशिश करेगा। लेकिन तू मेरी मैं को देखना बहुत आसान है। मैं मेरे तू को देखना बहुत कठिन है। और शुद्ध मैं मेरे तू और कठिन ही जाता है क्योंकि बहुत सूक्ष्म मैं का भाव बचता है। वह इतना बारीक हो जाता है कि उसमेरे तू को कहा समाये? बुद्ध और महावीर की कठिनाई आती है आखिरी चरण में, इसलिए बुद्ध या महावीर की साधना में आखिरी चरण के पहले से भी गिरना सभव है। आखिरी कदम के पहले भी कोई लौट सकता है, रुक सकता है, डिग सकता है। जब पूरी जिन्दगी इस मैं को बचाया, पूरी साधना मेरे बचाया तो आखिरी क्षण में एकदम से छोड़ना बहुत मुश्किल हो जायेगा। छोड़ा जा सकता है। एक ही रास्ता है कि इस मैं के बिन्दु मेरे तू दिखायी पड़ जाय। इसलिए महावीर या बुद्ध को जो आखिरी साधना की कड़ी है उसका नाम है "केवल ज्ञान"। जानी न रह जाय सिर्फ़ ज्ञान रह जाय। जानने वाला न रह जाय, सिर्फ़ जानना रह जाय। उम जानने मेरे झलक मिल सकती है एकता की। आखिरी मुक्ति, मैं से मुक्ति है। मैं को मुक्त नहीं होना है, मैं से मुक्त होना है। लेकिन जो अनुयायी है उसको कठिनाई हो जाती है। वह यहीं पूछत। रहता है कि मुझे मोक्ष कैसे होगा? असल मेरे 'मुझे' कभी मोक्ष

हुआ ही नहीं। जब भी मोअं हुआ है तो मुझसे हुआ है। इसलिए महावीर की साधना-परम्परा में जो लोग पीछे आयेगे उनके अहकार के पोषण की बड़ी सुविधा है। महावीर की साधना में चलने वाला साधक अति अहकारी हो जाय तो आश्चर्य नहीं। त्याग, तपश्चर्या, अहकार को मजबूत करते चले जाते हैं। मैं कठोर होता जायेगा, सख्त होता जायेगा। आखिर मेरे सब छूट जायेगा और एक मैं की गाठ बच जायेगी। उसको तोड़ना बहुत मुश्किल पड़ेगा। वह ब्रूट सकती है, टूटी है। महावीर की टूटी है। उस क्षण के अलग प्रयोग है कि वह मैं की गाठ कैसे छूट जाय।

कृष्ण की साधना में, कृष्ण के व्यक्तित्व में, मैं की गाठ को पहले ही तोड़ देना है। जिस बीमारी को आखिर मेरे गिराना पड़े उसे इतनी देर तक ढोना भी उचित नहीं है। इतनी देर मेरे वह सकामक भी बनेगी। उसे पहले ही तोड़ देना। इसलिए जिसको महावीर 'केवल ज्ञान' कहे वह अतिम घड़ी मेरे आयेगा, जिसको कृष्ण माथी भाव कहे वह पहली ही घड़ी मेरा जायगा। इस सत्य को जानना है कि मैं अलग नहीं हूँ। लेकिन अगर मैं अलग नहीं हूँ तो फिर त्याग बेमानी हो जायेगा। छोड़े गिसको, मैं ही हूँ। छोड़ेगा कौन? जिसे छोड़कर जा रहा हूँ वह भी मैं ही हूँ। भागूगा कहा से, जहा से भाग रहा हूँ वह भी मैं ही हूँ। भागूगा कहा? जहा भागना है वह भी मैं ही हूँ।

रवीन्द्रनाथ ने एक बहुत गहरा मजाक यशोधरा से करवाया है बुद्ध के प्रति। बुद्ध जब ज्ञान लेकर वापस लौटे हैं तो यशोधरा उनसे पूछती है, मुझे सिर्फ एक ही मवाल पूछना था, तुम आ गये हो तो मैं पूछ ही लू। तुमसे यह पूछना चाहती हूँ कि जो तुमने जगल जाकर पाया, वह क्या इस धरे मेरीजूद नहीं था? बुद्ध बड़ी मुश्किल मेरे पड़ गये हैं। क्योंकि जिस रात छोड़कर गये थे उसे बिना बताये ही जाना पड़ा था। अगर बुद्ध यह कहे कि वह यहाँ भी था जो जगल मेरा था तो यशोधरा कहेगी, पागलपन किया इतने दिन! जो यही था उसे खोजने वहा गये। अगर वह यह कहे कि वह यहाँ नहीं था, जगल मेरी था तो गलत होगा। क्योंकि बुद्ध अब जानते हैं कि वह यहाँ भी है जो जगल मेरे मिला है। कृष्ण कही छोड़कर नहीं जा रहे हैं। बुद्ध को जो आखिरी घड़ी मेरे दिखायी पड़ता है वह कृष्ण को पहली घड़ी से ही दिखायी पड़ रहा है, बुद्ध जो आखिरी क्षण मेरे जान पाते हैं, वही है सब जगह। कृष्ण पहले ही जान रहे हैं कि वही है सब जगह।

मैंने एक फकीर के सम्बन्ध मेरुना है कि वह एक गाद के किनारे पड़ा रहा जीवन भर। जब भी कोई उससे पूछता कि तुम साधना नहीं कर रहे हो तो वह कहता, किसे साधू? जिसे साधूगा वह साधा ही हुआ है। कोई उससे पूछता,

तुम कही जाते दिखायी नहीं पड़ते, वह कहता, मैं कहा जाऊ ? जहा पहुचना था, वहाँ मैं पहुचा ही हुआ हूँ। कोई उससे पूछता, तुम्हे कुछ पाना नहीं है, तो वह कहता, जिसे पाना है वह सदा से प्राप्त है। यह फकीर क्या साधना करेगा ?

इसलिए कृष्ण की साधना विकसित नहीं हो पायी। कृष्ण का साधक कही भी न मिलेगा जो साधना कर रहा है। साधना किसकी करनी है ? साधना उसकी की जा सकती है जो नहीं पाया है, और मिल सकेगा। साधना उसकी की जा सकती है जो नहीं पाया है, और पाया जा सकता है। साधना सभावना की है। साधना उपलब्ध की कभी नहीं होती। जो है ही, उसको कैसे पाइयेगा ? बुद्ध को भी जब आखिरी क्षण में ज्ञान हुआ और किसी ने पूछा कि आपको क्या मिला हमें बताये ? बुद्ध ने कहा, मिला कुछ भी नहीं। जो मिला ही हुआ था, उसका पता भर चला है। जो था ही मेरे पास, लेकिन मुझे पता नहीं था। अब मैंने जाना कि यह तो मेरे पास ही था।

मिला कुछ भी नहीं है, जो था ही मात्र उसका पता चला है। जब नहीं था पता, तब भी वह इतना ही था, कमी कुछ भी नहीं थी। लेकिन बुद्ध ने यह आखिरी क्षण में कहा। कृष्ण यही पहले क्षण में कहेगे। कृष्ण कहेगे कहा जा रहे हो ? क्योंकि जहा जाना चाहते हो वहा तो तुम खड़े हो। जिसे तुम मजिल कह रहे हो वह तो तुम्हारा मुकाम ही है। किम तरफ दौड़ रहे हो ? क्याकि जहा तुम दौड़कर पहुचोगे वहा तो तुम पहुचे ही हुए हो। इसलिए बुद्ध और महावीर के जीवन में साधना का काल है, फिर सिद्धि की अवस्था है। कृष्ण सदा ही सिद्ध है, उनके जीवन में साधना का कोई काल नहीं है। कृष्ण ने कब साधा सत्य को, पता है ? कौन सा ध्यान किया ? कौन सा योग किया, किम जगल में गये ? कौन सी तपश्चर्या की, कौन से उपवास किये ? कौन से आसन, कौन से व्यायाम किये ? कृष्ण के जीवन में साधना जैसी कोई चीज ही दिखायी नहीं पड़ती। साधना है ही नहीं।

बुद्ध और महावीर आखिरी क्षण में सिद्ध होते हैं। कृष्ण जैसे सिद्ध है ही तब साधना कैसी, साधना किसकी ? ये बुनियादी फर्क है। कृष्ण को जो दिखायी पड़ रहा है उसमें अहकार का कोई उपाय नहीं है क्योंकि तू है ही नहीं कही। कबीर की बात सुबह कर रहा था। कबीर ने एक दिन अपने बेटे को जगल में भेजा है घास काट लाने को। जैसे यहा पौधे हवा में नाच रहे थे ऐसे ही जगल में नाच रहे थे। हसिया लेकर वह घास काट रहा है। सुबह में साझा होने लगी है पर वह नहीं लौट रहा है। सबने कहा, कुछ पता लगाओ, घास काटने में दूसरी देर की कोई जरूरत न थी, दोपहर तक आ जाना था। अब तो साझा भी हो गयी, अन्धेरा बिर

जायेगा थोड़ी देर में। तो कबीर के साथ सारे लोग खोजने निकले हैं कि वह कहाँ गया है? देखा जाकर सो गले गले वह धास में खड़ा है। खड़ा कहता गलत है। हवाए नाच रही है, वह भी नाच रहा है। जैसे बृक्ष नाच रहे हैं, पौधे नाच रहे हैं, धास के पत्ते नाच रहे हैं, वैसे वह भी नाच रहा है। उसे हिलाया, उसने आख सोली। उन सबने कहा, तुम यह क्या कर रहे हो? धास काटी नहीं? उसने कहा, ठीक याद दिलाया। हसिया उठाया। उन लोगों ने कहा, अब तो सांझ हो गयी, धापस चले। लेकिन तुम दिन भर कर क्या रहे थे? उस लड़के ने कहा, मैं धास हो गया। मैं भूल ही गया कि मैं भी हूँ। मैं भूल ही गया कि कोई धास है और उसको काटना है। इतनी आनन्द की थी सुबह, सब इतना नाचता हुआ था कि मैं नाचने लगा। फिर तो मुझे याद ही न रहा कि कौन धास है और कौन कपाल है, जो काटने आया? यह तो आप आये तो आपने मुझे स्थाल दिला दिया।

कृष्ण भी इतना नाचने में मन हो गये इम जगत में। कबीर का बेटा तो धास के साथ नाचा, कृष्ण पूरे जगत के साथ नाचे। इसके चाद-तारो के साथ नाचे, इसके स्त्री-पुरुषों के साथ नाचे, इसके फूलों के साथ नाचे, इसके कांटों के साथ नाचे। वह इस जगत के साथ नाचने में ऐसे लीन हो गये कि कौन है मैं, कौन है तू, इसकी कोई जगह न रही। उन्हे जो निरहकार उपलब्ध हुआ वह महावीर और बुद्ध को अत्यन्त तपश्चर्या और लब्ध यात्रा के अतिम पडाव पर उपलब्ध होता है। वे बहुत दौड़ कर उस जगह आते हैं जहा से कृष्ण कभी दौड़े ही नहीं। वे बहुत यात्रा करके उस जगह का पता लगा पाते हैं जहा से उन्होंने यात्रा शुरू की थी।

इसलिए कृष्ण साधक नहीं है। कृष्ण को साधक कहना ही मुश्किल है। और इस मिठ अवस्था में, इस चित्त की दशा में जो भी उन्होंने कहा उसमे हमे अहकार दिखायी पड़ सकता है। क्योंकि वह मैं का शब्द जो हम उपयोग करते हैं वह वे भी कर रहे हैं। लेकिन हमारे और उनके मैं की अभिव्यक्ति और अर्थ में बड़ा फर्क है। जब हम कहते हैं 'मैं' तो भत्तलब होता है इस शरीर के भीतर जो कैद है वह। और जब कृष्ण कहते हैं 'मैं' तो वह कहते हैं, जो सब जगह फैला है वह। इसलिए हिम्मत से कह सकते हैं अर्जुन को कि सब छोड़ मेरी शरण में आ जा। यह अगर शरीर के भीतर घिरा हुआ मैं होता तो इतनी हिम्मत से नहीं कही जा सकती थी बात। और अगर यह शरीर के भीतर बन्द मैं होता तो अर्जुन भी कहता कि आप कैसी बात कह रहे हैं? मैं आपकी शरण में क्यों आऊ? फिर तो अर्जुन के मैं को भी चोट लगती, क्योंकि जब भी एक तरफ से मैं बोलता हूँ तो दूसरी तरफ के मैं मे प्रतिष्ठनि पैदा होती है। अगर आप मैं की भाषा बोलते हैं तो दूसरा आदमी

तत्काल मैं की भाषा बोलना शुरू कर देता है। 'मैं' एक दूसरे की बात बड़े ढण से पहचानते हैं और तत्काल प्रतिक्रिया में सञ्चढ़ हो जाते हैं। लेकिन कृष्ण कह सके कि तू मेरी शरण में आ। क्योंकि इस मेरी शरण का अर्थ है समस्त की शरण। इसका अर्थ है यह सब फैला हुआ है, इसकी शरण में चला जा, तू अपने को छोड़।

निर-अहकार महावीर और बुद्ध को आता है लबी यादा के बाद। किन्तु महावीर और बुद्ध की यात्रा पर चलने वाले बहुत साधकों को कभी नहीं आयेगा। क्योंकि वह आखिरी बात है जो वह कर पायें, शायद न भी कर पायें। लेकिन कृष्ण की धारा में जो बहेगा उसके लिए तो पहली ही बात होगी। न कर पाये तो उस धारा में वह ही नहीं सकते। महावीर के साथ बहुत दूर तक चल सकते हैं अपने मैं को बचाकर। कृष्ण के साथ तो पहले कदम पर ही नहीं चल सकते। चलना ही है तो मैं छोड़कर ही चलना होगा नहीं तो चल ही न पायेगे। वहा तो पहले ही क्षण में यह जानना, 'द फस्ट इज द लास्ट'-कृष्ण के लिए। महावीर और बुद्ध के लिए 'द लास्ट इज द फस्ट'। वह जो आखिरी है वह पहला है। और कृष्ण के लिए जो पहला है वही आखिरी है। यही बहुत बुनियादी फक है। यह स्वाल में आ जाय तो सारी स्थिति और होगी।

कृष्ण के साथ साधना क्या करियेगा? नाच सकते हैं, गीत गा सकते हैं, डूब सकते हैं। साधना क्या करियेगा? या फिर इसको ही साधना कहें तो बात और है। इसलिए कृष्ण किसी में और कोई अपेक्षा नहीं करते। जब पहला ही चरण निर-अहकारिता का है तब और अपेक्षा नहीं की जा सकती। महावीर और बुद्ध के पास जाकर आप कहेंगे कि अहकारी हूँ, मैं क्या करूँ, तो वह आपको रास्ता बना सकते हैं। वह कहेंगे, पहले यह छोड़ो, पहले यह छोड़ो, अहकार को पीछे देख लेंगे। कृष्ण के पास जाकर आप कहें कि मैं अहकारी हूँ तो वह कहेंगे कि कोई रास्ता ही नहीं रहा। क्योंकि अहकार ही जाय, वही तो शुरूआत है। इसलिए कृष्ण कोई साधकों का सघ नहीं बना सके। बहुत मुश्किल हो गयी बात। साधक तो यही कहेगा, अहकार तो छूटता नहीं, धन छोड़ सकता हूँ। कृष्ण कहेंगे, धन छोड़ने से क्या होगा? धन छोड़कर भी बीमारी तो वही रहेगी।

जैसे एक आदमी आया, वह कहता है कैसर है मुझे। कैसर तो नहीं छोड़ सकता, सिर घुटवा सकता हूँ। तो घुटवा ले, इससे कोई अन्तर, इससे कोई संगति नहीं। कैसर अपनी जगह रहेगा। सिर घुटवाने के बाद फिर कैसर को ही ठीक करना पड़ेगा। वह आदमी कहता है, मैं कपड़े भी छोड़ सकता हूँ। कृष्ण कहेंगे, कपड़े

छोड़ने से कुछ लेना-देना नहीं । लेकिन महावीर कहेंगे, ठीक है, फिलहाल सिर शूटवाओं — फिलहाल जो भी तुम कर सकते हो करो । महावीर और बुद्ध उसको लौटा नहीं देंगे । महावीर और बुद्ध के द्वार पर सभी का प्रवेश हो जायेगा । वह सभी के लिए तैयार है कि ठीक है, जो तुम कर सकते हो करो, आखिरी बात आखिर में देखेंगे । लेकिन कृष्ण कहते हैं, आखिरी बात करो तो ही मेरे मकान में प्रवेश है । इसलिए कृष्ण का मकान करीब करीब खाली रह गया । उसमें प्रवेश बहुत मुश्किल हुआ । महावीर के साथ पचास हजार सन्यासी चलते थे । सभव था यह । कृष्ण के साथ मुश्किल है । पचास हजार निरहकारी आदमी पहले दिन कैसे खोजियेगा ? महावीर और बुद्ध को अगर हम ठीक से कहे तो 'प्रेजुबल एन्लाइटनमेट' की बात है वहाँ — क्रमिक है । क्रम की बात हमें समझ में आती है । एक रूपये से दो रूपये हो सकते हैं, तीन रूपये हो सकते हैं, चार रूपये हो सकते हैं, हमारी समझ में आ सकता है । लेकिन गरीब एकदम अमीर हो सकता है, यह हमारी समझ में नहीं आता । कृष्ण जो बात कर रहे हैं, वह 'सड़न एन्लाइटनमेट' की है । वह कहते हैं, नाहक इतनी परेशानी क्यों करते हो ? एक रूपया है तब भी तुम गरीब हो, एक रूपया वाले गरीब हो । दो रूपये हैं तब भी तुम गरीब हो, दो रूपये वाले गरीब हो । तीन रूपये हैं तब भी तुम गरीब हो, तीन रूपये वाले गरीब हो । करोड़ हैं तो भी तुम गरीब हो, करोड़ रूपये वाले गरीब हो । कृष्ण कहते हैं, हम तुम्हें सम्भाट बनाते हैं । रूपये का तुम हिसाब किताब छोड़ो । एक रूपये से भी छूट सकता है, दो से भी छूट सकता है, तीन से भी छूट सकता है, करोड़ से भी छूट सकता है । हम तुम्हें सम्भाट ही बनाये देते हैं । बनाये क्या देते हैं, हम तुम्हें याद दिलाना चाहते हैं, तुम सम्भाट हो । इसलिए महावीर और बुद्ध की पद्धति साधना है, कृष्ण की पद्धति सिर्फ़ 'रिमेम्बरिंग' है, स्मरण है । स्मरण करो कि तुम कौन हो, वम मामला पूरा हुआ जाता है । 'जस्ट रिमेम्बर'

एक कहानी मैंने सुनी है, वह मैं आपसे कहूँ । मैंने सुना है, एक सम्भाट ने अपने बेटे को निकाल बाहर किया । नाराज था । एक ही बेटा था । वह बेटा कुछ भी न जानता था । सम्भाट के बेटे क्या जान सकते हैं ? न वह पड़ा-लिखा था, वह कुछ भी नहीं कर सकता था । हाँ, कभी शौक में कुछ गीत गाना और नाचना सीखा था । तो सड़कों पर नाच नाच कर भीख मारने लगा । बाप ने उसको देश निकाले की आज्ञा दी थी । देश छोड़ देना पड़ा था उसे । फिर बाप बूढ़ा हुआ । इस बात को बरसों बीत गये । वह लड़का भूल ही गया था कि मैं सम्भाट हूँ । दस साल जो भीख मारे, उसको याद भी कैसे रहे कि वह सम्भाट है । था तो वह सम्भाट ही । और दस साल जब उसने भीख मारी थी तो रोज सम्भाट होने का ज्यादा अधिकारी होता

चला गया था, क्योंकि उसका बाप बूढ़ा होता चला गया था। एक ही बेटा था बाप का। उस के जूते फट गये हैं, धूप है तेज, और एक रेगिस्तानी मुल्क में भटक रहा है। एक साधारण से होटल के सामने भीख मार रहा है, लोगों के सामने वर्तन फैला रहा है, कह रहा है—कुछ पैसे दें दें क्योंकि जूते की जरूरत है। धूप बढ़ती जाती है। पैर पर फकोले पड़ गये हैं। उघर सम्राट ने अपने बजीरों को खोजने भेजा कि उस बेटे को बापस लौटा लाओ। क्योंकि अब राज्य कौन सम्हालेगा? किमी के न सम्हालने से बेहतर है कि वह जो नाममङ्ग है वही सम्हाले। सम्राट के बजीर उसे खोजने गये, बड़ी मुश्किल से सम्राट का प्रधान बजीर उस गाव में पहुंच गया जहा वह भीख मार रहा था। अपना टूटा हुआ टीन का वर्तन बजा रहा था और कह रहा था, कुछ पैसे मिल जाय तो मैं जूते खरीद लू। रथ रुका, बजीर नीचे उतरा। चेहरा पहचाना हुआ था। कपड़े वही थे जो दस साल पहले पहने निकला था। फट गये थे, चीथड़ हो गये थे। नग पैर था, चेहरा सावला और काला पड़ गया था। बजीर ने उसके पैर छुपे और कहा कि पिता ने आपको भ्रमा कर दिया है और बापस बुलाया है। एक क्षण—एक क्षण का भी हजारवा हिस्सा और वह जो हाथ में टीन का टुकड़ा था वह फिक गया। उस युवक की आले एकदम बदल गयी। वह भिखारी नहीं रहा। सम्राट हो गया। उसने बजीर से कहा, जाओ शीघ्र, जूते खरीदो, कपड़े लाओ, स्नान का इन्तजाम करो। वर्ष रथ पर बैठ गया। वह जिनसे भीख मारता था वह सब भीड़ लगाकर खड़े हो गये। उन्होंने देखा, वह आदमी दूसरा हो गया। उनकी तरफ देख भी नहीं रहा। वह उनको पहचानता भी नहीं। उन्होंने कहा, अरे हमें भूल गये। उमन कहा, तुम्हें तभी तक याद रख सकता था जब तक अपने को भूले हुए था। अपनी याद आ गयी। अब भूल जाओ उस आदमी को जो भीख मारता था।

कृष्ण की प्रक्रिया इतनी ही है, वह आदमी को सिर्फ इतनी याद दिलाने की बात है कि तुम कौन हो? यह साधने की बात नहीं है। स्मरण की है। और इस याद के साथ एक क्षण में सब बदल जाता है। ककड़, ठीकरा बाहर फिक जाता है। जिनसे हम भीख मार रहे, अचानक हाथ खीच लेते हैं। हम खुद ही सम्राट हो जाते हैं। लेकिन यह सम्राट होना 'सड़न' है। और ध्यान रहे, सम्राट आदमी सड़न ही होता है। भिखारी घ्रेजुअल होता है। सम्राट होने के लिए भी कोई सीढ़िया हो तो आखिरी सीढ़ी पर खड़े होकर आप थोड़े ढग के भिखारी ही होगे। पैसे वाले भिखारी होंगे, और कोई खास फर्क नहीं पड़ने वाला है। लेकिन भीख जारी रहेगी। और एक दिन आपको छलाग लगानी पड़ेगी। जहा आप घ्रेजुअली चढ़ चढ़ कर पहुंचे वहाँ से कूद जाना पड़ेगा। यही धड़ी महावीर और

बुद्ध की साधना में आखिरी क्षण आती है जिस दिन छलाग लगानी पड़ती है, और कृष्ण के मामले में पहले ही आ जाती है। कहते हैं, छलाग लगाओ, आमे फिर दूसरी बात तो करने की कोई जरूरत नहीं होती। छलाग लगाने की बात है। यीता में पूरे बक्त वह अर्जुन को कुछ खास नहीं समझा रहे हैं। सिफ़ याद दिला रहे हैं कि तू कौन है। वह कोई उपदेश नहीं दे रहे। वह सिफ़ चोटे दे रहे हैं कि तू कौन है। वह किसी को समझा नहीं रहे, किसी को जगा रहे हैं। वह सिफ़ हिला रहे हैं, सकझोर रहे हैं कि तू उठैकर देख कि तू कौन है। तू भी कहा की छोटी छोटी बातों में पड़ा है कि यह मर जायगा, यह मर जायगा। तू जागकर देख, कोई कभी मरा ही नहीं। भगर वह नीद में है और अपने सपने में है। वह यही पूछे जा रहा है कि यह मेरा भाई है, यह मेरा रिश्तेदार है, ये मेरे गुरु हैं। इनको मैं कैसे मारूँ? वह सपने में ही है। कृष्ण उसको समझा नहीं रहे हैं, उसको घबके दे रहे हैं। तू नीद खोल, जरा आख खोल कर देख, क्या सपना देख रहा है? या नो सभी सबके हैं या कोई किसी का नहीं है। दोनों हालत में मतलब एक है। या तो सभी लोग मर ही जाते हैं, तब मारने न मारने से फर्क नहीं पड़ता, या मरते ही नहीं हैं। तब भी मारने से कोई फर्क नहीं पड़ता।

कृष्ण की जीवन चिन्तना स्मरण की है। इसलिए साधना नहीं है वहा। वह सीधे सिद्ध होने में छलाग है। हम उतनी हिम्मत नहीं जुटा पाते हैं इसलिए कहते हैं, यह अपना काम नहीं। हम तो कहीं जाय, जहा धीरे धीरे एक एक कदम हम चलेंगे। लेकिन हर कदम पर आप अपने को बचाते हुए चलेंगे। ध्यान रखना, इसीलिए तो छलाग नहीं लगाते। छलाग लगाने में बचने का खतरा है। बच नहीं सकते। बचने में खतरा है। आप कहते हैं, हम तो एक एक कदम चलेंगे जिसमें अपने को बचाकर चले। लेकिन जिसको आप बचा रहे हैं वह आखिरी कदम में भी बचा रहेगा। वह फिर भी कहेगा, अपने को बचाकर किसी तरह निकल सकते हो तो निकल जाओ। अपने को बचाकर चले। आखिरी क्षण में वही दिक्कत आयेगी। और मैं मानता हूँ, जो दिक्कत आखिरी क्षण में आती हो, वह पहले क्षण में ही आ जाय क्योंकि इतना समय क्यों व्यय करना है, इतना समय क्यों व्यथ सोना है। आखिरी क्षण में महाबीर और बुद्ध, को जो घटित होता है वह स्मरण है, वह साधना का फल नहीं है। लेकिन हमने साधना देखी। एक आदमी गाढ़ में बीस चक्कर लगाता है, फिर उसे स्मरण आता है कि मैं कौन हूँ। एक आदमी एक भी चक्कर नहीं लगाता है और उसे स्मरण आता है, मैं कौन हूँ। लेकिन हम जो देखने वाले हैं, हम कहेंगे, इस आदमी को बीस चक्कर लगाने से

स्मरण आया। अगर हम भी बीस चक्रकर लगायें तो हमें भी स्मरण आ सकता है। बीस चक्रकर लगाने से कोई 'काज-एफेक्ट' का सम्बन्ध नहीं है। यह बात जरा आपको ठीक से समझ लेनी चाहिए।

महावीर ने क्या किया? और महावीर को क्या हुआ? इसमें कोई काजल लिंक नहीं है। इसमें कोई कार्य-कारण का सम्बन्ध नहीं है कि महावीर ने ऐसा किया इसलिए ऐसा हुआ। अगर ऐसा है तो फिर जीसस को नहीं हो सकेगा, क्योंकि जीसस ने वह कुछ भी नहीं किया जो महावीर ने किया। फिर बुद्ध को नहीं हो सकेगा, क्योंकि बुद्ध ने वह कुछ भी नहीं किया जो महावीर ने किया। अगर सौ डिग्री पानी गर्म होने से ही भाप बनता है तो तिब्बत में बनाया जाय, हिन्दुस्तान में बनाया जाय, चीन में बनाया जाय, अमरीका में बनाया जाय, वह सौ डिग्री पर ही भाप बनेगा। उसको सौ डिग्री पर भाप बनना काजल है। उसमें कार्य-कारण है। आध्यात्मिक जीवन काजल नहीं है, उसमें कार्य-कारण नहीं है। इसीलिए तो आध्यात्मिक जीवन मुक्त हो सकता है। काय-कारण की शृंखला में मुक्ति कभी भी नहीं हो सकती। काय-कारण का मतलब ही बन्धन है। हर चीज पिछली चीज से बधी है। और जो चीज से पिछली चीज बधी है वह अगली चीज से बधी होगी। उसमें एक 'चेन सीरीज' है। सब चीजें बधी हैं। अगर पानी भाप बनेगा तो अभी तक पानी के नियमों से बधा था, अब भाप के नियमों से बधा जायेगा। अगर पानी बर्फ बन जायेगा तो अभी तक पानी के नियमों से बधा था, अब बर्फ के नियमों से बधा जायेगा। आगे पीछे दोनों तरफ बन्धन होंगे। जिसको मुक्ति कहते हैं, वह 'नान काजल' है। उसके पीछे कोई कारण नहीं है कि जिस कारण से फला आदमी मुक्त हुआ। किस कारण से मुक्त हुआ? क्योंकि इसने इतना उपवास किया इसलिए मुक्त हुआ, तो कोई भी आदमी उतना उपवास करे तो मुक्त होना चाहिए, लेकिन यह नहीं होता। सौ डिग्री पर कोई भी पानी गरम होता है। भाप बनता है। लेकिन कोई भी आदमी उपवास करे तो मुक्त नहीं होता। महावीर करते हैं तो होते हैं। कोई भी आदमी नमन खड़ा हो जाय तो मुक्त हो जाय, नहीं होता। बहुत लोग ऐसे ही नमन है, कपड़े ही नहीं हैं। लेकिन महावीर खड़े हो जाते हैं और मुक्त हो जाते हैं। ता क्या नमनता से मुक्ति का कोई 'काजल रिलैशनशिप' है, कोई काय-कारण सम्बन्ध है? अगर सम्बन्ध है तो फिर सबको करना ही पड़ेगा। नहीं, सम्बन्ध नहीं है। असल में मुक्ति का अर्थ ही काय-कारण की शृंखला के बाहर हो जाना है। वह जो काय-कारण की शृंखला है कि ऐसा करने से ऐसा होता है, ऐसा न करने से ऐसा नहीं होता। इस सबके बाहर हो जाना ही मुक्ति का अर्थ है। असल में काय-कारण की सीमा

मेरो बधा है उसी का नाम पदार्थ है, और कार्य कारण की सीमा के जो बाहर है उसी का नाम परमात्मा है। लेकिन किस जगह इसके बाहर होगे आप? हम प्रत्येक घड़ी को कार्य-कारण से जोड़ते हैं। अभी मैं एक कहानी कह रहा था

एक आदमी एक ट्रेन में सवार हुआ है पहली दफा। उसके गांव के लोगों ने उसकी जन्म जयन्ती मनायी। पचहतर साल का हो गया है, बूढ़ा है। और गांव गरीब है। उसको क्या भेंट दे? तो उन्होंने सोचा कि हमारे गाव में कमी कोई ट्रेन पर सवार नहीं हुआ जब से पहली दफा ट्रेन चली, तो हम सब गाव के लोग चल्दा इकट्ठा करके इसको ट्रेन पर भेज दे। तो उसको ट्रेन से भेजा। साथ में एक मित्र और ट्रेन पर गया। वह दोनों सवार हुए। पहली दफा गाड़ी में बैठे। बड़े आनंदित हैं और तभी गाड़ी में चीजे बिकने आ गयी। गाववालों ने पाकेट खर्च भी उसको दिया था कि कुछ खर्च भी करना, आते जाते आनन्द लेना। एक आदमी सोडा बेच रहा था। उन्होंने कहा, पता नहीं क्या खतरनाक चीज है लेकिन पहले कोई पीता हो तो अपन देख ले। एक आदमी ने लेकर पिया तो उन्होंने कहा, ठीक है, पिया जा सकता है। पर उन्होंने कहा एक ही ले पहले। आधा तुम पी लो, आधा मैं पी लू क्योंकि जब भी, न जावे। उन्हाने एक सोडे की बोतल ली। एक आदमी ने आधी बोतल पी। पहली दफे पी थी और जैसे ही उसने बोतल पी वैसे ही ट्रेन एक 'टनेल' में, एक बोगदे में प्रवेश कर गयी। वह आधी बोतल के आगे पीता चला गया तो दूसरे ने उसे रोका। उसने कहा, तुम आधे के आगे जा रहे हो। उसने बोतल नीचे की, आख खोली धनधोर अन्धेरा था। उसने दूसरे आदमी से कहा, 'डोन्ट टच दिम स्टफ, आइ हैव बीन स्टफ ब्लाइन्ड'। इसको छूना ही मत। मैं अन्धा हो गया हूँ। भूल के मत पीना, अब जो मेरे साथ हो गया, हो गया।

स्वभावत वह जो अन्धेरा घटित हुआ था वह उसे 'काजल लिंक' से ही सोच सकता है। सोडा पीने से आखें एकदम अन्धी हो गयी। हम जिन्दगी में इसी भाषा में सोचते हैं। इससे बड़ी भ्रातिया पैदा होती है। मुक्ति का जो अनुभव है वह 'बियोन्ड काजल लिंक' है, वह हमारे सब कार्य-कारण के बाहर है। बुद्ध ने जो किया है, उसके कारण वह उपलब्ध नहीं हुए, उसके करने के बाबजूद उपलब्ध हुए, 'इन्सपाइट आफ दैट'। महावीर ने जो किया है उसके कारण उपलब्ध नहीं हुए, उसको करने के बाबजूद उपलब्ध हुए। इसलिए अगर कोई महावीर की पूरी नकल भी कर ले तो उपलब्ध नहीं होगा। पूरी नकल कर ले, टोटल, कि उसमें सौ परसेन्ट आकड़े देने पढ़े कि अब इसमें कोई कमी नहीं रह गयी, किर भी नहीं होगा। इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। मुक्ति 'एक्सप्लोजन' है। एक विस्फोट है कार्य-कारण की श्रृंखला के बाहर। कुछ कहते हैं कि अगर यह ख्याल में आ जाय

तो वह अभी हो सकता है। पात्र अपात्र का सवाल नहीं, सभी पात्र हैं। साधना का उतना सवाल नहीं लेकिन कुछ लोग थोड़ा चक्कर खायेंगे। उनको अगर अपने घर भी आना हो तो वह पूरी बस्ती में घमे बिना नहीं आ सकते। उनके लिए जल्दी होगा कि वह पूरा गाव धूम आये। कुछ लोग, अपने पास भी उनको आना है, 'बाया दी अदर', वह दूसरे के बिना अपने पास भी नहीं आ सकते। उनका रास्ता ही वह है। फिर हमारे अपने अपने चक्कर हैं। वह चक्कर हम पूरा करेंगे। लेकिन कृपा करके अपना ही चक्कर पूरा करे, तब भी ठीक है। दूसरे ने जो चक्कर पूरा किया है उसको करने निकल जाते हैं आप तब बहुत मुश्किल में पड़ जायेंगे। वह आपका चक्कर ही नहीं है। कोई दूसरा उस चक्कर से अपने तक आया था। लेकिन आप वह नहीं हैं, आप दूसरे आदमी हैं, आप उस चक्कर से नहीं आ सकते हैं अपने तक।

पहली बार, जब उपनिषद पश्चिमी भाषाओं में अनुवादित हुए तो वहाँ जिन लोगों ने पढ़ा, उनको पहली जो तकलीफ हुई वह यह थी कि इनमें तो कोई साधना बतायी नहीं है कि क्या करना, क्या नहीं करना। क्या खाना, क्या नहीं खाना। क्या पहनना, क्या नहीं पहनना। क्या बुरा है, क्या भला है, यह सब उम्मे कुछ बताया हुआ नहीं है। किस तरह के धर्मग्रन्थ हैं? क्योंकि बाइबिल में सब बहुत साफ है। क्या करो, क्या न करो, यह बहुत साफ है। जाहिर है—यह करना है और यह नहीं करना है। यह तो धर्मग्रन्थ है। यह उपनिषद किस तरह का धर्मग्रन्थ है! जिसमें कोई चर्चा ही नहीं। जिसमें कोई साधना की प्रक्रिया नहीं, आचरण की कोई व्यवस्था नहीं। कठिन है समझना, कि बाइबिल में जो उपदेश हैं, धर्म से उसका कोई लेना-देना नहीं। वह नैतिक है। लेकिन नीति को धम समझ लिया जाता है। उपनिषद ठीक अर्थों में धर्म है। वहा नीति से कोई लेना देना नहीं है। वह सिर्फ रिमेम्बरिंग की बात है। वे यह कह रहे हैं कि तुम स्मरण करो, जिसे तुम भूल गये हो, जो तुम हो, जो तुम इसी वक्त हो, इसे स्मरण करो। इसे कहीं पाने नहीं जाना है, अभी और यही, हो ही तुम। सिर्फ स्मरण करो। यह सिर्फ विस्मृति है।

कृष्ण की दृष्टि में, जो हमें पाना है वह सिर्फ विस्मृत हुआ है। खोया नहीं है। जो हमें पाना है वह हम भूल गये हैं। बस, इससे ज्यादा नहीं है। वह हमें याद नहीं रहा है। इसलिए पहले ही चरण में उसको याद करो और कूद जाओ। इस लिए जो साधनाएं, जो नैतिकताएं, जो व्यवस्थाएं धर्म देगा, वह कृष्ण नहीं दे रहे हैं। कृष्ण का अहकार पहले ही क्षण में नहीं है। और जो आदमी भी आख खोलकर

देखेगा उसका अहंकार नहीं रह जायेगा। आंख बन्द करके हम जीते हैं इसलिए अहंकार रह जाता है। आप कहेंगे, कृष्ण को हुआ, मुझे क्यों नहीं होता है? आप आख बन्द करके जीते हैं। आपने कभी अपने जन्म के सम्बन्ध में सोचा है कि किसने आपको पैदा किया? आपने पैदा किया? कम से कम इतना तो तथ्य है कि आपने पैदा नहीं किया। और कुछ तथ्य न हो कि किसने आपको पैदा किया, इतना तथ्य है कि आपने पैदा नहीं किया। आप जैसे हैं, ऐसा आपको आपने नहीं बनाया, इतना तो तथ्य है। लेकिन हमें भी वहम पैदा हो जाता है। हमारे बीच में भी कई 'सेल्फ मेड' पागल होते हैं। वह सोचते हैं, मैंने अपने को बनाया। वह भगवान तक को तकलीफ नहीं देते उनको बनाने की। वह खुद ही पर अपना सब थोप लेते हैं कि मैंने अपने को बनाया। हम अपने को नहीं बनाते हैं। हमारा होना भी तो हमारे हाथ में नहीं है। ऐसे सीधे से सत्य भी हमें दिखायी नहीं पड़ते कि मेरा होना भी मेरे हाथ में कहा है? मैं हूँ, इसके लिए मेरी जिम्मेवारी कहा? मैं नहीं होता तो मैं किससे शिकायत करने जाता? जो नहीं है वह कहा शिकायत कर रहे हैं? नहीं होता तो नहीं होता, हूँ तो हूँ। मैं ऐसा हूँ तो ठीक, और ऐसा नहीं होता और बैसा होता तो क्या करता? अगर हम जीवन के तथ्यों में थोड़ी आख डालकर देखे तो हमें दिखायी पड़ेगा कि न जन्म हमारे हाथ, न मृत्यु हमारे हाथ। हमारे हाथ भी हमारे हाथ में नहीं हैं। जरा अपने हाथ से अपने हाथ को ही पकड़ने की कोशिश करे तो पता चले। कुछ भी हमारे हाथ में नहीं है। जहां कुछ भी हमारे हाथ में नहीं है वहां मैं कहने का अर्थ क्या है, प्रयोजन क्या है। जहा सभी कुछ होना है, जहा सभी कुछ एक साथ घट रहा है। कहा नहीं जा सकता कि आज बगीचे में जो फूल खिले हैं, अगर वह आज न खिलते तो जरूरी था कि मैं किर भी यहा होता। कोई नहीं कह सकता था। आम तौर से हम कहेंगे, इससे क्या सम्बन्ध है। बगीचे में फूल नहीं होते तो भी मैं यहा हो सकता था। जरूरी नहीं है। वह जो बगीचे में एक फूल खिला है, उसकी मीजूदगी और मेरा होना एक ही होने के दो छोर हैं। अब यह सूरज ही शात हो जाय तो हम सब यहीं शात हो जायेंगे। सूरज बहुत दूर है। करोड़ों मील दूर है। उसके होने पर हम निर्भर हैं। और सूरज भी किन्हीं महासूर्यों के होने पर निर्भर है। और वे महासूर्य भी और किन्हीं महासूर्यों के होने पर निर्भर हैं। सब निर्भर है। यहा जीवन 'इन्टरडिपेंडेंट' है। यहा जीवन परस्पर निर्भर है। यहा जीवन कटा कटा, अलग अलग नहीं। हम छोटे छोटे द्वीप नहीं हैं। हम महासागर हैं, यहा सब इकट्ठा है। इसको जरा सी आख खोलकर देख ले तो कोई याद दिलाना नहीं पड़ेगा कि मैं और तू हमारे मानवीय आविष्कार हैं, और बड़े गलत आविष्कार हैं। यह दिखायी पड़ जाय तो उसका

स्मरण आ जायेगा, जो है। जब तक यह दिखायी न पड़े, तब तक उसका स्मरण मुश्किल होगा। तब तक हम, अपने को मैं माने चले जायेंगे, दूसरे को तू माने चले जायेंगे और एक कल्पना में, एक पुराण में जी लेंगे, एक 'मिथ' में जी लेंगे। कृष्ण पहले ही चरण में कहते हैं, स्मरण करो, और कुछ मत करो। बस स्मरण करो। कौन हो, क्या हो, कहा हो, इसका स्मरण करो तो सब प्रकट हो जायेगा।

प्रश्न आवार्यजी, पूर्णता के सम्बन्ध में एक प्रश्न था। आपने सुबह कहा कि पूर्णता का मूल लक्षण आप शून्यता मानते हैं। बुद्ध भी तो परम शून्य थे। क्या उन्हे पूर्ण नहीं कहा जा सकता? और इसी के साथ क्या शून्यता स्वयं में बहुआयामी नहीं है?

उत्तर दो तीन बातें हैं। एक तो बुद्ध शून्यता पर पहुचे, जैसा अभी मैं कह रहा था। बुद्ध शून्यता पर पहुचे, वह उनका 'अचीवमेट' है। वह उन्होंने पाया। वे शून्य हुए। जो शून्यता पायी जायेगी वह 'वन डायमेशनल हो जाती है। उसकी एक दिशा हो जाती है। वह पाने वाले पर निर्भर हो जाती है। इसका ऐसा समझें। असल में मैं अपने भीतर से जिस चीज को शून्य कर दगा, जिस चीज को काट डाल्गा, अलग कर दूगा, वह समाप्त हो जायेगी, मेरे भीतर से हट जायेगी। एक तरह का शून्य उपलब्ध होगा। लेकिन वह शून्यता किसी चीज का अभाव होकर आयेगी। एक और शून्यता भी है, जो हम लाते नहीं। जो हमारे होने के बोध में ही जन्मती है। हम है ही शून्य। हम होने नहीं। शून्यना हमारा स्वभाव है। ऐसे हम है ही। जिस दिन शून्यता हमारा स्वभाव होती है, - माधवा नहीं, अस्याम नहीं, उपलब्ध नहीं, उस दिन शून्यता बहुआयामी, 'मन्टीडायमेशनल' हो जाती है। हमने किसी चीज को खाली करके अपने को शून्य नहीं किया। हम शून्य है ही, इसको स्मरण किया है। तो बुद्ध की जो शून्यता हमे दिखायी पड़ती है वह शून्यता लायी हुई है। और जो शून्यता लायी हुई है वही हम दिखायी पड़ती है। कृष्ण म हमे शून्यता कभी नहीं दिखायी पड़ी। कृष्ण को तो आदमी कहेंगे, बहुत भरे-पूरे आदमी है। बहुत 'आकुपाइड' आदमी है। कृष्ण की 'प्रेजेन्स' तो अनु-भव होती है, कृष्ण में 'एबसेस' अनुभव नहीं होती। कृष्ण में कुछ मौजूद है, यह तो पता चलता है। कृष्ण खाली है, यह पता नहीं चलता। पता हमे चलता है कि बुद्ध खाली है। उसका कारण है। जो हममे भरा है उसको बुद्ध ने निकाल दिया है, इसलिए बुद्ध हमे खाली लगते हैं। अगर हममे कोध है तो बुद्ध ने उसे निकाल दिया। अगर हममे हिंसा है तो बुद्ध ने उसे निकाल दिया। अगर हममे राग है तो

बुद्ध ने उसे निकाल दिया, अगर हममें मोह है तो बुद्ध ने उसे निकाल दिया। जिससे हम भरे हैं, बुद्ध उससे खाली हैं। इसलिए हमें लगता है कि यह शून्यता है। बुद्ध शून्य हुए।

असल में जिससे हम भरे हैं वह उनमें नहीं है। हम उनकी शून्यता को पहचान लेते हैं। कृष्ण की शून्यता हमें पहचान में नहीं आती। क्योंकि इस आदमी में अगर लोभ नहीं है तो भी आदमी जुआ खेलने बैठ सकता है। अगर इस आदमी में क्रोध नहीं है तो यह आदमी हाथ में चक्र लेकर कैसे उत्तर जाता है युद्ध में? अगर इस आदमी में हिंसा नहीं है तो अर्जुन को क्यों उकसाता है हिंसा के लिए? अगर इसमें राग नहीं है तो यह प्रेम क्यों करता है? जिससे हम भरे हैं, वह हमें कृष्ण में दिखायी पड़ता है। कृष्ण की शून्यता हमारी पकड़ में नहीं आ सकती। असल में जिस जिस को हम मनुष्यता की बीमारियां कहते हैं बुद्ध में उनका अभाव है। जहां तक मनुष्य के बीमार होने का सम्बन्ध है, बुद्ध बिल्कुल शून्य है। आदमी की कोई बीमारियां उनमें नहीं हैं। बस यहीं तक बुद्ध हमें दिखायी पड़ते हैं। इसके बाद बुद्ध एक और छलांग लेते हैं। वह हमें कभी दिखायी नहीं पड़ती। बुद्ध मर रहे हैं और आखिरी क्षण में भी उनके शिष्य उनसे पूछते हैं कि जब आप मर जायेगे तो आप कहां जायेगे? कहीं तो होंगे आप? मोक्ष में होंगे, निर्वाण में होंगे, कहां होंगे? बुद्ध कहते हैं, मैं कहीं नहीं होऊंगा। मैं होऊंगा ही नहीं। यह उनकी पकड़ में नहीं आता। क्योंकि वह मानते हैं कि जिसने लोभ छोड़ा, क्रोध छोड़ा, मोह छोड़ा, उसे कहीं होना चाहिए। हां, इस जमीन पर नहीं, मोक्ष में होना चाहिए, लेकिन कहीं होना चाहिए। बुद्ध कहते हैं, मैं कहीं नहीं होऊंगा। मैं ऐसे ही मिट जाऊंगा जैसे पानी पर खींची गयी रेखा मिट जाती है। जब हम पानी पर रेखा खींचते हैं तब वह होती है, और जब मिट जाती है तब बुद्ध पूछते हैं, वह कहां होती है? कहां चली जाती है, कहां रहती है? बस मैं पानी पर खींची गयी रेखा की तरह मिट जाऊंगा। मैं कहीं भी नहीं होऊंगा। बुद्ध की यह बात उनके शिष्यों की समझ में नहीं आयी। कृष्ण ऐसी ही पानी पर खींची रेखा की तरह जिन्दगी भर जीते हैं इसलिए कोई शिष्य भी नहीं खोज पाते। तो किसी की भी समझ में नहीं आते। बुद्ध और महावीर आखिरी क्षण में उस छलांग को भी पूरा करते हैं जो एक आयामी शून्यता से परम शून्य में छलांग हो जाती है। लेकिन उस शून्य को पकड़ नहीं पाते हम। उसको हम देख नहीं पाते। कृष्ण के साथ तो हमारी कठिनाई और ज्यादा हो जाती है क्योंकि वे उस शून्य में जीते ही हैं। वह रेखा किसी दिन मिटेगी नहीं ऐसा नहीं, वह प्रतिपल खींचते हैं और मिट जाती है।

न केवल खींचते हैं और मिट जाती है, बल्कि उससे विपरीत रेखा भी खींच देते हैं। रेखाएं रेखाएं हो जाती हैं। सब मिटता है, सब होता रहता है। बुद्ध शून्यता को किसी दिन उपलब्ध होते हैं, कृष्ण शून्य ही हैं और इसलिए इस कृष्ण की शून्यता को पकड़ना मुश्किल होता है। जिस दिन बुद्ध शून्य होते हैं उस दिन बुद्ध के भीतर जो कैद थी चेतना, जो अस्तित्व, वह मुक्त होकर विराट के साथ एक हो जाता है। लेकिन उस दिन वह बुद्ध नहीं रह जाते। उस दिन वह जो गौतम सिद्धार्थ पैदा हुआ था वह मरा था, उससे कोई सम्बन्ध नहीं है। वह जो भीतर एक शून्य था अस्तित्व का, वह विराट अस्तित्व के साथ एक हो गया। उस शून्य की कोई कथा नहीं है हमारे पास।

कृष्ण पूरे जीवन ऐसे जीते हैं कि उस शून्य की हमारे पास एक कथा है कि अगर बुद्ध भी उस शून्य के बाद जगत में जियें तो कैसा जियेगे। वहां तो हमें मौका नहीं मिलता। वह मौका हमें कृष्ण में मिलता है। बुद्ध का शून्य होना और समाप्त हो जाना एक साथ घटित होते हैं, कृष्ण का शून्य होना और होना एक साथ चलते हैं। अगर बुद्ध पूर्ण निर्वाण को, महानिर्वाण को पाकर वापस लौट आये तो वह कृष्ण जैसे होंगे। फिर वह चुनाव नहीं करेंगे। फिर वह यह नहीं कहेंगे कि यह बुरा है और यह भला है। फिर वह छोड़ेंगे, पकड़ेंगे नहीं। फिर वे कुछ भी नहीं करेंगे, फिर वे जियेंगे। कृष्ण वैसे जीते ही हैं। बुद्ध की जो परम उपलब्धि है, कृष्ण का वह सहज जीवन है। और इसलिए बहुत कठिनाई है। परम उपलब्धि लोग समाप्त हो जाते हैं। उपलब्धि होते होते खो जाते हैं इसलिए हमें बहुत परेशानी में नहीं डालते। जब तक वे होते हैं, हमारी नैतिक धारणाओं की परिपुष्टि उनसे होती मालूम पड़ती है, लेकिन यह आदमी होता ही शून्य है। इसलिए हमारी किसी नैतिक मान्यता को इससे पुष्ट नहीं मिलती। यह हमारा सारा का सारा अस्तव्यस्त कर जाता है। यह आदमी हमें बड़े भ्रम में छोड़ जाता है। हम समझ ही नहीं पाते कि अब क्या करें और क्या न करें। असल में बुद्ध और महावीर से करने के सूत्र निकलते हैं, कृष्ण से होने का सूत्र निकलता है। बुद्ध और महावीर से 'डूइंग' के लिए रास्ता मिलता है, कृष्ण से सिर्फ 'बीइंग' के लिए रास्ता मिलता है। कृष्ण सिर्फ है।

एक जैन फकीर से किसी आदमी ने जाकर पूछा कि मुझे ध्यान सिखायें। तो उस फकीर ने कहा, तुम मुझे देखो और सीख सको तो सीख लो। वह आदमी बहुत मुश्किल में पड़ गया क्योंकि वह फकीर अपने बगीचे में गढ़े खोद रहा है। उसने थोड़ी देर तो देखा, उसने कहा कि गढ़ा खोदना मैं बहुत देख चुका हूं, मैंने

भी बहुत सोदे हैं। आप कृपा करके ध्यान सिखायें। उस फकीर ने कहा, तुम अगर मुझे देखकर नहीं सीख सकते तो मैं और कैसे सिखा सकता हूं, मैं ध्यान हूं। मैं जो भी कर रहा हूं वह ध्यान है। मेरे गढ़े सोदने को ठीक से देखो। उस आदमी ने कहा, मुझे तो लोगों ने ऐजा था कि बड़े ज्ञानी के पास ऐज रहे हैं, मैं भी कहां आ गया? गढ़ा खोदना मुझे देखना होता तो मैं कहीं भी देख लेता। उस फकीर ने कहा, एक दो दिन रुक जाओ। कभी वह फकीर खाना खाने बैठता, कभी वह सो जाता, कभी वह स्नान करता, कभी वह गड्ढा खोदता, कभी वह बीज बोता। दो दिन में वह आदमी घबड़ा गया। उसने कहा, मैं ध्यान सीखने आया हूं इन सब बातों से मुझे कोई मतलब नहीं है। उस फकीर ने कहा, लेकिन मैं करना नहीं सिखाता हूं, मैं होना सिखाता हूं। अगर तुम मुझे गड्ढा खोदते देखो तो समझो कि ध्यान कैसे गड्ढा खोदता है। अगर तुम मुझे खाना खाते देखते हो तो देखो कि ध्यान कैसे खाना खाता है। मैं ध्यान करता नहीं, मैं ध्यान हूं। उस आदमी ने कहा, मैं भी किस पागल के पास आ गया। मैंने सदा यही सुना था कि ध्यान किया जाता है। अब तक मैंने सुना नहीं कि कोई ध्यान होता है। उस फकीर ने कहा, यह तो बहुत मुश्किल सवाल है कि पागल हम दोनों में से कौन है? और हम दोनों तो इसको तय कर ही न सकेंगे। हम सबने प्रेम किया है, हम कभी प्रेम नहीं हुए। इसलिए कोई आदमी अगर हमारे बीच आ जाए जो प्रेम है, तो मुश्किल में डाल देगा क्योंकि हम तो प्रेम करते हैं। 'लव एज एन एकट'-हमारे लिए आता है। 'लव एज बीइंग'-हमारे लिए कभी नहीं है। इसको प्रेम करते, उसको प्रेम करते, कभी करते नहीं, कभी करते। वह हमारा काम-धाम है। लेकिन एक आदमी जो प्रेम ही है वह हमें मुश्किल में डाल देगा। उसका होना ही प्रेम है। वह जो भी करता है वह प्रेम है। वह जो नहीं करता है वह भी प्रेम है। वह लड़ता है तो प्रेम है, वह गले लगाता है तो प्रेम है। वह जो भी करता है प्रेम है। यह आदमी हमें मुश्किल में डाल देगा। हम में से बहुत कहेंगे कि भाई हमें प्रेम करो। वह कहेगा, प्रेम मैं कैसे करूँ? मैं प्रेम हूं। प्रेम तो वे कर सकते हैं जो प्रेम न हों।

कृष्ण की यही कठिनाई है। कृष्ण का अस्तित्व शून्य है। शून्य हुए नहीं है। उन्होंने कुछ खाली नहीं किया। उन्होंने कुछ हटाकर जगह रिक्त नहीं बनायी। उन्होंने तो जो है उसको स्वीकार कर लिया। इसलिए शून्य हो गये। इस शून्यता में और बुद्ध और महाबीर की शून्यता में आखिरी क्षण के एक क्षण पहले तक फर्क रहेगा। बुद्ध और महाबीर आखिरी क्षण तक 'होंगे कुछ'। आखिरी छलांग में 'न

'कुछ' हो जायेगे। लेकिन कृष्ण पूरे जीवन 'न कुछ' हैं। यह शून्यता, जिसको कहें 'लिविंग नर्थिंगनेस' है। जीवंत शून्यता है। बुद्ध और महावीर की शून्यता जीवंत नहीं है। जीने के आखिरी क्षण तक तो वे उस शून्यता से भरे रहते हैं जो शून्यता हम पहचान लेते हैं कि यह यह खाली किया है। आखिरी क्षण में छलांग लेते हैं। इसलिए महावीर और बुद्ध दोनों कहेंगे, लौटना नहीं है —लौटना नहीं है। लेकिन कृष्ण राधा से कह सकता है कि हम बहुत बार पहले भी आये और नाचे, और बहुत बार फिर भी आयेंगे और नाचेंगे। बुद्ध और महावीर के लिए शून्यता महामृत्यु है। उसके बाद कोई लौटना नहीं है, खो जाना है। वह आवागमन का बन्द हो जाना है। कृष्ण कह सकता है कि आवागमन से मुझे क्या डर है। मैं शून्य हूँ ही। मुझे मोक्ष में और ज्यादा क्या मिलेगा? मैं जहां हूँ वहां मोक्ष है ही। मैं आता रहूँगा। इसलिए वह बड़ी अद्भुत बात कहते हैं। वह अर्जुन से कहते हैं, जब भी मुसीबत हो, मैं आ सकता हूँ। जब भी धर्म की गलानि हो मैं आ जाऊँगा। ऐसा बुद्ध और महावीर नहीं कह सकते। ऐसा उनका कोई वक्तव्य नहीं है कि दुनिया में मुसीबत हो, अन्धेरा हो, बीमारी हो, तकलीफ हो, अधर्म हो तो मैं आ जाऊँगा। क्यों कि वह कहेंगे, मैं आऊँगा कैसे, मैं तो मुक्त हो चुका हूँ। लेकिन कृष्ण कहते हैं, तुम फिक्र मत करना, कोई मुसीबत हो तो मैं आ सकता हूँ। आ सकने का यह मतलब नहीं है कि आ जायेंगे। इस आ सकने का कुल मतलब यह है कि इस आदमी को आने-जाने में कोई फर्क नहीं है। इसमें कोई बाधा नहीं पड़ती। यह शून्य है ही। इसलिए आने से क्या बिगड़ेगा, कुछ भी नहीं बिगड़ेगा।

शून्यता का यह फर्क है। महावीर और बुद्ध शून्यता को मुक्ति के अर्थों में ही ले पायेंगे। क्योंकि जीवन भर मुक्ति की आकांक्षा ही उनकी साधना है। इसलिए जब शून्यता आयेगी, वह कहेंगे, अब मुक्त हुए, विश्राम में गये। 'प्वाइंट आफ नो रिटर्न', अब इससे लौटना नहीं है। क्योंकि लौटने का उनके लिए एक ही मतलब साफ होगा कि वही ऋषि, वही लोभ, वही मोह, वही संसार, वही जंजाल, वही उपद्रव, वही मुसीबत। अब लौटना नहीं है। अब हम सबके बाहर हुए। इसलिए शून्य की घटना जब उनके चित्त में घटेगी तो वह डूब जायेंगे। उसमें खो जायेंगे विराट में। वह नहीं लौटने की बात कर सकते हैं। लेकिन कृष्ण के लिए कोई फर्क नहीं पड़ता। वह ऋषि में भी वही है। प्रेम में भी वही है, राग में भी वही है। सबमें वही है। इसलिए वह कहेंगे, अगर लौटना है तो मजे से लौट आयेंगे। उसमें कोई तकलीफ नहीं है। इधर कोई बेचैनी, कोई कठिनाई नहीं होती। आना जाना हो सकता है। इसमें बाधा नहीं है। इसलिए वह कह सकते हैं। उनका शून्य

जीवन्त है। लेकिन अनुभूति में कोई फर्क नहीं पड़ेगा। चाहे महावीर और बुद्ध का शून्य आपको मिल जाय तो भी आप आनन्द को उपलब्ध हो जायेगे, चाहे कृष्ण का शून्य आपको मिल जाय तो भी आप आनन्द को उपलब्ध हो जायेगे। लेकिन महावीर और बुद्ध का आनन्द जो है वह विद्वाम में ले जायेगा। कृष्ण का जो आनन्द है वह हो सकता है विराट सक्रियता में ले जाय। तो अगर हम ऐसा शब्द बना सकें, 'एकिट्व वायड' सक्रिय शून्य, तो कृष्ण पर लागू होगा। अगर हम ऐसा कोई शब्द बना सकें, निष्क्रिय शून्य, 'नानएकिट्व वायड' तो वह महावीर और बुद्ध पर लागू होगा। अनुभूति तो आनन्द की ही होगी। लेकिन एक आनन्द सृजनात्मक हो जायेगा, एक आनन्द लीन हो जायेगा। वह फर्क है।

**प्रश्न :** बुद्ध पूर्णता अर्थात् महाशून्यता के बाद भी तो चालीस साल जीते हैं ?

उत्तर : महावीर भी चालीस साल जीते हैं, बुद्ध भी चालीस साल बगलीस साल जीते हैं। लेकिन बुद्ध कहते हैं मरने के पहले कि वह जो निर्वाण मुझे हुआ था चालीस साल पहले, वह निर्वाण था, अब जो हो रहा है वह महानिर्वाण है। पहले निर्वाण में बुद्ध ने वही शून्य पाया था, जो हमें दिखायी पड़ता है। दूसरे महानिर्वाण में बुद्ध उस शून्य को पाते हैं जो हमें दिखायी नहीं पड़ता, जो कृष्ण को दिखायी पड़ सकता है। जब बुद्ध चालीस साल जीते हैं उस जीने में वह परम शून्य नहीं है। उस जीने में एक छोटी सी बाधा तो है ही। उस जीने में भी अभी कष्ट है। अभी होना चल रहा है। इसलिए बुद्ध अगर गांव गांव जा भी रहे हैं तो वह करुणावश जा रहे हैं, आनन्दवश नहीं। अगर वह दूसरे को समझा रहे हैं तो करुणा के कारण कि जो मुझे मिला है वह आपको भी कह दूँ कि शायद आपको मिल जाय। लेकिन कृष्ण अगर दूसरे को कुछ कह रहे हैं तो आनन्द के कारण, वह कोई करुणा के कारण नहीं। कृष्ण में करुणा को न खोज पाओगे। बुद्ध का व्यक्तित्व 'कम्पेशन' है। चालीस साल करुणावश वह जा रहे हैं, आ रहे हैं, लेकिन उस आखिरी क्षण की प्रतीक्षा है जब यह आना-जाना भी छूट जायेगा। इससे भी मुक्ति होगी। इसलिए बुद्ध कहते हैं, दो तरह के निर्वाण हैं—एक निर्वाण वह है, जो समाधि से मिलता है और एक महानिर्वाण है जब कि शरीर भी खो जाता है। मन ही नहीं खोता, शरीर भी खोता है। वही परम निर्वाण है। परम शून्य उससे ही मिलेगा। कृष्ण के लिए ऐसा नहीं है। कृष्ण के लिए निर्वाण और महानिर्वाण दो नहीं हैं, एक हैं।



## पर्व : तीन

कृष्ण का जन्म कब  
कृष्ण के वर्णित शरीर को काल-नगना  
कृष्ण का दर्शन से आशाय  
स्वधर्म की महत्ता  
कृष्ण गुरु नहीं  
'संशयात्मा दिलस्यति ....'

प्रश्न : आचार्यजी, कृष्ण का जन्म आज से कितने वर्ष पहले हुआ था ?  
 इस संबंध में आज तक क्या शोध हुई है ? आपका अपना निर्णय  
 क्या है ? और क्या समाधिस्थ व्यक्ति इसका ठीक उत्तर नहीं दे  
 सकता है ?

उत्तर : कृष्ण कब जन्मे, कब मरे, इसका कोई हिसाब नहीं रखा  
 गया है। न रखने का कारण है, जिन्हें हम सोचते हैं कि जो कभी जन्मते नहीं  
 और कभी मरते नहीं, उनका हिसाब रखना हमने उचित नहीं माला। हिसाब



उनका रखना उचित है, जो कमी जन्मते हैं और मरते हैं। ऐसा नहीं कि हिसाब हम नहीं रख सकते थे, इसमें कोई कठिनाई न थी, लेकिन वैसा हिसाब कृष्ण के व्यक्तित्व के बिल्कुल ही विलाफ पड़ता था। हमने कोई तिथि-बार का हिसाब कभी नहीं रखा।

पूरब के मुल्कों ने अपने महापुरुषों के जन्म और मृत्यु का कोई हिसाब रखने की कोशिश नहीं की। पश्चिम के मुल्कों ने ही कोशिश की है। उसका कारण है। पर जबमें पश्चिम का प्रभाव पूरब पर बढ़ा तबसे हमने भी फिक्र की है। उसका भी कारण है। पश्चिम की एक धारणा है सभी उन धर्मों की, जो यहूदी परम्परा में पैदा हुए हैं, चाहे ईसाइयत, चाहे इस्लाम, उनकी धारणा है एक ही जन्म की। एक जन्म और एक मृत्यु के बीच सब समाप्त हो जाता है। न उसके पीछे कुछ, न उसके आगे कुछ। फिर कोई जन्म नहीं। स्वभावत जिनकी ऐसी धारणा होगी कि एक जन्म तिथि और मृत्यु तिथि के बीच जीवन पूरा हो जाता है— न उसके पीछे, न उसके आगे जीवन की कोई यात्रा है, उन्हें जन्म और मृत्यु की तिथि को रखने का अगर बहुत मोहर रहा है तो आकस्मिक नहीं है। लेकिन जिन्होंने ऐसे जाना हो कि ये जन्म बहुत बार होता है, बहुत बार आता है और जाता है, अनन्त बार आना होता है, अनन्त बार जाना होता है, वह हिसाब भी रखे तो कितना हिसाब रखे! कैसे हिसाब रखे! उनका हिसाब रखना उनके अपने ही विचार को झुठलाना होगा। इसलिए उन्होंने हिसाब नहीं रखा।

जानकर ही यह हुआ है, सोचकर यह हुआ है, समझकर यह हुआ है। हिसाब नहीं रख सकते थे, ऐसी कोई कमी के कारण नहीं हुआ है। सबत्, सन् नहीं थे हमारे पास, ऐसा नहीं है। दुनिया में सबसे पुराना सबत् हमने ही पैदा किया। लेकिन जानकर हमने यह बात छोड़ दी।

दूसरी बात पूछी है कि क्या समाधिस्थ व्यक्ति यह नहीं बता सकता कि ठीक तारीख क्या है जब कृष्ण पैदा हुए? गैर समाधिस्थ बता भी दे, समाधिस्थ बिल्कुल नहीं बता सकता है। क्योंकि समाधि का समय से कोई सम्बन्ध नहीं है। समाधि जहा शुरू होती है वहा समय समाप्त हो जाता है। समाधि 'नानटेम्पोरल' है। समय का उससे कोई वास्ता नहीं, वह कालातीत है। समाधि का अर्थ ही है समय के बाहर हो जाना। जहा घड़ी-पल मिट जाते हैं, जहा परिवर्तन सो जाता है, जहा वही रह जाता जो सदा से है। जहा अतीत नहीं होता, जहा भविष्य नहीं होता, सिर्फ वर्तमान रह जाता है। जहा घड़ी के काटे एकदम ठहर जाते हैं और

नहीं चलते। समाधिक्षण में बटित नहीं होती क्षण के बाहर बटित होती है। समाधिस्थ तो बिल्कुल नहीं बता सकेगा। कृष्ण कब पैदा हुए और कब मरे, यह बता नहीं सकेगा। समाधिस्थ यह भी नहीं बता सकेगा कि मैं कब पैदा हुआ और कब समाप्त हो जाऊगा। समाधिस्थ इतना ही कह सकेगा, कैसा पैदा होना, कैसा मरना! न मैं कभी पैदा हुआ, न मैं कभी मरूँगा। अगर समाधिस्थ से हम पूछें कि यह जो समय की धारा बह रही है, यह जो क्षण आते हैं और जाते हैं, यह कुछ आता है, व्यतीत हो जाता है, कुछ आ रहा है, कुछ अतीत हो गया है, कुछ भविष्य है इसके सम्बन्ध में क्या ख्याल है? तो समाधिस्थ कहेगा, न कुछ आता है, न कुछ जाता है। जो जहा है वही है। सब वही ठहरा है। जाने और आने का ख्याल समय की धारणा है, गैर समाधिस्थ मन की धारणा है। 'टाइम एज सच', समय ही मन की उत्पत्ति है। जैसे ही हम मन के बाहर गये, वहां कोई समय नहीं है। इसे दो तीन ब्रातों में समझने की कोशिश करे।

समय मन की उत्पत्ति है, जब हम कहते हैं तो बहुत कारणों से कहते हैं। पहला कारण तो यह है कि अगर आप सुख में हैं तो समय सिकुड़ जाता है। अगर आप दुःख में हैं तो समय फैल जाता है। अगर आप किसी प्रियजन से मिल रहे हैं तो घडिया जन्दी भागती मालूम पड़ती है और किसी शब्द से मिलते हैं तो बड़ी मुश्किल से गुजरती मालूम पड़ती है। घड़ी अपने ढग से काटे धूमाये चली जाती है। लेकिन मन? अगर रात घर में कोई मरा रहा है, मरण शैव्या पर पड़ा है, रात कटटी हुई मालूम नहीं होती। रात बहुत लम्बी मालूम होती है। ऐसा लगता है, कि यह रात समाप्त होगी कि नहीं होगी। घड़ी अपने ढग से धूमती है; लेकिन ऐसा लगता है, आज घड़ी धूम रही है या नहीं धूम रही है। काटे धूमे चल रहे हैं। लेकिन कोई प्रियजन आ गया है, रात ऐसे बीत जाती है जैसे क्षण में बीत गयी। और डर लगता है कि अब बीती अब बीती, जल्दी क्यों बीत रही है, घड़ी जल्दी क्यों चल रही है? घड़ी जल्दी, नहीं चलती। घड़ी अपने ही ढग से चलती रहती है। लेकिन मन की स्थितियों पर समय का माप निर्भर करता है।

आइन्स्टीन से लोग जब पूछा करते थे कि तुम्हारी 'रिलेटीविटी', यह सापेक्षता की जो धारणा है, यह हमें समझाओ। तो आइन्स्टीन कहता था कि यह बहा कठिन है। शायद जमीन पर दस बारह आदमी हैं, जिनसे मैं बात कर सकता हूँ इस सम्बन्ध में, सभी से बात नहीं कर सकता। लेकिन फिर भी तुम्हारी समझ में आ सके, ऐसा मैं तुम्हें उदाहरण देता हूँ। वह कहता था कि अगर किसी आदमी को गर्म स्टोव के पास बिठा दिया जाय तो समय और तरह से बीतता है। उसे

अपनी प्रेयसी के पास बिठा दिया जाय तो समय और तरह से बीतता है। हमारा सुख, हमारा दुख हमारे समय की लम्बाई को तय करता है।

समाधि सुख और दुख के बाहर है। समाधि आनन्द की अवस्था है। वहाँ कोई लम्बाई ही नहीं रह जाती। वहा समय बचता ही नहीं। समाधि के क्षण में कोई नहीं कह सकता कि कृष्ण कब पैदा हुए, कब विदा हुए। समाधि के क्षण में तो कोई कहेगा कि कृष्ण है ही। उनका होना शाश्वत है। और कृष्ण का होना ही शाश्वत नहीं है, होना तो हमारा भी शाश्वत है। सब होना शाश्वत है।

रात आप स्वप्न देखते हैं। शायद कभी रुधाल न किया हो कि स्वप्न की समय की स्थिति बिल्कुल बदल जाती है जागने से। एक आदमी ने झपकी ली है क्षण भर को, लेकिन वह सपना देखता है इतना बड़ा जिसे देखने में वर्षे भर लग जाय। वह देखता है, उसका विवाह हो गया, उसे बच्चे हो गये, वह बच्चों की शादिया कर रहा है। बरसो लग जाय। क्षण भर झपकी लगी है और झपकी टूटी कि हम कहते हैं, इतना लम्बा सपना देखा। हम उससे कहेंगे, पागल हो गये हो? इतना लम्बा सपना क्षण भर में कैसे देखोगे? अभी तो तुम जागते थे। अभी आख लगी ही थी और खुल गयी। इस पलक झपने में तुम इतना लम्बा सपना देख कैसे सकोगे? वह कहेगा, देख कैसे सकूगा नहीं, मैंने देखा।

स्वप्न में मन बदल जाता है। इसलिए समय की धारणा बदल जाती है। गहरी नीद में, सुषुप्ति में समय नहीं रह जाता। इसलिए आप जब बताते हैं कि रात बहुत गहरी नीद आयी तब भी आप जब समय का पता लगाते हैं वह पता गहरी नीद से नहीं लगता। वह कब आप सोये और कब आप जागे, इन दो क्षणों के बीच में जो गुजर गया उसका हिसाब आप रख लेते हैं। लेकिन आपको बताया न जाय कि कब आप सोये और कब आप जागे तो आप कितनी देर सोये, तब आप बता न सकेंगे।

मैं एक स्त्री को देखने गया। वह नौ महीनों से बेहोश है। और चिकित्सक कहते हैं, वह तीन साल तक बेहोश रहेगी और शायद बेहोशी में ही मरेगी। सभावना कम है कि उसका होश बापस आये। अगर तीन साल बाद वह स्त्री होश में आयी तो क्या बता सकेगी कि तीन साल वह बेहोश थी? इधर घड़ी हजारों बार धूम गयी होगी। इधर कलेण्डर हजारों बार फट गया होगा। न, वह स्त्री कुछ न बता सकेगी कि वह तीन साल बेहोश थी। सुषुप्ति में चित्त सो जाता है। इसलिए वहा भी समय का कोई दोष नहीं रह जाता। समाधि में चित्त खो जाता है, समाप्त हो

आता है, रहता ही नहीं। समाधि अवित्त या 'नो माइण्ड' की अवस्था है। समाधि से कोई पता नहीं चलेगा कि कृष्ण कब हुए और कब नहीं हुए।

एक जेन फकीर हुआ रिशाई। उसने एक दिन सुबह अपने बक्तव्य में कहा कि पागलो, कौन कहता है कि बुद्ध हुए। उसके सुनने वालों ने कहा, आपका दिमाग तो ठीक है न। आप, और कहते हैं, कौन कहता है बुद्ध हुए? बुद्ध के ही भद्र में रहता है वह फकीर। बुद्ध की ही मूर्ति भर चढ़ाता है फूल। बुद्ध की मूर्ति के साथ में नाच लेता है। बुद्ध का प्रेमी है। और एक दिन सुबह कहता है कि कौन कहता है बुद्ध हुए? और उस रिशाई ने कहा, पागल मैं था क्योंकि हो तो वही सकता है जो एक दिन न भी हो जाय। लेकिन जो सदा है उसके होने का क्या अर्थ? आज मैं तुमसे कहता हूँ, बुद्ध कभी नहीं हुए, ये क्षृती कहानिया है। लोगों ने कहा, शास्त्र कहते हैं कि हुए। वे चले हैं इस पृथ्वी पर, उठे, बैठे, बोले हैं। गवाहिया हैं इस बात की। चश्मदीद गवाह है। उस फकीर ने कहा, छाया चली होगी, छाया उठी, होगी, छाया गिरी होगी। बुद्ध न कभी उठते, न कभी बैठते, न कभी चलते। 'दी शैडो ओनली'। जो पैदा होता है, जो मरता है वह हमारी छाया से ज्यादा नहीं है, वह हम नहीं हैं। इसलिए जानकर हिसाब नहीं रखा गया, सोचकर हिसाब नहीं रखा गया।

धर्म इतिहास नहीं है। इतिहास होता है उसका, जो आता है, जाता है। इति-वृत्ति-शुरू होता है, समाप्त होता है। आदि होता है, अन्त होता है। धर्म मनातन है। मनातन का अर्थ होता है जो सदा है। हम ही कब हुए हैं और कब नहीं हो जायें। सदा से हैं, 'इटरनिटी', शाश्वतता है। लेकिन हमें तो समय का हिसाब है पूरे बक्त। सुबह होती है, साझ होती है। अडिया बीतती है, गुजरती है। हमें समय का स्थाल है। हमारे पास एक गज है समय का, हम उससे नापते हैं। हमारा नापना स्वाभाविक है। सत्य नहीं। हमारी समझ जैसी है वैसा हमारा नाप है। हमारा नाप वैसा ही है जैसे कुएं के मेढ़क ने सागर से आये मेढ़क से कहा था कि तेरा सागर कितना बड़ा है? कुएं के मेढ़क ने छलाय लगायी— आधे कुएं तक गया और कहा, इतना बड़ा? सागर से आये मेढ़क ने कहा, माफ कर, तेरे कुएं से कोई हिसाब न बैठेगा। तो उसने कहा, और कितना बड़ा होगा? उसने पूरी छलाय लगायी— कुएं के एक कोने से दूसरे कोने तक, और कहा, इतना बड़ा। लेकिन जब सागर के मेढ़क की आखों में फिर भी सदेह देखा तो उस कुएं के मेढ़क ने कहा, तेरा दिमाग खराब यालूम होता है। कुएं से बड़ी कोई जगह है? एक और रास्ता है उसने कहा, आखिरी भाप तुझे बताये देता हूँ।

उसने कुए का पूरा गोल चक्कर लगाया और कहा, इतना बड़ा ! उस सागर के मेढ़क ने कहा कि भाई तेरे कुए से हम सागर को नापेंगे तो बहुत मुश्किल में पड़ जायेंगे । कोई इकाई ही नहीं बनती । उस कुए के मेढ़क ने कहा, बाहर हो जाओ कुए के । कुए से बड़ी कभी कोई चीज देखी ? आकाश भी कुए के बराबर ही देखा है । जब भी उस कुए के मेढ़क ने ऊपर देखा तो आकाश भी कुए के बराबर ही दिखायी पड़ा था । उसने कहा, आकाश, जो सबसे बड़ी चीज है, वह भी कुए से बड़ी नहीं है । सागर क्या तुम्हारा आकाश से भी बड़ा होगा ?

हम समय के कुए में जीते हैं । सब चीजे आती हैं, जाती हैं । सब चीजे बटी हैं, कुछ हैं जो अतीत हो गया, कुछ हैं जो भविष्य हैं, और एक छोटा-सा क्षण वर्तमान का है जो आता भी नहीं कि चला जाता है । तो हम पूछते हैं, किस क्षण में कौन हुआ ? हम किमी क्षण में अपने को अनुभव करते हैं किसी कुए में कैद, इसलिए हम पूछते हैं कि वे किस कुए में थे ? किस क्षण की सीमा में थे ? नहीं, न जीसस, न बुद्ध, न महावीर, न हृष्ण, कोई समय की सीमा में नहीं बाधे जा सकते । हम बाधते हैं, वह हमारी सीमाओं का आग्रह है । जिस दिन पश्चिम की समझ और थोड़ी बढ़ेगी उस दिन वह क्राइस्ट के जन्म दिन और मृत्यु दिन को भूल जाएगा, छोड़ देगा । पूरव की समझ इस मामले में बहुत गहरी रही है । इसके कारण अजीब घटनाएँ घट गयी हैं । इमलिए हमारे जो सोचने के ढग हैं और कहने के ढग हैं वह दुनिया नहीं समझ पाती ।

अगर हम तीर्थकरों की उम्र की बात पूछने जाय तो कोई लाखों वर्ष जीता है, कोई करोड़ों वर्ष जीता है । अब कोई यह कैसे मानेगा ? यह नहीं हो सकता । कोई हजारों फीट ऊचा है । किसी का मिर आकाश को छूना है । यह कैसे हो सकता है ? यह कोई मानेगा नहीं । मानने की बात भी नहीं है । समझने की बात है । अगर कुए का मेढ़क बहुत ही हिम्मत करे तो वह क्या कहेगा ? वह कहेगा हजार कुए के बराबर होगा, और क्या कहेगा । लाख कुए के बराबर होगा, करोड़ कुए के बराबर होगा । कोई सख्त लो होनी ही चाहिए । कुए से ही नापा जाना चाहिए सागर । तो जो अनादि है, जो सनातन है, उनको हम कहे कि करोड़ वर्ष है उनकी उम्र, लेकिन वर्ष तो मौजूद रहेगा ही । उससे ही हम नापेंगे । जिनका ओर-छोर नहीं, तो हम कहेगे, जमीन पर उनके पैर होते हैं, मिर आकाश को छूता है । लेकिन फिर भी गज और फीट से ही नाप चलेगा । जो जानते थे उन्होंने यह सब नाप, सब मापदण्ड तोड़ दिये हैं । उन्होंने कहा, हम यह हिसाब ही छोड़ दे । हम यह हिसाब रखते ही नहीं । बिना हिसाब के हृष्ण हैं ।

समाधिस्थ इस सम्बन्ध में इतना ही कहेगा, कृष्ण सदा है ।

प्रश्न . आचार्यजी, क्राइस्ट का हिसाब रखा जा सका, वह १९७० साल पहले हुए, तो क्या कृष्ण का हिसाब नहीं रखा जा सकता ?

उत्तर : रखा जा सकता था । आस-पास जो लोग थे, उनपर निर्भर करती थी बात । जीसस के आस-पास जो लोग थे उनपर निर्भर हुआ । जीसस ने नहीं रखा है हिसाब । क्योंकि जीसस के अगर वचन देखौंतो समझोगे । जीसस का एक वचन है -- अब्राहम एक पैगम्बर हुआ जीसस के सैकड़ों वर्ष पहले । जीसस से किसी ने पूछा कि अब्राहम तो आपके पहले हुआ, तो जीसस ने कहा—‘नो, बिफोर अब्राहम वाज, आइ वाज’ । इसके पहले कि अब्राहम था, मैं था । इसका क्या मतलब हुआ ? जीसस ने तो टाइम तोड़ दिया । जीसस ने समय तोड़ दिया । अब्राहम तो सैकड़ों हजारों साल पहले हुआ, लेकिन जीसस कहता है, अब्राहम होने के पहले मैं था । लेकिन जो लोग उनके आस-पास थे उनके पास समय की एक धारणा थी । उन्होंने कोई सागर नहीं देखा था । उन्होंने कुआ देखा था । उनको यह बात बड़ी ‘मिस्टीरियस’ लगी होगी । उन्होंने कहा, ठीक है, कहते हैं तो कुछ रहस्य की बात होगी । लेकिन वह समझ नहीं कि वह समय कि धारणा तोड़ने की बात है । जीसस से कोई पूछता है कि तुम्हारे प्रभु के राज्य में खास बात क्या होगी ? तो जीसस कहते हैं, ‘देअर शैल बी टाइम नो लागार’ । एक खास बात होगी कि वहा समय नहीं होगा । लेकिन जो लोग आस-पास थे ‘रिकाड’ रखते थे -- ‘रिकाड’ जीसस थोड़े ही इकट्ठा करते हैं, रिकाड कृष्ण थोड़े ही रखते हैं । कृष्ण के आम-पास जो लोग थे वैसे लोग जीसस को नहीं मिले इस मामले में । इस जमीन पर जो लोग पैदा हुए उनका सौभाग्य बहुत और है । जीसस के आस-पास ‘क ख ग’ कक्षा के लोग थे । इसीलिए तो उन्होंने उनको सूली पर लटका दिया । क्योंकि वह आदमी इतना बेबूझ हो गया कि सिवाय मारने के कोई उपाय न रहा । हमने कृष्ण को, महावीर को या बुद्ध को सूली नहीं दी । इसका कारण यह नहीं है कि ये जीसस से कुछ कम खतरनाक लोग थे । इसका कुल कारण इतना ही है कि एक लम्बी यात्रा है इस देश की जिसमें हमने बहुत खतरनाक लोगों को सहा । जिसमें हमने बहुत खतरनाक लोग देखे, जिसमें हमने बहुत अलौकिक, अद्भुत आदमी देखे । और हम धीरे-धीरे राजी हो गये । हमारे पास कुछ समझ पैदा हो गयी जिसका हम उपयोग कर सके । इसका उपयोग जीसस के बक्त में नहीं हो सका । इसका उपयोग मुहम्मद के बक्त में नहीं हो सका । मुहम्मद के पास वे लोग न थे जो महावीर के पास थे ।

जीसस के पास वे लोग न थे जो कृष्ण के पास थे । इसलिए फर्क पड़ा । इसलिए ही फर्क पड़ा, और कोई कारण नहीं है । यह समझ लेना चाहिए ठीक से कि न तो कृष्ण ने कुछ लिखा है, न तो क्राइस्ट ने कुछ लिखा है । जिन्होने सुना है, उन्होने लिखा है ।

क्राइस्ट एक गाव में ठहरे हुए है । भीड़ लगी है लोगों की उन्हें देखने, और तभी भीड़ में आवाज आती है कि रास्ता दो । जीसस की मामिलने आ रही है । तो क्राइस्ट हसते हैं, वह कहते हैं मेरी कैसी मामी ? क्योंकि मैं पैदा कब हुआ ? लेकिन 'रिकार्ड' रखने वालों ने तारीख तय कर रखी है । उन्होने लिख लिया कि वह कब पैदा हुए । अब यह आदमी कहता है, कैसी मेरी मामी, कौन मेरी मामी ? मैं कब पैदा हुआ ? मैं सदा से हूँ । रिकार्ड लिखने वालों ने यह भी लिख दिया है कि उन्होने ऐसा कहा और यह भी लिख दिया कि वह कब पैदा हुए । कृष्ण को जो रिकार्ड लिखने वाले लोग मिले वह ज्यादा समझदार थे । उन्होने कहा, जो आदमी कहता है, मैं सदा से हूँ । जो अर्जुन से कहता है कि यह मैं तुमको ही नहीं समझा रहा, इसके पहले मैंने फला को समझाया था, इसके और पहले मैंने फला को समझाया था, इसके और पहले मैंने फला को समझाया था और ऐसा नहीं है कि तुमको समझाकर सब चुक जायेगा । मैं आता रहूँगा और समझाता रहूँगा । और यह सामने जो लोग खड़े हैं, तुम सोचते हो, मर जायेगे, तो तुम पागल हो, नासमझ हो । यह पहले भी हुए और मर गये, उसके पहले भी हुए थे, अभी भी मरेंगे और किर होते रहेंगे ।

इस आदमी की जन्मतिथि लिखना ठीक न था । अन्यायपूर्ण था । नहीं लिखी गयी । इतिहास खोज करेगा तो मुश्किल में पड़ेगा । क्याकि हमने जानकर रिकार्ड बनाये । हमने सब उपाय किये हैं कि रिकार्ड बचाये न जा सके । हमने सब उपाय किये हैं कि तिथि का कोई पता ही न रहे । उपनिषद किसने लिखे, वेद किसने लिखे ? लेखक का नाम जानकर गवाया गया है, क्योंकि वह जो कह रहा था, वह कह रहा था कि यह मैं नहीं कह रहा हूँ यह परमात्मा बोल रहा है । तो कोई जरूरत नहीं है । मुझे छोड़ा जा सकता है । मेरे बिना काम चल सकता है । पश्चिम ने रिकार्ड रखे हैं । जीसस जगह जगह कहते हैं, यह मैं नहीं बोल रहा हूँ, वह परम पिता आकाश में जो है, वही बोल रहा है । 'नाट आइ, बट माई फादर स्पीक्स' । लेकिन लिखने वाला तो लिखेगा कि जीसस के बचन है ।

कोई कभी नहीं है इस देश की, कि इस देश के पास कोई 'हिस्टोरिक सेन्स' नहीं है । ऐसा नहीं है कि इतिहास का कोई बोध नहीं है हमारे पास । लेकिन

इतिहास के बोध को हमने जानकर झुठलाया है, क्योंकि हमारे पास इतिहास के कुए से भी बड़ा एक बोध है 'इटरनिटी' का, शाश्वतता का बोध है। हमे घटनाओं का उतना मूल्य नहीं है जितना घटनाओं के भीतर खिपी हुई आत्मा का मूल्य है। हमने इस बात की फिक्र नहीं की कि कृष्ण ने क्या खाया और क्या पिया। हमने इस बात की फिक्र की कि वह कौन था कृष्ण के भीतर जो खाने को भी देखता था, पीने को भी देखता था। हमने इसकी फिक्र नहीं की कि वह कब पैदा हुए और कब मरे। हमने इसकी फिक्र की कि वह कौन था जो पैदा होने में आया और मौत में बिदा हुआ। वह कौन था जो भीतर था। हमने उस 'इनरमोस्ट स्प्रिट' की, भीतरी अन्तरात्मा की चिन्ता की। उसके लिए कोई तारीखें अर्थपूर्ण नहीं हैं।

प्रश्न आचार्यजी, यह ठीक है, कृष्ण या क्राइस्ट जैसे लोगों का आत्मिक व्यक्तित्व इटरनल है, लेकिन वर्णित शरीर तो आता है और जाता है। हम कृष्ण के वर्णित शरीर की काल गणना जानना चाहते हैं। कृष्ण लोलाए कब हुई, महायात्र कब हुआ? ये स्थूल घटनाएँ तो जानी जा सकती हैं। इसकी कुछ जानकारी हो?

उत्तर शरीर का जिनके लिए मूल्य है उनके लिए स्थूल घटनाओं का भी मूल्य है। शरीर को जो छाया समझते हैं उनके लिए कोई मूल्य नहीं रह जाता। कृष्ण कहते ही नहीं कि यह जो शरीर दिखायी पड़ रहा है यह मैं हूँ। जीसस भी नहीं कहते कि यह शरीर जो दिखायी पड़ रहा है यह मैं हूँ। वे खुद ही इन्कार कर जाते हैं कि इस पर रुद्धि मत करना, क्योंकि यह मैं नहीं हूँ। अगर इसका तुमने हिसाब रखा तो मेरा हिसाब नहीं होगा। बुद्ध के मरने के बाद पाच सौ वर्षों तक बुद्ध की कोई प्रतिमा नहीं बनायी गयी, क्योंकि बुद्ध ने कहा था कि तुम मेरी प्रतिमा बनाना, इस शरीर की मत बनाना। अब कैसे हम बुद्ध की प्रतिमा बनायें? तो पाच सौ वर्ष तक बुद्ध के मरने के बाद बुद्ध जिस वृक्ष के नीचे बैठते थे - बोधिवृक्ष, जहा वह घटना घटी जिससे वे बुद्ध हुए - उस वृक्ष का चित्र बनाकर नीचे जगह साली छोड़ देते थे।

स्थूल देह छाया से ज्यादा नहीं है। उसका हिसाब रखने का कोई प्रयोजन भी नहीं है। जिन्होंने भी उसका हिसाब रखा है उन्होंने इसीलिए हिसाब रखा है कि उन्हे सूक्ष्म का कोई पता नहीं था। जिन्हे भी सूक्ष्म का पता है उनके लिए स्थूल अर्थ हो जाता है। आप अपने सपनों का कोई हिसाब रखते हैं? कौन से सपने आपने देखे और कब देखे? सपने देखते हैं और भूल जाते हैं। क्यों हिसाब नहीं रखते? क्योंकि उन्हे सपना समझ लेते हैं। कृष्ण की जो जिन्दगी हमे दिखायी

पड़ती है वह सपने से ज्यादा नहीं है। जीसस ने कौन से सपने देखे, हमने हिसाब रखा है? वह हिसाब हमने नहीं रखा। हो सकता है, कभी वह जमाना आये कि आदमी पूछने लगे कि तुम्हारे कृष्ण हुए तो उन्होंने कोई सपने देखे थे या नहीं। हुए होंगे तो सपने तो जरूर देखे होंगे और अगर सपने देखे ही नहीं तो होने में भी शक आ जाता है। यह हो सकता है किर कि अगर सपने बहुत महत्वपूर्ण बन जाय और कोई कौम सपनों का बहुत हिसाब रखने लगे तो ठीक है, उनका हिसाब भी महत्वपूर्ण हो जायेगा। और जिस आदमी के सपनों का हमें कोई पता न हो तो उस आदमी के होने का भी सदेह हो जायेगा। जिस जिन्दगी को हम स्थूल कहते हैं, कृष्ण या क्राइस्ट या महावीर या बुद्ध उस जिन्दगी को सपना समझते हैं। और अगर उनके आम-पास के लोगों को भी यह समझ में आ गया हो कि वह सपना है तो हिसाब नहीं रखा जायेगा। और हिसाब नहीं रखा गया। हिसाब न रखा जाना बहुत सूचक है। हिसाब रखा गया होता तो समझा जाता कि लोगों ने कृष्ण को नहीं समझा, इसलिए हिसाब रख लिया।

मैं कह रहा था कि पाच सौ वर्ष तक बुद्ध की प्रतिमा नहीं बनी। कोई चित्र नहीं बना। अगर कोई चित्र भी बनाता था तो बोधिवृक्ष का चित्र बनाता था और नीचे जगह खाली छोड़ देता था जहा बुद्ध होने चाहिए। खाली जगह! बुद्ध एक खाली जगह ही थे। पाच सौ साल बाद चित्र और मूर्तियां बनायी गयी, क्योंकि पाच सौ साल में वे लोग खो गये जिन्होंने समझा था कि बुद्ध की स्थूल जिन्दगी तो सिर्फ सपना है, और पाच सौ साल में वे लोग प्रमुख हो गये जिन्होंने कहा, हिसाब तो रखना पड़ेगा — बुद्ध पैदा कब हुए, बुद्ध मरे कब, बुद्ध ने कहा क्या? उनकी शक्ल कैसी थी? उनका शरीर कैसा था? वह सब हिसाब बहुत दिन के बाद रखा गया। ज्ञानियों ने हिसाब नहीं रखा। जब ज्ञानी खो गये तो अज्ञानियों ने हिसाब रखा। स्थूल शरीर का हिसाब अज्ञान से ही जन्मता है। और फिर इससे क्या फर्क पड़ता है कि कृष्ण न भी हुए हो। कोई फर्क नहीं पड़ता। कृष्ण के होने से आपको क्या फर्क पड़ेगा? नहीं, लेकिन हम कहेंगे कि अगर कृष्ण न हो तो हमें फर्क पड़ जायेगा। मैं कहता हूं, कृष्ण हुए या न हुए, इससे कोई फर्क नहीं पड़ेगा। कृष्ण के होने की जो सम्भावना है आन्तरिक, वह हो सकती है या नहीं हो सकती है, सवाल यह है। यह सवाल नहीं है कि कृष्ण हुए या नहीं हुए, सवाल यह है कि ऐसा व्यक्ति हो सकता है या नहीं हो सकता। अगर हो सकता है और हुए, तो भी फर्क नहीं पड़ता। और अगर नहीं हो सकता है फिर भी हुए तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता। समाधिस्थ चित्र को इससे कोई प्रयोजन नहीं है।

अगर मुझसे कोई आकर कहे कि वह हुए ही नहीं, क्योंकि कोई रिकार्ड नहीं है, तो मैं कहूँगा कि मानो कि नहीं हुए। हर्ज क्या है? सवाल यह है ही नहीं। महत्त्व-पूर्ण सवाल यह है कि क्या ऐसे आदमियों की 'पाँसिबिलिटी' है? अगर आपके मन को यह समझ में आ जाय कि ऐसा आदमी सम्भव है तो आपकी जिन्दगी बदल सकती है। उधर यह भी पक्का हो जाय, पत्थर मिल जाय लिखे हुए कि वह हुए, सारी कहानी मिल जाय, परन्तु आपका मन इस बात को मानने को राजी न हो कि ऐसा व्यक्ति हो सकता है तो आप कहेगे कि नहीं, लिखा है पत्थरों पर, लिखा है किताबों में, लेकिन कहानी होगी यह आदमी हो नहीं सकता, क्योंकि इसकी सभावना नहीं है। कृष्ण के होने की सभावना है। इसीलिए हुए। इसीलिए हो सकते हैं। इसीलिए है भी। लेकिन इस आन्तरिक व्यक्तित्व को ध्यान में लेने की जरूरत है। हमें तो शरीर दिखायी पड़ता है, वह जो आत्मिक है वह दिखायी नहीं पड़ता। लिहाजा हम बहुत उत्सुक होते हैं उस शरीर में। अभी मैंने कहा था की बुद्ध भर रहे हैं और कोई उनसे पूछता है कि आप मरने के बाद कहा होगे? तो बुद्ध उससे कहते हैं—कही भी नहीं, क्योंकि पहले भी मैं कही नहीं था। और जो तुम्हें दिखायी पड़ रहा है, वह मैं नहीं हूँ। जो मुझे दिखायी पड़ रहा है वह मैं हूँ। इसलिए बाहर की जिन्दगी सिर्फ देखी गयी एक कहानी और एक नाटक हो जाती है। उसका कोई मूल्य नहीं है। और हमने कोई हिसाब नहीं रखा है। लेकिन इस मुल्क का मन अब कमज़ोर पड़ा है और वह भयभीत भी हुआ है। उसे डर पैदा हो गया है कि क्राइस्ट तो 'हिस्टारिक' मालूम पड़ते हैं, ऐतिहासिक मालूम पड़ते हैं। हमारे कृष्ण कहानी मालूम पड़ते हैं। कृष्ण का, क्राइस्ट के मुकाबले में, हमारे पास कोई प्रमाण नहीं है। क्राइस्ट के लिए तो प्रमाण है। हमारा चित्त भी उन्हीं धारणाओं से प्रभावित हुआ है जिन धारणाओं ने क्राइस्ट की जिन्दगी को बचाकर रखने की कोशिश की है। तो हम भी पूछते हैं उन्हीं बातों को जो बेमानी है। अच्छा होगा, जिस दिन हमारी हिम्मत फिर बढ़ सकेगी और हम उनसे कह सकेंगे कि तुम भी पागल हो, क्राइस्ट जैसा आदमी हुआ है और तुम मरने—जीने की तारीखों का हिसाब रखते हो। सुमने समय गवाया। इतने कीमती आदमी की बाबत इतनी गैरकीमती जानकारी रखने की कोई जरूरत नहीं है। इसलिए मैं कहता हूँ, उसकी चिन्ता ही न करे। उसकी चिन्ता आपके मन की खबर देती है कि आपके लिए महत्त्वपूर्ण क्या है। जन्म और मरण? शरीर का होना? घटनाएँ? ये बाहर की परिषिथि हैं जीवन की। या वह महत्त्वपूर्ण है जो इन सबके बीच लड़ा है, इन सबके भीतर लड़ा है अलिङ्ग, असंग? आप भी लौटकर देखें अपनी पिछली जिन्दगी—तो उसे बाप जिये थे सब में, या सपना देखा था? इन दोनों में फँकँ कैसे कर

पायेंगे ? आप कैसे तय कर पायेंगे कि सच में मैं यह जिया था जो मुझे याद आता है पा मैंने सपना देखा था ।

च्वागत्से ने एक बहुत गहरी मजाक की है । च्वागत्से एक दिन सुबह उठा और उसने कहा कि मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूँ । तुम सब इकट्ठे हो जाओ, मेरी मुश्किल को हल करो । आश्रम के सारे लोग इकट्ठे हो गये । बड़े हैरान हुए, क्योंकि उन सबकी मुश्किल च्वागत्से हमेशा हल करता था । वह भी मुश्किल में पड़ सकता था, यह उन्होंने सोचा भी नहीं था । उन्होंने पूछा, तुम और मुश्किल में ? हम तो सोचते थे, तुम मुश्किल के पार चले गये । च्वागत्से ने कहा, मुश्किल ऐसी ही है जिसको पार की मुश्किल कह सकते हो । उन्होंने पूछा, क्या है सवाल तुम्हारा ? च्वागत्से ने कहा, रात मैंने एक सपना देखा कि मैं तितली हो गया हूँ और फूलों पर उड़ रहा हूँ । तो उन्होंने कहा, इसमें क्या मुश्किल है ? हम सभी सपने देखते हैं । च्वागत्से ने कहा, मामला खत्म नहीं होता अभी । सुबह मैं उठा और मैंने देखा कि मैं फिर च्वागत्से हो गया हूँ । अब सवाल यह है कि कहीं ऐसा तो नहीं है कि तितली सो गयी हो और सपना देख रही हो कि च्वागत्से हो गयी है । अगर आदमी सो कर सपना देख सकता है, अगर आदमी सपने में तितली हो सकता है तो तितली भी सपने में आदमी हो सकती है । तो मैं तुमसे यह पूछता हूँ कि असली क्या है ? रात जो मैंने सपना देखा तितली होने का, वह च्वागत्से सपना देख रहा था या अब तितली सपना देख रही है । मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूँ । आश्रम के लोगों ने कहा, यह हम से हल न हो सकेगा । आपने तो हमें भी मुश्किल में डाल दिया । अभी तक तो हम निश्चित हैं कि रात जो देखते हैं वह सपना है और दिन में जो देखते हैं वह असलियत है । लेकिन च्वागत्से ने कहा, पागलो ! रात तुम जो देखते हो तब दिन में जो देखा था वह भूल जाता है, उसी तरह जैसे दिन में जब तुम जागते हो तो वह भूल जाता है जो रात देखा था और जो सपना था । बल्कि और मजे की बात है, दिन में जागकर रात का सपना तो थोड़ा याद भी रह जाता है, लेकिन रात में सपने में सोते बक्त दिन का जागा हुआ बिल्कुल याद नहीं रह जाता । अगर याददाश्त ही निर्णयिक है तो रात का सपना ज्यादा असलियत होगा दिन के सपने से । और अगर एक आदमी सोया रहे और न जागे तो कैसे सिद्ध कर पाये कि जो वह देख रहा है वह सपना है । सपने में तो सपना सत्य ही मालूम होता है । सपना नहीं मालूम होता । असल में जिसे हम जिन्दगी कहते हैं, जिसे हम स्थूल कहते हैं वह कृष्ण जैसे व्यक्तित्व के लिए सपने से ज्यादा नहीं है । जो उनके पास थे उनकी भी समझ में आ गया है कि वह सपना है । इसलिए कोई हिसाब नहीं रखा गया । यह जान कर हुआ है ।

यह होश पूर्वक छोड़ा गया रिकार्ड है। इसके छोड़ने में सूचना है, इगित ह कुछ, कि इसका हिसाब तुम भी मत रखना। इस हिसाब में पड़ना ही मत। इसमें पड़ जाओगे तो शायद उसका पता न चल सके जो हिसाब के बाहर खड़ा हस रहा है।

प्रश्न आजार्यजी, हम पूर्णतया सहमत हैं। कृष्ण के सम्बन्ध में जानने की हमें कोई आवश्यकता नहीं कि वह कब पैदा हुए, कब उनका मरण हुआ, कृष्ण कैसे जिये, उन्होंने क्या कहा, उनके जीवन की कथा का क्या रहस्य है? परन्तु अभी अभी आपने कहा है कि धर्म इतिहास नहीं है, धर्म सनातन है। तो कृष्ण गीता के अध्याय तीन और श्लोक पैतोस में कहते हैं कि दूसरे के धर्म से अपना गुणरहित धर्म भी अति उत्तम है, अपने धर्म में मरना भी कल्पणाकारक है, दूसरे का धर्म भयावह है। तो कृष्ण का आशय किस धर्म से है? उस धर्म से, जो रुदिगत है, जो व्यक्तिगत है, अथवा उस धर्म से जो शाश्वत है और सनातन है और सबका है। तब तो अच्छा और बुरा, अपना और पराया कहने की क्या जरूरत थी कृष्ण को?

उत्तर बहुत जरूरत थी। कृष्ण जब कहते हैं कि स्वय के धर्म में मर जाना भी श्रेयस्कर है—स्वधर्म निधनम् श्रेय, और दूसरे के धर्म में मरना बहुत भयावह है तो दो-तीन बाते समझ लेनी जरूरी है। एक तो यह कि यहा धर्म से अर्थ हिन्दू, ईसाई, मुसलमान, जैन का नहीं है। यहा जो धर्म का फासला बना कर रहे हैं वह स्व और पर का है। वह हिन्दू है, मुसलमान है, ईसाई है इससे कोई प्रयोजन नहीं है। यहा सबाल है निजता और परता का। यहा वे यह कह रहे हैं कि तुम नकल में मत पड़ना। तुम किसी और के रास्ते पर मत चलने लगना, तुम किसी और को 'इमीटेट' मत करने लगना, तुम किसी और का अनुकरण मत करने लगना। तुम किसी के अनुयायी मत हो जाना। तुम किसी को गुरु मत बना लेना, तुम अपने गुरु रहना। तुम अपनी निजता को किसी से आच्छादित मत हो जाने देना। तुम किसी के पीछे मत चल पड़ना, क्योंकि कोई जहा जा रहा है, हो सकता है वह उसकी निजता हो, परन्तु तुम्हारे लिए परतवता बन जायेगी और बनेगी ही। महाबीर के लिए जो निजता है वह किसी दूसरे के लिए निजता नहीं हो सकती। क्राइस्ट के लिए जो मार्ग है वह किसी दूसरे के लिए मार्ग नहीं हो सकता। उसके कारण है। हम कही भी जायेंगे तो हम स्वय होकर ही जा सकते हैं। पहुचकर खो जायेगा 'स्व', लेकिन अभी है। और जिस दिन 'स्व' खो जायेगा उस दिन 'पर' भी खो जायेगा। उस

दिन जो धर्म उपलब्ध होगा, वह धर्म शाश्वत है, सनातन है। लेकिन अभी हम सागर की तरह नहीं हैं, नदियों की तरह हैं। अभी हर नदी को अपने रास्ते से जाना होगा सागर तक। सागर में पहुँचकर नदिया भी खो जायेगी, रास्ते भी खो जायेगे। लेकिन यह बात नदियों से की जा रही है, सागर से नहीं की जा रही। यह बात अर्जुन में की जा रही है। कृष्ण नदी से कहते हैं, अपना मार्ग छोड़कर दूसरी नदी के मार्ग पर मत पड़ जाना। दूसरी नदी का अपना मार्ग है, अपनी गति है, अपनी दिशा है। वह अपने मार्ग, अपनी गति, अपनी दिशा से सागर तक पहुँचेगी। और तू भी नदी है। तू अपना मार्ग, अपनी गति, अपना रास्ता बनाना और सागर तक पहुँच जाना। नदी है तो सागर तक पहुँच ही जायेगी। कोई नदी बधे बधाये रास्तों पर नहीं चलती। कोई जीवन बधे बधाये रास्ती पर नहीं चलता। और जब भी हम दूसरे का अनुकरण करते हैं, हमारे लिए बधा बधाया रास्ता 'रेडीमेड' मिल जाता है। तब हम आत्मधाती हो जाते हैं, तब हम अपने को मारने लगते हैं और दूसरे को ओढ़ने लगते हैं। अगर कोई मेरे पीछे चलेगा तो वह अपने को मारेगा। उसे ध्यान मुक्षपर रखना पड़ेगा यानी जो मैं करता हूँ वैसा वह करे। जैसा मैं जीता हूँ वैसा वह जिये। जैसा मैं उठता हूँ वह उठे। वह अपने को मारेगा मुझे ओढ़ेगा। वह मुझे कितना ही ओढ़ ले तो भी मैं उसके लिए वस्त्र से ज्यादा नहीं हो सकता। मैं वस्त्र ही रहूँगा। बड़े गहरे में तो वह वही रहेगा जो है। गहरे में तो वह वही रहेगा जिसने ओढ़ा है, वह वह नहीं हो सकता जो ओढ़ा गया है। ओढ़ने वाला भीतर अलग ही खड़ा रहेगा।

कृष्ण जब कहते हैं—‘स्वधर्मे निधनम् श्रेय’ तो वह यह कहते हैं कि अपने ढग से मर जाना भी श्रेयस्कर है। दूसरे के ढग से जीना भी श्रेयस्कर नहीं। क्योंकि दूसरे के ढग से जीने का मतलब ही जिये हुए मरना है। अपने ढग से मरने का अर्थ नये जीवन को खोज लेना है। अगर मैं अपने ढग से मर सकता हूँ, और मरने में भी निजता रख सकता हूँ तो मेरी मौत भी ‘आर्थिक’ हो जायेगी, प्रामाणिक हो जायेगी। मेरी मौत है। मैं मर रहा हूँ। लेकिन हमने अपनी जिन्दगी को भी उधार और ‘बॉरोड’ कर लिया है तो वह ‘आर्थिक’ नहीं है। तो कृष्ण कहते हैं, जीवन में प्रामाणिक होना। प्रामाणिक होने का एक ही अर्थ है कि निजता को बचाना। चारों तरफ से हमले होंगे। चारों तरफ वे लोग होंगे जो चाहेंगे, आओ मेरे पीछे आ जाओ। असल में कोई अगर मेरे पीछे चले तो मेरे अहकार को छड़ी तृप्ति मिलती है। एक चले तो, दो चले तो। अगर दस चले और लाल्हा चले तो भारी तृप्ति मिलती है। तब मुझे लगता है कि मैं कुछ ऐसा हूँ जिसके पीछे चलना

पड़ता है। मैं कुछ हूँ। और जो भी मेरे पीछे चलेगा उसे मैं पूरी तरह गुलाम बनाना चाहूँगा। उस पर मैं अपनी आज्ञा, अपना अनुशासन पूरा थोप देना चाहूँगा। मैं उसकी स्वतंत्रता जरा सी भी बचने न देना चाहूँगा। क्योंकि उसकी स्वतंत्रता मेरे अहकार को चुनौती होगी। इसलिए मैं चाहूँगा, वह मिट जाय। मैं उसपर आरोपित हो जाऊँगा। सभी गुरु यही करेंगे। लेकिन जब कृष्ण यह कह रहे हैं तो बहुत अद्भुत बात कह रहे हैं—जो कि गुरु कहने की हिम्मत नहीं कर सकता, सिर्फ मित्र कर सकता है। इसलिए ध्यान रहे, कृष्ण अर्जुन के गुरु नहीं है, सिर्फ सखा है। और कभी भी गुरु की जगह खड़े नहीं होते। सिर्फ मित्र की जगह खड़े होते हैं। गुरु सारथी बनकर नहीं बैठ सकता था। गुरु कहता, मैं बैठूँगा रथ में, तू सारथी बन। गुरु कहता, मैं और लगाम पकड़ूँगा घोड़ा चलाऊँगा? मैं बैठूँगा रथ में। तू घोड़ा बन, तू लगाम बन। कृष्ण बैठ सके सारथी बनकर, यह बड़ी अद्भुत घटना है। घटना यह कहती है कि नाता मित्रता का है। मित्रता में नीचे और ऊपर कोई नहीं होता। जब कृष्ण अर्जुन से यह कह रहे हैं कि स्व को खोज, तू निजता को खोज, तो वे यह कह रहे हैं कि वह जो तेरी 'इन्डीवीजुअलिटी' है, वह जो तेरा होना है उसको प्रामाणिक रूप से पहचान और वही तू बन। तू उससे भिन्न मत कर, न बन। किस कारण से उन्हे उस क्षण यह कहना पड़ा?

अर्जुन की पूरी अन्तरात्मा क्षत्रिय की है। एक लड़ाके की, एक 'फाईटर' की है। उसका रोया रोया लड़ने वाले का है। वह एक सैनिक है। लेकिन बाते वह कर रहा है सन्यासी की। बाते वह भगोड़े की कर रहा है इस समय, योद्धा की नहीं। अगर वह जगल में सन्यास लेकर बैठ जाय और उसे सिंह दिखायी पड़े तो वह भजन नहीं करेगा, जूझ जायेगा उससे। वह आदमी न तो ब्राह्मण है, न आदमी बैश्य है। न वह शूद्र है कि श्रम करके आनंद पा सकता है। न वह ज्ञान की चर्चा करके आनन्द पा सकता है, न वह धन कमा कर आनन्द पा सकता है। उसका आनन्द चुनौती मेर है। उसका आनन्द कही जूझने मेर है। वह किसी अभियान मे ही अपने को पा सकता है। किसी 'एडवेचर' मे ही अपने को पा सकता है। लेकिन बाते वह दूसरी करता है। इसलिए वह स्वधर्म से च्युत हो रहा है। कृष्ण उससे कहते हैं कि तू बाते कैसी कर रहा है? मैं तो सोचता था, तू क्षत्रिय है। मैंने तो समझा था अर्जुन, कि तू लड़ाका है। तू 'एस्केपिट' नहीं है, तू भगोड़ा नहीं है। पर, तू बाते पलायनबादी की कर रहा है। तू कहता है कि यह मर जायेग, कि मैं मर जाऊँगा, कि मर जाने से बड़ा बुरा हो जायेगा। तू कहीं किसी और को तो नहीं ओढ़ रहा है? कहीं तूने सुनी सुनायी बाते तो नहीं अपने ऊपर ओढ़ ली। क्योंकि

सुनी सुनायी बाते तू ओढ़कर कुछ कर न पायेगा । तू भटक जायेगा । तू जो है उसकी खोज कर । अगर वह ब्राह्मण है तो कृष्ण न कहेगे उसको कि तू लड़ । अर्जुन भी यह कहने की हिम्मत नहीं जुटा सकता कि वह ब्राह्मण है । वह ब्राह्मण है नहीं । उसके सारे व्यक्तित्व की जो धार है वह तलवार की है । उसके हाथ में तलवार हो तो ही वह निखरेगा । युद्ध के गहरे क्षण में ही वह अपनी आत्मा को खोज पायेगा । उसे अपनी आत्मा और कही मिलने वाली नहीं है । इसलिए वह उससे कहते हैं कि अपने धर्म में मर जाना बेहतर है । तू क्षत्रिय होकर मर जा । अगर तुझे भारना न जचता हो तो मरना तो जच ही सकता है? तू लड़ और मर जा । लेकिन लड़ने से मत भाग । क्योंकि उससे भागकर तू जियेगा जरूर, लेकिन वह मरा हुआ जीना होगा, वह 'डैड लाइफ' होगी और 'डैड लाइफ' से 'लिविंग डैथ' बेहतर है ।

धर्म से यहा प्रयोजन निजताओं से है और इस मुन्क ने निजताओं को चार बड़े विभाग में बाटा है । जिनको हम वर्ण कहते रहे हैं, वह मोटे विभाजन हैं निजताओं के । ऐसा नहीं है कि दो ब्राह्मण एक जैसे होते हैं । या दो क्षत्रिय एक जैसे होते हैं । नहीं, दो क्षत्रिय दो जैसे ही होते हैं । लेकिन फिर भी क्षत्रिय होने की एक समानता, एक 'सिमिलेटरी' उनमें होती है । मनव्य को बहुत खोज बीन करके चार हिस्सों में बाटा है । कोई है, जो सेवा किये बिना रमन पा सकेगा । लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि वह नीचा है । वहा भूल हो गयी । जिन्होंने जाना था उनके ऊपर उन्होंने नियम छहरा किये जो नहीं जानते थे । जिन्होंने जाना था उनका कहना कुल इतना था कि कोई है जो सेवा करके ही कुछ आनन्द पा सकेगा । उमसे उमकी सेवा छीन ली जाय, वह आनन्द से रिक्त हो जायगा, उसकी आत्मा खो जायेगी । कोई स्त्री मेरे पास आती है, वह कहती है दो क्षण मुझे पैर दाढ़ लेने दे । न मैंने उमसे कहा, न मैंने उससे आग्रह किया, न पैर दाढ़ने से मुझमें कुछ मिलेगा । लेकिन उसे क्या हो रहा है? वह पैर दाढ़कर जरूर कुछ पायेगी । अपनी आत्मा पायेगी । मुझमें कुछ नहीं मिल सकता, लेकिन सेवा उसका रस है तो वह अपनी आन्मा पायेगी, वह अपनी निजता पायेगी ।

कोई है, जो सब धन छोड़ सकता है ज्ञान के लिए । भूखो मर सकता, भीख माग सकता, धर-द्वार छोड़ सकता है । हमे बड़ी हेरानी होगी । एक वैज्ञानिक है, वह एक जहर को अपनी जीभ पर रख सकता है इस बात का पता लगाने के लिए कि क्या आदमी इससे मर जाता है? वह इस आविष्कार में मरेगा, लेकिन ब्राह्मण है वह । ज्ञान की उसकी खोज है । वह अपनी आत्मा को पा लेगा । जहर

को जीभ पर रखकर जान लेगा कि हां, इससे आदमी भर जाता है। शायद यह कहने को भी न बचे वह, लेकिन उसका भर जाना कह देगा। लेकिन इससे वह तृप्त होगा। इससे वह अपनी आत्मा को पा लेगा। हमें बड़ी हैरानी होगी कि पागल है यह आदमी! हजार सुख थे इस दुनिया में, उन्हे छोड़कर जहर की जाच करने गया। कोई और रास्ता न था, कोई और जाच न कर सकता था? जाच ही कर लेनी थी तो कुछ और कर लेता। इसके चित्त की जो धारा है वह जानने की है। इसे सेवा से कोई रस न मिलेगा। इसे कोई किताना ही कहे कि पैर दबाने से बहुत रस आता है, तो यह कहेगा कि तुम्हे आता हो तो तुम मेरे पैर दबा दो। मैं तो नहीं दबाता। यह रस इसकी समझ के बाहर पड़ेगा।

कोई है जो किसी युद्ध के क्षण में, वह युद्ध चाहे किसी भाँति का हो, अपनी पूरी चमक को पा लेता है। उसकी चमक युद्ध के क्षण में ही निखरती है। वह एक क्षण को उस जगह पहुच जाता है जहा उसका सब दांव पर लग जाता है। पूरा जीवन दाव पर लग जाता है, जहा तथ करना मुश्किल हो जाय कि जिन्दगी या मौत! उस क्षण में उसके भीतर जो छिपा है वह प्रगट होगा और फूल बन जायेगा। वह क्षत्रिय है।

फिर कोई राकफेलर है, कोई मार्गन है। मार्गन से किसी दिन मजाक में उसके सेक्रेटरी ने कहा कि जब मैं आपको नहीं जानता था तब तो मैं सोचता था और सपने देखता था कि कभी मैं भी मार्गन हो जाऊँ। लेकिन जब आपके निकट आया और निजी सेक्रेटरी की तरह रहा तब से, आपसे कहना चाहता हूँ, अगर भगवान मुझे फिर से भौका दे तो मैं मार्गन कभी न होना चाहूँगा। मार्गन ने कहा, तुम्हे मुझमे ऐसी क्या तकलीफ दिखायी पड़ती है। सेक्रेटरी ने कहा, मैं बड़ा हैरान हूँ, आपके दफ्तर के चपरासी भाड़े नौ बजे दफ्तर पहुचते हैं, दस बजे कलर्क पहुचते हैं, साढ़े दस बजे सेक्रेटरी पहुचते हैं, बारह बजे डाइरेक्टर्स पहुचते हैं। तीन बजे डाइरेक्टर्स चले जाते हैं, चार बजे सेक्रेटरी चले जाते हैं, पाच बजे कलर्क चले जाते हैं। साढ़े पाच बजे चपरासी चले जाते हैं। आप दफ्तर सुबह पाच बजे पहुच जाते हैं, शाम को सात बजे जाते हैं। मैं आपका चपरासी होऊँ तो भी ठीक। आप यह क्या कर रहे हैं? मार्गन को वह आदमी न समझ सकेगा। मार्गन के पास वैश्य का चित्त है। वह तृप्त हो रहा है। वह अपनी आन्धा को खोज रहा है। वह हसता है। वह कहता है चपरासी होकर साढ़े नौ बजे आने में कहा वह आनन्द जो मालिक होकर सुबह सात बजे आने में है। माना कि डाइरेक्टर्स तीन बजे चले जाते हैं, लेकिन डाइरेक्टर बिचारे चले ही जायेंगे, मैं मालिक हूँ।

यह व्यक्ति, किसी गहरी मालकियत में ही तृप्त हो सकता है। इस मुल्क में हजारों लाखों व्यक्तियों के हजारों साल के अध्ययन के बाद यह तय किया था कि आदमी चार मोटे विभाजन में बाटे जा सकते हैं। इस विभाजन में कोई नीचा-ऊपर न था। लेकिन बहुत जल्दी, जो नहीं जानते थे उन्होंने तय कर दिया कि कौन नीचा, कौन ऊपर। उससे कष्ट खड़ा हो गया। वर्ण की तो अपनी वैज्ञानिकता है। वर्ण व्यवस्था का अपना ढग है। वह एक अन्तर्बृष्टि है मनुष्य के व्यक्तित्वों में, और व्यक्तित्व ऐसे हैं।

कृष्ण अर्जुन से यह कह रहे हैं कि तू ठीक से पहचान ले कि तू है कौन? और तू जो है उसी में मर, और तू जो नहीं है उसमें जीने का पागलपन मत कर। इस स्व के होने में वर्ण पर्याप्त नहीं है, क्योंकि वर्ण बहुत मोटे विभाजन है। दो व्यक्ति भी एक जैसे नहीं, एक एक व्यक्ति अपने ही जैसा है। 'यूनीक' है, बेजोड़ है। असल में, परमात्मा कोई 'मेकेनिक' कोई यत्नविद् नहीं है। एक 'क्रियेटर' है। एक स्फटा है।

अगर रवीन्द्रनाथ से कोई कहे कि एक कविता जो आपने लिखी थी, वैसी ही दूसरी लिख दो तो रवीन्द्रनाथ कहेगे, तुमने क्या मुझे चुका हुआ समझा है, खत्म हुआ समझा है। क्या मैं मर गया? जो कविता मैंने एक दफा लिख दी, लिख दी, बात खत्म हो गयी। अब दुबारा मैं वही लिखूँ तो मतलब हुआ, मेरा कवि मर चुका। मैं दूसरी कविता लिख सकता हूँ। कोई चित्रकार दुबारा वही चित्र नहीं बना सकता।

एक दफा बहुत भजे की घटना घटी। पिकासो का एक चित्र तीन या चार लाख रुपये में बिका। जिसने खरीदा था, वह पिकासो के पास ही दिखाने लाया। उसने कहा, यह 'आर्टिक' तो है? प्रामाणिक तो है न, आपका ही है न बनाया हुआ? कोई नकल तो नहीं है। पिकासो ने कहा, आर्टिक नहीं है, नकल है। तूने मुफ्त पैसे खराब किये। उस आदमी ने कहा, क्या कह रहे हैं आप? आपकी पत्नी ने गवाही दी है कि आपने ही बनाया है। पिकासो की पत्नी आ गयी, उसने कहा कि यह चित्र तो आपका बनाया हुआ है। मैंने आपको बनाते देखा, ये दस्तखत आपके हैं, यह नकल नहीं है। पिकासो ने कहा, यह मैंने कब कहा कि मैंने नहीं बनाया? ऐसा मैंने नहीं कहा। लेकिन यह मेरे पुराने चित्र की प्रतिकृति है, मैंने फिर से इसे बनाया है। इसलिए यह नकली है 'आर्टिक' नहीं है। इसको कोई दूसरा चित्रकार भी उतार सकता था। इसको बनाते बक्त मैं क्रियेटर नहीं था। इसको बनाते बक्त मैं

सिफे 'इमीटेटर' था। किसी पिछले पिकासो की नकल है यह। वह जो पहला चित्र था वह आर्थेटिक था, वह मैंने बनाया था। वह मैंने उतारा नहीं था।

परमात्मा सृजन कर रहा है। वह एक सा दूसरा पता नहीं बनाता। एक सा दूसरा फूल नहीं बनाता, एक सा दूसरा ककड़ नहीं बनाता। एक सा दूसरा आदमी नहीं बनाता। वह चुक नहीं गया। जिस दिन चुक जायेगा उस दिन वह रिपीट करना शुरू कर देगा। तब वह 'नान आर्थेटिक' आदमी बूनाने लगेगा। वह महाबीर एक दफा बनाता है, कृष्ण एक दफा, बुद्ध एक दफा, आपको भी एक दफा बनाता है। आपको भी नहीं दोहराया कभी। यह बड़ी गरिमा की बात है। आप भी एक ही बार बनाये गये हैं— न पहले, न पीछे, न आगे।

तो जो आप हैं, उस निजता को आप नकल में मत गवा देना। क्योंकि परमात्मा तक ने नकल नहीं की जब उसने आपको बनाया, आप कहीं नकल करके नकली मत बन जाना। इसलिए कृष्ण कहते हैं— "स्वधर्मं निधनम् श्रेय"। अपने ही धर्म में मर जाना बेहतर है। "परधर्मो भयावह" — दूसरे का धर्म बहुत भय का है। उससे बचना, उससे सावधान रहना, उससे भयभीत रहना। भूलकर भी दूसरे के रास्ते पर मत जाना, भूलकर भी दूसरा बनने की कोशिश मत करना। स्व बनने की चेष्टा ही धर्म है, नदों के लिए। सागर के लिए तो न कोई स्व है, न कोई पर है। लेकिन वह सिद्धि की बात है। वह आखिरी जगह है जहाँ हम पहुंचते हैं। जहाँ से हम चलते हैं वह जगह नहीं है। जहाँ से हम चलते हैं वहाँ से हमें व्यक्ति की तरह चलना होगा। जहाँ हम पहुंचते हैं वहाँ हम अव्यक्ति हो जाते हैं। वहाँ न कोई स्व है, न कोई पर है। लेकिन उस जगह पहुंचेंगे आप 'स्व' की तरह, 'पर' की तरह आप कभी न पहुंचेंगे। उसको ध्यान में रखकर वह बात कही गयी है।

**प्रश्न** स्वधर्म की महत्ता पर इसी सदर्थ में प्रकाश डालें।

आपने कहा कि कृष्ण कसी गुह की तरह खड़े नहीं होते, लेकिन अर्जुन तो हर बार शिष्य की तरह नीचे बैठकर, उनके चरणों में न त होकर प्रश्न पूछता है?

उत्तर इसमें दो तीन बातें समझनी चाहिए — एक, अर्जुन के व्यक्तित्व को थोड़ा भी समझेंगे तो यह नहीं कहा जा सकता कि क्षत्रिय होना उसकी निजता नहीं है। वह क्षत्रिय ही है। और जब विषाद उसे पकड़ता है तब वह विषाद क्षण भर को आयी हुई घटना है। अर्जुन को विषाद पकड़ने का कारण यह नहीं है कि कोई मर जायेगा। अर्जुन को विषाद पकड़ने का कारण है कि अपने लोग मर जायेंगे।

अगर अर्जुन के सामने युद्ध के मैदान में सगे सम्बन्धी न होते तो अर्जुन बिल्कुल मूलियों की तरह उन्हे काट सकता था। अर्जुन को विषाद हिंसा के कारण नहीं पकड़ रहा है, ममत्व के कारण पकड़ रहा है। अर्जुन को ऐसा नहीं लग रहा है कि मारना बुरा है। मारना बुरा है, यह तो वह 'रेश्नलाइजेशन' खोज रहा है। बुनियादी विषाद तो यह है कि ये अपने ही प्रियजन हैं। कोई सगे बन्धु हैं, कोई रिश्तेदार है। गुरु सामने खड़े हैं, जिनसे सब सीखा। वह द्वोण हैं, पितामह भीष्म हैं। कौरव भी सब भाई हैं जिनके साथ बचपन में खेले और बड़े हुए, जिनको कभी सोचा नहीं कि मारना पड़ेगा। एक ममत्व उसे पकड़ रहा है। इसलिए ब्राह्मण होने की बात नहीं है यह, क्योंकि ब्राह्मण होने का मतलब ही है कि ममत्व छूटे। सच तो यह है कि कृष्ण वौं जो कह रहे हैं वह ममत्व छोड़ने को कह रहे हैं। अगर अर्जुन यह कहता है कि मारना ही मेरे मन में नहीं उठता तो कृष्ण ने यह बातें न कही होती, जो कही हैं। कृष्ण महावीर को नहीं समझा सकते थे। ऐसे महावीर भी क्षत्रिय के घर में जन्मे थे। व्यवस्था से क्षत्रिय थे। लेकिन महावीर यह नहीं कह रहे थे कि ये मेरे हैं। उनका विषाद यह नहीं था कि मेरों को कैसे मारू, मेरों को तो वह बिल्कुल बिना विषाद के छोड़कर चले आये। मेरों का तो कोई सवाल न था। नहीं, उनका प्रश्न ही और था। वह प्रश्न यह था कि मारना ही क्यों? मारने का प्रयोजन ही क्या? मारने का अर्थ ही क्या? मारने में धर्म ही नहीं है, यह उनका सवाल था। यदि कृष्ण उनसे कहते कि 'स्वधर्मं निधनम् श्रेय' तो वह कहते, मेरा स्वधर्म यह है कि मैं न मारू और मर जाऊ। वह कृष्ण से कहते कि तुम अपनी बात मुझमें मत कहो। वह परधर्म हो जायेगा। ठीक यही गीता अगर महावीर से कही होती तो महावीर रथ से उतरते, नमस्कार करते और जगल चले जाते। कोई फर्क नहीं पड़ने वाला था। अर्जुन को ये बात जँच गयी। जँच गयी उसका कारण यह नहीं कि कृष्ण जँचा सके। जँच गयी इसलिए कि था तो वह क्षत्रिय। 'टिप्परेरी फेज' आ गयी थी उसमें इन बातों की, कि ये मर जायेगे, ये मेरे हैं। इसलिए कृष्ण उस 'फेज' को हटा सके। यह आकाश न था उसके मन का, बाहर आ गये थे जो हटाये जा सकते थे। अगर यह उसके मन का आकाश होता तो कृष्ण के हटाने का सवाल न उठता, न वे हटाने की कोशिश ही करते। गीता घटती ही नहीं। लेकिन पूरी जिन्दगी अर्जुन की कहती है कि उसका आकाश तो क्षत्रिय का है। इसलिए कृष्ण जिसे हटाने है, वह 'टिप्परेरी फेज' है। और मैं मानता हूँ, अगर वह स्वधर्म होता तो अर्जुन को हटने की ज़रूरत क्या है? कृष्ण यही तो कह रहे हैं कि अपने स्वधर्म में मर जाना बेहतर है। अर्जुन कहता, मेरा स्वधर्म है कि मैं मर जाऊँ। अब आप मुझे क्षमा करे, अब मैं जाता हूँ। बात खत्म हो गयी है।

स्थानिक कृष्ण यह कहा कह रहे हैं कि तू पराई बात मान ले । वह यही तो कह रहे हैं कि जो तेरा स्वधर्म है उसे पहचान । सारी चेष्टा पूरी गीता में अर्जुन का जो स्व है, उसे अर्जुन पहचाने इसके लिए है । अर्जुन के ऊपर कोई चीज थोकने की आकाशा नहीं है । दूसरी बात आप कहते हैं, वह भी सोचने जैसी है ।

मैंने यह कहा कि कृष्ण गुरु नहीं है, वह सखा है । मैंने यह नहीं कहा कि अर्जुन शिष्य नहीं है । अर्जुन शिष्य हो सकता है । वृद्ध अर्जुन की तरफ से सम्बन्ध है । वह सम्बन्ध कृष्ण की तरफ से नहीं है । और अर्जुन शिष्य है । वह सीखना चाहता है । सीखना चाहता है इसलिए पूछता है । प्रश्न शिष्य करते हैं । अर्जुन पूछता है । पूछने का अपना अनुशासन है । पूछना हो तो नीचे बैठना पड़ता है । वह पूछने का हिस्सा है । पूछना हो तो हाथ फैलाने पड़ते हैं । पूछना हो तो समझने की उत्सुकता दिखानी पड़ती है । पूछना हो तो विनम्रता से समझना पड़ता है । इसमें कृष्ण नहीं कह रहे उसको कि वह विनम्र हो । इसमें वह नहीं कह रहे कि वह नीचे बैठे । वह गुरु नहीं है । उनकी तरफ से अर्जुन मित्र है । मित्र है इसलिए समझा रहे हैं । उनकी तरफ से मित्रता की ही बात है । इसीलिए इतना ज्यादा समझा पाये । अगर गुरु होते तो बहुत जल्दी नाराज हो गये होते । कहते कि बस अब बहुत हुआ । जो मैं कहता हूँ, मान । सन्देह करना ठीक नहीं, शक करना उचित नहीं । गुरु पर श्रद्धा रख । जब मैं कहता हूँ लड, तो लड, समझाने की क्या जरूरत है । नहीं, इतनी लम्बी गीता कृष्ण की तरफ से इस बात की सूचना है कि समझाने के लिए वे निरन्तर तत्पर हैं । इसमें कही भी वे जल्दबाजी में नहीं हैं । अर्जुन बार-बार वही सवाल उठाता है । सवाल नये नहीं है । गीता में सब सवाल धृम फिर कर फिर वही है । लेकिन कृष्ण उससे एक बार भी नहीं कहते कि तू फिर वही पूछ लेता है ।

गुरु होगा तो नाराज होगा, कहेगा कि बस, यह तुम पूछ चुके । हम कह चुके, अब समझो और मानो । नहीं, यह सवाल नहीं है । आप बार-बार पूछते हो, उसका मतलब यह है कि नहीं समझ में आया, फिर समझाने की कोशिश जारी रहेगी । इसलिए इतनी लम्बी गीता सम्भव हो पायी । यह गीता कृष्ण का दान नहीं है, अर्जुन की कृपा है । अर्जुन पूछे चला जा रहा है । अर्जुन पूछे चला जाता है । इसलिए कृष्ण को कहते जाना पड़ता है । और बाद में हमें ऐसा लगता है कि कृष्ण ने करवा लिया । इतना समझाकर कृष्ण ने अर्जुन को युद्ध में डाल दिया । यह हमें लग सकता है । यह हमें इसलिए लग सकता है कि अर्जुन भाग रहा था । फिर भागा नहीं, युद्ध किया । लेकिन कृष्ण पूरे समय

अर्जुन को मुक्त ही कर रहे हैं और वह जो हो सकता है, जो होने की उसकी क्षमता है, उसे प्रकट कर रहे हैं। उसे जाहिर कर रहे हैं। अगर पूरी गीता सुनकर भी अर्जुन कहता कि मुना सब, लेकिन मैं जा रहा हूँ, तो कृष्ण उसे हाथ पकड़कर रोकने वाले नहीं थे।

बड़े मजे की बात है कि कृष्ण ने युद्ध में भाग न लेने का निर्णय लिया। खुद वह युद्ध में लड़ने वाले नहीं हैं, और युद्ध में न लड़ने वाले अर्जुन को समझा रहे हैं कि युद्ध में लड़। खुद वह युद्ध के बाहर खड़े हैं। मजा यह है कि अर्जुन उम आदमी में समझ रहा है जो आदमी युद्ध में लड़ने वाला नहीं है। बड़ी महत्व की बात है यह। अर्जुन को भी अगर यह स्थाल आ जाय कि कृष्ण अपने को मेरे ऊपर थोप रहे हैं तब उचित तो यही होता है कि कृष्ण समझाते कि भाग जा, क्योंकि मैं खुद ही लड़ नहीं रहा हूँ। कृष्ण का एक नाम आपको पता है, वह है रणछोड़दास, युद्ध से जो भाग खड़े हुए। रणछोड़दास समझा रहे हैं कि लड़ो। अगर अपने को ही थोपना होता कृष्ण को तो कहना चाहिए, बिल्कुल ठीक, तू मेरा शिष्य हुआ, चलो हम दोनों भाग जायें। नहीं, अपने को थोपने की बात जरा भी दिखायी नहीं पड़ती। क्योंकि कृष्ण, मिर्फ़ इतना ही कह रहे हैं कि ऐसा मैं समझता हूँ कि तू क्षत्रिय है। ऐसा मैं तुझे जानता हूँ बहुत निकट से कि तू क्षत्रिय है। जितने निकट से तू भी अपने को नहीं जानता उतने निकट से मैं तुझे पहचानता हूँ, कि तू क्षत्रिय है। तुझे इतना स्थाल दिला रहा हूँ। पूरी गीता में इतना ही स्थाल दिलाने की बात है कि तू कौन है? और जब तुझे स्थाल आ जाय, तब जो भला लगे तू कर। होता है वह जो कृष्ण समझा रहे हैं, इसलिए हमें यह स्थाल आ मकता है कि उन्होंने वही करवा लिया जों वे वह चाहते थे। लेकिन कृष्ण कुछ भी नहीं चाह रहे हैं। क्योंकि इस अचाह के कई अदभुत कारण हैं। कृष्ण खुद अकेले लड़ रहे हैं अर्जुन की तरफ, उनकी सारी फौजें लड़ रही हैं दूसरी तरफ से। लड़ने वाला का यह ढग नहीं है कि खुद की फौजे दुश्मन की तरफ से लड़े। लड़ने वालों के ये ढग कभी सुने नहीं गये। हिटलर राजी हो सकता है कि फौजे लड़े दुश्मन की तरफ से? कभी राजी नहीं हो सकता। फौजे होती ही इसलिए है कि अपनी तरफ से लड़े। लड़ने वाले का चित्त लड़ने का पूरा इन्तजाम करता है। यह बड़ी अजीब लडाई चल रही है। इसमें एक आदमी है जो लड़ रहा है इस तरफ से, उसकी सारी फौजें लड़ रही हैं दुश्मन की तरफ से। निश्चित ही यह आदमी लड़ने में बहुत रस वाला नहीं है। लड़ने से इसे बहुत प्रयोजन नहीं है। लेकिन स्थिति लड़ने की है। इसलिए अपने को भी दो हिस्सों में बांटा है कि बाद में आप दोषारोपण न कर सके।

कृष्ण की स्थिति बहुत ही अद्भुत है। उनके सारे व्यक्तित्व की बनावट बहुत अद्भुत है। और यह लड़ाई भी बहुत भजे की है। साँझ हो जाती है। युद्ध बन्द हो जाता है और सब एक दूसरे के खेमों में गपशप करते चले जाते हैं। एक दूसरे से जाकर पूछते लगते हैं कि आज कौन मर गया और कौन क्या हो गया? सवेदना भी प्रकट करने जाते हैं। बड़ी अजीब लड़ाई है। यह लड़ाई ऐसी नहीं लगती कि दुश्मनों की है। दुश्मनी जैसे नाटक है। जैसे खेड़ है। जैसे अपरिहार्यता है, एक 'इनएवीटेबिलिटी' है जो ऊपर आकर पड़ी है। लेकिन कोई दुश्मनी नहीं मालूम पड़ती। और कैसे भजे की बात है, युद्ध समाप्त हो जाता है और कृष्ण ही सलाह देते हैं पाण्डवों को कि वे भीष्म से जाकर शाति का पाठ ले ले। भीष्म में जो उम तरफ से युद्ध का अग्रणी है। युद्ध का जो सेनापति है दुश्मन की तरफ से, उससे शान्ति का पाठ लेने के लिए शिष्य की तरह बैठ जाते हैं लोग जाकर। भीष्म का जो सन्देश है वह शाति पर्व है। बहुत अजीब बात है। बड़ी 'मिरेकलस' है। दुश्मन से कभी कोई शान्ति का पाठ लेने गया है। मरते हुए भीष्म से शाति का पाठ लिया जा रहा है। धर्म का राज समझा जा रहा है। युद्ध साधारण युद्ध नहीं है। बहुत असाधारण है। इस युद्ध के मैदान पर खड़े हो गये योद्धा साधारण लड़ाई में गये हुए सैनिक नहीं हैं, इसलिए इसे गीता 'धर्म-युद्ध' कह पाती है।

कृष्ण समझा-बुझा कर युद्ध नहीं करवा लेते हैं। कृष्ण समझा-बुझा कर अर्जुन के क्षत्रिय होने को प्रकट कर देते हैं। एक मूर्तिकार का मुझे स्मरण आता है। एक मूर्तिकार एक पत्थर में मूर्ति खोद रहा है। कोई आदमी देखने आया है उसके मूर्ति बनाने को। पत्थर छिदते जाते हैं, छेनी पत्थर काटती चली जाती है, मूर्ति उघड़ने लगती है। फिर पूरी मूर्ति उघड़ जाती है। वह जो देखने आया है वह कहता है, तुम अद्भुत कारीगर हो। तुमने जैसी मूर्ति बनायी ऐसी मैने किसी को बनाते नहीं देखा। वह कहता है, माफ करना, तुम कुछ श्रलत समझो। मैं मूर्ति को बनाने वाला नहीं हूँ, सिर्फ उघाड़ने वाला हूँ। इधर से गुजरता था, मूर्ति मुझे दिखायी पड़ी इस पत्थर में कि अरे, इस पत्थर में एक मूर्ति छिपी है। मैने सिर्फ गैर जरूरी पत्थर अलग कर दिये और मूर्ति जो छिपी थी वह प्रकट हो गयी। मैं बनाने वाला नहीं हूँ, उघाड़ने वाला हूँ।

अर्जुन को कृष्ण सिर्फ उघाड़ते हैं, बनाते नहीं। वह जो था, उघाड़ देते हैं। उनकी छेनी सिर्फ गैर जरूरी पत्थर अलग कर देती है। बाद में जो अर्जुन प्रकट होता है वह अर्जुन का होता है, उसकी निजता है। ऐसा वह आदमी था।

पर हमें तो लोगा कि मूर्ति बनायी है। हमने छेनी से पत्थर काटते देखा है। लेकिन यह एक मूर्तिकार का कहना नहीं है, बहुत मूर्तिकारों का कहना है कि उन्हे मूर्तियाँ पहले पत्थरों में दिखायी पड़ती हैं, फिर वह उन्हे उधाड़ते हैं। पत्थर बोलते हैं मूर्तिकार से, कि आओ इधर, इधर कुछ छिपा है। इधर उधाड़ो। सभी पत्थर काम नहीं आते हैं, किसी पत्थर में जहाँ छिपा होता है, उस निजता को उधाड़ा जाता है। इसलिए पूरी गीता एक उधाड़ने की प्रक्रिया है। उसमें अर्जुन जैसा हो सकता था वैसा प्रकट हुआ है।

**प्रश्न** आप एक शब्द बहुत इस्तेमाल करते हैं—वह शब्द है ‘अद्भुत’। वही शब्द में आप पर निरुपित करता हैं और में आपसे ही पूछता हैं कि क्या आप अद्भुत नहीं हैं?

**उत्तर** (हँसी) इसे बाद में लेंगे।

**प्रश्न** . आपने कहा कि कृष्ण अर्जुन के गुरु नहीं मिल हैं। इसलिए वे अर्जुन की लड़ी शकाओं का धैर्यपूर्वक स्वागत करते हैं। लेकिन गीता में ही वे अन्यत्र कहते हैं कि ‘सशयात्मा विनश्यति’। इन दोनों बातों में सम्भाल कैसे ढैठे? सशयात्मा अर्जुन नष्ट नहीं हुआ, लेकिन कौरब जो सशयात्मक नहीं थे वे नष्ट हुए। कृपया इसे समझायें?

**उत्तर** सशयात्मा विनष्ट हो जाते हैं यह बड़ा सत्य है। लेकिन सशय के अर्थ समझने में भूल हो जाती है। सशय का अर्थ सदेह नहीं है। सशय का अर्थ ‘डाउट’ नहीं है। सशय का अर्थ है ‘इनडिसीसिवनेस’ सशय का अर्थ है अनिर्णय की स्थिति। सदेह तो बड़े निर्णय की स्थिति है, सदेह अनिर्णय नहीं है। सदेह भी निर्णय है। श्रद्धा भी निर्णय है, सदेह नकारात्मक निर्णय है, श्रद्धा विश्वायक निर्णय है। एक आदमी कहता है, ईश्वर है, ऐसी मेरी श्रद्धा है। यह एक निर्णय है। एक ‘डिसीजन’ है। एक आदमी कहता है, ईश्वर नहीं है, ऐसा मेरा सन्देह है। यह भी एक निर्णय है। यह ‘निगेटिव डिसीजन’ है। एक आदमी कहता है कि पता नहीं, ईश्वर है, पता नहीं, ईश्वर नहीं है। यह ‘इनडिसीसिव’ निर्णय है, यह सशय है। सशय विनाश कर देता है। क्योंकि वह अनिर्णय में छोड़ देता है। अर्जुन को जब कृष्ण कहते हैं कि तू सशय में मत पड़, निर्णयिक हो, निश्चयात्मक हो, निश्चयात्मक बुद्धि को उपलब्ध हो। तू निश्चय कर कि तू कौन है? तू सशय में मत पड़ कि मैं क्षत्रिय हूँ, कि मैं ब्राह्मण हूँ, कि मैं लड़ने को हूँ, कि मैं सन्यास लेने क्षो हूँ। तू निर्णय कर। तू स्पष्ट निर्णय को पूँजी, निर्दिष्ट-उद्दारणीय भ्रमन्ददलज (क.र. ३००) २८० ३;

उपलब्ध हो, अन्यथा विनष्ट हो जायेगा । तू भटक जायेगा । तू खण्ड खण्ड हो जायेगा । तू अपने ही भीतर विभाजित हो जायेगा, और लड जायेगा और टूट कर नष्ट हो जायेगा । 'डिस इन्टीप्रेटेड' हो जायेगा । सशय को अक्षमर ही सदेह समझा गया ह और वहाँ भूल हो गयी है । मैं सदेह का पक्षपाती हूँ, सशय का पक्षपाती मैं भी नहीं हूँ । मैं भी कहता हूँ, सदेह बहुत उचित है और सदेह के लिए कृष्ण जरा भी इन्कार नहीं करते । मदेह के लिए तो वह बिल्कुल राजी है, कि तू पूछ। इसका मतलब ही सदेह है । लेकिन वह यह कहते हैं कि तू भीतर सशय से मत भर जाना । 'कन्फूज्ड' मत हो जाना । सध्रम से मत भर जाना । ऐसा न हो कि तू तय करने में असमर्थ हो जाय कि क्या करणीय है, क्या न करणीय है । क्या करूँ, क्या न करूँ? 'ईदर आर' में मत पड़ जाना । या यह या वह, ऐसे में मत पड़ जाना ।

एक विचारक हुआ है सोरेन कीरगाडँ । उसने एक किताब लिखी है, 'ईदर आर' । किताब का नाम है— यह या वह । किताब ही लिखी ऐसा नहीं था, उसका व्यक्तित्व भी ऐसा ही था — यह या वह । उसके गाँव कोपेनहेंगन में उसका नाम ही लोग भूल गये और 'ईदर आर' उसका नाम हो गया । जब वह गलियों से निकलता था तो लोग चिल्लाते ईदर आर जा रहा है । क्योंकि वह चौरस्तों पर भी खड़ा होकर सोचता कि इस रास्ते से जाऊँ कि उस रास्ते से जाऊँ । ताले में चार्भी ढालकर सोचता कि इस तरफ घुमाऊँ कि उस तरफ घुमाऊँ । एक स्त्री को प्रेम करता था, रोजीना को । फिर स्त्री ने विवाह का निवेदन किया तो वह जीवन भर निर्णय न कर पाया — करूँ कि न करूँ । यह डाउट नहीं, यह 'इनडिसीसिव' है ।

कृष्ण जो अर्जुन से कहते हैं, तू सशय में पड़ेगा तो नष्ट हो जायेगा । सशय में जो भी पड़े तो नष्ट हो गये, क्योंकि सशय खण्डित कर देगा । तू भी विरोधी हिस्से में बैठ जायेगा । तुझे अखण्ड होना चाहिए । और निर्णय से आदमी अखण्ड हो जाता है । अगर आपने जिन्दगी में कभी भी कोई डिसीजन लिया है, कभी भी कोई निर्णय किया है तो उस निर्णय में आप कम-से-कम क्षण भर को तो अखण्ड हो जाते हैं । जिनमा बड़ा निर्णय उतनी बड़ी अखण्डता आती है । अगर कोई समझ रूपेण एक निर्णय कर ले जीवन में तो उसके भीतर सकल्प पैदा हो जाता है । वह एक हो जाता है । एक जूट, योग को उपलब्ध हो जाता है ।

तो कृष्ण की पूरी चेष्टा सशय मिटाने की है, सदेह मिटाने की नहीं, क्योंकि सदेह तो तू पूरा कर, सशय को मिटा । सदेह करने का मतलब है, उस समय तक

सदेह की छेनी का उपयोग करे जब तक श्रद्धा की मूर्ति निखर न आये । तोड़ते जायें, तोड़ते जायें । आखिर तक लड़े और सदेह करे, । तोड़ते जायें, तोड़ते जायें, लड़ते जायें, एक दिन वह घड़ी आयेगी कि मूर्ति निखर आयेगी । तोड़ने को कुछ न बचेगा । अब तोड़ना अपने को ही तोड़ना होगा, तो समझें मूर्ति पूरी प्रकट हो गयी है, अव्यक्त पत्थर अलग हो गये हैं, अब श्रद्धा उत्पन्न होगी । सदेह की अतिम उपलब्धि श्रद्धा है और सशय की अतिम उपलब्धि विक्षिप्तता है । पागल हो जायेगा आदमी । कहीं का न रह जायेगा । सब खो जायेगा । उस अर्थ में समझेंगे तो ख्याल में बात आ सकेगी ।



## पर्व : चार

कृष्ण के अवतरण का आधार  
जब-जब धर्म की हानि होती है  
परिद्राष्टाय साधूनां विनाशायच तु ज्ञातम्  
जो राम में प्रगटा वही कृष्ण में प्रगटा  
कृष्ण अरिहं अनुकरणीय या विस्तरीय



SATE



प्रश्न आचार्यजी, श्रीकृष्ण के जन्म के समय राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक स्थितियाँ क्या थीं, जिनके कारण कृष्ण जैसी आत्मा के अवतरण होने का आधार बना ? कृपया इसपर प्रकाश डालें ।

उत्तर कृष्ण जैसी चेतना के जन्म के लिए सभी समय, सभी काल, सभी परिस्थितियाँ काम की हो सकती हैं । कोई काल, कोई परिस्थिति कृष्ण जैसी चेतना के पैदा होने का कारण नहीं होती । यह दूसरी बात है कि किसी विशेष परिस्थिति में वैसी चेतना को विशेष व्यवहार करना पड़ेगा । लेकिन ऐसी चेतनाएँ कभी काल

पर निर्भर नहीं होती। सिर्फ़ सोये हुए लोगों के अतिरिक्त काल पर कोई भी निर्भर नहीं होता। जागा हुआ कोई भी व्यक्ति अपने समय से पैदा नहीं होता। बल्कि बात विलकूल उल्टी है—जागा हुआ व्यक्ति समय को अपने अनुकूल ढाल लेता है, सोये हुए व्यक्ति समय के अनुकूल पैदा होते हैं। लेकिन हम सदा ऐसा सोचते रहे हैं कि कृष्ण शायद इसलिए पैदा होते हैं कि युग बहुत बुरा है, बड़े दुर्दिन है। इस समझ में बुनियादी भूल है। इसका मतलब यह हुआ कि कृष्ण जैसे व्यक्ति एक ‘काजल चेन’ में पैदा होते हैं, एक काय-कारण की श्रृंखला में पैदा होते हैं। इसका मतलब है कि हमने कृष्ण के जन्म को भी ‘यूटीलिटेरियन’ कर लिया, हमने उपयोगिता में ढाल लिया। इसका यह भी मतलब हुआ कि कृष्ण जैसे व्यक्ति को भी हम अपनी सेवा के अर्थों में ही देख सकते हैं, और किसी अर्थों में नहीं देख सकते।

अगर रास्ते के एक किनारे फूल खिले तो राह से गुजरने वाला सोच सकता है कि यह मेरे लिए खिल रहा है। मेरे लिए सुगन्ध दे रहा है। हो सकता है, अपनी डायरी में लिखे कि मैं जिस गम्भीर से गुजरता हूँ, मेरे लिए फूल खिल जाता है। लेकिन फूल कभी भी खिलते हैं, निर्जन गम्भीर पर भी खिलते हैं। फूल किसी के लिए नहीं खिलते। फूल अपने लिए खिलते हैं। किसी दूसरे को सुगन्ध मिल जाती है, यह बात दूसरी है।

कृष्ण जैसे व्यक्ति किसी के लिए पैदा नहीं होते। अपने आनन्द से ही जन्मते हैं। दूसरों को सुगन्ध मिल जाती है, यह बात दूसरी है। और ऐसा कौन सा युग है जिसमें कृष्ण जैसा व्यक्ति पैदा हो और हम उससे कोई उपयोग न ले सकेंगे? सभी युगों में ले लेंगे। सभी युगों में जरूरत है। सभी युग पीड़ित हैं सभी युग दुखी हैं। कृष्ण जैसा व्यक्ति तो किसी भी क्षण में उपयोगी हो जायेगा। सुगन्ध की चाह किसको नहीं है। किसके नासापुट सुगन्ध के लिए आतुर नहीं है। फूल किसी भी रास्ते पर खिले, और कोई भी गुजरे तो सुगन्ध के लेंगा। मैं आपसे यह कहना चाहता हूँ कि कृष्ण जैसे व्यक्तियों को ‘यूटीलिटेरियन’ उपयोगिता की भाषा में मोचना ही गलत है। लेकिन हमारी मजबूरी है। हम हर चीज को उपयोग के ही अर्थ में सोचते हैं, किस उपयोग में आयेगी? निश्चयोगी का हमारे लिए कोई मूल्य ही नहीं, ‘परपजलेस’ का हमारे लिए कोई अर्थ ही नहीं है। आकाश में बादल चलते हैं तो सोचते हैं कि शायद हमारे खेतों में बर्बाद करने के लिए चलते हैं। अगर धड़ियाँ आपके हाथों पर बैंधी सोच मके तो वे शायद यहीं सोचेगी कि हम बैंध मके, इसलिए यह आदमी पैदा हुआ है। निश्चित ही, चरमे अगर सोच सके तो वह

सोचेगे कि हम देख सके, इसलिए ये आँखें पैदा हुई हैं। लेकिन वे सोच नहीं सकते, इसलिए मजबूरी है। आदमी सोच सकता है तो वह हर चीज को 'इगोसेट्रिक' कर देता है। अपने अहकार के केन्द्र पर कर देता है। वह कहता है, सब मेरे लिए है। कृष्ण जन्मते हैं तो मेरे लिए, बुद्ध जन्मते हैं तो मेरे लिए, फूल खिलते हैं तो मेरे लिए, चाँदन्तारे चलते हैं तो मेरे लिए। आदमी के लिए सब चल रहा है। आकाश में चाँदन्तारे चलते हैं वे भी हमारे लिए, सूरज निकलता है वह भी हमारे लिए है। यह दूसरी बात है कि सूरज के निकलने से हम रोशनी ले लेते हैं, लेकिन हमे रोशनी देने को सूरज नहीं निकलता है। जिन्दगी की धारा उपयोगिता की धारा नहीं है। उपयोगिता की भाषा में सोचना ही गलत है। जिन्दगी में सब हो रहा है—किसी के लिए नहीं, होने के लिए ही। फूल खिल रहे हैं अपने आनन्द में, नदियां बह रही हैं अपने आनन्द में, बादल चल रहे हैं अपने आनन्द में, चाँदन्तारे चल रहे हैं अपने आनन्द में। आप किसके लिए पैदा हुए हैं? आप किस कारण पैदा हुए हैं? आप अपने आनन्द में जी रहे हैं। और कृष्ण जैसा व्यक्ति नो पूर्णतया अपने आनन्द में जी रहा है। ऐसा व्यक्ति कभी भी पैदा हो जाय तो हम ज़रूर उसका कुछ उपयोग करेगे। सूरज कभी भी निकले तो हम उसकी रोशनी अपने घरों में ले जायेंगे। बादल कभी भी बरसे हम फसल पैदा करेगे। फूल कभी भी खिले, हम उनकी मालाएँ बनायेंगे। लेकिन इस सबके लिए यह नहीं हो रहा है। परन्तु हमारी सोचने की भाषा निरन्तर यही रही है।

महावीर क्यों पैदा हुए? कौन-सी राजनीतिक स्थिति थी जिसमें महावीर पैदा हुए। बुद्ध क्यों पैदा हुए? कौन-सी सामाजिक स्थिति थी जिससे बुद्ध पैदा हुए। ध्यान रहे, इसमें एक और खतरनाक बात है और वह यह है कि व्यक्ति की चेतना सामाजिक परिस्थितियों से पैदा होती है, ऐसा मार्क्स का सोचना था। मार्क्स कहता था कि चेतना परिस्थितियाँ नहीं बनाती, परिस्थितियों से चेतना जन्मती है। लेकिन जो नहीं है कम्युनिस्ट वह भी इसी तरह सोचते हैं। वह भी यही कह रहे हैं कि समाज की परिस्थितियाँ कृष्ण और बुद्ध के जन्म का कारण हैं। नहीं, समाज की परिस्थितिया उनके जन्म का कारण नहीं है। समाज की ऐसी कोई भी परिस्थिति नहीं है जो कृष्ण जैसी चेतना को जन्म दे दे। समाज तो बहुत पीछे होता है, कृष्ण जब पैदा होते हैं। कृष्ण जैसी चेतना को जन्म देने की क्षमता उसकी नहीं है, बल्कि कृष्ण ही पैदा होकर उस समाज को नयी दिशाएँ अनजाने में दे जाते हैं। नये मार्ग दे जाते हैं, नयी शक्ति, नयी रूप रेखा दे जाते हैं।

मैं परिस्थितियों को बहुत मूल्य नहीं देता, मैं मूल्य चेतना को, 'काससनेस'

को ज्यादा देता हैं। और आपसे यह कहना चाहूँगा कि जीवन उपयोगितावादी नहीं है, जीवन खेल जैसा है, लीला जैसा है। एक आदमी जा रहा है रास्ते पर। उसे कही पहुँचना है। उसे किसी मजिल, किसी मुकाम, किसी काम के लिए जाना है। यह आदमी भी चलता है रास्ते पर। एक आदमी सुबह घूमने निकला है। उसे कही पहुँचना नहीं है, कही जाना नहीं है। कोई लक्ष्य नहीं है, सिर्फ घूमने निकला है। लेकिन कभी आपने स्थाल किया है कि वही रास्ता, जब आप काम करने के लिए निकलते हैं, तो बोझिल हो जाता है। वही रास्ता, जब आप घूमने के लिए निकलते हैं, तो आनन्दपूर्ण हो जाता है। वही पैर, जब काम करने को जाते हैं तो भारी हो जाते हैं। वही पैर, जब सिर्फ घूमने को जाते हैं तो जैसे पर लग जाते हैं और हल्के हो जाते हैं। वही आदमी जब काम करने जाता है तो उसके सिर पर मनो बोझ होता है, और उसी रास्ते पर, उन्हीं कदमों से उतनी ही दूरी पूरी करता है सिर्फ घूमने के लिए, तब कोई हिसाब नहीं उसके आनन्द का। कृष्ण जैसे व्यक्ति किसी काम के लिए नहीं जीते। उनकी जिन्दगी घूमने जैसी है, कही जाने जैसी नहीं है। उनकी जिन्दगी एक खेल है। निश्चित ही, जिस से वे गुजरते हैं उस रास्ते पर अगर काटे पड़े हो तो उन्हें हटा देते हैं। यह बिल्कुल दूसरी बात है। यह भी उनके आनन्द का हिस्सा है। लेकिन कृष्ण उम रास्ते से काटो को हटाने के लिए नहीं निकले थे। निकले थे और काटे पड़े थे तो हटा दिये हैं। उस रास्ते पर अगर कोई आदमी रास्ता भूल गया था और उसने पूछा है कि रास्ता कहा है, उन्होंने बता दिया तो वह आदमी यह न सोचे कि वह कोई द्राफिक के पुलिस के आदमी है जो उसके लिए खड़े थे वहाँ रास्ता बताने को। वह वहाँ से निकले थे, आपने पूछा, उन्होंने बता दिया। यह सब 'नान काजल' है। इसकी कार्य-कारण की कोई श्रृखला नहीं है। इसलिए मैं कृष्ण को या बुद्ध को या क्राइस्ट को या भगवान् को किसी श्रृखला में सोचने के लिए तैयार नहीं हूँ। वे घटित होते हैं। अकारण, या कहे कि उनके कारण आतरिक है, हमारे सामाजिक और बाह्य कारण नहीं हैं।

व्यक्ति की आत्मा और व्यक्ति की चेतना का अर्थ ही यही है कि व्यक्ति-चेतना भीतर परम स्वतत्व है। उसे कोई बाँधता नहीं। उसे कोई बाँध नहीं सकता। एक बहुत बड़े ज्योतिषी के सबध मे मैंने सुना है कि उसके गाँव के लोग उस ज्योतिषी से बहुत परेशान हो गये थे। वह जो भी कहता था वह ठीक निकल जाता था। उस गाँव के दो युवकों ने सोचा कि कभी तो इस ज्योतिषी को गलत करना जरूरी है। सर्दी के दिन थे, वे अपने बड़े

भीवर कोट के भीतर एक कबूतर को छिपाकर उस ज्योतिषी के पास पहुंचे । और उस ज्योतिषी से उन्होने कहा कि इस कोट के भीतर हमने एक कबूतर छिपा रखा है । हम आपसे पूछने आये हैं, वह जिन्दा है या मरा हुआ है ? वे यह तय करके आये थे कि अगर वह कहे, जिन्दा है तो भीतर उसकी गद्दन मरोड़ देनी है । मरा हुआ कबूतर बाहर निकालना है । अगर वह कहे, मरा हुआ है तो कबूतर को जिन्दा ही बाहर निकाल लेना है । एक दफा तो मीका होना ही चाहिए कि ज्योतिषी गलत हो जाय । उस बूढ़े ज्योतिषी ने नीचे से ऊपर तक देखा और उसने जो कहा वह बहुत अद्भुत था । उसने कहा, 'इट इज इन योर हैण्ड्स' । न कबूतर जिन्दा है न मरा है, तुम्हारे हाथ में है । तुम्हारी जैसी मर्जी । उन युवकों ने कहा, बड़ा धोखा दे दिया आपने हमे ।

जिन्दगी हमारे हाथों में है, और कृष्ण जैसे लोगों के तो बिल्कुल हाथों में है । वे जैसे जीना चाहते हैं वैसे ही जीते हैं । न कोई समाज, न कोई परिस्थिति, न कोई बाहरी दबाव उसमें फक लाता है । उनका होना उनका अपना होना है । निश्चित ही कुछ फक हमें दिखायी पड़ते हैं, दिखायी पड़ेंगे, क्योंकि वे हमारे बीच जीते हैं । बहुत-सी घटनाएँ घटनी हैं जो हमारे बीच घटती हैं । जो कि नहीं घटी होती अगर किसी और समय में वे होते । लेकिन वे गौण हैं, 'इरिलेवेट' है, असरत है । उनसे कृष्ण के आत्मिक जीवन का कोई लेना देना नहीं है । इसलिए कृपा करके ऐसा समझे कि कृष्ण किसी समाज के लिए पैदा नहीं होते, न किसी राजनीतिक स्थिति के लिए पैदा होते हैं, न किसी के बचान के लिए पैदा होते हैं । हाँ, बहुत लोग बच जाते हैं, यह बिल्कुल दूसरी बात है । बहुत लोगों को रास्ता मिल जाता है यह बिल्कुल दूसरी बात है । कृष्ण तो अपने आनन्द में खिलते हैं और यह खिलना वैसे ही अकारण है जैसा आकाश में बादलों का चलना है, जमीन पर फूलों का खिलना है, हवाओं का बहना है । लेकिन हम इतने अकारण नहीं हैं इसलिए कठिनाई होती है समझने में । हम तो कारण से जीते हैं । हम तो किसी को प्रेम भी करते हैं तो भी कारण से करते हैं । हमारा प्रेम का फूल भी अकारण नहीं खिल पाता है । हम बिना कारण के तो कुछ कर ही नहीं सकते । और ध्यान रहे, जब तक आपकी जिन्दगी में धर्म का भी जन्म नहीं होगा । जिस दिन आपकी जिन्दगी में कुछ अकारण भी होने लगे, 'अनकण्डीशनल' तो फूल खिलने की सभावना है ।

प्रश्न आपने यों कहा कि कृष्ण का जन्म अकारण है, लेकिन गोता में कृष्ण ही स्वयं कहते हैं कि जब जब धर्म की हानि होती है तब तब मुझे आना पड़ता है । कृपया इसे स्पष्ट करें ।

उत्तर कृष्ण कहते हैं, कि जब जब धर्म की हानि होती है तब तब मुझे आना पड़ता है। इसका क्या मतलब होगा फिर? यह वही व्यक्ति कह सकता है जो परम स्वतन्त्र हो। आप तो नहीं कह सकते कि जब जब ऐसा होगा मैं आऊँगा। आप यह भी नहीं कह सकते कि अगर ऐसा नहीं होगा तो नहीं आऊँगा। हमारा आना बैधा हुआ आना है। लम्बे कर्मों का बन्धन है हमारा, 'काजल चैन' है। हम ऐसा वायदा नहीं कर सकते, हम ऐसी 'प्राप्तिस' नहीं दे सकते। हम हिम्मत भी नहीं कर सकते ऐसा वायदा करने की। कृष्ण यह भी हिम्मत कर रहे हैं। इस हिम्मत का भी कारण वही है कि वे किसी कारण से नहीं जीते हैं बैधकर, उनकी मात्र मौज है। इस मौज से कुछ भी निकल सकता है। यह वायदा स्वतन्त्र चेतना से ही सम्भव है। अगर कृष्ण कहते हैं कि मैं आ जाऊँगा ऐसी स्थिति हुई, तो स्थिति के कारण कृष्ण नहीं आ जायेगे, अपनी स्वतन्त्रता के कारण आ जायेगे।

एक बहुत अद्भुत घटना महाभारत में है। सुबह, एक दिन युधिष्ठिर अपने घर के बाहर बैठे हैं और एक भिखारी भीख माँगने आ गया। युधिष्ठिर ने उसमे कहा, अभी थोड़ा काम मे हूँ, अच्छा हो कि कल आ जाओ। भिखारी चला गया। भीम यह सुनता था। उसने पास मे पड़ा हुआ ढोल उठा लिया और बजाता हुआ गाँव की तरफ भागा। युधिष्ठिर ने कहा, यह क्या कर रहे हो? भीम ने कहा, समय न चूक जाय मै गाँव मे खबर कर दूँ कि मेरे भाई ने कल के लिए बचन दिया है। मेरा भाई समय का मालिक हो गया है। तुम कल बचोगे, पक्का है? कल यह भिखारी बचेगा, पक्का है? कल देने योग्य मन बचेगा, यह पक्का है? कल यह भिखारी माँगने योग्य मन का रहेगा, यह पक्का है? कल तुम दोनों मिल सकोगे, यह पक्का है? तुमने समय को जीत लिया मैं जाऊँ गाँव मे खबर कर दूँ, क्योंकि मुझे कुछ भरोसा नहीं कि अगर घड़ी दो घड़ी चूका तो मैं बचूगा कि नहीं, इसलिए मैं ढोल लेकर दौड़ता हूँ। युधिष्ठिर ने कहा, ठहरो, मुझमे भूल हो गयी। ये बचन तो केवल वे ही दे सकते हैं जो परम स्वतन्त्र हैं। भिखारी को वापस बुला लो। जो मुझे देना है, आज ही दे दूँ, कल का कोई भरोसा नहीं है।

और कृष्ण कल का वायदा नहीं कर रहे हैं। बड़ा लम्बा वायदा है। वह वायदा यह है कि जब भी ऐसा हुआ तब मैं आ जाऊँगा। इस वायदे मे भी कृष्ण की मिर्झ इतनी ही सूचना है कि समय का या परिस्थितियों का मेरा कोई बन्धन नहीं है। मैं स्वतन्त्र हूँ। यह स्वतन्त्रता की ही घोषणा है। लेकिन कई बार घोषणाएँ बड़ी उल्टी होती हैं। तब हम बड़ी कठिनाई मे पड़ जाते हैं। हम सोचते हैं, कृष्ण को भी आना पड़ेगा। जैसे पानी को गरम करते हैं तो सौ डिग्री पर उसे

भाप बनना पड़ता है। अगर किसी दिन पानी सुझासे कहे, मत घबड़ाओ अगर गर्मी कम होगी तो मैं ६० डिग्री पर भी भाप बन जाऊँगा तो उस दिन समझना कि पानी स्वतंत्र हो गया। अब कोई सौ डिग्री का बन्धन न रहा। ऐसे आश्वासन परिपूर्ण स्वतंत्रता के बोध से निकलते हैं। जहाँ परतंत्रता बिल्कुल गिर गयी है वहाँ ऐसे फूल खिल जाते हैं—स्वतंत्रता के आश्वासन के, अन्यथा नहीं खिलते।

प्रश्न आवार्य जी, एक 'कण्ठशन' उन्होंने रखी है — 'परिक्लाणाय साधु ना, विनाशायच दुष्कृताम्' उसका क्या अर्थ है कि साधुओं की रक्षा के लिए और दुष्टों के अन्त के लिए भी मैं आऊँगा — कृष्ण इसका अर्थ स्पष्ट करें?

उत्तर साधुओं की रक्षा के लिए और दुष्टों के अन्त के लिए मैं आ जाऊँगा ठीक है। दोनों का एक ही मतलब है। दुष्टों के अन्त के लिए का भी वही मतलब है। दुष्ट का अन्त कब होता है, यह थोड़ा समझने जैसा है। दुष्ट का अन्त कब होता है—मार डालने से? मार डालने से दुष्ट का अन्त नहीं होता। क्योंकि कृष्ण भली-भाति जानते हैं कि मारने से कुछ मरता नहीं। दुष्ट का अन्त तभी होता है जब उसे साधु बनाया जा सके और कोई उपाय नहीं। मारने से दुष्ट का अन्त नहीं होता। इसमें सिर्फ दुष्ट का शरीर बदल जायेगा, और कोई फर्क नहीं पड़ने वाला। दुष्ट का अन्त एक ही स्थिति में होता है जब वह साधु हो जाय। और बड़े मजे की बात यह है कि दूसरी बात उन्होंने कही कि साधुओं की रक्षा के लिए। साधुओं की रक्षा की जरूरत भी तभी पड़ती है जब वह दिव्यावटी साधु रह जायें, अन्यथा नहीं पड़ती। नहीं तो साधु की रक्षा की क्या जरूरत होगी? साधु को भी रक्षा की जरूरत पड़ेगी, तो फिर बहुत मुश्किल हो जायेगी। साधुओं की रक्षा के लिए आऊँगा, इसका मतलब है, जब साधु झूठे साधु होगे, असाधु होगे, उस दिन मैं आऊँगा। सिर्फ असाधु के लिए ही रक्षा की जरूरत पड़ सकती है। साधु का मतलब यह होता है, 'सिक्योर्ड इन हिज इनमिक्योरिटी'। अपनी असुरक्षा में जो सुरक्षित है उसी का नाम साधु है। अपने खतरे में भी जो 'एट ईंज' है उसी का नाम साधु है। साधु का मतलब ही यही है कि जिसके लिए अब कोई असुरक्षा न रही। कृष्ण की क्या जरूरत होगी उसको बचाने के लिए? यह बचन बहुत मजेदार है। इसमें कृष्ण यह कहते हैं कि साधुओं को बचाने आना पड़ेगा। जिस दिन साधु साधु नहीं होगा, असाधु ही साधु दिखायी पड़ेंगे उस दिन बचाने आना पड़ेगा। और उसी दिन दुष्टों को भी बदलने की जरूरत पड़ेगी। नहीं तो यह काम साधु भी कर ले सकते हैं, इसके लिए कृष्ण की क्या जरूरत है? कृष्ण की जरूरत उसी

दिन पड़ सकती है। दुष्ट को मारने का काम तो कोई भी कर सकता है। हम सभी करते हैं, अदालते करती हैं, दण्ड करता है, कानून करता है। यह सब दुष्टों को मारने का काम है। दुष्टों को बदलने का, 'ट्रांसफर्मेशन' का काम नहीं है कि दुष्ट साधु बनाये जा सके। जिस दुनिया में साधु भी असाधु होगा उस दुनिया में दुष्ट की क्या स्थिति होगी? लेकिन इस वाक्य को भी बड़ा अजीब समझा गया है। साधु समझते हैं, हमारी रक्षा के लिए आयेंगे। और ध्यान रहे जिसको अभी रक्षा की जरूरत है वह साधु नहीं है। और दुष्ट समझते हैं कि हमें मारने के लिए आयेंगे। दुष्टों का समझना ठीक है, क्योंकि दुष्ट सदा दूसरे को मारने को उत्सुक और आतुर रहते हैं। उनको स्थाल आ सकता है कि हमें मारने को—लेकिन कोई मारा ना जा नहीं सकता। वह वापस लौटकर वही हो जाता है। वह नासमझी कृष्ण नहीं कर सकते दुष्टों के विनाश के लिए। दुष्ट का विनाश होता है साधुता से और साधुओं की रक्षा करनी पड़ती है जब साधु निर्क 'अपियरेस', दिखावा रह जाता है। भीतर उसकी कोई आत्मा साधुता की नहीं रह जाती। यह वचन बहुत अद्भुत है। साधुजन बैठकर अपने मठों में इसमें विचार करते रहते हैं कि बड़ी अपने ऊपर कृपा है। जब दिक्कत आयेगी तो जरूर आयेंगे। और साधु अपने मन में इससे भी तृप्ति पाता है कि जो जो हमें सता रहे हैं वे दुष्ट हैं। दुष्ट की यही परिभाषा होती है कि जो जो साधु को सता रहा है वह दुष्ट है। जब कि साधु की आतंरिक व्यवस्था यह है कि जो उसे मताये वह भी उसे मिल मालूम होना चाहिए, दुष्ट नहीं मालूम होना चाहिए। अगर सताने वाला शत्रु मालूम पड़ने लगे या दुष्ट मालूम पड़ने लगे, तो यह जो सताया गया है साधु नहीं है। साधु का तो मतलब ही यही है कि जिसे अब शत्रु दिखायी नहीं पड़ता। उसे सताओ तो भी दिखायी नहीं पड़ता। और साधु बैठकर सीचते रहते हैं,—अर्थात् असाधु बैठकर सोचते रहते हैं कि हमारी रक्षा के लिए, यह जो दुष्ट हमें सता रहे हैं, इनके नाश के लिए कृष्ण आयेंगे। इसलिए गीता के इस वचन का बड़ा पाठ चलता है। लेकिन उन्हे पता नहीं कि ये वचन साधुओं के लिए बड़ी मजाक है। इस वचन में बड़ा व्यग है। व्यग गहरा है जो ऊपर से एक दम दिखायी नहीं पड़ता है। कृष्ण जैसे लोग जब मजाक करते हैं तो गहरी ही करते हैं। सदियाँ लग जाती हैं मजाक को समझने में।

**ग्रन्थ** आचार्यजी, पुराण कथाओं के आधार पर पता चलता है कि कृष्ण ही राम का रूप लेकर आते हैं और राम ही कृष्ण का रूप लेकर आते हैं। ये दोनों व्यक्ति क्या एक नहीं हैं? इनके सम्बन्ध में आप प्रकाश डालें।

उत्तर इस सम्बन्ध को दो-तीन बाते समझने से समझा जा सकता है। जगत की, सृजन की जो प्रक्रिया है, उस प्रक्रिया में सदा से ही, जिन्होंने खोज की है उन्होंने पाया कि वह प्रक्रिया तीन चीजों पर निर्भर है। वह 'थ्री फोल्ड' है। विज्ञान ने भी जब खोज की अणु की तो उसने पाया की अणु भी बहुत गहरे में तोड़ने पर तीन चीजों में टूट जाता है। इलेक्ट्रान, प्रोटान और न्युट्रान में अणु टूट जाता है। जिन लोगों ने धर्म के जगत में बड़ी गहरी अन्तरदृष्टि पायी थीं, उन्होंने भी जगत को तीन हिस्सों में तोड़कर देखा था। विष्णु उन्हीं तीन के एक हिस्से है—ब्रह्मा, विष्णु, महेश—ये तीन धर्म के द्वारा जगत की सृजन प्रक्रिया के तीन हिस्सों के नाम हैं। इन तीन के तीन अर्थ हैं। इसमें ब्रह्मा जन्मदाता, सृष्टा, बनाने वाला, 'क्रियेटिव फोर्स' है। इसमें शक्ति, शिव, महेश विद्युत, प्रलय, विनाश, अत की शक्ति है। विष्णु इन दोनों के बीच में है—स्थापक, चलाने वाला। यानी मृत्यु है, जन्म है और बीच में फैला हुआ जीवन है। जिसकी शुरुआत हुई है, उसका अन्त होगा। शुरुआत और अन्त के बीच में यात्रा भी होगी। विष्णु, ब्रह्मा और शिव के बीच की यात्रा है। ब्रह्मा की एक दफा जरूरत पड़ेगी सृजन के क्षण में। और शिव की एक बार जरूरत पड़ेगी विद्युत के क्षण में। और विष्णु की जरूरत होगी दोनों विन्दुओं के मध्य। जन्म और मृत्यु, दोना के बीच जीवन है। ये तीन जो नाम हैं—ब्रह्मा, विष्णु, महेश के, ये व्यक्तियों के नाम नहीं हैं। ये कोई व्यक्ति नहीं हैं। ये सिर्फ शक्तियों के नाम हैं। और जैमा मैंने कहा, सृजन की एक दिन जरूरत पड़ती है, फिर विद्युत की एक दिन जरूरत पड़ती है। बीच में जीवन की जो जरूरत है, जीवन की जो ऊर्जा है, 'लाइक इनर्जी' वही विष्णु है। इसलिए इस देश के सभी अवतार विष्णु के अवतार हैं। असल में सभी अवतार विष्णु के ही होगे। आप भी अवतार विष्णु के ही हैं। अवतरण ही विष्णु का होगा, जीवन का नाम विष्णु है। ऐसा मत समझ लेना कि जो व्यक्ति राम था वही व्यक्ति कृष्ण है। नहीं, जो ऊर्जा, जो 'इनर्जी' राम में प्रकट हुई थी वही कृष्ण में प्रकट है, और वही आपमें भी प्रकट हो रही है। और ऐसा भी नहीं है कि जो राम में प्रकट हुआ था वही रावण में प्रकट नहीं हो रहा, हो तो वही प्रकट रहा है। वह जरा भटके हुए विष्णु है और कोई बात नहीं है। वह जरा रास्ते से उतर गयी जीवन ऊर्जा है और कोई बात नहीं है।

समस्त जीवन का नाम विष्णु है। समस्त अवतरण विष्णु का है। लेकिन भूल होती रही जब हमने विष्णु को ही व्यक्ति बना लिया। राम एक व्यक्ति है,

कृष्ण एक व्यक्ति है, विष्णु व्यक्ति नहीं है। विष्णु के बल शक्ति का नाम है। क्योंकि पुरानी सारी अतर-दृष्टियाँ काव्य में प्रकट हुई हैं इसलिए स्वभावत् काव्य प्रत्येक शक्ति को व्यक्तिवादी बना लेता है। बनायेगा ही—अन्यथा बात नहीं हो सकती। और उससे बड़ी पहेलियाँ पैदा हो जाती हैं।

मैंने सुना है, एक आदमी भरण शैया पर पड़ा है। वह ईसाई है और चर्च का पादरी उसे आखिरी प्रायशिच्छा कराने आया है, 'रिपेटेस' कराने आया है। नियमानुभार उस भरते हुए आदमी से उस पुरोहित ने पूछा—'डॉ यू बिलीव इन गाड़ दी फादर ?' वह आदमी चूप रहा। फिर दुवारा उससे पूछा कि 'डॉ यू बिलीव इन गाड़ दी भन ?' वह आदमी फिर भी चूप रहा। फिर उस पुरोहित ने पूछा कि 'डॉ यू बिलीव इन गाड़ दी होलीघोस्ट ?' ये ईमाइयो के तीन नाम हैं—फादर, भन, होलीघोस्ट। पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा—ये उनके तीन नाम हैं। उसने पूछा कि क्या तुम पिता रूपी परमात्मा में विश्वास करते हो ? क्या तुम पुत्र रूपी परमात्मा में विश्वास करते हो ? क्या तुम पवित्र आत्मा रूपी परमात्मा में विश्वास करते हो ? उस भरते हुए आदमी ने अपने आम-पास खड़े हुआ लोगों से कहा—'लुक हियर आई एम डाइग एंड दिस फेलो आस्टिक भी पजेल्म्'—झधर तो मैं भर रहा हूँ और ये मजजन पहेलियाँ बुझा रहे हैं। स्वभावत् उस भरते हुए आदमी को यह पहेलियाँ थीं। भरते हुए आदमी को ही पहेलियाँ नहीं हैं हम जीवित आदमियों को भी बड़ी-से-बड़ी पहेली जीवन की पहेली हैं।

क्या है यह जीवन ? कैसे जन्मता, कैसे चलता, कैसे समाप्त होता है ? क्या है इसकी ऊर्जा ? जो इसे फैलाती, चलाती, सिकोड़ती, विदा करवा देती है। विज्ञान वैज्ञानिक ढग के नाम देता है। वह कहता है, इलेक्ट्रान है, प्रोटान है, न्युट्रान है। ये तीन भी बड़े मजे के शब्द हैं। इनमें एक विद्यायक शक्ति का नाम है 'प्रोटान'। पोजेटिव इलेक्ट्रिक, विद्यायक विद्युत्। कहना चाहिए, ब्रह्म। दूसरा शब्द है 'इलेक्ट्रान'। वह 'निगेटिव इलेक्ट्रिमिटी' है। निषेधात्मक विद्युत् है। कहना चाहिए शिव, शकर। और तीसरा अवतार है 'न्युट्रान' जो दोनों के बीच जोड़ता और डोलता है—कहना चाहिए विष्णु। यह मिर्क भाषा का अन्तर है। एक विज्ञान की है, एक धर्म की है। उससे ज्यादा फर्क नहीं है। सारा जीवन विष्णु का अवतरण है। फूल खिलते हैं तो विष्णु खिलते हैं, हवाएँ बहती हैं तो विष्णु बहते हैं नदियाँ दौड़ती हैं तो विष्णु दौड़ते हैं। वृक्ष बड़े होते हैं तो विष्णु बड़े होते हैं। आदमी जीता है तो विष्णु होते हैं। सब धड़ियाँ मृत्यु की, शकर की हैं। जब आदमी मरता है, तब विष्णु चार्ज सौप देते हैं। वह शकर के हाथ से चला जाता है

मामला । इसीलिए तो शकर को कोई अपनी लड़की देने को राजी नहीं होता था । मृत्यु के हाथों में कौन लड़की को देगा । विष्वस के हाथों में कौन स्त्री को देगा ।

विष्णु के अवतार का मतलब यह नहीं है कि विष्णु नाम के व्यक्ति राम में हुए, फिर कृष्ण में हुए, फिर किसी और में हुए । नहीं, विष्णु नाम की ऊर्जा राम में उतरी, कृष्ण में उतरी, सबमें उतरी है और उतरती रहेगी । शकर नाम की ऊर्जा उसे विदा देती रहेगी । इस तरह समझेगे तो बात सीधी और साफ समझ में आ सकती है । फिर पहेली नहीं रह जाती । फिर पहेली नहीं है ।

जीवन में कोई भी चीज निर्माण करनी हो तो जो न्यूनतम सत्त्वा है वह तीन है । इससे न्यून सत्त्वा से काम नहीं चलेगा, दो से काम नहीं चलेगा, एक से तो चल ही नहीं सकता । एक तो बिल्कुल एक रूप हो जायेगा । सब एक रग, एक रस हो जायेगा । सब बैविध्य खो जायेगा । दो भी काफी नहीं है, क्योंकि दो को जोड़ने के लिए सदा तीसरे की जरूरत पड़ेगी । अन्यथा वे अनजुड़े रह जायेंगे, अलग-अलग रह जायेंगे । न्यूनतम जो सभावना है जगत के विकास की, वह तीन से शुरू होती है । तीन से ज्यादा हो सकता है, तीन से कम करना मुश्किल पड़ेगा । लेकिन वे तीन भी एक की ही शब्दले हैं इसलिए हमने त्रिमूर्ति बनायी । इसलिए हमने इन तीन देवताओं को अलग-अलग नहीं रखा । क्योंकि अलग-अलग रखने से भूल हो जानी है । क्योंकि अगर ये तीन देवता अलग हो तो फिर उनको जोड़ने की जरूर पड़ जायेगी । और यह अन्तहीन 'इनफिनिट रिप्रेस' हो जायेगी । इसमें कोई हिसाब लगाना मुश्किल हो जायेगा कि कहाँ रुके । इसलिए ये तीन चेहरे एक ही ऊर्जा हैं, एक ही जीवन शक्ति के तीन चेहरे हैं । वही जन्म लेता, वही चलता, वही विदा करता है । लेकिन 'ओफीसियल' नीन हिस्सों में हम बैट्टे हैं । वह 'ओफीसियल डिवीजन' है । वह सिर्फ काम का बैट्टवारा है । 'डिवीजन आफ लेबर' है । जीवन ऊर्जा तीन हिस्सों में बैट्कर सारे जगत का विस्तार करती है ।

प्रश्न श्रीकृष्ण की लीलाएँ व चरित्र अनुकरणीय हैं या चिन्तनीय हैं ?  
जो अनुकरण करने जायेगा वह पतित नहीं होगा ?

उत्तर डरे हुए आदमियों को कृष्ण से जरा दूर रहना चाहिए । ठीक सबाल पूछते हैं आप । अनुकरणीय कृष्ण तो क्या कोई भी नहीं है । और ऐसा नहीं है कि कृष्ण का अनुकरण करने जायेगा तो पतित होगा । किसी का भी अनुकरण करने जायेगा तो पतित होगा । अनुकरण ही पतन है । कृष्ण के सम्बन्ध

मेरे लेकिन हम विशेष रूप से पूछते हैं। महावीर के सम्बन्ध में नहीं पूछेंगे ऐसा, बुद्ध के सम्बन्ध में नहीं पूछेंगे। राम के सम्बन्ध में नहीं पूछेंगे। कोई नहीं कह सकेगा कि राम का अनुकरण करने जायेंगे तो पतन हो जायेगा। अकेले कृष्ण पर ही सवाल क्यों उठता है? राम का तो, हम अपने बच्चों को समझायेंगे कि अनुकरण करो। कृष्ण के मायले में कहेंगे, जरा सावधानी से चलना। क्योंकि हमारा डरा हुआ मन है। लेकिन मैं आपसे कहता हूँ, किसी का भी अनुकरण पतन है। अनुकरण किया कि आप गये। आप सो गये। न तो कृष्ण अनुकरणीय है, न कोई और। वे सब चिन्तनीय हैं। सब विचार करने योग्य हैं। बुद्ध भी, महावीर भी, क्राइस्ट भी, कृष्ण भी। और मजे की बात यह है कि बुद्ध पर विचार करने में इतनी कठिनाई न होगी, न क्राइस्ट पर विचार करने में इतनी कठिनाई होगी। असली कठिनाई कृष्ण पर ही विचार करने में पैदा होगी। क्योंकि महावीर, बुद्ध या क्राइस्ट का जीवन विचार की पद्धतियों में जमाया जा सकता है। उनके जीवन का ढग मर्यादा है। उनके जीवन का ढग सीमा है। कृष्ण का जीवन विचार में पूरा समा नहीं सकता। उनके जीवन का ढग अमर्याद है। असीम है। हमारी सीमा आ जायेगी और वह हमसे कहेंगे और आगे और आगे। इसलिए कृष्ण और भी चिन्तनीय बन जाते हैं। मेरी दृष्टि में वही चिन्तनीय है जो अन्तत चिन्तन के पार ले जाय। चिन्तन अतिम बात नहीं है। चिन्तन प्राथमिक चरण है। एक क्षण आना चाहिए जब चिन्तन के ऊपर भी उठा जा सके। लेकिन चिन्तन के ऊपर वही उठ आयेगा जो चिन्तन को घबरा दे। और चिन्तन के ऊपर वही उठ आयेगा जो चिन्तन में न समाये और चिन्तन के बाहर चला जाय। सभी चिन्तनीय हैं। सभी सोचने योग्य हैं। अनुकरणीय तो मिर्फ आप हैं अपने लिए, और कोई नहीं। अपना अनुकरण करें। समझें सबको, अपने पीछे जायें, किसी के पीछे न जायें।

लेकिन, भय क्या है? कृष्ण के साथ सवाल क्यों उठता है? भय है, और भय यही है कि हमने अपनी जिन्दगी को दमन की, 'सप्रेषण' की जिन्दगी बना रखा है। हमारी जिन्दगी जिन्दगी कम, दबाव ज्यादा है। हमारी जिन्दगी खिलापन नहीं है, 'फ्लार्वरिंग' नहीं है, कुण्ठा है। इसलिए डर लगता है कि अगर कृष्ण को हमने सोचा भी तो कही ऐसा न हो कि जो हमने अपने में दबाया है वह कही फूट-कर बहने लगे। कही ऐसा न हो कि जो हमने अपने में रोका है, उसके रोकने के लिए जो हमने तर्क दिये हैं वे टूट जायें और गिर जायें। कही ऐसा न हो कि हमने अपने भीतर ही अपनी बहुत-सी वृत्तियों को कारागृह में डाला है वह बाहर निकल आयें।

और कहे कि हमे बाहर जाने दो। डर भीतर है, घबराहट भीतर है लेकिन इसके लिए कृष्ण जिम्मेवार नहीं है, हम जिम्मेवार हैं। हमने अपने साथ ही दुर्व्यवहार किया है। हमने अपने साथ ही वह अनाचार किया है। हमने अपना पुरा व्यक्तित्व कभी न जाना, न स्वीकारा, न जिया। हमने उसमें बहुत दबाया है और थोड़ा जीने की कोशिश की है। हमने घर के ड्राइग रूम की तरह चेहरे बना बना कर जीवन बिताया है। ड्राइग रूम की दुनिया अलग है। किसी के ड्राइग रूम को देखकर यह मत समझ लेना कि यह उसका घर है। यह उसका घर है ही नहीं। न वह यहाँ खाना खाता है न वह यहाँ सोता है। यहाँ वह सिर्फ मेहमानों का स्वागत करता है। यह सिर्फ चेहरा है जिसको वह दूसरों को दिखाता है। ड्राइग रूम घर से अलग बात है। उसका घर तो वहाँ है जहाँ वह जीता है, सोता है, लड़ता है, झगड़ता है, खाता है, पीता है। ड्राइग रूम मास्क है जो हम दूसरों को दिखाने के लिए बनाये हुए हैं। इसलिए ड्राइग रूम जिन्दगी की बात नहीं है। ऐसे ही हमने जिन्दगी के साथ किया है। जिन्दगी में हमने चेहरे बनाये हैं जो दूसरों को दिखाने के लिए हैं। वह हमारी असलियत नहीं है। हमारा असली घर भीतर है, अन्दरे में डूबा हुआ, अचेतन में दबा हुआ। उसका हमें कोई पता भी नहीं। हमने खुद भी उसका पता लेना छोड़ दिया है। हम खुद भी डर गये हैं। यानी हम ऐसे आदमी हैं जो खुद अपने घर से डर गये हों, ड्राइग रूम में रहने लगे हों, और भीतर जाने में घबराते हों। तब जिन्दगी उथली हो ही जायेगी। इसलिए कृष्ण से डर लगता है क्योंकि कृष्ण पूरे घर में रहते हैं। उन्होंने पूरे घर को बैठकखाना बना दिया है। वह हर कोने से अतिथि का स्वागत करते हैं। जहाँ से भी जाओ, वह कहते हैं चलो यही बैठो। उनके पास बैठकखाना अलग मही है। उनकी पूरी जिन्दगी खुली हुई है। उसमें जो है वह है। उसका कोई इन्कार नहीं, उसका कोई विरोध नहीं। हम डरेंगे, हम 'स्प्रेसिव' हैं। हम हैं दमनकारी। हमने अपनी जिन्दगी के निय्यानवे प्रतिशत हिस्से को तो अन्दरे में ढकेल दिया और एक प्रतिशत को जो रहे हैं। वह निय्यानवे प्रतिशत पूरे वक्त धक्के मार रहा है कि मुझे मौका दो जीने का। वह लड़ रहा है, वह सघर्ष कर रहा है, सपनों में टूट रहा है, जागने में भी टूट पड़ता है। रोज रोज टूटता है, हम फिर उसे धक्का देकर पीछे कर आते हैं। पूरी जिन्दगी इसी सघर्ष में बीत जाती है। अपने से ही लड़ने में आदमी हार जाता है और समाप्त हो जाता है। उधर कृष्ण ने सब तरफ से द्वार खोल रखे हैं। कहीं से भी आओ स्वागत है, कहीं कुछ दबाया नहीं। अन्दरे को भी स्वीकार करता है, उजाले को भी स्वीकार करता है। कहीं इसे देखकर हमारी आत्मा बगावत न कर दे, हमारे दमन अपने लिलाक बगावत न कर दे, इसलिए डर है। लेकिन

यह डर भी विचारणीय है। यह डर कृष्ण के कारण नहीं है, यह हम जिस डग से जी रहे हैं उसके कारण है। अगर सीधा माफ आदमी है, जिन्दगी को जिसने सरलता से जिया है, वह कृष्ण से नहीं डरेगा। डरने का कोई कारण नहीं। जिन्दगी में अगर कुछ भी नहीं दबाया है, वह कृष्ण से नहीं डरेगा। हम डर रहे हैं तो यह हमारी रुणावस्था है। हम बीमार हैं, हम विक्षिप्त हैं और हमें इस स्थिति को बदलने की कोशिश करनी चाहिए। इसलिए कृष्ण तो बहुत विचारणीय है। लेकिन हम कहेंगे कि हम तो बुद्ध का वचन पढ़ते हैं, जिसमें कहा है कि क्रोध मत करना, हम तो जीसस का वचन पढ़ते हैं जिसमें कहा है कि शत्रुओं को प्रेम करना। हम कृष्ण से डरते हैं। इस डर का तीर किस तरफ है? कृष्ण की तरफ कि अपनी तरफ? और अगर कृष्ण से डर लगता है, तब तो बड़ा अच्छा है। आपके कृष्ण काम आ सकते हैं। वह आपको खोलने में, उधाड़ने में, आपको नग्न करने में, आपको स्पष्ट सीधा करने में काम आसकते हैं। उनका उपयोग करना। उनको आने देना। उनके आमने-सामने खड़े हो जायें। 'एनकाउण्टर' होने दे। यह मुठभेड़ अच्छी होगी। इसमें अनुकरण नहीं करना है उनका। इसमें समझना ही है उनको। उनको समझने में ही आप अपने को समझने में बड़े सफल हो जायेंगे। उनको समझते ही आप अपने को समझ पायेंगे। हो सकता है, आप अद्भुत साक्षात्कार को उपलब्ध हो जायें और जान पायें कि यह तो मैं भी हूँ। यहीं तो मैं हूँ।

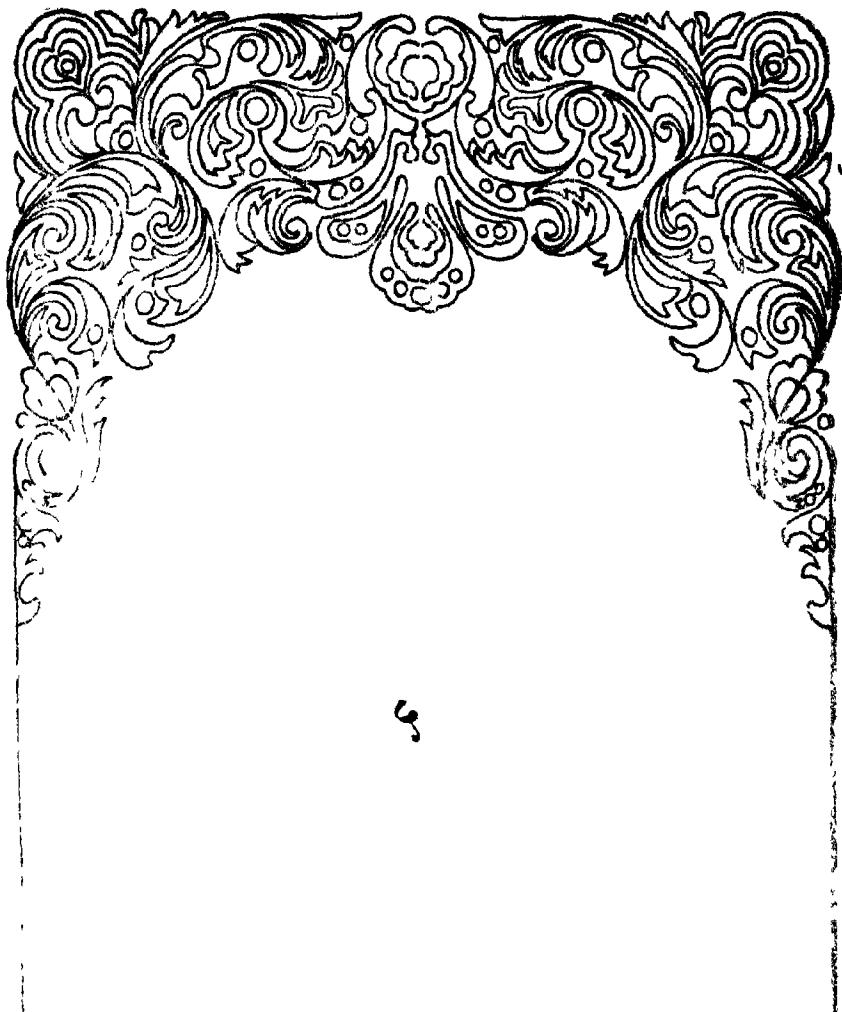
एक मित्र मेरे पास आये और उन्होंने मुझे कहा कि कृष्ण के सोलह हजार स्त्रियाँ थीं, क्या आप इसमें विचास करते हैं? मैंने कहा कि छोड़ो। मैं तुमसे पूछता हूँ कि तुम्हारे मन को सोलह हजार से कम स्त्रियाँ तृप्ति दे सकती हैं? उन्होंने कहा, क्या कहते हैं? मैंने कहा, कृष्ण की सोलह हजार स्त्रियाँ थीं या नहीं, यह सवाल बड़ा नहीं है। कोई पुरुष सोलह हजार स्त्रियों से कम पर राजी नहीं है। कृष्ण की सोलह हजार स्त्रियाँ थीं, अगर ऐसा पक्का हो जाय तो हमारे भीतर का जो पुरुष है वह धोषणा करेगा-तो किर देर क्यों कर रहे हों? उससे हमें डर है। भीतर बैठा हुआ पुरुष हमें डरा रहा है। लेकिन उससे डरकर, भागकर, बचकर कुछ भी हो नहीं सकता है। उसका सामना करना पड़ेगा। समझना पड़ेगा



## पर्व : पांच

कृष्ण जन्म की स्थिति और काइस्ट से साम्य  
सर्वधर्मान् परित्यज्य मात्रेक शरण द्रव्य  
गीता के कृष्ण भागवत के कृष्ण  
गीता कृष्ण का प्रामाणिक वचन  
वस्त्रहरण लीला और निरावरणता के प्रथम पुरस्कर्ता कृष्ण  
अनेतिकता की व्याख्या  
कृष्ण का सोचला रग  
कृष्ण और कृष्ण  
आध्यात्मिक संभोग  
कृष्ण के जीवन की समग्रता में राधा का योग





६

प्रश्न श्रीकृष्ण के गर्भाशान व जन्म की विशेषताओं व रहस्यों पर सविस्तार प्रकाश ढालने की कृपा करें। और काइस्ट की जन्म-स्थितियों से साम्य हो तो इसे भी स्पष्ट करें।

उत्तर कृष्ण का जन्म हो, या किसी और का जन्म हो—जन्म-स्थिति में बहुत भेद नहीं है। इसे योड़ा समझना जल्दी है। लेकिन सदा से हम भेद देखते आये हैं, और वह है कुछ प्रतीकों को न समझने के कारण। कृष्ण का जन्म होता है अन्धेरी रात में, अमावस्या में। सभी का जन्म अन्धेरी रात में होता है और अमावस्या

में होता है। जन्म तो अन्धेरे में ही होता है। असल में जगत की कोई भी चीज उजाले में नहीं जन्मती। एक बीज भी फूटता है तो जमीन के अन्धेरे में जन्मता है। फूल खिलते हैं प्रकाश में, जन्म अन्धेरे में होता है।

असल में जन्म की प्रक्रिया इतनी रहस्यपूर्ण है कि अन्धेरे में ही हो सकती है। आपके भीतर भी जिन चीजों का जन्म होता है वह सब गहरे अन्धकार में, गहन अन्धकार में होता है। एक कविता जन्मती है तो मन के बहुत अचेतन अन्धकार में जन्मती है, 'अनकासेस डार्कनेस' में पैदा होती है। एक चित्र का जन्म होता है तो मन की अतल गहराइयों में जहाँ कोई रोशनी नहीं पहुँचती जगत की, वहाँ होता है। समाधि का जन्म होता है, ध्यान का जन्म होता है तो सब गहन अन्धकार में। गहन अन्धकार का अर्थ है जहाँ बुद्धि का प्रकाश जरा भी नहीं पहुँचता। जहाँ सोच समझ में कुछ भी नहीं आता, हाथ को हाथ नहीं सूझता है। कृष्ण का जन्म जिस रात में हुआ, कहानी कहती है कि हाथ को हाथ नहीं सूझता था, इतना गहन अन्धकार था। लेकिन कब कोई चीज जन्मी है जो अन्धकार में न जन्मी हो? इसमें विशेषता खोजने की जरूरत नहीं है। यह जन्म की सामान्य प्रक्रिया है।

दूसरी बात कृष्ण के जन्म के साथ जुड़ी है—बन्धन में जन्म होता है, कारागृह में। किसका जन्म है जो बन्धन और कारागृह में नहीं होता? हम भी कारागृह में जन्मते हैं। हो सकता है, मरते बक्त तक हम कारागृह से मुक्त हो जायें, लेकिन जरूरी नहीं है। हो सकता है, हम मरे भी कारागृह में। जन्म एक बन्धन में लाता है, भीमा में लाता है। शरीर में आना ही बड़े बन्धन में आ जाना है, बड़े कारागृह में आ जाना है। जब भी कोई आन्मा जन्म लेनी है तो कारागृह में ही जन्म लेती है। लेकिन इस प्रतीक को ठीक से नहीं समझा गया। इस बहुत काव्यात्मक बात को ऐतिहासिक घटना समझकर बड़ी भूल हो गयी। सभी जन्म कारागृह में होते हैं। जन्म तो बन्धन में होगा ही। मरते क्षण तक अगर हम बन्धन से छूट जायें, टूट जायें सारे कारागृह, तो जाने जीवन की यात्रा सफल हो गयी है।

कृष्ण के जन्म के साथ एक और तीसरी बात जुड़ी है और वह यह है कि जन्म के साथ ही उनकी मृत्यु का डर है। उन्हे मारे जाने की धमकी है। किसको नहीं है? जन्म के साथ ही मरने की घटना सभावी हो जाती है। जन्म के बाद—एक पल बाद भी मृत्यु घटित हो सकती है। जन्म के बाद प्रतिपल मृत्यु सभावी है। किसी भी क्षण में वह घट सकती है। मौत के लिए एक ही चीज जरूरी है—वह है जन्म। जन्म के बाद एक पल जिया हुआ बालक भी मरने के लिए उतना ही

योग्य हो जाता है जितना सत्तर साल जिया हुआ आदमी होता है। मरने के लिए और कोई योग्यता नहीं चाहिए, जन्म भर चाहिए। कृष्ण के जन्म के साथ मौत की भी धमकी है, मरने का भय है। सबके जन्म के साथ है। जन्म के बाद मरने के अतिरिक्त हम और करते ही क्या है? जन्म के बाद हम रोज़—रोज़ मरते ही तो हैं। जिसे हम जीवन कहते हैं, वह मरने की नम्बी याकाही ही तो है। जन्म से शुरू होती है, मौत पर पूरी हो जाती है।

लेकिन कृष्ण के जन्म के साथ एक चौथी बात भी जुड़ी है कि मरने की बहुत तरह की घटनाएँ घटित होती हैं, लेकिन वे सबसे बचकर निकल जाते हैं। जो भी उन्हे मारने आता है वही मर जाता है। कहे कि मौत ही उनके लिए मर जाती है। मौत सब उपाय करती है और बेकार हो जाती है। इसका भी बड़ा मतलब है। हमारे साथ ऐसा नहीं होता। मौत पहले हमले में हमें ले जायेगी। हम पहले हमले से ही न बच पायेगे, क्योंकि सच तो यह है कि हम करीब-करीब मरे हुए लोग हैं, जरा-सा धक्का और मर जायेंगे। जिन्दगी का हमें कोई पता भी तो है किन्तु उस जीवन का कोई पता नहीं जिसके दरवाजे से मौत मदा हार जाती है। नहीं, कृष्ण ऐसी जिन्दगी है जिस दरवाजे पर मौत बहुत रूपों में आती है और हार कर लौट जाती है। वे सब रूपों की कथाएँ हैं कि कितने रूपों में मौत घेरती है और हार जाती है। लेकिन, कभी हमें स्थाल नहीं आया कि इन कथाओं को हम गहरे में समझने की कोशिश करे। सत्य सिफं उन कथाओं में एक है। और वह यह है कि कृष्ण जीवन की तरफ रोज जीतते चले जाते हैं और मौत रोज हारती चली जाती है। मौत की धमकी एक दिन ममाप्त हो जाती है। जिन जिन ने चाहा जिस जिस ढग से चाहा कि कृष्ण मर जायें, वह वह ढग असफल हो जाते हैं और कृष्ण जिये ही चले जाते हैं। इसका मतलब है जीवन की जीत। लेकिन, ये बाते इतनी सीधी, जैसा मैं कह रहा हूँ कही नहीं गयी हैं। इतने सीधे कहने का पुराने आदमी के पास कोई उपाय नहीं था। इसे भी थोड़ा समझ लेना जरूरी है।

पुरानी दुनिया में जितना हम बापस लैटे उतना ही पायेगे कि चिन्तन का ढग पिक्टोरियल होता है, चिवात्मक होता है, शब्दात्मक नहीं होता। अभी भी रात आप सपना देखते हैं। कभी आपने स्थाल किया है कि सपनों में शब्दों का उपयोग करने हैं, कि चित्रों का? सपने में शब्दों का उपयोग नहीं होता। चित्रों का उपयोग होता है। क्योंकि, सपना हमारी आदिम भाषा है, 'प्रिमिटिव लेवेज' है। सपने के मामले में हमसे और आज से दस हजार साल पहले के आदमी में कोई फर्क नहीं पड़ा है। सपने अभी भी पुराने हैं। प्रीमिटिव है। गुहा मानव ने

एक गुफा में सोकर रात में जो सपने देखे होंगे, वही एयरकॉण्ट्रोलर मकान में भी देखे जाते हैं। कोई और कर्क नहीं पड़ा है। सपने की खूबी है कि उसकी सारी अभिव्यक्ति चित्रों में है। अगर एक आदमी बहुत महत्वाकांक्षी है तो सपने में महत्वाकांक्षा को वह क्या करेगा? चित्र बनायेगा। हो सकता है उसके पश्चले जाय और वह आकाश में उड़ जाय। सभी महत्वाकांक्षी लोग उड़ने का सपना देखेंगे, 'एम्बीजेस माइण्ड' उड़ने का सपना देखेंगा। उड़ने का मतलब है मबके ऊपर हो जाना। उड़ने का मतलब है कि अब कोई सीमा न रही, जितना चाहो उठ सकते हो। पहाड़ नीचे छूट जाते हैं, आदमी नीचे छूट जाते हैं, चादरारे नीचे छूट जाते हैं और आदमी ऊपर उठता चला जाता है। महत्वाकांक्षा शब्द का उपयोग सपने में नहीं होगा। उड़ने के चित्र का उपयोग होगा। इसलिए तो हम अपने सपने समझने में असमर्थ हो गये हैं, क्योंकि दिन में हम जो भाषा बोलते हैं वह शब्दों की है, रात जो सपना देखते हैं वह चित्रों का है। दिन में जो भाषा बोलते हैं वह बीसवीं सदी की है, रात जो सपना देखते हैं वह आदिम है। इन दोनों के बीच लाखों साल का फासला है। इसलिए, सपना क्या कहता है, यह हम नहीं समझ सकते।

कृष्ण बहुत पुराने हैं। इन अर्थों से पुराने कि आदमी अभी चिन्तन शुरू कर रहा है, आदमी अभी सोच रहा है, जगत और जीवन की वाबत, अभी जब शब्द नहीं बने, केवल प्रतीका और चित्रों में सारा कासारा कहा जाता है और समझा जाता है, तब कृष्ण के जीवन की घटनाओं लिखी गयी हैं। उन घटनाओं को 'डी कोड' करना पड़ता है, उन घटनाओं को चित्रों से तोड़कर शब्दों में लाना पड़ता है। क्राइस्ट का जीवन भी करीब-करीब कृष्ण जैसा ही शुरू होता है। उसमें बहुत कर्क नहीं है। इसलिए, बहुत लोगों को यहा तक भ्रम पैदा हो गया था, अभी भी कुछ लोगों को है, कि क्राइस्ट हुए ही नहीं, यह कृष्ण की ही कथा है, जो यात्रा करके जेरूसलम तक पहुंच गयी है, क्योंकि जन्म की कथा में बड़ा साम्य है। अन्धेरी रात में मृत्यु के भय से विरो हुए जीसस का जन्म होता है। यहा कस धमकी दे रहा है कृष्ण के मृत्यु की, वहीं सन्नाट जीसस की हत्या की धमकी दे रहा है। यहा कस ने बच्चे कटवा डाले हैं कि उसका मारने वाला पैदा न हो जाय, वहीं सन्नाट ने बच्चे कटवा डाले हैं कि उसका मारने वाला पैदा न हो जाय।

लेकिन, कृष्ण की कहानी क्राइस्ट की कहानी नहीं है। जीसस अलग ही व्यक्ति है। अलग ही उनकी यात्रा है। हीं, प्रतीक दोनों के समान है और प्रतीक इसलिए दोनों के समान है कि 'प्रीमीटिव माइण्ड' एकदम समान होता है। यह

व्यापान देने जैसी बात है कि चाहे अप्रेज सपना देखे, चाहे चीनी सपना देखे और चाहे आपानी सपना देखे, सपने की भाषा एक है। इसलिए, 'मिथ' पुराण की भाषा एक है। तो, जो प्रतीक पुराने मन मे उठे और कृष्ण के जन्म के साथ जुड़ गये वे ही प्रतीक जीसस के जन्म के साथ भी जुड़ गये। दोनों का एक ही व्यक्ति हीने का भ्रम और भी एक कारण से पैदा हुआ कि जीसस का नाम तो जीसस है, लेकिन बाद मे उसके साथ जुड़ गया क्राइस्ट। 'क्राइस्ट' शब्द को कृष्ण शब्द का रूपातरण माना जा सकता है। मैं एक आदमी को जानता हूँ जिनका नाम है क्रिस्टो बाबू। मैंने उनसे पूछा, यह कैसा नाम है। उन्होंने कहा कि नाम तो मेरा कृष्ण है, लेकिन अग्रेजी मे लिखते-लिखते धीरे-धीरे 'क्रिस्ट' हो गया। इसकी सभावना है। जीसस तो अलग व्यक्ति है। हाँ, इस बात की सभावना है जहार कि कृष्ण शब्द यात्रा करते करते क्राइस्ट हो गया हो, क्योंकि जीसस वो 'क्राइस्ट' एक पदवी है जैसे कि बद्धमान की पदवी महावीर है। बद्धमान घर का नाम है। बाद मे जब वे ज्ञान को उपलब्ध हुए तो महावीर नाम हो गया। इसी प्रकार बुद्ध घर का नाम नहीं है, गौतम या सिद्धार्थ घर का नाम है। जब कृष्ण को उपलब्ध हुए तो बुद्ध हो गये। जीसस घर का नाम है। जब वे ज्ञान को उपलब्ध हुए तब क्राइस्ट हो गये। 'क्राइस्ट' शब्द हो सकता है कि कृष्ण ही हो गया हो, इसमे बहुत कठिनाई नहीं है। यह हो सकता है। लेकिन जीसस का व्यक्तित्व अलग व्यक्तित्व है। जन्म की घटना मे जहार ताल मेल है, पर ये दो व्यक्ति हैं, एक नहीं है। जन्म की घटनाओं के ताल मेल का कारण एक व्यक्ति का होना नहीं है, जन्म की घटनाओं का ताल मेल एक ही तरह के अचेतन मन मे पैदा हुए प्रतीकों का है।

कार्ल गुस्ताव जुग ने मनुष्य के मन के सम्बन्ध मे एक बहुत अद्भुत खोज की है जिस खोज को वह आज 'टाइप' कहते हैं। वह कहते हैं मनुष्य के गहरे मन मे कुछ 'आर्च टाइप' हैं — कुछ बुनियादी प्रतीक हैं, जो सारी दुनिया मे समान हैं। वह दोहराते रहते हैं। क्राइस्ट और कृष्ण की जन्म की कथा मे वे प्रतीक दोहरे हैं। और, मैंने जैसा कहा, यह जन्म की घटना सभी के जन्म की घटना है। यहा कृष्ण शब्द को भी थोड़ा समझना जरूरी है।

'कृष्ण' शब्द का अर्थ होता है, केन्द्र। कृष्ण शब्द का अर्थ होता है जो आकृष्ट करे, जो आकर्षित करे,—'सेन्टर आफ ग्रेडिटेशन', कशिश का केन्द्र। कृष्ण शब्द का अर्थ होता है जिस पर सारी चीजे खिचती हो। जो केन्द्रीय चूम्बक का काम करे। प्रत्येक व्यक्ति का जन्म इस अर्थ मे कृष्ण का जन्म है। क्योंकि, हमारे भीतर जो आत्मा है वह कशिश का केन्द्र है। वह

'सेटर आफ ग्रेविटेशन' है, जिसपर सब चीजें खिचती हैं और आकृष्ट होती हैं। शरीर खिचकर उसके आसपास निर्मित होता है, परिवार खिचकर उसके आसपास निर्मित होता है, समाज खिचकर उसके आसपास निर्मित होता है, जगत खिचकर उसके आसपास निर्मित होता है। वह जो हमारे भीतर कृष्ण का केन्द्र है, आकर्षण का गहरा बिन्दु है उसके आसपास सब घटित होता है। तो, जब भी कोई व्यक्ति जन्मता है, वह एक अर्थ में कृष्ण ही जन्मता है। वह जो बिन्दु है आत्मा का, आकर्षण का, सब चीजें उसके आसपास निर्मित होनी शुरू होती हैं और उसे हम जन्म के नाम से सबोधन करते हैं। उस कृष्ण बिन्दु के आसपास क्रिस्टलाइजेशन शुरू होता है और व्यक्तित्व निर्मित होते हैं। इसलिए, कृष्ण का जन्म एक व्यक्ति-विशेष का जन्म भाव नहीं है, बल्कि व्यक्ति मात्र का जन्म है। अन्धेरे का, कारागृह का, मृत्यु के भय का भी ऐसा ही अर्थ है। लेकिन, हमने कृष्ण के साथ इसे क्यों जोड़ा होगा? मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि कृष्ण की जिन्दगी में जो घटना घटी होगी कारागृह में, वह नहीं घटी। मैं यह भी नहीं कह रहा हूँ कि वह बन्धन में पैदा नहीं हुए होगे। मैं इतना ही कह रहा हूँ कि वे बन्धन में पैदा हुए हो या न हुए हो, वे कारागृह में जन्मे हो या न जन्मे हो, लेकिन कृष्ण जैसा व्यक्ति जब हमें उपलब्ध हो गया तो हमने कृष्ण के व्यक्तित्व के साथ वह सब समाहित कर दिया है जो कि प्रत्येक आत्मा के जन्म के साथ समाहित है।

ध्यान रहे, महापुरुषों की जन्म की कथाएँ हममें उल्टी चलती हैं। साधारण आदमी के जीवन की कथा जन्म से शुरू होती है और मृत्यु पर पूरी होती है। उसकी कथा में एक 'सीक्वेस' होता है—जन्म से लेकर मृत्यु तक। महापुरुषों की कथाएँ फिर से 'रिट्रोस्पेक्टिवली' लिखी जाती है। महापुरुष पहचान में तो आते हैं बाद में, इसलिए, उनके जन्म की कथाएँ बाद में लिखी जाती हैं। कृष्ण जैसा आदमी जब हमें दिखायी पड़ता है तब तो पैदा होने के बहुत बाद दिखायी पड़ता है। वर्षों बीत गये होते हैं उसे पैदा हुए। जब वह हमें दिखायी पड़ता है तो वह कोई चालीस पचास साल की यात्रा कर चुका होता है। फिर, इस महिमावान, इस अद्भुत व्यक्ति के आसपास कथा निर्मित होती है। फिर हम चुनाव करते हैं इसकी जिन्दगी का, फिर हम 'रीइन्टरप्रेट' करते हैं। फिर से व्याख्याएं शुरू होती हैं, फिर से हम इसके पिछले जीवन में से घटनाएँ चुनते हैं, घटनाओं को अर्थ देते हैं। इसलिए, मैं आपसे कहूँ कि महापुरुषों की जिन्दगी कभी भी ऐतिहासिक नहीं हो पाती, सदा काव्यात्मक हो जाती है। क्योंकि, पीछे लौटकर निर्मित होती है। पीछे लौटकर जब हम देखते हैं तो हर चीज प्रतीक हो जाती है और दूसरे अर्थ ले लेती है, जो

अर्थ घटते हुए क्षण में कभी भी न रहे होगे। और, फिर कृष्ण जैसे व्यक्तियों की जिन्दगी एक बार नहीं लिखी जाती, हर सदी बार-बार लिखती है। हजारों लोग लिखते हैं। जब हजारों लोग लिखते हैं तो हजार व्याख्याएँ होती चली जाती हैं। फिर धीरे-धीरे कृष्ण की जिन्दगी किसी व्यक्ति की जिन्दगी नहीं रह जाती। कृष्ण एक सत्था हो जाते हैं, एक 'इस्टीट्यूशन' हो जाते हैं। फिर वे समस्त जन्मों का सारभूत ही जाते हैं। फिर मनुष्य भाव के जन्म की कथा उनके जन्म की कथा हो जाती है। इसलिए, व्यक्तिवाची अर्थों में मैं कोई मूल्य नहीं मानता हूँ। कृष्ण जैसे व्यक्ति, व्यक्ति रह ही नहीं जाते। वे हमारे मानस के, हमारे चित्त के, हमारे 'कलेक्टिव माइण्ड' के प्रतीक हो जाते हैं। और, हमारे चित्त ने जितने भी जन्म देखे हैं वे सब उनमें समाहित हो जाते हैं। इसे ऐसा समझे

एक बहुत बड़े चित्रकार ने एक स्त्री का चित्र बनाया — एक बहुत सुन्दर स्त्री का चित्र। लोगों ने उसमें पूछा कि यह कौन स्त्री है जिसके आधार पर चित्र को बनाया है। उस चित्रकार ने कहा, यह किसी स्त्री का चित्र नहीं है। यह लाखों स्त्रियों जो मैंने देखी हैं उनका सारभूत है। इसमें आख किसी की है, इसमें नाक किसी की है, इसमें ओठ किसी के, इसमें रंग किसी का है, इसमें बाल किसी के हैं। ऐसी स्त्री कही खोजने से नहीं मिलेगी। ऐसी स्त्री मिर्फ चित्रकार देख पाता है। और, इसलिए चित्रकार की स्त्री पर बहुत भरोसा भत करना, उसको खोजने भत निकल जाना, क्योंकि जो मिलेगी वह वह नहीं मिलेगी, साधारण स्त्री ही मिलेगी। इसलिए दुनिया बहुत कठिनाई में पड़ जाती है, क्योंकि हम जिन स्त्रियों को खोजने जाते हैं वह कहीं है नहीं—वह चित्रकारों की स्त्रियाँ हैं, वह कवियों की स्त्रियाँ हैं। वह हजारों स्त्रियों का सारभूत है। वह इन हैं हजारों स्त्रियों का। वह कहीं मिलने वाला नहीं है। वह हजारों स्त्रियों मिल-जुल कर एक हो गयी है। वह हजारों स्त्रियों के बीच में से खोजी गयी धून है।

इसलिए, कृष्ण मनुष्य भाव के जन्म के प्रतीक बन जाते हैं—एक विशेष मनुष्यता के, जो इस देश में पैदा हुई, और जो इस देश ने अनुभव किया वह सब उनमें सभा जाता है। फिर, इस प्रतीक में जुड़ता ही चला जाता है, अनन्त काल तक जुड़ता चला जाता है। हर युग उसमें जोड़गा, हर युग उसमें समृद्धि करेगा। इसी दृष्टि से मुझे जो दिसायी पड़ा वह मैंने आपसे कहा। ये घटनाएँ घट भी सकती हैं, ये घटनाएँ न भी घटी हो, मेरे लिए घटनाओं का कोई मूल्य नहीं है। मेरे लिए मूल्य कृष्ण को समझने का है कि इस आदमी में ये घटनाएँ कैसी हमने देखी।

प्रश्न : 'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेक शरण द्वज' और यह कि मेरु-मुख में जन्म लेता हूँ धर्म को संस्थापना के लिए, यह कृष्ण ने एक मजाक किया है, साधुओं का परिवार और दुष्टों का विनाश — मुझे ऐसा लगता है कि गीता का कृष्ण तो मजाक नहीं करता। भागवत का कृष्ण शायद मजाक कर सकता है। और हमने एक अजीब तरह का 'अनकिटिकल एटोटथूड' अपना लिया कि गीता के कृष्ण को भागवत के कृष्ण से मिला लिया और उस तक को एक व्यक्ति ही मान लिया कि गीता बाले ने भी मजाक कर दिया। इसमें सोचना पड़ेगा कि कृष्ण के सम्बन्ध में हम जो भी कुछ कहे तो गीता का कृष्ण अलग है। वह हजार दो हजार साल पहले एक व्यक्ति की कल्पना का कृष्ण है। भागवत का कृष्ण कुछ और है। और, उन दोनों को एक करके अगर हम उनमें तालमेल बिठाना चाहे तो कहीं-कहीं बात उल्टी पड़ेगी। गीता स्वयं भी इस तरह से है कि शकर उसमें कुछ और अर्थ देख रहे हैं, लोकमान्य तिलक कुछ और देख रहे हैं, आप कुछ और अर्थ देख रहे हैं—तो सोचना होगा, क्या गीता कृष्ण के जीवन-दर्शन का प्रामाणिक सकलन है?

उत्तर पहली बात यह, कल मैंने कहा कि साधुओं के परिवार के लिए और दुष्टों के विनाश के लिए कृष्ण ने कहा—‘मैं आता रहूँगा’, ता इसमें कृष्ण ने गहरी मजाक की है। लेकिन, मैंने यह नहीं कहा कि ‘सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेक शरण द्वज’ — इसमें कृष्ण ने मजाक किया है, यह मैंने नहीं कहा। योड़ा-सा इस सम्बन्ध में समझ ले, फिर प्रश्न के लिए आगे बढ़ेगे।

कृष्ण जब कहते हैं, सब धर्मों को छोड़कर तू मुझ एक की शरण में आ जा — सब धर्मों को छोड़कर। जगत में धर्म तो एक ही हो सकता है। लेकिन, जो बहुत धर्मों को देख रहा है वह बड़ी आति में पड़ेगा। सब धर्मों को छोड़कर इसका अर्थ ही ही है कि विशेषणवाची जो भी धर्म हो, उन्हे छोड़कर। अनेक को छोड़कर तू मुझ एक की शरण आ जा। कृष्ण यह भी कह सकते थे कि तू मेरी शरण में आ। लेकिन, जो शब्द है वह बहुत अदभुत है— वह है ‘मामेक शरण द्वज’। मुझ एक की शरण में, ‘मामेक’। यहा कृष्ण व्यक्ति की हैसियत से बोल नहीं रहे हैं, यहा तो धर्म की हैमियत से ही बोल रहे हैं। सब धर्मों को छोड़कर धर्म की शरण में आ। अनेक को छोड़कर एक की शरण में आ। दूसरी बात, यहां

यह बोल रहे हैं — मुझ एक की शरण मे आ । अगर इसे बहुत गहरे मे हम समझे तो यह बहुत मजेदार बात है । मैं की शरण मे आ । लेकिन, जब मैं बोलता हूँ ‘मैं’, तो जो मेरा ‘मैं’ होता है वह आपके लिए ‘तू’ हो जायेगा, ‘मैं’ नहीं रह जायेगा आपके लिए मैं तो आपका ही मैं होगा, मेरा ‘मैं’ नहीं हो सकता । अगर कृष्ण का यह अर्थ हो कि तू कृष्ण की शरण मे आ, तो यह तो ‘तू’ की शरण हो जायेगी । अर्जुन का मैं, अर्जुन का मैं है । वह उसकी शरण मे जायेगा, वह पूरा स्वधर्म की शरण मे चला जायेगा । यह वक्तव्य बहुत अद्भुत और गहरा है । और, इसकी गहराइयों का कोई हिसाब नहीं है । मनुष्यों ने जितने भी वक्तव्य दिये हैं इस पृथ्वी पर, शायद ही कोई वक्तव्य इसकी गहराई को छूता हो । अनेक को छोड़कर एक की, तू को छोड़कर मैं की, विशेषणवाची धर्मों को छोड़कर धर्म की शरण मे आ । लेकिन, इसमे और भी गहराइयाँ हैं । अगर अर्जुन कहे कि मैं अपने ही ‘मैं’ की शरण मे जाऊगा तब भी वह कृष्ण को नहीं समझा । क्योंकि, शरण मे जाने वाले को ‘मैं’ छोड़ देना पड़ता है । शरण का अर्थ ही है कि ‘मैं’ छूट जाय, समर्पण का अर्थ ही है कि ‘मैं’ न बचे । यह बड़ी जटिल बात होगी । अपनी ही शरण मे आ अपने को छोड़कर । धर्म की शरण मे आ धर्मों को छोड़कर । एक की शरण मे आ अनेक को छोड़कर । लेकिन, जिसके पास एक भी बच रहेगा उसके पास अनेक भी बच सकता है । एक की हम कल्पना ही नहीं कर सकते अनेक के बिना । इसलिए, जिसे एक की शरण मे आना है उसे एक को भी छोड़ देना पड़ेगा । सत्या ही छोड़ देनी पड़ेगी । इसलिए, बाद मे जब यह ख्याल मे आया कि ‘एक’ शब्द भ्राति पैदा कर सकता है, तो हम अद्वैत की बात करने लगे । हमने कहा, दो की शरण मे मत आना । दो से बच । फिर, एक कहने मे भी सकोच हुआ, क्योंकि डर हुआ कि एक पकड़ा जा सकता है । इसलिए, एक नया शब्द गढ़ना पड़ा जो ‘निगटिव’ है, नकारात्मक है । एक नहीं, अद्वैत — दो नहीं, इतना ही ध्यान रखना कि दो न हो । और स्मरण रहे, अगर एक भी बचा तो दूसरा रहेगा, क्योंकि एक को जानना दूसरे के परिप्रेक्ष्य मे ही, दूसरे के ‘पर्सनेक्टिव’ मे ही सम्भव है । अगर मैं जान रहा हूँ कि मैं हूँ, तो तू के बिना नहीं जान सकता हूँ । नहीं तो मैं कहा शुरू होऊँगा और कहा खत्म होऊँगा? तो, जो भी जान रहा हूँ ‘मैं’ हूँ, ‘तू’ के विरोध मे ही जान सकता है । ‘तू’ रहेगा ही, तब ही ‘मैं’ हो सकता हूँ । अगर कोई कह रहा है, एक ही है सत्य, तो भी अभी उसका जोर बता रहा है कि उसे दूसरा दिखायी पड़ रहा है, जिसको वह इन्कार कर रहा है । इसलिए भी इस वक्तव्य की बड़ी गहराइयाँ हैं । पहला तो यह स्मरण रखे कि यह कृष्ण की शरण के लिए नहीं कहा गया है । यह अर्जुन को आत्म-शरण होने के लिए कहा गया है । दूसरी बात ख्याल रखे, यह अर्जुन के अहकार

की शरण के लिए नहीं कहा गया है। यह निर-अहकार स्वभाव की शरण के लिए कहा गया है। तीसरी बात स्थाल रखे कि यह धर्मों के त्याग के लिए कहा गया है। और धर्मों के त्याग में कोई विशेष धर्म नहीं बचता, सभी धर्मों के त्याग के लिए कहा गया है—‘सर्वधर्मन्’। ऐसा नहीं कि हिन्दू को बचा लेना है और बाकी को छोड़ देना है। सबको ही छोड़ देना है, क्योंकि जब तक कोई किसी धर्म को पकड़े हैं तब तक धर्म को उपलब्ध न हो सकेगा। उस निर्विशेष धर्म को कैसे उपलब्ध होगा जो किसी विशेषण में नहीं बनता है? धर्म को छोड़ देना, धर्मों को छोड़ देना, विशेषण को छोड़ देना, कृष्ण को छोड़ देना, सस्था को छोड़ देना, ‘मैं’ को छोड़ देना, अहकार को छोड़ देना, फिर जो शेष रह जाय वही धर्म है। और यह मजाक में नहीं कहा गया है।

दूसरी बात जो पूछी कि हम फर्क करे गीता के कृष्ण का और भागवत के कृष्ण का। जिन मित्र ने बात पूछी वे थोड़े बाद में आये। जो मैं पहले कह चुका हूँ वह उनके स्थाल में नहीं है। थोड़ी-सी बात कहूँ। हमारा मन चाहेगा कि हम भेद करे, क्योंकि गीता के कृष्ण और भागवत के कृष्ण में ताल्मेल बिठाना हमारी बुद्धि में नहीं पड़ सकेगा। दोनों बड़े अलग ही आदमी मालूम पड़ते हैं। अलग ही नहीं, विरोधी आदमी मालूम पड़ते हैं। गीता के कृष्ण बड़े गम्भीर, भागवत के कृष्ण एकदम गैर-गम्भीर। उनके बीच हम ताल्मेल न बिठा सकेंगे। हम तो तोड़ना चाहेंगे कि यह दो आदमी हैं। या तो हम चाहेंगे, यह दो आदमी हैं, या कृष्ण ‘सीजोफेनिक’ है। हम कहेंगे दो आदमी हैं इस आदमी के भीतर कि कभी यह एक तरह की बात करने लगता है, कभी दूसरी तरह की। यह आदमी दो खण्डों में बटा है जैसा कि कुछ पागल बट जाते हैं। फिर, उनके ‘पीरियड्स’ होते हैं—छह महीने वे शान्त होते हैं, छह महीने अशान्त होते हैं। छह महीने वह आनंदित होते हैं, छह महीने वे बड़े उदास हो जाते हैं। सुबह ठीक होते हैं साज और कुछ हो जाते हैं। या तो हम समझें कि कृष्ण ‘मल्टीमार्इकिक’ है, बहुत चित्त हैं कृष्ण के, बहुवित्तवान हैं। बहुत आदमी है कृष्ण के भीतर। एक रास्ता तो यह है समझने का।

दूसरा रास्ता यह है कि अगर हम इतिहासक से कहें तो वह कहेगा, यह दो कालों में बटे दो आदमी होने चाहिए। यह एक आदमी नहीं हो सकता। यह इतिहासक की व्याख्या होगी। क्योंकि, उसकी कल्पना के बाहर है कि एक आदमी, और इतने आदमियों जैसा हो सके। वह कहेगा, भागवत के कृष्ण कोई और है, गीता के कृष्ण कोई और है। यह एक नहीं हो सकते।

लेकिन, मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि मनोवैज्ञानिक की सलाह मैं मानने को राजी नहीं हूँ। नहीं हूँ इसलिए कि खण्डित व्यक्तित्व 'कृष्ण' जैसे आनंद को उपलब्ध नहीं होता है, 'कृष्ण' जैसी परम शान्ति को उपलब्ध नहीं होता है। मैं इतिहासज्ञ की बात मानने को तैयार नहीं हूँ, क्योंकि उमकी तकलीफ भी उसी बात से उठ रही है कि हम कैसे माने कि एक आदमी और इतना सब कर सकेगा। जो मनोवैज्ञानिक एक ही आदमी के भीतर करता है वह इतिहासज्ञ समय के भीतर अलग-अलग व्यक्तियों को बाटकर करेगा। मेरी अपनी दृष्टि यह है कि एक ही कृष्ण है, और यही कृष्ण की महत्ता है। इसको अगर हम छाँट देने हैं तो कृष्ण बेमानी हो जाते हैं। उनका मूल्य ही खत्म हो जाता है। कृष्ण का महन्व ही यही है कि वे एक साथ सब कुछ हैं। उनका महत्व ही यह है कि वे एक साथ विरोधी हैं और उन विरोधों में एक 'हार्मनी' है। उन विरोधों में एक सगीत है। जो कृष्ण बासुरी बजाकर नाच सकता है, वह कृष्ण चक्रलेकर लड़ सकता है। इन दोनों कृष्णों में कोई विरोध नहीं है। जो कृष्ण मटकी फोड़ सकता है वह कृष्ण 'गीता' जैसा गभीर उद्घोष कर सकता है। जो कृष्ण चोर हो सकता है वह गीता का परम योगी हो सकता है। ये सब एक साथ एक ही व्यक्ति है, यही कृष्ण की महत्ता है, यही कृष्ण के व्यक्तित्व की निजता है, जो क्राइस्ट में उपलब्ध नहीं होगी, बुद्ध में उपलब्ध नहीं होगी, महावीर में उपलब्ध नहीं होगी और राम में उपलब्ध नहीं होगी। कृष्ण विरोधों के बीच समागम है—समस्त विरोधों का समागम। और, मैं इसे इसलिए भी कह पाता हूँ कि मैं देखता हूँ कि इन विरोधों को विरोधी होने की कोई वजह नहीं है। समस्त जीवन का सत्य ही विरोधों का समागम है। सारा जीवन ही विरोधों पर खड़ा है और उन विरोधों में कोई विसर्गतिता नहीं है। जो आदमी बच्चा होता है वही आदमी बूढ़ा होता है। इसमें कोई विग्रह नहीं है। अगर मैं आपसे पूछूँ कि किस दिन आप बच्चे थे और किस दिन जवान हुए तो बताना बहुत मुश्किल हो जायेगा। अगर मैं आपसे पूछूँ, आप जवान थे, अब बूढ़े हो गये, किस दिन आप बूढ़े हुए? तो बहुत मुश्किल हो जायेगी। इनको बाटना मुश्किल होगा। शब्दों में जवानी और बुढ़ापा विरोधी मालूम पड़ते हैं। लेकिन, किस दिन जवानी समाप्त होती है और बुढ़ापा शुरू होता है? नहीं, किसी भी दिन ऐसा नहीं होता, जवानी रोज बुढ़ापा बनती चली जाती है। हम जवान को कह सकते हैं कि होने वाला बूढ़ा है। हम बूढ़े को कह सकते हैं कि यह बीत गया जवान है।

हम शान्ति और अशान्ति को दो चीजें मानते हैं, लेकिन कभी आपने स्थाल

किया है कि वह कौन सी जगह है जहा शानि अलग होती है और अशानि शुरू होती है। शब्दों में विरोध है। डिक्षनरी में खोजने जायेगे तो शानि और अशानि विपरीत अर्थ है। शब्दकोश में खोजेंगे तो सुख और दुख विरोधी हैं, लेकिन जिन्दगी में देखने जायेंगे तो पायेंगे कि सुख दुख बन जाता है, दुख सुख बन जाता है। शाति अशाति हो जाती है, अशाति शाति बन जाती है। जन्म मृत्यु हो जाती है, मृत्यु जन्म हो जाती है। सुबह साझा हो जाती है, दिन अधेरा हो जाता है। प्रकाश अधकार बन जाता है, अधकार प्रकाश बन जाता है। जीवन समस्त विरोधों का समागम है। यहा ऋण और धन विपरीत नहीं है, एक ही शक्ति के खेल है। जीवन की अगर अर्थवत्ता को हम देखें, इस शाश्वत 'हार्मनी' को, मगीत को हम देखें तो फिर कृष्ण हमें ममझे में आ सकते हैं। इसलिए तो कृष्ण का हम पूर्ण अवानार कह मके। वे जीवन के पूरे प्रतीक हैं। बुद्ध नहीं जीवन के पूरे प्रतीक हैं। बुद्ध, जीवन में जो सुबह है, जो प्रभात है, जो प्रकाश है, उसके ही प्रतीक हैं। फिर साझा का क्या होगा, रात के अन्धेरे का क्या होगा? पूर्णिमा तो आप मम्हाल लेगे, अमावस्या का क्या होगा? अमृत तो आप ले लेगे, जहर का क्या होगा? इसलिए बुद्ध साफ-सुथरे हैं। कोई नहीं कहेगा कि फला किनाब के बुद्ध अलग हैं और फला किनाब के बुद्ध अलग हैं। कोई कारण नहीं कहने का। सब किनाबों के बुद्ध एक हैं। एक रस है। लेकिन, कृष्ण में यह सवाल उठेगा। इसलिए, हम बजाय अपने मन को ममझाने के लिए और अपनी 'केटेगरी' को बचाने के लिए कृष्ण को कई व्यक्तियों में बाटे अच्छा होगा हम अपनी 'केटेगरीज' छोड़े। अपने इस चित को एक तरफ फेके और कृष्ण को पूरा देखें। मैं नहीं कहता, अलग हुए भी हो नो मुझे फिक्र नहीं है। मुझे इसकी चिन्ता नहीं है। हो सकता है कि इतिहासज्ज मिछ करे कि फामला है दो हजार साल का भागवत के कृष्ण में और गीता के कृष्ण में। मैं फिक्र न करूँगा। मैं कहूँगा, मुझे फासला नहीं है। मेरे लिए तो कृष्ण का अथ ही तभी है जब ये एक व्यक्ति हैं। अगर ये एक व्यक्ति नहीं हैं तो व्यर्थ हो गया, इसका कोई अर्थ न रहा। हुए हो, न हुए हो, इससे मुझे प्रयोजन नहीं। मैं मानता हूँ कि जीवन की पूर्णता जब भी किसी व्यक्ति में फलित होगी तो उसमें अनेक व्यक्ति एक साथ फलित होंगे, उसकी असगतियों में एक सगति होगी, उसके विरोधों में एक अविरोध होगा। उसके व्यक्तित्व में विरोधी छोर होंगे, लेकिन जुड़े होंगे, हो सकता है हमें दिखायी न पड़ें। हमारी आँखें कम-जोर हैं बहुत। ऐसा समझें कि अगर मैं एक मकान की सीढ़ियों पर चढ़ रहा हूँ, नीचे की सीढ़ी मुझे दिखायी पड़ती हो और बीच की सीढ़ियाँ दिखायी न पड़े और बालिरी सीढ़ी दिखायी पड़ती हो तो

क्या मैं कभी भी सोच सकूँगा कि पहली सीढ़ी और आखिरी सीढ़ी में कोई जोड़ है ? कभी भी न सोच सकूँगा । बीच की सीढ़ियाँ दिखायी पड़ जाय तो मैं कह सकता कि पहली और आखिरी सीढ़ी दो सीढ़ियाँ नहीं हैं । एक ही सीढ़ी के दो हिस्से हैं । पहली सीढ़ी पर शुरू होती है यात्रा, आखिरी सीढ़ी पर पूरी होती है । यह एक ही चीज़ का विस्तार है । कृष्ण के व्यक्तित्व की जो बीच की सीढ़ियाँ हैं वह हमें दिखायी नहीं पड़ती, क्योंकि हमारे ही व्यक्तित्व की बीच की सीढ़ियाँ हमें नहीं दिखायी पड़ती । वह जो 'लिक्स' है, वह हमें दिखायी नहीं पड़ते । आपने अपनी अशाति भी देखी, शाति भी देखी । दोनों के बीच का क्षण देखा ? वह नहीं देखा, आपने प्रेम भी देखा और धृणा भी देखी, लेकिन दोनों के बीच की यात्रा देखी है कि प्रेम किस भाति धृणा बनता है ? धृणा किस भाति प्रेम बनती है ? आपने मित्रता भी मांझी, शत्रुता भी सांझी, लेकिन कभी यह देखा कि मित्रता किस कीमिया से किस किमिकल' प्रक्रिया से शत्रुता बन जाती है ? शत्रुता किस कीमिया से मित्रता बन जाती है ? अलकेमिस्ट हुए जो इस कोशिश में लगे थे कि लोहा सोने में कैसे बदल जाय, लेकिन लोग उनको समझ न पाये । लोग समझे कि सच में ही वे लोहे को सोना बनाने में लगे हैं । वह सिर्फ़ यह कह रहे थे कि अगर लोहा है तो कहीं-न-कहीं सोने से जुड़ा होगा । क्योंकि, यह हो नहीं सकता कि लोहा और सोना जुड़ा न हो । कहीं-न-कहीं कोई लिक, कहीं-न-कहीं कोई बीच की कड़ी होगी जो हमें दिखायी नहीं पड़ रही है । यह हो नहीं सकता कि जगत् 'अनबिल्ट' हो । अगर वहा फूल खिला है और वहा मैं बैठा हूँ तो कहीं-न-कहीं कोई लिक होगा ही । और अगर मैं प्रसन्न हूँ तो उम प्रसन्नता में फूल की प्रसन्नता कहीं भागीदार होगी । हो सकता है कड़ी हमें दिखायी न पड़ती हो । वहाँ फूल कुम्हला जाय और मैं उदास हो जाऊ और कड़ी कहीं दिखायी न पड़े । जीवन जोड़ है । इसलिए भव जुड़ा है । अलकेमिस्ट कहते थे कि लोहा है और सोना है तो कहीं जोड़ होगा । लेकिन, इतनी ही सोज़ न थी । वह यह कह रहे थे कि जिसको हम नीचा कहते हैं वह ऊचे से जुड़ा होगा । 'द बेसर मस्ट बी लिक्ड विद द हायर ।' नहीं तो हो नहीं सकता । कहीं-न-कहीं सेक्स परमात्मा से जुड़ा होगा । जुड़ा होना चाहिए । कहीं-न-कहीं जमीन आकाश से जुड़ी होगी । होनी चाहिए । कहीं-न-कहीं जन्म मृत्यु से जुड़ा होगा । जुड़ा होना चाहिए । बिना जुड़े हो कैसे सकता है ? जड़ कहीं-न-कहीं चेतन से जुड़ी होगी । पत्तर कहीं-न-कहीं आत्मा से जुड़ा होगा । जुड़ा होना चाहिए ; अन्यथा हो कैसे सकता है ? इस बड़े जोड़ के प्रतीक की तरह कृष्ण है । मैं तो कहता हूँ कि वह अस्ति द्वाजा । ऐसा ही हू़आ । इतिहास दलीले जुटाए, मैं

उठा कर कचरे में फेक दूगा। मनोवैज्ञानिक बताए, मैं कहूँगा तुम्हारा दिमाग खराब है, तुम समझ न पाओगे। क्योंकि, तुमने खण्डों का साफ-सुधरापन समझा है, तुमने खण्डों का जोड़ नहीं समझा है। फ्रायड बहुत खोज करता है। जितना वह आदमी जानता है क्रोध के सम्बन्ध में, शायद कम आदमी जानते होंगे। लेकिन, कोई जरा ध्वनि भार दे तो क्रोध उसे भी आता है। फिर तो यह जानकारी बड़ी बाहरी हो गयी। यह जानकारी बहुत भीतरी न रही। इसको भी पता नहीं कि अक्रोध, क्रोध कब हो जाता है। क्रोध पर बहुत खोज करता है। फ्रायड जितना पागलपन के सम्बन्ध में जानता है शायद कोई जानता हो। लेकिन, फ्रायड खुद पागल हो सकता है, किसी भी क्षण पागल हो सकता है और मौके आ जाते हैं जब वह पागलपन करता है।

मनोवैज्ञानिक क्या कहता है इसका बहुत मूल्य मेरे लिए नहीं है। क्योंकि कृष्ण मन के बाहर गये व्यक्ति है, मन के पार गये व्यक्ति है। एक और तरह की अखण्डता है जो आत्मा की अखण्डता है, जो एक ही साथ सब में हो सकती है। सब तरह के मनों में हो सकती है। इसलिए, मैं एक ही व्यक्ति मानकर बात करूँगा।

पूछते हैं गीता को प्रामाणिक वचन मानेगे कृष्ण के? कृष्ण जैसा व्यक्ति हुआ हो नो गीता जैसा वचन प्रामाणिक ही होगा। यह सबाल नहीं है कि कृष्ण ने ऐसा बोला कि नहीं बोला। बात इतनी ही है कि कृष्ण बोलेगा तो ऐसा ही बोल सकता है। अगर कृष्ण ने नहीं बोला हो और व्यास ने ही गीता लिखी हो तो भी कोई बहुत फर्क नहीं पड़ता। क्योंकि, व्यास लिख नहीं सकता अगर कृष्ण जैसा व्यक्ति न हो। व्यास भी तो गीता बोलेगा न। अगर कृष्ण बोले, व्यास बोले या अब स कोई और बोले, लेकिन गीता बोलने के लिए भीतर कोई चाहिए न। यह गीता आसमान से पैदा नहीं होती। नाम से क्या फर्क पड़ता है? उस आदमी का नाम व्यास है कि कृष्ण है, कि क्या है, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। इसलिए, मैं उल्टी तरह से सोचता हूँ। मैं यह नहीं कहता कि गीता प्रामाणिक वचन है कृष्ण का। मैं यह कहता हूँ, गीता है। यह बोली गयी, यह कही गयी, यह लिखी गयी, यह अस्तित्व में है। यह बिना कृष्ण के अस्तित्व में नहीं हो सकती, एक आदमी तो चाहिए न जो यह बोले, जो यह लिखे। वह कौन है, उसका नाम क्या था, इससे क्या फर्क पड़ता है। लेकिन, एक चेतना तो चाहिए न, जिससे इसका जन्म हो। गगोकी प्रभाष नहीं है गगा के लिए, गगा प्रभाष है गगोकी के लिए। गगा है तो हम कह सकते हैं कि गगोकी होगी। चाहे हो या

न हो, चाहे मिले या न मिले, चाहे खोज पाये या न खोज पायें, लेकिन गगा है तो गगोत्री होगी। गीता है सो कृष्ण होगे। गीता से कृष्ण की तरफ चलना मुझे उचित भालूम पड़ता है, क्योंकि गीता अभी है। कृष्ण की तरफ से गीता की तरफ चलेगे तो ज्ञानट में पड़ेंगे। क्योंकि, उसमें डर हो सकता है कि कृष्ण न हो और तब फिर गीता सदिश्व हो जाय। फिर गीता के लिए हमें कोइ और आदमी खोजना पड़े। लेकिन, हम बड़े पागलपन का काम करते हैं।

प्रश्न श्रीमद्भागवत में वस्त्रहरण लीला के प्रसंग में कृष्ण का नैसर्गिक 'इरोटिक जेस्चर' सुस्पष्ट है कि गोपिकाओं की अक्षत योनिया देखकर कृष्ण प्रसन्न हुए और वस्त्र लेने के लिए लज्जावश गोपिकाएं गुह्याग हथ से ढाँक कर बाहर आईं। तब कृष्ण कहते हैं कि तुमने जल देवता का नग्न नहाकर अपराध किया है इसलिए पाप शमन के हेतु मस्तक पर दोनों हथ जोड़े उन्हें नमस्कार कर वस्त्र ले जाओ। बाद में भागवतकार लिखते हैं, कृष्ण ने कुमारिकाओं को ठग कर लज्जा त्याग करवायी। कृष्ण की इस किया के प्रति आपकी क्या प्रतिक्रिया है? निरावरणता के सर्व प्रथम पुरस्कर्ता कृष्ण के आप समर्थ अनुगामी हैं भगवान् आपके ख्याल और जर्मनी देश के 'न्यूडिस्ट' क्लब के ल्याल में क्या बुनियादी फर्क है। वस्त्र सम्पत्ता का प्रतीक है, सकृति चमड़ी का—इस त्वचा या चमड़ी को अलग करने से जो अस्थिपत्र दिखाई पड़ेगा वस्ते हम प्राकृतिक रूप में दिखाई पड़ेंगे भगवान् वर्बाई भी दिखाई पड़ेंगे। यह ख्याल 'बैक टु जगल' नहीं होगा? घड़ी के काटे को पीछे धुमाने की विधि को आप 'प्रोग्रेस' कहेंगे?

उत्तर पहली बात सिगमन फायड का 'लिबिडो' का ल्याल बहुत कीमती है। लिबिडो को अगर हम ठीक शब्द दे तो उसका अर्थ होगा काम ऊर्जा, 'सेक्स इनर्जी'। मनुष्य के जीवन में ही नहीं, सारी सृष्टि के जीवन में, सूजन में, काम ऊर्जा की गुह्यतम स्थिति है। पुराण कहते हैं, ब्रह्मा ने जगत् को बनाया तो काम से पीड़ित होकर। सूजन होगा ही नहीं कामना के बिना। समस्त सूजन कामना से ही आविर्भूत होता है। जो भी है वह काम का ही विभ्तार है। जीवन की समस्त लीला, जीवन की सारी अभिव्यक्ति, चाहे फूल खिलते हों, चाहे पक्षी गीत गाते हों, काम ऊर्जा का ही खेल है।

ऐसा समझे, जैसे काम ऊर्जा का एक सागर है और उसमें अनत-अनत लहरे उठ गयी अनत-अनत रूपों में। स्वयं परमात्मा ही बहुत गहरे में काम ऊर्जा का केन्द्र है। कृष्ण के जीवन में काम ऊर्जा की सहज, निश्चल स्वीकृति है। सहज स्वभाव का अगीकार है। न कही कोई निषेध है, न कही कोई दमन है। जैसा है जीवन, वैमा अनुग्रहपूर्वक, अनुग्रह भाव से उसे जीने की सहजता है। इसलिए, कृष्ण की घटनाओं को जो लोग दबाने, बदलने, शकल देने की कोशिश करते हैं, वे केवल अपनी अपराध-वृत्तियों, अपने दमित काम, अपने चित्त के रोगों की खबर देते हैं। निश्चित ही यह कोशिश की जानी रही है कि जिस कृष्ण ने गोपियों के वस्त्र लिये और वृक्ष पर चढ़ गये, वह बहुत छोटे थे। हमें बड़ी राहत मिलेगी अगर वे बहुत छोटे होंगे। उमसे हम उनको स्वीकार करने में मुलभता पायेंगे। लेकिन, छोटे बच्चे भी एक-दूसरे को नग्न देखना चाहते हैं। बहुत छोटा बच्चा भी उत्सुक है जानने को—लड़की भी, लड़का भी। और यह जिज्ञासा अत्यन्त स्वाभाविक है। जैसे ही एक बच्चे को, वह चाहे लड़की हो, चाहे लड़का, जैसे ही अपने शरीर का बोध शुरू होता है, वैसे ही उसे यह भी बोध शुरू होता है कि पास ही कोई और है, जिसके शरीर में कुछ भेद है। लड़के को तत्काल बोध शुरू होता है कि लड़की भी है घर में, वहन भी है उसकी, जिसके शरीर में कुछ फर्क है। लड़की को भी बोध होता है कि लड़का है, उसके शरीर में कुछ फर्क है। यह बोध इतना कठिन न हो, अगर लड़के और लड़कियों सहज ही घर में नग्न रहते हों। लेकिन, बड़े-बूढ़े इतने काम-ग्रसित हैं, कि छोटे-छोटे बच्चों को भी जल्दी वस्त्र पहनाने को आतुर होते हैं। यह उनकी आतुरता इतनी ज्यादा है कि छोटे बच्चे एक-दूसरे को नग्न सहजना से नहीं देख पाते हैं। अगर यह भी मान ले कि कृष्ण की उम्र छोटी रही हो और वे नहाती हुई लड़कियों के वस्त्र लेकर वृक्ष पर चले गये हों तो इसमें कुछ बहुत नया नहीं है। सभी छोटे बच्चे लड़कियों को नग्न देखना चाहते हैं। न नदी उपलब्ध है, न वृक्ष उपलब्ध है, न नदी पर नहाती हुई लड़कियां उपलब्ध हैं तो बच्चों को नये-नये गम्भीर खोजने पड़ते हैं। फायड ने एक खेल का उत्केलन किया है, डाक्टर का खेल। छोटे बच्चे लड़कियों को दीमार करके, लिटा करके डाक्टर का खेल शुरू करेंगे और उनको नग्न देखना चाहेंगे। यह बड़ी सहज जिज्ञासा है, इसमें कुछ भी बुरा नहीं है। यह बहुत स्वभाविक है कि हम एक-दूसरे से परिचित होना चाहे। यह हमारे शरीर-परिचय की बिल्कुल प्राथमिक कड़ी है। अगर कृष्ण छोटे भी रहे हो तब भी सभव है; लेकिन उम्र ज्यादा भी रही हो तब भी असम्भव नहीं है। हमारे लिए असम्भव हो जायगा,

कृष्ण के लिए असम्भव नहीं है। क्योंकि, कृष्ण जीवन को सहज जीते हैं, जैसा है वैसा स्वीकार करते हैं। और जिस सस्कृति में वह पैदा हुए होंगे वह सस्कृति भी बहुत सहजता से स्वीकार करती होगी। अगर कृष्ण हमारे समाज में पैदा हुए होते तो हमने इस उल्लेख को ही काट दिया होता। हम इस उल्लेख को कभी लिखते ही नहीं। जिन लोगों ने इस उल्लेख को सहजता से लिखा है, उनके मन में कोई भी ऐसा भाव न रहा होगा कि कुछ गलत हुआ है। बरना गलत को हम छाँट देते। हजारों साल तक यह सवाल किसी ने नहीं उठाया कि कृष्ण कैसा आदमी है। यह अभी हमने उठाना शुरू किया है। जिस सस्कृति में कृष्ण की यह घटना घटी होगी वह सस्कृति इसको सहज स्वीकार कर चुकी होगी। कृष्ण कपड़े चुराकर अगर चले गये होते, और यह कोई अनूठी घटना होती तो इसकी निन्दा भी होती। लेकिन, यह कोई और ही कृष्ण करते रहे होगे या कोई और बालगोपाल यह करते रहे होगे, लड़कियाँ भी बहुत कम उम्र की रही होगी, यह नहीं माना जा सकता। कृष्ण जिस उम्र के रहे होगे, बहुत मिथ्या उम्र की लड़कियाँ नहीं रही होगी। कृष्ण देखने को उत्सुक हैं उन्हें नान। ये लड़कियाँ, कृष्ण न देख पायें इसके लिए आतुर हैं। इस मामले में एक बात समझ लेनी बहुत जरूरी है।

पुरुष चित्त और स्त्री चित्त में जो बहुत-से फर्क है उनमें से एक फर्क यह भी है कि पुरुष, स्त्री को नान देखना चाहता है। वह 'बोयूर' है। स्त्री, पुरुष को नान नहीं देखना चाहती, इतनी उसकी उत्सुकता नहीं है। वह 'बोयूर' नहीं है। इसीलिए, दुनिया में जितनी नान स्त्रियों की प्रतिमाएँ हैं, पुरुषों की नहीं। और अगर कही पुरुषों की नान प्रतिमाएँ हैं तो वे उन सस्कृतियों में पैदा हुई जो 'होमोसेक्सुअल' थीं - जैसे, यूनान में पैदा हुईं, सुकरात और प्लेटो के बक्त में पैदा हुईं जो कि होमोसेक्सुअल बक्त हैं। जिसमें कि पुरुषों को भी काम का विषय बनाते थे, 'सेक्स ऑब्जेक्ट' बनाते थे।

कभी आपने शायद ख्याल न किया हो कि प्रेम के गहरे-से-गहरे क्षण में पुरुष जरूर स्त्री को नान करना चाहेगा। अगर पुरुष नान भी हो तो प्रेम के गहरे क्षण में पुरुष की ओर से खुली रहेगी। स्त्री की ओर से बन्द हो जायेगी। अगर स्त्री का चुम्बन भी लिया जा रहा हो तो वह आँख बन्द कर लेती है। देखने में उसका बहुत रस नहीं है। 'एव्जार्ब' कर लेने में, पी लेने में, हो जाने में उसका रस है, देखने में उसका रस नहीं है। पुरुष देखने में बहुत रसपूर्ण है। पुरुष की यह देखने की उत्सुकता स्त्री की छिपाने की उत्सुकता का जन्म बन जाती है और

वह अपने को छिपाना शुरू कर देती है। लेकिन, स्त्री की बड़ी मुश्किल है। अगर वह बहुत ज्यादा छिपा ले तो पुरुष के लिए अनार्कशक हो जाती है। इसलिए, स्त्री को दोहरा काम करना पड़ता है। छिपाना भी पड़ता है और उघाड़ना भी पड़ता है। उन्हीं कपड़ों से छिपाना पड़ता है खुद को, उन्हीं कपड़ों से उघाड़ना पड़ता है उसे। छिपाना पुरुष की जिज्ञासा है। लेकिन, इसी पुरुष के लिए उसे आकर्षक भी होना है, क्योंकि पुरुष के लिए, वह आकर्षक नहीं है तो बेमानी है। इसलिए उसे उघाड़ना भी है। तो, स्त्रियाँ एक बड़ी जिच में पड़ी रहती हैं सदा-उघाड़ी भी, ढाँको भी। उनको पूरे बक्त इन दोनों के बीच एक ताल-मेल, एक सतुलन बनाये रखना पड़ता है। तो, वे स्त्रियाँ अगर पानी से बाहर अपने गुप्त अग ढाँक कर निकली हो तो बिल्कुल स्वाभाविक है। यह घटना बड़ी सहज है।

और कृष्ण ने उनसे कहा हो कि हाथ जोड़कर देवता को नमस्कार करो तो यह बिल्कुल स्वाभाविक है। इसमें कुछ कठिनाई नहीं है। यह पुरुष चित्त है, और कृष्ण सीधे, सहज पुरुष चित्त है। कहना चाहिए पूरे पुरुष चित्त है। और इसकी बाबत न कोई दमन है, न कोई विरोध है। जिन्होने ये कथाएँ लिखी वे भी बड़े सहज लोग हैं। उन्होने सीधी-सीधी बाने लिख दी, जो थी। उनके मन में कोई ऐसा मामला नहीं आया था, न कोई ऐसे सिद्धान्त आ गये थे जो कहते कि यह क्या लिख रहे हों? और कृष्ण, जिसे तुम भगवान बना रहे हो उमकी बाबत ऐसी बात लिख कर तुम दिक्कत डाल रहे हो। यह तो बाद के लोगों को बड़ी कठिनाई होगी कि यह भगवान कैसा! भगवान भी ऐसा हो सकता है। लेकिन, इतना सरल और सहज, इतना 'स्पॉन्टेनियस' भगवान ही हो सकता है, आदमी नहीं हो सकता। आदमी 'प्री प्लान' करता है। मैं इतना जरूर कहूँगा कि कृष्ण ने यह 'प्लानिंग' नहीं की होगी। इसका कोई 'ब्लू प्रिन्ट' नहीं रहा होगा कि लड़कियाँ अगर अपने अग छिपा लेगी तो मैं उनसे कहूँगा कि हाथ जोड़ो। बस, वह इतना सहज हुआ होगा कि लड़कियों ने अग छिपाए होंगे, कृष्ण ने कहा होगा, हाथ जोड़ो नदी के देवता को! नाराज करती हो नदी के देवता को? और, इस सहजता को इसी तरह वर्णित किया जिन लोगों ने वे भी अभूत रहे होगे। सरल रहे हाँग, सीधे रह होगे। घटनाओं में काट-छाट नहीं की है। 'इम्प्रूवमेंट' नहीं किया है कोई घटनाओं पर। चोजों को छोड़ दिया है जैसी वह थी। पीछे हम मुश्किल में पड़ते चल गये। ऐसी बहुत घटनाएँ हैं जो हमें पीछे दिक्कत में डालती हैं। क्योंकि, पीछे हमारे नये सिद्धान्त, नयी

धारणाएँ और नयी नैतिकताएँ नये स्थाल दे देती हैं। पीछे की तरफ लौटकर उनको हमें लागू करना पड़ता है, तब कठिनाई खड़ी हो जाती है। मैं तो मानता हूँ कि काम ऊर्जा की जो सहजतम् अभिव्यक्ति हो मकती है वह कृष्ण में हुई है। उसमें उन्होंने कोई बाधा नहीं मानी है। वह सहज जिये हैं और उनके समाज में, जिसमें वह थे उसने वह सहज स्वीकार कर लिया था। वह समाज भी सहज होगा।

दूसरी बात पूछी है कि मैं निरावरणता का भर्मर्थक हूँ। एक अर्थ में है। ऐसा नहीं कि वस्त्रों का विरोधी हूँ। अगर वस्त्रों का विरोधी हूँ तब तो मैं घड़ी के काटों की पीछे की तरफ घुमाता हूँ। वस्त्रों का अर्थ है। वस्त्रों का प्रयोजन है। लेकिन, वस्त्रों की कोई नैतिकता नहीं है, वस्त्रों की कोई 'मोरालिटी' नहीं है, प्रयोजन है। मर्दी है और वस्त्र जरूरी है। गर्मी है, और दूसरी तरह के वस्त्र जरूरी है। आप रास्ते पर निकले हैं तो भी वस्त्र जरूरी है, क्योंकि कोई आपको नग्न न देखना चाहे तो आपको दिखाने का हक नहीं, वह 'ट्रेसपास' है। लेकिन, इसका मतलब यह नहीं है कि कोई हमें नग्न देखने को राजी नहीं है तो हम अपने घर पर भी नग्न होने को स्वतन्त्र न रह जाएँ या किन्हीं घड़ियों में हम नग्न न हो सके। नहीं, नग्नता और वस्त्र ऐसे ही होने चाहिए जैसे जूते हैं। घर पर हम जूता नहीं पहनकर धूम रहे हैं, बाहर पहनकर चले जाते हैं। लेकिन, घर में जूता उतारने पर कोई नहीं कहता कि तुम नग्न हो गये। पैर तो नग्न हो ही गये हैं। कपड़े महजता से लिये जाय, उनका दश न रह जाय। सहजता से वे तभी लिये जा सकते हैं जब नग्नता भी सहजता से ली जाय, नहीं तो नहीं लिये जा सकते। तब कपड़े एक नैतिक अर्थ ले लेते हैं जो उनमें बिल्कुल नहीं है। मनुष्य ने बहुत कपड़े ओढ़ डाले। इतने कपड़े ओढ़ डाले कि उन कपड़ों की वजह से उसे कपड़े उधाड़ने के हजार तरह के प्रयत्न करने पड़े। उससे अनेतिकता पैदा हुई है।

हम नग्न पैदा होते हैं। कपड़ों के भीतर भी नग्न ही रहते हैं, नग्न ही मरते हैं। परमात्मा ने हमें नग्न ही पैदा किया है। वह सहजता है। इसका यह मतलब नहीं कि हम नग्न ही रहे। परमात्मा ने हमे जैसा पैदा किया उसमें हम फर्क करते हैं। जैसे, परमात्मा धूप डाल रहा है, हम छाता लगाये हूँ हैं। इसमें हम कोई परमात्मा का विरोध नहीं कर रहे हैं, क्योंकि छाता लगाने से जो छाया आती है वह भी परमात्मा के ही नियम का हिस्सा है। उसमें कोई विरोध नहीं है।

सिर्फ हमारे लिए जो मौज है वह हम कर रहे हैं और इतनी स्वतन्त्रता हमें हो कि हम धूप में बैठे कि आया में। लेकिन, किसी दिन कोई आदमी आया में बैठने को नैतिकता बना ले और धूप में जाने को पाप बना ले तो फिर आया में बैठना बड़ा बोक्षिल हो जायेगा। फिर धूप में जाना अपराध हो जायेगा और लोग चोरी में धूप में जाने लगेंगे जो बड़ी सहज बात है। इसमें चोरी से जाने का कोई कारण न था, अकारण हम चोरी पैदा कर रहे हैं, अकारण हम अनैतिकता पैदा करवा रहे हैं। अकारण 'कण्डमनेशन' पैदा कर रहे हैं, अकारण लोगों को अपराधी सिद्ध करवा रहे हैं, और उनको 'गिल्ट' दे रहे हैं, जिसको देने की कोई जरूरत न थी। तो मैं मानता हूँ कि नगनता एक सत्य है जीवन का। उसे सरलता में स्वीकार करने की बात है। उसमें भागने की कोई जरूरत नहीं है। भागने के कारण पचीस झंगेल कर रहे हैं। सटक-सटक पर नगं पास्टर लगे हैं, वह बिल्कुल न लगेंगे। अगर हम सहज नगनता को स्वीकार कर ले, अगर घर में लोग कभी नगं भी बैठते हों, कभी नदी के किनारे नगन नहाते भी हों, कभी मिठों के बीच नगन गपशप भी करते हों, कभी नगं बैठकर धूप भी लेते हों तो बात बड़ी सरल हो जाय। कपड़े छोड़कर भागेंगे तो घड़ी का काटा पीछे लौटेंगा। अगर कपड़े छोड़कर भागने नहीं, नगनत। को भी स्वीकार करने हैं, तो जो लोग नगन थे, उनको कपड़ों का जो फायदा नहीं था वह हमें होगा, और जो लोग सिर्फ कपटा पहने हुए हैं और कपड़ा से परेशानी में पैर गये हैं उस परेशानी में हम न होगे। इसलिए हमें मैं विकास कहगा। यह आगे जाना होगा। यह अकेले नगे लोगों से भी आगे जाना होगा, अकेले कपड़े ढके लोगों से भी आगे जाना होगा।

'न्यूडिस्ट क्लब' बगावत है। 'न्यूडिस्ट क्लब' एक प्रतिक्रिया है उस समाज की जिन्होंने कपड़े बहुत थोप दिये। मैं 'न्यूडिस्ट क्लब' के पक्ष में नहीं हूँ। इसका मतलब यह हूआ कि एक तरफ पूरा समाज होता है और एक तरफ अस्पताल बनाते हैं। मैं कहना हूँ, बीमार ही बयो हो। न्यूडिस्ट क्लब की जरूरत जा है वह यह जो 'आन्ड्रेस्ड' लोग हैं कपड़े से, इनकी वजह से पैदा होती है। अगर हम 'आन्मेशन' अलग कर ले तो न्यूडिस्ट क्लब की कोई जरूरत नहीं रह जाती। काश हम महजता से घर में बाष-बेटे एक साथ नगन नहा सके। हैरान होंगे आप इस बात को जानकर कि, अगर घर में मा अपन बेटे के साथ नगन नहा सके तो यह बेटा रास्ते पर किसी लड़की को धक्का देने में अमरमथ हो जायेगा। इसका कोई अध नहीं रह जायेगा। धक्का देना बिल्कुल बेमानी बात हो जाएगी। स्त्री और पुरुष के बीच का फासला इतना कम हो जाएगा कि धक्का मार कर फासला कम करने

की कोई ज़रूरत नहीं। धक्का भार कर फासला ही कम किया जा रहा है, और कुछ किया नहीं जा रहा है। चूंकि आहिस्ता से हाथ रखने का कोई उपाय नहीं इसलिए धक्का मारा जा रहा है। अगर कोई स्त्री मुझे अच्छी लगे, उसका हाथ मे हाथ लेकर कह कि मुझे हाथ बहुत प्यारा लगता है, एक क्षण हाथ मे ले सकता हूँ? और, समाज इतना सहज हो कि कहे ठीक है हाथ आपको प्यारा लगा, धन्यवाद। हाथ इतना प्यारा लगने का भी तो धन्यवाद होना चाहिए, तो फिर धक्का भारता मुश्किल हो जायेगा। लेकिन, वह नहीं सभव हुआ है। हम फूलों को धक्के नहीं मारते। हम खड़े होकर देख लेते हैं, रास्ते से गुजर जाते हैं। अगर कल फूल कोई कानून बना ले और फूल भी पुलिस के आदमी खड़े कर ले और कहे कि कोई देखेगा तो ठीक नहीं होगा तो फिर फूलों के साथ ज्यादती शुरू हो जायेगी। फिर; अनैतिकता शुरू हो जायेगी। अमल मे अति-नैतिकता का आग्रह अनैतिकता का जन्म बन जाता है। 'टू मच मारोलिटी क्रिएट्स इमोरालिटी'। मैं कहता हूँ, सहजता से जिन्दगी जैसी है, उसे स्वीकार कर लेना है। कृष्ण बड़े अद्भुत प्रतीक है। वह सहज जीवन मे जो है, उसकी सहज स्वीकृति है।

**प्रश्न** आचार्यश्री, आपने इसकी ओर इगित किया कि आप किसी पक्ष मे नहीं। पर जैसा कि आपने अभी कहा कि किसी का हाथ प्यारा लगे तो उस हाथ को उस सहज समाज मे आप ले सके, वह एक 'नार्मल'सी चीज हो जाती है। भगव तब तो आपको यही प्रश्न पूछता मनासिंब होगा कि आप 'इमरारल' की व्याख्या क्या करते हैं? क्योंकि आप हाथ कहेंगे तो दूसरा कोई और अग की भाग करेगा तो उससे व्यक्ति के जीवन मे 'कापिलकट' पैदा हो जायेगी। वह दिक्कत मे पड़ जायेगा।

साथ दूसरा भी एक प्रश्न कि जो कृष्ण वस्त्र हरण कर सके, वही कौरव सभा मे द्वौपदी का चीर पूरा भी कर सके। द्वौपदी का वस्त्र पूर्ण करते कृष्ण अलौकिक है, लोकोत्तर है, अमत्कारिक है। क्या यह केवल अद्भुत दृष्टात नहीं हो सकता?

द्वौपदी के वस्त्र को पूर्ण करनेवाले कृष्ण काले थे। श्रीमद्भागवत मे उनके रा के वर्णन के लिए तीन विशेषण विये गये हैं - शुद्ध, पीत और कृष्ण। कवियो ने बहुत बहुत कल्पनाए को कि कृष्ण क्यों काले हैं, काले हैं फिर भी मतवाले हैं इत्यादि।

**उत्तर** जहा तक सहजता का सम्बन्ध है, शरीर के किसी अग मे और हाथ मे कोई फर्क नहीं है। फर्क हमें दिखायी पड़ता है, क्योंकि फर्क हमने पैदा कर लिया है। फर्क निर्मित है, फर्क है नहीं। शरीर के सभी अग एक जैसे हैं। क्योंकि हमने शरीर मे भी खण्ड कर लिये हैं। शरीर का कोई हिस्सा है जो बैठकखाने जैसा है। जिसको सब देख सकते हैं। शरीर का कोई हिस्सा है जो 'गोडाऊन' जैसा है, जिसके लिए 'लाइसेस' चाहिए। लेकिन, शरीर अखण्ड तथा इकट्ठा है। इसमे कोई हिस्से का कोई फर्क नहीं है। जिस दिन मनुष्य सच मे पूरा स्वस्थ और सहज होगा उस दिन कोई फर्क नहीं होगा। लेकिन, आपका यह कहना ठीक है कि यह किस सीमा तक? अगर कोई व्यक्ति किसी का हाथ अपने हाथ मे ले लेता है तो सोचा जा सकता है कि ठीक है। लेकिन, दो बातें विचारणीय हैं। जिस सहज समाज की मैं बात करता हूँ उसमे दूसरे व्यक्ति का हाथ लेते वक्त, जैसे दूसरे व्यक्ति का हाथ लेते वक्त व्यर्थ ही अकारण ही बाधा डालना ठीक नहीं है, वैसे ही दूसरे व्यक्ति का हिस्सा है। क्योंकि, जब मैं किसी व्यक्ति का हाथ लेता हूँ तो किसी व्यक्ति का हाथ ले रहा हूँ। मेरे लिए आनन्दपूर्ण हो सकता है उसका हाथ लेना, लेकिन अगर उसको दुखपूर्ण है तो उसको भी स्वतंत्रता तो है ही। मैं अपना आनन्द लेने के लिए हकदार हूँ तो दूसरा भी तो अपने आनन्द का ध्यान रखने के लिए हकदार है। अगर मुझे अच्छा लग रहा है किसी का हाथ अपने हाथ मे लेना, तो यह जानना जरूरी है कि उसे भी अच्छा लग रहा है या नहीं लग रहा है। मैं अपने सुख के लिए स्वतंत्र हूँ तो वह भी अपने सुख के लिए स्वतंत्र है। जहा से यह दूसरा व्यक्ति शुरू होता है वहा से हमारी स्वतंत्रता पर दूसरे की स्वतंत्रता की जिम्मेदारी भी शुरू हो जाती है। वह बिल्कुल सहज है, स्वाभाविक है। क्योंकि, आप आयें और मुझे गले से लगा ले। लेकिन, मुझे इसमे सिर्फ घबराहट होती है, तो आप आनन्द लेने के हकदार हैं, लेकिन मैं भी तो अपनी घबराहट से बचने का हकदार हूँ। इसलिए, सहज समाज निवेदन करेगा। ये निवेदन ही हो सकते हैं और इनकी स्वीकृति अनिवार्य है। क्योंकि दूसरा व्यक्ति शुरू हो गया तत्काल।

मैं किस बात को नैतिकता कहता हूँ आपने पूछा, मैं किस बात को 'मोरालिटी' कहता हूँ? मैं इस बात को नैतिकता कहता हूँ कि दूसरे व्यक्तित्व का सम्मान। दूसरे व्यक्ति का उतना ही सम्मान जितना मेरी दृष्टि मे है। इसको मैं नैतिकता कहता हूँ। इसके अतिरिक्त मेरे लिए कोई नैतिकता नहीं है। और मैं मानता हूँ कि जितनी नैतिकता ऐसी है वे सब इसके नीचे

अपने आप फलित होती है। जिस दिन मैं अपने को दूसरे व्यक्ति के ऊपर रखता हूँ उसी दिन मैं अनैतिक हो जाता हूँ। जिस दिन मैं दूसरे व्यक्ति को साधन की तरह उपयोग करता हूँ और मैं साध्य हो जाता हूँ उस दिन मैं अनैतिक हो जाता हूँ। प्रत्येक व्यक्ति अपने आप में साध्य है, जब तक मैं इसका स्मरण रखता हूँ तब तक मैं नैतिक होता हूँ।

आपने पूछा है कि एक पति को बुरा लगेगा। लगू सकता है। असल में पति एक प्रकार की अनैतिकता है। असल में पति इस बात की घोषणा है कि उसने एक पत्नी को सदा के लिए अपना साधन बना लिया है। पति इस बात की घोषणा है कि उसने एक व्यक्ति को खरीद लिया है। पति इस बात की घोषणा है कि वह एक व्यक्ति का मालिक हो गया। 'ओनरशिप' हो गयी। व्यक्तियों की मालकियत नहीं हो सकती। मालकियत सिफ वस्तुओं की हो सकती है, और व्यक्तियों की मालकियत अनैतिकता है। मेरे हिमाच में तो विवाह एक अनैतिकता है। प्रेम नैतिकता है। जिस दिन दुनिया अच्छी होगी उस दिन दो व्यक्ति दिन भर साथ रह सकते हैं, लेकिन यह साथ रहना कोई 'कष्टाक्ट' नहीं होगा। यह साथ रहना कोई सौदा नहीं होगा। यह साथ रहना कोई सम्प्ति नहीं होगी, यह साथ रहना उनके प्रेम का प्रतिफल होगा। उनका प्रेम है कि वे साथ रह रहे हैं। जिस दिन प्रेम कानून बनता है, जिस दिन मैं किसी स्त्री से कह सकता हूँ कि मैं हकदार हूँ तुमसे प्रेम मागने का, क्योंकि तुम मेरी पत्नी हो उम्मी दिन प्रेम अनैतिक बन गया। क्योंकि, प्रेम के मूड होते हैं, प्रेम के क्षण होते हैं। इस योग्य बहुत कम लोग हैं जो चौबीस घण्टे प्रेम में हैं। चौबीस घण्टे प्रेम में वही हो सकता है जो प्रेम हो गया है। साधारण जन तो किसी क्षण में प्रेम में होता है। लेकिन, कानून तो क्षण नहीं देखता। प्रेम मागा जा सकता है, क्योंकि तुम मेरी पत्नी हो और उसे प्रेम देना पड़ेगा। और जब प्रेम देना पड़ता है तब वह प्रेम नहीं रह जाता। अब पत्नी अगर कहे कि आज तो प्रेम का क्षण ही नहीं है, तो कठिनाई खड़ी होगी कानून में। लेकिन, हम यह भी समझे कि क्या यह सभव है जो हमने बनाया है नीति के नाम पर? हमने नीति के नाम पर बहुत-सी असभावनाएं थोप दी हैं, और उन असभावनाओं की वजह से बहुत अनैतिकता पैदा हो गयी है। मैं आज एक व्यक्ति को प्रेम करता हूँ, क्या मैं पक्का वायदा कर सकता हूँ कि कल मैं किसी दूसरे व्यक्ति को प्रेम नहीं करूँगा? कैसे कर सकता हूँ? यह बिल्कुल असंभव है। अभी कल आया नहीं, अभी वह व्यक्ति भी मुझसे नहीं मिला जिससे कि मेरा प्रेम हो सकता है। मैं वायदा

कैसे कर सकता हूँ ? अगर मैंने बायदा किया तो कल उपद्रव होगा । कल एक घटना घट सकती है जब मैं किसी के प्रति प्रेमपूर्ण हो जाऊँ, लेकिन तब मेरा बायदा बीच मे खड़ा हो जायेगा । तब दोहरी कठिनाई होगी । या तो मैं चोरी से किसी के प्रेम मे हो जाऊँ, जो कि अनैतिकता होगी । क्योंकि, जिस दुनिया मे प्रेम भी चोरी से करना पड़े उस दुनिया मे और क्या है जिसको हम ईमानदारी से कर सकते हैं ? एक तरफ यह होगा कि मैं चोरी से प्रेम करूँ और दूसरी तरफ यह होगा कि जिससे मैंने प्रेम का बायदा किया उसके साथ मैं प्रेम का अभिनय करूँ । क्योंकि, अब उसके साथ प्रेम कैसे हो सकेगा ? और, जिस दुनिया मे प्रेम का भी अभिनय करना पड़ता हो वहा किस चीज का आचरण किया जा सकेगा ?

मैं तो पति को, विवाह को अनैतिकता मानता हूँ, जो एक अनैतिक समाज ने ईजाद की है । उनके साथ और हजार तरह की अनैतिकताएं पैदा होती हैं । जब हम पति को, पत्नी को बहुत जोर से कस देते हैं, वेश्या पैदा हो जाती है । फौरन पैदा हो जाती है । वेश्या, सती-सावित्रियों की रक्षा है । सती-सावित्री बचानी है तो वेश्या पैदा करनी पड़ेगी । लेकिन, स्त्रिया भी पसन्द करेगी कि उनका पति एक वेश्या के पास चला जाय बजाय पड़ोसी की पत्नी से प्रेम मे पड़ जान के । क्योंकि, प्रेम मे 'इन्वाल्वमेट' है, खतरा है । वेश्या के पास चला जाय तो कोई खतरा नहीं है । वह वापस सुवह लौट आयेगा । यह पैसे का सौदा है । इसलिए, पल्लिया 'वेश्याओं' के लिए गजी हो गयी, प्रेम के लिए राजी नहीं हुई । और जब इस मब को मैं ऐसा कहता हूँ तब आप जो कहते हैं ठीक कहते हैं कि 'टेबूज' से भरा हुआ आदमी हजार तरह के सस्थान, हजार तरह के सस्कार, हजार तरह की नैतिकताओं मे पला हुआ आदमी बड़ी मुश्किल मे पड़ जायेगा । मैं आपसे कहता हूँ, वह बड़ी मुश्किल मे पड़ा ही हुआ है । मैं जो कह रहा हूँ उससे तो वह मुश्किल के बाहर जा सकता है । कहा है वह आदमी जो मुश्किल मे नहीं है ? सब आदमी मुश्किल मे पड़े हैं । लेकिन, मुश्किल पुरानी है तो हमे दिखायी नहीं पड़ती । अगर मुश्किल आदतन हो गयी तो वह दिखायी नहीं पड़ती । अगर बीमारी स्थायी है तो हम उसे भूल जाते हैं । मैं जो कह रहा हूँ वह और नयी मुश्किल होगी । नयी मुश्किल इसलिए नहीं कि मैं जो कह रहा हूँ उससे आदमी की जिन्दगी मे मुश्किले आयेगी, मैं जो कह रहा हूँ उससे एक ही मुश्किल होगी कि पुरानी मुश्किल की आदते छोड़नी पड़ेगी । पुरानी मुश्किल के सस्कार छोड़ने पड़ेगे । और, अगर किसी दिन पृथ्वी इस बात के लिए राजी हो सकी कि हम जीवन को सहज कर ले, जीवन पर असभावनाएं

न थोपे तो कृष्ण जैसे लाखों व्यक्तित्व पैदा हो सकते हैं। कोई एक ही कृष्ण पैदा हो, यह जरूरी नहीं है। सारी पृथ्वी कृष्णों से भर सकती है।

आखिरी प्रश्न उन्होंने पूछा है कृष्ण के बहु-रगी होने की बात। वे रगीन आदमी थे, एक रग में उनको नहीं बताया जा सकता। कई रग एक साथ थे उस आदमी में। शरीर तो एक ही रग का रहा होगा, लेकिन आदमी कई रग का रहा था। फिर, देखनेवाली आखों पर बहुत कुछ निर्भर करता है कि कौन सा रग दिखायी पड़ता है। जिसने जिस आख से देखा होगा उसे वे रग दिखायी पड़े होंगे। एक आदमी भी भिन्न हालतों में भिन्न रग देख सकता है। जब मैं प्रेम में होता हूँ तब दूसरा रग दिखायी पड़ता है और जब मैं क्रोध में होता हूँ तब दूसरा रग दिखायी पड़ता है। कभी आप मेरे प्रति प्रेम में होते हैं तो तीसरा रग दिखायी पड़ता है। कभी जब आप मेरे प्रति क्रोध में होते हैं तब दूसरा रग दिखायी पड़ता है। रग प्रतिपल बदलते हैं। सब बदलता रहता है। यहा थिर कुछ भी नहीं है। इस जगत में थिरता जैसी बात ही नहूँ है। लेकिन, अधिक लोगों ने उन्हे सावले रग का ही देखा। उसके कुछ कारण हैं।

ऐसा लगता है कि सावला रग उनकी थिरता का स्थायित्व गुण रहा होगा। यानी वे सावले रग में ही सुन्दर रहे होंगे। इस मुल्क के मन में सावले रग के लिए कुछ आग्रह है। असल में गोरा रग उतना सुन्दर कभी भी नहीं होता जितना सावला रग सुन्दर होता है। उसके कई कारण हैं। लेकिन, आमतौर से हमें गोरा रग सुन्दर दिखायी पड़ता है, क्योंकि गोरे रग की चमक में बहुत-सी असुन्दरताएँ छिप जाती हैं और काले रग में कुछ भी नहीं छिपता। इसलिए काला आदमी मुश्किल से कभी सुन्दर होता है। लेकिन, जब काले रग का कोई सुन्दर होता है तो गोरे रग का सुन्दर आदमी एकदम फीका पड़ जाता है। इसलिए हमने राम को भी सावला, कृष्ण को भी सावला—जिनको भी सुन्दर देखा उनको हमने सावले रग में देखा। सावले रग का सौंदर्य 'रेयरिटी' है, सफेद रग के सुन्दर बहुत लोग होते हैं। क्योंकि, बहुत विशेषता नहीं होती है। सफेद रग का सुन्दर होना बड़ी साधारण बात है। सावले रग का सुन्दर होना बड़ी असाधारण बात है।

कुछ और भी कारण है। सफेद रग में गहराई नहीं होती, 'डेप्थ' नहीं होती, फैलाव होता है। इसलिए, सफेद शकल 'फ्लैट' होती है, भीतरी नहीं होती। नदी देखी है? जब गहरी हो जाती है तो सावली हो जाती है।

सावले रग मे डेप्थ है, फैलाव नहीं है, एक 'इनटेसिटी' है। सावला चेहरा चेहरे पर ही समाप्त नहीं होता, उसमे भीतर कुछ 'ट्रासपरेट' भी होता है। उसमे पत्ते दिखती हैं। मावले आदमी के चेहरे के भीतर चेहरे, चेहरे के भीतर चेहरे की पत्ते होती हैं। गोरे आदमी का चेहरा साफ होता है, सामने होता है इसलिए गोरे रग से बहुत जल्दी ऊब पैदा हो जाती है। मावले रग मे ऊब पैदा नहीं होती। उसमे नये रग दिखायी पड़ते चले जाते हैं। और कृष्ण जैसा आदमी तो ऐसा आदमी है कि जिससे ऊब पैदा हो ही नहीं सकती। आप जानकर हैरान होगे कि पश्चिम की सारी सुन्दरिया सावला होने के लिए बड़ी दीवानी है। सागर के तट पर लेटी है, किसी तरह धूप थोड़ा सावला कर दे। क्या पागलपन है! अमल मे जब भी कोई सस्कृति अपने शिखर पर पहुचती है तब फैलाव कम मूल्य का रह जाता है, गहराई ज्यादा मूल्य की हो जाती है। हमको पश्चिम का आदमी सुन्दर दिखायी पड़ता है, पश्चिम का आदमी जानता है कि अब सौंदर्य गहराई मे खोजना है। हो चुकी वह बात। अब पश्चिम की सदर स्त्री सावला होने की कोशिश मे लगी है।

मफेद रग की खूबिया है कि बहुत लोग सुन्दर हो सकते हैं। सफेद रग की खराबी ई, कि उसमे बहुत गहरा सौंदर्य नहीं हो सकता। मैं नहीं मानता कि कृष्ण सावले रहे ही होंगे। यह कोई जल्दी नहीं है। हमने उन्हे सावला देखा। इतना प्यारा आदमी था कि हम उसको गोरा नहीं मोच सके। हमने उनको सावला मोचा। वह सावले हो भी सकते हैं लेकिन वह मेरे लिए गौण है। मेरे लिए काव्य बहुत महत्वपूर्ण है। यह इतने रग का आदमी था, इतना गहरा आदमी था कि इसके चेहरे मे ज्ञाकर्ते जाने, ज्ञाकर्ते जाने का मन होता था, डूबने जाने का मन होता था। और उसकी गहराइया थी जो उघड़ती चली जाती थी। श्याम नाम उनको इसलिए दे दिया। श्याम का मतलब है काला। कृष्ण का मतलब भी है काला। न केवल हमने सोचा, बन्कि हमने नाम भी जो उन्हे दिये उसमे सावलापन था। श्याम कहा, कृष्ण कहा। वह सब काले रग के ही प्रतीक है।

और एक बात उन्होंने पूछी है कि एक तरफ उधाड़ते हैं बन्त्रों को कृष्ण, दूसरी तरफ उधाड़ती हुई द्वौपदी पर वस्त्र फेकते हैं। अमल मे जिसने कभी उधाड़ा नहीं, वह जिदगी भर उधाड़ता ही रहता है। लेकिन, जिसने उधाड़कर देख लिया, अब वह वस्त्र ढाक सकता है। ढाकने और उधाड़ने मे एक और बड़ा फर्क है। प्रेम तो उधाड़ने की आज्ञा दे सकता है, प्रेम उघड़ना चाहता है। लेकिन, द्वौपदी प्रेम से नहीं उधाड़ी जा रही थी। द्वौपदी बड़ी घृणा से उधाड़ी जा रही थी।

द्रौपदी को देखने वाली आँखे प्रेम की जिज्ञासा से भरी हुई आसे न थी। जो घटना है, उस घटना का मेरे लिए मूल्य नहीं, जैसा मैं निरन्तर कहता हूँ, मेरे लिए तथ्यों का कोई मूल्य नहीं है। कोई चमत्कार ऐसा घटा हो कि दूर से कृष्ण ढाकते रहे हो। पर, मैं मानता हूँ कि ये सब प्रतीक हैं। कृष्ण ने किसी-न-किसी तरह उस दिन द्रौपदी को उघडने से रोका होगा, इतना ही मैं मानता हूँ। किसी-न-किसी तरह कृष्ण उस दिन द्रौपदी के उघडने से बाधा बन गये होंगे, इतना मैं मानता हूँ। लेकिन, कवि जब इसको लिखेगा तबू कविता बन जायेगी। बाद में जब हम कविता को तथ्य बनाते हैं तब 'मिरेकल' मालूम होने लगती है। बाकी कविता ही एकमात्र 'मिरेकल' है और कोई मामला नहीं है। कृष्ण किसी-न-किसी तरह उस दरबार में नग्न की जाती द्रौपदी के लिए बाधक बन गये होंगे। वह बाधा अनिवार्य हो गयी होगी। और भी बड़े मजे की बात है कि कृष्ण का नाम कृष्ण है। द्रौपदी का भी एक नाम कृष्ण है। सच तो यह है कि कृष्ण जैसा शानदार आदमी नहीं हुआ और कृष्ण जैसी शानदार स्त्री नहीं हुई। द्रौपदी का कोई मुकाबला नहीं। हमने सीता और दूसरे की चर्चा बहुत की, द्रौपदी की जरा कम की है। क्योंकि, हमें बड़ी तकलीफ है द्रौपदी के माथ। वह पाच पतियों की पत्नी है। हमें भारी तकलीफ होगी। लेकिन, ध्यान रखें, एक पनि की पत्नी होना भी बड़ी मुश्किल बात है। पाच पतियों की पत्नी होना असाधारण स्त्री का काम हो सकता है। कृष्ण का बड़ा प्रेम है कृष्ण से। गहरी से गहरी उनकी प्रेयसियों में से वह है। इसलिए, प्रेम इस क्षण में काम न आये तो कब काम आये? पर, वह बात अलग है। वह तो कभी द्रौपदी पर चर्चा करेगे तब देखेंगे।

**प्रश्न** भागवत में ऐसा उल्लेख है (जो अहमदावाद में हमने बात की थी) कि शुक का विनियोग होते हुए भी बसुवेद और देवकी का वह सभोग हुआ था। वह आध्यात्मिक सभोग था जिसको वजह से कृष्ण मिले। मगर कृष्ण के सोलह हजार रानियों या अठ पटरानियों के साथ सबध होने पर भी कृष्ण या राम-दोनों के पुत्र उतने प्रतिभावान नहीं हुए, इससे क्या यह नतीजा निकल सकता है कि राम या कृष्ण ने आध्यात्मिक सभोग अपनी पत्नियों के साथ किया ही नहीं?

**उत्तर** इसमें दो बातें समझ लेनी उचित होगी। एक तो आध्यात्मिक सभोग का यह अर्थ नहीं है कि मैं शारीरिक सभोग की कोई निंदा कर रहा हूँ। आध्यात्मिक सभोग से मेरा सिर्फ इतना ही अर्थ है कि दो व्यक्तियों के शरीर

ही नहीं मिले हैं, आत्मा भी मिली है। शरीर के मिलन से जो पैदा होता है वह उन ऊचाइयों को उपलब्ध नहीं हो सकता जो आत्मा के मिलन से पैदा होता है और ऊचाइयों को उपलब्ध होता है। कृष्ण का जन्म, मैं आध्यात्मिक सभोग का फल मानता हूँ। क्राइस्ट का जन्म भी आध्यात्मिक सभोग का फल मानता हूँ। इसलिए, क्राइस्ट को जानने वाले लोग यह कह सके कि क्राइस्ट का जन्म भी हो गया, लेकिन भेरी 'वर्जिन' बनी रही, ब्वारी बनी रही। क्योंकि, शरीर के तल पर कोई वासना और कोई गहरी कामना न थी। आत्मा के तल पर मिलन हुआ था, शरीर छाया की तरह उसके पीछे गया था। इसलिए, छाया पर उसकी कोई जिम्मेदारी नहीं है। लेकिन, यह सबाल निश्चित ही महत्वपूर्ण है कि फिर कृष्ण के बच्चे, राम के बच्चे इनका क्या हुआ? इसके और कारण है। पहला कारण तो यह है कि कृष्ण से बड़ा बेटा पैदा होना तो असभव है। वसुदेव से बड़ा बेटा पैदा हो सकता है। वसुदेव साधारण जन है। कृष्ण तो ऊचाई है, आखिरी से आखिरी जो हो सकती है। कृष्ण जैसे पिता से जो भी बेटा होगा वह इतिहास में सदा भुला दिया जायेगा। वह सदा कृष्ण जैसे व्यक्ति की छाया में पड़ जाता है। जैसे विन्ध्याचल पहाड़ की जो बड़ी ऊचाई हो सकती है वही ऊचाई एवरेस्ट के पास आकर बड़ी मुश्किल में पड़ जाती है। चीजें तो दिखायी पड़ती हैं न। कृष्ण के पीछे कोई भी दिखायी नहीं पड़ सकता। इसलिए, जो लोग 'पीक' को छूते हैं जीवन की, आखिरी ऊचाई को छूते हैं उनसे बहुत अच्छे बेटे उपलब्ध कभी नहीं हो सके। न बुद्ध से हो सका, न कृष्ण से हो सका, न राम से हो सका, न महावीर से हो सका, किसी से नहीं हो सका। इसका कारण सिफ इतना ही है कि इतनी बड़ी ऊचाई पर ये खड़े हैं कि लव-कुश कितने ही ऊचे हो राम की छाया में खो जायेगे। ये लव-कुश किसी और के घर पैदा हुए होते तो इतिहास में नाम छोड़ जाते। ये साधारण जन न थे। लेकिन, नाम छोड़ जाना तो सदा 'रिलेटिव' और 'कपरेटिव' है। राम के साथ नाम नहीं छोड़ सकते। साधारण बेटे न थे ये दोनों। राम को साधारण बेटा हो भी नहीं सकता। लेकिन, सबाल तो राम से तुलना का पड़ेगा इतिहास में। दशरथ बहुत साधारण पिता है। दशरथ को कोई जानता भी नहीं, अगर राम पैदा न होते। दशरथ का कोई अथ भी न होता। राम हुए हैं इसलिए दशरथ का कोई नाम है। छोटे बाप के घर बड़ा बेटा पैदा हो जाता है तो बाप भी बड़ा हो जाता है। और बड़े बाप के घर बड़ा बेटा भी पैदा हो जाता है तो छोटा हो जाता है।

सभोग तो आध्यात्मिक ही था। जो पैदा हुए हैं वह आध्यात्मिक सभोग से ही पैदा हुए हैं। लेकिन, हमारी तुलना तो 'रिलेटिव' होगी, सदा 'कपरेटिव'

होगी। वह कहानी हम सबको पता है कि अकबर ने एक लकीर खीची और दरबार के लोगों से कहा कि बिना हुए इसे छोटा कर दो। कोई उसे छोटा कर न पाया और बीरबल ने एक बड़ी लकीर उसके पास खीच दी। उस लकीर को छुआ नहीं और वह लकीर छोटी हो गयी। वैसे, लकीर उतनी ही रही। लव-कुश के साथ राम की लकीर बहुत बड़ी है। उसके नीचे वे एकदम खो जाते हैं। राम की लकीर न होती तो लव-कुश भी दिखायी पड़ते। इतिहास उनके भी चरण-चिन्हों का स्मरण रखता। लेकिन, कोई जरूरत न रही। राम के पीछे आकर उनका कोई अर्थ नहीं।

**प्रश्न** काम ऊर्जा का उल्लेख आया और आध्यात्मिक समोग की बात भी अर्थपूर्ण है। इसी कड़ी में—

बासुरो कृष्ण की हैं, सगीत के मधुर सुर राधा के हैं। गीत कृष्ण के अधरों के हैं, उस गीत की काव्य माधुरी राधा की है। नृत्य कृष्ण का है, किन्तु उनके चरणों से गति और झकार राधा की है। ऐसा अभिन्न व्यक्तित्व है कृष्ण और राधा का। तभी तो हम राधा-कृष्ण कहते हैं। विवाहित होते हुए भी रक्षणी-कृष्ण कोई नहीं कहता। राधा को कृष्ण के जीवन से अलग कर दिया जाय तो कृष्ण का जीवन भी औरों की तरह उदास-उदास, अवूरा-अधूरा सा लगने लगेगा। और मजे की बात यह है की कृष्ण की लीला के आधार-ग्रन्थ भागवत में राधा का कहीं नाम नहीं लिया गया है। कोई बात नहीं। लेकिन कृष्ण के जीवन की समप्रता में शक्ति और प्रेम रूप राधा का क्या भावात्मक या सेक्सुअल सम्बन्ध है, इसपर प्रकाश डालने का एकमात्र अधिकारी हैं, आचार्यजी, आप जैसा कृष्ण।

उसर जो लोग शास्त्रों को खोजते हैं उनके लिए बड़ी कठिनाई रही है। इस बात से कि राधा का कोई उल्लेख ही नहीं। और, तब कुछ लोगों ने जो यह भी कहना शुरू कर दिया कि राधा जैसा कोई व्यक्तित्व कभी हुआ नहीं। राधा बाद के लोगों की, कवियों की कल्पना है। स्वभावत जो इतिहास में जीते हैं, तथ्यों में जीते हैं उनके लिए कठिनाई है। राधा का उल्लेख बहुत बाद के ग्रन्थों में शुरू होता है। किसी प्राचीन ग्रन्थ में राधा का कोई उल्लेख नहीं होता। मेरी हालत बिल्कुल उल्टी है। मैं मानता हूँ कि राधा का उल्लेख न होने का कुल कारण इतना है कि राधा कृष्ण से इतनी लीन और एक ही

गयी कि अलग उल्लेख की कोई जरूरत नहीं। जो अलग थे, उनका उल्लेख है। जो अलग न थी, छाया की तरह थी उसके उल्लेख की कोई जरूरत नहीं। उल्लेख करने के लिए भी तो किसी का अलग होना जरूरी है। रुक्मणी अलग है, कृष्ण को प्रेम करती हो सकती है। कृष्ण से उसके सम्बन्ध हो सकते हैं, कृष्ण में आत्मसात नहीं है। सम्बन्ध तो उनके ही होते हैं जो अलग है। राधा का कोई सम्बन्ध नहीं है कृष्ण से। राधा, कृष्ण ही है। इसलिए, उसका उल्लेख न किया गया हो तो मैं मानता हूँ कि न्याययुक्त है, उल्लेख नहीं किया जाना चाहिए। एक तो यह बात स्थाल में लेगे कि उसके उल्लेख न होने का कारण है। वह छाया की तरह अदृश्य है। इतनी भी अलग नहीं, डतनी भी भिन्न नहीं कि उसे कोई जाने और पहचाने, कि उसे कोई नाम भी दे, कोई जगह भी दे।

दूसरी बात यह भी सच है कि राधा के बिना कृष्ण का व्यक्तित्व एकदम अधूरा रह जायेगा। अधूरा इसलिए रह जायेगा कि मैंने कहा, कृष्ण पूरे पुरुष है। इसको थोड़ा ममझना पड़ेगा। ऐसे पुरुष बहुत कम हैं जगत में जो पूरे पुरुष हो। प्रत्येक स्त्री के भीतर भी उसका पुरुष अग होता है। मनम को जानने वाले लोग कहते हैं कि प्रत्येक स्त्री के भीतर पुरुष हैं और प्रत्येक पुरुष के भीतर स्त्री है। जो फर्क है वह सिर्फ डिग्रीज का,— क्रमों का है। जिसे हम पुरुष कहते हैं वह साठ फीसदी पुरुष है चालीस प्रतिशत स्त्री है। इसलिए, ऐसे भी पुरुष हैं जो स्त्रैण मालूम पड़ते हैं। और ऐसी भी स्त्रिया हैं जो पुरुष मालूम पड़ती हैं। अगर मात्रा बहुत ज्यादा है भीतर की स्त्री की, तो पुरुष पर हावी हो जायगी। अगर पुरुष की मात्रा बहुत ज्यादा है तो स्त्री पर हावी हो जायगी। लेकिन इस अर्थ में भी कृष्ण पूर्ण हैं जो मैं वह रहा हूँ। वे पूर्ण पुरुष हैं। उनके भीतर स्त्री का कोई तत्व ही नहीं है। या जैसे मीरा को मैं कहगा, वह प्रीति स्त्री है। उसके भीतर पुरुष का कोई तत्व ही नहीं है। और, जब भी कोई पूर्ण पुरुष होगा तब एक अर्थ में अधूरा पड़ जायगा। उसको पूरी स्त्री जस्ती है। हा, अधूरा पुरुष जी मानता है विना स्त्री के। उसके भीतर अपनी स्त्री भी है जिसस काम चलता है। लेकिन, कृष्ण जैसा पुरुष हो तो अनिवार्य रूप से उसकी राधा उसके साथ खड़ी हो जाती है, और उसे पूर्ण स्त्री चाहिए। पूर्ण स्त्री और पूर्ण पुरुष का थोड़ा अर्थ भी हम समझें।

पुरुष की जो गहरी से गहरी गहराई है वह आक्रामक है, 'अग्रेसिव' है। स्त्री की जो गहरी से गहरी गहराई है वह समर्पण की है, 'सरेण्डर' की है। कोई भी स्त्री पूरी स्त्री न होने से कभी पूरा समर्पण नहीं कर पाती। कोई भी

पुरुष पूरा पुरुष न होने से कभी पूरा आकामक नहीं हो पाता। इसलिए दो वयस्से द्विया और पुरुष जब विकते हैं तो निरन्तर कलह और समर्पण चलता है, चलेगा। क्योंकि द्विया के भीतर कृष्ण है जो आकामक भी है। वह आकरण भी करती है। किसी क्षण में वह पुरुष के हाथ भी दाढ़ती है, पर भी दाढ़ती है, उसके पैर पर सिर भी रखती है और किसी क्षण में वह बिल्कुल ही बिकराल हो जाती है और पुरुष की गंदन दबाने को उत्सुक हो जाती है। ये दोनों रूप उससे निकलते हैं। पुरुष किसी क्षण बड़ा आकामक होता है, बिल्कुल दबा डालना चाहता है। किसी क्षण वह बिल्कुल ही दब्बा हो जाता है और द्विया के पीछे घूमने लगता है। वे दोनों उसके भीतर हैं। शक्तिमणी का कृष्ण के साथ बहुत गहरा मेल नहीं हो सका है। उसके भीतर पुरुष है। राधा पूरी ढूब सकी, वह अकेली निपट स्त्री है। वह समर्पण पूरा हो सका। कृष्ण का किसी ऐसी स्त्री से बहुत गहरा मेल नहीं बन सकता जिसके भीतर थोड़ा भी पुरुष है।

कृष्ण के भीतर स्त्री है ही नहीं। वह पूरे ही पुरुष है। पूरा समर्पण ही उनसे मिलन बन सकता है। इससे कम मे काम न चलेगा। वह पूरा ही माम लेगे। हालांकि पूरा मामने का मतलब यह नहीं है कि वह कृष्ण न देंगे, पूरा मामकर वह पूरा ही दे देंगे। इसलिए, हुआ ऐसा कि शक्तिमणी छूट गयी जिसका उल्लेख था शास्त्रो मे, जो दावेदार थी वह छूटती चली गयी। और जो बिल्कुल गैर-दावेदार था, जिसका कोई दावा ही नहीं था, जिसे कृष्ण अपनी भी नहीं कह सकते वह व्यक्तित्व अतिम गहराई को छू गया। राधा तो परायी थी, शक्तिमणी अपनी थी। शक्तिमणी से सम्बन्ध सस्थापत था, विवाह का था। राधा से सम्बन्ध प्रेम का था, सस्थापत नहीं था। जिसके ऊपर कोई दावा नहीं किया जा सकता था, जिसके पक्ष मे कोई कोटि निर्णय न देगा कि तुम्हारी है। आखिर मे ऐसा हुआ कि अदालत से जिसके लिए दावा मिल सकता था, जो कृष्ण से 'मर्टीनेस' माम सकती थी, वह खो गयी और वह गैर-दावेदार स्त्री गैर-दीरे प्रणाल होती चली गयी। बक्त आया कि शक्तिमणी भूल गयी और कृष्ण के साथ राधा का नाम ही रह गया। और, मजे की बात है, राधा ने सब छोड़ा कृष्ण के लिए, लेकिन नाम यीछे न जुड़ा, नाम आगे जुड़ गया। 'कृष्ण-राधा' कोई नहीं कहता। 'राधा-कृष्ण' हम कहते हैं। जो सब समर्पण करता है वह सब या लेता है, जो बिल्कुल पीछे खड़ा हो जाता है वह बिल्कुल आगे हो जाता है। नहीं, राधा के बिना कृष्ण को हम न सोच पायेंगे। राधा उनकी सारी कमनीवता है, राधा उनका सारा-का-सारा जो भी नाजुक है, वह सब है। जो 'देलीकेट' है वह है। राधा

उनका गीत भी, उनके नृत्य का घुघरू भी। राधा उनके भीतर जो भी स्त्रैण है वह सब है। क्योंकि, कृष्ण निपट पुरुष है। इसलिए, अकेले कृष्ण का नाम लेना अर्थ-पूर्ण नहीं है। वह इकट्ठे होकर 'राधा-कृष्ण' हो गये। 'राधा-कृष्ण' होकर इस जीवन के दोनों विरोध इकट्ठे मिल गये हैं। इसलिए भी मैं कहता हूँ कि यह भी कृष्ण की पूर्णताओं की एक पूर्णता है।

महावीर को स्त्री के साथ खड़ा करके नहीं सोचा जा सकता है। वहाँ स्त्री असगत है। महावीर का व्यक्तित्व स्त्री के बिना है। महावीर की शादी हुई, विवाह हुआ, बच्ची हुई, लेकिन महावीर के एक पन्थ दिगम्बरों की मान्यता है कि, नहीं उनका विवाह ही नहीं हुआ। न उनकी कोई बच्ची हुई। मैं मानता हूँ कि शायद ऐतिहासिक तथ्य यही है कि उनका विवाह हुआ हो, बच्ची हुई हो, लेकिन मनोवैज्ञानिक तथ्य दिगम्बर जो कहते हैं वही ठीक है कि महावीर जैसे आदमी के साथ स्त्री को जोड़ना ही बेमानी है। हुआ भी हो तो नहीं माना जा सकता। महावीर कैसे किसी स्त्री को प्रेम करेगे? असभव है। महावीर के पूरे व्यक्तित्व में कहीं कोई वह छाया भी नहीं है। बुद्ध के साथ स्त्री थी, लेकिन छोड़कर चले गये। क्राइस्ट के साथ भी स्त्री को जोड़ना मुश्किल है। वे निपट बारे हैं। 'बेचलर' होने में ही उनकी अर्थवत्ता है, इस अर्थ में कि वे सब अधूरे हैं। इस जगत की व्यवस्था में जैसे धन विद्युत अधूरी है ऋण विद्युत के बिना। जैसे विद्येय अधूरा है निषेध के बिना। ऐसे स्त्री और पुरुष का एक परम मिलन भी है—स्त्री और पुरुष का न कहे, स्त्रैणता और पौरुषता का, आक्रमकता का और समर्पण का, जीतने का और हारने का। अगर हम कृष्ण और राधा के लिए कोई प्रतीक खोजने निकले तो सारी पृथ्वी पर चीन में बस एक प्रतीक है जिसे वह 'इन और याग' कहते हैं। वस एक प्रतीक है। चूंकि चीनी भाषा तो 'पिक्टोरियल' चिन्हों की है। उनके पास ही एक प्रतीक है जिसे वे जगत का प्रतीक कहते हैं। उसमें एक गोल वर्तुल है, वर्तुल में दो मछलियां हैं। एक-दूसरे को मिलती हुई हैं। वर्तुल आधा सफेद, आधा काला है। काली मछली में सफेद गोल एक धेरा। सफेद मछली में काला एक धेरा और पूरा एक वर्तुल। दो मछलिया पूरी तरह मिलकर एक गोल धेरा बना रही हैं। एक मछली की पूँछ दूसरे के मुँह से मिल रही है, दूसरी मछली का मुँह पहली मछली की पूँछ से मिल रहा है। और, दोनों मछलियां मिलकर पूरा गोल धेरा बना रही हैं। एक का नाम इन, एक का नाम याग है। एक ऋण, एक धन। राधा और कृष्ण एक पूरा वर्तुल हैं। इस अर्थ में भी वे पूर्ण हैं। अधूरा नहीं सोचा जा सकता कृष्ण को। अलग नहीं सोचा जा सकता। अलग सोचकर वे एकदम खाली

हो जाने हैं। वह पृथग्भूमि खो जाती है, जिसपर वे उभरते हैं। जैसे हम रात के तारों को नहीं सोच सकते, रात के अधेरे के बिना। अमावस 'की रात में देखे हैं तारे कैसे उज्ज्वल और शुभ्र होकर दिखायी पड़ने लगते हैं। अधेरे की चादर में और चमकदार हाफ़र निखर उठते हैं।

कृष्ण का सारा व्यक्तित्व चमकता है राधा की चादर पर। चारों तरफ से राधा की चादर उन्हे धेरे हैं। वह उसमें ही पूरे-के-पूरे खिल उठते हैं। कृष्ण अगर फूल हैं तो राधा जड़ है। वह पूरा-का-पूरा इकट्ठा है। इसलिए, उनको अलग नहीं कर सकते। युगल पूरा है। इसलिए 'राधा-कृष्ण' पूरा नाम है, कृष्ण अधूरा नाम है।



## पर्व : छठः

विदाह संस्थापन अनैतिक  
 प्रेम का आधार और बह्यों की समस्या  
 जीवन एक उत्सव  
 रामभक्त हनुमान, कृष्ण भक्त मीरा  
 अवतारों के दाढ़ी-मूँछ दर्यों नहीं  
 कर्म और उत्सव  
 चित्त के पार चित्त के साथ  
 स्वधर्म विगुण कैसे





## ६

प्रस्तुत विवाह को आप अनैतिकता कह सकते हैं, और सर्वाधिक विवाह कृत्य करते हैं। क्या वे विवाह रूपी अनैतिकता को प्रोत्साहित करते हैं ? |

उत्तर विवाह को अनैतिक कहा मैंने। जो लोग प्रेम करेगे वे भी साथ रहना चाहेंगे। इसलिए, प्रेम से जो विवाह निकलेगा वह अनैतिक नहीं रह जायेगा। लेकिन, हम उल्टा काम कर रहे हैं। हम विवाह से प्रेम निकालने की कोशिश कर रहे हैं जो कि नहीं हो सकता। विवाह तो एक बन्धन है और प्रेम है एक मुक्ति।

लेकिन, जिनके जीवन में प्रेम आया है वे साथ जीना चाहे, स्वाभाविक है। लेकिन, साथ-जीना उनके प्रेम की छाया ही हो। जिस दिन विवाह की संस्था नहीं होगी उस दिन स्त्री और पुरुष साथ नहीं रहेंगी, ऐसा मैं नहीं कह रहा हूँ। मैं ऐसा कह रहा हूँ कि उस दिन ही वे ठीक से साथ रह सकेगे। अभी साथ दिखायी पड़ते हैं, साथ रहते नहीं। साथ होना ही सग होना नहीं है। पास-पास होना ही निकट होना नहीं। जुड़े होना ही एक होना नहीं है। विवाह की संस्था को मैं अनैतिक कह रहा हूँ और विवाह की संस्था चाहेगी कि प्रेम दुनिया में न बचे। कोई भी संस्था सहज उद्भावनाओं के विपरीत होती है। क्योंकि, तब संस्थाएं नहीं टिक सकती। दो व्यक्तियों जब प्रेम करते हैं तो वह प्रेम अनूठा ही होता है। वैसा प्रेम किन्तु दो व्यक्तियों ने नहीं किया होता है। लेकिन, दो व्यक्तियों जब विवाह करते हैं तो वह अनूठा नहीं होता। वैसा विवाह करोड़ों लोगों ने किया है। विवाह एक पुनरुक्ति है। प्रेम एक मौलिक धटना है। जितना विवाह प्रभावी होगा उतना प्रेम का गला घुटता चला जायेगा। लेकिन, जिस दिन हम प्रेम को प्राथमिकता दे सकेंगे जीवन में, और दो व्यक्तियों का साथ रहना एक समझौता नहीं होगा, उनके प्रेम का सहज फल होगा। उस दिन विवाह नहीं होगा इस अर्थ में, जिस तरह आज है। न इस तरह तलाक होगा जैसा आज है। दो व्यक्तियों का साथ रहना चाहे, यह उनका आनन्द है। न रहना चाहें यह उनका आनन्द है। इसमें समाज कोई बाधा नहीं दे।

विवाह, संस्था की तरह अनैतिक है, ऐसा मैंने कहा। विवाह, प्रेम की छाया की तरह बिल्कुल स्वाभाविक है। उसमें कोई अनैतिकता नहीं है।

प्रश्न आजार्यश्री, विवाह के सबध में आपने अभी अभी जो वर्चा की उसे ध्यान में रख यह भी वशनि की कृपा करें कि जिस दिन हम प्रेम को आधार बनायेंगे उस दिन बच्चे का क्या होगा? वे किस के कहलायेंगे? और, क्या ये 'सोशियल प्रोब्लम' नहीं बन जायेंगे?

उत्तर- बहुत-सी कठिनाइया है, और दिखायी पड़ेगी। लेकिन वे कठिनाइया इसलिए दिखायी पड़ती है कि हम पुरानी धारणाओं को आधार बनाकर ही सोचते हैं। वैसे, सच तो यह है कि जिस दिन हम प्रेम को परम मूल्य दे सकेंगे उस दिन बच्चे व्यक्तियों के हैं, ऐसा मानने की बात ही बेमानी है। बच्चे हैं भी नहीं व्यक्तियों के। सदा ये भी नहीं। एक युग या जब पिता का तो कोई पता नहीं चलता था, मा का ही पता होता था। मातृसत्ताक युग था। इसलिए, जानकर आपको हैरानी होगी कि पिता शब्द बहुत पुराना नहीं है। काका, 'अंकल' शब्द ज्यादा पुराना

है। 'माँ' बहुत पुराना है। पिता शब्द तो आया तब जब हमने विवाह की व्यवस्था सुनिश्चित कर दी। अन्यथा पिता का तो कोई पता न चलता था। कबीले के सभी लोग पिता तुल्य थे। माँ का पता चलता था। पूरा कबीला बच्चों के प्रति प्रेम पूर्ण भाव रखता था। और, बच्चे चौंकि किसी के भी नहीं थे, इसलिए सभी के थे। बच्चे किसी के हैं, इससे फायदा पहुँचा है ऐसा नहीं है, बच्चे सभी के होंगे, फायदा और बड़ा पहुँच सकता है। जिस दिन हम प्रेम को आधार बनायेंगे उस दिन बच्चों का क्या होगा? सबाल उठता है, क्या वह 'सेशियल प्राइम' बन जायेगे? नहीं, अभी बच्चे सामाजिक समस्या हैं, क्योंकि अभी हमने बच्चों को व्यक्तियों के ऊपर छोड़ दिया है। भविष्य में जो कुछ सभव होता जा रहा है, उसे देखते हुए समझ लेना चाहिए कि हमने जो पीछे आधार बनाये थे वे कोई टिकने वाले नहीं हैं।

जैसे, पुरानी दुनिया में बच्चों के पैदा होने के लिए कम-से-कम बाप का जिन्दा होना तो जरूरी था। भविष्य में नहीं रहेगा। आज भी नहीं है। अगर भैं मर जाक तो भी मेरे धीर्घ-कण सरक्षित रखे जा सकते हैं हजार साल तक, दस हजार साल तक। मैं तो नहीं रहूँगा, मेरा बच्चा दस हजार साल बाद पैदा हो सकता है। मा अब तक अनिवार्य रही है। लेकिन, भविष्य में अनिवार्य नहीं रह जायेगी। हमने व्यवस्था खोज ली है करीब करीब, जिस दिन पूरी तरह खोज लेगे उस दिन हम मा को नी महीने पेट में बच्चे ठोने का व्यर्थ बोझ नहीं देंगे। उस दिन जो मा के पेट में सुविधा उपलब्ध है बच्चे को वह यत्र में भी उपलब्ध हो सकेगी। उस दिन तो कौन मा है, कौन पिता है कहना और जानना मुश्किल हो जायेगा। हमें पूरा ढाचा बदलना पड़ेगा। पूरी समाज की स्त्रियां मा हैं और पूरे समाज के पुरुष पिता हैं। और उन बच्चों को सबका होकर बड़ा होना पड़ेगा। निश्चित ही सब बदलेगा। जो मैं कह रहा हूँ, वह वैज्ञानिक ढंग से भी जो काम दुनिया में चल रहा है, उसकी वजह से भी जरूरी हो जायेगा। अभी हमे स्थाल में नहीं आता, क्योंकि हम पुराने ढंग से सोचते चले जाते हैं। आपके घर बच्चा पैदा होता है तो आप डाक्टर की दवाई लाते हैं, सबसे अच्छे डाक्टर की। आप यह नहीं सोचते कि मैं इसका पिता हूँ तो स्थूल ही दवाई बनाकर इसको पिला दूँ। आप कपड़ा बनवाते हैं सबसे अच्छे दर्जी से। यह नहीं सोचते कि मैं इसका पिता हूँ तो मैं ही इसका कपड़ा बनाकर पहना दूँ। अगर समझ थोड़ी और शहरी पढ़ेगी तो आप यह भी न चाहेंगे कि आपका बच्चा आपके धीर्घकण से ही पैदा हो, बगर इससे अच्छा धीर्घकण समाज में उपलब्ध

हो सकता हो। अच्छा है, आपका बच्चा लगड़ा-लूला पैदा न हो, अच्छा है, कम बुद्धि का पैदा न हो। अच्छा है कि श्रेष्ठतम बीर्य उसे उपलब्ध हो सके। मा भी न चाहेगी कि मा होने के लिए वह नौ महीने बच्चे को पेट में घसीटे, जब कि उससे बेहतर सुविधाएं उपलब्ध हो गयी हैं, और बच्चा ज्यादा स्वस्थ पैदा हो सकता हो, ज्यादा बुद्धिमान पैदा हो सकता हो। मा और पिता का अब तक जो 'फक्शन' रहा है वह भविष्य में रहने वाला नहीं है। और, जिस दिन मा और पिता का 'फक्शन' विदा हो जायेगा उस दिन आपके विवाह का क्या बजूद रह जाता है, विवाह का क्या आधार रह जाता है? कोई मतलब नहीं रह जाता। उस दिन प्रेम ही आधार रह जाता है। 'टेक्नोलाजी' भी मनुष्य को उस जगह ला रही है, मनुष्य के मन की समझ भी उस जगह ला रही है जहा व्यक्तिगत दावेदारी समाप्त हो जाती है। इसका यह मतलब नहीं कि सारी समस्याएं समाप्त हो जाती हैं। हर नये प्रयोग के साथ नयी समस्याएं होती हैं। बड़ा सबाल यह नहीं है कि समस्याएं मिट जाय, समस्याएं तो आदमी की कभी नहीं मिटेगी। सबाल यही है कि समस्याएं रोज बेहतर होती जाय। कल की समस्याओं से आज की समस्याएं बेहतर हो। ऐसा नहीं है कि हम विवाह को हटा देंगे तो मनुष्य और मनुष्य के बीच के सारे संघर्ष विदा हो जायेंगे। नहीं, लेकिन वे संघर्ष विदा हो जायेंगे जो विवाह के कारण ही पैदा होते हैं और वे काफी बड़ी मात्रा में हैं। छोटी मात्रा में नहीं है। कुछ नयी बातें पैदा होगी, कुछ नयी समस्याएं पैदा होगी। पृथ्वी पर रहने के लिए समस्याएं जरूरी हैं। उनको हम हल करेंगे, उन्हीं में हमारा विकास है। उनसे हम लड़ेंगे और आगे बढ़ेंगे।

एक बात जरूर ध्यान में ले लेने जैसी है और कठिनाई उसी से आती है। जिस ढाँचे में हम रहने के आदी हो गये हैं, उस ढाँचे की समस्याओं को भी सहने के हम आदी हो गये हैं। अगर उससे बेहतर व्यवस्था मिल सकती हो तो उस बेहतर व्यवस्था के साथ नयी समस्याएं भी मिलेगी, जिनके हम आदी नहीं हैं। और उसी से कठिनाई होती है। लेकिन, बुद्धि का काम यही है कि वह उन समस्याओं को समझे, हल करे और सोचे कि पुरानी समस्याओं से अगर बेहतर समस्याएं हमें मिलती हो तो हम परिवर्तन करे। ऐसा मेरा मानना है कि मनुष्य के जीवन में जब तक प्रेम का फूल पूरी तरह न खिले तब तक उसके व्यक्तित्व में रौनक, तब तक उसके व्यक्तित्व में जिसको हम कहे नमक, वह नहीं उत्पन्न होता। उसका जीवन फीका-फीका हो जाता है। और मैं मानता हूँ कि फीके व्यक्तित्व के बजाय समस्याओं से भरे हुए तेज और चमकदार व्यक्तित्व का मूल्य है। एक छोटी-सी कहानी, फिर हम दूसरा सबाल ले।

मैंने सुना है कि एक छोटा-सा घास का फूल दीवाल की ओट में इंटो में दबा हुआ जीता था। तूफान आते थे, उसपर चोट नहीं हो पाती थी। सूरज निकलता था, उस फूल को नहीं सता पाता था। उसे इंटो की आड़ थी। बरसा होती थी, बरसा उसे गिरा नहीं पाती थी, क्योंकि वह जमीन से सट कर लगा हुआ था। घास में ही उसके गुलाब के फूल थे। एक रात उस घास के फूल ने परमात्मा से प्रार्थना की कि मैं कब तक घास का फूल बना रहूंगा। अगर तेरी जग भी मुझ पर कृपा ह तो मुझे गुलाब का फूल बना दे। परमात्मा ने उसे बहुत समझाया कि तू इस शक्षट में मत पड़, गुलाब के फूल की बड़ी तकलीफें हैं। जब तूफान आते हैं तब गुलाब की जड़ें भी उखड़ी उखड़ी हो जाती हैं। जब गुलाब में फूल खिलता है तो खिल भी नहीं पाता कि कोई तोड़ लेता है। जब बरसा आती है तो गुलाब की पखु़िया बिखर कर जमीन पर गिर जाती है। तू शक्षट में मत पड़, तू बड़ा सुरक्षित है। घास के फूल ने कहा, बहुत दिन सुरक्षा में रह लिया, अब मुझे कुछ शक्षट लेने का मन हो रहा है। आप तो बस मुझे गुलाब का फूल बना दें सिफँ एक दिन के लिए सही, चौबीस घण्टे के लिए सही। पास-पड़ोस के घास के फूलों ने समझाया कि इस पागलपन में मत पड़। हमने सुनी है कहानियाँ कि पहले भी हमारे कुछ पूर्वज इस पागलपन में पड़ चुके थे और बड़ी मुसीबत आयी थी। हमारा जातिगत अनुभव यह कहता है कि हम जहा हैं बड़े मजे में हैं। लेकिन, वह नहीं माना तो परमात्मा ने उसे वरदान दे दिया और वह सुबह गुलाब का फूल हो गया। लेकिन, सुबह से ही मुसीबते शुरू हो गयी। जोर की आघिया चली, प्राण का रोया रोया उसका काप गया, जड़ें उखड़ने लगी। नीचे दबे उसकी जाति के फूल कहने लगे, देखा पागल को, अब मुसीबत में पड़ा। दोपहर होने होते सूरज तेज हुआ। फूल जो खिले थे अब कुम्हलाने लगे। बरसा आयी, पखु़िया नीचे गिरने लगी। फिर, तो इनने जोर की बरसा आयी कि साझ होते-होते जड़े उखड़ गयीं और गुलाब के फूल का पौधा जमीन पर गिर पड़ा। जब वह जमीन पर गिर पड़ा तब वह अपने फूलों के करीब आ गया। उन फूलों ने उससे कहा—पागल, हमने पहले ही कहा था व्यर्थ अपनी जिन्दगी गवायी, मुश्किले ले ली नयी अपने हाथ से। उस भरते हुए गुलाब के फूल ने कहा—नासमझी, मैं तुम्हारे लिए कहूंगा कि जिन्दगी भर इंट की आड़ में छिपे हुए घास का फूल होने से चौबीस घण्टे लिए गुलाब का फूल हो जाना बहुत आनन्दपूर्ण है। मैंने अपनी आत्मा पा ली, मैं तूफानों से लड़ लिया, मैंने सूरज से मुलाकात ले ली, मैं हवाओं से जूझ लिया। मैं ऐसे ही नहीं मर रहा हूं, मैं जीकर मर रहा हूं। और तुम मरे हुए जी रहे हो।

निश्चित ही जिन्दगी को अगर हमें जिन्दा बनाना है तो बहुत-सी जिन्दा समस्याएँ खड़ी हो जायेगी। होनी भी चाहिए। लेकिन, जिन्दगी को मुश्फी बनाना है तो हो सकता है हम सारी समस्याओं को हल भी कर दें तब भी आदमी भरा-भरा ही जीता है। मैं भानता हूँ कि नयी समस्याएँ तो होंगी। मनुष्य को इतना भरोसा और आत्म-विश्वास होना चाहिए कि वह नयी समस्याओं से जूझ सके। अभी जो हमारी व्यवस्था है, वह सारी-की-सारी भय पर खड़ी है। सब तरह के भय, सब तरह के 'फियर्स'—उसका उद्गम ही 'फियर ऑरिएटेशन' है। वह उसी में से जन्मती है कि ऐसा हो जायेगा, वैसा हो जायेगा। इसका क्या होगा? इस भय के कारण हम घर में रुके रह जाते हैं और नया कदम नहीं उठाते। जो हो रहा है उसको भी ध्यान से देखते नहीं, क्योंकि उसे देखेंगे तो नया कदम उठाना पड़ेगा। इसलिए, जैसा है उसे हम बोझ की तरह ढोये चले जाते हैं।

मुझे हजारों लोगों से मिलने का मौका आया, बहुत निकट से, उनकी आखो में, उनके हृदय में ज्ञानने का मौका आया। मैंने ऐसा पुरुष नहीं देखा जो विवाह से तृप्त हो, मैंने ऐसी स्त्री नहीं देखी जो विवाह में आनंदित हो। लेकिन उनसे भी कहा जाय तो वे कहेंगे, ये-ये समस्याएँ उठ जायेगी। लेकिन बड़ा मजा यह है कि तुम जिन समस्याओं में जो रहे हो, चौबीस घण्टे उनमें गुजरते हो, इसलिए पता नहीं चलता। आदि हो गये हो। हम पिंजडे के पछी को भी जाकर कहे कि खुले आकाश में उड़, तो वह कहेगा, बहुत दिक्कते आयेगी, यहा सुरक्षा तो है। दिक्कते आयेगी, और पिंजडे के पछी को और भी ज्यादा आ जायेंगी क्योंकि उसे खुले आकाश में उड़ने का अनुभव भी नहीं रहा है। माना कि पिंजडे में बड़ी सुरक्षा है, लेकिन कहा खुले आकाश का आनन्द, कहा पिंजडे की सुरक्षा! फिर तो कब्र में भी बहुत सुरक्षा है।

प्रश्न स्वामी सहजानन्द का आरोप है कि कृष्ण की रसिक पद्धति से लोग तरे हैं कम, मरे हैं ज्यादा। उसके दो कारण हैं—एक तो कृष्ण की गोपी बनकर ही भक्ति करने की पद्धति गुजरात में महाराज लायबल केस बना; और दूसरा जीवन को उत्सव मानने में मनुष्य की भोग वृत्ति को प्रोत्साहन मिला।

दूसरा सवाल कि राम-भक्त हनुमान में जो बहुचर्य, शौर्य, प्रेरणा और वैराग्य के गुण मिलते हैं (और उनमें जितनी प्रबुत्तिवादी 'एकटीचिटी' है) उतने कृष्ण भक्त भीरा, नरसी और सूरक्षात में

नहीं हैं। मतलब यह कि कृष्ण-पूजक अन्तर्मुखी प्रवृत्त ज्यादा है और सामाजिक कार्यदान में उनका योगदान नहीं जीता है।

तीसरा सबल कि कृष्ण, राम, महावीर तथा बुद्ध तक के चिन्हकारों ने और पुराणकारों ने दाढ़ी मूँछ नहीं बतलायी। इसका क्या मतलब?

उत्तर पहली बात, जीवन एक काम है या उत्सव? अगर जीवन एक काम है तो बोझ हो जाएगा। अगर जीवन एक काम है तो कर्तव्य हो जाएगा। अगर जीवन को काम की तरह नहीं उत्सव की तरह, एक 'फेस्टीविटी' की तरह, महोत्सव की तरह लेते हैं। जीवन एक आनन्द का उत्सव है, काम नहीं है। ऐसा भी नहीं है कि उत्सव की तरह लेते हैं तो काम नहीं करते। काम तो करते हैं। लेकिन काम उत्सव के रग में रग जाता है। काम नृत्य, संगीत में डूब जाता है। निश्चित ही, बहुत काम न हो पायेगा इस भारति। थोड़ा ही हो पायेगा। क्वाटिटी ज्यादा नहीं होगी लेकिन क्वालिटी का कोई हिसाब नहीं है। परिणाम तो कम होगा, मात्रा कम होगी, लेकिन गुण बहुत गहरा हो जायेगा।

कभी आपने सोचा, कि काम बाले लोगों ने, जो हर चीज़ को काम में बदल देते हैं, जिन्दगी को कैसा तनाव से भर दिया है। जिन्दगी की सारी 'एग्जाइटी' सारी चिता, यह अति कामवादी लोगों की ही उपज है। वह कहते हैं करो, एकदम करते रहो, करो या मरो। उनका नारा है 'डू आर डाइ'। उनके पास कोई और दृष्टि नहीं है। लेकिन, किसलिए करो, आदमी करता किसलिए है? आदमी करता है इसलिए कि थोड़ी देर जी सके, और जीने का क्या मतलब होगा? फिर, जीने का मतलब उत्सव होगा। हम काम भी इसलिए कर सकते हैं कि इसी क्षण में हम नाच सके। लेकिन काम इतने जोर से पकड़ लेता है कि फिर नाचने का तो मौका ही नहीं आता, गीत बाने का मौका ही नहीं आता, बासुरी बजाने की फुर्सत ही कहा रह जाती है? दफ्तर से घर है, घर से दफ्तर है। दिमाल में बैठकर घर दफ्तर आ जाता है। सब गड्डमड्ड हो जाता है, सब डलट जाता है। फिर, जिन्दगी भर दौड़ते रहते हैं। इस आशा में कि किसी दिन वह क्षण आयेगा जिस दिन विश्राम करेगे और आमन्द लेंगे। वह क्षण कभी नहीं आता, वह आयेगा ही नहीं। काम बाले आदमी में वह क्षण कभी नहीं आता। कृष्ण जीवन को देखते हैं उत्सव की तरह, महोत्सव की तरह, एक खेल की तरह, एक झील

की तरह। जैसाकि फूल देखते हैं, जैसा कि पक्षी देखते हैं, जैसाकि आकाश के बादल देखते हैं, जैसाकि मनुष्य को छोड़कर सारा जगत देखता है उत्सव की तरह। कोई पूछे इन फूलों से कि खिलते किसलिए हो, काम क्या है? बेकाम खिले हुए हो? तारों से कोई पूछे कि चमकते किसलिए हो? काम क्या है? पूछे कोई हवाओं से, बहती क्यों हो, काम क्या है?

मनुष्य को छोड़कर जगत में काम कही भी नहीं है। मनुष्य को छोड़कर जगत में महोत्सव है। उत्सव चल रहा। कृष्ण इस जगत के उत्सव को मनुष्य के जीवन में भी ले आते हैं। वे कहते हैं मनुष्य का जीवन भी उत्सव के साथ एक हो जाता है, ऐसा नहीं है कि उत्सव में काम नहीं होगा। ऐसा नहीं है कि हवाए नहीं दौड़ रही हैं, दौड़ रही है। ऐसा नहीं है कि चाद-तारे नहीं चल रहे हैं। चल रहे हैं। ऐसा नहीं है कि फूलों को खिलने के लिए कुछ नहीं करना पड़ता है, बहुत कुछ करना पड़ता है। लेकिन करना गौण हो जाता है, होना महत्वपूर्ण हो जाता है। 'डूइग' पीछे हो जाता है, 'बीइग' पहले हो जाता है। उत्सव पहले हो जाता है, काम पीछे हो जाता है। काम सिर्फ उत्सव की तैयारी होता है। दुनिया की सारी आदिम जातियों के पास अगर हम जाय तो वह दिन भर काम करते हैं, ताकि रात नाच सके। रात ढोल बजे और गीत हो। लेकिन, सभ्य आदमी के पास जाय, तो वह दिन भर काम करता है, रात भर काम करता है। उससे कोई कुछ पूछे कि वह काम किसलिए कर रहा है? वह कहता है, कल विश्राम कर सके। विश्राम को पोस्टपोन करता है, काम को करता चला जाता है। फिर, वह कल कभी नहीं आता। मैं तो कृष्ण के इस महोत्सवादी रूख से राजी हूँ। फिर, मेरा देखना यह है कि इतना काम करके भी आदमी ने कर क्या लिया? अगर काम करना अपने में ही लक्ष्य है तब तो बात दूसरी है। लेकिन, इतना काम करके हमने कर क्या लिया?

सिसीफस की कहानी है कि देवताओं ने उसे श्राप दिया है कि वह एक पत्थर की चट्टान को पहाड़ पर चढ़ाकर ले जाय और जब वह 'पीक' पर, चोटी पर पहुंचेगा तो पत्थर फिसल कर नीचे चला जायेगा। सिसीफस फिर नीचे जाय फिर पहाड़ पर पत्थर को खीचे, पत्थर फिर नीचे चला जायेगा, सिसीफस फिर नीचे जायेगा। सिसीफस नीचे से ऊपर तक खीचता है। बड़े काम में लगा है। वह नीचे आता है, फिर पत्थर ऊपर चढ़ाता है। काम वाले आदमी की जिन्दगी सिसीफस की जिन्दगी हो जाती है। पत्थर गिरते रहते हैं, वह चढ़ाता रहता है। पूरी जिन्दगी में वह क्षण नहीं आता जब विराम हो, विश्राम हो, उत्सव हो। वह हो नहीं सकता।

इन काम करने वाले लोगों ने सारी दुनिया को 'मैड हाउस' बना दिया, बिल्कुल पागलखाना कर दिया है। और एक-एक आदमी पागल हो गया है। सब दौड़े जा रहे हैं कि कहीं पहुचना है। जैसा मैंने सुना है एक आदमी की बाबत, कि वह तेजी से टैक्सी में सवार हुआ और उसने कहा, जल्दी चलो। टैक्सी वाले ने जल्दी टैक्सी चलायी। योड़ी देर बाद उसने पूछा, लेकिन चलना कहा है? उसने कहा, यह सवाल नहीं है, सवाल जल्दी चलने का है।

हम सब जिन्दगी में ऐसे ही सवार हैं। बस जल्दी चलो, लेकिन कहा जा रहे हैं आप? सब चले जा रहे हैं, लेकिन कहा? जोर से करो, जो भी कर रहे हो, लेकिन क्यों? क्या होगा इसका फल? क्या पाने की इच्छा है? उसका कुछ पता नहीं। लेकिन, इतना समय भी नहीं कि इसको सोचें, इतने में देरी हो जायेगी, पड़ोसी आगे निकल जायेगा। हम सब भागे जा रहे हैं। काम करने वाले लोगों ने, जिनको दिखायी पड़ता है कि काम ही सब कुछ है, भारी नुकसान पहुचाये हैं। एक नुकसान तो यह इन्होंने पहुचाया कि जिन्दगी से उत्सव के क्षण छीन लिये। दुनिया में उत्सव कम होते जा रहे हैं। रोज कम होते जा रहे हैं। उत्सव की जगह मनोरजन आता जा रहा है जो कि बहुत भिन्न बात है। उत्सव में सम्मिलित होना पड़ता है, मनोरजन में दूसरे को सिर्फ देखना पड़ता है। मनोरजन 'पैसिव' है, उत्सव बहुत 'एक्टिव' है। उत्सव का मतलब है, हम नाच रहे हैं, मनोरजन का मतलब कि कोई नाच रहा है, हमने चार आने दिये, और देख रहे हैं। लेकिन, कहा नाचने का आनन्द और कहा नाच देखने का आनन्द। इतना काम हमने कर लिया है कि काम से थक जाते हैं तो किसी को नाचते हुए देखना चाहते हैं।

कहीं, कामू ने एक बात लिखी है कि जल्दी वह वक्त आ जायेगा कि आदमी प्रेम भी अपने नौकरों से करवा लिया करेगे। क्योंकि, फुर्सत भी तो चाहिए न! लेकिन, काम से फुर्सत कहा है? एक नौकर रख लेगे घर में कि तू प्रेम का काम कर दिया कर, क्योंकि मुझे फुर्सत नहीं होती। प्रेम से कुछ फल तो निकलता नहीं है। तो इसको कौन करेगा? काम वाले लोग नहीं करेगे। इसके लिए तो एक सेक्रेटरी रखा जा सकता है। वह इसको निपटा लेगा। काम की अति दौड़ ने, उत्सव के क्षण गवा दिये। और उत्सव से जो पुलक आती थी, जो धिरक आती थी, वह खो गयी। इसलिए कोई आदमी प्रसन्न नहीं है, प्रमुदित नहीं है, खिला हुआ नहीं है। इसलिए, 'सबस्टीट्यूट' हमें खोजना पड़ा—मनोरजन। क्योंकि कोई तो क्षण चाहिए जब हम कुछ न करे। विराम में हो। लेकिन मनोरंजन

उत्तम उत्सव है। ऐसे ही जैसे कोई प्रेम कर रहा हो और हम देख रहे हैं। आप इस स्थाल में होते कि काम हो गया, लेकिन आपकी जो प्रेम की आकाशा है वह नहीं तृप्त होगी। वह और भूखी हो जायेगी, और प्यासी हो जायेगी।

कृष्ण उत्सवबादी है। वह जीवन को एक महालीला, एक महा उत्सव की तरह देखते हैं। इन काम करने वालों ने जगत् को जटिल बहुत कर दिया। इतना जटिल हो गया वह कि आदमी उसमे जी सके ठीक से, यह भी कठिनाई मालूम होने लगी।

° ° °

यह भी ठीक है कि अगर हम राम के भक्तो को देखे। हनुमान को देखे तो वे बड़े कर्मठ, निष्ठावान, शक्तिशाली व पूर्ण निष्णात हैं। कृष्ण का भक्त वैसा नहीं दिखायी पड़ता। मीरा नाचती है, गाती है लेकिन वह बात नहीं दिखायी पड़ती। वह दिखायी नहीं पड़ेगी। क्योंकि राम जिन्दगी को काम की तरह देखते हैं। कृष्ण जिन्दगी को उत्सव की तरह देखते हैं। उत्सव की तरह देखना बात ही और है। अगर आपको चुनाव करना पड़े कि हनुमान के साथ चौबीस घण्टे रहना कि मीरा के साथ, तो सोचना पड़ेगा। तब आपको पता चलेगा कि हनुमान से अगर छुट्टी ही रहे तो ठीक। इनका करियेगा क्या? इनके साथ चौबीस घण्टे गुजारना एक कमरे में मुश्किल हो जायेगा। मीरा के साथ चौबीस जिन्दगी भी गुजारी जा सकती है। यह भी सच है कि कृष्ण का भक्त, कृष्ण को प्रेम करने वाला, वह जो 'आउटर एकटीविटी' है, वह जो बहिर्मुखता है वह सब दिल में रखता जाता है, और किसी भीतरी गहरे रस में ढूबता जाता है। वह ढूबेगा, क्योंकि उसे दिखायी पड़ता है कि तुम बड़ा कुछ खो रहे हो 'ना कुछ' के लिए। ध्यान रहे जिस दिन दुनिया में मीराए बढ़ जाय उस दिन दुनिया में बड़ी शाति होगी। हनुमान बढ़ जाय तो बड़ा उपद्रव होगा। गाव-गाव अखाड़े जम जायेगे और जगह जगह उपद्रव होने शुरू हो जायेगे। वैसे एकाध हनुमान चल सकते हैं एकाध गाव में, ज्यादा नहीं। किन्तु मीरा का तारतम्य, मीरा का सम्बन्ध जीवन के बहुत गहरे तलों से है। हनुमान बिचारे काम करने वाले सेवक हैं, एक 'वालटियर' है। 'वालटियर' को जैसा होना चाहिए वैसे वे हैं। वह किसी के लिए जी रहे हैं। काम में लगे हैं, धून के पक्के हैं, सेवक हैं, वह सब ठीक है। लेकिन मीरा के आनन्द की धून, 'बीइंग' की धून है, 'डूइंग' की नहीं। वह कुछ करने का मजा नहीं है, होने के क्षण का मजा है। होना ही आनन्द है। गीत वह भा रही है तो गीत गाना काम नहीं है, उसके होने के आनन्द से निकली ई अभिष्यक्ति है। वह इतने आनन्द में है कि उससे गीत ही निकल सकता है।

मैं तो चाहूँगा कि जगत धीरे धीरे सगीत से भरे, गीत से भरे, नृत्य से भरे, उत्सव से भरे। जिसको हम बाहर का जगत कहते हैं, काम की जो दुनिया है, इस काम की दुनिया का इतना ही उपयोग है कि हम इसमें इतनी दूर तक हो, जितनी दूर तक भीतर जाने के लिए जरूरी हो। इससे ज्यादा होने की जरूरत नहीं है। रोटी कमानी पड़ेगी, लेकिन रोटी कमानी ही जिन्दगी नहीं है। रोटी कमानी ही इसलिए पड़ती है कि कमा लिया और फिर जिये। लेकिन, कुछ लोग रोटी पर रोटी का ढेर लगाते चले जाते हैं। वह खाना भूल ही जाते हैं। जब तक रोटिया इकट्ठी हो पाती है, तब तक भूख भी मर चुकी होती है। क्योंकि, इतने दिन खाया नहीं। तब वह अचानक सड़े रह जाते हैं कि क्या करे !

सिकन्दर हिन्दुस्तान आ रहा था तो वह डायोजनीज से मिला। डायोजनीज ने उससे पूछा था कि तुम कहा जा रहे हो ? क्या कर रहे हो ? सिकन्दर ने कहा कि पहले मुझे एशिया माइनर जीतना है। डायोजनीज ने कहा, समझा। फिर क्या इरादा है ? उसने कहा, हिन्दुस्तान जीतेगे। फिर ? उसने कहा, सारी दुनिया जीतना है। डायोजनीज ने पूछा, फिर ? वह रेत पर भस्त लेटा था। सिकन्दर ने कहा, फिर तो विश्राम का इरादा है। डायोजनीज खूब खिलखिलाकर हसने लगा और पीछे माद मे उसका कुत्ता, जो उसका साथी था, उसने उसे आवाज दी कि सुन, इधर आ। पागल सिकन्दर को देख। हम अभी आराम कर रहे हैं, यह इतना उपद्रव करने जा रहा है। सिकन्दर से डायोजनीज ने कहा, अगर आखिर मे आराम ही करना है तो आओ, अभी ही लेट जाओ नदी के तट पर। जगह यहा काफी है। हम दोनों समा जायेंगे और मैं आराम कर ही रहा हूँ, सिकन्दर, इतना सब करके आराम ही करने का इरादा है न, तो आराम अभी किया जा सकता है। सिकन्दर ने कहा, बात तो तुम्हारी जचती है, लेकिन अभी नहीं कर सकता हूँ। ५हले सब जीत लूँ। तो डायोजनीज ने कहा कि जीत का और विश्राम का क्या सम्बन्ध है ? क्योंकि, हम बिना जीते विश्राम कर रहे हैं। सिकन्दर ने कहा, बात तो जचती है तुम्हारी, लेकिन अब तो मैं निकल चुका हूँ याक्का पर। आधा नहीं लौट सकता हूँ। डायोजनीज ने कहा, आधे ही लौटोगे, किसकी याक्का कब पूरी होती है ? यही हुआ, हिन्दुस्तान से लौटकर सिकन्दर वापस यूनान नहीं पहुँच पाया, बीच मे ही मर गया।

सब सिकन्दर मर जाते हैं। आधी याक्का पर मर जाते हैं। रोटिया इकट्ठी हो जाती है, खाने का बक्त नहीं आता। साज-सामान इकट्ठा हो जाता है, बजाने का बक्त नहीं आता। साज ठोक-पीटकर ठीक कर लिया जाता है लेकिन जब तक

ठोक-भीट पूरी होती है तब तक हाथ शून्य हो चुके होते हैं, फिर कुछ करने को नहीं बचता। नहीं, जीवन को तो लेना पड़ेगा उत्सव से ही, वही जीवन की धून है। आपसे कोई पूछे गहरे मे, आप ही अपने से पूछे कि आप जो कर रहे हैं वह जीने के लिए कर रहे हैं कि करने के लिए जी रहे हैं, तो आपको उत्तर साफ हो मिलेगा और तब आपको कृष्ण बहुत निकट मालूम पड़ेगे। आप जीने के लिए कर रहे हैं। बहुत कुछ, करने के लिए नहीं जी रहे हैं। और अगर जीने के लिए कर रहे हैं सब कुछ तो फिर ठीक है, उतना ही करना काफी है जितने से जिया जा सके। ज्यादा क्यों करना, उसका कोई अर्थ नहीं है। स्वभावत अगर यह वृत्ति फैल जाय तो बहुत से उपद्रव बन्द हो जायेगे, क्योंकि बहुत से उपद्रव हमारे अत्यधिक करने से पैदा हो रहे हैं। अन्यथा दुनिया ज्यादा शान्त, ज्यादा आनन्द मग्न, ज्यादा प्रफुल्लित, ज्यादा प्रमुदित होगी। निश्चित ही कुछ बाने चली जायेगी, चिन्नाएं चली जायेगी, तनाव चले जायेगे, पागलखाने चले जायेगे हजारों मानविक बीमारियां चली जायेगी, यह जरूर नुकसान होगा। मैं तो कृष्ण के उत्तमवादी चित्त के साथ राजी हूँ।

° ° °

इस देश में न राम को, न कृष्ण को, न बुद्ध को, न महावीर को न जैनों के चौबीस तीर्थंकरों किसी को भी दाढ़ी-मूँछ नहीं है, न उनकी प्रतिमाओं को, न उनके चित्रों में। क्या कारण होंगे इनके पीछे? ऐसा मैं नहीं मानता हूँ कि इन सबको दाढ़ी-मूँछ नहीं रही होगी। एकाघ को हो सकता है, न रही हा, सबको नहीं रही ऐसा मैं नहीं मान सकता। तथ्यगत वह नहीं है। लेकिन, फिर भी हमने नहीं दी। कई कारण हैं। पहला कारण या कि दाढ़ी-मूँछ आने के पहले व्यक्ति की जो वय है वह सबसे ज्यादा फेश और नाजी है। वह ताजगी का, 'फेशनेस' का आखिर क्षण है, उसके बाद चीजे उत्तरनी शुरू हो जाती हैं। हमने इन लोगों को ताजगी का अनन्त मागर अनुभव किया है। इन्हे हमने कभी उत्तरसे देखना नहीं चाहा है। जिन्दगी में, इन्हे हमने सदा ताजा देखना चाहा है। ऐसा नहीं कि ये बूढ़े नहीं हुए। ऐसा नहीं कि इनका शरीर नहीं ढला। ऐसा नहीं कि इनके जीवन में वार्धक्य के क्षण नहीं आये। वह सब आये, लेकिन इनकी चेतना को हमने सदा किशोर देखा है — 'इटर्नलयग'! वे उतने ही ताजे हैं, उनकी ताजगी में, उनकी चेतना की ताजगी में कोई कभी फर्क नहीं पड़ा। और ये सारी मूर्तियां, ये सारे चित्र व्यक्तियों के चित्र नहीं हैं। न व्यक्तियों की मूर्तिया है। उन व्यक्तियों के भीतर हमने जो ज्ञाका है, उसके चित्र हैं। एक युवापन, जो सदा उनके साथ है। कृष्ण को बूढ़ा हम सोच भी नहीं सकते। ऐसा नहीं कि वे बूढ़े नहीं हुए। बूढ़े हुए; लेकिन हम

सोच ही नहीं सकते कि यह बृद्धा कैसे होगा ? और कभी ऐसे बच्चे देखने को मिल जाते हैं, जिनको हम सोच ही नहीं सकते कि ये बच्चे कैसे हैं, वे हमेशा बूढ़े होते हैं ।

अभी एक गाव में मैं गया। वहाँ एक लड़की ने मुझसे कहा, जिसकी उम्र कोई तेरह—चौदह साल की रही होगी, कि मुझे तो मुक्ति चाहिए। अब यह लड़की बूढ़ी हो गयी। मैंने पूछा उससे कि तू बृद्धी हो गयी ? मुक्ति की बात सोचती है, अभी जी भी नहीं, अभी बन्धन में पड़ी भी नहीं, अभी खुलने की बात ? लेकिन उसने कहा, मेरा घर तो बड़ा धार्मिक घर है। वह जब अपने घर ले गयी तो धार्मिक घर जैसा होता है—उदास, मरा हुआ वैसा ही था। सब राह देख रहे हैं मुक्ति होने की। वह जीने की फुर्सत किसको ? बाप भी मरा हुआ, मा भी मरी हुई, सारा घर उपवास की छाया में दबा हुआ। स्वभावत यह लड़की बूढ़ी हो गयी। अगर इस लड़की का चित्र बनाना पड़े तो उसको चौदह माल की उम्र देना अप्रामाणिक होगा। इस लड़की का चित्र बनाना पड़े तो केमरा जो चित्र उसका लेगा, उसमें चौदह माल आयेगे, लेकिन अगर कोई चित्रकार इसका चित्र बनाये तो अस्सी साल की उम्र बनानी चाहिए। इसके चित्र बी वह उम्र होगी। बुद्ध, महाबीर, कृष्ण, राम सदा 'गग' हैं। हम पञ्चीस साल का बनाते उनका चेहरा तब उनकी दाढ़ी-मूँछ होती। लेकिन, तेरह—चौदह माल वाला चेहरा जहा कि दाढ़ी-मूँछ नहीं है, वह हमने क्यों बनाया ? उसके पीछे कारण है।

जो चीज शुरू हो गयी फिर उसका अन्त आता है। अगर दाढ़ी-मूँछ शुरू हो गयी तो फिर बुढ़ापा आयेगा ही। इसलिए, पञ्चीस साल का बनाना उचित नहीं था। उस जगह को जहा से वह शुरू ही नहीं हुई, 'लास्ट प्वाइट' समझ लिया। उसके बाद हमने उनका चित्रण नहीं किया। यह हुआ एक कारण।

दूसरा कारण पुरुष के मन में सौदर्य का जो स्थान है वह स्त्रैण है। पुरुष के मन में सौदर्य की जो प्रतिमा है वह स्त्री की है। पुरुष के मन में सौदर्य की प्रतिमा पुरुष की नहीं है। ये सारे कवि, ये सारे चित्रकार और ये सारे शास्त्रकार पुरुष हैं। अगर कृष्ण को सुन्दर बनाना है, और सुन्दर बनाना ही है, क्योंकि कृष्ण से ज्यादा सुन्दर क्या हो सकता है, तो जो चेहरे की आकृति होगी, वह स्त्रैण होगी। इसलिए बुद्ध की, कृष्ण की, सबके चेहरे की शक्ति स्त्रैण है। चेहरे पर जो बिम्ब है, वह स्त्री का है। पुरुष का नहीं है। इसलिए सारी दुनिया में ज्यो-ज्यो हमारी समझ बढ़ती चली गयी, पुरुष ने अपनी दाढ़ी-मूँछ काटकर अलग कर दी। कारण वही है। पहले उसने राम-बुद्ध की साफ की, बाद में अपनी साफ कर दी। उसके

मन में स्थाल है कि चेहरा स्त्री का सुन्दर है। तो स्त्री के चेहरे जैसा कैसे उसका चेहरा हो जाय, इसकी चेष्टा में सतत लगा रहा। हालांकि यह बात स्त्री की तरफ से सच नहीं है। स्त्री के मन में जो सौदर्य का अर्थ है वह सदा पुरुष जैसा है। स्त्री के मन में दूसरी स्त्री बहुत सुन्दर नहीं मालूम हो सकती। अगर स्त्रिया राम, कृष्ण और बुद्ध की मूर्तियाँ और चित्र बनाये तो दाढ़ी-मूँछ अनिवार्य होती है। क्योंकि, स्त्रियों को वह जचता ही नहीं। वह स्त्रैण मालूम होते हैं। मैं आज भी मानने की नहीं राजी हूँ कि दाढ़ी-मूँछ अलग करने के बाद स्त्री को कोई चेहरा बहुत प्रीतिकर लगेगा। नहीं लग सकता। क्योंकि जिस चेहरे से दाढ़ी-मूँछ विदा हो गयी, उस चेहरे से पुरुष का सौदर्य विदा हो जाता है। आप जरा उल्टा सोचें कि स्त्रियाँ दाढ़ी-मूँछ लगा ले, तब आपको कितनी प्रीतिकर लगेगी! आप भी दाढ़ी-मूँछ काटकर वैसे ही लगते होंगे उन्हे। स्त्रिया चाहे कहे, चाहे न कहे, क्योंकि स्त्रियों को कहने की स्वतंत्रता भी नहीं रह गयी। उनके सोचने के ढंग भी पुरुष ने तय कर दिये, इसलिए वह कभी 'अमर्ट' भी नहीं कर सकती। लेकिन, आप ध्यान रखें कि जब भी किसी देश में पुरुष सौन्दर्य प्रकट होता है तो दाढ़ी-मूँछ लौट आती है।

आजकल स्त्रिया पुरुष जैसी दौड़े की बड़ी कोशिश में लगी है। सारी दुनिया में चल रही है दौड़। स्त्रियाँ पुरुष जैसे कपड़े पहनना चाहेगी, क्योंकि उनके मन में सौदर्य का अर्थ पुरुष है। पुरुष जैसी घडिया बाधना चाहेगी, क्योंकि उनके मन में सौदर्य का अर्थ पुरुष है। पुरुष जैसे काम करना चाहेगी, क्योंकि उनके मन में सौदर्य का अर्थ पुरुष है। अगर स्त्रियों का समाज किमी दिन जीत गया, जिसका कि डर रोज पैदा होता जा रहा है (क्योंकि पुरुष काफी दिन मालकियत कर चुका है, अब पलड़ा बदलेगा) तो आश्चर्य न होगा कि स्त्रियाँ दाढ़ी-मूँछ लगाने की कोशिश करे।

जिन चित्रकारण ने, जिन मूर्तिकारों ने कृष्ण, राम और बुद्ध की मूर्तियाँ अकित की हैं वे पुरुष हैं और स्त्रैण सौदर्य उनके मन में है इसलिए ऐसा किया है। ये चित्र और प्रतिमाएँ 'आधेटिक' नहीं हैं, प्रामाणिक नहीं हैं। अगर आप जैनों के चौबीस तीर्थकरों की प्रतिमाएँ देखें तो आपको पता चल जायेगा कि वह बिल्कुल एक जैसी हैं। अगर उनके नीचे बने हुए चिन्ह अलग कर दिये जाय तो उनमें कोई फर्क नहीं है। अगर बुद्ध और महावीर की प्रतिमा पर से सिर्फ कपड़े का भेद अलग कर दिया जाय तो वह बिल्कुल एक जैसी हैं, उनमें कोई फर्क नहीं है। क्या ये सब शकले एक जैसी रही होगी? नहीं, ये शकले एक जैसी नहीं हो सकती।

लेकिन, बनाने वाले चित्रकार के पास एक जैसे प्रतीक हैं। बुद्ध को बनाने वाला चित्रकार भी बुद्ध की मूर्ति को सुन्दरतम बनाने की कोशिश कर रहा है। महाबीर का चित्रकार भी महाबीर की मूर्ति को सुन्दरतम बनाने की कोशिश कर रहा है, और तब उस सुन्दरतम बनाने की कोशिश में वे शक्ले एक जैसी हो जाने वाली हैं। वह करीब-करीब एक जैसी हो गयी हैं।

प्रश्न 'कर्म उतना ही करना काफी है जितने से जिया जा सके, ज्यादा क्यों करना'-अगर यह वृत्ति रह जाय और कर्म करने वाले न हों तो मीरा के हाथ में तम्बूरा भी नहीं आय और हम जो टेप कर रहे हैं आचार्यथी का प्रवचन, वह टेपरेकार्डर और लाउडस्पीकर भी नहीं हो। वह भी कर्म की इजाब है, वही प्रश्न रह जाता है। कृपया इसे समझायें? और जीवन को उत्सव मानने वालों से गरीबी कैसे दूर होगी?

उत्तर हा, यह भी सोचने जैसा है। मीरा के हाथ में जो तम्बूरा आया वह कर्म करने वाले लोगों की बजह से आया कि उत्सव मनाने वाले लोगों की बजह से आया। तम्बूरा कर्म करने वाले पैदा नहीं करते। वे कुदाली बनाते हैं, कुल्हाड़ी बनाते हैं, तलवार बनाते हैं। तम्बूरा बनाने से कर्म करने वाले का क्या लेना देना है। तम्बूरा तो बनाते ही वे लोग हैं जो जिन्दगी को खेल की तरह ले रहे हैं। जिन्दगी में जो भी श्रेष्ठ आया है, चाहे तम्बूरा हो, चाहे ताजमहल हो वह उन लोगों के मन से आता है, उन लोगों के सपनों से आता है जो जिन्दगी को एक उत्सव बना रहे हैं। स्वभावत ये उत्सव मनाने वाले लोग भी उन लोगों का उपयोग करेगे जो जिन्दगी को काम समझे हुए हैं। मैं मानता हूँ कि आप ताजमहल को देखकर जितने आनंदित होते हैं उतने ताजमहल की ईंट रखने वाले मजदूर आनंदित नहीं हुए थे। वे काम कर रहे थे। उनके लिए वह काम था। लेकिन, क्या बजह है? क्या ईंट उत्सव की तरह नहीं रखी जा सकती? मैं एक कहानी निरन्तर कहता हूँ—

एक मन्दिर बन रहा है और एक आदमी वहां से गुजरा है। उसने पत्थर तोड़ते एक मजदूर से पूछा कि तुम क्या कर रहे हो? उस आदमी ने उसकी तरफ देखा भी नहीं और क्रोध से कहा, अघे तो नहीं हो? देखते नहीं कि पत्थर तोड़ रहा हूँ। उसने दूसरे से पूछा कि मेरे मित्र, क्या कर रहे हो? उस आदमी ने उदासी से अपनी छेनी हथीड़ी नीचे रख दी। उस आदमी की तरफ देखा और कहा कि दिलासी तो यहीं पढ़ रहा है कि पत्थर तोड़ रहा हूँ, ऐसे रोटी कमा रहा हूँ—बच्चों

के लिए, पत्नी के लिए। उसने फिर पत्थर तोड़ना शुरू कर दिया। वह आदमी तीसरे आदमी के पास पहुंचा जो मंदिर की सीढ़ियों के पास पत्थर तोड़ रहा था और गीत भी गा रहा था। उसने उससे पूछा कि क्या कर रहे हो? उसने कहा, क्या कर रहा हूँ? भगवान का मंदिर बना रहा हूँ। उसने फिर पत्थर तोड़ना शुरू कर दिया और गीत गाना शुरू कर दिया। ये तीनों आदमी एक ही काम कर रहे हैं। तीनों पत्थर तोड़ रहे हैं। लेकिन इन तीनों का सोचने का ढग पत्थर तोड़ने के बाबत भिन्न है। वह जो तीसरा आदमी है, उसने पत्थर तोड़ने को उत्सव बना दिया है।

मैं नहीं कहता हूँ कि लोग गरीबी न मिटाये, मैं नहीं कहता हूँ कि लोग यत्र न बनाये, मैं नहीं कहता हूँ कि लोग समृद्धि पैदा न करे, लेकिन इन सबको भी उत्सव की तरह किया जाय, काम के बोझ की तरह नहीं। गरीबी अगर काम की तरह मिटायी गयी तो हो सकता है कि गरीबी मिट जाय, लेकिन गरीब आदमी दुनिया से नहीं मिटेगा। लेकिन, अगर गरीबी उत्सव की तरह मिटायी गयी तो हो सकता है कि गरीबी उत्तरी जल्दी शायद न भी मिटे, लेकिन गरीब आदमी मिटा सकता है। हम जो कर रहे हैं उसके प्रति हमारा 'एटीट्यूड' क्या है, वह सवाल है। और जब इस भाव का परिवर्तन होता है तो हमारी मारी गतिविधि बदल जाती है। एक माली भी सुबह आकर इस बगीचे में काम करता है, लेकिन इसे उत्सव की तरह नहीं ले पाता। कौन उसे रोक रहा है? माना कि वह रोटी कमा रहा है। रोटी बराबर कमा रहा है, लेकिन खिलते हुए फूलों को उत्सव की तरह नहीं ले पाता। यह कौन रोक रहा है? और उत्सव की तरह न लेकर वह कौन-सा ज्यादा कमा ले रहा है? रोटी कमा ही नहा है, वह गौण है, लेकिन उसके चित्त में प्रमुख अगर यह फूलों का आनन्द और इनके खिलने की खुणी हो जाय तो वह माली मिर्फ नौकर नहीं रह जायेगा, वह बहुत गहरे अर्थों में इन फूलों का मालिक भी हो जायेगा, बिना मालिक बने। और, जब यह फूल खिलेंगे तब उसे भी एक आनन्द मिलेगा जो कोरे काम में कभी नहीं मिल सकता है। गरीबी भी मिटानी है, दुख भी मिटाना है, लेकिन वह काम की भाति नहीं, जीवन के उत्सव में मब सम्मिलित हो सके इसलिए।

जब मैं कहता हूँ कि गरीबी मिटानी है तो मेरा मतलब बहुत ज्यादा यह नहीं होता कि गरीब बहुत तकलीफ में है इसलिए मिटानी है। मैं जब गरीब की गरीबी मिटाना चाहता हूँ तो मेरे लिए मतलब इतना ही नहीं है कि उसका पेट खाली है, वह भर दिया जाय किसी तरह। मेरे मन में स्थाल यह है कि उसकी आत्मा को भरना मुश्किल पड़ेगा, जब तक पेट नहीं भर जाता। उसकी आत्मा

उत्सव से भरेगी, पेट काम से भरेगा । और आत्मा की तरफ अगर ध्यान हो तो हम जीवन के सब कामों की उत्सव बना ले सकते हैं । उस खेत में हम गड्ढा भी खोद सकते हैं और गीत भी गा सकते हैं । सदा से ऐसा था ही । लेकिन, आज फेकट्री उतनी आनन्दपूर्ण नहीं रह गयी । कल मैं आपसे कहता हूँ कि फेकट्री में गीत वापस लौटेगा । किसान अपने खेत पर काम कर रहा था । वह काम तो था ही, लेकिन वह गीत भी गा रहा था । उसके गीत की बजह से काम में बाधा नहीं पड़ती थी, काम में सिर्फ गति आती थी । लेकिन, फेकट्री में तो गीत गाने की सुविधा नहीं है । वहाँ सिर्फ काम रह गया है सात घण्टे । आदमी यका हुआ लौट आता है । टूटा हुआ लौट आता है । अगर अकेला काम ही रहेगा तो बहुत खतरा है । इसके काम को आनन्द में रूपातरित करना होगा । दिन दूर नहीं है, जब कि फेकट्री में भी गीत गाया जा सके और उत्सव के क्षण खोजे जा सकें । खोजने ही पड़ेगे, अन्यथा आदमी उदास और रिक्त होता चला जायेगा । एक स्त्री घर में खाना बना रही है । वह खाना ऐसे भी बना सकती है जैसा होटल में रसोइया बनाता है । तब काम हो जाएगा । वह खाना ऐसे भी बना सकती है जब कोई अपने प्रेमी की प्रतीक्षा करता हो और खाना बनाता हो । तब काम उत्सव हो जायेगा । उत्सव थकायेगा नहीं, और भरा-पूरा छोड़ जायेगा । काम तोड़ जायेगा, खाली तथा रिक्त कर जायेगा । और दोनों हालत में काम होता है । इमलिए मैंने ऐसा कहा ।

प्रश्न आपने कहा कि कृष्ण चित्त की भूमिका से ऊपर उठ गये हैं और यह भी कहा कि चित्त की सहज प्रेरणाओं से प्रेरित होकर उन्होंने गोपियों के बस्त्रों का अपहरण किया । जो व्यक्ति चित्त के ऊपर ही उठ गया, क्या वह भी चित्त की सहज प्रेरणाओं से प्रेरित होगा ? और अगर होगा तो पश्च भी इस प्रकार उसके समान हो गया ?

उत्तर मैंने कहा, कृष्ण चित्त के पार हो गये थे । इसका मतलब यह नहीं कि कृष्ण का चित्त नहीं रह गया था । चित्त के पार होने का मतलब इतना ही है कि चित्त के पार जो है, कृष्ण उसे भी जान गये, पहचान गये । चित्त तो था ही । समाहित था । कृष्ण का व्यक्तित्व चित्त से बड़ा व्यक्तित्व हो गया था । उसमें इस की भी जगह थी । चित्त के पार के दो अर्थ हो सकते हैं । चित्त की दुष्मनी में पार हो गये हो तो चित्त कटकर अलग टूट जाता है । लेकिन, अगर चित्त की मैत्री में पार हुए हैं तो चित्त सम्मिलित होता है, समाहित होता है । इस बड़ी घटना में, जो चित्त के पार घट रही है, चित्त भी अपना हिस्सा रखता है, वह भी अपनी जगह

होता है। जब मैं कहता हूँ कि मैं शरीर के पार हो गया, तो इसका मतलब यह नहीं कि शरीर नहीं रह गया। इसका केवल इतना ही मतलब है कि मैं सिर्फ़ शरीर नहीं रह गया। शरीर तो हूँ ही। और भी कुछ हूँ, 'समर्थिंग ऐडेंड', 'समर्थिंग प्लस'। कुछ और भी जुड़ गया। वह जो और कुछ है, उसने शरीर के होने को मिटा नहीं डाला, और 'रिच' और समृद्ध कर दिया। आत्मा भी हूँ, और जब कोई व्यक्ति जानता है परमात्मा को भी, तो ऐसा नहीं है कि आत्मा मिट जाती है। तब वह जानता है कि परमात्मा भी है तथा आत्मा, शरीर और चित्त उस बड़े चिराट में समाहित होते चले जाते हैं। कुछ खोता नहीं, जुड़ता जाता है। कृष्ण को जब मैं कहता हूँ, चित्त के पार हो गये थे तो मेरा मतलब यह है कि उन्होंने उसे भी जान लिया था जो चित्त के पार फैला है। वह चित्त के शब्द नहीं है। उससे लड़कर पार नहीं हो गये, उसको जीकर पार हो गये। इसलिए, जब मैं कहता हूँ कि उनके सहज चित्त से जो उठा था वह हुआ था, तो मेरा मतलब यही है कि अब उनके भीतर सब सहज ही हो सकता है।

चित्त में असहज तभी तक होता है जब तक चित्त के भीतर हमारी लडाई होती है। एक हिस्सा कहता है करो, एक कहता है मत करो, तब लडाई होती है। तब चीजे असहज हो जाती हैं। जब पूरा चित्त इकट्ठा होता है तो जो होना होता है वह हो जाता है, जो नहीं होना होता है वह नहीं होता है। तब सब सहज होता है। लेकिन, यह बात बहुत अच्छी पूछी कि फिर पशुओं में और उनमें फ़र्क क्या रह जायेगा?

एक हिसाब से बिल्कुल नहीं, एक हिसाब से बहुत ज्यादा। इस हिसाब से बिल्कुल नहीं कि पशु भी सहज है। लेकिन बिना जानते हुए, बेहोशी में है। कृष्ण भी सहज है, लेकिन जानते हुए, होश में। सहजता समान है, बोध भिन्न है। पशु भी सहज है, जो हो रहा है हो रहा है। लेकिन, इसका पशुओं को कोई बोध नहीं है। यवत् हो रहा है। कृष्ण को जो हो रहा है, इसका साक्षी भी पीछे खड़ा है जो देखता है कि ऐसा हो रहा है। पशु के पास साक्षी नहीं है। कृष्ण चित्त के पार चले गये हैं, पशु अभी चित्त के पहले हैं। कृष्ण चित्त के 'बियोण्ड' और पशु चित्त के 'बिलो'। अभी पशु के पास चित्त भी नहीं है। अभी पशु के पास शरीर ही है।

फ़कीरों में एक पुरानी कहावत है कि जब कोई परम ज्ञान को उपलब्ध होता है तब परम अज्ञानी जैसा हो जाता है। इसमें थोड़ी सचाई है। परम अज्ञानी में, जैसा हम जडभरत को जानते हैं, जिसे जडभरत नाम दिया है, वह परम ज्ञानी

है, लेकिन वह हो गया है जड़ जैसा। एक अर्थ में जो पूर्ण ज्ञान है वह पूर्ण अज्ञान जैसा मालूम पड़ेगा, कम से कम पूर्णता तो समान है। वह दोनों में है। ज्ञान में भी कोई बेचैनी नहीं रह गयी, क्योंकि सब जान लिया गया। अज्ञान में कोई बेचैनी नहीं है, क्योंकि अभी कुछ जाना ही नहीं गया। इसलिए, हम कहते हैं कि जब सत अपने पूरे व्यक्तित्व को उपलब्ध होता है तो बच्चों जैसा हो जाता है। जीसस से कोई पूछता है कि आपके प्रभु के राज्य में क्या होगा? जो आदमी प्रभु को उपलब्ध हो जायेगा, वह कैमा होगा? जीसस कहने हैं, वह व्यक्ति जो प्रभु को उपलब्ध हो जायेगा, बच्चों जैसा होगा। वह कहते हैं बच्चों जैसा, बच्चा नहीं। 'जस्ट लाइक चिल्ड्रेन'। अगर वह कहे की बच्चा हो जायेगा तो फिर बच्चे तो बच्चे हैं ही, फिर इतने उपद्रव की क्या जरूरत है। नहीं, बच्चा अभी नीचे है, 'बिलो' है। वह 'बिओण्ड' होगा। बच्चे को अभी तनाव में जाना पड़ेगा, वह तनाव में जाकर निकल चुका है। बच्चा अभी 'पोटेशियली' सब बीमारिया लिए हुए है, वह सारी बीमारियों के पार हो गया है। अभी पशु को उन सारी बीमारियों से गुजरना पड़ेगा जो आदमी की है और कृष्ण उन सारी बीमारियों के पार गुजर गये हैं। इतना फर्क है और इतनी समानता भी है।

प्रश्न आचार्यजी, आपने स्वधर्म और निजता की बच्चा की। पहले श्लोक का जो भाग है वह यह कहता है कि स्वधर्म विगुण भी श्वेष्ठ है। स्वधर्म अगर निजता है तो वह विगुण कैसे रह सकता है, गुणरहित कैसे हो सकता है? क्या कोई निजता गुणरहित भी होती है।

उत्तर हा, इसे आखिरी सवाल समझे, पूछते हैं कि स्वधर्म विगुण होगा, गुणरहित होगा। ऐसा कैसे हो सकता है? निजता विगुण कैसे होती है?

इसमें दो बातें ख्याल में लेने जैसी हैं, एक तो चीजे अपने मूल में सदा ही निर्गुण, विगुण होती है। सिर्फ अभिव्यक्ति में गुण उपलब्ध होता है। जैसे एक बीज है, अभी वह विगुण है। अभी इसमें कोई गुण नहीं है, सिर्फ बीज होने का गुण है। सिर्फ 'पोटेशियलिटी' है। इसमें लाल फूल खिलेंगे, अभी खिले नहीं हैं। कठ यह फूल बन जायेगा। फूल गुणवान हो जायेगा। उसकी सुगन्ध होगी खास, उसका रंग होगा खास, उसका व्यक्तित्व होगा खास। लेकिन बीज में चीजें गुणशून्य हैं। अभिव्यक्ति में प्रकट होकर गुण को उपलब्ध होती। जगत् गुण है, परमात्मा निर्गुण है। परमात्मा बीज रूप है। जब प्रकट होता है तो गुण दिखायी पड़ते हैं, जब अप्रकट हो जाता है तो गुण सो जाते हैं। एक आदमी अच्छा है, एक आदमी बुरा है। एक आदमी चोर है, एक आदमी साधु है। दोनों

विगुण हो गये। सुषुप्ति में कोई गुण नहीं रह जाता—साधु साधु नहीं रह जाता—चौर चौर नहीं रह जाता। सुषुप्ति में वे निजता के बहुत करीब होते हैं, एकदम करीब होते हैं। हा, जागेंगे तो चौर चौर हो जायेगा। साधु साधु हो जायेगा। जागते ही गुण आयेगे। सोते ही गुण सो जायेगे। समाधि में तो हम निजता में ही पहुच जाते हैं। ठीक निजता का जो अनुभव है, स्वभाव का जो अनुभव है वह निर्गुण होगा। लेकिन, स्वभाव की भी जो अभिव्यक्ति है, 'मैनीफेस्टेशन' वह सगुण होगी। सगुण और निर्गुण दो चीजे नहीं हैं। सगुण और निर्गुण विरोधी चीजे नहीं हैं। सगुण, निर्गुण की अभिव्यक्ति का नाम है। और निर्गुण, सगुण की अप्रकट अवस्था का नाम है। तो, दो स्वभाव की स्थितियां होगी। एक तो वह निजता, जो अप्रकट है, बीज रूप है, गर्भ में है, अभी सोयी है, अपने में डूबी है, लीन है। और एक वह निजता जो प्रकट होती है निजता तो आकार ले लेती है, गुण ले लेती है। असल में कोई अभिव्यक्ति निराकार नहीं हो सकती और कोई अभिव्यक्ति निर्गुण नहीं हो सकती। जैसे ही कोई चीज प्रकट होगी उसका रूप-रग-आकार होगा। प्रकट होने का मतलब ही यह है कि उसे रूप-रग में होना पड़ेगा।

एक छोटी-सी कहानी मुझे याद आती है। एक जैन साधु अपने शिष्यों को चित्र बनाना सकता है। वह चित्रों से ध्यान के मार्ग पर ले जाता है। उसके दस शिष्य सुबह इकट्ठे हूँगे हैं। उसने कहा कि एक चित्र की मैं तुम्हें रूपरक्खा देता हूँ। वह रूप रेखा यह है कि एक गाय घाम में भरे मैदान में घास चर रही है। तुम यह चित्र बना लाओ। लेकिन, ध्यान रहे, चित्र निर्गुण हो। दसा शिष्य बड़ी मुश्किल में पड़ गये। पकीर का काम ही यही है कि किसी को मुश्किल में डाले। वे विचार में पड़ गये कि निर्गुण कैसे होगा यह चित्र? रग का तो उपयोग करना पड़ेगा। कम-से-कम गाय को आकार तो देना पड़ेगा, घास भी तो बनानी पड़ेगी। नी चित्रकार बना कर लाये। उन्होंने ऐसा बनाया कि बहुत साफ साफ न दिखायी पड़े, लेकिन फिर भी गाय तो थी ही। घास भी बनायी। 'एब्सट्रैक्ट आर्ट' का उपयोग भी किया होगा कि चीजे साफ-सुथरी न हो। फिर भी रग का उपयोग करना पड़ा। उम गुरु ने नौ के ही चित्र फेंक दिये और कहा कि निर्गुण में रग कैसा? गाय कैसी? दसवा आवभी खाली, कोरा कागज लेकर आ गया। उसने कहा, यह रहा। उन बाकी नौ चित्रकारों ने पूछा कि गाय कहा है? उसने कहा कि गाय घास चर के जा चुकी। उन्होंने कहा, घास कहा है? उसने कहा, गाय ने चर लिया। चीजे लौट गयी। यह निर्गुण चित्र है। गाय घास चर रही है, लेकिन चर चुकी। घास समग्र हो गयी। कोरा कागज रह गया।

निजता की जो बहुत गहराई है वहा तो सब निराकार है, निर्गुण है। विगुण, गुणरहित है। अभिव्यक्ति जब गाय धास चरती है तब प्रकट होती हैं; फिर धास भी आती है, फिर गाय भी आती है। फिर सब खेल होता है। फिर सब विदा हो जाता है।

जगत का इतना बड़ा विस्तार कभी विगुण में था। कभी यह सब शून्य से जन्मा, कभी यह फिर शून्य में समाहित हो जायेगा। सब जन्मता है, सब समाहित हो जाता है। जहा से जन्मता है वही लौट जाता है। और वह जो शून्य की अवस्था है उसमे पूर्ण छिपा है अपने पूर्ण गुणों को लेकर, लेकिन विगुण है। निर्गुण है, अभी उसमे गुण नहीं आया है। अभी आयेगा। इस अर्थ में निजता के दो रूप हुए। सभी चीजों के दो रूप हैं—‘मैनीफेस्टेड’, अनमैनीफेस्टेड’ प्रकट, अप्रकट। प्रकट में गुण दिखायी पड़ते हैं, अप्रकट निर्गुण रह जाता है।

इसलिए, कृष्ण को भी दो नरफ से देखना है—एक तो उनका जो दिखायी पड़ता है व्यक्तित्व, और एक वह जो नहीं दिखायी पड़ता। जो अश्रद्धालु हैं वह सिर्फ उसी को देख पायेगा जो दिखायी पड़ता है, और जिसके जीवन में श्रद्धा जन्मी है वह उसको भी देख पायेगा, जो नहीं दिखायी पड़ता है। तर्क, चिन्तन, मनन, विचार, ‘मैनीफेस्टेड’ के आगे नहीं जायेगा। प्रकट के आगे नहीं जायेगा। गुण के आगे नहीं जायेगा। ध्यान, प्रार्थना, श्रद्धा, ‘अनमैनीफेस्टेड’ में प्रवेश कर जायेगी। जो नहीं दिखायी पड़ता है, जो अदृश्य है उसमे प्रवेश कर जायेगी। लेकिन, जो अभी ‘मैनीफेस्टेड’ को नहीं पकड़ पाते वह ‘अनमैनीफेस्टेड’ को कैसे पकड़ पायेगे? इसलिए, तर्क का, विचार का काम है कि वहा तक पहुचा दे, उस सीमात तक जहा अभिव्यक्ति समाप्त होता है और अनभिव्यक्त शुरू होता है। फिर वहा छलाग लगानी पड़ेगी, फिर वहा अपनी ही बुद्धि से कूद जाना पड़ेगा, फिर ‘वियोन्ड वनसेल्फ’, फिर खुद को ही पार कर जाना होगा। लेकिन, उसका यह मतलब नहीं है, जो आयेगा फिर ज्ञान में, जो दिखायी पड़ेगा, वह कट जायेगा। नहीं, वह उसमे समाहित हो जायेगा। और जिस दिन ‘मैनीफेस्टेड’ और अनमैनीफेस्टेड’, प्रकट और अप्रकट दोनों इकट्ठे हो जाते हैं उस दिन ‘एब्रस्लूट’, जिसको हम पूर्ण सत्य कहे, उसका साक्षात्कार हो जाता है।



## पर्व : सात

कृष्ण की बाल्य कथाएँ और प्रतीक  
मुख में अहांक वर्णन और विष्व दृष्टि  
विनाशायच दुर्जुताम्

भारद्वाज भेकलुहान का सूत्र मुरली जीवात्मा परमात्मा का माध्यम  
प्रार्थना और प्रार्थनापूर्णता

कृष्ण का पांचजन्य और सुदर्शनचक्र  
बाल्मीकि द्वारा राम के पहिले ही रामकथा लिखना

शार्टन बूबर की परम्परा

स्मृति की स्थिति और उपयोग

प्रगट जगत में जो भी घटित होता है अकारण नहीं

क्या कृष्ण में कुछ भी दोष संभव नहीं





## ७

प्रश्न आचार्यजी, कृष्ण के बाल्यकाल की तथा अन्य इतनी कथाएँ हैं—जैसे चांदूर तथा मुण्डिक नाम के पहलवानों को पछाड़ना, कस वध, कालिया मर्दन, कीर्ति, अघ, बघ, घोटक, पूतना आदि असुरों का नाश, बाबानल को पी जाना, इत्यादि इत्यादि । तो, क्या ये सब कथाएँ सत्य हैं या प्रतीक हैं । और इनमें से कौन कौन सी लक्षणाएँ प्रतीक हैं । साथ ही गीता में कहा है कि ‘विनाशायत्र तुङ्गताम्’ से आप अर्थ लेते हैं कि तुष्टों का परिवर्तन करते हैं,

उनका सुधार करते हैं। लेकिन, कृष्ण ने उपरोक्त दुष्टों का वध क्यों किया और कराया?

उत्तर इस सम्बन्ध में एक बात तो सबसे पहले समझनी जरूरी है जो सदा से ही लोगों को उलझन में डालती रही है। एक छोटासा बच्चा है कृष्ण। इतने शक्ति-शाली लोगों को हरा कैसे मकेगा? लोगों के पास एक ही उपाय था, इस पहेली को हल करने का। वह उपाय यह था कि वह कृष्ण को भगवान् मान ले, परम शक्तिवान् मान ले। फिर, सारी पहेलियाँ हल हो जाती हैं। लेकिन इसका भी मतलब गहरे में यही हुआ कि छोटी शक्ति पर बड़ी शक्ति विजय पा जाती है। कोई राक्षस है, कोई शक्तिशाली पहलवान है। कृष्ण दिखायी पड़ते हैं छोटे, लेकिन वे महाशक्तिवान हैं। लेकिन, मेरा मानना है कि इस तरह की व्याख्या करनेवालों ने कृष्ण के व्यक्तित्व को समझा ही नहीं। इस तरह की व्याख्या मूलत गलत है, अनात्म है। क्योंकि, उसके आधार में बात वही है कि बड़ी शक्ति छोटी शक्ति से जीत जाती है। मैं कुछ और कहना चाहूँगा, उमेर समझना जरूरी होगा।

इस जगत में जो जीतना नहीं चाहता वह जीत जाता है और जो जीतना चाहता है वह हार जाता है। इन मारी कथाओं में मेरे लिए अर्थ ऐसा ही है। अमल में, जीतने की चाह में ही वहत गहरे में हार छिपी है। और जो जीतना नहीं चाहता वह इस भाव में जीता ही हुआ है। यह भाव छिपा है। इसे ऐसा समझे कि जो आदमी जीतना चाहता है वह गहरे में 'इनफिरीआरिटी कम्पलेक्स' से पीड़ित है, वह हीन भाव से पीड़ित है। वह जानता तो है कि हीन है, जीत कर सिद्ध करना चाहता है कि हीन नहीं है। जो आदमी जीतने के लिए आदुँ ही नहीं है वह अपनी श्रेष्ठता में प्रतिष्ठित है। उसे कहीं कोई हीनता ही नहीं है जिसे मिद्ध करने के लिए या जिसे असिद्ध करने के लिए जीत अनिवार्य हो। इसे अगर हम लाओत्से से समझेंगे तो बहुत आसानी होगी।

लाओत्से ने एक दिन अपने मित्रों को कहा कि मुझे जिन्दगी में कोई हरा नहीं सका। तो, एक व्यक्ति ने उससे खड़े होकर पूछा कि वह राज हमें भी बतलाइये, क्योंकि जीतना तो हम भी चाहते हैं, और हम भी चाहते हैं कि कोई हमें हरा न सके। लाओत्से हसने लगा। उसने कहा, फिर तुम न समझ सकोगे उम राज को। क्योंकि, तुमने पूरी बात भी न सुनी और बीच में ही पूछ बैठे। मैंन कहा था, मुझे जिन्दगी में कोई हरा न सका था, पूरा बाक्य तो कर लेने देते। लाओत्से ने बाक्य पूरा किया। उसने कहा, मुझे जिन्दगी में कोई हरा न सका, क्योंकि मैं पहले से ही हारा हुआ था। मुझे जीतना मुश्किल

था; क्योंकि वे जीतना ही नहीं चाहता था। उसने उन लोगों को कहा कि तुम अगर सोचते हो कि तुम मेरे राज को समझ जाओगे तो गलती में हो। तुम जीतने की आकृका करते हो, वही तुम्हारी हार बन जायेगी। सफलता की आकृका ही अन्त में असफलता बनती है और जीवन की अति आकृका ही अन्त में मृत्यु बन जाती है। स्वस्थ होने का पागलपन ही बीमारी में ले जाता है। जिन्दगी बहुत अद्भुत है। यहा हम जिस चीज को बहुत जोर से माँगते हैं उसी को खो देते हैं। जिस चीज को हम माँगते ही नहीं, वह मिल जाती है। असल में हम माँगते नहीं, इसका मतलब ही यही है कि वह मिली ही हुई है। कृष्ण बड़े शक्तिशाली है इसलिए जीत जाते हैं ऐसा मैं न कहूँगा। क्योंकि, यह तो फिर वही शक्ति का पुराना कानून हुआ कि छोटी मछली को बड़ी मछली खा जाती है। फिर इसमें कृष्ण की कोई विशेषता न होगी। यह तो फिर वही गणित हुआ शक्ति का। लेकिन, जिन लोगों ने भी आज तक कृष्ण की जीत की व्याख्या की है, वह इसी तरह सोच सके हैं, इससे भिन्न नहीं।

जीसस का एक वचन है, “ब्लेसेड आर द मीक, बिकॉंज दे शैल इनहेरिट द अर्थ”। धन्य है विनम्र, क्योंकि पृथ्वी का राज्य उन्हीं का होगा। बड़ी उत्ती बात है। धन्य है विनम्र, क्योंकि पृथ्वी के मालिक वे ही होंगे। कृष्ण जीतने को बिल्कुल आतुर ही नहीं है। बच्चे जीतने को आतुर होते ही नहीं, सिर्फ खेलने को आतुर होते हैं। जीत बड़ी बाद में आती है जब चित बड़े बीमार हो जाते हैं, रुग्न हो जाते हैं। कृष्ण तो खेल रहे हैं। वह बड़े राखसों से लड़ रहे हैं तब भी खेल में हैं। राक्षस जीतने के लिए आतुर है, और एक विनम्र बच्चे से, जिसे जीतने का कोई स्थाल ही नहीं, जो अभी खेल रहा है, जो एकदम मासूम और नाजुक है, उससे भी राक्षस हार जाते हैं। हार जायेगे।

जापान में एक कला है, जिस का नाम जूडो है। उसीका दूसरा नाम है जुजुत्सु। इस कला के मध्यन्द में दो तीन बाते स्थाल में ले ले ले तो बड़ा अच्छा होगा। जूडो कुश्ती की कला है। लेकिन, उसका राज बड़ा उल्टा है। जूडो की कला जो सीखता है लड़ने के लिए, उसके नियम हमारी लडाई के नियम से बिल्कुल उल्टे हैं। जगर मैं आपसे लड़नों मैं आप पर चोट करूँगा। आप चोट का बचाव करेगे। आप मुझ पर चोट करेगे, मैं चोट का बचाव करूँगा। यह साधारण लड़ने का नियम है। जूडो का नियम उल्टा है। जूडो का नियम यह कि मैं आप पर हमला कर्नी न करूँ, जिसने हमला किया, वह हार जायेगा। क्योंकि, हमले में अवित्त व्यव होती है। मैं हमले को उकसाऊँ, हमले को ब्रेकिंग

करूँ कि वह हमला करे। और मैं बिल्कुल 'एट ईज' रहूँ, मैं जरा भी हिलू डुलू नहीं। मैं कुछ करूँ ही नहीं। मैं सिर्फ दूसरे को उकसाऊं कि वह हमला करे। मैं उसे ओधित करूँ, मैं उसे भड़काऊ, मैं उसे जलाऊं और मैं शात रहूँ। जब वह हमला करे तो 'रेसिस्ट' न करूँ। जब वह मेरे ऊपर चोट करे, घूसा मारे तो मैं उसके विरोध में अपने शरीर को अकड़ाऊँ नहीं। शरीर को ऐसा ढीला और 'रिलेक्स' छोड़ दूँ कि उसका घूसा मेरा शरीर पी जाय।

कभी आपको स्थाल है कि एक शराबी के साथ बैठ जाये एक बैलगाड़ी में और बैलगाड़ी उलट जाय रास्ते में, तो आपको चोट लगेगी, शराबी को नहीं लगेगी। कभी सोचा कि राज क्या है? शराबी ज्यादा ताकतवर है इसलिए चोट नहीं लगी? आप कमज़ोर हैं, इसलिए चोट लग गयी? नहीं, जब गाड़ी उलटी तो आप होश में हैं। गाड़ी के उलटते ही आपको लगा कि चोट लगेगी, अब मैं बचू और आप सख्त हो गये, 'स्ट्रेड' हो गये। आपकी सब नसे, आपकी हड्डियाँ, सब मजबूती से जमीन के खिलाफ खड़ी हो गयी बचाव के लिए। आप कड़े हो गये। शराबी को पता ही नहीं है कि गाड़ी उलट गयी। वह गिर गये। उन्होंने गिरने के साथ सहयोग किया। वह जमीन के खिलाफ अकड़े नहीं। जमीन के साथ एक हो गये। शराबी जब गिरता है तो बोरे की तरह गिरता है। इसलिए, शराबी रोज रात गिरते हैं और चोटे नहीं खाते। आप उतने गिरे तो पता चल जाय। बच्चे रोज गिरते हैं, हड्डियाँ नहीं टूटती। आप उतने गिरे तो एक ही दिन मे सब नष्ट हो जाय। क्या बात है? बच्चे की ताकत ज्यादा है? नहीं, बच्चा गिरने के साथ ही एक हो जाता है। विरोध नहीं करता गिरने का। गिरने मे भी साथ देता है, गिरते बक्त भी राजी होता है। तो, जूँड़ों की कला कहती है कि जब कोई तुम्हे मारे तब तुम राजी हो जाओ पिटने को और जरा भी कही भीतर से विरोध न करना। बड़ी कठिन कला है। राजी हो जाना, पी जाना उसके घूसे को। एक तो खुद हमला भत करना, क्योंकि हमले मे शक्ति व्यय होती है, और जब कोई दूसरा घूसा मारे तो उसके घूसे को भी पी जाना तो उसकी शक्ति भी तुम्हे मिल जाती है। इसलिए जूँड़ों मे बड़ा पहलवान हार सकता है और कमज़ोर आदमी जीत सकता है। जीत जाता है।

मैं ऐसा नहीं कह रहा हूँ कि कृष्ण जूँड़ो जानते थे। सभी बच्चे जूँड़ो जानते ही हैं। वही उनकी जिन्दगी का राज है, बच्चे की जिन्दगी का। सभी कथाएँ ऐतिहासिक हैं, यह मैं नहीं कह रहा हूँ। मैं तो उसके भीतर जो मनो-

वैशानिक सत्य है उसकी बात कर रहा हूँ। कृष्ण अगर जीत सके, तो खेल था उनके लिए, अभिनय था, भौज थी, मजा था। हमलावर वह न थे, जीतने वह किसी को निकले न थे। कोई दूसरा जीतने आया था। और मैं मानता हूँ कि कृष्ण जैसे बच्चे पर अगर किसी पहलवान ने हमला किया तो हम कह सकते हैं कि यह पहलवान हार जायेगा, क्योंकि जो बच्चे पर हमला करने गया है वह भीतर से बड़ा हारा हुआ आदमी होना चाहिए। उसके भीतर आत्म-विश्वास बिल्कुल नहीं है। एक छोटे-से बच्चे पर इतना बड़ा पहलवान हमला करने गया है, यही इस बात की सूचना है कि यह हारेगा। यह हार ही चुका है। इसको लड़ने की कोई जरूरत नहीं थी। इसको पहले ही मान लेना था कि हार चुका है। क्योंकि, भीतर की हीनता की पीड़ा हमला करवाती है। कृष्ण का बालक होना, कृष्ण का लड़ने के लिए आतुर न होना, कृष्ण का किसी पर जीतने के लिए आकाशी न होना ही राज है। घटनाएँ ऐतिहासिक हैं या नहीं, इससे मुझे मतलब नहीं, लेकिन जूडो की पूरी फिलांसोफी, जुजुत्सु की पूरी की पूरी कला, कृष्ण की जिन्दगी में शूरू होती है। मैं तो कहूँगा, कृष्ण जुजुत्सु के पहले मास्टर हैं। न तो किसी को जापान में पता है, न किसी को चीन में पता है, न किसी को हिन्दुस्तान में पता है कि इस आदमी की सारी विजय का राज क्या है। इस आदमी की विजय का राज ही यही है कि यह विजय करना नहीं चाहता। इसे खेल है सब। उस खेल में यह तल्लीन हो जाता है। सामनेवाला तनावग्रस्त है। दूसरा चिन्तित है, जीतने को आतुर है, परेशान है। वह अपने भीतर बटा और कटा हुआ है, टूटा हुआ है, अपने आप हार जायेगा। बच्चे को हराना मुश्किल है। यही अर्थ है।

**प्रश्न-** आचार्यजी यशोदा, को भुख में बहू दर्शन कराना और बहाड़ का दर्शन कराना और अर्जुन को युद्ध में विश्वरूप का दर्शन कराना, इन दोनों घटना विशेष का आप तात्पर्य बतलाएँ और यह भी बतायें कि क्या द्विष्ट द्वृष्टि देकर बापस भी ली जाती है, जैसी कि कृष्ण ने अर्जुन को देकर बापस ले ली थी?

उसर आँखे नहीं है हमारे पास, अन्यथा सब जगह हमे विराट का दर्शन हो जाय। आँखें नहीं है हमारे पास, अन्यथा सभी जगह बहाड़ है। कृष्ण तो सिर्फ निमित्त है। यशोदा को दिखायी पड़ सकता है बहाड़ उनके मुख में। किस माँ को अपने बेटे के मुह में बहाड़ नहीं दिखायी पड़ता? खो जाता है धीरे-धीरे, यह बात दूसरी है। लेकिन, पहले तो दिखायी पड़ता है। यशोदा पूरे अर्थों में माँ थी इसलिए दिखायी पड़ सका है और कृष्ण पूरे अर्थों में बेटा था।

इसलिए निमित्त बन सका है। इसमें कुछ 'मिरेकल' नहीं है, इसमें कोई चमत्कार नहीं है। अगर आप प्रेम से मुझे भी देख सके तो ब्रह्माड दिखायी पड़ सकता है। देखने वाली आँखें चाहिए और योग निमित्त चाहिए। एक छोटे-से फूल से दिख सकता है सारा जगत। यह अणु-अणु में विराट छिपा है। एक छोटी-सी बूद में पूरा सागर छिपा है। एक बूद को कोई पूरा देख ले तो पूरा सागर दिख जायेगा। अर्जुन को भी दिखायी पड़ सका। वह भी कुछ कम प्रेम में न था कृष्ण के। ऐसी मैत्री कम घटित होती है पृथ्वी पर जैसी वह मैत्री थी। उस मैत्री के क्षण में अगर कृष्ण निमित्त बन गये और अर्जुन को दिखायी पड़ सका तो कुछ आश्चर्य नहीं है, न कोई चमत्कार है। और ऐसा नहीं है कि एक ही बार ऐसा हुआ है, ऐसा हजारों बार हुआ है। उत्तेजना नहीं होता है, यह बात दूसरी है। सग्रहीत नहीं होता है, यह बात दूसरी है। यह जन्म समझने जैसा है कि क्या दी गयी दिव्य दृष्टि वापस ली जा सकती है?

न तो दिव्य दृष्टि दी जा सकती है और न वापस ली जा सकती है। किसी क्षण में दिव्य दृष्टि घटित होती है और खो सकती है। दिव्य दृष्टि एक 'हैपनिंग' है। किसी क्षण में आप अपनी चेतना के उस शिखर को छू लेते हैं, जहा से सब साफ दिखायी पड़ता है। लेकिन, उस शिखर पर जीना बड़ा कठिन है। जन्म जन्म लग जाते हैं उम शिखर पर जीने के लिए। उम शिखर में वापस लौट जाना पड़ता है। जैसे, जमीन से आप छलाग लगाये तो एक क्षण को जमीन के 'ग्रेवीटेशन' के बाहर हो जाते हैं। खुले आकाश में मुक्त पक्षियों की तरह हो जाते हैं। एक क्षण के लिए, लेकिन बीता नहीं क्षण कि आप जमीन पर वापस आ जाते हैं। एक क्षण को पक्षी होना आपने जाना। ठीक ऐसे ही चेतना का 'ग्रेवीटेशन' है, चेतना की अपनी कशिश है, चेतना के अपने चुम्बकीय तत्व है जो नीचे पकड़े दुए हैं। किसी क्षण में, किसी अवसर में, किसी 'सिच्युएशन' में आप इतनी छलाग ले पाते हैं कि आपको विराट दिखायी पड़ जाता है। एक क्षण को, जैसे बिजली कौध गयी हो। फिर, आप वापस जमीन पर आ जाते हैं। निश्चित ही अब आप वही नहीं होते जो इस दर्शन के पहले थे। हो भी नहीं सकते, क्योंकि एक क्षण को भी अगर इस विराट को देख लिया तो आप दूसरे हो गये, और वह जो दिखा था वह खो गया।

जैसे, रात औंधेरी हो और बिजली कीध जाय। एक क्षण को फूल दिखायी पड़े, पहाड़ दिखायी पड़े और खो जाएँ। फिर धना अधकार हो जाय। लेकिन, अब मैं वही नहीं हूँ जो पहले अधकार में था। पहले तो मुझे पता भी नहीं था कि

पहाड़ भी है, वृक्ष भी हैं, फूल भी हैं। अब मुझे पता है। अधिकार जना है। लेकिन, अब उन फूलों को अधिकार मुझसे छीन नहीं सकता। अब उन पहाड़ों को अधिकार मुझसे छीन नहीं सकता। वे मैंने जान लिये, अब वे मेरे हिस्से हो गये हैं। अब मैं जानता हूँ, चाहे देखूँ और चाहे न देखूँ— चाहे पता चले, चाहे पता न चले। लेकिन, बहुत गहरे मेरे मैं जानता हूँ कि पहाड़ है, वृक्ष है, फूल है, उनकी अज्ञात सुगन्ध मुझे छुयेगी, उनकी अज्ञात हवाओं मेरुझे सदेश मिलेगा। अधिकार उन्हे छिपा सकता है अब, लेकिन मुझसे मिटा नहीं सकता।

दिव्य दृष्टि कोई देता नहीं। लेकिन, कृष्ण कहते मालूम पड़ते हैं कि मैं तुझे दिव्य दृष्टि देता हूँ। इससे कठिनाई पैदा होती है। असल में आदमी की भाषा बड़ी उलझन से भरी है। यहा हमें ऐसे शब्दों के प्रयोग करने पड़ते हैं जो कि वस्तुत जीवन्त नहीं हैं। यहा हमें देने लेने की बात बोलती पड़ती है। हम अक्सर कहते हैं कि मैं फला व्यक्ति को प्रेम देता हूँ। लेकिन, प्रेम दिया जा सकता है? प्रेम कोई वस्तु है, जो क्यों देगा? प्रेम घटित होता है, दिया नहीं जाता। लेकिन, भाषा ऐसा कहती है कि मैं प्रेम देता हूँ। माँ कहती है कि मैं बेटे को प्रेम देती हूँ। किसी माँ ने बेटे को कभी प्रेम दिया है? प्रेम हुआ है। 'इट हैज हैपेन्ड'—वह घटित हुआ है, दिया नहीं गया। ठीक उसी तरह भाषा की ही बात है, और ज्यादा बात नहीं है। ऊचाइया घटती है और खो जाती है। ऊचाइयों पर रहना मुश्किल है। हिलेरी और तेनसिग एवरेस्ट पर गये। झड़ा गाड़ा, वापस लौट आये। एवरेस्ट पर रहना मुश्किल है। लेकिन, एवरेस्ट पर किसी दिन रहा जा सकेगा, हम इन्तजाम कर लेंगे। लौटना नहीं होगा। रुक भी सकेंगे। लेकिन, चेतना की ऊचाइयों पर रुकना तो बहुत मुश्किल होता है। लेकिन, रुका जाता है। कृष्ण जैसे व्यक्ति रुकते हैं। अर्जुन जैसे व्यक्ति छलाग लगाते हैं, देखते हैं, वापस लौट आते हैं। यह घटना घटती है। यह लेना-देना नहीं है। लेकिन, हमारी भाषा लेने-देने मेरो सोचती है। इससे बहुत कठिनाई होती है। हम कहते हैं, हमने फला व्यक्ति को सहानुभूति दी। सहानुभूति कोई देता है? वह घटती है। जो ठीक शब्द है वह यह है कि कृष्ण और अर्जुन के बीच उस क्षण में दिव्य-दृष्टि घटी। उसमें कृष्ण निभित बने, अर्जुन छलाग लगाने वाला बना। लेकिन, भाषा मेरे इसे कैसे कहेगे? भाषा मेरे इसे ही कहेगे कि कृष्ण ने दिव्य दृष्टि दी। जैसा मैंने कहा कि मैं यहा बैठा हूँ और अगर मुझे पूरे प्रेम से कोई खुली आँख से देख सके तो कुछ घट सकता है। लेकिन, जब आपको घटेगा तब आप भी कहेगे कि आपने दिया। लेकिन, मैं कहा देने वाला हूँ? शायद

भाषा में कहना पड़े तो मैं भी कहूँ कि मुझसे आपको मिला। लेकिन, मुझसे क्या मिल सकता है?

केमिस्ट्री में एक शब्द है, उसे समझना चाहिए। वह है, 'केटेलेटिक एजेंट'-उस चीज को कहते हैं जिसकी मौजूदगी में कोई चीज घट जाती है। लेकिन, वह स्वयं उसमें कोई भी भाग नहीं लेता। जैसे-उदाहरण के लिए हाइड्रोजन और आक्सीजन को अगर हमें मिलाना हो और पानी बनाना हो तो बीच में विद्युत की मौजूदगी चाहिए। अगर बीच में विद्युत मौजूद न हो तो हाइड्रोजन, आक्सीजन अलग-अलग रहेंगे, मिल न सकेंगे। आकाश में भी जो बिजली चमकती है वह इसीलिए चमकती है, अन्यथा आकाश के हाइड्रोजन और आक्सीजन पानी नहीं बन सकेंगे। बिजली की चमक की बजह से ही पानी बन पाता है बादल। लेकिन, बड़ी खोज करके भी यह पता नहीं चलता है कि बिजली का कोई 'कण्ट्रीब्यूशन' है। बिजली कुछ करती नहीं। आक्सीजन और हाइड्रोजन को मिलाने के लिए बिजली कुछ भी नहीं करती। बिजली से कुछ भी नहीं मिलता। लेकिन, सिर्फ मौजूदगी, 'जस्ट प्रेजेन्स भर जरूरी है। उसकी बिना मौजूदगी के कुछ नहीं होगा। ऐसे केमेस्ट्री में बहुत केटेलेटिक एजेंट है, जिनकी मौजूदगी जरूरी है। लेकिन, सब तरफ की नाप-जोख से पता चलता है कि उनसे कुछ खोता नहीं, उनसे कुछ होता नहीं।

कृष्ण भी 'केटेलेटिक एजेंट' है, और जिनको हम अब तक गुरु समझते रहे हैं वह बड़ी भ्राति है। दुनिया में कोई गुरु नहीं, सिर्फ 'केटेलेटिक एजेंट' है। चेतना में भी घटनाएँ घट सकती हैं किसी की मौजूदगी में, जो बिना मौजूदगी के शायद नहीं घटे। कृष्ण की मौजूदगी में घटना घटती है। अर्जुन बेचारा निश्चित ही कहेगा कि आपने मुझे दिया। रामकृष्ण की मौजूदगी में विवेकानन्द को कुछ घटित होता है। विवेकानन्द जरूर ही कहेगे कि आपने मुझे दिया। और रामकृष्ण अगर भाषा के बहुत झक्कट में न पड़ना चाहते हो तो वह भी कहेंगे, ठीक है। भाषा की झक्कट में सभी लोग पड़ना भी नहीं चाहते, भेरे जैसे लोगों को छोड़कर। लेने-देने से काम चल जाता है, लेकिन वह शब्द उचित नहीं है, 'एप्रेशिएट' नहीं है। ठीक जगह पर नहीं है। मगर, आदमी के पास दूसरा कोई शब्द नहीं है। एक चित्रकार से पूछें, वान्‌गाग से पूछें। पूछें, कि तुमने यह चित्र बनाया? तो वान्‌गाग कहेगा, मैंने बनाया नहीं यह मुझ से बना। मगर हम कहेंगे, इससे क्या फर्क पड़ता है? फर्क बहुत पड़ता है और ही सकता है झक्कट में वान्‌गाग भी न पड़े, और वह कहे कि हा मैंने बनाया। क्योंकि, सारी दुनिया ने देखा उसे बनाते हुए। यह

कोई जूठी बात नहीं है। गवाह मिल जायेगे कि यह आदमी बना रहा था। लेकिन, वानशाग की अन्तरात्मा तो कहती है कि मैंने बनाया नहीं, मुझसे बना। यह घटना घटी। यह एक 'हैपेनिंग' है, 'ड्रॉइंग' नहीं है। यह मेरे भीतर से हुआ। मैं सिर्फ़ मौजूद था, मैं सिर्फ़ गवाह था।

तो दिव्य दृष्टि की जो घटना घटी है कृष्ण-अर्जुन के बीच, वह एक आर नहीं, बहुत बार घटी है। कभी बुद्ध मौद्गल्यान के बीच घटी है, कभी बुद्ध सार्ति-पुत्र के बीच घटी है, कभी महावीर गौतम के बीच घटी है। कभी जीसस और ल्यूक के बीच घटी है, कभी रामकृष्ण विवेकानन्द के बीच घटी है, हजारों लाखों दफा घटी है। वह चमत्कार नहीं है। इस जगत् में चमत्कार होते ही नहीं। अज्ञान नहीं समझ पाता, इसलिए चमत्कार समझ लेता है। सब चमत्कार अज्ञान से पैदा होते हैं। चमत्कार हो ही नहीं सकते। जो भी हो रहा है, सब सत्य है। सब तथ्य है। लेकिन, जब हम नहीं समझ पाते तो चमत्कार हो जाता है।

**प्रश्न.** क्या दिव्य दृष्टि घबराने वाली होती है जैसी अर्जुन को हुई है?

उत्तर पूछा जाता है कि क्या दिव्य दृष्टि घबराने वाली होती है? जैसे अर्जुन घबरा गया था? घबराने वाली हो सकती है। अगर पूर्व तैयारी न हो तो अचानक मिला हुआ सुख भी घबरा देता है। लाटरी मिल जाय तो पता चलता है। गरीबी बहुत कम लोगों की जान ले पाती है। अमीरी एकदम से टूट पड़े तो आदमी मरेगा।

मैं एक कहानी निरन्तर कहता रहता हूँ कि एक आदमी को लाटरी मिल गयी। उसकी पत्नी बहुत घबरायी; क्योंकि एकदम पाच लाख रुपये मिल गये थे। वह बहुत डरी और उसने सोचा कि पति तो अभी दफ्तर गया है। वह लौटेगा तो पाँच लाख का छप्पर फाड़कर गिरना, पता नहीं क्षेल पायेगा कि नहीं क्षेल पायेगा! पास में चर्चा था, वह वहा गयी और पादरी से कहा कि मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गयी हूँ। पति लौटते होंगे और आते ही एक बड़ी लत्तरानाक खबर देनी है कि पाच लाख की लाटरी मिल गयी है। कही ऐसा न हो कि उनके हृदय पर आधात ज्यादा पड़ जाय। पादरी ने कहा, घबड़ाओ मत, मैं आ जाता हूँ। पादरी आकर बैठ गया। उसकी पत्नी ने कहा कि करेगे क्या? उसने कहा कि इस सुख को 'इन्स्टालमेंट' में देना पड़ेगा। टुकड़ों में देना पड़ेगा। आते दो पति को। मैंने योजना बना रखी है। पति आया तो उसने कहा, तुम्हे पता है, पचास हजार रुपये तुम्हे लाटरी में मिले हैं। पादरी ने सोचा कि पहले पचास हजार कहे, जब पचास हजार सह लेगा तो कहेंगे, नहीं लाख। जब लाख भी सह जायेगा, देखेंगे नहीं मरता है तो

झेड़ लाख, ऐसा बढ़ेगे । लेकिन, उस पति ने कहा, पचास हजार मिल गये हैं ? सच कहते हैं, अगर, पचास हजार मिल गये हैं तो पच्चीस हजार तुम्हे देता हूँ । यह सुनते ही 'हार्ट फिल' हो गया बेचारे पादरी का !

अर्जुन पर जो घटना घटी वह बहुत आकस्मिक थी । सारिपुत्र या भौद्गलान पर जो घटना घटी वह आकस्मिक नहीं थी । उसकी बड़ी पूर्व तैयारियाँ थीं । जो लोग ध्यान की दिशा में यान्त्रा कर रहे हैं उनके लिए दिव्यता का अनुभव कभी भी घबराने वाला नहीं होगा । लेकिन, जिन लोगों ने ध्यान की दिशा में कोई भी यान्त्रा नहीं की है उनके लिए दिव्यता का प्राथमिक अनुभव, बहुत घबराने वाला हो सकता है । क्योंकि, इतना आकस्मिक और इतना आनन्दपूर्ण है वह कि दोनों बातों को ही सहना मुश्किल हो जाता है । इतना आकस्मिक, इतना आनन्दपूर्ण कि हृदय की धड़कन रुक सकती है । ठहर सकती है । प्राण अकुला जाते हैं । दुख कभी इतना नहीं घबराता, क्योंकि दुख की हमारी आदत होती है, सदा तैयारी होती है । दुख तो गेज ही हम भोगते हैं । सुबह से माझ तक दुख में ही जीते हैं । दुख ही दुख में पलते हैं और बड़े होते हैं । दुख हमारा ढग है जीने का इसलिए बड़े-से-बड़ा दुख आ जाय तो भी दो-चार दिन में निपट जाते हैं, फिर अपनी जगह लौट आते हैं । लेकिन, सुख हमारे जीवन का ढग नहीं है । अगर छोटासा भी सुख आ जाय तो रात की नीद हराम हो जाती है । चैन खो जाता है । अर्जुन पर जो सुख उतरा वह साधारण सुख नहीं था, वह आनन्द था और एक क्षण में उत्तर आया था, उसकी 'इटेसिटी' बहुत थी । वह घबरा गया और चिल्लाने लगा कि बन्द करो, वापस लो, मेरी सामर्थ्य के बाहर है यह देखना । स्वाभाविक था यह, यह चिल्कुल स्वाभाविक है । बहुत मजे की बात है, लेकिन ऐसा ही है ।

दुनिया में इतने शक्तिशाली लोग तो बहुत हैं जो बड़े-से-बड़े दुख को झेल ले । इतने शक्तिशाली लोग बहुत कम हैं, जो बड़े सुख को झेल ले । प्रार्थनाएँ हम सुख के लिए करते हैं, लेकिन अगर एकदम में सुख मिल जाय तो हम चिल्लायेंगे कि बम, बन्द करो, यह नहीं सहा जा सकेगा । इसे वापस लौटा लो । इसलिए, भगवान् भी 'डन्स्टालमेट' में सुख देता है । क्षण-क्षण, धीरे-धीरे, मुश्किल से, बहुत रोओ, बहुत चिल्लाओ, बहुत मागो तब कहीं धीरे धीरे । जब कभी आकस्मिक घट जाती है घटना, बड़ी तीव्रता से किसी क्षण में, तो घबराने वाली होती है ।

**प्रश्न** आकार्यजी, पहले प्रश्न का दूसरा हिस्सा रह गया था 'विनाशात्य च मुक्तताम्' से आप अर्थ लेते हैं कि मुष्टों का नाश नहीं, परिवर्तन ।

लेकिन, कृष्ण ने बहुत से मुष्टों का बघ भर्तों किया, उन्हें परिवर्तित कर्तों नहीं किया ?

**अक्षर :** यह भी समझना चाहिए। हमें जो वधु दिखायी पड़ता है, कृष्ण के लिए वह वधु नहीं है। जो भी भीता को समझते हैं, समझ सकेंगे। कृष्ण की तरफ से न कोई मारा जाता है, न कोई मारा जा सकता है। फिर, कृष्ण क्या कर रहे हैं? हमें दिखायी पड़ता है कि उन्होंने किसी राक्षस को, किसी पूतना को, किसी को मार डाला। इसको समझने के लिए थोड़े गहरे जाना पड़ेगा और समझ के बाहर के कुछ सूत्र भी ख्याल में लेने पड़ेंगे। अगर इसे ठीक से धर्म के पूरे विज्ञान की भाषा में समझें, तो इसका मतलब केवल इतना हुआ कि एक विशेष राक्षस या एक विशेष दुष्ट के स्थान को नष्ट कर दिया। एक विशेष दुष्ट के स्थानों के जाल को, शरीर को, चित्त को पूरी तरह नष्ट कर दिया। और उसके भीतर की आत्मा को पुरानी आदतों के जाल और स्थानों से मुक्त कर दिया। धर्म के अर्थ में इतना ही होगा। अगर कृष्ण को ऐसा दिखायी पड़ता है कि यह आदमी इस शरीर के साथ रूपातरित नहीं हो सकता तो इसको नये शरीर की यात्रा पर भेज देना सहयोग होता है। अगर यह शरीर उतनी जड़ता को उपलब्ध हो गया है कि अब इसमें परिवर्तन असभव है, इसे नया शरीर मिल जाय तो आसान होगा। जैसे, एक बूढ़े आदमी को अगर स्कूल भेजना हो, एक सत्तर साल के आदमी को अगर एक प्रायमरी स्कूल में भर्ती कराना हो, तो जिस दिन विज्ञान के पास सुविधा हो जायेगी, हम भी वही करेंगे, जो कृष्ण ने किया। विज्ञान के पास धीरे-धीरे सुविधा होती जा रही है। तब हम इस बूढ़े आदमी को प्रौढ़ शिक्षा में भर्ती न करेंगे, बल्कि इस बूढ़े आदमी को नया बच्चे का शरीर देना चाहेंगे। क्योंकि, प्रौढ़ को शिक्षित करना बहुत मुश्किल है। उसकी स्लेट पर इतना लिखा जा चुका होता है कि अब उस पर नये अक्षर की रेखाएँ खीचनी बड़ी कठिन हो जाती है, और खिच भी जाय तो दिखायी नहीं पड़ती। उसकी आदतों का जाल इतना धना हो जाता है कि उन आदतों के जाल से छूटना मुश्किल हो जाता है। ख्याल में भी आ जाय तो भी आदतों का जाल पीछा करता है। इसलिए, यह बड़े मजे की बात है कि रावण, राम के हाथों से मरकर धन्यवाद दे पाता है। कृष्ण के हाथों से जो मरे हैं वे भी धन्यवाद दे पाते हैं। बहुत गहरी अन्तरात्मा में उनके धन्यवाद उठता है। एक जाल टूटा। एक जाल नष्ट हुआ। और, एक नयी यात्रा के लिए से शुरू हो सकती है, लेकिन हमें तो यही दिखायी पड़ेगा कि मार डाला उस आदमी को। अगर मेरी तरफ से समझे तो मैं कहूँगा—नयी जिन्दगी दी उस आदमी को। उसकी यात्रा को फिर के लिए से शुरू किया। सफेद, कलीन स्लेटी दी, साफ सुथरी उसे स्लेट दे दी। कृष्ण के हिसाब में, या मेरे हिसाब में कोई मरता नहीं। मरने का कोई उपाय

नहीं। इसका मतलब यह नहीं है कि आप हिंसा करने निकल जाय और किसी को भी मारने लगें। हाँ, उस दिन आपको मारने की आज्ञा दी जा सकती है जिस दिन आपको यह पता चल जाय कि कोई मरता नहीं। लेकिन, ध्यान रहे, उस दिन मरने की भी तैयारी खुद की इतनी ही होनी चाहिए, तभी पता चला समझा जायेगा। कृष्ण वह तैयारी पूरी दिखाते हैं। मौत के मुँह से वह जगह-जगह उतर जाते हैं। वही कसीटी है। छोटा-सा बच्चा भयकर सर्प से जूझ जाता है। छोटा-सा बच्चा है, महाशक्तिशाली राक्षसों से उलझ जाता है। वह खबर क्या दे रहा है? वह खबर केवल इतनी दे रहा है कि मरता कोई नहीं। मौत एकमात्र असत्य है। 'द ओनली इलूजन', एकमात्र ध्रम है। एकमात्र माया है। जो है नहीं, और दिखायी पड़ती है। मृत्यु यदि असत्य है तो फिर हम शरीर को बदलने की जरूरत अनुभव कर सकते हैं।

ऐसा समझे, आपकी एक 'किडनी' खराब हो गयी है और डाक्टर उसे अलग करके दूसरी 'किडनी' लगा देता है, हमें कोई तकलीफ नहीं होती। लेकिन, एक अश में आपका शरीर बदल दिया गया है। आपका हृदय खराब हो गया है और आपको दूमरा फेंडा प्लास्टिक का लगा दिया जाता है। एक अर्थ में आपका शरीर बदल दिया गया। अभी हम पार्ट्स में बदल पा रहे हैं, लेकिन आज नहीं कल हम पूरे शरीर को बदल पायेंगे, इसमें कठिनाई नहीं है। अभी तक प्रकृति शरीर को बदलती थी। कृष्ण के जमाने तक में विज्ञान इतना विकसित न था कि वह वैज्ञानिक को कहते कि इस राक्षस के शरीर को बदल दो। प्रकृति को ही सौंपना पड़ता गर्दन काटकर, कि बदलो। भविष्य में इस बात की सभावना हो जायेगी कि अगर हम किसी अपराधी को, किसी क्रोनिक क्रिमिनल को, किसी ऐसे आदमी को जिसको किसी तरह नहीं बदला जा सकता, मजा नहीं देंगे, उसके पूरे शरीर को रूपातरित कर देंगे। ऐसा आदमी की विज्ञानशाला में भी कल हो सकेगा। तभी हम कृष्ण को समझ पायेंगे, उसके पहले समझना मुश्किल है। क्योंकि, अभी हमारे पास बहुत साफ तथ्य नहीं है। इसलिए, मैं नहीं मानता हूँ कि दुष्टों को नष्ट किया। मैं मानता हूँ, दुष्टों को रूपातरित किया। सिर्फ रूपातरण की यात्रा पर वे भेज दिये गये। वे प्रकृति की प्रयोगशाला में वापस लौटा दिये गये हैं। प्रकृति की 'वर्कशॉप' में वापस भेज दिये गये हैं कि कृपा करके इनको फिर से शरीर दो, फिर से आखे दो, फिर से भन दो, ताकि इनकी फिर से नयी यात्रा शुरू हो सके।

प्रश्न तो क्या उसका इस ढंग से अपने आप शरीर बदल जाता है?

उत्तर वह अपने आप नहीं बदल जाता, लेकिन कृष्ण जैसे आदमी के हाथ से मरने का मौका मिले तो उसमें बहुत फर्क पड़ता है। सभी को नहीं मिलता। बहुत पुण्य कर्मों के फल से मिलता है। साधारणत नहीं बदल जाता। अगर एक आदमी मरता है तो शरीर ही बदलता है, उसके भीतर का और कुछ भी नहीं बदलता। लेकिन, कृष्ण जैसे आदमी के हाथ से मरना बड़ी भारी घटना है, क्योंकि 'केटेलिंग एजेंट' मौजूद है। उस आदमी की मौजूदगी में यह घटना घट रही है मरने की। तुम्हारे शरीर के छूटते ही उस आदमी के व्यक्तित्व से जो सूक्ष्मतम किरणों का जाल फैलता है वह तुममें 'एब्रॉब' हो जायेगा, उसे तुम पकड़ पाओगे, वह तुम पी जाओगे। जो तुम्हारा शरीर बाधा दे रहा था कृष्ण से मिलने से, वह बीच से हट जायेगा तो कृष्ण से मिलना आसान हो जायेगा। उस मिलन में बहुत कुछ होगा। वह मिलन अर्जुन के लिए ऐसे ही हो पाता है, क्योंकि अर्जुन इस शरीर के बाहर छलाग लगा पाता है। हम प्रेम में शरीर के बाहर छलाग लगा लेते हैं। शत्रु में हम शरीर के बाहर नहीं छलाग लगा पाते। हम शरीर के भीतर शरीर को दुर्ग की तरह बनाकर बैठ जाते हैं। प्रेम और धृणा का वही फर्क है। अगर मेरा आपसे प्रेम है तो प्रेम कि धड़ी में हम एक-दूसरे के बाहर छलाग लगा जाते हैं और वहा मिल जाते हैं, जहा शरीर नहीं मिलते। लेकिन, अगर मेरी आपसे धृणा है तो हम दोनों अपने-अपने शरीरों को दुर्ग बनाकर, किले बनाकर भीतर बैठ जाते हैं। शरीर के बाहर बिल्कुल नहीं निकलते। आपका शरीर मुझे दिखायी पड़ता है, मेरा शरीर आपको दिखायी पड़ता है। हमारा मिलन ज्यादा - से - ज्यादा शरीर के तल पर हो सकता है और कही नहीं हो सकता। लेकिन, प्रेम में शरीर के बाहर छलाग लग जाती है। अर्जुन को मारने की ज़रूरत नहीं पड़ती बदलने के लिए, क्योंकि वह प्रेम से भरा है। किसी को मारने की इसलिए ज़रूरत पड़ती है बदलने के लिए, क्योंकि वह धृणा से भरा है। उसके दुर्ग को ढहा देना होगा। तब वह शरीर के बाहर आ जायेगा। और, तब वही धड़ी पैदा हो जायेगी जो अर्जुन के साथ बिना मारे होती है। लेकिन, कृष्ण की अनुकम्पा दोनों पर बराबर है। इसमें कोई फर्क नहीं है। इसलिए पहले ही मैंने कहा कि यह समझ के थोड़ा बाहर हो जायेगा। इसलिए, हमें समझने की कोशिश मत करना, सुनना और भूल जाना।

**प्रश्न :** मार्शल बैकलूहान का सुव है, 'मीडियम इज मैसेज', माध्यम संवेश है। आलोचक ने 'मैसेज' की जगह 'मसाज' शब्द रख लिया और अग्रिमब अर्थ प्रदान किया। वैसे ही कृष्ण की मुरली को हम जीवास्पा

की परमात्मा से प्रेम-पुकार का विशिष्ट माध्यम कहें तो क्या बाध्य है ?

महाभारत के समय कृष्ण का पांचजन्य बजाना, तथा बांसुरी के साथ 'सुदर्शन चक्र' क्या कोई प्रतीकात्मक अर्थ रखता है ?

रासकीड़ा के अन्तर्गत भागवत में श्लोक है, जिसमें दश-मुन्दरियों के साथ खेलते कृष्ण का वर्णन 'यथा अर्भक स्व प्रतिदिम्ब विघ्नम', यह 'इमेज', यह भाव कम्पन क्या अर्थ रखता है ?

उत्तर मार्शल मैकलूहान अद्भुत विचारक है। उनका वक्तव्य 'मीडियम इज मैसेज', माध्यम ही सन्देश है, बड़ा कीमती है। ऐसा सदा से नहीं समझा जाता था। समझा ऐसा जाता रहा है कि सन्देश अलग बात है, माध्यम अलग बात है। सन्देश माध्यम के द्वारा प्रकट होता है। न तो सन्देश माध्यम है और न माध्यम ही सदेश है। द्वैतवादी दृष्टि सदा ही इस तरह के फासले तोड़ती है। वह 'हूवालिस्ट माइण्ड' है जो सब चीजों को दो त्रिस्तो में तोड़ लेता है। वह कहता है, शरीर अलग है आत्मा अलग है। शरीर माध्यम है, आत्मा मन्देश है। वह कहता है, गति अलग है, गतिवान अलग है। वह कहता है, प्रकाश अलग है, प्रकाशवान अलग है। वह कहता है, जगत अलग है, परमात्मा अलग है। यह जो द्वैतवादी दृष्टि है यह अभिव्यक्त के माध्यम और अभिव्यक्ति के मन्देश में चलती रही है। मार्शल मैकलूहान को मैं अद्वैतवादी कहता हूँ। उसे पता है या नहीं, यह मैं नहीं जानता। उसने माध्यम और सदेश के सम्बन्ध में पहली दफा अद्वैत की घोषणा की। वह यह कह रहा है कि जो आप कहते हैं वह, और जिस ढग से आप कहते हैं जिस मार्ग से, जिस विधि से और जिस माध्यम से आप कहते हैं ये दो चीजें नहीं, एक ही चीज है। इसे समझने के लिए योड़ी-भी बातें समझना जरूरी होगी।

एक मूर्तिकार एक मूर्ति बनाता है, लेकिन मूर्तिकार अलग होता है, मूर्ति अलग होती है। उसे हम देख सकते हैं साफ। मूर्ति बनती जाती है और मूर्तिकार बनाता जाता है। फिर, मूर्ति बन जाती है, मूर्तिकार अलग खड़ा हो जाता है। बड़ी ही गहरा अद्वैतवादी चाहिए जो कह सके कि मूर्तिकार और मूर्ति एक है। बड़ी कठिनाई पड़ेगी। हमारी आखे गवाही न देगी, हमारे हाथ स्वीकार न करेगे। हमारा मन, हमारी बुद्धि कहेगी यह क्या पागलपन की बातें कर रहे हो ? मूर्तिकार और मूर्ति अलग है। कल मूर्तिकार मर जायेगा और मूर्ति रहेगी। बहुत गहरी अस्त्रें चाहिए जो कहे कि अब मूर्तिकार मर कैसे सकेगा जब तक मूर्ति रहेगी ? बहुत गहरी आखे चाहिए जो देख सके कि अब मूर्तिकार कितना

ही दूर चला जाय, लेकिन दूर जा कैसे सकेगा ? अब 'स्वेस' का सम्बन्ध न रहा। अब इन दोनों के बीच एक आत्मिक एकता है, एक तादात्म्य है जो अनन्त तक रहेगा, जो अब नहीं मिट सकता। लेकिन, मूर्तिकार के साथ यह तादात्म्य देखने में हमें बड़ी कठिनाई पड़ेगी इसलिए इस उदाहरण को छोड़े।

नृत्यकार को लें, जो कृष्ण के ज्यादा निकट पड़ेगा। नाच रहा है एक नर्तक। नर्तक और नृत्य दो हैं या एक ? यहा बहुत आसानी पड़ेगी। नर्तक को अलग कर ले तो नृत्य खो जाता है। नृत्य को अलग कर ले तो नर्तक नर्तक नहीं रह जाता, एक साधारण आदमी हो जाता है। नर्तक और नृत्य एक हैं। बासुरी और बासुरी-वादक एक हैं। गीत और गायक एक हैं। प्रकृति और परमात्मा एक हैं। कहा जाने वाला और जिस माध्यम से कहा गया हो, वह एक है। लेकिन अगर बहुत द्वैतवादी दृष्टि हो तो यहा भी हम दो में तोड़ सकते हैं। बिल्कुल तोड़ सकते हैं। क्योंकि, नृत्य तो बाहर होने वाली प्रकट एक क्रिया है और नर्तक भीतर छिपा एक प्राण है। प्राण नहीं नाच रहा है, प्राण तो नाच के बीच बढ़ा है। नाच बाहर चल रहा है। द्वैतवादी कह सकता है कि नर्तक चाहे तो अपने नृत्य को देख सकता है, साक्षी हो सकता है। तब वह दो हो जायेंगे। जो हमें दो दिखायी पड़ते हैं वह भी एक ही सकत है गहरी दृष्टि से। जो हमें एक दिखायी पड़ता है उथली दृष्टि से, वह भी दो हो सकता है। बासुरी बजायी जा रही है। कहा है वह जगह जहा से बासुरी बजाने वाले ओठ और बासुरी अलग होते हैं ? और, अगर वे सच ही अलग हैं तो ओठ बासुरी बजा कैसे सकते हैं ? किर तो बीच में 'गैंप' पड़ जायेगा। बीच में जगह छूट जायेगी। ओठ अलग हो जायेंगे, बासुरी अलग हो जायेगी, तब बजायेंगे कैसे ? स्वर ओठों से पैदा होंगे, बासुरी तक पहुँचेंगे कैसे ? नहीं, बासुरी और ओठ अलग-अलग दिखायी भर पड़ते हैं। अगर ठीक से समझे तो बासुरी ओठों का बढ़ा हुआ रूप है।

ऐसा और तरह से समझे-जैसा मार्शल मैकलूहान को पश्चन्द पड़े, कैसा समझे। एक दूरबीन है, हम आख पर लगाकर देखते हैं आकाश की तरफ। जो तारे हमें नहीं दिखायी पड़ते थे खुल्ली आख से वे दूरबीन से दिखायी पहुँचे लगेंगे। दूरबीन और आख अलग हैं या कि ऐसा कहे कि दूरबीन आख का बढ़ा हुआ है ? विज्ञान ने आख को बढ़ा दिया। दूरबीन को जोड़कर आख बड़ी हो गयी। जब मैं अपने हाथ से अपको छूता हूँ तो मैं छूता हूँ या मेरा हाथ छूता है। दिखता हो मेरा हाथ छूता हुआ है। सेक्सिल, मेरे हाथ और मुझमें कहीं कासला है, कहीं कर्क है, कहीं कोई अतराल है ? कहीं कोई जपह है जहा मैं सत्य हैँह हैं,

मेरा हाथ मुँह होता है ? नहीं, मेरा हाथ मेरा 'एक्सटैशन' है, मेरा बढाव है । और, समझ ले कि हाथ मेरे एक लकड़ी ले लूँ फिर लकड़ी से आपको छूँ तब आप क्या कहेंगे ? शायद आप नहीं छू रहे, लेकिन अब भी मैं ही छू रहा हूँ । लकड़ी मेरे हाथ का और भी बढाव है । जब टेलीफोन से मैं आपसे बात कर रहा हूँ, तब भी मेरे ओठ ही बात करते हैं । टेलीफोन सिर्फ़ मेरे ओठों का वैज्ञानिक बढाव है । इसे इस भाँति देखें अब कि दूरबीन से मैं तारों को देख रहा हूँ । दूरबीन मेरे आखों का बढाव है, लेकिन तारे ही क्यों मेरी आखों से अलग हो । मैं तारों को देख सकता हूँ, इसका मतलब यही है कि तारे और मेरी आख के बीच कोई आतंरिक सम्बन्ध होना चाहिए, अन्यथा देख कैसे सकूँगा ? कान से तो मैं तारों को नहीं देख पाता, आख से मैं सगीत को नहीं सुन पाता । आख और तारों के बीच कोई ताल-मेल, कोई जोड़, कोई 'हारमनी' चाहिए, कोई अन्तर्सम्बन्ध चाहिए, कोई 'इन्टीमेसी' चाहिए । तो, दूरबीन ही नहीं है मेरा बढाव, तारे भी मेरी आख के बढाव हैं । या उल्टी तरफ से सोचें तो तारों का बढाव मेरी आख है । तब हमें अद्वैत दिखायी पड़ेगा, तब चीजें हमें एक दिखायी पड़ेंगी, तब चीजों में हमें एक अन्तर-फ़ैलाव दिखायी पड़ेगा । और, तब सब एक हो जायेगा । 'देन मीडियम इज़ द मैसेज' । तब फिर माध्यम ही सन्देश है और सन्देश ही माध्यम है ।

ठीक पूछते हैं कि कृष्ण की यह बासुरी और ये बासुरी पर बजाये गये स्वर परमात्मा की तरफ की गयी प्रार्थनाएँ नहीं ? प्रार्थना मैं न कहूँगा । क्योंकि कृष्ण जैसा आदमी प्रार्थना नहीं करता । प्रार्थना किससे करेगा ? प्रार्थना मेरे थोड़ा फासला हो जाता है, प्रार्थना मेरे थोड़ा भेद हो जाता है । प्रार्थना मेरे प्रार्थी अलग हो जाता है उससे, जिससे प्रार्थना करता है । प्रार्थना द्वैत है । इसे थोड़ा समझना अच्छा होगा ।

कृष्ण बासुरी बजाते बक्त प्रार्थना मेरे नहीं, ध्यान मेरे है । ध्यान अद्वैत है । प्रार्थना और ध्यान शब्द मेरे यही फर्क है । प्रार्थना द्वैतवादी की स्तोज है । वह कहता है, मैं इधर हूँ, उधर परमात्मा है । निषेदन करता हूँ । ध्यान अद्वैतवादी का है । वह कहता है, वहा कोई परमात्मा नहीं, यहा मैं नहीं । बीच मेरों दोनों के सब है । कृष्ण की बासुरी प्रार्थना का उठा हुआ गीत नहीं है । ध्यान से उठा हुआ स्वर है । यह किसी परमात्मा से की गयी प्रार्थना नहीं, मह स्वयं को दिया गया धन्यवाद, स्वयं के प्रति प्रकट हो गयी अनुगृहीत भावना है । यह अनुग्रह बोध है, यह अहोभाव है । क्योंकि, प्रार्थना मेरे पैर उतने मुक्त नहीं हो सकते जितने अहोभाव मेरे होते हैं । प्रार्थना मेरे संकोच और डर सो बना ही रहता है । प्रार्थना मेरे भय और आकांक्षा बनी ही रहती

है। प्रार्थना सुनी जायगी, नहीं सुनी जायेगी, इसका समय तो बना ही रहता है। कोई प्रार्थना सुनने वाला है या नहीं इसका सदैह तो खड़ा ही रहता है। अनुग्रह में कोई सबाल नहीं रह जाता। कोई सुनता है या नहीं सुनता, यह सबाल ही नहीं है। कोई मानेगा या नहीं मानेगा, यह सबाल ही नहीं है। यह किसी के लिए 'एड्रेस्ड' नहीं है, ध्यान जो है 'अनएड्रेस्ड' है। सीधा अनुग्रह का भाव है जो समस्त के प्रति निवेदित है। आकाश सुने तो सुने, फूल सुने तो सुने, बादल सुने तो सुने, हवाएं ले जाय तो ले जाय इसके पीछे कोई आकाश नहीं है। 'देयर इज नो एण्ड टु इट'। यह अपने-आप में पूरी है बात। बासुरी बज गयी है, बात सत्म हो गयी। यह निपट निवेदन है। इसीलिए, कृष्ण आनन्द से बजा सके बासुरी को। मीरा उतने आनन्द से नहीं नाच सकी। मीरा ध्यान में नहीं है, प्रार्थना में है। मीरा के लिए कृष्ण वहा पराये की तरह सड़े हैं। कितने ही निकट हो, पर पराये हैं। कितने ही पास हो, फिर भी दूर है। फिर भी एक नहीं हो गये हैं। इसलिए मीरा के नाचने में वह स्वतत्त्वता नहीं है जो कृष्ण के नाचने में है। मीरा के घुघरुओं में परतन्त्रता का थोड़ा-सा स्वर है। मीरा के भजन में दुख है, पीड़ा है। कृष्ण की बासुरी में सिवाय आनन्द के और कुछ भी नहीं है। मीरा के भजन में आसू भी है। 'एड्रेस्ड' है न भजन? पता नहीं, आयेगा, नहीं आयेगा। सेज उसने तैयार कर रखी है। निवेदन भेज दिया है, प्रतीक्षा जारी है। मीरा के भजन के पीछे कोई लक्ष्य है, मीरा के पीछे कोई आकाश है, अभीप्सा है। इसलिए, मीरा की आख में आसू भी है। मीरा के मन में प्रतीक्षा भी है। पूरी होगी कि नहीं होगी आकाश, इसका भय भी है। इसका कम्पन भी है। कृष्ण के मन में कोई कम्पन नहीं है। ये ध्यान से उठे हुए स्वर है। किसी परमात्मा के प्रति प्रेरित नहीं, बल्कि किसी परमात्मा से ही उठे हुए है। अनन्त के प्रति विस्तीर्ण, 'अनएड्रेस्ड'। कोई पता ठिकाना नहीं। कृष्ण किसी के लिए बासुरी नहीं बजा रहे हैं। अकारण बजा रहे हैं। या इसीलिए बजा रहे हैं कि अब और करने का कोई कारण नहीं रहा, अब बासुरी ही बजायी जा सकती है। आमतौर से हम बासुरी के साथ चैन जोड़ते हैं। हम कहते हैं फला आदमी चैन की बासुरी बजा रहा है। असल में बासुरी का मतलब ही यह है कि कोई आदमी चैन में है। कोई आदमी 'ऐट ईज' हो गया। अब बासुरी बजाने के सिवाय बचा नहीं कुछ करने को। नाहक का काम है। बेकार काम है। कुछ फल तो होता नहीं। कुछ आता तो नहीं, कुछ मिलता तो नहीं। लेकिन कुछ मिल गया है, कुछ पा लिया है। वह फूट-फूटकर बह जाता है।

**प्रश्न:** आपर्थकी, आप बासुरा कहा करते हैं कि 'देयर इज स्टेड आप

‘कौसलनेस’ और कभी—कभी यह भी कहा करते हैं कि “प्रेयर इज स्टेट आफ प्रोटोट्यूट”। तब किर प्रेयर अद्वित बयो न होमा ?

चत्तर नहीं ऐसा मैं कभी नहीं कहता। मैं ऐसा कभी नहीं कहता कि “प्रेयर इज ए स्टेट आफ माइड”। मैं कहता हूँ ‘प्रेयरफुलनेस इज ए स्टेट आफ माइण्ड’। ‘प्रेयरफुलनेस’। प्रार्थना नहीं, प्रार्थनापूर्ण होना। एक आदमी सुबह प्रार्थना कर रहा है। यह और बात है। एक आदमी उठता है, बैठता है, चलता है और प्रार्थनापूर्ण है। वह जूता भी पहनता है तो प्रार्थनापूर्ण है। वह जूते को भी उठाकर रखता है तो ऐसे ही रखता है जैसे भगवान की मूर्ति को रखता हो। वह आदमी प्रार्थनापूर्ण है। वह रास्ते के किनारे एक फूल के पास खड़ा होता है तो भी वैसे ही खड़ा होता है जैसे स्वयं परमात्मा उसके सामने खड़ा हो तो खड़ा होगा। यह आदमी प्रार्थनापूर्ण है, यह कभी प्रार्थना कर नहीं रहा है। इसने प्रार्थना कभी की नहीं है। प्रेयर को नहीं कहता हूँ मैं कभी कि वह चेतना है। प्रार्थनापूर्ण हृदय। मह बड़ी और बात है। प्रार्थनापूर्ण हृदय का मतलब फिर ध्यान हो जाता है, फिर कोई फर्क नहीं रहता। प्रार्थना नो करते ही वे हैं जो प्रार्थनापूर्ण नहीं हैं। प्रार्थनापूर्ण, प्रार्थना करेगा कैसे ? वह तो प्रार्थना में ही जीता है। वह तो स्वयं प्रार्थना होता है। प्रार्थना वह करता है जो कुछ और भी करता रहता है। दुकान भी करता है, घृणा भी करता है, क्रोध भी करता है, बाजार भी करता है, कुछ और भी करता है। प्रार्थना भी उसकी बड़ी कामों की लिस्ट में एक चीज है, एक ‘आइटम’ है। उसको भी करता है। और, प्रार्थनापूर्ण वह है जो दुकान भी करता है तो प्रार्थना करता है। अब कबीर है, कबीर कपड़ा भी बुन रहा है और कोई उससे कहता है कि तुम अब क्यों कपड़ा बुनने में लगे हो ? तो वह कहता है, यह मेरी प्रार्थना है। वह कहता है कि मैं चलता हूँ तो वह मेरा ध्यान है, मैं उठता हूँ तो वह मेरा ध्यान है, मैं खाता हूँ तो वह मेरा ध्यान है, मैं कपड़ा बुनता हूँ तो वह मेरा ध्यान है। वह कहता है—साधो सहज ममाधि भली। जो करते हो वही समाधि है। बाजार बेचने जा रहा है कबीर अपना कपड़ा, तो नाचता हुआ चला जा रहा है। बाजार में ग्राहक उससे कपड़े खरीदने आये हैं तो वह उनसे कहता है कि राम, ऐसी बढ़िया चीज मैंने पहले कभी बनायी नहीं। उसने प्रार्थना को इसके धागे-धागे में बुन दिया है। कबीर उसे राम कहता है जो खरीदने आया है। अब इसके लिए न कोई खरीदार है, न कोई बेचने वाला है। इधर राम ही बुनने वाला है, राम ही पहनने वाला है। इधर राम ही बुनने वाला है, राम ही बुका जा रहा है। यह स्थिति प्रार्थनापूर्ण है। इसलिए, कबीर को कभी किसी ने

प्रार्थना करते नहीं देखा कि वह भर्ताजिद में चला गया और चिल्ला रहा हो, अजान दे रहा हो। कभी मदिर में चला गया हो और पुकार रहा हो, हे भगवान् ! बल्कि, वह निरन्तर कह रहा है ए मुल्ला, तू इतने जोर से क्यों चिल्लाता है, क्या तेरा भगवान् बहरा है ? क्योंकि, हम तो बिना चिल्लाये ही पाते हैं कि वह सुन लेता है। हम तो बिना कहे पाते हैं कि वह समझ लेता है। कबीर मजाक करते हैं बहुत, उन सबकी, जो प्रार्थना कर रहे हैं। यह आदमी प्रार्थनापूर्ण है इसलिए मजाक कर सकता है, अन्यथा मजाक नहीं कर सकता। तो प्रार्थनापूर्ण होने को तो मैं कहता हूँ, प्रार्थना के लिए नहीं कहता।

**प्रश्न चक्र सुदर्शन और पाचजन्य के बारे में प्रश्न था, तथा अर्भक स्व प्रतिबिम्ब विषय ?**

उत्तर कृष्ण के व्यक्तित्व से जुड़ी हुई सारी बातों के बड़े प्रतीक अर्थ है। हाने ही चाहिए। कृष्ण जैसे व्यक्ति के साथ जो भी जुड़ा है वह निर्मूल्य नहीं हो सकता। अमूल्य हो सकता है। लेकिन, हम उसका मूल्य भी न समझ पायें तो अमूल्य को समझना तो थोड़ी कठिनाई की बात है। कृष्ण का पाचजन्य, उनका शख बड़े प्रतीक अर्थं रखता है। आदमी की पाच इद्रियाँ हैं। आदमी के पाच द्वार हैं। आदमी अपने पाच द्वार के माध्यम से उद्घोष करता है। उसके जीवन का सारा पाच द्वारों से किया गया उद्घोष है—उसकी आख से, उसकी नाक से, उसके मुँह से। पाँच इद्रियाँ पाँच द्वार हैं जगत से हमारे सबध के। और, जब कथाकार कहते हैं कि कृष्ण ने पाचजन्य बजाया, उसका कुल मतलब इतना है कि युद्ध में वे अपनी पाचों इद्रियों सहित समग्र रूप से भौजूद हुए हैं। इससे ज्यादा कोई मतलब नहीं है। युद्ध उनके लिए कोई काम न था। उनके लिए कोई बात काम न थी। कबीर जैमा कपड़ा बेचने बाजार चला गया था पूरा का पूरा, ऐसे ही कृष्ण पाचजन्य बजाकार उद्घोष करते हैं कि मैं पूरा का पूरा युद्ध में आ गया हूँ। कुछ पीछे छोड़ आया नहीं। वह पीछे छोड़कर चलते ही नहीं। वह जहा होते हैं, पूरे होते हैं। इसलिए, पाच इद्रियों के प्रतीक पाचजन्य को वह बजाते हैं और वह कहते हैं कि मेरी समस्त इद्रियों सहित मैं यहा भौजूद हूँ। समग्र रूप से वह अकेले ही उपस्थित है वहा। और भजे की बात है कि वही वहा युद्ध करने को उपस्थित नहीं हैं। वह आदमी वहा लड़ने आया ही नहीं, 'नानकमीटेड' वहा खड़ा है। वहा युद्ध करने को आया नहीं; लेकिन पूरे युद्ध में है। युद्ध करने का कोई भी निर्णय इसके मन में नहीं है। युद्ध से इसे प्रयोजन भी नहीं है, इसे कुछ मिलने वाला भी नहीं है, इसका युद्ध से कोई सम्बन्ध भी नहीं है।

लेकिन, किर भी यह आदमी, क्षण आता हैं युद्ध का और युद्ध में उत्तर जाता है। सुदर्शन चक्र को हाथ में ले लेता है। वह उनके चक्र का नाम है। वह नाम भी बड़ा प्रतीकात्मक है। असल में जिन लोगों ने काव्य लिखे उन्होंने शब्दों के साथ बड़ी मेहनत की है। काव्य का तो प्राण ही शब्द है।

कृष्ण का जो चक्र है उसको नाम दिया है सुदर्शन। मृत्यु का वह वाहक है और नाम सुदर्शन है। मृत्यु देखने में सुन्दर नहीं होती, न सुदर्शन होती, लेकिन कृष्ण के हाथ में मृत्यु भी सुदर्शन बन जाती है। उतना ही अर्थ है। हम एटम बम को सुदर्शन नाम नहीं दे सकते। लेकिन, सुदर्शन एटम जैसा ही सधातक है। अचूक है उसकी चोट, मौत निश्चित है उससे। वह छूटता है तो बस मारकर ही लौटता है। मृत्यु जहा बिल्कुल निश्चित हो बहा भी हम उस मृत्यु के शस्त्र को सुदर्शन कहेंगे? लेकिन, कहा तो है। हिटलर जैसे आदमी के हाथ में फूल भी सुदर्शन नहीं रह जाते। सवाल यह नहीं है कि क्या है आपके हाथ में, सवाल सदा यही है कि हाथ किसका है। कृष्ण के हाथ में मरना भी आनन्दपूर्ण हो सकता है। उस युद्ध के स्थल पर खड़े हुए मित्र और विपक्षी भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि उनके हाथ से मरना आनन्दपूर्ण हो सकता है, सौभाग्य का क्षण हो सकता है। इसलिए, उनके शस्त्र को सुदर्शन का नाम दिया है।

क्षण आता है युद्ध का, वह सुदर्शन हाथ में लेकर युद्ध में कूद पड़ने है। यह उनके 'स्पोर्टेनियस', सहज होने का प्रतीक है। ऐमा आदमी क्षण में जीता है, 'मोमेट टू मोमेट'। वह पिछले क्षण से बधा हुआ नहीं होता है। अगर ठीक से समझ तो ऐसे आदमी की कोई 'प्रोमिस' नहीं होती। जैसे पस ने परिभाषा की है, आदमी की—'मैं इज ए प्रोमिसिंग एनिमल'। आदमी बचन देनेवाला प्राणी है। कृष्ण ऐसा आदमी नहीं है। यह बचन देता नहीं। हा, गाढ़ी बचन देनेवाले प्राणी में आयेंगे। कृष्ण बचन देने वाला प्राणी नहीं है। क्षण में जीने वाला आदमी है, जो क्षण ले आयेगा, वैसा जियेगा। क्षण ने जैसी भी स्थिति पैदा कर दी वह अपने को रोकेगा नहीं। क्षण अगर युद्ध ले आया तो युद्ध में उत्तर जायेगा। इसलिए, क्षण-क्षण जीने वाला आदमी ही मुक्त जी सकता है। क्योंकि, जिसने बचन दिये हैं वह अतीत से बध जाता है। जो पीछे से बधकर जीने लगता है उसके भविष्य की स्वतत्त्वता रोज सकीर्ण होती चली जाती है और अतीत, भविष्य पर बोक्सिल होने लगता है। कृष्ण लड़ने में उत्तर जाते हैं, वैसे आये नहीं थे लड़ने को। युद्ध करने का कोई स्थाल न था, कोई बात न थी। जो लोग कृष्ण पर सोचते रहे हैं उन्हे बड़ी मुश्किल की बात रही है कि वह युद्ध में क्यों उत्तर

गये ? कारण सिर्फ इतना ही है कि वैसा आदमी भरोसे का आदमी नहीं है। ऐसा आदमी जैसी स्थिति होगी वैसा जियेगा। आप उससे यह नहीं कह सकते कि कल तो आप ऐसे थे, आज आप ऐसे हैं। वह कहेगा, कल अब नहीं है गगा का पानी बहुत बह चुका। जब गगा जहा है वहा है। आज मैं ऐसा हूँ कल मैं कैसा होऊँगा कुछ भी नहीं कहा जा सकता। कल आयेगा, तभी हम जानेंगे। इस तरह के आदमी की भविष्यवाणी नहीं की जा सकती। ज्योतिषी ऐसे आदमी के साथ हार जाते हैं। कृष्ण की बाबत ज्योतिष अर्थहीन हो जायेगा, एकदम टूट जायेगा। क्योंकि, कृष्ण कल क्या करेगे, यह बिलकुल नहीं कहा जा सकता, आज के कृष्ण से कुछ निकलता ही नहीं कल के कृष्ण के लिए। कल का कृष्ण कल ही पैदा होता है। आज के कृष्ण का कल के कृष्ण से कोई श्रृखला का सम्बन्ध नहीं है। उसे थोड़ा ठीक से देख ले।

दो तरह की जिन्दगी होती है। एक जिन्दगी होती है, श्रृखलाबद्ध और एक जिन्दगी होती है एटामिक। एक जिन्दगी होती है 'सीरीज' की तरह और एक जिन्दगी होती है अणुओं की तरह। जो आदमी श्रृखला में जीता है उसके कल और आज के बीच सेतु होता है। उसका आज उसके कल से निकलता है। उसकी जिन्दगी उसके मरे हुए हिस्सों से निकलती है। उसका ज्ञान उसकी स्मृति से निकलता है। उसका आज का होना उसके कल की राख से निकलता है। उसकी जिन्दगी का फूल उसकी कब्र पर खिलता है। लेकिन, एक दूसरा जीवन है। वह जीवन श्रृखला का जीवन नहीं है, आणविक जीवन है। उसमें आज का होना कल से नहीं निकलता, आज से ही निकलता है। आज का जो साय अस्तित्व है इससे ही निभूत होता है। आनेवाले क्षण में, फिर उस क्षण के निकलता है, फिर आनेवाले क्षण में उस क्षण से निकलता है। श्रृखला ऐसे जीवन में भी होती है लेकिन सेतुबद्ध नहीं होती। ऐसा आदमी हर क्षण को जीता है और हर क्षण को मर जाता है। आज जीता है, आज मर जाता है। आज रात सोता है, आज के लिए मर जाता है, कल सुबह फिर जगता है, फिर जीता है। 'डाइग टु एवरी भोमेट'। तभी वह प्रतिपल नया होकर जन्म लेता है और कभी पुराना नहीं पड़ता है। वैसा आदमी सदा जवान है, सदा युवा है, सदा ताजा है। और, उसका जो होना निकलता है वह समग्र अस्तित्व से निकलता है। इसलिए, उसका होना भागवत है। मैं जो करूँ भगवान का अर्थ, वह यही है। भगवान का जीवन 'एटामिक' है, आणविक है। अस्तित्व से निकलता है, सत से निकलता है। रोज-रोज पल-पल निकलता है। उसका न कोई अतीत है, न कोई भविष्य है, सिर्फ वर्तमान है।

कृष्ण को अगर भगवान कहा जा सका, भागवत चेतना कहा जा सका, 'डिवाइन कार्सेसनेस' कहा जा सका—इसका और कोई अर्थ नहीं है। उसका यह मतलब नहीं कि कही कोई भगवान बैठा है और इस आदमी में उत्तर आया है। उसका इतना ही मतलब है कि इस आदमी का होना समग्र से ही निकलता चला जाता है। इसलिए, इस आदमी में हम अगर 'कन्स्टेसी' खोजने जाएँ तो थोड़ी दिक्कत में पड़ेगे। ऐसे आदमी में अगर हम सगति खोजने जाएँ, श्रृखला खोजने जाएँ, तो हमें बहुत-सी चीजों को 'इगनोर' करना पड़ेगा, या बहुत-सी चीजों को किसी तरह ताल-मेल बिठाना पड़ेगा। या कहना पड़ेगा—लीला है। जब हमारी समझ में नहीं पड़ता तो कहते हैं, लीला है। लेकिन, कठिनाई और अडचन जो आ रही है वह 'सीरियल एकिजस्टेन्स और स्पोटेनीयस एकिजस्टेन्स'—श्रृखलाबद्ध अस्तित्व और सहज अस्तित्व, इनको न समझने से आती है।

**प्रश्न** राम का जीवन तो वाल्मीकि ने राम के होने के पहले लिख दिया था?

उत्तर लिखा जा सकता है। राम का जीवन लिखा जा सकता है। वह मर्यादा के आदमी थे। उसका मतलब कुल इतना है कि राम आदमी ऐसे हैं कि उनका जीवन पहले से लिखा जा सकता है। इस घटना में बड़ा मजाक छिपा हुआ है, और इस मूल्क ने बड़े गहरे मजाक किये हैं जो हम पकड़ नहीं पाते। इस घटना में यह छिपा है कि राम का इतना वधा हुआ जीवन है कि राम के जीने के पहले ही वाल्मीकि कवि लिख सकता है। इनना 'सीरियल एकिजस्टेन्स'। राम पैदा न हो, उसके पहले कहा जा सकता है कि यह आदमी पैदा होकर क्या करेगा? ऐसा नहीं है कि वाल्मीकि ने पहले लिख दिया। लिखा तो पीछे ही गया, लेकिन राम का जीवन 'सीरियल' होने की वजह से यह मजाक प्रचलित हो गया कि राम की भी कोई जिन्दगी है, यह तो एक चरित्र है, जैसे कि एक फिल्म लिखी जाती है। पहल लिख दी जाती है, फिर खेली जाती है। राम का मामला सब सुनिश्चित है, 'स्टैन' है। उसकी बाबत कहा जा सकता है कि सीता चोरी जायेगी तो राम क्या करेगे? यह भी कहा जा सकता है कि सीता को लका से लायेगे तो अग्नि-परीक्षा जरूर लेंगे। यह सब कहा जा सकता है। और, इसके बाबूद भी कि अग्नि-परीक्षा हो जाय, एक धोबी कह देगा कि हमें सदेह है, तो निकाल बाहर करेंगे। यह सब मामला बिल्कुल पक्का है। कृष्ण के मामले में पक्का कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

**प्रश्न :** आखायंतो, आप मार्टिन बूबर को भाषा में कृष्ण को इन्टरफ़ेट करते हैं ?

उत्तर नहीं, मार्टिन बूबर घम-फिर कर द्वैतवादी है। मार्टिन बूबर अद्वैतवादी नहीं है। असल में मार्टिन बूबर की जो जड़ें हैं वह हिन्दू और ज्यू विचार में हैं। मार्टिन बूबर जो भी कहता है वह ज्यादा-से-ज्यादा मैं और तू के बीच गहरी-से-भाहरी आन्तरिकता पैदा हो, सम्बन्ध पैदा हो, इसके लिए आतुर है। इतना बहाव हो कि मैं, तू तक बह जाय, तू मैं तक आ जाय। लेकिन, मैं और तू को मिटाने की तैयारी मार्टिन बूबर की नहीं है। नहीं, बिल्कुल नहीं है। असल में मार्टिन बूबर जिस परम्परा से आता है, उस परम्परा में ही द्वैत को मिटाने की तैयारी नहीं है। जीसस को यहूदियों ने सूली इस वजह से दी कि जीसस ने ऐसे वक्तव्य दे दिये जो अद्वैतवादी थे। जीसस ने कह दिया—‘आई एण्ड माई फादर आर वन’। यह खतरनाक हो गया। यहूदी विचार इसको नहीं समझ सका। यहूदियों ने कहा, यह बरदाश्त के बाहर है। तुम कितना ही कुछ कहो, परमात्मा ऊपर है। तुम चरणों में हो। तुम यह धोषणा नहीं कर सकते कि तुम परमात्मा हो। मुसलमानों ने सूफियों को सताया और सूलिया दी। इसका कारण वही यहूदी विचार की परम्परा है। जब मसूर ने कहा, ‘अनल्हक’—मैं ही ईश्वर हूँ, तो बरदाश्त के बाहर हो गया। कहा कि तुम् कितने ही ऊपर उठो, लेकिन तुम ईश्वर नहीं हो सकते। मुहम्मद को भी ईश्वर होने का दर्जा नहीं दे सका मुसलमान। मुहम्मद को भी कहा कि सदेशवाहक है, पैगम्बर है। अवतार नहीं है। क्योंकि, ईश्वर अलग है और हम अलग हैं। हम उमके चरणों में हो सकते हैं। ऊँची से ऊँची जो ऊँचाई है, उसके चरणों में है।

**प्रश्न** सुपरमेन हो गया न वह ? फिर मैं ही ब्रह्म हो जाता हूँ का क्या तात्पर्य ?

उत्तर सुपरमेन कहना मुश्किल है। जब हम कहते हैं कि मैं ही ब्रह्म हो जाता हूँ तो मैं बचता ही नहीं। आदमी बचता ही नहीं। जब ‘मैं’ ब्रह्म हो जाता है तो ब्रह्म ही बचता है। आदमी नहीं बचता। उसके बाद कुछ बचता नहीं। बस, अतिक्रमण है। तो, राम की बावत सभव है। मजाक गहरा है। लेकिन, हम बहुत गभीर लोग हैं। जो लोग राम वगैरह पर विचार करते हैं, वह भारी गभीर लोग हैं। वह मजाक को नहीं समझ पाते। वह बेचारे गभीरता से व्याख्याएँ किये चले जाते हैं। मजाक यह है कि राम तुम आदमी ऐसे हो कि वाल्मीकि कवि तुम्हारी कथा पहले ही लिख दे सकता है। इससे ज्यादा कुछ भी नहीं, इससे ज्यादा कुछ दिक्कत तुमसे नहीं है।

**प्रश्न** • श्रृंखलाबद्ध जीवन में और सहज जीवन में स्मृति को क्या स्थिति होगी ?

उत्तर श्रृंखलाबद्ध जीवन में आपका होना आपकी स्मृति से निकलेगा। सहज जीवन में आपका होना आपकी स्मृति का उपयोग नहीं करेगा। इतना फर्क होगा। आप प्रतिपल नये होगे सहज जीवन में। अगर आप चाहेगे तो अपनी स्मृति का उपयोग करेगे। स्मृति आपके चित्त के सग्रह से पड़ी रहेगी, मौजूद रहेगी, मिट नहीं जायेगी, बनी रहेगी, लेकिन वह ऐसे ही होगी जैसे आपके घर में, नीचे के तल-धर में बहुत-सा सामान भरा है, जब जरूरत होती है, आप निकाल लेते हैं। इसलिए बुद्ध ने उसको नाम दिया है—आगार, कहा है—आवास। स्मृति आगार। वह एक सग्रह है, 'स्टोर हाउस आफ कॉसेमेस'। चेतना का एक सग्रह है जो पड़ा है एक तरफ। 'स्पार्टेनियस एकिजस्टेन्स' को भी जरूरत पड़ेगी स्मृति की। आपको अपने घर वापस लौटना होगा तो आपको अपने घर की स्मृति की जरूरत पड़ेगी। आप उसका उपयोग करें। वह दूसरी बात है। अभी जो मैं कह रहा हूँ वह यह कह रहा हूँ कि सहज जीवन बाले व्यक्ति की स्मृति नष्ट नहीं हो जायेगी। स्मृति पूरी ताजा, पूरे जीवन मौजूद रहेगी। नैर्किन, सहज जीवन बाली चेतना प्रतिपल नयी होकर उसका उपयोग करेगी, उसकी मालिक होगी। श्रृंखलाबद्ध जीवन की चेतना में नया व्यक्ति होगा ही नहीं, पिछली स्मृतियाँ ही नये व्यक्ति को जन्म देती रहेगी। मालिक हो जायेगी स्मृतियाँ और व्यक्ति गुलाम हो जायेगा।

**प्रश्न** कृष्ण-अर्जुन के आपस के जो 'रिलेशस' हैं वहा कृष्ण क्या हर वक्त स्मृति का उपयोग नहीं करते हैं ?

उत्तर जीवन तो हर वक्त स्पार्टेनियस है। स्मृति का उपयोग वह करते हैं। वही तो मैं कह रहा हूँ। स्मृति का उपयोग करने को वह मालिक है और आप अपनी स्मृति के उपयोग करने में मालिक नहीं है, गुलाम है। स्मृति ही आपका उपयोग कर रही है। आप नहीं कर रहे हैं उपयोग। एक आदमी आपके पास बैठा है। आप उससे पूछते हैं, आप किस जाति के हैं। वह कहता है मैं मुसलमान हूँ। मुसलमान की बाबत अपको एक स्मृति है। आप इस आदमी पर लागू कर देगे। इस मुसलमान से उसका कोई लेना-देना नहीं है। आपके गांव में कोई मुसलमान गुण्डा होगा, उसने मदिर में आग लगा दी होगी। इस विचार से उसका कोई सम्बन्ध नहीं, पर अब आप दूर सरक के बैठ गये कि मुसलमान हैं। अब आप स्मृति के गुलाम हुए। हिन्दुस्तान के हिन्दू किसी

मुसलमान को मार डालेगे, पाकिस्तान में किसी हिन्दू से बदला ले लिया जायेगा। क्या पागलपन है? ये स्मृति काम कर रही है। बस, स्मृति से आप जी रहे हैं। किसी और को मार रहे हैं किसी और के लिए। दो मुसलमानों के बीच क्या सम्बन्ध है, दो हिन्दुओं के बीच क्या सम्बन्ध है? लेकिन नहीं, मुसलमान की बाबत अपनी स्मृति हर मुसलमान पर आप लागू कर लेगे। बड़ी गलत बात कर रहे हैं। स्मृति आपका उपयोग कर रही है, आप स्मृति का उपयोग नहीं कर पा रहे हैं। अगर आप कर रहे होते तो आप कहते-ठीक हैं, यह आदमी एकम मुसलमान है, वह वाई मुसलमान था, इससे उसका कोई मतलब नहीं। ठीक है, इतना हम समझे कि तुम उम्री धर्म को मानते हो जिसको वह आदमी मानता था। लेकिन, इससे क्या फर्क पड़ता है। इससे आप सरकेगे नहीं दूर, इससे आप कोई निर्णय नहीं लेगे। इससे इस आदमी की बाबत आप कोई धारणा तय नहीं करेगे। इस आदमी को देखेगे, समझेगे। उस समझ से ही आप जियेगे। सहज जीवन स्मृति का उपयोग है। श्रूखलाबद्ध जीवन स्मृति की दासता है।

**प्रश्न** आपने कहा कि कृष्ण के हाथों जो मरता है वह पुण्य कर्म का फल है। और, यह बात आप जब कहते हैं तो मन में एक अननन्द-दायक विद्या होती है। एक दूसरा प्रश्न कहूँ, जबाब दें न दें। जो यह नाटक आप कर रहे हैं, यह अकारण ही है?

**उत्तर** बिल्कुल अकारण। यह नाटक हो रहा है। और पुण्य कर्म का फल है ऐसा जब कहता हूँ तो मेरा मतलब सिर्फ इतना है कि इस जीवन में जो भी घटित होता है, इस प्रकट जगत में जो भी घटित होता है, वह अकारण नहीं है। कृष्ण से अगर मिलना हो जाता है तो इस घटना के जगत में मिलना भी आकस्मिक और 'एक्सीडेण्टल' नहीं। इस जगत में कुछ भी आकस्मिक और 'एक्सीडेण्टल' नहीं तो कृष्ण के हाथ से मरना तो हो ही नहीं सकता आकस्मिक। इस जगत में आकस्मिक कुछ भी नहीं है। किसी से हम मिले हैं, मिल रहे हैं। किसी से हम लड़े हैं, लड़ रहे हैं, किसी से हम प्रेम में हैं, प्रेम कर रहे हैं। किसी के हम मिलते हैं, किसी के हम शत्रु हैं। यह मब हमारे पूरे अनन्त होने से निकला है। इस होने में आकस्मिक नहीं है। प्रकट जगत में कुछ भी आकस्मिक नहीं है और जब प्रकट जगत में कुछ अकारण प्रकट होता है तब हमें चमत्कार मालूम होने लगता है। क्योंकि वह अप्रकट जगत की खबर लाता है। कृष्ण का होना बिल्कुल अकारण है। अर्जुन से कृष्ण का सम्बन्ध अकारण नहीं है। अर्जुन से कृष्ण की तरफ तो बिल्कुल ही अकारण नहीं। इसे थोड़ा समझने में कठिनाई पड़ेगी।

कृष्ण जैसे अविक्त के साथ हमारे सम्बन्ध 'वन वे ट्राफिक' के हो जाते हैं। हम उसे प्रेम करते हैं, वह हमे प्रेम करता है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। वह प्रेमपूर्ण है, बस इतना कहा जा सकता है। हम उसके पास जाते हैं, उसका प्रेम हमे मिलता है, इसलिए यह हो सकता है कि हम समझते हों कि वह हमे प्रेम करता है। लेकिन, वह सिर्फ प्रेमपूर्ण है। हम उसके पास जाते हैं, प्रेम हम पर झरता है। दूसरी तरफ प्रेम है। हमारी तरफ से जाता है। हमको आता हुआ मालूम पड़ता है, वह हमारी समझ है। कृष्ण की तरफ से किसी का मारा जाना बिल्कुल अकारण है। लेकिन, जो मारा गया है वह अकारण नहीं है। उसकी तरफ से कारण है। वह अपनी जिन्दगी की लड़ी श्रृखलाबद्ध व्यवस्था में जी रहा है। कोई सहज जीवन नहीं है उसका। अमल में राक्षस का जीवन सहज कैसे हो सकता है? या जिनका जीवन सहज नहीं उनका जीवन राक्षस से अन्यथा कैसे हो सकता है? उमका जीवन महज नहीं है, श्रृखलाबद्ध है। वह तो अतीत से जी रहा है। इसलिए वह अगर कृष्ण के हाथ से मरता है तो यह कड़ी उसके अतीत से ही निकलती है। कृष्ण के लिए अकारण है। वह नहीं मरता तो कृष्ण उमको ढूँढ़ते हुए नहीं फिरते। वह आ गया है मामने, बात और है। कृष्ण अगर किसी को प्रेम कर रहे हैं और वह नहीं मिलता तो वह ढूँढ़ते नहीं फिरते। सामने आ गया है, बात और है। अगर कृष्ण को कोई भी न मिले, वह अकेले जगल में बैठे हो तो भी प्रेम करते रहेंगे उस जगल के शून्य को, उस निपट एकात को। उस निर्जन को उनका प्रेम मिलता रहेगा। इससे कोई फर्क नहीं पड़ेगा।

**प्रश्न :** आप जो कुछ कृष्ण के बारे में कह रहे हैं, उनके गुणों का वर्णन कर रहे हैं तो ऐसा लगता है कि उनकी भक्ति के प्रवाह में हम वह जायेंगे। ऐसा क्या सम्बन्ध नहीं है कि उनमें कुछ दोष भी हों। क्या यह जल्दी है कि उनके हर कर्म को 'जस्टीफाई' ही करते चले— चाहे वह रास लीला हो, चाहे वह वस्त्रहरण हो, चाहे अशब्दयामा मारा गया हो, या शूल बुलवाना हो युधिष्ठिर जैसे आदमी से? हम इस धारा ही में थवि सोचते चले तो मुझे लगता है कि बहुत वैज्ञानिक हमारी यह 'अप्रोच' न हो पायेगी।

**उत्तर** यह बात बहुत ठीक है, यह बात बिल्कुल ठीक है कि हम कृष्ण में थोड़े दोष क्यों न देखें? लेकिन, देखने की कोशिश वैज्ञानिक होगी, देखने की चेष्टा वैज्ञानिक होगी। नहीं, हम दोष न देखें ऐसा अगर तथ करके चले तो वह

वैज्ञानिक न होगा। और, हम दोष देखें ही ऐसा सोच कर चले, वह भी वैज्ञानिक न होगा। वैज्ञानिक तो इतना ही होगा कि हम कृष्ण को देखें और कृष्ण जैसे दिखायी पड़ें वैसा देखें। मुझे जैसे दिखायी पड़ रहे हैं वैसा मैं कह रहा हूँ। आप भी वैसा ही देखें, ऐसा आग्रह करूँ तो अवैज्ञानिक हो जायेगा। आपको वैसे दिखायी पड़ जाएँ ठीक है, न दिखायी पड़ जाएँ, ठीक है। आपको दोष दिखायी पड़े, बराबर देखें, भेरी बिल्कुल न माने। मुझे जैसे दिखायी पड़ रहे हैं मैं वैसे देख सकता हूँ। अन्यथा देखने की कोशिश करूँ तो अवैज्ञानिक हो जायेगा। वह भी किर कोशिश हो जायेगी।

दूसरी बात भी सोचने जैसी है— वैज्ञानिक ‘अप्रोच’। थोड़ा सोचने जैसा है कि क्या जगत में सभी चीजे ऐसी हैं जिन पर वैज्ञानिक ‘अप्रोच’ लागू हो सके? क्या कुछ चीजे ऐसी हैं जिन पर वैज्ञानिक अप्रोच लागू करना अवैज्ञानिक हो? कुछ चीजे ऐसी हैं। जैसे प्रेम पर हम वैज्ञानिक ढग से सोच ही नहीं सकते। उपाय ही नहीं है। यानी प्रेम का होना ही अवैज्ञानिक है। अगर हम वैज्ञानिक ढग से मोचे तो हमें इन्कार ही करना पड़ेगा कि प्रेम है ही नहीं, और कोई अन्तर नहीं होगा। अब इसमें कठिनाई होगी। इसे हम ऐसा समझे

जैसा मैंने अभी कहा था, आँख देखती है, कान सुनते हैं। अगर हम आँख के ढग से कान की सुनी हुई चीजों को सोचे तो मुश्किल हो जायेगा। आँख तो कह देगी कि कान देखते ही नहीं। स्वभावत, और आँख सुन सकती नहीं, तो आँख यह तो मानेगी कैसे कि कान सुनते हैं? आँख दो बाते तय करेगी— पहली बात तो यह तय करेगी कि कान देखते नहीं जो ठीक है उसका तय करना। दूसरी बात वह यह तय करेगी कि कान सुनते नहीं, क्योंकि आँख स्वयं सुन सकती नहीं, परन्तु गलत होगा उसका यह तय करना। वैज्ञानिक प्रक्रिया ऐसी है कि उसकी पकड़ में ‘मैटर’ के अतिरिक्त और कुछ कभी आता नहीं, पदार्थ के अतिरिक्त और कभी कुछ आता नहीं। आँख की पकड़ में प्रकाश के अतिरिक्त और कुछ आता नहीं। कान की पकड़ में ध्वनि के अतिरिक्त और कुछ आता नहीं। फिर, एक ही उपाय रह जाता है कि वैज्ञानिक कह दे कि पदार्थ के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। अब तो वैज्ञानिक और मुसीबत में पड़ गया है, क्योंकि पदार्थ को खोजते-खोजते वह उस जगह पहुँच गया जहा अब पदार्थ भी पकड़ में नहीं आता। इस पिछले पन्द्रह बीस वर्षों में वैज्ञानिकों को स्वीकृति देनी पड़ी है कि कुछ ऐसा भी है जो हमारी पकड़ में नहीं आता। अगर है, क्योंकि अगर उसको इन्कार करे तो जो पकड़ में आता है, उसकी दुनियाद खिसक जाती है। अगर वह इन्कार

कर दे कि इलेक्ट्रान नहीं है, क्योंकि वे हमारी पकड़ में नहीं आते तो फिर एटम छूट जाता है पकड़ से। क्योंकि वह पकड़ में आता है, लेकिन वह उन्हीं पर खड़ा है जो पकड़ में नहीं आते। इसलिए, अब विज्ञान को थोड़ा सिर झुका कर स्वीकृति देनी पड़ी है कि कुछ है जो हमारी पकड़ में नहीं आता है, लेकिन है। फिर भी, विज्ञान एकदम स्वीकृति नहीं देगा। वह यह कहता है कि आज नहीं कल, वह एक दिन हमारी पकड़ में आ जायेगा। हम कोशिश करते रहेंगे पकड़ने की। हो सकता है कि किसी दिन इलेक्ट्रान पकड़ में आ जाय, लेकिन लगता नहीं है कि किसी दिन प्रेम भी किसी प्रयोगशाला की पकड़ में आ जाय। अगर हम प्रेम को पकड़ने यथे तो शायद हो सकता है, फेफड़ा पकड़ में आ जाय, हृदय पकड़ में नहीं आयेगा। इसलिए, वैज्ञानिक मानने को तैयार नहीं कि हृदय जैसी कोई चीज आपके भीतर है। वह कहता है, फुफ्फुस है, फेफड़ा है, हृदय की बात मत करो। यह कविता है। लेकिन, हम कैसे मान ले कि हृदय नहीं है। क्योंकि, हमारे अपने निजी अनुभवों में तो हृदय आता है। एक आदमी भर जाता है प्रेम के लिए। फेफड़ा जिलाये रखता है और आदमी मर जाता है उस हृदय के लिए जो है ही नहीं। या तो हम कह दे कि यह मरना कूठ है। मगर, यह आदमी मरा। हमने मजनू को देखा, जो हृदय के पीछे दीवाना है। इसको इन्कार कैसे करियेगा, मजनू है तो। यह लैला को सोचता है, काव्य करता है, गीत गाता है, भीतर जीता है, लेकिन कहीं जीता तो है। और, फेफड़े की जाँच करने से कहीं लैला पकड़ में आती नहीं, लेकिन इसके हृदय में कहीं चलती चली आती है।

वैज्ञानिक ढग की पकड़ से हम चलेंगे तो कृष्ण एक महापुरुष रह जायेगे जिनमें दोप भी होंगे, अच्छाइया भी होगी, बुराइयां भी होगी। लेकिन, ध्यान रहे, वह कृष्ण न रह जायेगे। मैं जिस कृष्ण की तलाश की बात करता हूँ वह किसी एक महापुरुष की बात नहीं कर रहा हूँ। मैं एक 'फेनामिना', एक घटना की बात कर रहा हूँ। यह घटना वैज्ञानिक पकड़ से समझ में नहीं आयेगी और इतना तो आप समझ ही सकते हैं कि मैं आदमी विज्ञानविरोधी नहीं हूँ। यानी मैं विज्ञान को वहा तक खीचता हूँ जहा तक वह कई बार खीचता भी नहीं। जहा वह बिल्कुल सास तोड़कर दम तोड़कर गिर जाता है तभी छोड़ता हूँ। मुझ पर अगर कोई इल्जाम हो सकता है तो वह अति वैज्ञानिकता का हो सकता है, कम वैज्ञानिकता का नहीं हो सकता। मैं खीचता तो बहुत हूँ, लेकिन मैं क्या करूँ, एक जगह आ जाती है जहा विज्ञान दम तोड़ देता है। दो उपाय हैं, या तो मैं भी वही खड़ा रह जाऊँ, लेकिन मुझे आगे भी स्पेस दिखायी पड़ती है।

**प्रश्नः** तो क्या कभी मन और हृदय, विचार और भाव एक नहीं हो जाते ?

उत्तर हो जाते हैं। बहुत गहरे में तो एक होते ही हैं। बहुत ऊपर ही अलग-अलग होते हैं। जैसे, वृक्ष की शाखाएँ ऊपर अलग-अलग होती हैं और जड़ में एक हो जाती हैं। ऐसे ही विचार भी हमारी एक शाखा है हमारे होने की, भाव भी हमारी एक शाखा है, हमारे होने की। दोनों ऊपर-ही-ऊपर अलग होते हैं, बहुत गहरे में तो एक होते हैं। जिस दिन हम यह ज्ञान लेते हैं कि विचार और भाव एक है उस दिन विज्ञान और धर्म दो नहीं रह जाते। उस दिन विज्ञान की एक सीमा हो जाती है और एक अतिक्रमण का जगत भी हो जाता है, जहां धर्म शुरू होता है। कृष्ण धर्मपुरुष है और मैं उनकी धर्मपुरुष की तरह ही बात कर रहा हूँ। और, जैसे वे मुझे दिखायी पड़ते हैं, वैसे मैं बात करता हूँ। उसमें आप उन्हे वैसा मानकर चलेगे ऐसा मेरा आग्रह जरा भी नहीं है। मुझे जैसे दिखायी पड़ते हैं उसमें से अगर थोड़ा-सा भी आपको दिखायी पड़ा तो वह आपको बदलने वाला सिद्ध हो सकता है।



**पर्व : आठ**

रासबिहारी और कहलाये बहुचारी  
कुञ्जा और कृष्ण का समान्न  
राम-हनुमान कृष्ण-मीरा की निजता  
गो भवित थो माता थो वध





८

प्रश्न • रहस्य क्या है कि रासविहारी होते हुए भी कृष्ण बह्यारी कहलाये—इसका मर्म क्या है ? आज के आधुनिक समाज में रासलीला का क्या महत्व होगा ? कृपया इस पर प्रकाश डालें ।

उत्तर रास को समझने के लिए पहले यह समझना है कि सारा जीवन ही रास है । जैसा मैंने कहा सारा जीवन, विरोधी शक्तियों का सम्मिलन है और जीवन का सारा आनंद और रहस्य विरोधी के मिलन में छिपा है । पहले तो रास का जो 'सैटाफिजिकल', जो जागतिक अर्थ है वह समझ लेना उचित है ।

फिर कृष्ण के जीवन में उसकी जो अनुष्ठाया है, उसे समझना चाहिए।

चारों तरफ आँखें उठाये तो रास के अतिरिक्त और क्या हो रहा है? आकाश में दौड़ते हुए बादल हो या सागर की तरफ दौड़ती हुई सरिताएँ हो। बीज फूलों की यात्रा कर रहे हो, या भौंवरे गीत गाते हो, पक्षी चहचहाते हो, या मनुष्य प्रेम करता हो, या ऋण और धन विद्युत आपस में आकर्षित होती हो, या स्त्री और पुरुष की निरन्तर लीला और प्रेम की कथा चलती हो—इस पूरे फैले हुए विराट को अगर हम देखे तो रास के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हो रहा है। रास बहुत 'काजमिक' अर्थ रखता है। पहला तो यही कि इस जगत के विनियोग में, इसके निर्माण में, इसके सृजन में जो मूल आधार है वह विरोधी सत्यों के मिलन का आधार है।

एक मकान हम बनाते हैं। एक द्वार हम बनाते हैं, तो द्वार में उल्टी इँटें लगा कर आर्च बन जाता है। एक दूसरे के खिलाफ लगी इंटे पूरे भवन को सम्भाल लेती है। यदि एक सी इंटे लगा दे तो द्वार नहीं बनेगा और भवन उठेगा ही नहीं। शक्ति जब दो हिस्सों में विभाजित हो जाती है तो खेल शुरू हो जाता है। शक्ति का दो हिस्सों में विभाजित हो जाना ही जीवन की समस्त पर्तीं पर, समस्त पहलुओं पर खेल की शुरूआत है। शक्ति एक हो जाती है, खेल बन्द हो जाता है। शक्ति एक हो जाती है तो प्रलय हो जाता है। शक्ति दो में बट जाती है तो सृजन हो जाता है।

रास का अर्थ—मूर्छिट की जो धारा है, उस धारा का ही गहरे-से-गहरा सूचक है। जीवन दो विरोधियों के बीच खेल है। ये विरोधी लड़ भी सकते हैं, तब युद्ध हो जाता है। ये दो विरोधी मिल भी सकते हैं, तब प्रेम हो जाता है। लेकिन, लड़ना हो कि मिलना हो, दो की अनिवार्यता है। सृजन दो के बिना मुश्किल है। कृष्ण के रास का क्या अर्थ होगा इस भन्दर्भ में? हमारी स्थूल आँखें जो देख सकती हैं, उतना ही दिखायी पड़ेगा। कृष्ण का गोपियों के साथ नाचना साधारण नृत्य नहीं है। कृष्ण का गोपियों के साथ नाचना उस विराट रास का छोटा-सा नाटक है। उस विराट का एक आणविक प्रतिबिम्ब है। वह जो समस्त में चल रहा है नृत्य, उसकी एक बहुत छोटी-सी झलक है। इस झलक के कारण ही यह सम्भव हो पाया कि उस रास का कोई कामुक अर्थ नहीं रह गया। ऐसा नहीं है कि कामुक अर्थ के लिए कोई निषेध है, लेकिन बहुत पीछे छूट गयी वह बात। कृष्ण, कृष्ण की तरह वहा नहीं नाचते, कृष्ण वहा पुरुष तत्व की तरह ही नाचते हैं। गोपिकाएँ स्त्रियों की तरह वहा नहीं नाचती,

गहरे से वह प्रकृति हो हो जाती है। प्रकृति और पुरुष का नृत्य है। जिन लोगों ने उसे कामुक अर्थ में ही समझा है उन्होंने नहीं समझा। वह नहीं समझ पायेगे। वहाँ व्यक्तियों से कोई लेना-देना नहीं, 'इण्डीवीजुअल्स' का कोई मतलब नहीं। इसीलिए यह भी सम्भव हो पाया कि एक कृष्ण बहुत गोपियों के साथ नाच सके। अन्यथा एक व्यक्ति बहुत स्त्रियों के साथ नहीं नाच सकता है। एक व्यक्ति बहुत स्त्रियों के साथ, एक साथ प्रेम का खेल नहीं खेल सकता है। वहाँ प्रत्येक गोपी को ऐसा दिखायी पड़ सका कि कृष्ण उसके साथ नाच रहा है। प्रत्येक गोपी को अपना कृष्ण मिल सका, और कृष्ण जैसे हजार में बट गये।

निश्चित ही, इसे हम व्यक्तिवाची मानेंगे तो कठिनाई में पड़ेगे। विराट प्रकृति और विराट पुरुष के ममिलन का वह नृत्य है। नृत्य को ही क्यों चुना होगा इस अभिव्यक्ति के लिए? जैसा मैंने सुबह कहा, नृत्य निकटतम है अद्वैत के। नृत्य निकटतम है उत्सव के। नृत्य निकटतम है रहस्य के।

इसे यों भी समझने का प्रयत्न कर कि मनुष्य की पहली भाषा नृत्य है। क्योंकि, मनुष्य की पहली भाषा 'जेस्चर' है। आदमी जब नहीं बोला था तब भी हाथ-पैर से बोला था। आज भी गूगा नहीं बोल मकता तो हाथ-पैर से बोलता है। मुद्रा से बोलता है। भाषा तो बहुत बाद में विकसित होनी है। तितलियाँ भाषा नहीं जानती, लेकिन नृत्य जानती है। पक्षी भाषा नहीं जानते, लेकिन नृत्य जानते हैं। इशारा पहचानते हैं। मारी प्रकृति पहचानती है। इसलिए, रास के लिए नृत्य ही क्यों केन्द्र में आ गया, उसका भी कारण है। 'जेस्चर' की भाषा, इशारे की भाषा गहनतम है, जो मनुष्य के चिन्त के बहुत गहरे हिस्सों को स्पर्श करती है। जहा शब्द नहीं पहुँचते वहा नृत्य पहुँच जाता है। जहा व्याकरण नहीं पहुँचती वहा धृुधर्म की आवाज पहुँच जाती है। जहा कुछ समझ में नहीं आता वहा नृत्य कुछ समझा पाता है। इसलिए, दुनिया के किसी कोने में नर्तक चला जाय, समझा जा सकेगा। आवश्यक नहीं है कि कोई भाषा उसे समझनी जरूरी हो। यह भी आवश्यक नहीं है कि किसी मध्यता और सस्कृति की विशेष आवश्यकता हो उसे समझने के लिए। मनुष्य के 'कलेक्टिव अनकासम' में, सामूहिक अचेतन में नृत्य की भाषा का ल्याल है। यह जो नृत्य चल रहा है चाद के नीचे, आकाश के नीचे इस नृत्य को मैं साधारण नृत्य नहीं कहता हूँ। इसलिए कि यह किसी के मनोरजन के लिए नहीं हो रहा है, किसी को दिखाने के लिए नहीं हो रहा। कहना चाहिए कि यह एक अर्थ में 'ओवर फ्लोइंग' है। इतना आनन्द भीतर भरा है कि वह सब तरफ बह रहा है। इस आनन्द को

बहने के लिए अगर दोनों विरोधी शक्तियाँ एक साथ मौजूद हो तो सुविधा हो जाती है। पुरुष बह नहीं पाता अगर स्त्री मौजूद न हो। वह कुठित और बन्द हो जाता है। वह सरिता नहीं बन पाना, सरोवर बन जाता है। स्त्री नहीं बह पाती अगर पुरुष उपलब्ध न हो। दोनों की मौजूदगी तत्काल उनके भीतर जो छिपी हुई शक्तियाँ हैं उनका बहाव बन जाती है। हमने निरन्तर स्त्री-पुरुष का जो प्रेम देखा है, उस प्रेम में वही बहाव है। काश, उसे हम व्यक्तिवाची न बनायें तो वह बहाव बड़ा पारमार्थिक अर्थ ले लेता है। स्त्री के पास पुरुष अपने को हल्का अनुभव करता है। स्त्री पुरुष के पास अपने को हल्का अनुभव करती है। अलग-अलग होकर वे 'टेस' और तनाव से भर जाते हैं। वह हल्कापन क्या है? उनके भीतर कुछ भरा है, जो बह गया और वे हल्के हो गये। पीछे 'वेटलेसनेस' छूट जाती है। लेकिन, हम स्त्री और पुरुष को बाधने की कोशिश में लगे रहते हैं। जैसे ही हम स्त्री और पुरुष को बाधते हैं, नियम और व्यवस्था देते हैं, वैसे ही बहाव क्षीण हो जाते हैं, वैसे ही बहाव रुक जाते हैं। व्यवस्था से जीवन की गहरी लीला का कोई मम्बन्ध नहीं है। कृष्ण का यह रास बिन्कुल ही अच्यवस्थित है। कहना चाहिए 'क्योआटिक' है। नीसे का एक अद्भुत वचन है जिसमें उसने कहा है—'ओनली आउट आफ केआम स्टार्स आर बॉर्न'—सिफ़ गहन अराजकता में सितारा का जन्म होता है। जहा कोई व्यवस्था नहीं है वहा सिर्फ़ शक्तियों का खेल रह जाता है। बहुत जन्दी कृष्ण मिट जाते हैं व्यक्ति की तरह, शक्ति रह जाते हैं। बहुत ग्रीष्म गोपियाँ मिट जाती हैं व्यक्ति की तरह, सिर्फ़ शक्तियाँ रह जाती हैं। स्त्री और पुरुष की शक्ति का वह नृत्य है गहन, जो तृप्ति लाता है, गहन आनन्द लाता है। उस नृत्य के द्वारा वह सारा आनन्द जग के कण-कण तक व्याप्त हो जाता है।

कृष्ण जिम चाद के नीचे नाचे है, वह चाद आज भी है। जिन वृक्षों के नीचे नाचे हैं, उन वृक्षों का होना आज भी है। जिन पहाड़ों के पास नाचे हैं वे पहाड़ भी आज हैं। जिस धरनी पर नाचे हैं वह धरती भी आज है। कृष्ण से जो वहा होगा उन लण में वह मब इनमें छिपा है और यह मब उसे पी गये है। वैज्ञानिक आजकल बहुत नयी बात करते हैं। वे कहते हैं कि व्यक्ति तो विदा हो जाते हैं, लेकिन उनमें छोड़ी गयी तरण सदा के लिए रह जाती है। व्यक्ति विदा ही जाते हैं, लेकिन वे जैसे जिये उमके सघात, उमकी 'वैवस्त', वह सबकी मब पूरे अस्तित्व में समा जाती है और लीन हो जाती है। उस पृथ्वी पर, जहाँ कृष्ण नाचे, आज भी कोई नाचे तो कृष्ण की प्रतिध्वनियाँ सुनायी पड़ती हैं।

जहा उन्होंने बासुरी बजायी, जन पहाड़ो से उन बासुरियों के स्वर उठे उन पहाड़ो के पास आज भी कोई बासुरी बजाये तो प्रतिध्वनि सुनायी पड़ती है। जिस यमुना के तट ने उन्हे देखा, जाना और जिसने उनके स्पर्श का अनुभव किया उस यमुना के तट पर आज भी नृत्य हो तो व्यक्ति मिट जाता है और अव्यक्ति धेर लेता है।

मैं रास को स्त्री और पुरुष के बीच विभक्त 'जो विराट की शक्ति है उसका मिलन, उसकी 'ओहर फ्लोइश' का प्रतीक मानता हूँ। इस भाषा में अगर हम ले सके तो आज भी रास का उपयोग है और मदा रहेगा। इधर मैंने निरन्तर अनुभव किया है, जो मैं आपसे कहूँ,— जब ध्यान के लिए हम बैठते हैं तो कई बार मित्रों ने मुझे कहा कि मित्रों को अलग कर दे, पुरुषों को अलग कर दे। ये दोनों अलग रहेंगे तो सुविधा होगी। उनकी सुविधा की दृष्टि नासमझी में मरी हुई है। वे नहीं जानते हैं कि मित्रों अगर इकट्ठी कर दी जाय एक और और पुरुष इकट्ठे कर दिये जायएक और तो यह बिल्कुल मजातीय, एक-सी शक्तिया इकट्ठी हो जाती है और इनके बीच जो बहाव की सभावना है वह कम हो जाती है। लेकिन, उनके ख्याल में नहीं है। मेरी तो समझ ही यही है कि अगर ध्यान हम कर रहे हैं तो मित्रों और पुरुष एकदम मम्मिलित और मिले-जुले हों। उन दोनों की समझ के बाहर की घटनाएँ घटेंगी। उन दोनों की मौजूदगी और अकारण मौजूदगी आपके भीतर से कुछ बहने में, प्रकट होने में, निकल जाने में 'केथामिस' में सहयोगी होंगी। मनुष्य जाति के चिन का इतना बड़ा तनाव, इतना बड़ा 'टेशन' स्त्री और पुरुष को दो जातियों में तोड़ देने से पैदा हुआ है। स्कूल में, कालेज में हम लड़े उड़किया को पढ़ा रहे हैं, दो हिस्सों में बाटकर बिठाया हुआ है। जहा मीं स्त्री और पुरुष है, हम उनको बाट रहे हैं। जब कि जगत की पूरी व्यवस्था विरोधी शक्तियों के होने पर निर्भर है। यह निकटता जितनी सहज और सरल हो उतनी ही परिणामकारक है।

रास का मूल्य सदा ही रहेगा। रास का मूल्य उसके भीतर छिपे हुए गहन तत्वों में है। वह तत्व इतना ही है कि स्त्री और पुरुष दोनों अपने-अपने में अद्भूत है। निकट होकर वे पूरे हो जाते हैं। और, अगर 'अनकण्डीशनली' निकट हो तो बहुत अद्भुत अर्थों में पूरे हो जाते हैं। अगर 'कण्डिशस' के साथ, शर्तों के साथ निकट हो तो शर्तें बाधाएं बन जाती हैं और उनकी पूर्णता पूरी नहीं हो पाती। जब तक पुरुष है पृथ्वी पर, जब तक स्त्री है पृथ्वी पर, तब तक रास बहुत-बहुत रूपों में जारी रहेगा। यह हो सकता है कि वह उतनी महत्ता, उतनी गहनता

और उतनी ऊँचाई को न पा सके जो कृष्ण के साथ पायी जा सकी। लेकिन, हम समझ सके, तो वह पायी जा सकती है। सभी आदिम जातियों को उसका अनुभव है। दिन भर काम करने के बाद आदिम जातिया रात इकट्ठी हो जायेगी। पतिष्ठती का सवाल न रहेगा। वहाँ स्त्री और पुरुष ही रह जायेगे। फिर वे नाचेंगे। नाचते नाचते थकेंगे और सो जायेंगे। इसलिए, आदिवासी के मन में जैसी शांति है, जैसी प्रफुल्लता है, उसकी दीनता में, हीनता में भी जैसी गरिमा है, वह सभ्य-सेसभ्य आदमी सारी सुविधा के साथ भी उपलब्ध नहीं कर पा रहा है। कहीं कोई चूक हो रही है। कहीं कोई बहुत गहरे सत्य को नहीं समझा जा रहा है।

प्रश्न आचार्यधी, रामावतार में जैसे अहिल्या का व्यक्तित्व राम का इतजार करता था और सत्या में से अहिल्या हुई। इसी तरह कृष्णावतार में भगवान् कृष्णचन्द्र का जो समावाम हुआ बिवक्ता (कुञ्जा) के साथ उसका कोई 'स्त्रिचूल' अर्थ घटाते हैं? वह क्या है? उसे जरा स्पष्ट करें।

उत्तर जीवन में भी कुछ सभी समय घटित नहीं होता है। क्षण है, जिनके लिए प्रतीक्षा करनी होती है। समय है, जिसकी राह देखनी होती है। अवसर है, जिनके लिए रुकना पड़ता है। बहुत बहुत आशामों से इस बात को देखना जरूरी है। पत्थर की तरह पड़ी हुई कोई स्त्री—मैं नहीं कहता हूँ कि पत्थर ही हो गयी होगी। पत्थर हो जाना कवि की कल्पना है। लेकिन, कोई स्त्री जो राम से खिल पायेगी, राम के स्पर्श से ही खिल पायेगी, जब तक राम न मिले तब तक पत्थर ही रहती है। ऐसा नहीं कि कोई शिला पड़ी थी। वह तो कवि के 'मेटाफर' है। लेकिन, जो स्त्री राम के स्पर्श से ही जीवन्त हो सकती है और चेतना पा सकती है, किसी और का स्पर्श उसे जड़ ही छोड़ जायेगा। कहानी का मर्म इतना ही है कि हरेक की अपनी प्रतीक्षा है, हरेक की अपनी 'अवेटिंग' है। क्षण आये बिना वह घटित नहीं होती। जो पत्थर की तरह पड़ी थी, पत्थर ही हो गयी। यह सोचने जैसा है कि जब तक किसी स्त्री को उसका प्रेमी न मिल जाय तब तक वह पत्थर ही होती है, उसके भीतर का सब शिलाखण्ड जैसा ही हो गया होता है। वह अनन्त काल तक पत्थर ही रहेगी।

इसे एक तरह से और समझ लेना चाहिए। स्त्री जो है, वह ग्राहक अस्तित्व है। 'रिसेप्टिव एक्जीस्टेस' है। आक्रमक नहीं है, ग्राहक है। स्त्री के व्यक्तित्व में ही गर्भ नहीं है, उसका चित्त भी गर्भ की भाँति है। इसलिए, अग्रेजी का शब्द 'बूमन' बहुत मजेदार है। उसका मतलब है, 'मैंन विथ ए बूम'। स्त्री, गर्भ सहित

एक पुरुष है। स्त्री और पुरुष का सब कुछ 'कॉमिलेंटरी' है। जो पुरुष में नहीं है वह स्त्री में है, जो स्त्री में नहीं है वह पुरुष में है। इसीलिए, वे दोनों मिलकर पूरे हो पाते हैं। स्त्री की ग्राहकता प्रतीक्षा बन जायेगी और पुरुष का आक्रमण खोज बन जायेगा। अहिल्या तो शिलाखण्ड की तरह प्रतीक्षा करेगी, राम नहीं प्रतीक्षा करेंगे। राम अनेक पथों पर खोजेगे। यह बड़े मजे की बात है कि शायद ही किसी स्त्री ने कभी प्रेम निवेदन किया हो—प्रेम निवेदन लिया है, किया नहीं है। शायद ही किसी स्त्री ने अपनी तरफ से कभी पहल की हो। ऐसा नहीं है कि स्त्री पहल नहीं करना चाहती। लेकिन, उसकी पहल प्रतीक्षा बनती है, मार्ग देखती है, राह देखती है और अनन्त जन्मों तक देख सकती है। असल में जब भी स्त्री आक्रमण करती है तभी उसके भीतर से कुछ स्तैरै खो जाता है, और तभी वह कम आकर्षक हो जाती है। उसकी अनन्त प्रतीक्षा में ही उसका अर्थ, उसका व्यक्तित्व और उसकी आत्मा है। अनन्त काल तक उसकी प्रतीक्षा चल सकती है।

कृष्ण के लिए भी कोई प्रतीक्षारत हो सकता है। और कृष्ण के बिना शायद वह उस हर्ष को, उस प्रफुल्लता को, उस खिल जाने को उपलब्ध ही न हो सके। इस देश के नियमों में एक बहुत अद्भुत नियम था, वह समझ लेने जैसा है। वह नियम यह था कि स्त्री साधारणत न आक्रमण करती है, न निवेदन करती है, न प्रार्थना करती है। लेकिन, यदि कभी स्त्री प्रार्थना करे तो पुरुष का इन्कार अनैतिक है। क्योंकि, यह बहुत 'रेयर' मामला है। अगर पुरुष इन्कार करे तो समझा जाता था कि उसने अपने पुरुषत्व से इन्कार कर लिया। यह नियम इसीलिए बनाया जा सका, क्योंकि यह सामान्य घटने वाला नियम नहीं है। अर्जुन के जीवन में भी एक उल्लेख है तथा एक और उल्लेख में आपको याद दिलाना चाहूँगा।

अर्जुन एक वर्ष के ब्रह्मचर्य की साधना कर रहा है। एक सुन्दर युवती ने उस साधनारत अर्जुन को देखकर उससे निवेदन किया है कि मैं चाहूँगी कि मुझे तुम्हारे जैसे पुत्र उपलब्ध हो। यह भी बड़े मजे की बात है कि स्त्री अगर निवेदन भी करेगी तो प्रेयसी और पत्नी बनने का न कर पायेगी, मा बनने का कर पायेगी। अर्जुन बहुत मुश्किल में पड़ गया है। ब्रह्मचर्य तोड़ा नहीं जा सकता। और नियम बड़ा अर्थपूर्ण है और बड़ा पुरुषगत है कि स्त्री निवेदन करे तो अस्वीकार करना अनैतिक है। अर्जुन अनैतिक भी न होना चाहेगा। अर्जुन ने कहा, मैं तैयार हूँ, पर पक्का कहा है कि मेरे पुत्र मेरे जैसे ही होंगे? इसीलिए, अच्छा हो कि तू मुझे ही पुत्र भान ले। मैं तेरा पुत्र हुआ जाता हूँ। तेरी आकांक्षा पूरी ही जायेगी। मेरे जैसे पुत्र ही चाहिए न तुझे?

ठीक ऐसी ही एक घटना बनार्ड शा के जीवन में है। एक फ्रेंच अभिनेत्री ने बनार्ड शा को निवेदन किया। सुन्दरतम् अभिनेत्री है। उसने लिखा कि मैं आपसे चिकाह करना चाहती हूँ। पश्चिम की स्त्री यद्यपि स्त्री होने से काफी दूर चली गयी है फिर भी वह निवेदन माँ का ही कर सकी। उसने भी निवेदन में यह कहा कि मैं चाहती हूँ कि ऐसे बेटे हो हमारे जिनको मेरा सौदर्य मिल जाय और तुम्हारी बुद्धि मिल जाय। बनार्ड शा को भी वही मुसीबत हुई होगी जो अर्जुन को हुई। लेकिन, अर्जुन पूरब की हवा में पला हुआ था, इसलिए उसने जो उत्तर दिया वह पूरब का था। बनार्ड शा ने जो उत्तर दिया वह पश्चिम का है, इसलिए बनार्ड शा के उत्तर की बेहूदगी बड़ी माफ है। बनार्ड शा ने उसे पत्र लिखा कि देवी, इससे उल्टा भी हो मकता है, जैसा आप कहती है। ऐसा भी हो सकता है कि आपकी बुद्धि मिल जाय हमारे बेटे को, और मेरी शक्ति मिल जाय। पूरब में कोई पुरुष ऐसा उत्तर नहीं दे सकता था। यह तो स्त्री-शक्ति का सीधा अपमान हो गया। स्त्री के द्वारा किये गये निवेदन का सीधा इन्कार हो गया। और इन्कार भी शिष्ट न रहा, अशिष्ट हो गया।

कृष्ण के लिए कुब्जा की प्रतीक्षा है। वह प्रतीक्षा जन्मा की है। कृष्ण इन्कार नहीं कर सकते। इन्कार ही कृष्ण के जीवन में नहीं है। अगर कुब्जा चाहे कि शरीर के तल पर सभोग हो तो कृष्ण उसका भी इन्कार नहीं कर सकते, क्योंकि कृष्ण के मन में शरीर का कोई विरोध नहीं है। शरीर भी है। शरीर की अपनी जगह है। शरीर मब कुछ नहीं है, यह बात दूसरी है। लेकिन, शरीर भी है। उसका अपना रम है, अपना आनन्द है, शरीर का अपना होना है। कृष्ण के मन में उसकी कोई निषेध बात नहीं है। कृष्ण एक माथ शरीर और आत्मा को पी गये है, एक साथ पदार्थ और परमात्मा को ले गये हैं। इसलिए, कृष्ण अगर इसके लिए इन्कार करे कि शरीर के तल पर सभोग नहीं, तो भी पुरुष-शक्ति के द्वारा स्त्री-शक्ति का अपमान ही होगा। वे शरीर के तल पर भी सभोग करने को राजी हैं। कुब्जा की जो आकाशा है वह पूरी करने को राजी है। इस राजी होने से उन्हें राजी होने की चेष्टा नहीं करनी पड़ रही है। इस राजी होने से कोई प्रयास नहीं है। इस राजी होने में जो घटित हो रहा है उसकी सहज स्वीकृति है।

कृष्ण का शरीर के तल पर सभोग हमे कठिन पड़ता है, क्योंकि हम द्वैतवादी हैं। हम शरीर और आत्मा को अलग-अलग मानकर चलने वाले लोग हैं। मेरे देखे, और ऐसा ही देखना कृष्ण का भी है कि शरीर और आत्मा दो नहीं हैं, संभोग और योग दो नहीं हैं, पदार्थ और परमात्मा दो नहीं हैं। शरीर, आत्मा का वह

छोर है जो हमारी आँखों और हाथों की पकड़ में आ जाता है । और आत्मा, शरीर का वह छोर है जो हमारे हाथ, आँख और बुद्धि की पकड़ के बाहर क्लूट जाता है । शरीर दृश्य आत्मा है और आत्मा अदृश्य शरीर है । और, ये दोनों एक हैं और कहीं टूटते नहीं, कहीं खण्डित नहीं होते । शरीर के तल पर जिसे हम सभोग कहते हैं, आत्मा के तल पर वहीं योग है, वहीं समाधि है । कृष्ण के मन में सभोग और समाधि में विरोध नहीं है । सभोग ही समाधि तक द्वार बन जाता है । समाधि ही सभोग तक उतर कर अपनी किरणे पहुचाती है ।

कुब्जा की बात कुब्जा जाने । कुब्जा के लिए क्या है इससे कृष्ण का कोई लेना-देना नहीं है—कृष्ण के लिए क्या है वह कह रहा हूँ । कुब्जा की ऐसी भूमिका कि उसके लिए सभोग समाधि बन सकता है, ऐसा मुझे नहीं लगता है । लेकिन, यह प्रयोजन के बाहर है । कुब्जा ने जो मांगा है, जितना उसका पाव है, कृष्ण उतने पाव को भी भरने को राजी है । वह नहीं कहते उसे भी कि मुझे सागर जैसा पाव चाहिए । क्योंकि, मेरे पास सागर जैसा देने को है । कुब्जा कहती है, मेरे पास तो छोटा-सा भिक्षा-पात्र है । इसमें सिर्फ शरीर ही समाता है । इसमें आत्मा वर्गेरह की मुझे कुछ खबर नहीं है । तो कुब्जा के पाव को वह इसलिए खाली न लौटा देगे कि सागर जैसा पाव लेकर वह नहीं आयी । नहीं, कृष्ण कहेगे जितना पाव है उतना ले जाओ । इसलिए, शरीर के तल पर भी कृष्ण का मिलन सभव हो सका है ।

**प्रश्न** आपने आज प्रातः राम और कृष्ण की तुलना की, मीरा और हनुमान की तुलना की । हमारी परम्परा, राम और कृष्ण, मीरा और हनुमान दोनों को ही समकक्ष रखती हैं । कोई उनमें ‘इनफीरियर’ है या ‘सुपीरियर’ है, ऐसा भाव नहीं रखती । यह ही सकता है कि हनुमान की निजता वही हो जो वह है, राम की निजता वही हो जो वह है । और, हमसे कुछ लोग ऐसे ही जिन्हें हनुमान और राम की निजता ही अनुकूल पढ़े । क्या यह पर-धर्म न होगा कि वे हनुमान और राम को कुछ ‘इनफीरियर’ मानकर कृष्ण और मीरा का ही मार्ग अपनाना चाहें ?

**उत्तर** मैंने जो कहा, उसमें किसी को ‘इनफीरियर’ नहीं कहा । सिर्फ भिन्न-भिन्न कहा । हीन नहीं कहा, अलग-अलग कहा । और जिसकी निजता हनुमान के करीब पड़ती है वह मेरे कहने से हनुमान को हीन न मान सकेगा । मेरी निजता में हनुमान करीब नहीं पड़ते हैं । मैं किसी और की निजता का ध्यान

रखकर शूठा बक्तव्य नहीं दे सकता है। मुझसे आपने पूछा है। मैंने ही उत्तर दिया है। मुझे अगर चुनना हो तो भीरा चुनने जैसी लगेगी। मुझे अगर चुनना हो तो राम छोड़ देने जैसे लगेगे, कृष्ण चुनने जैसे लगेगे। और, मुझे क्यों लगेगे उसके कारण भी मैंने कहे। यह मेरी बात है। ऐसा नहीं है कि आप कृष्ण को चुने और राम को छोड़ें। ध्यान से समझ ले मेरी बात को। आपनी निजता जहा ले जाय वही जाना है। मेरी दृष्टि में राम का व्यक्तित्व मर्यादित है और मैं मानता हूँ कि राम को मानने वाले लोग भी नहीं कहेंगे कि अमर्यादित है। असल में राम को मानने वाले लोग भी राम को इसीलिए मानते हैं कि वह मर्यादा में है। और, जिन जिन के चित्त मर्यादा में जीते हैं उन उन के लिए राम अनुकूल पड़ेगे। लेकिन, मैं कह यह रहा हूँ कि मर्यादा का मतलब सीमा होता है। सीमा के बाहर भी चीजों का होना है। सीमा के बाहर भी सत्य है। इसलिए, पूर्ण सत्य को तो अमर्याद ही घेर सकेगा। पूर्ण सत्य को मर्यादित नहीं घेर सकते। पूर्ण सत्य को तो कृष्ण ही घेर सकेगे, राम नहीं घेर सकते। ऐसा नहीं है कि आपकी परम्परा ने खेद नहीं किया। आपकी परम्परा भी राम को कभी पूर्ण अवतार नहीं कहती है। कृष्ण को ही पूर्ण अवतार कहती है। आपकी परम्परा भी फर्क निश्चित करती है।

हनुमान और भीरा की बाबत कभी आपकी परम्परा ने तुलना की है, यह मुझे पता नहीं। राम और कृष्ण की बाबत तुलना आपकी परम्परा में है और उसमें कृष्ण पूर्ण अवतार है। यह भी साफ है कि राम को मानने वाला कृष्ण को नहीं मान सका है, कान भी बन्द कर लिये हैं उसने कि कृष्ण का नाम कान में न पड़ जाय। और, कृष्ण को मानने वाला भी राम को नहीं समझ पाया है। स्वाभाविक है। लेकिन, तथ्य की बात कहें, क्योंकि मैं तो किसी को माननेवाला नहीं। मुझे जैसा दिखायी पड़ता है, वह मैं कहता हूँ। मैं किसी का मानने वाला नहीं हूँ। मैं न कृष्ण का माननेवाला हूँ, न राम का माननेवाला हूँ। मुझे तो जो दिखायी पड़ता है वह यह है कि राम का एक व्यक्तित्व है साफ-सुधरा, निखरा। उतना निखरा और साफ-सुधरा व्यक्तित्व कृष्ण का नहीं है। हो नहीं सकता। वही उसकी गहराई है। राम ने एक बड़े जगल का एक छोटा-सा हिस्सा काट-कूटकर साफ-सुधरा कर लिया है। वहा से बूँझ हटा दिये हैं, लताए हटा दी है, घास काट दी है, पत्थर हटा दिये हैं। वह जगह बड़ी साफ-सुधरी, बैठने योग्य हो गयी है। लेकिन विराट जगल भी है जो उस जगह को चारों तरफ से घेरे हुए है। अस्तित्व उसका भी है।

डी एच लारेस निरन्तर कहा करता था कि कब हम आदमी को जगल की तरह देखेंगे? अभी तक हमने आदमी को बगिया की तरह देखा है। राम एक

बगिया हैं। कृष्ण एक विराट जगल है, जिसमें कोई व्यवस्था नहीं है। जिसमें क्यारियां कटी हुईं और साफ-सुथरी नहीं हैं, जिसमें रास्ते बने हुए नहीं हैं, पण-डडिया तथ नहीं है। जिसमें भयकर जतु भी है, हमलावर शेर भी है, सिंह भी है, अध्येरा भी है। चोर ढाक भी हो सकते हैं, जीवन को खतरा भी हो सकता है। कृष्ण का व्यक्तित्व तो एक विराट जगल की भाँति है, अनियोजित, 'अनप्लाई' जैसा है वैसा है। राम का व्यक्तित्व एक छोटी-सी बगिया की तरह है। 'किचन गार्डन' की तरह है, जो आपने अपने घर के बगल में लगा रखा है। सब साफ-सुथरा है। कोई खतरा नहीं है, कोई जगली जानवर नहीं है। मैं नहीं कहता, आप 'किचन गार्डन' न लगाये। इतना ही कहता हूँ कि 'किचन गार्डन' 'किचन गार्डन' है, जगल जगल है। कभी जब 'किचन गार्डन' से ऊब जायेंगे तो पायेंगे कि जगल में ही असली राज है। वह हमारा लगाया हुआ नहीं है। आपकी परम्परा ने तो राम और कृष्ण में तुलना कर ली है, लेकिन मीरा और हनुमान में नहीं की। मीरा और हनुमान में करने का बहुत कारण भी नहीं है। लेकिन, कल बात उठी, इसलिए मैंने कहा। मैंने कहा जब राम ही किचन गार्डन है तो हनुमान को कहा रखियेगा? जब मैं राम को कहूँगा कि एक छोटी-सी बगिया है बगले के बाहर, बगले के बाहर बगिया ही होनी चाहिए, जगल नहीं लगाया जा सकता, वह भी मुझे भली-भाँति ज्ञात है। लेकिन, फिर भी बगिया बगिया है, जगल जगल है, और कभी-कभी जब बगिया से ऊब जाते हैं तो जगल की तरफ जाना पड़ता है। और, एक दिन ऊब जाना चाहिए बगिया से, वह भी जरूरी है। तब हनुमान को कहा रखियेगा? हनुमान तो फिर एक गमला रह जाते हैं। बहुत साफ-सुथरे हैं। कई बार राम से भी ज्यादा साफ-सुथरे हैं। क्योंकि, छोटी जगह घेरते हैं। बगले के बगीचे पर जब हवा बहती है तो उसके पौधे भी नाचते हैं, और गमले में लगे पौधे पर जब हवा बहती है तो वह भी डोलता है। लेकिन जगल में ताण्डव चलता है। उसकी बात ही और है। वह नर्तन विराट है। हमारे 'कण्ठोल' के बाहर है। हनुमान नर्तन करते हैं, लेकिन राम की आँखा मान लेगे। मीरा नर्तन करती है तो कृष्ण भी अगर रोके तो नहीं रुकेगी। फर्क बड़े बुनियादी है। मीरा कृष्ण को भी कह देगी, बैठो एक तरफ, हटो रास्ते से, नाच चलने दो। बीच में भत आओ। वह हनुमान न कर सकेगे। हनुमान एक आशाकारी व्यक्तित्व है, एक 'डिसिप्लिन' आदमी है। दुनिया में अनुशासन की जरूरत है, लेकिन जीवन में जो भी विराट है, जो भी गहन गम्भीर है वह सब अनुशासन मुक्त है। जीवन में जो भी सुन्दर है, सत्य है, शिव है, वह बिना किसी अनुशासन के अचानक फूट पड़ता है। मुझे तो जैसा दिखायी पड़ा है वह मैंने कहा है। ऐसे हनुमान हैं,

ऐसी मीरा है। मेरे देखे में चुनाव मेरा, मीरा का है। आपसे नहीं कहता। हीनता और श्रेष्ठता क्या है, वह हरेक व्यक्ति अपनी तय करेगा। अपने से ही तय होगी वह। किसी को हनुमान श्रेष्ठ दिखायी पड़ सकते हैं। उससे वह सिर्फ इतनी ही खबर देगा कि उसकी श्रेष्ठता का मापदण्ड क्या है? और, जब मैं कहता हूँ कि मीरा कहीं श्रेष्ठ दिखायी पड़ती है तो उसका कुल मतलब इतना ही है कि मेरी श्रेष्ठता का अर्थ क्या है? इसमें हनुमान और मीरा गीण है, खूटियों की तरह है। मैं अपने को उन पर टागता हूँ।

**प्रश्न** गो भक्ति को आप किस दृष्टि से देखते हैं। उत्कृति की प्रक्रिया में डार्विन के कथनानुसार बानर को मनुष्य का पूर्वगामी और आत्मा के विकास में गो माता की योनि को पूर्वगामी मानने को राजी हो तो स्पष्ट नहीं होता। क्या कृष्ण प्रधान देश होने के कारण हम गाय को माता कहते हैं? गो-वध के सबध में आपका क्या लक्ष्याल है?

उत्तर डार्विन ने जब सबसे पहले यह बात कही कि आदमी के शरीर को देखकर ऐसा मालूम पड़ता है कि वह बन्दरों की ही किसी जाति की श्रूतिला की आगे की कड़ी है तो स्वीकार करना बहुत मुश्किल हुआ था। क्योंकि, जो आदमी परमात्मा को अपना पिता मानता रहा हो, वह आदमी अचानक बन्दर को अपना पिता मानने को राजी हो जाय, यह कठिन था। एकदम परमात्मा की जगह बन्दर बैठ जाय तो अहकार को बड़ी गहरी चोट थी। लेकिन कोई रास्ता न था। डार्विन जो कह रहा था उसके प्रबल प्रमाण थे। समस्त वैज्ञानिक साधन सहारा दे रहे थे। इसलिए, विरोध तो बहुत हुआ, लेकिन धीरे-धीरे स्वीकार कर लेना पड़ा। इसके सिवाय कोई रास्ता नहीं था। बन्दर के शरीर और आदमी के शरीर में इतनी ही निकटता है, बन्दर की बुद्धि और आदमी की बुद्धि में भी इतनी ही निकटता है। बन्दर के जीने और होने के ढग और आदमी के जीने और होने के ढग में भी इतनी ही निकटता है कि यह इन्कार करना मुश्किल है कि आदमी किसी-न-किसी रूप में बदर की कटियों से न जुङा हूँगा हो। आज भी जब हम रास्ते पर चलते हैं तो हमारे बाये पैर के साथ बाया हाथ हिलता है। आप दोनों हाथ बिल्कुल रोक कर चले तो भी चल सकते हैं। दोनों हाथ कट जाते हैं तो भी आदमी इतनी ही गति से चलता है। लेकिन, बाये पैर के साथ बाये हाथ का हिलना, डार्विन कहेगा, बन्दर जब आरो हाथ पैर से चलता था तब की आदत है। छूटती नहीं। चार हाथ पैर से कभी-न-कभी मनुष्य

जाति का कोई पूर्वज चलना रहा है अन्यथा इसका कोई कारण नहीं है। जहाँ बन्दर की पूछ है वहा वह बाली जगह अभी हमारे पास है, सबके पास है, जहा पूछ होनी चाहिए थी, लेकिन अब है नहीं। लेकिन, वह 'लिकेज' है। वह सबर देती है कि कभी पूछ रही होगी। इस लिहाज से हनुमान बड़े कीमती आदमी है। डार्विन को कुछ पता नहीं था हनुमान का, नहीं तो बड़ा प्रसन्न होता अगर उसको हनुमान का पता चलता तो। क्योंकि, हनुमान का बन्दर होना, ऐसा मालूम पड़ता है कि हनुमान उम बीच की कड़ी के आदमी होगे जब वह पूरे बन्दर भी नहीं रह गये थे और पूरे आदमी भी नहीं हो गये थे। कही 'लिकेज' बीच की होनी चाहिए। हाँ, 'ट्राजिटरी पीरियड' के आदमी होने चाहिए, क्योंकि बन्दर एकदम से आदमी नहीं हो गये होंगे। लाखों साल तक बन्दर आदमी होते रहे होंगे। कुछ चीजे गिरती गयी होंगी, कुछ बढ़ती गयी होंगी। लाखों साल में ऐसा हुआ होगा कि कड़ी टूट गयी। कुछ बन्दर रह गये और कुछ आदमी ही रहे और बीच का हिस्सा गिर गया। वह जो बीच का हिस्सा गिर गया, हनुमान उसी का कहीं न कहीं प्रतीक है। वह जो बीच का हिस्सा अब उपलब्ध नहीं है, उसको खोजा जा रहा है बहुत। सारी जमीन पर हजार तरह की, लाख तरह की खोजे चलती है कि हम उम बीच की कड़ी की हड्डियों को खोज ले जो आदमी और बन्दर के बीच में रही होगी। मैं एक दूसरी बात भी कहता हूँ। मैं यह कहता हूँ कि आदमी के शरीर का जहा तक विकास है, आदमी का शरीर बन्दर के विकास की अगली कड़ी है, लेकिन जहा तक आदमी की आत्मा का सम्बन्ध है वह तक आदमी की आत्मा गाय की आत्मा की अगली कड़ी है। आदमी के पास आत्मा की जो यात्रा है वह गाय से होकर आयी है और शरीर की जो यात्रा है वह बन्दर से होकर आयी है। निश्चित ही, जैसे प्रमाण डार्विन बन्दर से होने के लिए जुटा सकता है ठीक वैसे प्रमाण इस बात के लिए नहीं जुटाए जा सकते, लेकिन दूसरी तरह के प्रमाण जुटाये जा सकते हैं।

गाय को माँ कहने का कारण सिर्फ़ कृषि करने वाला देश नहीं है। क्योंकि बैल को हमने पिता नहीं कहा। गाय को माँ कहने का कारण सिर्फ़ गाय की, कृषि प्रधान देश की उपादेयता और उपयोगिता मात्र नहीं है। सिर्फ़ उपादेयता होती तो हर उपादेय चीजों को हम माँ नहीं बना लेते हैं। कोई कारण नहीं है। रेलगाड़ी को कोई माँ नहीं कहता है। बहुत उपादेय है। हवाई जहाज को कोई माँ नहीं बना लेता। बहुत उपादेय है। दुनिया में उपादेय चीजों को किस कौम ने कब माँ कहा है? विचारणीय जो है, वह यह है कि उपादेय चीज तो सभी के

लिए कुछ-न-कुछ रही है । लेकिन, जिस चीज़ की 'यूटिलीटी' हो उसको माँ कहने का क्या सबध है? कोई और कारण है ।

वह कारण मेरे अपने अनुभव में, जैसे बन्दर पिता है डाकिन के हिसाब से वैसे गाय माँ है । यह किन आधारों पर मैं कहता हूँ? इसके सारे आधार साइकिक रिसर्च के ही आधार हो सकते हैं । मनस के और जाति स्मरण के आधार हो सकते हैं । हजारों योगियों ने निरतर इसपर प्रयोग करके यह अनुभव किया कि वह जितने पीछे लौटते हैं, जब तक याद आती है तब तक मनुष्य के जन्म होते हैं, लेकिन मनुष्यों के जन्मों के पीछे जो स्मरण आना शुरू होता है वह गाय का जन्म शुरू होता है । अगर आप अपने पिछले जन्मों की स्मृति में उत्तरे तो बहुत-से जन्म तो मनुष्य के होगे—सबके, कुछ के कम, कुछ के ज्यादा । लेकिन, जिस जगह से मनुष्य का जन्म समाप्त होगा उसके पहले गाय का जन्म शुरू हो जायेगा । यह जाति स्मरण के परिणामों का फल है । जिन लोगों ने जाति स्मरण पर प्रयोग किये, अपने पिछले जन्म की स्मृतियों की खोज-बीन की, उन्होंने पाया कि आदमी की स्मृतियों के बाद जो पहली पर्त मिलती है, वह पर्त गाय की स्मृति की है । इस गाय की स्मृति के आधार पर गाय को माँ कहा गया । ऐसे भी, अगर हम सारे पशु जगत में खोजने जाय तो गाय के पास जैसी आत्मा दिखायी पड़ती है वैसी किसी दूसरे पशु के पास दिखायी नहीं पड़ती । अगर हम गाय की आँख में ज्ञाके तो जैसी मानवीयता गाय की आँख में झलकती है वैसी मानवीयता किसी दूसरे पशु की आँख में नहीं झलकती । जैसी सरलता, जैसी विनम्रता गाय में दिखायी पड़ती है वैसी किसी पशु में नहीं दिखायी पड़ती । आत्मिक दृष्टि से गाय विकसिततम मालूम पड़ती है समस्त पशु जगत में । उसका यह जो विकसित होना है यह भी प्रमाण बन सकता है कि अगला चरण गाय का जो होगा वह आत्मिक छलांग का होगा । बन्दर की अगर हम शारीरिक बैचैनी समझे तो हमें स्थाल में आ सकता है कि यह जल्दी अपने शरीर के बाहर छलांग लगायेगा । यह रुक नहीं सकता । यह इस शरीर से राजी नहीं हो सकता । बन्दर राजी ही नहीं है किसी चीज़ से । वह पूरे बक्त बैचैन, चचल और परेशान है । आपने व्यान किया, जब बच्चे पैदा होते हैं तो उनकी आँखों में गाय का भाव होता है और शरीर में बन्दर की व्यवस्था होती है । छीटे बच्चे को देखें तो शरीर तो उसके पास बिल्कुल निपट बन्दर का होता है लेकिन, आँख में ज्ञाके तो गाय की आँख होती है । इसलिए मैं कहता हूँ कि गाय को माँ कहने का कारण है । यह सिर्फ़ कृषि प्रधान होने की वजह से ऐसा नहीं हुआ । इसके 'साइकिक', बहुत मानसिक खोजों का कारण है । अब दुनिया में जब 'साइकिक'

'रिसर्च' बदती चली जाती है तो मैं समझता हूँ कि बहुत देर नहीं लगेगी कि इस देश की इस खोज को समर्थन विज्ञान से मिल जाय।

अगर हम हिन्दुओं के अवतार देखें तो हमें स्थाल में आ सकता है। हिन्दुओं का अवतार मछली से शुरू होता है और बुद्ध तक चला जाता है। पहले यह बात बड़ी मुश्किल लगी थी कि मछली का अवतार। मत्स्य का अवतार, पागल तो नहीं है आप। लेकिन, अब जब विज्ञान और जीव शास्त्र कहता है कि जीवन का पहला अस्तित्व मछली से शुरू हुआ तब बात कुछ स्पष्ट होती है। और, विज्ञान की कुछ ऐसी छाप है हमारे मन पर कि फिर हम मजाक नहीं उड़ा सकते। विज्ञान कहता है कि मछली ही शायद पहला जीवन का विकसित रूप है। फिर मछली से ही सारा विकास हुआ। मछली को इस देश ने पहला अवतार माना है। अवतार का कुल मतलब होता है, चेतना का अवतरण। यह भाषा धर्म की है, और जब विज्ञान कहता है कि मछली पहला जीवन मालूम पड़ती है, तब भाषा उसके पास विज्ञान की हो जाती है। हमारे पास एक अवतार और भी अद्भुत है—नूसिह अवतार। जो आधा पशु और आधा मनुष्य का अवतार है। जब डार्विन कहता है, बीच में कड़िया रही होगी जो आधी पशुता की, आधी मनुष्यता की रही होगी तब हमें कठिनाई नहीं होती, लेकिन नूसिह अवतार को पकड़ने में कठिनाई होती है। वह भाषा धर्म की है। लेकिन, उसके भी पीछे गहन अतर-दृष्टिया समाविष्ट है। गाम भी है उसी अर्थों में जिस अर्थों में बन्दर पिता है। डार्विन ने फिक्र की शरीर की, क्योंकि पश्चिम शरीर की चिन्ता में सलग्न है। इस देश ने फिक्र की आत्मा की, क्योंकि यह देश आत्मा की चिन्ता में सलग्न है। इस देश में इसकी बहुत फिक्र नहीं रही कि शरीर कहा से आता है। कहीं से भी आता हो, लेकिन आत्मा कहा से आती है यह हम जरूर जानना चाहते रहे। इसलिए, हमारी 'एमफोसिस' शरीर के विकास पर न होकर आत्मा के विकास पर जयी।

दूसरी बात पूछी है कि गो-वध के सम्बन्ध में मेरा क्या स्थाल है?

मैं किसी वध के पक्ष में नहीं हूँ। वध के पक्ष में होने की तो बात ही नहीं उठती। लेकिन, मैं पक्ष में हूँ या नहीं, इससे वध रुकेगा नहीं। परिस्थितियाँ गो-वध कराती ही रहेगी। मैं मासाहार के पक्ष में नहीं हूँ, लेकिन मासाहार के पक्ष में हूँ या नहीं इससे फर्क नहीं पड़ता। परिस्थितियाँ ऐसी हैं कि मासाहार जारी रहेगा। जारी इसलिए रहेगा कि आज भी हम इस स्थिति में नहीं हो पाये कि शाकाहारी प्रोज़्जन सारे जगत् को दे सके। सायं जगत् जो बहुत दूर है, अगर एक सुल्क जी

पूरा शाकाहारी होने का निर्णय कर ले तो मर जायेगा। शाकाहारी होने के लिए जो सारी व्यवस्था हमे जुटानी चाहिए वह हम जुटा नहीं पाये। इसलिए, मासा-हार मजबूरी की तरह जारी रहेगा। 'नेसेसरी ईविल' की तरह। गो-वध भी जारी रहेगा 'नेसेसरी ईविल' की तरह। और, बड़े मजे की यह बात है कि जो लोग गो-वध बन्द हो, इसके लिए आतुर हैं, वह गो-वध से जो मिलता है लोगों को, उसको देने के लिए उनकी कोई चेष्टा नहीं है। गो-वध किसी दिन बन्द हो सकेगा, हो सकता है। और मैं मानता हूँ गो-वध भी बन्द उनकी वजह से होगा, जो गो-वध बन्द करने के बिल्कुल पक्ष में नहीं है। यह गो-वध बन्द करने वाले लोगों की वजह से बन्द नहीं होनेवाला है, क्योंकि बन्द करने की वह कोई व्यवस्था नहीं जुटा पाते। सिर्फ नारेबाजी या कानून या नियम, इनसे कुछ होने वाला नहीं है। आज भी जमीन पर सर्वाधिक गाये हमारे पास हैं और सबसे कमज़ोर और सबसे मरीज। जिनके पास बहुत कम गाये हैं और जो बहुत गो-वध करते हैं उनके पास बड़ी म्वस्थ, बड़ी जीवत गाये हैं। एक-एक गाय चालीस किलो दूध दे सके। हमारी गाय आधा किलो भी देते भी बड़ी कुपाह है। इन अस्थि-पजरों को हम जिन्दा रखने की कोशिश में लगे हैं। इसके लिए भोजन के अतिरिक्त साधन इकट्ठे करने ज़रूरी हैं, लेकिन अभी तक भी शाकाहारी, ठीक से मासाहारी के योग्य भोजन का उत्तर नहीं दे पाये। उनकी बात सही है। उनका तर्क उचित है।

यह बड़े मजे की बात है कि गाय भी गैर-मासाहारी है और बन्दर भी गैर-मासाहारी है। शरीर भी आदमी का जहा से आया है वह गैर-मासाहारी प्राणी से आया है। और, आत्मा भी जहा से आयी है वह भी गैर-मासाहारी प्राणी से आयी है। छोटी-मोटी चीटिया बर्गरह को बन्दर कभी खा जाय, बात अलग है, ऐसे मासाहारी नहीं है। गाय तो मासाहारी है ही नहीं, मजबूरी में मास खा जाय, बात अलग, खिला दे कोई, बात अलग। ये दोनों याकान्पथ गैर-मासाहारी हैं और आदमी मासाहारी क्यों हो गया? आदमी के शरीर की पूरी व्यवस्था गैर-मासाहारी है। उसके पेट की अस्थियों का ढाचा गैर-मासाहारी है। उसके चित्त के सोचने का ढग गैर-मासाहारी है। फिर, आदमी मासाहारी क्यों है? मासाहारी होना आदमी की मजबूरी है। अभी तक शाकाहार का हम पूरा भोजन नहीं जुटा पाये इसलिए मेरी अपनी समझ में गो-वध जारी रहेगा। जारी नहीं रहना चाहिए, लेकिन जारी रखना पड़ेगा। और, सिर्फ उसी दिन रुक सकेगा कि जिस दिन हम 'सिथिटिक फूड' पर आदमी को ले जाने के लिए राजी हो जाय, उसके पहले नहीं रुक सकता है। जिस दिन हम भोजन के मामले में वैज्ञानिक भोजन पर आदमी को ले जाय, उस दिन रुक सकेगा। इसलिए, मेरी चेष्टा गो-वध बन्द न हो,

इसमें जरा भी नहीं है। यह सब बिल्कुल फिजूल बातें हैं, जिनको चलाकर हम सभी खराब करते हैं और कुछ होता नहीं। मेरी चिन्ता इसमें है कि आदमी को हम ऐसा भोजन दे सके जो उसे मासाहार से मुक्त कर सके। अब जमीन से पैदा हुआ भोजन काम नहीं कर सकेगा, अब तो हमें फैक्टरी में बनायी गयी गोली भोजन के लिए उपयोग में लानी पड़ेगी। साढे तीन अरब और चार अरब के बीच सख्ता डोलने लगी मनुष्य की। इस सख्ता के लिए भोजन का कोई उपाय नहीं। और, यह सख्ता रोज बढ़ती जायेगी, हमारे सब उपाय के बाबजूद बढ़ती जायेगी। गो-वध तो बहुत दूर की बात है। हो सकता है, तीस-चालीस साल के भीतर हमें आन्दोलन शुरू करना पड़े कि नर-वध किया जाय। जैसे, आज एक आदमी मरता है तो हम उससे कहते हैं अपनी आंख 'डोनेट' कर दो, कल हम मरते हुए आदमी से कहेंगे, अपना मास 'डोनेट' कर जाओ। सख्ता इतनी तीव्र होगी कि इसके सिवाय कोई उपाय नहीं रह जायेगा। बहुत जल्दी वह बक्त आ जायेगा कि जो कौमें जलाती है लाशों को, वह अनुचित और अन्यायपूर्ण मालूम होने लगेगी। यहाँ मनुष्य को खाने की स्थिति करीब आयी जाती है, वहाँ हम आन्दोलन चलाये जाते हैं गो-वध को रोकने का। इसमें कोई वैज्ञानिकता नहीं है। लेकिन, गो-वध रुक सकता है, सभी वध रुक सकते हैं। हमें भोजन के सम्बन्ध में बड़े ऋतिकारी कदम उठाने की जरूरत है। गो-वध के मैं पक्ष में नहीं हूँ, लेकिन गो-वध विरोधियों के भी पक्ष में नहीं हूँ। गो-वध विरोधी निषट नासमझी की बाते करते हैं। उनके पास कोई बहुत बड़ी योजना नहीं है जिससे कि गो-वध रुक सके। रुक तो जाना चाहिए। गाय आखिरी जानवर होना चाहिए जो मारा जाय। वह पशुओं में विकास की मनुष्य के पहले की कड़ी है। उस पर दया होनी जरूरी है। उससे हमारे बहुत आतंरिक सबध हैं। उनका ध्यान रखना जरूरी है। लेकिन, यह ध्यान तब तक ही रखा जा सकता है जब सुविधा हो, अन्यथा नहीं रखा जा सकता है। एक छोटी-सी कहानी मैं कहूँ।

एक पादरी एक चर्चे में व्याख्यान करने को गया है। कोई तीन-चार मील का फासला है और पहाड़ी रास्ता है, बूँदा पादरी है। उसने गाव के अपने एक तांगेवाले को कहा कि मुझे बहा तक पहुँचा दो, जो तुम पैसे चाहो ले लेना। उस तांगेवाले ने कहा कि पैसे तो ठीक हैं, लेकिन मेरा बूँदा घोड़ा है गफ्कार, उसका जरा ध्यान रखना पड़ेगा। उसने कहा, तुम जितनी दया घोड़े पर करते हो उससे कम मैं नहीं करता। घोड़े का ध्यान रखा जायेगा। याक्का शुरू हुई। कोई आधा मील बीतने के बाद ही चढ़ाई शुरू हुई तो उस तांगे

वाले ने कहा, अब कृपा करके आप नीचे उतर जायें। घोड़ा बूढ़ा है और ध्यान रखना जरूरी है। पादरी नीचे उतर गया। फिर ऐसा ही चलता रहा। घाट आता, पादरी को नीचे उतरना पड़ता। कभी कभी घाट और ज्यादा आ जाता तो तागे वाले को भी नीचे उतरना पड़ता। चार मील के रास्ते पर मुश्किल से एक मील पादरी तागे से बैठा, तीन मील पैदल चला। जहा तागे की जरूरत थी वहाँ पैदल चला और जहाँ तागे की जरूरत नहीं थी, वहाँ तागे से बैठा। जब वे चर्चे के पास पहुँच गये और तागे वाले को पादरी ने पैसे चुकाये, तो उसने कहा कि पैसे तो तुम लो, लेकिन एक सवाल का जबाब देते जाओ। मैं तो यहा भाषण देने आया, समझ में आता है। तुम पैसा कमाने आये, वह भी समझ में आता है। इस विचारे गफ्फार को किसलिए लाये? हम दोनों आते तो भी आसान पड़ता।

जीवन आवश्यकताओं में जिया जाता है, सिद्धातों में नहीं। आदमी मरने के करीब है, गाय नहीं बचायी जा सकती। गाय बचायी जा सकती है भोजन इतने 'अफुलुएस' में हो जाय कि गाय को बचाना 'अफोर्ड' कर सके। फिर, और जानवर भी बचाये जा सकते हैं, क्योंकि गाय अगर एक कड़ी पीछे है तो दूसरे जानवर थोड़ी और कड़ी पीछे है। मछली भी माँ तो है, जरा रिश्ता दूर का है। बस इतना ही फर्क है। लेकिन, जैसे-जैसे आदमी समृद्ध होता चला जाय, सुविधा जुटाता जाय, वह गाय को ही क्यों बचायेगा। वह मछली को भी बचायेगा। बचाने की दृष्टि तो साफ होनी चाहिए। लेकिन बचाने का आग्रह, सुविधाएं न हो, तो मूढ़तापूर्ण हो जाता है।



पर्व : नौ

धर्म और राजनीति  
साम्य घटनाएं  
अशावलार पूर्णवतार  
कृष्ण की असहिष्णुता और शिशुपाल  
अपहरणभूषण कृष्ण  
कष्ट की याचना कुन्ती की  
भक्त का दुख  
कृष्ण किसी के भक्त नहों फिर भक्ति की भग्निमा कैसी  
कृष्ण प्रेम की कस्तौटी  
कृष्णार्जुन युद्ध  
तटस्थिता  
काइस्ट का वक्तव्य  
अति विनम्र ही अति कठोर



प्रश्न आवार्यधी, कृष्ण आध्यात्मिक पुरुष थे । साथ ही उन्होंने राजनीति में भाग लिया । राजनीतिज्ञ के रूप में उन्होंने भृगुभारत के युद्ध में भीम के आगे शिखण्डी को जड़ा करके उन्हें द्योते से मरवाया । द्वोण को, 'अस्वर्वथामा मरा' , ऐसा क्षूनु बुलबाकर मरवाया । कर्ण को, जब रथ का पहिया फस गया, तब निहृत्ये को मरवाया । कुर्योधन को गदा प्रहर कर मरवाया उसकी जंघा पर । तो क्या धर्म ऐसी राजनीति में आयेगा ? और, अचर

आयेगा तो राजनीति में यह चाल और यह छल-कषट खेलेगा ? क्या इससे जीवन में हम भी यह सीखें कि अपनी विजय के लिए इस प्रकार के कार्य जो धोखे से भरे हुए हों, कर सके ? तब, भहात्मा गांधी ने साथ की शुद्धता के साथ-साथ साधन की शुद्धता पर भी जो बल दिया, वह निरर्थक था ? क्या राजनीति में इसकी कोई आवश्यकता नहीं ?

उत्तर धर्म और अध्यात्म का थोड़ा-सा भेद सबसे पहले समझना चाहिए। धर्म और अध्यात्म एक ही बात नहीं है। धर्म जीवन की एक दिशा है। जैसे, राजनीति एक दिशा है। कला एक दिशा है, विज्ञान एक दिशा है। ऐसे ही धर्म जीवन की एक दिशा है। अध्यात्म पूरा जीवन है। अध्यात्म जीवन की दिशा नहीं है। समग्र जीवन अध्यात्म है। तो हो सकता है, धार्मिक व्यक्ति राजनीति में जाने से डरे। आध्यात्मिक व्यक्ति डरेगा। धार्मिक व्यक्ति के लिए राजनीति कठिन पड़े, क्योंकि धार्मिक व्यक्ति ने कुछ धारणाएँ ग्रहण की हैं जो कि राजनीति के विपरीत हैं। आध्यात्मिक व्यक्ति किसी तरह की धारणाएँ ग्रहण नहीं करता। समग्र जीवन को स्वीकार करता है, जैसा है।

कृष्ण धार्मिक व्यक्ति नहीं, आध्यात्मिक व्यक्ति है। भहावीर धार्मिक व्यक्ति है, बुद्ध धार्मिक व्यक्ति है इम अर्थ मे कि उन्होंने जीवन की एक दिशा को चुना। उस दिशा के लिए उन्होंने जीवन की अन्य मारी दिशाओं को कुर्बान कर दिया। उन सबको उन्होंने काट कर अलग कर दिया। कृष्ण आध्यात्मिक व्यक्ति है, इस अर्थ मे कि उन्होंने पूरे जीवन को चुना है। इसलिए, कृष्ण को राजनीति डरा नहीं सकती। कृष्ण को राजनीति मे खड़े होने मे जरा भी सकोच नहीं है। राजनीति भी जीवन का हिस्सा है। साथ-ही-साथ यह समझना जरूरी है कि जो लोग धर्म के नाम पर राजनीति को छोड़कर हट गये हैं उन्होंने राजनीति को ज्यादा अधार्मिक बनाने मे सहायता दी है। इमलिए, पहली बात तो यह समझ ले कि कृष्ण को जीवन के सब फूल और सब काटे एक साथ स्वीकृत है। जीवन मे उनका कोई चुनाव नहीं है। 'च्वाइसलेस' जीवन को उन्होंने बिना चुनाव के स्वीकार कर लिया है, जीवन जैसा है। फूल को ही नहीं चुनते हैं, काटे को भी मान लेते हैं। वह भी बहा है। आमतौर से हम समझते हैं कि गुलाब का जो फूल है, काटा इसका दुश्मन है। दुश्मन नहीं है। गुलाब के फूल की रक्षा के लिए ही काटा है। दोनों गहरे मे जुड़े हैं। दोनों एक ही से संयुक्त हैं। दोनों की एक ही जड़ है। दोनों का एक ही प्रयोजन है। काटे को काट कर गुलाब बचा लेने की बहुत

लोगों की इच्छा होगी, लेकिन काटा गुलाब का हिस्सा है, यह उन्हे समझना होगा। फिर काटा और गुलाब दोनों को साथ ही बचाना होगा।

कृष्ण राजनीति को सहज ही स्वीकार करते हैं, वे उसमें खड़े हो जाते हैं, उसकी उन्हे कोई कठिनाई नहीं है। दूसरा जो सबाल उठाया है, वह और भी सोचने जैसा है। वह इसलिए सोचने जैसा है कि कृष्ण ऐसे साधनों का उपयोग करते हैं जिनका आौचित्य कोई भी मिद्द नहीं कर सकेगा। झूठ का, छल का, कपट का उपयोग करते हैं। लेकिन, एक बात इसमें समझेंगे तो बक्स आसानी हो जायेगी।

जिन्दगी में शुभ और अशुभ के बीच कभी भी चुनाव नहीं है, सिवाय सिद्धान्तों को छोड़कर। जिन्दगी में 'गुड और बैड' के बीच कोई चुनाव नहीं है सिवाय सिद्धान्तों को छोड़कर। जिन्दगी में सब चुनाव, कम बुराई, ज्यादा बुराई के बीच है। जिन्दगी के सब चुनाव 'रिलेटिव' है। सबाल यह नहीं है कि कृष्ण ने जो किया वह बुरा था, मबाल यह है कि अगर वह न करते तो क्या उससे भला घटित होता, कि और भी बुरा घटित होता? चुनाव अच्छे और बुरे के बीच होते तब तो मामला बहुत आसान था, चुनाव अच्छे और बुरे के बीच नहीं है। चुनाव मदा 'लेसर ईविल और ग्रेटर ईविल' के बीच है। पूरी जिन्दगी ऐसी है।

मैंने सुनी है एक घटना। एक चर्च का पादरी एक रास्ते से गुजर रहा है। जोर से आवाज आती है कि बच्चाओं, बच्चाओं, मर जाऊँगा। अँधेरा है, गलियारा है। वह पादरी भाग हुआ भीतर पहुँचता है। देखता है कि एक बहुत मजबूत आदमी एक बहुत कमजोर आदमी को छाती पर ढांचा बैठा है। पादरी चिल्लाकर कहता है कि हट, इस गरीब आदमी को क्यों दबा रहा है? लेकिन वह हटता नहीं है। पादरी उस मजबूत आदमी को नीचे गिरा देता है। नीचे का आदमी है ऊपर निकल आता है और भाग खड़ा होता है। तब वह ताकतवर आदमी उससे कहता है कि तुम आदमी कैसे हो? उस आदमी ने मेरी जेब काट ली थी, और जेब काटकर भाग रहा था। पादरी कहता है कि तूने यह पहले क्यों न कहा? मैं तो यह समझा कि तू ताकतवर है और कमजोर को दबाये हुए हैं, इसलिए मैं समझा कि तू उसको मार रहा है। यह तो भूल हो गयी। यह तो शुभ करते अशुभ हो गया।

जिन्दगी में जब हम शुभ करने जाते हैं तब भी देखना जरूरी है कि अशुभ तो न हो जायेगा? इससे उल्टा भी देखना जरूरी है कि कुछ अशुभ करने से शुभ तो नहीं हो जायेगा। ऐसे ही कृष्ण के सामने जो चुनाव है वह कम बुरे और ज्यादा बुरे के बीच है। कृष्ण ने जिस-जिस छल-कपट का उपयोग किया उससे बहुत ज्यादा छल-कपट का उपयोग सामने का पक्ष कर रखा था, और कर सकता था। उस

सामने के पक्ष से लड़ने के लिए गांधी जी काम न आते। सामने का पक्ष गांधी जी को मिट्टी से मिला देता। सामने का पक्ष साधारण बुरा नहीं था। असाधारण रूप से बुरा था। उस असाधारण रूप से बुरे के सामने भले की कोई जीत की सभावना न थी। गांधी जी को भी अगर हिन्दुस्तान में हुकूमत हिटलर की मिलती तो पता चलता। हिन्दुस्तान में हुकूमत हिटलर की नहीं थी। एक बहुत उदार कौम की थी। उस कौम से भी अगर चर्चिल हुकूमत में रहता तो आजादी मिलना बहुत मुश्किल बात थी। उसमें भी एटली के हुकूमत में आने से बुनियादी फर्क पड़ गया।

गांधी जी जिस साधन-शुद्धि की बात करते हैं वह समझने जैसी है। उचित ही है बात कि शुद्ध साधन के बिना शुद्ध साध्य कैसे पाया जा सकता है। लेकिन, इस जगत में न तो कोई शुद्ध साध्य होता है और न कोई शुद्ध साधन होते हैं। यहा कम अशुद्ध, ज्यादा अशुद्ध ऐसी ही स्थितियाँ हैं। यहा पूर्ण स्वस्थ और पूर्ण बीमार आदमी नहीं होते। कम बीमार और ज्यादा बीमार आदमी होते हैं। जिन्दगी में सफेद और काला ऐसा नहीं है, 'प्रै' कलर है जिन्दगी का। उसमें सफेद और काला सब मिश्रित है। इमलिए, गांधी जैसे लोग कई अर्थों में 'यूटोपियन' हैं। कृष्ण जीवन के सीधे साक निकट है। 'यूटोपिया' कृष्ण के मन में नहीं है। जिन्दगी जैसी है उसको वैमा स्वीकार करके काम करने की बात है। फिर जिन्हे गांधी जी शुद्ध साधन कहते हैं वे भी शुद्ध कहा है। हो नहीं सकते। हा, मोक्ष में कहीं हो सकते होगे। शुद्ध साधन और शुद्ध साध्य तो बात और है, इस जगत में सभी कुछ मिट्टी से मिला-जुला है। इस जगत में सोना भी है तो मिट्टी मिली हुई है। इस जगत में हीरा भी है तो पथर का ही हिस्सा है। गांधी जी जिसे शुद्ध साधन समझते हैं वह भी शुद्ध साधन है नहीं।

जैसे गांधी जी अनशन को शुद्ध साधन कहते हैं, मैं नहीं कह सकता। कृष्ण भी नहीं कहेंगे। क्योंकि दूसरे आदमी को मारने की धमकी देना अगर अशुद्ध है तो स्वयं के भर जाने की धमकी देना शुद्ध कैसे हो सकता है? मैं आपकी छाती पर छुरा रख दूँ और कह कि मेरी बात नहीं मानोगे तो मार डालूँगा, यह अशुद्ध है। और मैं अपनी छाती पर छुरा रख लूँ और कहूँ कि मेरी बात नहीं मानोगे तो मैं भर जाऊँगा, यह शुद्ध हो जायेगा। छुरे की सिर्फ़ दिशा बदलने से शुद्ध हो जाती है? यह भी उतना ही अशुद्ध है। और एक अर्थ में, पहले बाले मामले से यह ज्यादा नाजुक रूप से अशुद्ध है। क्योंकि पहली बात में आदमी कह सकता है, ठीक है मार डालो, नहीं मानोगे। उसको एक भौका है, एक 'मारल अपर्चुनिटी'

है। वह भर तो सकता है न ! लेकिन, दूसरे मौके में आप उसको बहुत कमज़ोर कर जाते हैं। आपको मारने की जिम्मेदारी शायद वह न भी लेना चाहे। अम्बेडकर के खिलाफ गांधी जी ने अनशन किया। अम्बेडकर क्षुके बाद में—इसलिए नहीं कि गांधी जी की बात सही थी, बल्कि इसलिए कि गांधी जी को मारना उतनी-सी बात के लिए उचित न था। उतनी हिसास अम्बेडकर लेने को राजी न हुए। बाद में अम्बेडकर ने कहा कि गांधी जी अगर समझते हो कि मेरा हृदय परिवर्तन हो गया तो गलत समझते हैं। भेरी बात ठीक है और गांधी जी की बात गलत है। अब भी मैं अपनी बात पर टिका हूँ। लेकिन, इतनी-सी जिह्वा के पीछे गांधी जी को मारने की हिसास में अपने ऊपर न लेना चाहूँगा। अब सोचना जरूरी है कि शुद्ध साधन अम्बेडकर का हुआ कि गांधी का हुआ ? इसमें अंहिंसक कौन है ? मैं मानता हूँ कि अम्बेडकर ने ज्यादा अहिंसा दिखलायी। गांधी जी ने पूरी हिसास की। वह आखिरी दम तक लगे रहे जब तक अम्बेडकर राजी नहीं हुआ।

गांधी जी के साधन शुद्ध नहीं है। दिखलायी शुद्ध पड़ते हैं। और मैं कहता हूँ कि कृष्ण ने जो भी किया वह शुद्ध है, तुलनात्मक अर्थों में, 'रिलेटिव' अर्थों में सापेक्ष अर्थों में। जिनसे वे लड़ रहे थे, उनके सामने जो कृष्ण ने किया उसके अतिरिक्त और कोई करने का उपाय न था। वे शस्त्रों से नहीं मार सकते थे उन्हे स्वयं। वैसे शस्त्रों से ही मार रहे हैं, क्योंकि युद्ध में छल और कपट शस्त्र है। और जब सामने बाला दुश्मन उनका पूरा उपयोग करने की तैयारी रखता हो तो अपने को कटवा देना सिवाय नासमझी के और कुछ भी नहीं है। कृष्ण किसी भले आदमी को धोखा नहीं दे रहे हैं। कृष्ण किसी महात्मा को धोखा नहीं दे रहे हैं। जिनका गैरभवहात्मापन हजार तरह से जाचा जा चुका है उनके साथ ही वह यह व्यवहार कर रहे हैं। कृष्ण ने सारे उपाय कर दिये थे युद्ध के पहले कि लोग राजी हो जाय। यह युद्ध न हो। सब उपाय के बावजूद, कोई मार्ग न छूटने पर यह युद्ध हुआ है। और जिन्होने सब तरह की बेइमानिया की हो पीछे, जिनकी पूरी-की-पूरी कथा बेइमानियो, धोखे और चालबाजी की हो उनके साथ कृष्ण अगर भलेपन का उपयोग करे तो मैं मानता हूँ कि महाभारत के परिणाम दूसरे हुए होते। उसमें कौरव जीते होते और पाड़व हारे होते। और, बात यह है सबसे बड़ी कि हम कहते तो यही है कि 'सत्यमेव जयते'-सत्य जीतता है। लेकिन, इतिहास कुछ और कहता है। इतिहास जो जीत जाता है, उसी को सत्य कहने लगता है। अगर कौरव जीत गये होते तो पण्डित कौरवों की कथा लिखने के लिए राजी हो गये होते और हमें पता भी नहीं चलता कि कभी पाण्डव भी थे और कृष्ण भी

थे। कथा बिल्कुल और होती। कृष्ण ने जो किया, वह मैं मानता हूँ, सामने जो था उसको देखते हुए जो किया जा सकता था, 'एकचुअलिटी' के भीतर, वास्तविकता के भीतर जो किया जा सकता था, वही किया।

साधन शुद्धि की सारी बातें आकाश में सम्भव हैं। पृथ्वी पर, कैसे भी साधन का उपयोग किया जाय वह थोड़ा-बहुत अशुद्ध होगा। अगर साधन पूरा शुद्ध हो जाय तो साध्य बन जायेगा। साध्य तक जाने की जरूरत न रह जायेगी। अगर साधन पूरा शुद्ध है तो साध्य और साधन में फर्क ही न रह जायेगा, वह एक ही हो जायेगे। साधन और साध्य का फर्क ही इसलिए है कि साधन अशुद्ध है और साध्य शुद्ध है। इसलिए, अशुद्ध साधन से कभी शुद्ध साधन पूरी तरह मिलता नहीं, यह भी सच है। साध्य मिलते ही कव है पृथ्वी पर? सिर्फ आकाश होती है पाने की, मिलते तो कभी नहीं है। गांधी जी भी यह कहकर नहीं मर सकते हैं कि मैं पूरा अहिंसक होकर मर रहा हूँ। गांधी जी यह भी कहकर नहीं मर सकते हैं कि मैं पूरे ब्रह्मचर्य को उपलब्ध होकर मर रहा हूँ। न यह कह सकते हैं कि मैंने सत्य को पा लिया और मर रहा हूँ। सत्य के प्रयोग करते ही मरते हैं। शुद्ध अगर साधन है, तो साध्य मिल क्यों नहीं गया? बाधा क्या रह गयी? अगर साधन शुद्ध है तो साध्य मिल ही जाना चाहिए था। नहीं, साधन शुद्ध हो नहीं सकते।

स्थितियाँ करीब-करीब ऐसी हैं, जैसे हम पानी में एक लकड़ी को डाले तो वह तिरछी हो जाय। पानी में लकड़ी को सीधा बनाये रखने का कोई उपाय नहीं है। लकड़ी निरछी होती नहीं, दिखायी तिरछी पड़ने लगती है। पानी का जो 'मीडियम' है, वह लकड़ी को तिरछा कर जाता है। पानी के बाहर लकड़ी सीधी ही होती है। पानी के भीतर डाली कि तिरछी हो जाती है। इस विराट सापेक्ष के जगत में 'इन दिस रिलेटिव वर्ल्ड', जहा सब चीजे तुलना में हैं, वहा सब चीजें तिरछी हो जाती हैं। इसलिए, सवाल यह नहीं है कि हम सीधे हो। सवाल यह है कि हम कम-से-कम तिरछे हो। बस इससे ज्यादा कोई सवाल नहीं है। और, कृष्ण मुझे मालूम पड़ता है कि कम-से-कम तिरछे आदमी है। यह बड़े भजे की बात है कि ऊपर से देखने से हमें कुछ और दिखायी पड़ेगा, हमें गांधी जी बहुत सीधे आदमी दिखायी पड़ेगे, गांधी जी मेरे हिसाब से बहुत तिरछे आदमी हैं। वह कई बार कान को बिल्कुल मिर धूमाकर पकड़ते हैं। दूसरी तरफ से पकड़ते हैं। गांधी जी काम करेगे दूसरों को दबाने का तो अपने को दबाकर करेगे। बड़ी लम्बी यात्रा लेगे। दबायेंगे दूसरे को ही, लेकिन प्रयोग जो बे करेगे, अपने

को दबाकर उसको दबायेगे । कृष्ण उसको सीधा दबा देंगे । लेकिन, हमें आमतौर से स्थाल में नहीं आता । क्योंकि, चीजे हम जैसी पकड़ लेते हैं वैसे हम माने ही चले जाते हैं ।

**प्रश्न .** आचार्यंशी, कृष्ण के जमाने में एक पौष्टक नामक राजा था, जो साक्षात् कृष्ण को नकली कृष्ण जाहिर कर अपने को असली कृष्ण मानता था । बुद्ध, महाबीर आदि अवतारों के जीवन में या क्राइस्ट के समय में ऐसी साम्य रखने वाली कुछ घटना घटी है ?

उत्तर हा, घटी है । महाबीर के समय गोसालक नाम के व्यक्ति ने घोषणा की कि असली तीर्थकर मैं हूँ । महाबीर असली तीर्थकर नहीं है । क्राइस्ट के समय में भी घटी है । क्योंकि, यहूदियों ने सूली ही इसलिए दी कि एक बढ़ई का लड़का नाहक अपने को क्राइस्ट कह रहा है, यह असली क्राइस्ट नहीं है । असली क्राइस्ट अभी पैदा होने वाला है । यहूदी परपरा में ऐसा रूपाल था कि क्राइस्ट नाम का एक पैगम्बर पैदा होने वाला है । बहुत से प्रोफेट ने उसकी घोषणा की थी । इज़-कील ने घोषणा की थी, ईसिया ने घोषणा की थी, उन सब पुराने पैगम्बरों ने घोषणा की थी कि क्राइस्ट नाम का एक पैगम्बर आने वाला है । फिर, क्राइस्ट के ठीक जन्मने के पहले 'जोन द ब्रेपटिस्ट' ने गाव-गाव धूमकर घोषणा की कि क्राइस्ट आने वाला है । क्राइस्ट का मतलब मसीहा । मसीहा आने वाला है जो सबका उद्धार करेगा । और एक दिन जीसस नाम के इस जवान ने घोषणा कर दी कि मैं वह मसीहा हूँ । यहूदियों ने मानने से इन्कार कर दिया कि यह आदमी वह मसीहा नहीं है । सूली दी गयी कि तुम झूठी घोषणा कर रहे हो । तुम मसीहा नहीं हो । दूसरे व्यक्ति ने ठीक जीसस के सामने दावा नहीं किया । लेकिन, बहुत लोगों ने यह दावा किया कि तुम मसीहा नहीं हो, तुम क्राइस्ट नहीं हो, हम तुम्हें क्राइस्ट मानने से इन्कार करते हैं । क्यों इन्कार किया ? क्योंकि, वह कहते थे कि कुछ लक्षण हैं जो तुम पूरे करो । कुछ चमत्कार हो, जो तुम दिखाओ । उनमें एक चमत्कार यह भी था कि जब हम तुम्हें सूली लगाये तो तुम जिन्दा सूली से उतर आओ । जीसस के जो भक्त थे, वह मानते थे कि सूली लग जाने के बाद जीसस उतर आयेंगे और चमत्कार घटित हो जायेगा, फिर लोग मान लेंगे । बड़ी मुश्किल है तथ करना यह बात, क्योंकि जीसस के भक्त अब भी कहते हैं कि तीन दिन बाद वे देखे गये । लेकिन, जिन्होंने देखा, वह दो औरते थीं, दो स्त्रिया थीं जो जीसस को बहुत प्रेम करती थीं । उन्होंने उन्हें देखा । विरोधी उनके वक्तव्य को मानने को तैयार नहीं हैं । विरोधियों का स्थाल है कि वे इतनी प्रेम से भरी

थी कि जीसस उन्हे दिखायी पड़ सकते हैं, अले जीसस न हो। लेकिन, कोई यहूदी का वक्तव्य ऐसा नहीं है कि जीसस उत्तर आये सूली से और प्रमाण उन्होंने दे दिया। वह प्रमाण नहीं दिया जा सका। इसलिए, उस काइटस्ट की प्रतीक्षा यहूदी अभी भी करते हैं जिसकी घोषणा पैगम्बरों ने की है। लेकिन, महावीर के वक्त भैं तो बहुत ही स्पष्ट गोसालक ने घोषणा की कि मैं असली तीर्थकर हूँ। महावीर असली तीर्थकर नहीं है। गोसालक को भी मानने वाले लोग थे। थोड़ी सख्त्या न थी, काफी सख्त्या थी। और यह विवाद लम्बा चला कि कौन असली तीर्थकर है, क्योंकि जैन परम्परा में घोषणा थी कि चौबीसवा तीर्थकर आने वाला है। वह अतिम तीर्थकर होने को था। तेईस हो चुके थे। अब एक ही आदमी तीर्थकर हो सकता था। न केवल गोसालक ने घोषणा की कि वह चौबीसवा तीर्थकर है, एक बड़ा वर्ग था जो उसे चौबीसवा तीर्थकर मानता था। यह तो था ही और भी पाच छह लोग थे जिनको कुछ लोग मानते थे कि वह असली तीर्थकर हैं। हालांकि उन्होंने कभी घोषणा नहीं की। मखलीगोमाल तो स्वयं घोषणा करता था कि वह तीर्थकर है। लेकिन सज्य, विलेठीपुन्न, अजित केश कबल, इनके भी भक्त थे जो मानते थे कि ये असली तीर्थकर हैं। ऐसे बुद्ध को जो मानते थे उनका भी स्वाल था कि असली तीर्थकर बुद्ध है। बुद्ध के मानने वालों ने महावीर का बहुत मजाक उडाया था।

इसकी बहुत सम्भावना है, सदा सम्भावना है कि कृष्ण-जैसा व्यक्ति जब पैदा हो, या जब समाज ऐसे व्यक्ति की किन्हीं घोषणाओं के आधार पर प्रतीक्षा करता हो तो और लोग भी दावेदार हो जाय। इसमें बहुत कठिनाई नहीं है। लेकिन, समय तय कर देता है कि दावेदार सही थे कि नहीं थे। सच तो यह है कि जब कोई दावा करता है तभी वह कह कह देता है कि वह सही आदमी नहीं है। दावेदारी गलत आदमी करता है। कृष्ण को दावा करने की जरूरत नहीं कि मैं कृष्ण हूँ, वह है। किसी को दावे की जरूरत पड़ती है, इसका मतलब यह है कि उसके होने से सिद्ध नहीं होता कि वह कृष्ण है, उसे दावा भी करना पड़ता है। महावीर दावा नहीं करते कि मैं तीर्थकर हूँ। वे हैं। लोग उन्हे पहचान लेते हैं। गोसालक दावा करता है। उसे खुद ही शक है। असल में हमारी आत्महीनता ही दावा बनती है। अगर कोई आदमी दावा करता है कि मैं महात्मा हूँ, तो उसका दावा ही कहता है कि वह महात्मा नहीं होगा। दावेदारी हमेशा उल्टी खबर देती है। लेकिन, यह बिल्कुल स्वाभाविक है, मानवीय है कि कोई दावा कर सके।

प्रश्न : जीसस ने क्यों दावा किया ?

उत्तर जीसस ने दावा नहीं किया कि मैं क्राइस्ट हूँ। जीसस में तो दावे बहुत दूसरे किये। क्राइस्ट होने का दावा नहीं किया। जीसस के दावे वक्तव्यों से नहीं है, व्यक्तित्व में है। लोगों ने पहचाना कि यह आदमी क्राइस्ट है। दूसरे लोगों ने धोषणा की कि यह आदमी क्राइस्ट है। जिस आदमी का मैंने नाम लिया 'जोन दि बैपटिस्ट', जीसस के पहले बहुत अद्भुत सत हुआ। उसने धोषणा कर रखी थी कि क्राइस्ट आने वाला है और मैं सिर्फ अगुवा हूँ जो पहले खबर देने आया हूँ। जिस दिन क्राइस्ट आ जायेगा उस दिन मैं विदा हो जूँड़ूँगा। वह जोड़न नदी के किनारे लोगों को दीक्षा देता था। हजारों लोग उससे दीक्षा लेते थे। जीसस भी उससे दीक्षा लेने गये। जीसस ने भी सत जोन से दीक्षा ली। जोड़न नदी में वे खड़े हुए, गले ढूँबे पानी में, जोन ने दीक्षा दी और कहा कि अब तुम अपना काम सम्हालो, मैं जाता हूँ। इस बात से सारे मुळे में खबर फैल गयी कि क्राइस्ट आ गया है। और जोन उस दिन से फिर नहीं दखा गया। उसका कोई पता नहीं चला। खबर पूरे मुळे में फैला गयी कि वह जोन जो चिल्ला चिल्लाकर गाव-गाव में कहता था कि क्राइस्ट आने वाला है और जिस दिन आ जायेगा, उस दिन मेरा काम खत्म हो जायेगा। मैं उसके आने तक रुका हूँ। मैं सिर्फ आगे की सड़क साफ कर रहा हूँ, पाइलट का काम कर रहा हूँ। वह उसी दिन से नदारद हो गया। अब लोग जीसस से पूछने लगे कि आप कौन है? दावा उन्होंने नहीं किया। लेकिन, झूठ भी कैसे बोला जा सके? तो, उन्होंने जो वक्तव्य दिये उन वक्तव्यों में उन्होंने कहा कि मैं वही हूँ जो सदा से हूँ। मैं वही हूँ, जो पैगम्बर नहीं हुए, उसके पहले भी था। अब्राहम के पहले जो भौजूद था, मैं वही हूँ। जब लोगों ने पूछा कि तुम कौन हो? तो उन्होंने कहा, कि तुम जिसे खोजते हो, मैं वही हूँ। मगर, इसमें दावा नहीं था कोई। इसमें लोगों ने पूछा था और उत्तर देना जरूरी था।

प्रश्न हिन्दू अवतार के क्रम से भस्त्रावतार से शुरू होकर रामाहि अशावतार आते हैं। किर, पूर्णवितार कृष्ण के बाद बुद्धावतार होता है। कल्पि को आगाही भी समाविष्ट है। तो, बुद्ध कालानु-क्रम की वृष्टि से पूर्णवितार क्यों नहीं माने गये? उत्कर्णित की वृष्टि से कृष्ण का बुद्ध के पूर्व आ जाने का कोई राज हो तो अतायें। काल की गति को यहां अतुलाकार कहने से किस हृदय तक औचित्य है?

उत्तर अवतार आशिक भी उतना ही अवतार है जितना पूर्ण। अवतार होने में कोई फर्क नहीं। अवतार से तो भत्तलब इतना ही है कि परमात्म जैतना

प्रकट हुई। वह कितने आयामों में प्रकट हुई, यह बात दूसरी है। कृष्ण का अवतार पूर्ण अवतार इस अर्थों में है कि जीवन के समस्त आयामों में, जीवन के सब 'डाय-मेंशस' में उनका स्पर्श है। बुद्ध का अवतार फिर पूर्ण अवतार नहीं है। कल्पिक अवतार भी पूर्ण अवतार होने वाला नहीं है। अवतरण की जो प्रक्रिया है, चेतना का जो उत्तरण है वह तो पूरा होगा। लेकिन, वह आयामों का स्पर्श नहीं करेगा। इसके कारण है— बहुत कारण है

समय की जो धारा है, विकास का जो क्रम है, साधारणत ऐसा ही होना चाहिए कि पूर्ण अवतार अन्त में आये। विकास के क्रम में पूर्णता अन्त में आती चाहिए। लेकिन, विकास का जो क्रम है, अवतार उस क्रम के बाहर से आता है। अवतार का अर्थ है 'पैनीट्रेशन फौम द बियोन्ड'। वह पार से उत्तरता है। वह हमारी विकास प्रक्रिया का अग नहीं है। वह हमारे विकास में विकसित हुआ नहीं है। ऐसा उदाहरण से समझे हम सारे लोग यहा बैठे हैं। सूरज निकला है। हम भव आखे बन्द किये बैठे हैं। किसी ने थोड़ी-सी आख खोली और थोड़ी-सी रोशनी दिखायी पड़ी। फिर, किसी ने पूरी आख खोली और पूरी रोशनी दिखायी पड़ी। इसमें कोई विकास क्रम नहीं है। आख पूरी कभी भी खोली जा सकती है। और, पूरी आख खोलने के बाद पीछे वाला भी पूरी आख खोले, इसकी कोई अनिवार्यता नहीं है। कृष्ण का जो व्यक्तित्व है वह पूरा खुला है। इसलिए पूरे परमात्मा को समा सका है। बुद्ध का व्यक्तित्व आशिक खुला है। इसलिए अश परमात्मा को समा सका है। अगर आज भी कोई पूरे व्यक्तित्व को खोलेगा तो पूरा परमात्मा समा जायेगा। और, अगर कल कोई व्यक्तित्व को बिल्कुल बन्द रखेगा तो परमात्मा बिल्कुल नहीं समायेगा। इसमें कोई 'इवोल्यूशनरी' क्रम नहीं है। हो भी नहीं सकता। विकास का जो क्रम है, उस क्रम को अगर हम ठीक से समझते तो मिर्झ जनरल, सामान्य अर्थों में पकड़ सकते हैं, व्यक्तिवादी अर्थों में नहीं पकड़ सकते।

बुद्ध को हुए बहुत दिन हो गये। हम तो बुद्ध के ढाई हजार माल बाद हुए हैं, लेकिन इसमें हम यह नहीं कह सकते कि बुद्ध से हम ज्यादा 'इवालब्ड' हैं। हा, इतना हम कह सकते हैं कि बुद्ध के समाज से हमारा समाज ज्यादा 'इवालब्ड' है। असल में विकास दोहरा चल रहा है समूह का, व्यक्ति का। समूह के पहले भी व्यक्ति विकसित हो सकता है। हा, जो अपने को विकसित करने की कोई कोशिश नहीं करेंगे वह समूह के माथ धसिटते हुए विकसित होते हैं। और समूह के सभी व्यक्ति एक जैसे विकसित नहीं हो रहे हैं, प्रत्येक व्यक्ति अलग-अलग धारा में विकसित हो रहा है। हम यहा इतने लोग बैठे हैं, लेकिन सभी विकास की एक

ही पायरी पर नहीं हैं। कोई विकास की पहली सीढ़ी पर खड़ा है, कोई विकास की दसवीं सीढ़ी पर खड़ा है, कोई विकास का अतिम छोर भी छू सकता है। समूह की बाबत सामान्य नियम सत्य होते हैं। विकास का नियम समूह की बाबत है, इसे उदाहरण से समझे।

यह हम कह सकते हैं कि दिल्ली में पिछले दस वर्षों में प्रतिवर्ष कितने लोग सड़क पर 'एक्सीडेंट' से मरे। हर वर्ष अगर पचास आदमी मरते हैं, उसके पहले वर्ष पैतालीस मरे थे, किर उसके पहले चालीस मरे तो हम कह सकते हैं कि अगले वर्ष में पचपन आदमी सड़क पर कार से मरेंगे और बहुत दूर तक यह सही हो जायेगा। लेकिन, हम यह नहीं कह सकते कि वह पचपन आदमी कौन-से होंगे। हम खोजकर नहीं बता सकते कि ये पचपन आदमी मरेंगे। अगर दिल्ली की आबादी बीस लाख है तो पचपन में हो सकता है चौबन मरे या हो सकता है छपन मर जाय, लेकिन अगर आबादी बीम करोड़ है तो पचपन का आकड़ा और करीब आ जायेगा। और, अगर आबादी अनन्त है, तो पचपन का आकड़ा बिल्कुल 'फिक्स्ड' हो जायेगा। यानी हम बिल्कुल कह सकते हैं कि पचपन मरेंगे, न साढ़े चौबन मरेंगे, न साढ़े पचपन मरेंगे। जितनी बड़ी सत्या होती जायेगी, सामान्य 'स्टेटिक्स' उतने ही सत्य हो जाते हैं। जितना व्यक्ति को हम पकड़ते हैं उतने 'स्टेटिक्स' गलत हो जाते हैं।

विकास की जो धारा है वह समूह की धारा है। इसमें व्यक्ति पहले हो भी जाते हैं। जैसे जब वसन्त आता है तो किसी एक पक्षी की चहचहाहट से घोषणा हो जाती है वसन्त के आने की, लेकिन सभी पक्षियों की चहचहाहट में वक्त लग जाता है। वसन्त आता है तो एक फूल भी खिलकर खबर कर देता है कि वसन्त आ रहा है। लेकिन, सभी फूल के खिलने में वक्त लग जाता है। आता तो वसन्त पूरा तभी है जब सब फूल खिलते हैं। लेकिन, कुछ फूल पहले भी खिल जाते हैं। एक फूल के खिलने से हम यह नहीं कह सकते कि वसन्त आ गया। लेकिन, इतना कह सकते हैं कि वसन्त की पहली पगधनि आ गयी। व्यक्तिगत फूल तो पहले भी खिल सकते हैं, बीच में भी खिल सकते हैं, लेकिन सब फूल वसन्त में खिल जाते हैं। कृष्ण का बीच में पूर्ण हो जाना सिर्फ़ इस बात की सूचना है कि कृष्ण अपने व्यक्तित्व को पूरा खोल सके। बुद्ध अपने व्यक्तित्व को पूरा नहीं खोलते हैं। यह भी बुद्ध का अपना निर्णय है। अगर उन्हें कोई पूर्ण कहने को कहे भी, अगर कोई उनसे कहे भी कि तुम्हारे कृष्ण होने की सभावना है तो बुद्ध इन्कार कर देंगे। इसमें बुद्ध कुछ पीछे पड़ जाते हैं कृष्ण से, ऐसा नहीं है, यह बुद्ध का अपना चुनाव

है। कृष्ण का अपना चुनाव है। चुनाव के मामले में दीनों मालिक हैं। और उनका अपना विरण्य है। बुद्ध चाहते हैं जैसा, वैसे वे खिलते हैं। कृष्ण जैसा चाहते हैं वैसे वे खिलते हैं। कृष्ण को पूरा खिलने का स्वभाव है, बुद्ध को जैसा खिलना है उसमें ही पूरा खिलने का स्वभाव है। इसमें कोई विकास की धारा नहीं है। अविकितयों पर विकास लागू नहीं होता, विकास सिर्फ समूह पर लागू होता है।

प्रश्न आचार्यजी, नौ सौ निन्यानवे गाली सहने वाले कृष्ण आगे की गाली भी न सुन सके और अक्ष से शिशुपाल का बघ कर बढ़े। इससे क्या यह तथ्य नहीं होता कि पीछे वीर गयी गालियों को सिरकट है से ही सह रहे थे, किन्तु अन्तर से असहिष्णु थे?

उत्तर ऐसा सोचा जा सकता है। क्योंकि, ऐसे हम सब हैं। अगर हम चौथी गाली पर बिगड़ उठते हैं तो हम भली भाँति जानते हैं कि बिगड़ तो हम पहली गाली पर गये थे। लेकिन, तीन तक साहस रखा, तीन तक सहिष्णुता थी, फिर हम चुक गये, फिर हमारी सहिष्णुता और न सह सकी और, चौथी गाली पर हम प्रकट हो गये। लेकिन, इससे उल्टा भी हो सकता है। और कृष्ण बड़े उल्टे आदमी है। ठीक हमारे जैसे आदमी नहीं हैं। इसलिए उल्टे होने की सभावना ही उनकी ज्यादा है। ऐसा नहीं कि नौ सौ निन्यानवे गाली सहने तक ही उनकी सहिष्णुता थी— नौ सौ निन्यानवे गालिया काफी गालिया है। और, जो नौ सौ निन्यानवे सह सकता होगा वह हजारवी नहीं सह सकता होगा, सोचना जरा मुश्किल है। बड़ा सवाल कृष्ण के लिए यह नहीं है कि उनकी सहिष्णुता चुक गयी, बड़ा सवाल यह है कि सामने का जो आदमी है, अब उसकी सीमा आ गयी। अब इससे ज्यादा सहे जाना सहिष्णुता का सवाल नहीं है, इससे ज्यादा सहे जाना बुराई को बनाये रखने का सवाल है। इससे ज्यादा सहे जाना अब अधर्म को बचाना होगा। क्योंकि, इतना तो बहुत ही माफ है कि नौ सौ निन्यानवे गालिया काफी है। जीसस से कोई पूछता है एक शिष्य कि कोई हमे एक बार चाटा मारे तो हम क्या करें? जीसस कहते हैं, सहो। वह पूछता है, कोई हमे मात बार चाटा मारे, तो हम क्या करे? जीसस कहते हैं, मात बार नहीं सतहतर बार सहो। उस आदमी ने आगे पूछा नहीं इसलिए हमे पता नहीं कि जीसस क्या कहते हैं। उसने आगे पूछा नहीं कि अठहतरबी बार? लेकिन, मैं मानता हूँ कि जीसस कहते कि अठहतरबी बार बिलकुल मत सहो। क्योंकि, तुम्हारी सहिष्णुता ही काफी नहीं है, दूसरे आदमी का अधर्म भी विचारने योग्य है। मैंने एक मजाक सुना है

मैंने सुना है कि जीसस को मानने वाला एक भक्त एक गाव से गुजरा है और किसी ने एक चाटा उसके बेहरे पर भार दिया। जीसस का बचन है कि जब कोई तुम्हारे बाये गाल पर चाटा भारे तो दाढ़ा उसके सामने कर दो। उसने दाढ़ा भाल उसके सामने कर दिया। उस आदमी ने, जैसा कि उस बिचारे ने सोचा थी नहीं था, दाये पर भी चाटा और करारा भारा। तब वह बड़ी मुश्किल में पड़ा। क्योंकि, इसके आगे जीसस का कोई बक्तव्य नहीं है कि अब वह क्या करे, तो उसने उठाकर एक हाथ उस दुष्मन को भारा। उस "आदमी" ने कहा कि अरे तुम तो जीसस को मानते हो और जीसस ने कहा है कि कोई तुम्हारे एक गाल पर चाटा भारे तो दूसरा सामने कर दो। उसने कहा, लेकिन तीसरा कोई गाल नहीं है। अब मैं छट्टी लेता हूँ जीसस से, क्योंकि दो गाल तक जीसस के साथ चला, तीसरा कोई गाल नहीं है भेरा। तीसरा गाल तुम्हारे पास है। मेरे दोनों गाल चुक गये। अब तुम्हारे गाल पर ही चाटा पड़ सकता है। एक भक्त है, जब तीसरा गाल आ जाता है। हमें ऐसा ही लगेगा, क्योंकि हम चुक जाते हैं जल्दी। उसमें कृष्ण नहीं चुक जाते।

लेकिन, सब चीजों की सीमाएँ हैं और सीमाओं के आगे चीजों को सहे जाना खतरनाक है, अधर्म है। सीमाओं के आगे चीजों को सहे जाना बुराई को प्रोत्साहन है। अगर मैं सहिष्णु हूँ तो इसीलिए हूँ कि असहिष्णुता बुरी है। और तो कोई कारण नहीं है। लेकिन, मैं तो बुरा होने से बच जाऊँ और दूसरे को बुरा होते ही जाने दूँ, यह दूसरे पर दया नहीं हुई। यह दूसरे पर अति कठोरता हो गयी। एक जगह दूसरे को बुरा होने से रोकना पड़ेगा। ऐसा मैं देखता हूँ।

कृष्ण के पूरे व्यक्तित्व को देखकर ऐसा लगता है कि उनकी सहिष्णुता को चुकाना बहुत मुश्किल है। लेकिन, ऐसा भी लगता है कि बुराई को प्रोत्साहन देना उनके लिए असभव है। इन दोनों के बीच कहीं उन्हें 'गोल्डन मीन' लोजनी पड़ती है। कहीं उन्हें स्वर्ण नियम खोजना पड़ता है जहा से आगे चीजे बदल जाती हैं।

**प्रश्न :** कृष्ण को आप क्या अपहरणभूल नहीं कहेंगे? खुब ने तो एकमणी भद्रा का अपहरण किया था, लेकिन अर्जुन को भी बहुत सुभद्रा का अपहरण करने को लालित किया।

उत्तर असल में समाज की व्यवस्थाएँ जब बदल जाती हैं तो बहुत-सी बातें बेतुकी हो जाती हैं। एक युग था, जब किसी स्त्री का अपहरण न किया जाय तो उसका एक ही मतलब था कि उस स्त्री को किसी ने भी नहीं चाहा, या कि उसकी कुरुपता सुनिश्चित है। एक युग था, जब सीर्प का सम्मान अपहरण था। अब

बह युग नहीं है। लेकिन, आज भी, अगर युनिवर्सिटी के म्पस में किसी लड़की को कोई भी धक्का नहीं मारता तो उसके दुख का कोई अन्त नहीं। और जब कोई लड़की आकर दुख प्रकट करती है कि उसे बहुत धक्के मारे जा रहे रहे हैं, तब उसके चेहरे को भौंर से देखे, उसके रस का कोई अन्त नहीं। स्त्री चाहती रही है कि कोई अपहरण करने वाला मिले। कोई उसे इतना चाहे कि चुराना मजबूरी हो जाय। कोई उसे इतना चाहे कि भागे ही नहीं, चुराने को तैयार हो जाय।

कृष्ण जिस युग में थे उस युग को समझेंगे तो यह बात ख्याल में आ सकेगी। मैं मानता हूँ कि वह हिम्मतवर युग था। यह भी कोई बात है कि पचास और पत्ता दिखाकर कोई विवाह कर ले। लेकिन, कृष्ण जब किसी को उत्प्रेरित भी कर रहे हैं अपहरण के लिए, तो इसीलिए कि वह कहते हैं कि प्रेम इतनी बड़ी चीज़ है कि अगर वह है तो अपरहरण भी किया जा सकता है, दाव लगाया जा सकता है। प्रेम कोई नियम नहीं मानता। और युग था वह, जो प्रेम का युग था। जिस दिन नियम शुरू हो जाते हैं उस दिन मानना चाहिए कि प्रेम की शक्ति शिथिल हो गयी है। अब प्रेम बहुत चुनौतिया नहीं लेता। दाव नहीं लगाता। उस युग के पुरे-केन्द्रे ढाँचे को समझेंगे तो ख्याल में आयेगा। कृष्ण किसी विशेष युग में पैदा हुए है। उस युग की व्यवस्था का हमें ख्याल नहीं है। हमारे युग की व्यवस्था को हम उनपर थोपें जायेंगे तो वह कई बार अनैतिक मालूम पड़ने लगेंगे। मुझे भी लगता है कि शौर्य के युग तब जिन्दगी में होते हैं, जब जिन्दगी में शान होती है। तेज होता है तो चुनौती के और दाव के युग होते हैं। शिथिल और मरे हुए समाज की जिन्दगी में सब चुनौती खो जाती है और सब ढीला-ढाला हो जाता है। हजार तरह की नीतिया बनती हैं, जो मुर्दा नीतिया होती हैं। मैं तो कहूँगा कि कृष्ण अगर अपहरण करके न लाये किसी स्त्री को, और उम स्त्री को बगैर खबर भेजे उसके पिता के हाथ पैर पड़े, सब उपाय करे, तो उम स्त्री का अपमान होगा, उस युग में अपमान होगा। वह स्त्रो इसे पसन्द न करती। वह कहती कि इतनी भी हिम्मत नहीं है कि मुझे चुरा सको, तो छोड़ो यह बात।

हमे ख्याल नहीं है, आज भी, युग बदल जाते हैं, लेकिन कुछ ढाँचे चलते चले जाते हैं। आज भी जिसे हम बारात कहते हैं, किसी दिन प्रेमी के साथ गये हुए सैनिक थे। और, जैसे हम आज घोड़े पर बिठाते हैं हूँहें को-हूँहें को घोड़े पर बिठाना बिल्कुल बेमानी है, आज कोई मतलब नहीं है—एक छुरी भी लटका देते हैं उसकी बगल में, वह कभी तलवार थी, और कभी वह घोड़ा किसी को चुराने गया था। और कुछ साथी थे, जो उसके साथ गये थे, वह बारात थी।

और, आज भी आपको पता होगा कि जब बारात आती है तो लड़की की घर वाली स्त्रिया गालियाँ देना शुरू करती है। कभी सोचा कि वह गालिया क्यों देती हैं। जिसके घर की लड़की चुराई जा रही होगी उसकी ओर से गालिया दी गयी होगी। लेकिन, अब काहे के लिए गालिया दे रही है? अब तो वह खुद ही इन्तजाम किये हुए हैं सब। आज भी लड़की का पिता झुकता है। अब कोई कारण नहीं है लड़की के पिता के झुकने का। कभी उसे झुकना पड़ा था। कभी जो छीन कर ले जाता था, जो विजेता होता था उसके सामने झुक जाना पड़ता था। वह कभी के नियम थे जो अब भी सरकते हुए मुर्दा हालत में चलते चले जाते हैं।

प्रश्न आवार्यधी, एक बार कृष्ण इन्द्रप्रस्थ से द्वारका जा रहे हैं तब कुन्ती मिलती है। 'विष्व सन्तु।' कुतो कृष्ण के पास कष्ट की याचना करती है। ताकि कष्ट, कृष्ण-वर्णन करा सके। यद्यपि आनन्दवादी कृष्ण हसते हैं, समझते भी नहीं कि कष्ट-याचना ठीक नहीं। इसका क्या तात्पर्य है? और यह भी कहते हैं कि मैं जिस पर कृपा करना चाहता हूँ उसे दुख दे ही चेता हूँ।

उत्तर भक्त का भगवान से कष्ट के लिए प्रार्थना करना बड़ा अर्थपूर्ण है, दो तीन कारणों से। एक तो, भगवान से सुख की प्रार्थना करना कुछ स्वार्थ-पूर्ण मालूम पड़ता है। और जो भगवान से सुख की प्रार्थना करता है वह भगवान से प्रार्थना नहीं करता, सुख के लिए ही प्रार्थना करता है। अगर भगवान के बिना उसे सुख मिल जाय तो वह भगवान को छोड़कर सुख की तरफ जायेगा। क्योंकि, भगवान से मिल सकता है इसलिए भगवान के पास भी जाता है। लेकिन, भगवान का उपयोग वह साधन की तरह करता है। साध्य तो सुख है। इसलिए, भक्त का मन सुख की प्रार्थना नहीं करेगा। क्योंकि, इससे वह भगवान से ऊपर किसी चीज को रखवाना चाहेगा। और, जब वह दुख कि प्रार्थना करता है तो वह दो-तीन बातों की घोषणाएँ करता है। वह कहता है कि तुम्हारे द्वारा दिया गया दुख भी और कही से मिले सुख से बड़ा है। तुम्हारा दुख भी चुन लेगे और कोई सुख न चुनेगे। अब इस आदमी का भगवान से हट जाने का कोई उपयोग न रहा। क्योंकि, आदमी वही से हटता है जहा से दुख होता है। और, वहा के लिए हटता है जहा सुख होता है। जिस भक्त ने सुख मांगा है वह भगवान से हट सकता है। लेकिन, जिस भक्त ने दुख मांगा है अब उसके हटने का उपाय क्या रहा? इसलिए, बड़ी गहरी मांग है यह कि हमें दुख ही दे दो। हमें वही दे दो जिससे लोग हट जाते हैं। हम वही मांगने तुम्हारे पास आये हैं।

दूसरी भी मजे की बात है कि भगवान से दुख मांगा जा सकता है, क्योंकि भगवान से दुख मिलता नहीं। उससे तो जो भी मिलता है वह सुख ही है। जब उससे सुख ही मिलता है तो हम नाहक सुख के भिखारी क्यों बने। जिससे सुख मिलने की सभावना न हो उससे सुख मागा जाना चाहिए। जिससे सुख ही मिलता हो, जिससे जो मिलता हो वह सुख ही होता है, उससे हम दुख ही क्यों न मांग से। इसमें भक्त बड़ी चालाकी कर रहा है। इसमें भगवान को भी वह धोका दे रहा है। वह भगवान को भी थोड़ी दिक्कत में डाल रहा है। क्योंकि, जहा प्रेम है वहा थोड़ी दिक्कत में डालने का मन स्वाभाविक है। वह यह कह रहा है कि दो तो दुख दो, देखे कैसे समर्थ हो! देखे कैसे सर्वशक्तिमान हो! उसने एक जगह पकड़ ली है जहा वह सिद्ध कर देगा कि सर्वशक्तिमान तुम नहीं हो। क्योंकि, दुख तुम नहीं दे सकते हो।

और भी कुछ कारण है जो बहुत मनोवैज्ञानिक है। सुख क्षण भर का होता है। आता है, चला जाता है। सुख में लबाई नहीं होती। दुख में लबाई होती है। आता है तो जाने का नाम लेता नहीं मालूम पड़ता। सुख आता है तो आ भी नहीं पाता और चला जाता है। सुख बहुत उथला होता है। इसलिए, जो लोग, जिन्हे हम साधारणत सुखी कहते हैं, हमेशा 'शैलो' हो जाते हैं। उनकी जिन्दगी में कुछ गहरा नहीं रह जाता, ऊपर-ऊपर हो जाते हैं। दुख बहुत गहराई रखता है। उसकी बड़ी 'डेंथ' है। इसलिए जो लोग दुख से गुजरते हैं उनकी आखो में, उनके चेहरो में, उनकी जिन्दगी में एक गहराई होती है जो साधारणत एक सुखी आदमी की जिन्दगी में नहीं होती। दुख, दुख ही नहीं देता, माजता भी है, निखारता भी है, गहरा भी कर जाता है। इसलिए, भगवान से कुछ मांगना ही है तो सुख नहीं मांगा जा सकता, ऐसी चीज जिसमें न कोई गहराई है और न कोई लम्बाई है।

आखिरी बात जिन्हे हम प्रेम करते हैं उनके दुख का भी आनन्द है। जिन्हे हम प्रेम नहीं करते उनसे मिले सुख में भी कोई आनन्द नहीं है। दुख का अपना आनन्द है, यह कभी स्थाल में आया आपको? पीड़ा का अपना सुख है, पीड़ा का अपना रस है। 'मैसोविस्ट' नहीं। वह दुख नहीं, जो 'सेल्फ टार्चर' है। जो अपने को सताना है, उम दुख की बात नहीं। वह उस दुख की मांग कर रहा है जिसे प्रेम की पीड़ा कहते हैं। प्रेम की बड़ी गहरी पीड़ा है। इतना दुख भी नहीं सताता जितनी प्रेम की पीड़ा, जो रोम-रोम में भर जाती है। दुख तोड़ नहीं पाता। प्रेम तोड़ देता है। दुख मिटा नहीं पाता, प्रेम मिटा देता है।

दुख में तो आप पीछे बच जाते हैं, प्रेम में आप बचते ही नहीं। खो जाते हैं और विदा हो जाते हैं। ऐसा दुख दे जिसमें भक्त ही जाय, जिसमें वह बचे ही नहीं। ऐसी मृत्यु दे दी जिसमें वह खो ही जाय, बचे ही नहीं—इस अर्थ में—और इसीलिए कृष्ण समझाते नहीं, हस के रह जाते हैं। कुछ चीजे हैं जो हसने से ही समझायी जा सकती हैं और कुछ चीजे हैं जिनको समझाने से नासमझी पैदा हो जाती हैं। इसलिए, वे हसकर चुप रह जाते हैं, समझाने नहीं जाते हैं। वे सभौं जाते हैं राज को कि मागने वाला बहुत तरकीब की बात कर रहा है। मागने वाला उनको बहुत झँझट में ढाल रहा है।

प्रश्न आचार्यजी, एक विरोध पैदा हो जाता है। जैसा आपने कृष्ण के सबध में बन्धवी में भी कहा और यहां भी विषय प्रवेश के घोड़े पर कहा है। कृष्ण का जीवन अलौकिक, चमत्कारिक, हृषता हुआ, खेलता हुआ, फूलों की तरह खिलता हुआ जीवन रहा है। बाकी जितने भी दुखरे लोग हुए उनका जीवन दुखवादी जीवन रहा। जैसे, इसको कभी किसी ने जीवन में हसते हुए नहीं देखा। अगर भक्त दुख मांगता है, उदास रहता है, कभी हसता नहीं है, तो कृष्ण के फिर उस अलौकिक वर्णन की पूर्ति कहें होती है, यह बात में आपसे जानना चाहूँगा?

उत्तर जो भक्त दुख मांगता है वह दुखवादी नहीं है, क्योंकि दुखवादी, तो इतने दुख पैदा कर लेता है कि किसी से मागने की कोई जरूरत नहीं। दुखवादी किसी से दुख मांगने जाता है? दुखवादी इतने दुख में रहता है कि आप उसको और ज्यादा दे नहीं सकते। भक्त इसीलिए दुख मांग लेता है कि सुख तो वह सुब पा रहा है दुख को भी चखना चाहता है। भक्त कभी भी दुखी नहीं है। भक्त अगर रोता भी है तो उसके आसू आनन्द के ही आसू है। भक्त रोया है बहुत लेकिन उसके आसू दुख के आसू नहीं है। लेकिन, हमसे भूल हो जाती है। हम सिर्फ दुख में ही रोये हैं, आनन्द में नहीं रोये। इसलिए, आसुओं के साथ हमने दुख की अनिवार्यता बाध ली। लेकिन, आसुओं का कोई संबन्ध दुख से नहीं है। आसुओं का सम्बन्ध 'ओऽहर फ्लोइग' से है। मन का कोई भी भाव मन की सीमा के पार हो जाय तो आसुओं से बहना शुरू हो जाता है। दुख ज्यादा हो जाय तो आसुओं से बहता है, सुख ज्यादा हो जाय तो आसुओं से बहता है, प्रेम ज्यादा हो जाय तो आसुओं से बहता है। भक्त भी रोता है, प्रेमी भी रोता है। पर, वह आनन्द में ही रोता है। यह जो आनन्द की पीड़ा है, यह जो आनन्द का दश है, दुखवाद से इसका कोई भी सम्बन्ध नहीं है।

प्रश्न आपने भक्त की बात कही, और कृष्ण को भगवान कहा, तो मुझे प्रश्न याद आ गया कि क्या कृष्ण भक्त थे ? ये तो किसके भक्त थे ? अगर नहीं थे तो फिर भक्ति की इतनी महिमा क्यों गयी ?

उत्तर इस सम्बन्ध में थोड़ी-सी बात पीछे हुई है, लेकिन हमें समझ में नहीं आती है इसलिए फिर दूसरी तरफ से लौट आती है। मैंने प्रार्थना के सम्बन्ध में जो कहा वह थोड़ा स्थाल में लेगे तो समझ में आ जायेगा। जैसा मैंने कहा, 'प्रेयर' नहीं, 'प्रेयरफुलनेस'। ऐसी भक्ति का मतलब किसी की भक्ति नहीं होती। भक्ति का मतलब है 'दिव्योशनल एटीट्यूड'। भक्ति का मतलब है भक्ति का भाव। उसके लिए भगवान होना जरूरी नहीं है। भक्ति, भगवान के बिना हो सकती है। सच तो यह है कि भगवान कही भी नहीं है, भक्ति के कारण पैदा हुआ है। भगवान के करण भक्ति है, ऐसा नहीं, भक्ति के कारण भगवान दिखायी पड़ना शुरू हुआ। जिन लोगों का हृदय भक्ति से भरा है उन्हे यह जगत भगवान हो जाता है। जिनका हृदय भक्ति से नहीं भरा है वह पूछते हैं, भगवान कहा है ? वह पूछेंगे, और उन्हे बताया नहीं जा सकता, क्योंकि जगत उनके लिए भगवान नहीं है। भक्तिपूर्ण हृदय, जगत को भगवान की तरह देख पाता है। जगत पत्थर भी नहीं है। पत्थर की तरह हृदय, जगत को पत्थर की तरह देख पाता है। जगत में जो हम देख रहे हैं वह 'प्रोजेक्शन' है। हमारे भीतर जो है उसका प्रतिफलन है। जगत में वही दिखायी पड़ता है जो हम हैं। अगर भीतर भक्ति का भाव गहरा हुआ तो जगत भगवान हो जाता है। फिर, ऐसा नहीं है कि भगवान कही बैठा होता है किसी मदिर में। नहीं, फिर जो होता है, भगवान ही होता है। कृष्ण भक्त है और भगवान भी है। और, जो भी भक्ति में प्रवेष करेगा वह भक्त से शुरू होगा और भगवान पर पूरा हो जायेगा। जब वह बाहर भगवान को देख लेगा तो उसने ऐसा क्या कसूर किया है कि उसके भीतर भगवान नहीं दिखायी पड़ेगे ? रामकृष्ण की बहुत मजे की एक घटना है।

रामकृष्ण को दक्षिणधर के मदिर में पुरोहित की तरह रखा गया। बहुत सस्ती नौकरी थी। लेकिन, दस-पाच दिन में ही तकलीफ शुरू हो गयी, क्योंकि ट्रस्टियों को खबर मिली कि यह आदमी तो ठीक नहीं मालूम होता। भगवान को जो भोग लगाता है पहले खुद चब लेता है। भगवान पर जो फूल चढ़ाता है सूध लेता है। छिपकर ट्रस्टियों ने देखा कि बड़े भाव से रामकृष्ण नाचते हुए भीतर आये। भोग पहले खुद को लगाया, फिर भगवान को लगाया। फूल पहले सूधे, फिर भगवान को सूधाये। ट्रस्टियों ने उन्हे पकड़ लिया और कहा,

यह क्या कर रहे हो ? यह कोई ढग है भक्ति का ? रामकृष्ण ने कहा, अकित का भी ढग होता है, यह कभी सुना नहीं। भक्त देखे हैं, भक्त सुने हैं, लेकिन भक्ति का कोई ढग होता है ? कोई ढाचा, कोई 'डिसीप्लीन' होती है ? उन्होंने कहा, कहीं सूधा हुआ फूल भगवान को चढ़ाया जा सकता है ? रामकृष्ण ने कहा, बिना सूधे चढ़ा कैसे सकता है ? पता नहीं, फूल में सुगन्ध हो भी या न हो ! ट्रस्टियो ने कहा, बिना भगवान को भोग लगाये खुद कैसे खा लेते हो ? रामकृष्ण ने कहा, मेरी भा मुझे खिलाती थी तो पहले खुद चख लेती थी। वै बिना चखे नहीं चढ़ा सकता । नौकरी तुम सम्हालो । अन्यथा मुझे यहा रखना है तो मैं चखूँगा तब चढ़ाऊगा, पता नहीं खाने योग्य हो भी या न हो ।

यह आदमी सिर्फ बाहर ही भगवान को कैसे देख पायेगा ? बहुत जल्दी वह वक्त आ जायेगा कि कहेगा भीतर भी भगवान है । तो, भक्त से जो शुरू होती है यात्रा, भगवान पर पूरी होती है । कृष्ण दोनों हैं, तुम भी दोनों हो । सभी दोनों हैं । लेकिन, भगवान से शुरू नहीं कर सकते हो तुम, भक्त में ही शुरू करना पड़ेगा । क्योंकि, अगर तुमने यह कहा कि मैं भगवान हूँ तो खतरा है । ऐसा कई लोग खतरा पैदा करते हैं । वे कहते हैं मैं भगवान हूँ । उनके भीतर भक्ति का तो भाव होता नहीं, भगवान की धोषणा कर देते हैं । तब ऐसे लोग अह-केन्द्रित होकर दूसरों को भक्त बनाने की कोशिश में लग जाते हैं क्योंकि, उनके भगवान के लिए भक्तों की जरूरत है । वे अपने में भगवान देखते हैं, दूसरे में भक्त देखते हैं । ऐसे गुरुङम के बहुत घेरे हैं सारी दुनिया में ।

यादा शुरू करनी पड़ेगी भक्ति में । लेकिन, कृष्ण को भगवान माना जा सकता है, क्योंकि वह आदमी घोड़े तक की भक्ति कर सकता है । साझे को जब घोड़े थक जाने हैं तो उन्हें ले जाता है नदी पर स्नान कराने । उनको नहलाता है, उनको खुरे से साफ करता है । यह आदमी भगवान होने की हैमियत रखता है । क्योंकि, घोड़े को भी भगवान की तरह स्नान करवा सकता है । इस आदमी से डर नहीं है, इससे खतरा नहीं है । यह अगर भगवान की अकड़ बाला आदमी होता तो सारथी की जगह बैठ नहीं सकता, अर्जुन से कहता, बैठो नीचे । हमें बैठने दो ऊपर । हम हैं भगवान, तुम हो भक्त । भगवान बैठेंगे रथ में, भक्त चलायेगा । जो अपने को भगवान घोषित करते हैं जरा उन्हे तस्त के नीचे बिठालकर, आप तस्त पर बैठकर देखे तो पता चलेगा ।

प्रेम हमारी कृष्ण - प्रेम की चरम सीमा की कसौटी क्या होगी ?

उत्तर जैसा मैंने कहा, भक्ति का कोई ढग नहीं होता, प्रेम की कोई कसौटी नहीं होती । प्रेम हो तो काफी है, कसौटी की क्यों फिक करते हैं । आप

प्रेम की फिक करें। प्रेम नहीं है, इसलिए सोचते हैं कि कसौटी मिल जाय तो ज्ञाच कर ले। लेकिन नहीं है, तो जाच करने की जरूरत क्या है?

और, जब प्रेम होता है तो सच्चा ही होता है, झूठा कोई प्रेम होता नहीं। झूठा प्रेम गलत सत्य है। या तो होता है, या नहीं होता। सोने को जाचने के लिए कसौटी की जरूर पड़ती है क्योंकि गलत सोना होता है। जैसे, पैर में काटा गड़ता है, आप जानते हैं, कोई कसौटी होती है क्या उसकी? आपको पता है कि दर्द हो रहा है। हा, अगर दूसरा कोई कहता हो कि क्या कसौटी है, तो उसके पैर में भी काटा गड़ने के सिवा और क्या उपाय है? प्रेम जब घटित होता है तो हम जानते हैं उसी तरह, जैसे हम और सब जानते हैं। अपने भीतर देखे, पहचानने में कठिनाई न आयेगी। जान सकेगे कि मेरी जिन्दगी में प्रेम है या नहीं। प्रेम की फिक करे, हीं या नहीं। लेकिन, हम डरते हैं फिक करने में। भीतर ज्ञाकरन से डरते हैं, क्योंकि हमें भलीभांति पता है कि प्रेम नहीं है। इसलिए, हम अक्सर दूसरे की फिक करते हैं कि दूसरे का प्रेम मेरी तरफ है या नहीं। शायद ही कोई पूछता हो कि मेरा प्रेम दूसरे की तरफ है या नहीं। इसलिए, लडते हैं दिन-रात कि दूसरा कम प्रेम करता है। पति कम प्रेम करता है, पत्नी कम प्रेम करती है, बेटा कम प्रेम करता है। बाप कम प्रेम करता है। सब लड रहे हैं दूसरे से कि दूसरा कम प्रेम कर रहा है। और कोई भी यह नहीं पूछता है कि मैंने प्रेम किया है? और जब हम जीवित चारों तरफ फैले व्यक्तियों को भी प्रेम नहीं कर पाते, जब हम दिखायी पड़ने वाले फूलों को प्रेम नहीं कर पाते, जब चारों ओर सूखे हुए पर्वतों को प्रेम नहीं कर पाते, आकाश के चाद-तारों को प्रेम नहीं कर पाते, सो हम अदृश्य को कैसे प्रेम कर पायेंगे? दृश्य से शुरू करे? और, बड़े मजे की बात है कि जो आदमी दृश्य को प्रेम करता है वह दृश्य के भीतर तत्काल अदृश्य को अनुभव करने लगता है। पत्थर को प्रेम करे और पत्थर परमात्मा हो जाता है। फूल को प्रेम करे, और फूल की अदृश्य प्राण-ऊर्जा दिखायी पड़नी शुरू हो जाती है। व्यक्ति को प्रेम करे और तत्काल शरीर मिट जाता है और आत्मा शुरू हो जाती है। प्रेम कीमिया है अदृश्य को खोजने का। प्रेम रासायनिक विधि है, रासायनिक दृष्टि है, रासायनिक ज्ञानोद्धारा है अदृश्य को खोजने का।

यह कभी न पूछें कि प्रेम की चरम अवस्था क्या है। प्रेम जब भी होता है, चरम ही होता है। प्रेम की दूसरी कोई अवस्था होती ही नहीं। प्रेम की 'डिप्रेज' नहीं होती। यह थोड़ा समझ लेना उचित होगा। ऐसा नहीं होता है कि मैं कहूँ कि मुझे आपसे थोड़ा-थोड़ा प्रेम है। होता ही नहीं ऐसा। जैसे कोई आदमी दो पैसे

चोरी करे और कोई आदमी दो लाख की चोरी करे तो दो लाख की चोरी बड़ी चोरी है, और दो पैसे की चोरी छोटी चोरी है, ऐसा कहिये गा ? हा, जो लोग पैसे का हिसाब रखते हैं वह कहेगे कि दो लाख की चोरी बड़ी चोरी होगी और दो पैसे की चोरी छोटी हुई । लेकिन, चोरी छोटी और बड़ी हो सकती है ? चोरी तो सिर्फ़ चोरी है । चोरी में कोई 'डिग्रीज' नहीं होती । दो पैसे चुराते बक्त आदमी उतना ही चोर होता है जितना दो लाख चुराते बक्त चोर होता है । प्रेम न दो पैसे का होता है, न दो लाख का होता है, बस होता है वर्ष चरम कोई अवस्था नहीं होती । प्रेम चरम ही होता है । अगर कोई पूछ कि भाप बनने का चरम बिन्दु क्या है तो हम कहेगे, जो प्रथम बिन्दु है वही चरम भी है । जो पहला बिन्दु है वही आखिरी भी । सौ डिग्री प्रथम है और सौ डिग्री आखिरी है । प्रेम भी प्रथम और अंतिम एक ही है । उसका पहला कदम ही आखिरी कदम है । मगर हमें पता ही नहीं है । इसलिए, हम अजीब सवाल पूछते हैं । अभी तक मैंने प्रेम के सम्बन्ध में ठीक सवाल किसी आदमी को पूछते नहीं देखा । मुझे स्थाल आती है एक घटना ।

एक बहुत बड़ा करोड़पति मार्गन अपने एक विरोधी करोड़पति के साथ बातचीत कर रहा था । उसने अपने विरोधी करोड़पति से, जो उसका प्रतियोगी था, कहा कि दुनिया में हजार ढग है कमाने के, लेकिन ईमानदारी का ढग एक ही है । उसके विरोधी ने कहा, वह कौन-सा ढग है ? मार्गन ने कहा, मैं जानता था कि तुम पूछेगे, क्योंकि तुमको उसका पता नहीं है । ऐसे ही मामला प्रेम का है । प्रेम की बाबत हम ऐसे सवाल पूछते हैं जो कि बनते ही नहीं । जोकि होते ही नहीं—इर्रेलेवेट । क्योंकि, जिसे उसका पता है वह पूछ ही नहीं सकता । वह जानता है ।

प्रश्न आवार्यश्ची, महाभारत सप्ताम मे कृष्ण अर्जुन को युद्ध मे प्रवृत्त करते हैं । मगर, एक दफा ऐसा सुना गया कि कृष्ण अर्जुन के सामने सप्ताम करने गये थे । वह क्या बात थी ?

उत्तर असल मे, कृष्ण जैसे व्यक्ति न किसी के मित्र है, न किसी के शत्रु । कृष्ण की कोई निश्चित धारणा किसी की बाबत नहीं है । इसलिए, शत्रु मित्र हो सकता है, मित्र शत्रु हो सकता है । यह स्थितिया तय करेगी । हम और तरह से जीते हैं । हम किसी के मित्र होते हैं, किसी के शत्रु होते हैं । फिर परिस्थितिया बदल जाती है, हमें बड़ी मुश्किल होती है । फिर भी मित्र और शत्रु को खीचने की कोशिश करते हैं । कृष्ण कुछ भी खीचते नहीं । जैसी स्थिति हो । अगर अर्जुन लड़ने को सामने पड़ जाय तो कृष्ण-अर्जुन युद्ध ही जायेगा । इसमे कोई अद्वितीय

न आयेगी। उसी मौज से अर्जुन से भी लड़ लेगे जिस मौज से अर्जुन के लिए लड़ते हैं। असल में कृष्ण मित्रता और शत्रुता को 'फिक्स्ड प्वाइट' नहीं बनाते। वह कोई सुनिश्चित चीजें नहीं हैं। वह तरलताएँ हैं। और जिन्दगी की तरलता में कहा तय किया जा सकता है कि कौन मित्र है? कौन शत्रु है? जो आज मित्र है वह कल शत्रु हो सकता है। जो आज शत्रु है वह कल मित्र हो सकता है। कल का कोई भरोसा नहीं। क्षण का कोई भरोसा नहीं। क्षण बदला और सब बदल जायेगा।

जिन्दगी पूरे बक्त बदलता हुआ 'पैटर्न' है। कहीं छाया है, कहीं धूप है। घड़ी भर बाद धूप कहीं और होगी, छाया कहीं और होगी। साझ तक बैठे देखते रहे इस बगिया को—सब बदलता रहेगा, धूप बदलेगी, छाया बदलेगी, बदली आयेंगी जायेंगी, दिन निकलेगा, साझ होगी, रात होगी। प्रकाश होगा, अँधेरा हो जायेगा, यह सब होता रहेगा। पूरी जिन्दगी इसी तरह बदलता हुआ 'पैटर्न' है। वहाँ कोई चीज शतरज के खात्रों की तरह तय नहीं है। इसलिए, कृष्ण मित्र का सामना भी कर सकते हैं।

ऐसे तो पूरा महाभारत ही बड़े मजे का है। उसमें सब मित्र आमने-सामने लड़े हैं। उसमें जिन द्रोण से सीखा है अर्जुन ने, वह उन्हीं पर तीर खीचे लड़ा है। जिन भीष्म से पाया है बहुत कुछ, उन्हीं को मारने के लिए तत्पर है। महाभारत बड़ा अद्भुत है। वह बता रहा है कि जिन्दगी में कुछ तय नहीं है। सब बदलता हुआ है। जो कल भाई थे, आज शत्रु हैं। जो कल मित्र थे आज आमने-सामने लड़ने को लड़े हैं। जो कल गुरु थे, आज उनसे लड़ना पड़ रहा है। और भी आश्चर्य की बात कि दिन भर लड़ते हैं और साझ उनकी कुशल-स्फैम पूछते हैं, जिनको दिन भर चोट मारी है, जिनमें दिन भर दिल खालकर लड़े हैं। यह लडाई बिल्कुल ईमानदारी से भरी हुई है। उस लडाई में जरा धोखा नहीं है। अगर भीष्म सामने पड़े तो गर्दन उतारने में देर न की जायेगी। लेकिन, साझ को दुख मनाने में भी बाधा नहीं आयेगी कि भीष्म जैसा आदमी खो गया। यह बहुत अजीब है।

इससे यह सूचना मिलती है। कि एक युग था, जब हम मित्रतापूर्ण ढग से लड़ भी सकते थे। आज युग बिल्कुल उल्टा है। आज हम शत्रुतापूर्ण ढग से ही मित्र हो पाते हैं। तब मित्रतापूर्ण ढग से युद्ध भी हो सकता था, आज मित्रता भी शत्रुतापूर्ण ढग से ही चलती है। आज तो मित्र भी प्रतियोगी है। तब शत्रु भी साथी था। यह जिन्दगी के बड़े अर्थों में सोचने जैसा है। यह सोचने जैसा है कि अगर मेरा कोई शत्रु है तो शत्रु के मरने के साथ मेरे भीतर भी कुछ मर जाता है। शत्रु ही नहीं मरता, मैं भी कुछ मरता हूँ। शत्रु के होने के साथ ही मेरा होना है।

शत्रु भी मेरे व्यक्तित्व का हिस्सा है। इसलिए शत्रु के प्रति भी बहुत शत्रुतापूर्ण होने का अर्थ नहीं है। शत्रु भी किसी गहरे अर्थों में मित्र है और मित्र भी किसी गहरे अर्थों में शत्रु है।

क्यो? जैसा कि निरन्तर पिछले दिनों मैं आपसे कहता आया हूं, जिन्दगी मेरे जिनको हम 'पोलेस्ट्रीज' मेरे बाटते हैं, छव बना देते हैं, वे हमारे शब्दों और सिद्धान्तों मेरी सत्य हैं। जिन्दगी की सीधी गूहराई में कोई 'पोलेस्ट्री' सत्य नहीं है। सब 'पोलेस्ट्रीज' जुड़ी हुई हैं। उत्तर और दक्षिण जुड़े हुए हैं। ऊपर और नीचे जुड़ा हुआ है। ऐसा अगर हम देख पाये तो फिर कृष्ण का अर्जुन से युद्ध समझ मे आ सकता है। लेकिन कृष्ण को समझने वालों की समझ मे नहीं आया है, और मुश्किल पड़ी है। क्योंकि जब भी हम समझाने जाते हैं तब हमारी धारणाए बीच मे खड़ी हो जाती है। और वह कहती है यह कैसी बात है? यह नहीं होनी चाहिए। हम मानते हैं कि मित्र को मित्र ही होना चाहिए, शत्रु को शत्रु ही होना चाहिए। हम जिन्दगी को फाको मेरे बाटते हैं और उनको घिर कर देते हैं। जिन्दगी नदी की भाति तरल है। जो लहर यहां थी, वह लहर अब बहुत दूर है। जो लहर कल साथ थी, आज बहुत दूर हट गयी है। इस पूरी जिन्दगी के रास्ते पर कौन हमारे साथ है, यह क्षण भर की बात है क्षण भर बाद साथ होगा कि नहीं, नहीं कहा जा सकता। कौन आज विरोध में खड़ा है। क्षण भर बाद विरोध में खड़ा होगा कि नहीं, नहीं कहा जा सकता। इस जिन्दगी को जो नदी की धार की तरह जीते हैं वे न शत्रु बनाते, न मित्र। शत्रु बन जाता है उसे शत्रु मान लेते हैं, जो मित्र बन जाता है उसे मित्र मान लेते हैं। वे कुछ बनाते नहीं। वे जिन्दगी मेरे संग गुजरते हैं।

कृष्ण के लिए न कोई शत्रु है, न कोई मित्र है। समय, परिस्थिति, अवसर जिसको मित्रता के खेमे मे ढकेल देता है उसके मित्र हो जाते हैं, जिसको शत्रुता के खेमे मे ढकेल देता है उसके शत्रु हो जाते हैं। फौजे कृष्ण की लड़ रही हैं कौरवों की तरफ से, कृष्ण लड़ रहे हैं पाण्डवों की तरफ से। विभाजन कर लिया दोनों का, क्योंकि दोनों ही कृष्ण को मित्र मानते थे। यह बड़े भजे की बात है कि कृष्ण ने दोनों को छूट दे दी थी कि जो तुम्हें मागना हो माग लो क्योंकि दोनों ही साथ आ गये हो। और कह दिया कि एक तरफ से मैं लड़ लूगा, एक तरफ से मेरी फौजे लड़ लेगी।

प्रश्न वह यह भी तो कह सकते थे कि दोनों मेरे मित्र हो, मैं किसी की भी तरफ से नहीं कहूँगा?

उत्तर ऐसा वह इसलिए नहीं कह सकते थे कि जो महाभारत की घटना घटने वाली थी वह इतनी विराट थी कि उसमें कृष्ण का होना एकदम जरूरी था। उनके बिना शायद वह घट भी नहीं सकती थी। मित्र से वह कहते कि मैं दोनों के बाहर रहा जाता हूँ। अगर वह भारतीय विदेश नीति अस्तियार करते तटस्थिता की, और कहते कि मैं दोनों तरफ नहीं हूँ तो वह बेईमानी होती। क्योंकि जिन्दगी में तटस्थिता होती ही नहीं। उसमें किसी तरफ हम होते ही हैं। तटस्थिता सिर्फ आत्मिक भावमें हो सकती है, जिन्दगी में नहीं। दिखावा हो सकता है तटस्थिता का। दिखावा वह भी कर सकते थे। लेकिन दिखावे का कोई मतलब न था। और दोनों ही मित्र सहायता मांगने आये थे, तटस्थिता मांगने नहीं आये थे—वे यह कहते आये थे कि हमें साथ दो। उत्तर, साथ के लिए देना था। दोनों का साथ न देने का मतलब होता कि दोनों से कोई मतलब नहीं है। दोनों के मित्र नहीं हैं। तटस्थिता का मतलब है, हम उदास हैं। उदासी में हमें मतलब नहीं है कि कौन जीता है, कौन हारता है। कोई प्रयोजन नहीं तुमसे। कृष्ण निष्प्रयोजन नहीं हैं। कृष्ण मित्र दोनों के हैं, लेकिन चाहते यह है पाण्डव जीते। इसलिए कि उन्हे लगता है कि पाण्डव धर्म के पक्ष में हैं और कौरव अधर्म के पक्ष में हैं। अधर्मी भी उनके प्रति मित्रतापूर्ण हैं। कृष्ण से उनकी कोई शक्ति नहीं है। कृष्ण के प्रति उनका सदभाव है। कृष्ण को वे भी चाहते हैं। उस जमाने में बहुत सीधे साफ-सुधरे हिसाब होते थे। सभी बट जाते थे। साफ निर्णय हो जाता था। ज्यादा देर खीचने तानने की जरूरत नहीं होती थी। 'पोलेरिटीज' साफ हो जाती थी।

कृष्ण उपेक्षा से नहीं भरे हैं। उदासीन वे नहीं हैं। इसलिए तटस्थ नहीं हो सकते। दोनों बराबर नहीं हैं उन्हे, लेकिन फिर भी दोनों की तरफ से मित्रता है इसलिए बटने को वह तैयार है। इतना भी वे जानते हैं कि बटवारा बहुत कुछ निर्णय करेगा इसलिए बटवारे का जो नियम उन्होंने चुना वह बहुत अद्भुत है। बहुत गणित का है। उन्होंने कहा यह कि एक तो मुझे चुन लो—मुझ अकेले को। और एक मेरी सारी फौज को चुन लो। इससे बहुत साफ हो गया मामला। क्योंकि कृष्ण को अकेले को कौन चुनेगा? जो हारने की तैयारी रखते हो, वही न? जिनका शक्ति पर भरोसा नहीं है, वही न? कौरव तो बड़े प्रसन्न हुए। डर गये थे बहुत, क्योंकि पहला चुनाव पाण्डवों को दिया गया था।

कृष्ण सोये हैं। कौरव और पाण्डवों के प्रतिनिधि दोनों साथ आ गये हैं। वे जाएं, तब तक प्रतीक्षा करनी है। पाण्डवों का प्रतिनिधि बैठा है पैरों के पास।

कौरवों का प्रतिनिधि बैठा है सिर के पास । पैर के पास कौरव कैसे बैठ सकते हैं? पैर के पास तो वही बैठ सकता है जो विनम्र हो । मेरे सब छोटी छोटी बातें बड़ी सूचक बन जाती हैं । हम जिन्दगी में वही करते हैं जो हम हैं । यह आकस्मिक नहीं है, इतनी सी घटना भी कि कौरवों का बैठना सिर के पास, पाण्डवों का बैठना पैर के पास 'एक्सिडेंटल' नहीं है । इसलिए आख स्वभावत जो पैर के पास बैठे हैं उन्हीं पर पहले पड़ी । इसलिए चुनाव का पहला मौका उन्हे दिया गया । निश्चित ही जो विनम्र है वह जीतेगे । 'ब्लसेड-आर द भीक दे शैल इनहेरिट अर्थ' । जीसस कहते हैं, धन्य है वे जो विनम्र हैं, क्योंकि पृथ्वी का राज्य उन्हीं का होगा । वे जो विनम्र थे उनके लिए पहला मौका था कि तुम चुनाव कर लो । कौरव बहुत घबड़ाये कि यह घोखा हो गया, यह गलती हो गयी, यह भूल हो गयी, हम पैर के पास ही क्यों न बैठ गये? पहला मौका पाण्डवों को दिया गया चुनाव का, इसमें पक्षपात हुआ जा रहा है । निश्चित ही पाण्डव फौजों को चुन लेगे और कृष्ण को अकेले को कौन चुनेगा? हम अकेले कृष्ण का क्या करेंगे? लेकिन वे बड़े प्रसन्न हुए जब उन्होंने देखा कि नासमझ पाण्डवों ने कृष्ण को चुन लिया और सारी फौजें कौरवों को छोड़ दी । अब जीत निश्चित है । लेकिन वही उनकी हार सुनिश्चित हो गयी । पाण्डवों के चुनाव ने कह दिया था कि चुनाव आत्मिक हो गया है । चुनाव गहरा हो गया, धर्म का हो गया है । और कृष्ण उनके साथ खड़े होकर निर्णायक हो गये । यह जो मैंने कहा, पैर के पास बैठ जाना बड़ा महत्वपूर्ण हो गया, एक छोटी घटना मुझे याद आती है, उससे बात समझ में आ जायेगी ।

विवेकानन्द हिन्दुस्तान से अमरीका जाते थे । उन्होंने शारदा मा से बाकर आशीर्वाद मांगा और कहा कि मैं अमरीका जाता हूँ । रामकृष्ण की पली शारदा मा ने कहा, क्या करोगे अमरीका जाकर? उन्होंने कहा कि मैं धर्म का सन्देश ले जाऊँगा । शारदा मा चौके में अपना काम करती थी । उन्होंने कहा, वह छुरी पड़ी है सब्जी काटने की, वह उठाकर मुझे दे दो । विवेकानन्द ने वह छुरी उठायी और शारदा को दी । शारदा ने कहा, जाओ भेरा आशीर्वाद है । लेकिन, विवेकानन्द ने कहा, छुरी उठाने से इसका क्या सबै? शारदा ने कहा, मैं देखती थी कि छुरी उठाकर तुम कैसे मुझे देते हो? हमसे किसी ने भी उठाकर दी होती तो डण्डी खुद पकड़ी होती और फलक शारदा की तरफ किया होता । विवेकानन्द ने फलक खुद पकड़ा और डण्डी शारदा की तरफ की । शारदा ने कहा, मैं सोचती हूँ कि तुमसे धर्म का सदेश भेजा जा सकता है ।

बब यह बिल्कुल 'एक्सडेण्टल' नहीं है। यह किसी किताब में लिखा हुआ नहीं है कि जब तुम अमरीका जाओगे और शारदा तुमसे पूछेंगी तो छुरी ऐसी पकड़ लेगे। ये शारदा जैसे व्यक्तित्व भरोसे के नहीं हैं। यह भी कोई बात थी। यह कोई पता लगाने का ढग था? ऐसे कोई धर्म की परीक्षा हो सकती थी? लेकिन, शारदा ने कहा, मेरा आशीर्वाद है, तुम जाओ। तुम्हारे मन में धर्म है। ऐसे ही उस दिन कृष्ण के पैरों में बैठे पाण्डवों ने सूचना दे दी कि धर्म उनकी तरफ है, पैरों के पास बैठने की उनकी हिम्मत है। फिर, कृष्ण को चुनकर उन्होंने धोषणा कर दी कि हम हारने को तैयार हैं, लेकिन धर्म छोड़ने को तैयार नहीं। हम धर्म के साथ रह कर हार जायेंगे, लेकिन अधर्म के साथ रहकर नहीं जीतेंगे। और, धर्म के साथ सिर्फ़ वही हो सकता है जो हारने को तैयार है। जैसा मैंने कहा, परमात्मा के साथ सिर्फ़ वही हो सकता है जो दुख की मांग करता है। जो दुख को चुन लेता है। धर्म के साथ वही हो सकता है जो हारने को तैयार है। अधर्म 'गॉट्टेंकट' से खोजता है हमेशा। उसका रम और आकर्षण उसके आश्वासन में है। उसका आश्वासन सदा जीत का है। वह कहता है ये रही जीत, हाथ बढ़ाओ मिल जायेगी। इस जीत के आकर्षण में आदमी अधर्म को पकड़ता है। धर्म का रास्ता लबा है, श्रम माध्य है 'आरडूअस' है। धर्म के माथ हार हो सकती है, धर्म के साथ विनाश भी हो सकता है। लेकिन जो धर्म के साथ विनष्ट होने को तैयार है और हारने को तैयार है, उसकी हार कभी होती नहीं। लेकिन, तैयारी वह रखनी होती है। ये बड़ी उन्टी बातें हैं, लेकिन एसा ही है।

**प्रश्न.** क्राइस्ट ने कहा है कि धन्य है वे जो विनम्र है ( meek ), वे पृथ्वी पर राज्य करेंगे—इसका आप कैसा अर्थ करते हैं?

उत्तर जीमम के दो बच्चों में थोड़ा-न्सा फर्क है। धन्य है वे जो विनम्र है पृथ्वी का राज्य उनका होगा। 'किंगडम आफ द अर्थ'। धन्य है वे जो पवित्र है, स्वर्ग का राज्य उनका होगा 'किंगडम आफ द हैवन'। असल में विनम्रता शुरुआत है, पवित्रता अन्त है। 'हथूमिलिटी' प्रारम्भ है, 'प्योरिटी' उपलब्धि है। जो विनम्र है, वे पहली सीढ़ी पर गये। उन्होंने पवित्र होने के लिए ढार खोला, वे कभी पवित्र हो नहीं गये। जो विनम्र नहीं है, वे कभी पवित्र नहीं हो सकते। क्योंकि, अहंकार से बड़ी और कोई अपवित्रता नहीं है। जो विनम्र हुए, जिन्होंने अहंकार छोड़ा, जो झुके, समर्पित हुए, उन्होंने वह ढार खोला। लेकिन, झुक जाना ही पा लेना नहीं है। आप झुक जाने से सिर्फ़ ढार बने।

एक आदमी नदी के किनारे खड़ा है। पानी नीचे वह रहा है, वह आदमी प्यासा है। वह कुक जाय तो पानी अजली में भर सकता है, लेकिन कुकने को वह राजी नहीं है। वह अकड़ कर खड़ा है। खड़ा रहे प्यासा, नदी नीचे बहती रहेगी। नदी का कोई कम्फर नहीं है उसकी प्यास में। कुकने से शुरुआत होगी, अंजली में पानी आने का द्वार खुलेगा।

ऐसे ही, जो विनम्र है वे द्वार खोलते हैं अपनी पवित्रता के लिए। क्योंकि, विनम्रता उन सब चीजों को काट देती जिनसे आदमी अपवित्र होता है। विनम्र आदमी अहकारी न रह जायेगा। विनम्र आदमी आक्रमक न रह जायेगा। विनम्र आदमी क्रोधी न रह जायेगा। विनम्र आदमी लोभी न रह जायेगा, विनम्र आदमी कामी न रह जायेगा। वह क्रोध की जगह क्षमा को उपलब्ध होने लगेगा। लोभ की जगह दान को उपलब्ध होने लगेगा, आक्रमण की जगह हारने की तैयारी दिखाने लगेगा, परियह की जगह अपरियही होने लगेगा। वह अपनी घोषणा करने की जगह अन्धेरे और छाया में हटने लगेगा, अदृश्य होने लगेगा। जिस दिन यह विनम्रता पूरी ही जायेगी, उस दिन पवित्रता पूरी हो जायेगी। इसलिए, दूसरे वचन में जीसस कहते हैं, 'ब्लेसेड आर दी प्योर, दे शैल इनहेरिट द किंगडम आफ गाड'। वे परमात्मा के राज्य के मालिक हो जायेगे जो पवित्र है।

एक और वचन है जीसस का—इसी तरह का—'ब्लेसेड आर द पुअर इन स्प्रिट', वे जो आत्मा से दरिद्र हैं। बड़ा अजीब वाक्य है। उसमें दोनों बातें सम्मिलित हो गयी। विनम्रता और पवित्रता दोनों ही उस वचन में आ गयी। इतने गरीब है भीतर, अपवित्र होने के लिए कुछ तो चाहिए? कुछ बचा ही नहीं। कोई मालिकियत होनी चाहिए—धन होना चाहिए, पद होना चाहिए, नाम होना चाहिए, यश होना चाहिए। कुछ तो होना चाहिए, अपवित्र होने के लिए? यह बड़े मजे की बात है कि क्रोध कुछ है, अक्रोध सिर्फ अभाव है। लोभ कुछ है, अलोभ सिर्फ अभाव है। हिंसा कुछ है, अहिंसा सिर्फ अभाव है। इतना गरीब है भीतर आदमी, कि न हिंसा है उसके पास, न क्रोध है उसके पास, न लोभ, न पद, न प्रतिष्ठा, न नाम, न धन—कुछ भी नहीं है। 'पुअर इन स्प्रिट'। दीन दरिद्र आत्मा, लेकिन उसकी समृद्धि का कोई मुकाबला नहीं। जो सबसे ज्यादा दीन हो गया है भीतर, वह सबका मालिक हो जायेगा। वह सब पा लेगा जो पाने योग्य है।

जीसस का एक वचन है इसके सदर्भ में, जिसमें वह कहते हैं—'सीक यी फस्ट द किंगडम आफ गाड एण्ड आल एल्स बी एडेड अनटू यू'। पहले तुम परमात्मा के राज्य को खोज लो और फिर सब तुम्हें मिल जायेगा। लेकिन, जब उनसे कोई पूछता

है कि परमात्मा के राज्य को कैसे खोजे, तो वह कहते हैं विनम्र हो जाओ, पवित्र हो जाओ, दरिद्र हो जाओ तो परमात्मा का राज्य मिल जायेगा। और, जब परमात्मा का राज्य मिल जायेगा तो फिर सब, जो भी है, सब उन्हें मिल जायेगा। अजीब शर्त है। सब खो दो तो सब पा लोगे। कुछ भी बचाया तो सब खो दोगे। जो अपने को खोने को राजी है वह सब पाने के मालिक हो जायेगे। सन्धासी का यही अर्थ है मेरे मन मे। जो सब खोने को राजी है, वह सब पाने का अधिकारी हो जाता है।

प्रश्न लेकिन, वह खोने के बाद पाने को क्यों सोचे ?

उत्तर तुम्हारे सोचने की बात नहीं है। ऐसा होता है। तुम सोचोगी तब तो खो ही न सकोगी। अगर प्रभु का राज्य पाने के लिए विनम्र हुए तब तो विनम्र हुए ही नहीं। वह 'कासीक्वेस' है। वह जो दूसरी बात है वह परिणाम है, वह आपके लिए आश्वासन नहीं है। क्योंकि, अगर कोई आदमी कहता है कि मैं सब पाने के लिए सब छोड़ने को राजी हूँ तो छोड़ेगा कैसे ? वह तो सब पाने के लिए - कुछ नहीं छोड़ सकता। नहीं, वह जो दूसरा हिस्सा है, वह परिणाम है। ऐसा देखा गया कि जिन्होने सब छोड़ा उन्होने सब पाया है, लेकिन जिन्होने सब पाना चाहा है वह कुछ भी नहीं छोड़ सके।

प्रश्न स्थितप्रज्ञ तो दुविधा मे डालने वाली बात हो गयी। और, बिलकुल उल्टी लगती है। आप स्वयं अति विनम्र भी हैं और कभी-कभी अति कठोर आलोचक भी हो जाते हैं—ऐसा क्यों ?

उत्तर हा, मैं दुविधा को मिटाऊँगा भी नहीं। क्योंकि, जो विनम्रता ओढ़ी गयी होती है, जो विनम्रता लाई गयी होती है वह सदा विनम्र होती है, लेकिन जो विनम्रता सहज होगी वह इतनी विनम्र होती है कि अविनम्र होने की भी हिम्मत कर सकती है। सिर्फ विनम्र आदमी ही निर्मम रूप से अविनम्र होने का साहस कर सकता है। सिर्फ ऐमी ही कठोर हो सकता है। तो ऐसा निरन्तर लगेगा, वही जो मैं कृष्ण के लिए कह रहा हूँ। मुझमे निरन्तर उल्टी बाते, बहुत तरह की उल्टी बाते हैं, लेकिन मैं पूरी जिन्दगी को ही स्वीकार करता हूँ, वही मेरी विनम्रता है। अगर मेरे भीतर कभी मुझे कठोर होने जैसा होता है तो मैं रोकता नहीं। क्योंकि रोके कौन, मैं कठोर हो जाता हूँ। कभी मुझे विनम्र होने जैसा होता है तो मैं क्या करूँ, विनम्र हो जाता हूँ। जो होता है, वह मैं होने देता हूँ। अपनी तरफ से मेरे होने की कोई भी चेष्टा नहीं है। मेरा कोई प्रयास नहीं है। इसलिए मेरे साथ दुविधा जारी रहेगी। मेरे साथ दुविधा कभी मिटने वाली नहीं है। और, जिनको

हम स्थितप्रज्ञ कहते रहे हैं—कृष्ण को स्थितप्रज्ञ कहियेगा कि नहीं कहियेगा, वहा दुविधापूर्ण है मामला। कृष्ण बहुत बार प्रज्ञा को बिलकुल खोते हुए मालूम पड़ते हैं। सुदर्शन हाथ में उठाया होगा तब हमें लगेगा कि प्रज्ञा खो दी। स्थिरता न रही।

स्थितप्रज्ञ की यह हमारी धारणा है कि जिसकी प्रज्ञा स्थिर हो गयी है। इसका मतलब क्या होता है? कि, जो हम ठीक समझते हैं, वही वह करता है? यानी हमारे पक्ष में स्थिर हो गयी है? स्थिर हो जाने का मतलब जड़ हो जाना नहीं है। स्थिर हो जाने का मतलब कुल इतना है कि प्रज्ञा उपलब्ध हो गयी है। और, अब जो प्रज्ञा करवाती है, वह करता है, अब अपनी तरफ से कुछ भी नहीं करता। अब न दोष उसके हैं, न गुण उसके हैं। अब न आदर उसका है, न अनादर उसका है। अब न तो वह यह कहता है कि मैं जो कर रहा हूँ वह ठीक कर रहा हूँ, न वह यह कहता है कि जो मैं कर रहा हूँ वह गैर ठीक कर रहा हूँ। अब न तो वह पछताता, न वह प्रायश्चित्त करता है। न वह अब पीछे लौटकर देखता है। अब जो होता है होता है। और, वह उसको होने देता है। अब उसके पास कोई भी, इस होने देने के ऊपर खड़ा हुआ नहीं है जो रोके और निर्णय करे कि यह करो और यह मत करो। वह निर्विकल्प हुआ। वह 'च्वाइसलेस' हुआ। इसलिए, अगर कभी आप पाये कि मैं बहुत गर्म मालूम पड़ता हूँ तो पा सकते हैं। कोई उपाय नहीं है। गर्मी आती है तो मैं गर्म होता हूँ, ठंडी आती है तो मैं ठंडा हो जाता हूँ। और, मैंने अपनी तरफ से होना छोड़ दिया है। मैंने जिद्द छोड़ दी कि मैं यह होऊँ और यह न होऊँ। इसको ही मैं कहता हूँ कि प्रज्ञा की धिरता है।



## पर्व : दस

द्रौपदी का चरित्र  
तोन मुट्ठो आवल पर त्रिलोक का वैभव  
वारिदिघ और अर्थ व्यवस्था  
चुने हुओं का वर्ण  
कृष्ण सुदामा की लेन-देन  
द्रौपदी का बृहद अनुराग  
मानवी अश का छोर  
कालियावन और मुचकुन्द



SATHE



प्रश्न आवार्यंजी, कृष्णा अर्थात् द्रौपदी के चरित्र को लोग बड़ी गहित दृष्टि से देखते हैं। उसपर प्रकाश डाले तथा कृष्ण का उमसे वृहद् अनुराग है, उसको चर्चा करे। और आज के सदर्म में द्रौपदी का चरित्र स्पष्ट करे ?

उत्तर पुरुषों के व्यक्तित्व में जैमा कृष्ण को ममझना उलझन की बात है वैसे ही स्त्रियों के व्यक्तित्व में द्रौपदी को ममझना भी उलझन की बात है। और, जिन लोगों को जो गहित दिखायी पड़ता है, इस दिखायी पड़ने में, वह अपने

सम्बन्ध में ज्यादा सबर देते हैं, द्रौपदी के सम्बन्ध में कम । हम वही देख पाते हैं, जो हम हैं । हम अपने अतिरिक्त और कुछ भी नहीं देख पाते । द्रौपदी का व्यक्तित्व हमें कठिन मालूम पड़ेगा । एक साथ पाच व्यक्तियों को प्रेम, एक साथ पाच की पत्नी होना । बहुत मुश्किल है समझना ।

प्रेम का व्यक्तियों से बहुत सम्बन्ध नहीं है । अगर कोई प्रेम एक से ही किया जाता हो तो वह प्रेम बहुत दीन, हीन हो जाता है । इसे थोड़ा समझना पड़ेगा । हम सबका आग्रह यही होता है कि प्रेम एक से हो । हम सब यही चाहेंगे कि कोई फूल रास्ते पर खिले तो एक के लिए खिले । कोई सूरज निकले तो एक आगन मे चमके । हम सबका मन यह होता है कि जो भी हा उसपर हमारी पूरी मालकियत और पूरा 'पजेशन' हो जाय । हम ही उसको पूरा घेर कर बैठ जाय । अगर मुझे कोई प्रेम करता है तो वह सिर्फ मुझे ही प्रेम करे, उम्मा प्रेम किन्हीं और द्वारा और धाराओं से न बह जाय, कहीं बट न जाय । चूंकि हम प्रेम का नहीं समझते, इसलिए ऐसा समझते ह कि अगर वह बट जायेगा ता मेरे लिए कम हो जायेगा ।

प्रेम जितना फैलता है, उतना बढ़ता है । प्रेम जितना बटता है उतना बढ़ता है । जब हम प्रेम को एक ही धारा में बहाने की बहुत चेष्टा करते हैं जो कि अनै-भर्गिक है, अप्राकृतिक है, और जबरदस्ती है, तो अनिम परिणाम सिर्फ इनना ही होता है कि और कहीं तो प्रेम बहता नहीं, जहा हम बहाना चाहते हैं वहाँ भी नहीं बहता । एक छोटी-सी कहानी मुझे याद आती है ।

एक भिक्षुणी थी—बौद्ध-भिक्षुणी । उसके नाम पाक छोटी सी बुद्ध की चन्दन की प्रतिमा थी । वह अपने बुद्ध को मदा अपने साथ रखती थी । भिक्षुणी थी, मदिरों में, विहारों में बैठती थी, लेकिन पूजा अपने ही बुद्ध की करती थी । एक बार वह उस मदिर में ठहरी, जो हजार बुद्धों का मन्दिर है, जहा हजार बुद्ध-प्रतिमाएँ हैं । वह सुबह अपने बुद्ध को रखकर पूजा करने बैठी । उसने धूप जलायी, धूप तो आदमी के नियम मानती नहीं । उल्टा हो गया । हवा के झोके ऐसे थे कि उसके छोटे-से बुद्ध की नाक तक तो धूप की सुगन्ध न पहुची, पास जो बड़ी-बड़ी बुद्ध की प्रतिमाएँ थी, उन पर सुगन्ध पहुचने नगी । वह तो बहुत चिन्तित हुई । उसने एक छाटी-सी टीन की पोशारी बनायी, अपनी धूप पर ढाकी, और अपने छोटे-से बुद्ध की नाक के पास चिमनी का द्वार खोल दिया, ताकि धूप की सुगन्ध अपने ही बुद्ध को मिले । सुगन्ध तो मिल गयी अपने बुद्ध को लेकिन बुद्ध का मुँह काला हो गया । वह बड़ी मुश्किल में पड़ी । चन्दन की प्रतिमा थी, मब खराब हो गयी । उसने जाकर मदिर के पुजारी को कहा कि मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गयी

हैं। मेरे बुद्ध की प्रतिमा कुरुप हो गयी है, अब मैं क्या करूँ? उम पुजारी ने कहा कि जब भी कोई उन व्यक्तियों को, जो सब तरफ फैलती है, एक दिशा में आधता है तब ऐसी ही दुर्घटना घटती है।

प्रेम को मनुष्य जाति ने अब तक सम्बन्ध की तरह सोचा है, 'रिलेशन-शिप' की तरह। उसको अब तक हमने 'स्टेट आफ माइड' की तरह नहीं समझा कि एक व्यक्ति की भाव दशा प्रेम की है। द्वौपदी को समझने में बड़ी कठिनाई है। यदि मैं प्रेमपूर्ण हूँ तो एक के प्रति ही प्रेमपूर्ण नहीं हो सकता हूँ। प्रेमपूर्ण होना मेरा स्वभाव है। मैं अनेक के प्रति प्रेमपूर्ण हो पाऊँगा। यानी एक अनेक का सवाल भी नहीं रह जाता। तब मैं प्रेमपूर्ण हो पाऊँगा। अगर मैं एक के प्रति ही प्रेमपूर्ण होऊँ और शेष के प्रति प्रेमपूर्ण नहीं हैं तो मैं एक के प्रति भी प्रेमपूर्ण नहीं रह पाऊँगा। मैं एक घण्टा जिससे प्रेम करता हूँ, उसके साथ होता है। तेईस घंटे अप्रेम का अस्यास चलता है दूसरों के साथ। फिर एक घण्टा जिसे हम प्रेम कहते हैं वह भी प्रेम कैसे हो पायेगा? अप्रेम ही हो जाता है। लेकिन, समस्त जगत के प्रेमी, नाममन्त्र ही कहना चाहिए, जिन्हें प्रेम का कोई पता नहीं, प्रेम को बाध लेना चाहेगे। जैसे ही हम प्रेम को बाधते हैं—प्रेम हवा की तरह है बिखर जाता है। मुट्ठी जोर से बाधी तो हवा बाहर हो जाती है। खुली मुट्ठी में हवा रह जाती है, यह बड़ा विरोधाभास है जिन्दगी का। प्रेम को बाधने की चेष्टा से ही प्रेम मरता है और सड़ जाता है। और, हम सबने अपने प्रेम को मार डाला है, उसे बाधने की चेष्टा में है।

द्वौपदी को हमें समझना इसीलिए मुश्किल पड़ता है कि पाच व्यक्तियों को कैसे प्रेम कर सकी होगी? हमें ही नहीं पड़ता मुश्किल, उन पाच भाइयों को भी मुश्किल पड़ता था। वह भी मन ही मन में सोचे जाते थे कि जरूर इसका किसी एक से ज्यादा प्रेम होगा। सबसे एक-सा कैसे हो सकता है? अर्जुन पर सबकी ईर्ष्या थी। सबको डर था कि अर्जुन से इसका लगाव ज्यादा है। वे पाच भाई भी नहीं समझ पाये हैं द्वौपदी को। उन्होंने भी शर्तबन्दी कर रखी थी, दिन बाट रखे थे। द्वौपदी जब एक को प्रेम करती तो दूसरे से मिलती नहीं थी और यह भी तथ कर रखा था कि जब एक भाई द्वौपदी के पास हो तो दूसरा भूलकर भी भीतर न ज्ञाके। उनकी भी कठिनाई वही है जो हमारी कठिनाई है। हम सोच ही नहीं सकते कि प्रेम एक धारा हो सकती है जो व्यक्तियों की तरफ नहीं बहती, व्यक्ति से बहती है। हमने कभी व्यक्ति को छोड़कर प्रेम को सोचा ही नहीं। इसलिए द्वौपदी हमें उलझन बन जायेगी। और हमारे मन में हम कितना ही समझने की कोशिश करे, ऐसा लगेगा कि द्वौपदी में कही-न-कही कुछ बेश्या छिपी है।

क्योंकि, हमारी सती की जो परिभाषा है वही द्वौपदी को वेश्या बना देगी। लेकिन कभी आपने स्थाल किया है कि इस देश की परम्परा ने द्वौपदी को पाच कन्याओं में गिना है। पाच पवित्रतम स्त्रियों में गिना है। बड़े अजीब लोग रहे होंगे, जिन्होंने द्वौपदी को पाच श्रेष्ठतम महामतियों में गिना है। यह बात बड़ी अर्थपूर्ण है। जो इस बात की सूचक है कि प्रेम एक से या अनेक से यह सवाल नहीं है, प्रेम है या नहीं है यह मवाराह है। और यदि प्रेम है तो वह अनन्त धाराओं में वह सकता है। पाच तो मिर्फ प्रतीक है। पाच की तरफ वह सकता है, पचास की तरफ वह सकता है। और, जिस दिन इस पृथ्वी पर हम प्रेमपूर्ण व्यक्ति पैदा कर सकेंगे उस दिन यह प्रेम की जो व्यक्तिगत मालकियत है बिल्कुल ही बेमानी हो जायेगी। इसका ये मतलब नहीं है कि किसी के साथ हम जबरदस्ती करे कि वह एक को प्रेम न करे और ऐसा भी नहीं है कि हम इस उन्टा नियम बना ले कि जो एक को प्रेम करता है वह पाप करता है। फिर वही नाममंडी दूसरे छोर से हो जायेगी। नहीं, हम यह जानकर चले कि जो जिमकी सामर्थ्य है वैसा करता है। हम अपने व्यक्तित्व को और अपनी सामर्थ्य को दूसरे के ऊपर थोपने न चले जाय।

द्वौपदी में प्रेम का बहाव है और वह बहाव द्वौपदी ने एक क्षण को भी इन्कार नहीं किया। यह उटी अजीब घटना थी, जो महज खेल में घट गयी थी। द्वौपदी को लेकर आये थे और पाचा भाड़यों ने मा से कहा कि हम एक बहुत अद्भुत चीज लाय हैं। मा ने कहा, अद्भुत ले आय हो तो पाचों बाट लो। उन्होंने कभी कल्पना भी न की थी। उन्होंने तो मिर्फ मजाक किया था मा से। उन्हे पता भी नहीं था कि मा कह देगी, बाट लो पाचा। फिर जब मा ने कह दिया था तो कोई उपाय न रहा था। फिर, वे पाचों ही एक साथ द्वौपदी के पति हो गये। लेकिन, द्वौपदी ने एक क्षण को भी इसमें इन्कार नहीं किया। उसके प्रेम की अनन्तता के कारण ही यह सम्भव हो सका। वह इन पाचों को प्रेम दे सकी और उसका प्रेम चुका नहीं। कहीं कोई दुविधा और द्वैत उसके मन में नहीं आया। यह बहुत ही अद्भुत स्त्री होनी चाहिए। अन्यथा स्त्री साधारणत ईर्ष्या में जीती है। अगर हम पुरुष और स्त्री के व्यक्तित्वों का एक खास चिन्ह खोजना चाहे तो पुरुष अहंकार में जीते हैं, स्त्रिया ईर्ष्या में जीती है। अमल में ईर्ष्या अहकार का 'पैसिव' रूप है और अहकार ईर्ष्या का 'एक्टिव' रूप है। द्वौपदी निर्दन्द है और शान्त है।

हम प्रेम को एक और एक के बीच का सम्बन्ध मानते हैं। है नहीं प्रेम ऐसा। इसलिए, हम प्रेम के लिए फिर बहुत झज्जटों में पड़ते हैं और बहुत कठिनाइया लड़ी कर लेते हैं। प्रेम ऐसा फूल है जो कभी भी, और किसी के लिए भी, आप-

स्त्रियक रूप से खिल सकता है। न उसका कोई बन्धन है, न उसकी कोई भर्यादा है। बन्धन और भर्यादा जितनी ज्यादा होगी उतना हम निर्णय कर सकते हैं कि हम उस फूल को खिलने ही न देंगे। फिर, वह एक के लिए भी नहीं खिल सकता। फिर, हम बिना प्रेम के जी लेते हैं। लेकिन, हम बड़े अजीब लोग हैं। हम बिना प्रेम के जी लेना पसन्द करेंगे, लेकिन प्रेम की मालकियत छोड़ना पसन्द न करेंगे। हम बिना प्रेम के रह जाय यह चलेगा, हमारे भवन पर प्रेम की वर्षा न हो यह चलेगा, लेकिन पड़ोसी के भवन पर हो जाय हमारे भवन के साथ तो नहीं चलेगा। अहकार और ईर्ष्या अदभूत कष्ट में डालती है। फिर, यह भी ख्याल रहे कि यह जो घटना है द्वौपदी की, यह अकेली घटना नहीं है। द्वौपदी के पहले जो समाज था जगत में, वह मातृसत्ताक था। हजारों वर्षों तक 'मेथियाकं सोसाइटी' थी—उसमें कोई स्त्री किसी पुरुष की नहीं होती थी। इसलिए, मा का तो पता चलता था, पिता का कोई पता नहीं चलता था। ऐसा मालूम पड़ता है कि द्वौपदी की घटना उस लम्बी शृखला की आखिरी कड़ी है। इसलिए, उस बक्ता में किसी ने इसपर एतराज नहीं उठाया। एक स्त्री के बहु पति की व्यवस्था आज भी कुछ अदिम समाज, जो जिन्दा है जमीन पर, उनमें चलती है। नहीं तो वैसे मा को क्या तकलीफ थी, वह अपना वक्तव्य बदल देती। लेकिन, मा ने आज्ञा न बदली। अगर आज्ञा अनैतिक होती तो लड़के भी प्रार्थना तो कर ही सकते थे कि यह आज्ञा बदल जे, हमसे भूल हो गयी। इसमें कोई अडचन न थी। लेकिन, न मा ने आज्ञा बदली, न लड़कों ने आज्ञा बदलने की कोई प्रार्थना की। न उस समाज में किसी ने इससे कोई एतराज उठाया कि यह गलत हो गया है। उसका कुल कारण इतना ही है कि वह समाज जिस व्यवस्था में जी रहा था उस व्यवस्था में यह घटना अनैतिक नहीं मालूम पड़ी होगी।

हमेशा ऐसा होता है कि एक-एक समाज की अपनी-अपनी धारणाएँ दूसरे समाज को बड़ा अनैतिक बना देती हैं। मुहम्मद ने नौ शादिया की और कुरान में प्रत्येक व्यक्ति को चार शादी करने की आज्ञा दी। आज हम सोचने बैठते हैं तो बड़ा अनैतिक मालूम पड़ता है कि यह क्या पागलपन है! एक व्यक्ति चार शादी करे? और, खुद मोहम्मद नौ शादी करे। मुहम्मद भी बड़े अनूठे आदमी है। पहली शादी जो उन्होंने की तो उनकी उम्र कोई चौबीस साल थी, उनकी पत्नी की उम्र चालीस साल थी। लेकिन, जिस समाज में मुहम्मद थे उस समाज में यह बिल्कुल स्वाभाविक था और अनैतिक नहीं समझा गया। जिस कबीले में थे वह लड़का कबीला था। पुरुष तो कट जाते थे और मर जाते थे। स्त्रिया

इकट्ठी हो जाती थी बहुत बड़ी सख्ता में। इसलिए, यही नैतिक था उस बड़ी में कि एक-एक पुरुष चार-चार शादियाँ कर ले। अन्यथा जो तीन स्त्रियाँ अगर जीवन में प्रेम न पा सके, अत्यंत रहे तो समाज बहुत अनैतिक और व्यभिचारी हो जायेगा। इसलिए, मुहम्मद ने कहा, चार शादी प्रत्येक पुरुष कर ले, यह धार्मिक व्यवस्था है। खुद ने तो हिम्मत करके नौ शादियाँ की। वह सिफ़ यह कहने को कि अगर मैं चार की कहता हूँ तो नौ करके बताये देता हूँ। अरब में किसी को अडचन न हुई इस बात से; क्योंकि बात सीधी और साफ़ थी। इसमें कोई अनैतिकता नहीं दिखायी दी। द्वौपदी के मामले को लेकर भेगी समझ यह है कि कोई अडचन नहीं थी। और, उस युग में भी धीरे-धीरे मर रही थी वह व्यवस्था। किन्हीं कारणों से पुरुष-स्त्रियों का सतुलन बिगड़ जाता है तो ऐसी व्यवस्थाएँ चलती हैं। उस दिन तो यह अनैतिक न था और आज भी मैं मानता हूँ कि जिम स्ट्री ने पाच को एक माथ प्रेम दिया, पाच के प्रेम में जी सकी वह साधारण स्त्री न थी। अमाधारण स्त्री थी। उसके पास प्रेम का अजस्र स्रोत था, इसलिए ही यह सभव हो सका था। लेकिन, हमें सोचने में कठिनाई होती है, वह हमारे ही कारण हाती है।

प्रश्न आपने कहा है कि कृष्ण न मिल बनाते, न शत्रु बनाते, लेकिन अपने बाल सखा सुदामा से उनका इतना प्रेम है कि सिंहासन छोड़कर उसके लिए भागे आते हैं और तीन मुट्ठी चावल पाकर उसे दिलोक का बैमब दे डालते हैं। कृपया कृष्ण-सुदामा के इस विशेष मंत्री सम्बन्ध पर प्रकाश डालें।

उत्तर विशिष्ट मंत्री सम्बन्ध नहीं है, बस मंत्री सम्बन्ध है। यहा भी हमारी ही तकलीफ़ है। हमें लगता है कि तीन मुट्ठी चावल के लिए तीनों लोक का साम्राज्य दे डालना जग ज्यादा है। लेकिन सुदामा के लिए तीन मुट्ठी चावल देना जितना कठिन था कृष्ण के लिए तीन लोकों का साम्राज्य देना उतना कठिन नहीं था। उसका हमें व्याल नहीं है। सुदामा के पास तीन मुट्ठी चावल भी बहुत बड़ी बात थी। इसमें अगर दान दिया है तो सुदामा ने ही दिया है। हमें पता नहीं कि सुदामा कितनी दीनता में जी रहा था उसके लिए एक दाना भी जुटाना और लाना बड़ा कठिन था। और, कृष्ण के लिए तीन लोक का साम्राज्य भी देना कठिन नहीं था। इसलिए, कृष्ण ने सुदामा पर उपकार कर दिया इस भूल में कोई न रहे। कृष्ण ने सिर्फ़ 'गिस्पोस', उत्तर दिया है। और, उत्तर भी बहुत बड़ा नहीं है। बड़े-से-बड़ा जो हो सकता है उतना है। बड़ी-से-बड़ी जो कल्पना है

कवि की वह यह है कि तीनों लोक का साम्राज्य है। लेकिन, एक गरीब हृदय के पास, जिसके पास कुछ भी नहीं है, तीन चावल के दाने भी नहीं हैं, वह तीन मुट्ठी चावल ले आया है। उसे हम कब समझ पायेंगे? नहीं, कृष्ण देकर भी तृप्त नहीं हुए हैं। क्योंकि, जो सुदामा ने दिया है वह बहुत असाधारण है और जो कृष्ण ने दिया है, उनकी हैसियत के आदमी के लिए बहुत साधारण है। इसलिए, ऐसा मैं नहीं मानता हूँ कि सुदामा के साथ विशेष मैत्री दिखायी गयी है। सुदामा ने ही विशेष मैत्री दिखायी। कृष्ण ने सिर्फ उत्तर दिया है।

जैसा मैंने कहा, वे मित्र और शत्रु किसी के भी नहीं हैं। लेकिन, सुदामा जैसे मित्र की तरफ से मैत्री का इतना भाव आये तो कृष्ण तो वैसे ही 'रिस्पोस' करते हैं जैसे घाटियों में हम आवाज लगा दे तो घाटिया सात बार आवाज को दोहरा कर लौटाती है। घाटिया हमारी आवाज की प्रतीक्षा नहीं कर रही है। न घाटिया हमारी आवाज का उत्तर देने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध है। न उनका कोई 'कमिटमेंट' है। लेकिन, जब हम घाटियों में आवाज देते हैं तो घाटिया उसको सातगुना वापस फूरके लौटा देती है। वह घाटियों का स्वभाव है। वह प्रतिष्ठनि, वह 'इकोइंग' घाटी का स्वभाव है। कृष्ण ने जो उत्तर दिया है वह कृष्ण का स्वभाव है। और, सुदामा जैसा व्यक्ति जब सामने आ गया हो और इतनी प्रेम की आवाज दी हो तो कृष्ण अगर उसे हजार गुना करके लौटा दें तो भी कुछ नहीं है।

बड़े मजे की बात है कि गरीब हमेशा मागने जाता है। सुदामा देने गया था। और, जब गरीब देने जाता है तो उसकी अमीरी का कोई मुकाबला नहीं। इससे उल्टी बात अमीर के साथ घटती है। अमीर हमेशा देने जाता है। लेकिन, जब अमीर मागने जाता है, जैसे बुद्ध की तरह भिक्षा का पात्र लेकर मटक पर खड़ा हो, तो मामला बिल्कुल बदल जाता है। अगर बुद्ध और सुदामा को साथ सोचेंगे तो रूपाल में आ सकेगा। इधर सुदामा गरीब है और देने गया है। और, बुद्ध के पास सब कुछ है और भीख मागने चले गये। जब अमीर भीख मागने जाता है तब अलौकिक घटना घटती है और जब गरीब दान देने जाता है तब अलौकिक घटना घटती है। वैसे अमीर तो दान देते रहते हैं और गरीब भीख मागते रहते हैं। यह बहुत सामान्य घटना है। इसमें कोई विशेष बात नहीं है। सुदामा उसी विशेष हालत में है जिस हालत से बुद्ध का सड़क पर भीख माटगना है। बुद्ध को क्या कर्मी है कि भीख मागने जाय। सुदामा के पास क्या है जो देने को उत्सुक हो गया—पागल ही है। बुद्ध भी पागल, वह भी पागल। और, देने भी किसको गया? कृष्ण को देने गया, जिनके पास सब कुछ है। लेकिन, प्रेम यह नहीं देखता है कि आपके पास कितना

है। आपके पास कितना ही हो तो भी प्रेम देता है। प्रेम यह मान ही नहीं सकता कि आपके पास पर्याप्त है। इसे थोड़ा समझना चाहिए।

प्रेम कभी यह मान नहीं सकता कि आपके पास पर्याप्त है। ऐसी कोई घटी नहीं आती जब वह कहे कि काफी दे चुके, बहुत है तुम्हारे पास, अब देने की कोई जरूरत न रही। 'इट इज नेवर इनफ' कभी पर्याप्त होना नहीं। प्रेम देता ही चला जाता है, उल्लीचता ही चला जाता है और सदा कम ही रहता है। अगर हम एक मासे पूछे कि दूने अपने बेटे के लिए कितना कितना किया? अगर वह नर्स होगी तो बतायेगी कि इतना इतना किया। अगर वह मा होगी, कहेगी कि कहा किया, मुझे बहुत कुछ करना था वह मैं कर नहीं पायी। मा हमेशा लेखा-जोखा रखेगी उसका, जो वह नहीं कर पायी। अगर कोई मा लेखा-जोखा रखती हो कि कितना उसने किया तो वह मा होने के भ्रम में है, उसने सिफं नर्स का काम किया है। इससे ज्यादा कोई उसका काम नहीं है।

प्रेम सदा लेखा-जोखा रखता है कि क्या मैं कर नहीं पाया। सुदामा देने को आतुर है। घर से चलते बक्त उसकी पत्नी ने तो कहा है कि कुछ माग लेना। लेकिन, वह देने को चला आया। दूसरी भी बात है कि बड़े सकोच में भरा है। अपनी पोटली को छिपा लिया है। प्रेम देता भी है और सकोच भी अनुभव करता है, क्योंकि प्रेम को सदा लगता है कि देने योग्य है क्या? अज्ञात देना चाहता है, पता न चले। हीरे भी लेकर सुदामा गया होता तो भी ऐसा ही छिपाता। सवाल चावल का नहीं है। उसके लिए तो हीरे से भी ज्यादा कीमती चावल है। बड़ा सवाल यह है कि प्रेम कभी घोषणा करके नहीं देता। जब घोषणा हो गयी तो प्रेम कहा रहा? वहा तो अहकार शुरू हो गया। प्रेम चूपचाप दे देता है और भाग जाता है। और, बड़े मजे की बात है कि कृष्ण उससे आते ही से पूछते लगते हैं कि लाये क्या हो? क्योंकि, कृष्ण यह मान ही नहीं सकते कि प्रेम बिना देने के स्थाल के आ गया हो। कृष्ण है कि खोजे जा रहे हैं और सुदामा है कि छिपाये जा रहा है। वे जानते हैं कि प्रेम सदा छिपाता है। फिर, उन्होंने उसकी पोटली खोजबीन करके छीन ही ली और उस भरे दरबार में जहा कि खाली चावल कभी भी न आये होंगे, वे उन चावलों को खाने लग गये। इसमें कोई विशेष घटना नहीं है। यह प्रेम के लिए बड़ी सामान्य घटना है, लेकिन हममें सामान्य प्रेम भी नहीं रह गया है, इसलिए विशेष मालूम पड़ती है।

प्रश्न मेरा प्रश्न ऐसा है आचार्यजी, कि सुदामा की दरिद्रता को कृष्ण ने दूर किया, पर उसे देखकर क्या कृष्ण को समाज में जिस कारण

दरिद्रता है, उसका स्वाल न आया और उन्होंने समाज को अर्थ-व्यवस्था को बदलने के बारे में न सोचा ? महावीर और बुद्ध न सोचते तो एक बात थी, पर कृष्ण जैसा व्यापक व्यक्ति जो सौकिक विषयों को भी पूरा महत्व देता है, क्यों नहीं सोचता है ?

धार्मिक पुरुषों ने शायद सोचा हो नहीं और जिसने सोचा कालमाक्स ने, वह धार्मिक न द्युहा । आप अपने बारे में भी बतलायें कि आप चूंकि धर्म और आत्मा से सम्बद्ध हैं—आप अर्थ-व्यवस्था के बारे में कुछ सोचेंगे ? और किस रूप में उसे क्रियान्वित किया जायेगा ?

**उत्तर** यह सबाल बहुत बार उठता रहा है और यह इलजाम बुद्ध पर, कृष्ण पर, महावीर पर, जीसस पर, मुहम्मद पर, सब पर लगाया जा सकता है कि उन्होंने अर्थ व्यवस्था के मम्बन्ध में क्यों न सोचा ? बहुत से कारण हैं । वे सोच ही नहीं सकते थे । सोचने का उपाय ही नहीं था । सोचने की परिस्थिति ही नहीं थी ।

हम सोच पाते हैं, क्योंकि परिस्थिति पैदा हो गयी है । माक्स सोच पाया, क्योंकि माक्स के पहले एक 'इण्डम्स्ट्र्युल रिव्योल्यूशन' हो गया, एक औद्योगिक क्राति हो गयी । औद्योगिक क्राति के पूर्व जगत में कोई भी अर्थ व्यवस्था को रूपातरण करने की नहीं सोच सकता । इसके कारण समझ लेने जरूरी है ।

औद्योगिक क्राति के पूर्व जो जगत था उस जगत के पास आदमी का श्रम ही एकमात्र उत्पादक स्रोत था । और, आदमी के श्रम से जितना पैदा हो सकता था उसको किसी भी तरह बाटा जाय उससे दरिद्रता नहीं मिट सकती । उससे दरिद्रता मिटने का उपाय ही नहीं है । विषमता भी नहीं मिट सकती थी । उसके भी कारण है । उसकी मैं बात करता हूँ ।

पहली बात, दरिद्रता नहीं मिट सकती थी । दरिद्रता मिटने के लिए जितनी सम्पत्ति चाहिए उतनी समाज के पास सम्पत्ति न थी । हा, इतना ही हो सकता था कि कुछ लोग जो समृद्ध दिखायी पड़ते थे, वे मिटाये जा सकते थे । उनको भी दरिद्र बनाया जा सकता था । अगर हजार आदमी में एक आदमी के पास थोड़ी संपत्ति दिखायी पड़ती थी तो उसको मिटाया जा सकता था, और नौ सौ निन्यानदे की जगह एक हजार आदमी दरिद्र हो सकते थे । मनुष्य अपने श्रम से जो संपत्ति पैदा करता है उससे कभी दरिद्रता के 'लेबल' के ऊपर नहीं जा सकता । दरिद्रता

मिटाने का विचार उस दिन उठ सकता है जिस दिन आदमी के श्रम की जगह यत्र का श्रम सपत्ति पैदा करने लगे। उस दिन हम एक-एक आदमी की जगह लाख-लाख गुना श्रम करनेवाली मशीन लगा पाते हैं। तब, सपत्ति वृहत् पैमाने पर पैदा होनी शुरू होती है। पहली दफा यह स्थाल आना शुरू हुआ कि अब दरिद्र को दरिद्र रखने की कोई जरूरत न रही। इसलिए, औद्योगिक क्राति के बाद ही मार्क्स यह सोच पाया। अगर औद्योगिक क्राति के बाद कृष्ण पैदा होते तो बहुत ज्यादा साफ सोच पाते, जितना साफ मार्क्स नहीं सोच पाया। लेकिन, कृष्ण औद्योगिक क्राति के पहले के हैं।

ऐसा नहीं है कि मनुष्य के पास चिन्तन नहीं था और ऐसा भी नहीं है कि मनुष्य को दरिद्रता के मिटाने का स्थाल पैदा नहीं हुआ। बुद्ध को भी हुआ, महावीर को भी हुआ। लेकिन बुद्ध और महावीर न दरिद्रता को मिटाने का क्या उपाय किया? मालूम? खुद दरिद्र हो गये। और कोई उपाय नहीं था। अगर दरिद्रता पीड़ा देती है तो इसके मिवाय उपाय नहीं कि तुम भी दरिद्र होकर खड़े हो जाओ दरिद्रों के साथ। और क्या करोगे? तो बुद्ध और महावीर ने अपनी सपत्ति छोड़ दी। महावीर ने तो अपनी सपत्ति बाट भी दी थी। लेकिन उसमें दरिद्रता नहीं मिटी। दरिद्रता मिटने का उससे कोई सम्बन्ध नहीं है। यह एक नैतिक उपाय हुआ। महावीर ने अपने मन की पीड़ा मिटा ली, लेकिन दरिद्रता न मिटी। इसलिए, पुराने जगत के समस्त विचारकों ने अपरिग्रह पर जोर दिया है। परिग्रह मत करो। सारे पुराने धर्म चीजों के त्याग पर जोर दे रहे हैं और धन-संग्रह के विरोध में खड़े हैं। वे कहते हैं बाट दो मब। लेकिन, यह उपाय ऐसा है जैसे चम्मच में रग लेकर समुद्र को रगन चला जाय। एक बुद्ध बट जाते हैं, खत्म। एक महावीर बट जाते हैं, खत्म। वह जो विराट दरिद्रता का सागर है, वह उनके चम्मच को घोलकर पी जाता है। उससे कुछ पता नहीं चलता। उससे कहीं कोई परिणाम नहीं होता।

लेकिन, दूसरा मबाल है कि यदि दरिद्रता नहीं मिटायी जा सकती थी तो विषमता तो मिटायी जा सकती थी। विषमता मिटाने का स्थाल क्यों पैदा न हुआ? उसका भी कारण है।

इसे थोड़ा ऐसे समझना पड़ेगा—विषमता मिटाने का स्थाल तभी पैदा होता है जब बहुत दूर तक हमारे बीच ममानता आनी शुरू हो जाती है। उसके पहले पैदा नहीं होता। असल में विषमता है, यह हमें तभी पता चलता है, जब समाज वर्ग में बटा हुआ नहीं रह जाता, बल्कि सीढ़ियों में बट जाता है। जैसे, एक

मेहतरानी है एक गाँव की । अगर वहां की महारानी हीरो के हार पहनकर निकले तो मेहतरानी को कोई भी तकलीफ नहीं होती । कोई ईर्ष्या नहीं पकड़ती उसे । क्योंकि, फासला इतना बड़ा है कि ईर्ष्या पकड़ने का उपाय नहीं है । कहा मेहतरानी और कहा महारानी ! कितना बड़ा अन्तराल, कि मेहतरानी सोबत भी नहीं सकती कि वह महारानी से ईर्ष्या करे । लेकिन, पडोस की मेहतरानी अगर एक कवड़-पत्थर का हार भी डालकर निकल जाय तो उसे ईर्ष्या शुल्क हो जाती है । क्यों ? पडोस की मेहतरानी जहा है, वहां वह भी हो सकती है । इसमें कोई असभावना नहीं है । इसलिए ईर्ष्या पकड़ती है ।

तब समाज की ऐसी स्थिति थी कि नीचे फैला हुआ दारिद्रों का विशाल जगत था और ठेठ आममान छूता गांधी आदमी भूमृद्ध था, और फामले इतने ज्यादा थे कि समानता वीर्या धारणा पैदा ही नहीं हो सकती थी । इसलिए, एक ही उपाय सूझना था कि जो जैमा है, वैसा है । लेकिन, औद्योगिक क्रांति के बाद फामले टूटने शुरू हुए । बीच में सीढिया बन गयी । आज शिखर पर कोई राकफेलर होता है, नीचे कोई मजदूर होता है, लेकिन यह विभाजन दो वर्गों का विभाजन नहीं है । इसमें सीढियों का विभाजन है, पायरी है । हरेक के ऊपर कोई है, उससे ऊपर कोई है । पुरा समाज लम्बी सीढ़ी बन गया है । बीच की सीढिया सब जुड़ गयी है । इन बीच की सीढियों की वजह से प्रत्येक को यह स्थाल आता है कि मुझसे जो आगे है, मैं उसके समान क्यों नहीं हो सकता ? समानता का स्थाल बर्ग विभक्त समाज में नहीं पैदा होता है, सीढ़ी-विभक्त समाज में पैदा होता है । ऐसिन, उसका यह मतलब नहीं है कि बुद्ध, महावीर या कृष्ण ने समानता की बात नहीं की । जिस समानता की बात उस समय सभव थी, उन्होंने की है । वह आन्तिक समानता की बात है । उम दिन वही सम्भव था । यानी सबके भीतर जो प्राण है, जो आत्मा है, वह समान है 'आध्यात्मिक-इवालिटी' । लेकिन, बाहर जो सुविधा-असुविधा है, धन है, मकान है, उनके समान होने का कोई स्थाल पैदा नहीं हो सकता था । उसका काई गस्ता नहीं था । आज हम ऐसा सोच सकते हैं । एक उदाहरण से मैं आपको स्थाल दिलाऊँ कि बहुत-सी बातें हैं जो आज हम नहीं सोच सकते, लेकिन आने वाली पीढ़िया हम पर इत्याम लगायेगी ।

आज आप हर आदमी को मजदूरी देते हैं, जब वह काम करता है । आनेवाली पीढ़िया आपसे कहेगी, क्या उस बक्त कोई भी एक विचारक पैदा न हुआ जो कहता कि खाने-पीने के लिए काम की शर्त लगानी अनैतिक है । जल्दी बक्त आयेगा जब

सारी ओटोमेटिक मशीने उत्पादन करते लगेगी और प्रश्न खड़ा हो जायेगा कि अब काम जरूरी नहीं रहा। प्रत्येक आदमी को बिना काम के मिल जाना चाहिए। बल्कि, जो लोग काम की माग करेंगे उनको थोड़ा कम मिलेगा बजाय उनके, जो काम की माग नहीं करेंगे। क्योंकि, वह दो-दो चीजे इकट्ठी मागते हैं, काम भी मागते हैं, तन्हाह भी मागते हैं। आज अमरीका का अर्थशास्त्री निरन्तर चिन्तित है कि वह भविष्य के लिए क्या करे? हमारी पुरानी आदत यह है कि जो काम करे उसे मिलना चाहिए, भविष्य की सभावना यह है जब सारा 'ओटोमाइजेशन' हो जायेगा कि काम तो दे नहीं सकेंगे हम सबको तो जो न काम करे उसे ज्यादा दिया जाय। देना तो पड़ेगा ही। क्योंकि, अगर फैक्टरी में आप करे भी बना लेंगे और खरीदने के लिए लोगों के पास पैसा नहीं होगा तो आप कारों को बनाकर क्या करेंगे? फैक्टरी पूरी-की-पूरी 'ओटोमेटिक' हो जायेगी। जहां लाख आदमी काम करते थे, एक आदमी बटन दबाकर काम कर देगा। वह जो लाख आदमी बाहर चले गये, अगर उनको कुछ भी न दे आप तो फैक्टरी की कारों का क्या होगा? इन कारों को खरीदेगा कौन? चीजों को खरीदने के लिए उनको कुछ देना ही पड़ेगा। अभी हमको पता नहीं है कि बिना काम में राजी रखना इतना कठिन पड़ेगा, जितना मल्ल मजदूरी कठिन नहीं पड़ी थी। भविष्य में कोई जरूर कहेगा कि कैसे लोग थे, न कृष्ण, न महावीर, न मार्कम कोई भी यह नहीं सोच सका कि आदमी से काम लेना बटा अनैतिक है, अमानवीय है। यदि उम्मको भूख लगी है तो उसको खाना मिलना चाहिए, काम का क्या सबाल है! लेकिन, यह अभी हम नहीं सोच सकते। अभी सोचना बहुत कठिन पड़ेगा कि यह कैसी बात है? अभी तो काम मिल जाय तो भी गोटी नहीं मिलती तो बिना काम के तो रोटी बहुत मुश्किल है।

हर युग की अपनी व्यवस्था है। उसी सम्भावना के बीच चिन्तन के फूल खिलते हैं। कृष्ण के वक्त में विप्रमता का कोई दश नहीं है। 'इनइकवालिटी' की कोई पीड़ा नहीं है। इमलिए, 'इकवानिटी' का, समाजता का कोई नारा नहीं है। गरीब पीड़ित नहीं है इस बात से कि वह गरीब है। देखिये, मंजे की बात है कि प्लेटो जैमा विचारक जो समाजता का बड़ा पुरस्कर्ता है उसे भी, गुलामों को मिटाया जाय, इमका स्वाल ही नहीं आता। बल्कि वह कहता है, गुलाम तो रहेंगे ही, क्याकि यूनान में गुलाम महज बान थी, बल्कि प्लेटो यह कहता है कि अगर गुलाम न रहेंगे तो समाजता कैसे रहेगी?

प्रश्न फिर कुछ लोग सदा हुक्मत करेंगे या कुछ छुने छुओं का बग अचैत्य हावी रहेगा?

उत्तर वह रहे हैं और वह वर्ग हमेशा हावी रहेगा। उससे और कोई कर्क पड़नेवाला नहीं है। कभी वह मालिक की तरह हावी होता है, कभी नेता की तरह हावी होता है, कभी राजा की तरह हावी होता है, कभी गुरु की तरह हावी होता है, कभी महात्मा की तरह हावी होता है। लेकिन, एलाइंड हमेशा हावी होता है। ऐसा मैं कोई युग नहीं देख सकता जिस दिन कि चुने हुए लोग हावी नहीं होंगे। यह दूसरी बात है कि उनकी शक्ति बदल जाय। कभी हम उनको कहे कि यह राजा है, कभी हम कहे यह राष्ट्रपति है। 'कभी हम कहे कि यह सम्राट है और कभी हम कहे कि वह मत्री है। कभी हम कहे कि यह महात्मा है और कभी हम कहे कि यह भगवान है। हम नाश कुछ भी देते रहें, लेकिन जब नव मनुष्यों का विकास समान तल पर नहीं पहुंच जाता ऐसा होता ही रहेगा। हर मनुष्य समान तल पर पहुंच जाय समस्त विकासों की दृष्टि से, ऐसा भी मैं नहीं मानता कि हो पायेगा। तब वह समाज बड़ा बेरौनक और बहुत बेहूदा होगा, बहुत 'बोर्टम' का होगा। अभी हम कुछ भी सोच सकते हैं, लेकिन चुने हुए लोग हमेशा रहेंगे। कोई अच्छा सितार बजायेगा तो कम अच्छा सितार बजानेवाले पर हावी हो ही जाने वाला है। इसमें करियेगा क्या? कोई अच्छा नाचेगा तो कम अच्छा नाचनेवाले पर हावी हो ही जायेगा। इसमें करियेगा क्या? यह स्थिति ऐसी है कि इस स्थिति में कोई हावी होता रहेगा। यह बात पक्की है कि पुराने ढंग के हावी होने वाले लोगों से जब हम ऊब जाते हैं-ऊब ही जाते हैं, क्योंकि भविष्य के लिए वह मौज भी नहीं रह जाने इसलिए बदलाहट करनी पड़ती है। आज रूस है, जहा बदल दिया है सब। लेकिन, फिर दूसरे लोग हावी हो गये। वह पिछले लोगों में कम हावी नहीं है, बल्कि ज्यादा ही हावी है। आज चीन है, हमने एक को बदल दिया तो दूसरे ओर वापस हावी हो गये।

जब तक मनुष्य और मनुष्य के बीच फासले हैं बुद्धि के, विचार के, क्षमताओं के, प्रतिभाओं के, शक्तियों के, तब तक असभव है कि कोई हावी नहीं हो जायेगा। और, तब तक यह भी असभव है कि कोई न चाहेगा कि कोई मुझ पर हावी हो जाय। वह चाहेगा ही कि हावी हो जाय, क्योंकि वह भी बिना उसके नहीं जी सकेगा। बदलाहट चलती रहेगी। एक युग की बातें हमें बेहूदी लाने लगती हैं, क्योंकि हम दूसरी तरह के हावीपन को स्वीकार कर लेते हैं। कृष्ण के बक्त भे यह सहज स्वीकृत है। गरीब, गरीब होने को राजी है। अमीर के मन में कोई दश नहीं है अमीर होने का, क्योंकि जब तक गरीब, गरीब होने को राजी हैं तब तक

अभीर के मन में दश हो नहीं सकता। अभीर 'ऐट ईज' है। इसलिए समाज को चिन्तन का मौका नहीं पैदा होता।

जैसे उदाहरण के लिए, अभी हम कहने लगे कि गरीब और अमीर समान होने चाहिए। इसका कारण यह नहीं है कि हमारी बौद्धिक प्रतिभा कृष्ण से आगे चली गयी है उसका कुल कारण इतना है कि सामाजिक व्यवस्था कृष्ण के काल से भिन्न हो गयी। लेकिन, अभी भी कोई आदमी यह नहीं कह सकता कि मैं कम बुद्धि का हूँ तो जो मुझसे ज्यादा बुद्धि का है, हमसे समानता होनी चाहिए। लेकिन, आज से पचास साल बाद कम बुद्धि का आदमी यह अपील करना शुरू कर देगा। क्योंकि, पचास साल में हम वह व्यवस्था खोज लेंगे जिससे बुद्धि में भी कमी-बढ़ती की जा सकेगी। वह व्यवस्था विवित हो रही है। पचास साल बाद हर बच्चा यह कहेगा कि मैं जड़ बुद्धि होने को राजी नहीं हूँ। और, किसी आदमी को यह हक नहीं है कि वह प्रतिभाशाली हो जाय। हांगे तो हम सब समान होंगे। यह उस दिन आवाज उठ सकती है। इसकी सभावना बढ़ गयी है। क्योंकि, मनुष्य के 'जीन विज्ञान का जो प्रवेश है, अब वह यह बात तय कर सकेगा कि इस बच्चे की कितनी प्रतिभा हो, जो इस बीज से पैदा होगा। जैसे, आप अभी बाजार में फूलों का पैकेट खरीदने चले जाते हैं, जिस पर फूल की तम्वीर बनी होती है ऊपरकि अगर इस बीज को इतनी खाद और इतनी व्यवस्था दी गयी तो यह बीज इतना बड़ा फूल बन सकेगा। उस दिन एक बाप और एक मा बाजार में सिर्फ पचास साल के भीतर उस पैकेट को भी खरीद सकेंगे जिसमें बच्चे की तस्वीर बनी होगी ऊपर कि इसकी आखे इस रंग की हांगी, इसके बाल इस ढंग के होंगे, इसकी लबाई इतनी होगी, इसका स्वास्थ्य इतना होगा, इसकी उम्र इतनी होगी, यह 'गैरेटीड' है कि मत्तर साल तक नहीं मरेगा। इसको यह यह बीमारिया नहीं होगी और इसकी प्रतिभा का, इसकी बुद्धि का माप इतना हांगा। तब आप चुनाव कर सकते हैं। यह सभव हो जायेगा। बीज के बाबत भी पहले सम्भव नहीं था। आज सभव है। आदमी भी एक बीज से जन्मता है। आदमी के बीज के बाबत भी सभव हो जायेगा। जिस दिन यह सभव हो जायेगा उस दिन हम पूछेंगे कि कृष्ण को कभी स्थाल न आया कि प्रतिभा और गैर-प्रतिभा में समानता होनी चाहिए? आ कैसे सकता है? इसके आने का कोई उपाय नहीं है।

प्रश्न सुदामा के सम्बन्ध में एक छोटा-सा प्रश्न आया है। जब सुदामा कृष्ण के पास कुछ लेने आये तभी तीन लोक का साम्राज्य दिया गया। लेकिन, उसके पहले कृष्ण ने सुदामा को क्यों कृष्ण नहीं दिया? वह गरीब तो बहुत था येचारा।

उत्तर इस जगत में मिलता कुछ भी नहीं है, खोजना पड़ता है। भगवान् तो यही भौजूद है और ऐसा नहीं कि आपकी पीढ़ा का उसको पता नहीं है, लेकिन आप पीठ करके लड़े हैं और इतनी स्वतन्त्रता आपको है कि आप चाहें तो भगवान् को ले और चाहें तो न ले। जिस दिन आपको मिलेगा उम दिन आप भगवान् से शिकायत कर सकते हैं कि जब तक मैंने तुझे नहीं खोजा, तूने ही मुझे खोज क्यों न लिया? लेकिन भगवान् उस दिन कहेगा कि जबर्दस्ती तेरे ऊपर हाथी हो जाऊँ, वह भी परतन्त्रता हो सकती है। स्वतन्त्रता का अर्थ ही इतना है कि जो हम खोजते हैं वह हमें मिल सके। जो हम नहीं खोजते वह न मिल सके। और ध्यान रहे, कुछ भी इस जगत में नहीं मिलता है बिना खोजे। खोजना ही पड़ता है। सुदामा कैसा है, यह सबाल बड़ा नहीं है। सुदामा इन्कार भी कर सकता है। और मैं मानता हूँ कि अगर कृष्ण देने गये होते सुदामा के घर तो शायद इन्कार भी कर देता। जरूरी नहीं था कि स्वीकार करता। सुदामा की तैयारी होनी चाहिए। ये सारी की सारी घटनाएँ बहुत मनोवैज्ञानिक अर्थ रखती हैं। इनकी अपनी 'साईकोलॉ-जिकल' अर्थवत्ता है। हम जो खोजने जायेंगे, जिस दिन हमारी खोज की तैयारी पूरी होगी उसी दिन वह हमें मिल सकता है। उसके पहले हमें नहीं मिलेगा। पड़ा हो बगल में तो भी नहीं मिलेगा।

अकेला सुदामा गरीब नहीं है, बहुत लोग गरीब हैं। कृष्ण के लिए इससे कोई फक नहीं पड़ता कि सुदामा गरीब है कि कोई और गरीब है। बड़ा फर्क जो पड़ता है वह यह कि सुदामा इतना गरीब होकर भी देने चला आया है। आदमी अपनी होने के योग्य है। यह जो सुदामा की स्थिति है उसी से परिवर्तन शुरू होता है। और हम, प्रत्यक्ष व्यक्ति, व्यक्ति की हैसियत से ही अपने परिवर्तन को शुरू करता है। बाकी फिर सारी शक्तिया मिलती चली जाती है। जिस आदमी ने इस पृथ्वीपर गरीब होने का तय किया है उसे सब गरीबी की परिस्थितिया मिल जायेगी। जिस आदमी ने इस पृथ्वी पर अज्ञानी होने का तय कर लिया उसे अज्ञानी होने की सब परिस्थितिया गिल जायेगी। जिम आदमी ने इस जगत में ज्ञान के लिए तय कर रखा है उसके लिये ज्ञान के सब द्वार खुल जायेंगे। इस जगत में हम जो मारते हैं वह लौट आता है। वह आ जाता है। बहुत गहरे में हमारी ही आकाशाएँ, हमारी ही प्रार्थनाएँ, हमारी ही अभीप्साएँ हम पर लौट आती हैं। अगर कोई आदमी अमज्जता हो कि मैं गरीब क्यों हूँ, आप उसके पूरे व्यक्तित्व को खोजेंगे तो बहुत हैरान हो जायेंगे। उसने गरीब होने की सारी व्यवस्था कर रखी है। वह गरीब होने के लिए पूरा-का-पूरा तत्पर है। और, अगर गरीब न हो तो खुद भी जाकेगा कि यह क्या हो था? अज्ञानी ने पूरी व्यवस्था कर रखी है अपने अज्ञान कु - २०

की और खुद भी चौकेगा कि यह क्या हो गया ? वह अपने अज्ञान की सुरक्षा के सब उपाय कर रहा है । अगर कोई उसका अज्ञान तोड़ने आये तो कुछ हो जाता है । जो हम खोजने जाते हैं, वही होता है । सुदामा जाता है कृष्ण के पास तो सुदामा को कृष्ण मिल जाते हैं । कृष्ण का आना उचित भी नहीं है । प्रतीक्षा कृष्ण को करनी चाहिए सुदामा के आने तक । वह प्रतीक्षा जरूरी है । ऐसा नहीं है कि परमात्मा आप वे नाराज हैं और आपके पास नहीं आ रहा है । लेकिन, आपको उसके पास जाना पड़ेगा । जिस दिन आप जायेगे उम दिन आप पायेगे वह सदा तत्पर था आपसे मिलने को । लेकिन, आप ही राजी नहीं थे ।

प्रश्न द्वौपदी वाले पहले प्रश्न में कृष्ण का द्वौपदी के प्रति बहुत अनुराग है, इसको चर्चा नहीं हुई, इस पर कुछ सुनना चाहते ।

उत्तर द्वौपदी ऐसी है कि कृष्ण का अनुराग उम पर हो । ऐसे तो कृष्ण का अनुराग सब पर है । लेकिन, द्वौपदी के पास पात्र बहुत बड़ा है । मागर के टट पर हम जाय तो अपने अपने पात्र के बराबर भर ले आते हैं । सागर तो बहुत बड़ा है, पर कभी मागर कहता नहीं कि कितना बड़ा पात्र लेकर तुम मेरे पास आओ । जितना बड़ा पात्र हो उतना लेकर हम जाते हैं । द्वौपदी के पाम बड़े से बड़ा पात्र है । कृष्ण का बहुत अनुराग उसे उपलब्ध हुआ है । वह अनुराग और वह प्रेम बड़ा गहरा है । इतना गहरा है कि कृष्ण और द्वौपदी के बीच किसी तरह की शारीरिक निकटता का कोई आग्रह नहीं है । लेकिन, जितने कृष्ण द्वौपदी के काम पड़ते हैं उतने किसी के काम नहीं पड़ते । जब भी वक्त आ जाता है तो वह तत्काल मौजूद हो जाते हैं । जैसे कि पीछे हम बात कर रहे थे कि उसे नग्न किया जा रहा है, उधाड़ा जा रहा है तो वे मौजूद हो गये हैं । एक वो प्रेम है जो मुखर होता है, जो बोलता है और एक प्रेम है जो मौन होता है, बोलता नहीं है । व्यान रहे, बोलनेवाला प्रेम बहुत गहरा नहीं हो पाता । छिछला हो जाता है । वाणी में बहुत गहराई नहीं है । मौन रह जाने वाला प्रेम बहुत गहरा होता है, मौन की बड़ी गहराई है । द्वौपदी का प्रेम बड़ा मौन है । और, मौन प्रेम जितने दूर तक प्रभावित करता है प्रेमी को, उतना कोई और प्रेम प्रभावित नहीं करता । कृष्ण काम तो पड़ जाते हैं द्वौपदी के जगह-जगह, लेकिन कृष्ण का यह प्रेम और द्वौपदी का यह कृष्ण के प्रति लगाव कही बहुत स्थूल घटनाओं से रूपातरित नहीं होता । दरअसल स्थूल से रूपातरित होने का आग्रह ही तब होता है जब हम सूक्ष्म में नहीं मिल पाते । अन्यथा प्रेम दूर भी रह सकता है ।

ऐसा भी हो सकता है कि प्रेम कभी निवेदन भी न करे कि प्रेम है। इतना चुप हो सकता है। लेकिन, कृष्ण जैसे की चुप्पी भी समझ में आ सकती है। सभी को समझ में नहीं आयेगी। हमारे भीतर प्रेम न हो तो भी वाणी से प्रकट करने से काम चलता है। क्योंकि हमें वाणी समझ में आती है, प्रेम तो समझ में आता नहीं। प्रेम पर आजकल किताबें लिखी जाती हैं। मनोवैज्ञानिक प्रेम पर किताबें लिख रहे हैं। वह इस बात पर बहुत जोर देते हैं कि चाहे प्रेम हो या न हो, लेकिन प्रकट जरूर करते रहो। पर्ति जब साझा को घर लौटे तो चाहे वह थका मादा हो, चाहे वह कितना भी परेशान हो, मनोवैज्ञानिक कहते हैं पत्नी को देखते ही खिल जाना चाहिए। चाहे उसे अभिनय करना पड़े। कुछ ऐसी बातें कहनी चाहिए जो प्रेमपूर्ण हो। जब वह सुबह जाने लगे तो उसे बड़ी पीड़ा दर्शनी चाहिए कि वह पत्नी से कुछ घटों के लिए छूट रहा है। चाहे उसे बड़ा मुख मिल रहा हो। ये मनोवैज्ञानिक ठीक कहते हैं। इसलिए ठीक कहते हैं कि हम शब्दों पर जी रहे हैं। यहा असली प्रेम से भयलब किसे है, प्रयोजन किसे है? एक आदमी ने आपका कुछ थोड़ा-मा काम किया और आप उसे सिर झुका कर धन्यवाद दे देने हैं। आपने धन्यवाद अनुभव किया या नहीं किया, यह सबाल नहीं है बड़ा, लेकिन आप मिर झुकाकर धन्यवाद दे देने हैं, उस आदमी को तो धन्यवाद मिल जाता है। क्योंकि शब्दों में हम जीते हैं। अगर आपने धन्यवाद न दिया, चाहे भीतर अनुभव भी किया हो, तो वह आदमी दुखी होकर चला जाता है कि कैसे पागल आदमी है, मैंने इतना काम किया, धन्यवाद तक न दिया।

हम मौन को नहीं समझ पाते इसलिए वाणी में ही हमारा सब चलता है। लेकिन ध्यान रहे, यह कभी स्थाल में आया हो, न आया हो, जब हम किसी के प्रति बहुत प्रेम में भरे होते हैं, तो वाणी एकदम निरस्त्र हो जाती है। अचानक पाते हैं कि बोलने को कुछ भी नहीं बचा, कहने को भी कुछ नहीं बचा। प्रेमी बहुत तय करते हैं कि जब अपने प्रेम पात्रों को मिलेंगे तो यह कहेंगे, वह कहेंगे, और जब मिलते हैं तब अचानक पाते हैं कि कुछ याद नहीं पड़ता, क्या कहना था। सब चुप हो गया है, सब मौन हो गया है। बीच में मौन खड़ा हो जाता है। द्वौपदी और कृष्ण का प्रेम बड़ा मौन है। वह और मुखर प्रेमों की तरह नहीं है। लेकिन, कृष्ण पर उसकी गहरी सवेदना हुई है। इसलिए, जितने काम वे द्वौपदी के आये उतने वे किसी के काम पड़े नहीं हैं। पूरी महाभारत की कथा में कृष्ण छाया की तरह द्वौपदी की रक्षा करते रहे हैं। वह बड़ा दूर का नाता है। उसमें बहुत साफ-साफ घटनाएँ नहीं दिखायी पड़ती, लेकिन बहुत छाया-सम्बन्ध है। वह बहुत चुपचाप 'इन्टीमेटली' चलता रहता है।

प्रश्न पश्चिम के सागर तट की सुरक्षा, तथा आक्रमण से बचने के लिए कृष्ण ने मथुरा का त्याग और द्वारका का बास किया था। सुना है कि मथुरा के लोग भगवान् कृष्ण को आपत्ति समझते थे जिसके कारण ही जरासंध आदि राजा मथुरा पर आक्रमण करने पर तुले थे। कृष्ण को भी जरासंध हरा सका यह उनके चरित्र के मानवी अंश का छोर नहीं है कथा?

उत्तर जीवन में हार और जीत कपड़े के आड़े और तिरछे तानों बानों की तरह होती है। अकेली जीत से कोई जीवन नहीं बनता। खड़े ताने रह जाते हैं, आड़े ताने नहीं होते। अकेली हार से कोई जीवन नहीं बनता, आड़े ताने रह जाते हैं, खड़े ताने नहीं होते। जीवन के कपड़े की जो बुनावट है वह हार और जीत का इकट्ठा साथ है, सफलता और असफलता का इकट्ठा मेल है तथा गलत और सही का इकट्ठा जोड़ है। जीवन है तो वह दोनों हैं। इसलिए, मवाल यह नहीं है कि कब कृष्ण हार जाने हैं जिससे, और कब जीत जाते हैं। अमली मवाल यह है कि 'टाट्टु' जिन्दगी का परिणाम जीत है वि हार। कृष्ण दी ही नहीं, सभी की जिन्दगी के लिए यह मवाल नहीं है कि आप कब हार गये थे या कब जीत गये थे? क्योंकि, हो सकता है कि आपकी हार जीत के लिए मोढ़ी बनी हो, और यह भी हो सकता है कि आपकी जीत मिफ एक बड़ी हार में बदने के लिए खाई बन गयी हो। जिन्दगी के ताने बाने विराट हैं और जटिल हैं। यहा सब हारे हार नहीं हैं, मव जीते जीत नहीं हैं। इसलिए, आखिरी जो निण्य है वह यह नहीं होता कि आदमी कब असफल हुआ और कब सफल हुआ, कब हारा, कब जीता। अमली मवाल यह है कि उसकी पूरी जिन्दगी की कथा का मार, निचोड़, जीत है कि हार?

इसलिए, बहुत स्वाभाविक है कि कृष्ण की जिन्दगी में कुछ हार के क्षण हो। जिन्दगी है तो होगें। अगर भगवान् को भी जीना हो तो उसे आदमी की तरह ही जीना होगा। जिन्दगी में तो उसे आदमी की तरह ही खड़ा होना होगा। और, जिन्दगी के सुख-दुख उसे एक साथ स्वीकार करने पड़ेंगे। जो आदमी हारने को नैयार नहीं है उसे पवका कर लेना चाहिए कि उसे जीतने का स्थाल छोड़ देना चाहिए। कृष्ण की जिन्दगी में दोनों हैं, इसलिए वह जिन्दगी मेरे लिए किसी मानवीय हीनता के अर्थ में नहीं होती, बल्कि गरिमा के अर्थ में हो जाती है। यानी कृष्ण हार भी सकते हैं, इतने अद्भुत आदमी हैं। जीत की जिद् नहीं है, जीतकर ही रहेंगे, जीतते ही रहेंगे, ऐसा अभिमान भी नहीं है। हार भी आ-

मस्ती है। भागना भी हो सकता है, कहीं पलायन घट सकता है, कहीं से जगह भी छोड़नी पड़ सकती है। यह सब स्वीकार है। जिन्दगी के सब ताने बाने जैसे हैं स्वीकृत हैं। इसमें चुनाव नहीं है कि हम यही करेंगे।

कृष्ण की बहुत जगह जो 'हृयूमीनिटी' है वह कई जगह बुद्ध और महावीर की 'डिविनिटी' के सामने छोटी मालूम पड़ेगी। बुद्ध और महावीर एकदम 'डिल्हाइन' मालूम पड़ते हैं, एकदम दिव्य मालूम पड़ते हैं, उनमें मानवीयता बिल्कुल नहीं मालूम पड़ती। लेकिन ध्यान रहे, बहुत दिव्यता अमानवीयता भी हो जाती है और चीजे सस्ते हो जाती हैं। कृष्ण मस्त होने को राजी नहीं है। इसलिए जिसको हम मानवीय कमजोरिया कहते हैं, वह कृष्ण में सब-की-सब स्वीकृत है। कहावत है अग्रेजी में 'टु अर इज हथूमन' भूल करना मानवीय है, लेकिन इससे उलटी कहावत नहीं है कि कभी न भूल करना बड़ा अमानवीय हो जाना है। भूल को भूल की तरह लेने की जरूरत कृष्ण को नहीं मालूम पड़ती। वह जिन्दगी में आया हुआ हिस्सा है, वह उसे लिंग चले जाते हैं। और, यह भी सच है कि उन्हे मथुरा छोड़ देनी पड़ी। कृष्ण जैसे व्यक्ति को बहुत जगहे छोड़नी पड़ सकती है। वे कई जगह उपद्रव के मिठ्ठ हो सकते हैं। कई जगह उन्हे सहने के लिए अमर्मध हो सकती है। क्योंकि, कृष्ण के साथ चलना, कृष्ण के साथ जीना, कृष्ण को समझना आसान नहीं है। वह हट जाते हैं। इस हटने में भी कोई उन्हे कठिनाई नहीं होती। वे ऐसे ही हट जाते हैं, क्योंकि वह पैर जमा कर कहीं भी खड़े नहीं हो गये हैं। वे बड़ी सरलता से चुपचाप हट जाते हैं। फिर पीछे लौटकर भी नहीं देखते। इधर पीछे जो उन्हे 'ब्लेम' करते हैं, परेशान हैं खबरों पर सबरे भेजते हैं, चिठ्ठियों पर चिठ्ठिया लिखते हैं। पता लगते हैं कि वह याद भी करते हैं कि नहीं करते हैं। लेकिन, वे दूसरी एक जगह पहुँच गये हैं। अब वे इस जगह को याद करेंगे। वह जहा है वहा पूरे है। इसलिए, कठोर भी मालूम पड़ते हैं। कृष्ण की जिन्दगी एक बहाव है। हवाएँ पूरब जाती हैं तो वे पूरब चले जाते हैं, हवाएँ पश्चिम जाती हैं वे पश्चिम चले जाते हैं। कृष्ण का अपना आग्रह नहीं है कि मैं यही रहूँगा, ऐसा ही रहूँगा, ऐसा ही होने की मैंने कसम खा रखी है, ऐसा कुछ भी नहीं है। जिन्दगी जहा ले जाती है वे राजी हैं। लाओत्से का एक वचन है, वह मैं कहूँ आपको — लाओत्से कहता है, हवाओं की तरह हो जाओ, जब हवाएँ पूरब जाएँ तो पूरब, जब हवाएँ पश्चिम जायें तो पश्चिम। तुम आग्रह मत करो कि मैं यहा ही जाऊँगा।

एक छोटी-सी जेन कहानी है। एक नदी पर जोर का बहाव है। बाढ़ आयी हुई है। नदी में दो बास के छोटे-से तिनके बह रहे हैं। एक तिनके ने नदी की

बाड़ में अपने को आडा डाल रखा है। वह नदी से लड़ रहा है। नदी को पता भी नहीं कि तिनका उससे लड़ रहा है। लेकिन, तिनका है कि भरा जा रहा है, लड़े जा रहा है, फिर भी वह बहतों रहा ही है। क्योंकि, नदी बही जा रही है। तिनके के लड़ने से नदी रुकती थोड़े ही है। दूसरे तिनके ने नदी में अपने को सीधा छोड़ दिया है लबाई में, वह बड़ा आनन्दित है और नाच रहा है। वह यह सोच रहा है कि नदी को बहने का मैं रास्ता दे रहा हूँ। नदी मेरे सहारे बही जा सकी है। नदी को कोई फर्क नहीं पड़ता है। नदी को उन दोनों तिनकों का भी कोई पता नहीं, लेकिन उन तिनकों को बहुत फर्क पड़ता है।

जिन्दगी में दो ही तरह के लोग हैं— आग्रहशील ऐसे ही होंगे, यही करेंगे। ऐसे लोग उस तिनके की तरह हैं जो नदी में अपने को आडा डाले हुए हैं। इससे नदी को कोई फर्क नहीं पड़ता है। जिन्दगी की धारा बही चली जाती है। वे आड़े ही बहते रहते हैं लेकिन कष्ट भोगते हैं। ऐसे भी लोग हैं जो जिन्दगी की धार में अपने को सीधा लम्बा छोड़ देते हैं। वे कहते हैं कि हम साथ हैं। नदी बहो। हमारे साथ ही बहो। वे बड़े आनन्दित होते हैं और नाच पाते हैं। कृष्ण के ओठों पर बासुरी सम्भव हो सकी, क्योंकि वह लबी धारा में अपने को छोड़े हुए आदमी है। जिन्दगी की धार के साथ एक है। आडे नहीं हैं, नहीं तो बासुरी मुश्किल है। महावीर के ओठ पर बासुरी नहीं रख सकते आप। एकदम फेक देंगे कि क्या पागलपन कर रहे हो! कृष्ण के ओठ पर बासुरी रखी जा सकती है। यह आदमी बासुरी बजा सकता है। उसका कुल कारण इतना है कि नदी की जीवन की धारा से कोई संघर्ष नहीं है। नदी जहाँ ले जाती है जाने को राजी है। अगर मथुरा से नदी हट गयी तो द्वारका मे बहेगी, हर्ज क्या है। अगर मथुरा के घाट से छूट गया तो द्वारका मे घाट बन जायेगा हर्ज क्या है। अनाग्रहशील व्यक्तित्व का वह लक्षण है।

**प्रश्न .** कालियाबन मानता है कि कृष्ण भगते हैं, मगर कृष्ण भगते हैं और ले जाते हैं उस गुफा में, जहाँ मूच्छुन्द सोया हुआ है। मूच्छुन्द जागता है और उसको दृष्टि से पुराणकार कहते हैं, कालियाबन जल जाता है। वह क्या तात्पर्य रखता है?

उत्तर इन सारे शब्दों के प्रतीक अर्थ है। कृष्ण की कथा मे बहुत कुछ जुड़ा है। बहुत कुछ सिर्फ प्रतीक है, 'मेटाफर' है। कुछ किन्हीं घटनाओं से संबंधित है, कुछ किसी फिलासफी, किसी 'मेटाफिजिक्स' से संबंधित है, यह सब जुड़ा है। कृष्ण किसी को भगते हैं ऐसा हमे दिखायी पड़ सकता है। जो

भाग रहा है उसको भी दिखायी पड़ सकता है कि मुझे भगा रहे हैं। लेकिन, जहाँ तक मेरी समझ है, कृष्ण जैसा व्यक्ति किसी को भगाता नहीं, भगाने की घटना घट सकती है। स्थिति ऐसी हो सकती है कि भागना किसी के लिए अनिवार्य हो जाय, कृष्ण को पीछा करना अनिवार्य हो जाय। इसमें तब करना बड़ा मुश्किल है।

मैंने सुना है एक आदमी एक गाय के गले में रस्सी बांध कर ले जा रहा है। एक सूफी फकीर ने उससे पूछा है कि तुम्हारा गाय से बंधे हो कि गाय तुमसे बधी है। उस आदमी ने कहा, पागल हो गये हो, मैं गाय को बाधे हुए हूँ, मैं क्यों गाय से बधा होने लगा। उस फकीर ने पूछा कि फिर मैं तुमसे एक काम कहता हूँ—अगर गाय छोड़ दी जाय और भागे तो तुम गाय के पीछे भागोगे कि गाय तुम्हारे पीछे भागेगी? उस आदमी ने कहा, मुझे गाय के पीछे भागना पड़ेगा। उस फकीर ने पूछा, फिर बधा कौन किससे है? असल में बधना हमेशा दुर्कारा है। इसको एक हिस्से में तोड़ कर तय करना मुश्किल हो जायेगा। इतना ही हम कह सकते हैं कि भागना घटित हो रहा है, उसमें एक आगे है और एक पीछे। लेकिन, कृष्ण के व्यक्तित्व को देख कर हम सोच सकते हैं कि वह चूँकि इतने सहज जीते हैं इसलिए किसी चीज से उनका अगर सघर्ष भी है तो वह सघर्ष किसी सहयोग से ही फलित हुआ है। और, जब कथा कहती है कि काल्यवन जल जाता है तो मेरा अपना मानना है कि यह काल के जल जाने का प्रतीक है। यह समय के जल जाने का प्रतीक है। यह 'टाइम' के जल जाने का प्रतीक है।

समय ही शायद हमारी जिन्दगी की भवसे बड़ी दुविधा, तनाव और तकलीफ है। समय ही शायद हमारा सताप और 'एग्विश' है। समय ही शायद, हमारा सारा खिचा हुआ होना है। समय जल जाय इसे हम ऐसा कह सकते हैं कि काल ही शायद सिर्फ एकमात्र राक्षस है जिससे हमारा सघर्ष चल रहा है पृथ्वी पर, और काल ही है जो हमें लील जायेगा और समाप्त कर देगा। लेकिन, कभी-कभी कोई काल को लील जाता है और समाप्त कर देता है। कभी-कभी कोई समय को मिटा देता है और समय के अतीत हो जाता है। कभी-कभी समय जल जाता है। किनसे जल जाता है, कौन समय को जला देता है? आप कह रहे हैं न, कृष्ण आपे भाग रहे हैं—जो समय के पीछे भागेगा, वह समय को नहीं जला सकेगा। जो समय के आगे भागेगा वह समय को जलाता है और वह समय के आगे हो जाता है। और सोये हुए मुजकुन्द की आँख खुलने से जल जाता है। मैंने कहा कि यह मेरे लिए प्रतीक कथा है। असल

में सोयी हुई आँख के लिए ही समय है। खुली हुई आँख के लिए समय नहीं है। हम जितने 'अनअवेयर' हैं, उतना ही हमारे लिए समय है। जिस दिन हम पूरे 'कॉसेस' हैं, पूरे जगे हुए हैं, आँख खुली है, उसी दिन समय जल जाता है। किसी की भी आँख खुल जाय। हम सभी गुफाओं में सोये हुए हैं। कृष्ण की मौजूदगी किसी गुफा में सोये हुए आदमी का आँख खोलने का कारण बन सकती है। कृष्ण के पीछे आता हुआ समय उसकी खुली आँख में जल सकता है। कृष्ण के लिए तो मैं मानता हूँ, समय नहीं है, मुच्कुन्द के लिए रहा होगा। वह जल सकता है।

इन प्रतीकों को अगर हम कभी भी जीवन-मन्त्रों की तरफ शोध में लगायें तो बड़ी आश्चर्यजनक अनुभूतिया उपलब्ध होती है। बड़ी जाश्चर्यजनक अन्त-दृष्टिया उपलब्ध होती है। लेकिन, हम इन सबको कथाएँ मानकर बैठ गये हैं। और, ऐतिहासिक घटनाएँ मानकर दोहराये चले जाते हैं। लेकिन, इतिहाम की घटनाओं से ज्यादा कही मनुष्य के चित्त पर घटी हुई सभावनाओं, मनुष्य के चित्त में छिपी हुई 'पोटेशियलिटी', मनुष्य चित्त में होने वाली विराट लीला के ये हिस्से हैं। इस भाँति कभी हमने उन्हे गौर से देखने की कोशिश नहीं की है, इससे बहुत अड़चन हुई है। इसलिए, कृष्ण जैसे व्यक्तित्व हमें धीरे-धीरे झूठे मालूम पड़ने लगते हैं। क्योंकि, इतना सब कुछ उनमें मिल जाता है कि उसे तय करना मुश्किल हो जाता है कि यह कैसे सभव हो सकता है। कृष्ण जैसे व्यक्तियों की बड़ी 'साइकोलॉजिकल कामेट्री' की जरूरत है कि उनका पूरा-का-पूरा व्यक्तित्व मनम शास्त्र के हिसाब से खोला जा सके।

आखिगी बात आपसे कहूँ और वह यह कहना चाहूँगा कि पुराने आदमी के पास दूसरा उपाय न था। उमने जो मनम मन्त्र भी जाने थे उनको भी वह कथा के प्रतीकों में रख सकता था। उनमें ही उनको ढाक सकता था, उनमें ही उनको छिपा सकता था। उसके मिवा कोई मार्ग ही नहीं था उसके पास। लेकिन, आज हमारे पास मार्ग है कि हम उनको खोल ले। जीसस ने एक जगह कहा है कि मैं तुम्हे ऐसी भाषा में कहता हूँ कि जो समझ सकते हैं वे समझ लेंगे, और जो नहीं समझ सकते उन्हे कोई हानि नहीं होगी। वे एक कहानी सुनने का मजा ले लेंगे। हम सब कहानी सुनने का मजा लेते रहे हजारों साल तक और धीरे-धीरे कुजिया भी खो गयी जिनसे उन कहानियों को खोला जा सकता था, और 'डीकोड' किया जा सकता था। इधर जो बातें मैं कर रहा हूँ शायद

उससे कुछ कुजिया आपके व्याल मे आयें कुछ कथा-प्रतीक खुल जाएं और जीवन के सत्य बन जाये। सच मे ही उनका ऐसा अर्थ है, इससे मुझे प्रयोगन नहीं। आपके चित के लिए अगर वैसा अर्थ खुल जाय तो वह आपके लिए हितकर हो सकता है, कल्याणकारी हो सकता है, मगलदायी हो सकता है।

\*



## पर्व : भ्यारह

कृष्ण की पूर्णता  
जैन तीर्थकरों की एक अध्यामिता  
समव और समय  
'एग्जिस्टेंस प्रिसीडेंस इसेंस'  
'पूर्ण मे' और 'न मे'  
साधना और उपासना की दिशा  
साधना उपासना का फर्क  
महाकीर को साधना कृष्ण की सिद्धि





प्रश्न १ . आचार्यधी, कृष्ण का व्यक्तित्व, कृष्ण की बासुरी, कृष्ण को राधा, कृष्ण के राग से लेकर सुदर्शन चक्र तक हमें बहुत कुछ जानने का मौका मिला । आज एक नया स्वरूप कृष्ण का आपको बाणी से, आपके मुख से सुनने के लिए हम सब उत्सुक हैं । हम चाहेंगे कि आप कृष्ण से सबधित उनकी साधना, उनकी दर्शन, उनसे सबधित उपासना पर अपने विचार प्रस्तुत करें ताकि हम कृष्ण के द्वासरे रवरूप को भी जान सके । कृष्ण ने तो

केवल एक अर्जुन का भोग भग किया था, यहाँ पर हम सब अर्जुन बैठे हुए हैं, और सब भोग से प्रसिद्ध हैं। उन सबका भोग भग करने के एकमात्र अधिकारी आप हैं।

प्रश्न २० आचार्यजी, गत पांच दिनों में आपने मक्खनबोर रासलीला करते हुए कृष्ण का, विराट जीवन की पूर्णता का या योग की पूर्णता का भेद बताया। यदि सूक्ष्मता से आपकी दृष्टि को समझें तो यह कहे कि रासलीला आदि जीवन के सत्य हैं और गीता के कृष्ण अथवा कृष्ण की गीता उनका निश्चोड़ है, जीवन का सार है। क्योंकि, आपने भी कहा कि गीता प्रमाण है कृष्ण का। ऐसा नहीं कहा कि रासलीला प्रमाण है कृष्ण का। आपने कहा, महाबोर या बुद्ध एक आयामी, 'वन डायमेशनल' है और इसीलिए शायद पूर्ण नहीं है। और, यह भी आपने ही कहा है कि महाबोर सातवें शरीर को पाकर योग की पूर्णता को पाये हैं। तो क्या जीवन में रासलीला हुई, या कुछ उलटफेर करना पड़ा, इसीलिए कृष्ण पूर्ण ठहरे, कि गीता जैसे प्रन्थ को देने के कारण पूर्ण हुए?

एक बात और कि महाबोर के जीवन में जीवन की पूर्णता न निखरी तो क्या उनके पहले के तेर्झम तीर्थंकरों को भी उन बहु आयामों का स्थाल नहीं आया था?

यदि हम दमन को न ले तो फिर सत्यम का क्या अर्थ है? दमन को छोड़ दें तो दमन को साधना में क्या स्थिति है?

उत्तर सबसे पहले पूर्णता का अर्थ समझ लेना चाहिए। पूर्णता भी एक आयामी और बहु आयामी हो सकती है। एक विवकार पूर्ण ही सकता है, चित्रकला में, लेकिन इसमें वह वैज्ञानिक की तरह पूर्ण नहीं हो जाता। एक वैज्ञानिक पूर्ण हो सकता है विज्ञान में, लेकिन इससे वह सगीतज्ञ की तरह पूर्ण नहीं हो जाता। इस पूर्णता का अर्थ 'वन डायमेशनल' है। इसीलिए मैं महाबोर, बुद्ध या जीमस को पूर्ण कहता हूँ एक आयामी अर्थात्। कृष्ण को बहुत दूसरे अर्थों में पूर्ण कहता हूँ—बहु आयामी, 'मल्टी डायमेशनल'। जीवन के जितने आयाम हैं, जीवन की जितनी दिशाएँ हैं उनमें से हम सारी दिशाओं का त्याग करके एक दिशा में पूर्ण हो, यह सम्भव है। इस तरह की पूर्णता भी परम सत्य तक ले जाती है। वह नदी भी सागर में पहुँच जाती है जो एक ही धारा बना

कर बहती है, तब्बा वह नदी भी सागर में पहुच जाती है जो हजार धाराओं में टूटकर सागर की तरफ बहती है। सागर तक पहुचने के लिए सवध में कोई भेद नहीं है। महावीर भी सागर में पहुच जाते हैं—बुद्ध भी और कृष्ण भी। लेकिन महावीर एक धारा की भाँति पहुचते हैं, कृष्ण अनत धाराओं की भाँति पहुंचते हैं। इसलिए, कृष्ण की पूर्णता बहु आयामी है। वह एक आयामी नहीं है। इससे कोई यह नहीं समझ ले कि महावीर वहा नहीं पहुच पाते सातवे शरीर के पार। बिल्कुल पहुच जाते हैं। लेकिन कृष्ण बहुत बहुत भार्गों से वहां पहुचते हैं। और बिना किसी जीवन के तत्त्व का निषेध किये पहुचते हैं। महावीर या बुद्ध निषेध किये बिना नहीं पहुचते। इसलिए महावीर और बुद्ध के जीवन में निषेध का, 'निगेशन' का अनिवार्य तत्त्व है। कृष्ण के जीवन में निषेध का कोई तत्त्व नहीं है। कृष्ण का जीवन पूरी तरह 'पोजीटिव' है, विद्यायक है। महावीर कुछ छोड़कर पहुचते हैं, कृष्ण सबको आत्मसात करके पहुचते हैं। इसलिए, मैंने कृष्ण की पूर्णता को भिन्न कहा है। इससे कोई ऐसा नहीं समझे कि महावीर अपूर्ण हैं। इससे इतना ही समझे कि उनकी पूर्णता एक आयामी है, कृष्ण की पूर्णता बहु आयामी है। भविष्य के मनुष्य के लिए एक आयामी पूर्णता का बहुत अर्थ नहीं होगा। भविष्य के मनुष्य के लिए बहु-आयामी पूर्णता का ही अर्थ होगा।

इसका एक और स्थाल ले लेना जरूरी है कि जो व्यक्तित्व एक दिशा से पूर्ण होता है वह अपने जीवन में दूसरी दिशाओं का निषेध कर जाता है। उसके एक दिशा में पूर्ण होने के कारण दूसरी दिशाएँ दूसरे लोगों के जीवन में भी निषिद्ध होती हैं। किन्तु, जो व्यक्ति अपने जीवन में सब दिशाओं से यात्रा करता है उसके कारण विभिन्न दिशाओं से यात्रा करने वाले एक आयामी तथा सब तरह के लोगों को सहारा मिलता है। जैसे, हम यह सोच ही नहीं सकते कि कोई चित्रकार या भूतिकार, या कोई कवि महावीर की चिन्तना के आधार पर कभी अहा को उपलब्ध हो सकता है। महावीर की साधना एक आयामी उनके ही जीवन में नहीं बनेगी, जो साधना को समझेंगे उनके जीवन में भी शेष सारी दिशाओं का निषेध हो जायेगा। यह हम सोच ही नहीं सकते कि कोई नर्तक भी अहा को उपलब्ध हो सकता है? महावीर के साथ नहीं सोच सकते। कृष्ण के साथ सोच सकते हैं। एक नर्तक भी, और सारी दिशाओं को छोड़ दे और सिर्फ नाचता चला जाय, नृत्य में डूबता चला जाय तो उस क्षण को उपलब्ध हो सकता है, जिस क्षण को महावीर ध्यान द्वारा उपलब्ध होते हैं। यह कृष्ण के साथ सम्भव है। कृष्ण अपने जीवन से समस्त दिशाओं को भागवत् स्वरूप

प्रदान कर देते हैं। समस्त दिशाएँ कृष्ण के साथ पवित्र हो जाती हैं। महावीर के साथ सभी दिशाएँ पवित्र नहीं होती। जिस दिशा से वे यात्रा करते हैं वही दिशा पवित्र होती है। और, उसके पवित्र होने के कारण अनिवार्य रूप से शेष अपवित्र हो जाती है। शेष का गहरा 'कन्डमनेशन' और निन्दा अपने-आप हो जाती है। ऐसा महावीर के साथ ही नहीं होता, बुद्ध के साथ भी होता है, क्राइस्ट के साथ भी होता है, मुहम्मद के साथ भी होता है, राम के साथ भी होता है, शकर के साथ भी होता है।

कृष्ण मात्र एक ऐसे व्यक्ति है जिसको हम कह सके कि समस्त जीवन को, समस्त दिशाओं को पवित्रता प्रदान कर दी। किसी भी दिशा से गया हुआ व्यक्ति बहुत तक पहुंच सकता है। इन अर्थों में वह 'मल्टी डायमेशनल' है। खुद के जीवन में ही नहीं, दूसरों के जीवन के लिए भी 'मल्टी डायमेशनल' है—जहां बासुरी बजा कर भी कोई ब्रह्म को उपलब्ध हो सकता है। बासुरी की भी अतिम क्षण की अवस्था समाधि की हो जायेगी। लेकिन, मीरा उपलब्ध के मार्ग पर नहीं हो सकती महावीर के हिसाब से। वह राग के ही मार्ग पर है। और, राग कभी भी परमात्मा तक नहीं पहुंचा सकता महावीर की दृष्टि में। वैराग्य ही पहुंचायेगा। कृष्ण के साथ विरागी भी पहुंच जाता है, रागी भी पहुंच जाता है। इन अर्थों में मैंने कहा कि कृष्ण की पूर्णता का कोई मुकाबला नहीं है, कोई उपमा नहीं है।

फिर बात पूछी गयी है कि महावीर को छोड़ भी दें, तो उनके पहले के तेईम तीर्थकर कोई भी पूर्णता को उपलब्ध नहीं हुए? वे सब पूर्णता को उपलब्ध हुए, लेकिन एक आयामी पूर्णता को ही उपलब्ध हुए। और, एक आयामी पूर्णता के कारण ही जैन विचार बहुत व्यापक नहीं हो सका। हो नहीं सकता। महावीर को मरे ढाई हजार वर्ष हो गये हैं। आज भी जैनियों की सब्या तीस-पैंतीस लाख से ज्यादा नहीं है। थोड़ा सोचने जैसा है कि महावीर जैसी प्रतिभा का आदमी जिस विचार को मिला हो, वह भी अकेला नहीं, और तेईस तीर्थकरों का विराट दर्शन मिला हो, वह विचार तीस-पैंतीस लाख लोगों तक पहुंचा? अगर महावीर के जमाने में तीस-पैंतीस आदमी भी उनसे प्रभावित हो जाएँ तो इतने बच्चे पैदा हो जायेंगे। कारण क्या है? कारण, 'वन डायमेशनल' है जो बहुत दिशाओं को स्पर्श नहीं करता। एक ही दिशा को स्पर्श करता है। इसलिए, विभिन्न तरह के लोगों को प्रभावित नहीं कर सकता। फिर, बड़े भजे की बात यह है कि यह जो पचीस-तीस लाख जैन हैं, इनकी तरफ भी हम ध्यान दें तो

बहुत हैरानी में पड़ जायेगे। महावीर के साथ इनमें से अनेक लोग वैसा व्यवहार कर रहे हैं, जैसा व्यवहार कृष्ण के साथ तो उचित है, महावीर के साथ अनुचित है। महावीर के सामने आरती लेकर घुमा रहे हैं। कृष्ण के साथ चल सकता है, ऐसा महावीर के साथ नहीं चल सकता। महावीर की भी भक्ति चल रही है। उसका मतलब यह है कि जैन धरो में जो पैदा हुए हैं, उनका चित्त भी उस आयाम में नहीं बैठता। वह बहुत थोड़े से लोगों का आयाम है। तो जैन धर में पैदा होने की वजह से आदमी जैन तो रहा चला जायेगा, लेकिन वह उस सबको सम्मिलित कर लेगा जो कि महावीर के आयाम का नहीं है। भक्ति आ गयी है जैन में, उपासना आ गयी है, प्रार्थना आ गयी है, पूजा आ गयी है। इनका कोई सबध महावीर से नहीं है। यह सब महावीर के साथ अनाचार है। महावीर के व्यक्तित्व में इनके लिए कोई गुजाइश नहीं है। लेकिन, वह जो जैन है, उसके व्यक्तित्व में इसके बिना तृप्ति नहीं है। वह महावीर के साथ ही सब जोड़े चला जा रहा है।

एक और बात आपसे कहूँ कि 'वन डायमेशनल' जितने भी व्यक्तित्व है इनके साथ निरन्तर अनाचार होगा। मिर्फ 'मल्टी डायमेशनल' व्यक्ति के साथ अनाचार आप नहीं कर सकते। क्योंकि, आप कुछ भी करे, उसके लिए वह राजी हो सकता है। कृष्ण के साथ हजार तरह के लोग राजी हो सकते हैं, महावीर के साथ सिर्फ़ एक 'पर्टीकुलर टाइप' राजी हो सकता है। इस वजह से मैंने कहा कि - वह जो चौबीस तीर्थकर है वह सब एक रूप है, एक ही यात्रा पर है। उन सबकी एक ही दिशा है, एक ही उनकी साधना है। ऐसा नहीं है कि वह नहीं पहुँच जाते हैं, यह मैं नहीं कह रहा हूँ, वह बिल्कुल पहुँच जाते हैं। ऐसा नहीं है कि जो कृष्ण को मिलता है वह उन्हे नहीं मिलता। वह उन्हे मिल सकता है। हजार धाराओं में नदी बहकर सागर पहुँचे कि एक धारा में पहुँचे, इससे फर्क नहीं पड़ता है। सागर में पहुँच कर तो सब बात समाप्त हो जाती है। लेकिन, एक धारा और एक मार्ग पर बहने वाली नदी सारी पृथ्वी को नहीं धेर सकती, यह समझना चाहिए। हजार धाराओं में बहने वाली नदी सारी पृथ्वी को भी धेर मिलती है। एक धारा में बहने वाली नदी के तट पर जो वृक्ष है उनको पानी मिल सकता है। हजार धाराओं में बहने वाली, हजार मार्गों पर जो वृक्ष है उनकी जड़ों को पानी दे पाती है, वही फर्क है। इसी फर्क को ध्यान में रखना जरूरी है। बहु आयामी से मैंने इतना ही कहना चाहा है।

यह बात भी पूछी गयी है कि दमन को छोड़ दें, तो सयम का क्या अर्थ है ? साधारणत वैरागी की भाषा में – सयम का अर्थ दमन ही है। इसलिए, जैन शरीर-दमन शब्द का भी उपयोग करते हैं। शरीर को दबाना है, दमन करना है। लेकिन, कृष्ण की भाषा में सयम का अर्थ दमन नहीं हो सकता। कृष्ण की भाषा में सयम का अर्थ बिल्कुल और है। शब्द भी बड़ी दिक्कत देते हैं। क्योंकि, शब्द तो एक ही होते हैं – चाहे कृष्ण के मुह पर हो और चाहे महावीर के मुह पर हो। सयम, शब्द एक ही है, लेकिन अर्थ बिल्कुल भिन्न है। क्योंकि, ओठ भिन्न है और उनका प्रयोग करने वाला आदमी भिन्न है। और, उसमें जो अर्थ है उस व्यक्तित्व से आता है। शब्द में जो अर्थ है वह 'डिक्षनरी' से नहीं आता। 'डिक्षनरी' से सिर्फ उनके लिए आता है जिनके पास कोई व्यक्तित्व नहीं है। जिनके पास व्यक्तित्व है, उनके लिए शब्द का अर्थ भीतर से आता है। कृष्ण के ओठ पर सयम का क्या अर्थ है, यह कृष्ण को समझे बिना नहीं कहा जा सकता है। महावीर के ओठ पर सयम का क्या अर्थ है, यह महावीर को समझे बिना नहीं कहा जा सकता। कृष्ण को देखते हुए कहा जा सकता है कि सयम का अर्थ दमन नहीं हो सकता। क्योंकि, अगर दुनिया में कोई भी अद्वितीय, 'अनसंप्रेस्ड' आदमी हुआ है तो वह कृष्ण है। तो, सयम का क्या अर्थ होगा ?

ऐसे मेरी भी समझ में सयम का बहुत गहरा अर्थ दमन नहीं है। सयम शब्द बहुत अद्भुत है। सयम का मेरे लिए अर्थ है सतुलन, 'बैलेम'।—न इस तरफ, न उस तरफ। बीच में, मध्य में। त्यागी असयमी है, त्याग की तरफ। भोगी असयमी है भोग की तरफ। भोगी एक छोर छू रहा है, त्यागी दूसरा छोर छू रहा है। यह दोनों 'एकसट्रीम' हैं। सयम का अर्थ है न अति। कृष्ण के ओठों पर सयम का अर्थ है न त्याग, न भोग, या त्यागपूर्ण भोग या भोगपूर्ण त्याग। यही अर्थ हो सकता है सयम का कृष्ण के ओठों पर। जो कही भी झुकता नहीं अति पर वह व्यक्तित्व सयमित है।

एक आदमी है, धन के पीछे पागल है। बस इकट्ठा किये जाता है, तिजोरी भरे चला जाता है। यह असयमी है। धन इसका साध्य हो गया, अति हो गयी इसके जीवन में। दूसरा आदमी है, धन से पीठ करके भागता है। लौटकर नहीं देखता है, भागता ही चला जाता है। वह सदा ढरा हुआ है कि कही धन न मिल जाय। यह भी असयमी है। इसके लिए धन का त्याग वैसे ही साध्य बन गया, जैसे किसी के लिए धन का इकट्ठा करना साध्य था। सयमी कौन है ? कृष्ण के अर्थों में 'जनक' जैसा आदमी सयमी है। मध्य में होना सयम है।

भूखा भरना सयम नहीं है, ज्यादा खा लेना सयम नहीं है—सम्यक आहार सयम है। सम्यक आहार यानी जितना जरूरी है, वस उतना ही। न ज्यादा, न कम। यह सयम है। कृष्ण के ओठो पर सयम का अर्थ ‘बैलेस’ है—सतुलन, सगति।

इस अर्थ को अगर हम वास्तविक जीवन में समझने जायेंगे तो इसके दो अर्थ होंगे। ऐसा व्यक्ति न तो त्यागी कहा जा सकता है, न भोगी कहा जा सकता है। या दोनों कहा जा सकता है। पर, ऐसा व्यक्ति दोनों एक साथ होगा। उसके भोग में त्याग होगा, उसके त्याग में भोग होगा। परन्तु सयम के इस अर्थ से त्यागवादी परम्परा राजी न होगी। त्यागवादी परम्परा के लिए सयम का अर्थ विराग होगा। असयम का अर्थ राग होगा। जो राग को छोड़ता है और विराग की तरफ जाता है वह सयमी है। कृष्ण त्यागवादी नहीं है, कृष्ण भोगवादी भी नहीं है। अगर हम उन्हे कही भी रखें तो वह ठीक चार्वाक और महावीर के बीच में खड़े हो जायेंगे। वे भोग में चार्वाक से पीछे न होंगे और त्याग में महावीर से पीछे न होंगे। इसलिए, अगर चार्वाक और महावीर का कोई मिक्मचर बन सकता हो, दोनों का कोई सम्मिलिन बन सकता हो तो वह कृष्ण है। इसलिए, कृष्ण के ओठो पर सारे शब्दों के अर्थ भिन्न होंगे।

प्रारभ में मवाल पूछा है, कृष्ण की उपासना, साधना क्या है?

कृष्ण के व्यक्तित्व में साधना जैसा कुछ भी नहीं है। हो नहीं सकता। साधना में जो भौतिक तत्त्व है वह प्रयास है, ‘एफटं’ है। बिना प्रयास के साधना नहीं हो सकती। दूसरा जो अनिवार्य तत्त्व है वह अस्मिता है, अहकार है। बिना ‘मैं’ के साधना नहीं हो सकती। करेगा कौन? कर्ता के बिना साधना कैसे होगी? कोई करेगा तभी होगी। साधना शब्द, अगर बहुत गहरे में समझें तो अनीश्वरवादियों का है। जिनके लिए कोई परमात्मा नहीं है, आत्मा ही हैं, साधना शब्द उनका है। आत्मा साधेगी और पायेगी। उपासना शब्द बिल्कुल उल्टे लोगों का है। आमतौर से हम दोनों को एक साथ चलाये जाते हैं। उपासना शब्द उनका है जो कहते हैं, आत्मा नहीं, परमात्मा है। सिर्फ उसके पास जाना है, साधना कुछ भी नहीं। उपासना का भत्तच है पास जाना, पास बैठना, उप-आसन, निकट होते जाना है। और निकट होने का अर्थ है खुद मिट्टे जाना, और कोई अर्थ नहीं। हम उससे उतने ही दूर हैं जितने हम हैं। जीवन के परम सत्य से हमारी दूरी, हमारा ‘डिस्टेंस’ उतना ही है जितने हम हैं। जितना हमारा होना है, जितना हमारा ‘मैं’ है, जितना हमारा

‘इगो’ है, जितनी हमारी आत्मा है, उतने ही हम दूर हैं। जितने हम खोते हैं और विगलित होते हैं, पिछलते हैं और बहते हैं, उतने ही हम पास होते हैं। जिस दिन हम बिल्कुल नहीं रह जाते उस दिन उपासना पूरी हो जाती है और हम परमात्मा हो जाते हैं। जैसे, बर्फ पानी बन रहा हो, वह उपासना ऐसी ही है। साधना क्या कर रहा है बर्फ? साधना करेगा तो और सख्त होता चला जायेगा। क्योंकि, साधना का मतलब हुआ कि बर्फ अपने को बचाये। साधना का मतलब होगा कि बर्फ अपने को सख्त करे। साधना का मतलब होगा बर्फ और ‘क्रिस्टलाइज़’ हो जाये। साधना का मतलब हुआ कि बर्फ और आत्मबान बने। साधना का अर्थ अन्तत आत्मा है। उपासना का अर्थ अन्तत परमात्मा है। इमलिए, जो लोग साधना से जायेगे उनकी आखिरी मजिल आत्मा पर रुक जायेगी। उमके आगे को बात बैन कर सकेंगे। बैन कहेंगे, अन्तत हमने अपने को पा लिया। उपासक कहेगा, अन्तत हमने अपने को खो दिया। ये दोनों बातें बड़ी उल्टी हैं। बर्फ की तरह पिछलेगा उपासक और पानी की तरह खो जायेगा। साधक तो मजबूत होता चला जायेगा। इमलिए, कृष्ण के जीवन में साधना का कोई तत्त्व नहीं है, साधना का कोई अर्थ नहीं है। अर्थ है तो उपासना का है।

उपासना की याकाही उल्टी है। उपासना का मतलब कि हमने अपने को पा लिया, यही भूल है। हम हैं, यही गलती है—‘टु बी इज द ओनली बाएंडेज,’ होना ही एकमात्र बन्धन है, न होना ही एकमात्र मुक्ति है। साधक जब कहेगा तब वह कहेगा कि मैं मुक्त होना चाहता हूँ। उपासक जब कहेगा तब वह कहेगा, मैं ‘मैं’ से मुक्त होना चाहता हूँ। उपासक के मोक्ष का अर्थ है, ‘न मैं’ की स्थिति। साधक के मोक्ष का मतलब है ‘मैं’ की परम स्थिति। इमलिए, कृष्ण की भाषा में साधना के लिए काई जगह नहीं है। उपासना के लिए जगह है। यह उपासना क्या है, इसे हम थोड़ा समझेंगे।

पहली तो बात यह समझ लें कि उपासना साधना नहीं है। इसमें समझने में आसानी बनेगी, अन्यथा भ्राति निरन्तर होती रहेगी। उपासक हममें से बहुत कम लोग होना चाहेंगे, यह भी ख्याल में ले लें। साधक हम में से सब होना चाहेंगे, क्योंकि साधक में कुछ खोना नहीं है, पाना है। और उपासक में सिवाय खोने के कुछ भी नहीं है, पाना कुछ भी नहीं है। खोना ही पाना है, वह। उपासक कौन होना चाहेगा? इसलिए, कृष्ण को मानने वाले भी साधक हो जाते हैं। कृष्ण के मानने वाले भी साधना की भाषा बोलने लगते हैं। क्योंकि, भीतर जो अहकार है वह साधना की भाषा बुलवाता है। वह कहता है—

माधो, पाओ, पहुचो। उपासना कहती है—पिघलो, मिटो, खो जाओ। निश्चित् ही हम पूछना चाहेंगे कि क्यों मिटें? मिट कर क्या फायदा है? साधक कितनी ही ऊँची बात बोले, फायदे की बात में ही सोचेगा। उसका मोक्ष भी उसका ही सुख है। उसकी मुक्ति भी उसकी ही मुक्ति है। इसलिए, साधक बहुत गहरे अर्थों में स्वार्थी हो तो आश्चर्य नहीं। स्व के अर्थ से ऊपर वह कभी उठ भी नहीं पायेगा। उपासक 'स्व' अर्थ के ऊपर उठेगा। इसलिए, उपासक परमार्थ की बात बोलेगा। वह परम अर्थ की बात बोलेगा, जहा स्व खो जाता है। इस उपासना का क्या अर्थ होगा, क्या गति होगी और क्या यात्रा होगी? बड़ी कठिन होगी समझनी यह बात। इसलिए, पहले ही आपको कह देता हूँ कि साधना शब्द को बिल्कुल ही हटा दें। उसकी जगह ही नहीं है। फिर, हम उपासना को समझने चले।

जैसा मैंने कहा, उपासना का अर्थ है निकट आना। 'टु बी नियरर'। तो दूरी क्या है, 'डिस्टेम' क्या है? एक तो दूरी है जो हमे दिखायी पड़ती है, 'फिजिकल स्पेस' है। आप वहा बैठे हैं, मैं यहा हूँ। हम दोनों के बीच एक फासला है। मैं आपके पास आ जाऊँ, आप मेरे पास आ जाएँ तो भौतिक दूरी समाप्त हो जायेगी। हम बिल्कुल पास-पास, हाथ में हाथ ले कर, गले में गले डाल कर बैठ जाय तो दूरी खत्म हुई। लेकिन, दो आदमी गले में हाथ डाले भी कोसो दूरी पर हो सकते हैं। एक इनर स्पेस है, एक भीतरी दूरी है। जिसका 'फिजिकल' दूरी में कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। एक दूरी हमसे बाहर है, और एक दूरी है जो मन की है और हमारे भीतर है। उपासना भीतर की दूरी को मिटाने की विधि है। लेकिन, भक्त भी बाहर की दूरी मिटाने को आतुर रहता है। वह भी कहता है, सेज बिछा दी है, आ जाओ। वह भी कहता है, कब तक तडपाओगे, आओ। लेकिन, बड़े भजे की बात है कि बाहर की दूरी कितनी ही मिट जाय, दूरी बनी ही रहती है। हम कितने ही पास आ जाएँ, बाहर से, हम पास आते ही नहीं। पास आना बिल्कुल ही आतंरिक घटना है। इसलिए, उपासक उस परमात्मा के पास हो सकता है जो दिखायी ही नहीं पड़ता। जिससे 'फिजिकल' दूरी मिटाने का कोई उपाय ही नहीं है, उसके भी पास हो सकता है।

यह जो 'इनर स्पेस' है हमारी, भीतर की दूरी, यह कैसे पैदा होती है? बाहर की दूरी हम समझते हैं कि कैसे पैदा होती है। अगर मैं आप से दूर चलने लगू, आपसे हटने लगू, आपकी तरफ पीठ कर लू, और भागने लगू, तो बाहर की दूरी पैदा हो जाती है। आपकी तरफ मुह कर ल् और आपकी तरफ चलने

लगू आपकी दिशा में, तो बाहर की दूरी कम हो जाती है। भीतर की दूरी चलने से पैदा नहीं होती, क्योंकि भीतर तो चलने की कोई जगह नहीं है। भीतर की दूरी, 'होने से' पैदा होती है। कितना सत्त मैं हूँ उतनी ही भीतर की दूरी होती है। और कितना तरल मैं हूँ उतनी ही भीतर की दूरी टूट जाती है। अगर मैं बिल्कुल तरल हो जाऊ कि मैं भीतर कह सकूँ कि मैं हूँ ही नहीं, शून्य हो गया तो भीतर की दूरी समाप्त हो जाती है। उपासना का अर्थ शून्य होना है। उपासना का अर्थ न कुछ होना है। 'नविगेनेस', 'नॉनबीइंग'। मैं नहीं हूँ इस सत्य को जान लेना उपासक हो जाना है। मैं हूँ, इस तथ्य को जोर से पकड़े रहना परमात्मा से दूर होते जाना है। मैं हूँ, यह धोषणा ही हमारी दूरी है।

शायद पृथकी पर, उपासना को जानने वाले थोड़े ही लोग हैं, वे सूफी हैं। कृष्ण को अगर कोई ठीक से समझ सकता है तो सूफी ही समझ सकते हैं। ऐसे वे मुसलमान फकीर हैं। लेकिन, इससे क्या बनता बिगड़ता है। एक सूफी गीत है जलालुदीन रूमी का कि प्रेमी ने द्वार खटखटाया है प्रेयसी का। भीतर से आवाज आयी है, कौन है? प्रेमी ने कहा, मैं हूँ, पहचाना नहीं? फिर, भीतर से कोई आवाज नहीं आती। प्रेमी द्वार खटखटाये चला जाता है और कहता है, मेरी आवाज नहीं पहचानी— मैं हूँ। तब भीतर से बड़ी मुश्किल से इतनी भर आवाज आती है कि जब तक तुम हो तब तक प्रेम के द्वार नहीं खुल सकते। कब खुले हैं 'मैं' के लिए प्रेम के द्वार? जाओ, उस दिन आना जिस दिन 'मैं' न रह जाओ। प्रेमी वापस लौट जाता है। वर्षों के बाद वह वापस लौटना है। वह द्वार पर दस्तक देता है। भीतर से फिर वही मवाल कि कौन? प्रेमी कहता है, अब तो तू ही है। तो, रूमी की कविता यहा पूरी हो जाती है। वह कहता है, द्वार खुल जाते हैं।

लेकिन, मैं मानता हूँ कि रूमी उपासना को पूरा नहीं समझ पाया। कृष्ण तक नहीं पहुँच पायी रूमी की समझ। गया थोड़ी दूर और रुक गया। अगर मैं इस कविता को लिखूँ तो मैं कहूँगा कि फिर वह प्रेयसी भीतर से कहती है कि जब तक 'तू' है, तब तक 'मैं' होगा ही, क्योंकि 'तू' का बोध 'मैं' के बिना नहीं होता। कौन कहेगा तू? तू को कहने के लिए मैं होना ही चाहिए। यह सिर्फ तराजू बदल लिया, पहलू बदल लिया। बात कुछ बनी नहीं। मैं इस कविता को लिखूँगा कि फिर वह कह देती है कि जब तक तू है तब तक मैं कैसे मिट सकता हूँ। अब तू को भी खो कर आ। लेकिन, जब मैं भी खो जायेगा और तू भी खो जायेगा तो क्या प्रेमी आयेगा? तब मेरी कविता बड़ी मुश्किल में

पड़ जायेगी। क्योंकि, फिर वह आयेगा कैसे, आयेगा किसके पास? आयेगा कहा? नहीं, फिर वह आयेगा ही नहीं। फिर आने की कोई बात नहीं रही, फिर जाने की कोई बात न रही। क्योंकि, वह 'इनर डिस्टेंस' ही दूट गया जिसमें आया जाया जा सकता है। वही तो मैं और तू का फासला था।

उपासना के लिए कहीं पहुचना नहीं होता है। जहा हम है, वही ब्रह्मित हो जाती है। बस अपने से मिटना होता है। और, पास पहुचना हो जाता है।

पूछा है कि मार्टिन बूवर के सम्बन्ध में कुछ कहूँ। मार्टिन बूवर की सारी की-सारी चिन्तनाएँ मैं और तू की 'इटीमेसी', मैं और तू के 'रिलेशनशिप', मैं और तू के सबधो पर हैं। मार्टिन बूवर गहरे लोगों में से एक है। लेकिन, गहराई कितनी ही हो, वह उथलेपन का दूसरा छोर है। सच्ची गहराई तो उस दिन शुरू होती है जिस दिन आदमी न उथला रह जाता है, न गहरा रह जाता है। उथला और गहरापन दोनों मिट जाते हैं। गहरी-न-गहरी जो बात मार्टिन बूवर ने कही है, वह यह है कि सारे जीवन का सत्य मैं और तू के अन्तर्संबंधों में समाया हुआ है। एक नास्तिक है, एक अनीश्वरवादी है। एक है जो मानता है, सिर्फ पदार्थ है। उसका जगत मैं और तू का जगत नहीं है। उसका जगत मैं और वह का जगत है। 'आई एण्ड इट', तू ही ही नहीं। क्योंकि, तू होने के लिए दूसरे मेरे आत्मा को स्वीकार करना जरूरी है। इसलिए, नास्तिक का जगत बड़ा जटिल है। क्योंकि, खुद को तो वह मैं कहता है और आत्मवान होने की घोषणा करता है और शेष सबको 'मैं' से हीन कर देता है और 'वह' बना देता है। पदार्थ बना देता है, वस्तुएँ बना देता है। अगर मैं जानता हूँ, आत्मा नहीं है तो आप मेरे लिए पदार्थ से ज्यादा नहीं हैं। 'मैं तू' किसको कहूँ। 'तू' तो जीवत व्यक्ति को कहा जा सकता है। इसलिए, मार्टिन बूवर कहता है कि आस्तिक का जगत 'मैं' और 'वह' का जगत नहीं है, 'आई एण्ड दाऊ', मैं और तू का जगत है। जब मेरा मैं, तू कह पाता है जगत को, तो आस्तिक का जगत है। लेकिन मैं कहूँगा, यह आस्तिक भी बहुत गहरे मेरे अभी नास्तिक है। क्योंकि, अभी भी मैं और तू मेरे जगत को बाट पाता है। या ऐसा कहे कि यह द्वैतवादी आस्तिक का जगत है। लेकिन, द्वैतवाद चूँकि क्षृठा है इसलिए द्वैतवादी आस्तिकता का भी कोई अर्थ नहीं होता। एक अर्थ मेरे नास्तिक अद्वैतवादी होता है। क्योंकि, वह कहता है, एक ही है पदार्थ। और, एक अर्थ मेरे आत्मवादी भी अद्वैतवादी होता है, क्योंकि वह भी कहता है, एक ही है, आत्मा है। मेरा मानना है एक ही से एक पर जाना बहुत आसान है, दो से एक पर जाना बहुत कठिन है।

इसलिए, द्वैतवादी, नास्तिक से भी ज्यादा उलझन में होता है। क्योंकि, किसी दिन अगर नास्तिक अद्वैतवादी को यह दिखायी पड़ जाय कि पदार्थ नहीं हैं आत्मा हैं, तो यात्रा तत्काल बदल जाती है। एक तो वह मानता ही था। वह एक क्या है, इसकी व्याख्या पर झगड़ा था कि वह पदार्थ है कि परमात्मा? लेकिन, द्वैतवादी की झक्झट और गहरी है। द्वैतवादी मानता है, दो हैं। पदार्थ भी है, परमात्मा भी है। इसे एक पर पहुँचना बहुत मुश्किल है। बूबर द्वैतवादी है। वह कहता है, मैं और तू। लेकिन, उसका द्वैतवाद बहुत मानवीय है। क्योंकि, 'वह' को मिटा देता है। तू का दर्जा देता है दूसरे को भी, आत्मा का दर्जा देता है। लेकिन, मैं और तू के बीच सबध ही हो सकते हैं, ऐस्य नहीं हो सकता। सम्बन्ध कितने ही गहरे हो, तब भी फासला बना रहता है। अगर मैं आपसे सबधित हूँ, कितना ही गहरा सबधित हूँ तब भी मेरा और आपका सबध मुझे और आपको दो मेरोड़ता है। सबध जोड़ता भी है, तोड़ता भी है। वह दोहरे काम करता है। जिससे हम जुड़ते हैं, उससे हम टूटे हुए भी होते हैं। जो हमारा सेतु है वही हमें दो हिस्सों में भी तोड़ देता है। जो सेतु जोड़ता है वह तोड़ता भी है। असल में जोड़नेवाली कोई चीज तोड़नेवाली भी होती है। होगी ही। अनिवार्य है। इसलिए, दो कभी एक नहीं हो पाते। कितने ही गहरे सम्बन्ध हो, सबध कभी एक नहीं हो पाते। इसलिए, गहरे सम्बन्ध भी दो बनाये रखता है। प्रेम का कितना ही गहरा सम्बन्ध हो, उसमें दो नहीं मिटते। और, जब तक दो नहीं मिटें, तब तक प्रेम तृप्त नहीं हो सकता। इसलिए, सब प्रेम अतृप्त होते हैं।

दो तरह की अतृप्तिया है प्रेम की—प्रेमी न मिले तो, और मिल जाय तो। प्रेमी न मिले तो यह अतृप्ति होती है कि जिससे मिलना चाहा था वह नहीं मिला, और प्रेमी मिल जाय तो यह अतृप्ति होती है कि जिससे मिलना चाहा था वह मिल तो गया, लेकिन मिलना कहा हो पा रहा है? फामला खड़ा ही है। पास आ गये हैं बहुत, लेकिन दूरी कहा मिटती है? इसलिए, कई बार जिसको अपना प्रेमी नहीं मिलता वह उतना दुखी नहीं होता जितना दुखी वह हो जाता है जिसे उसका प्रेमी मिल जाता है। क्योंकि, जिसको नहीं मिलता उसे एक आशा तो रहती है कि कभी मिल सकता है। इसकी वह आशा भी टूट जाती है कि अब क्या होगा। मिल तो गया है, लेकिन मिलना नहीं हो पा रहा है। असल में कोई मिलन नहीं बन सकता, क्योंकि मिलन में सबध ही है, और सम्बन्ध दो बनाये रखता है। इसलिए, मार्टिन बूबर, मैं और तू के गहरे सबधों की बात करता है, जो बड़ी मानवीय है। और इस जगत में, जो कि निरन्तर पदार्थवादी होता चला गया है, मार्टिन बूबर की बात भी

बड़ी धार्मिक मालूम होती है, लेकिन मुझे मालूम नहीं होती है। मैं तो कहूँगा, यह बात धार्मिक नहीं है, सिर्फ समझीता है। मैं और तू के बीच अनार एकता न हो सके तो कम-से-कम सबध ती हो। प्रेम और उपासना में यही फर्क है। प्रेम सम्बन्ध है, उपासना असम्बन्ध है। असबध का मतलब यह नहीं कि दो असबधित हो गये, असबध का मतलब यह कि दो के बीच से सम्बन्ध गिर गया। अब दो दो ही न रहे—वह एक हो गये।

यह जो एक हो जाना है, यह उपासना है। इसलिए, प्रेम का अगला कदम उपासना है। और, जिस दिन हम प्रेम करते हैं उस दिन हम तब तक पूरी तरह नहीं मिल सकते जब तक वह दिव्य न हो जाय, भगवत् न हो जाय। भगवान् न हो जाय। दो मनुष्यों का मिलन असभव है। उनका मनुष्य होना ही बाधा देता रहेगा। दो मनुष्य होना ही बाधा देता रहेगा। दो मनुष्य ज्यादा-से-ज्यादा सबधित हो सकते हैं। दो परमान्म नत्त्व ही मिल सकते हैं। क्योंकि, फिर तोड़ने वाला कोई भी नहीं रह जाता। जोड़ने वाला भी कोई नहीं रह जाता। इसलिए, मर्टिन बूबर ज्यादा-से-ज्यादा प्रेम पर पहुँच सकता है। कृष्ण उपासना पर पहुँचते हैं। उपासना बहुत ही और बात है। वहा दूमग भी मिट गया है, मैं भी मिट गया हूँ। और, हम दोनों के मिटने पर जो थोप रह जाता है 'दैट विहच रिमेन्स'—वह विस्तार जो बाकी रह गया, उसे हम क्या नाम दे? उसे हम पदार्थ कहे? उसे हम आत्मा कहे? उसे 'मैं' मैं कहूँ, उसे मैं 'तू' कहूँ? उसे हम कोई भी नाम दे वह गलत होगे। इसलिए, जो परम उपासक हैं वे चुप रह गये हैं, उन्होंने उमके लिए कोई नाम न दिया। उन्होंने कहा, वह अनाम है, 'नेमलेस' है। उन्होंने कहा, उमका कोई छोर नहीं, उसका कोई प्रारभ नहीं, उमका कोई अत नहीं। उन्होंने कहा, उसका कोई नाम नहीं, उसका कोई रूप नहीं। उन्होंने कहा, उसका कोई आकार नहीं। उन्होंने कहा, उसे कोई शब्द नहीं दिया जा सकता। उस सत्य के सबध में उन्होंने कोई धोषणा नहीं की, क्योंकि सभी धोषणाएँ द्वैत में गिर जानी हैं। मनुष्य के पास ऐसा कोई शब्द नहीं है जो द्वैत में न ले जाता हो। हमने शब्द का उपयोग किया नहीं कि हमने जगत् को दो में तोड़ा नहीं। इधर हमने शब्द का उपयोग किया, वहा चीजे दो में टूटी। ऐसा ही है जैसे हम किसी 'प्रिज्म' में से सूर्य की किरण को निकालें तो वह सात हिस्सों में टूट जाती है। ऐसे ही हमने भाषा से किसी सत्य को निकाला वह तत्काल दो में टूट जाता है। और दो में टूटते ही सत्य असत्य हो जाता है। इसलिए परम उपासक चुप रह गया—मौन रह गया। नाचा है, बासुरी बजायी है, गीत गाया है, इशारे किये हैं लेकिन धोषणा नहीं की। धोषणा शब्दों में होती

है। 'जेस्चर' से जाहिर किया है। नाच कर कहा है कि क्या है वह, हस कर कहा है कि क्या है वह, चुप रहकर कहा है कि क्या है वह? हाथ के इशारों से कहा है कि क्या है वह। लेकिन चुप रह गया है। पूरे व्यक्तित्व में कहा है कि क्या है वह।

इशारे, या फिर असंगत भाषा। कबीर की भाषा को लोगों ने 'सध्या भाषा' कहा है। सध्या भाषा का मतलब यह है कि न पक्का पता चले कि दिन है कि रात। बात ऐसी हो कि पक्का पता न चले कि हाँ है कि ना। पक्का पता न चले कि तुम स्वीकार करते हो कि अस्वीकार। तुम आस्तिक हो कि नास्तिक? तुम मानते हो कि नहीं मानते हो? जिस भाषा में कुछ पक्का पता न चले उस भाषा को सध्या भाषा कहा है। इसलिए, कबीर की भाषा का अभी भी अर्थ तय नहीं हो पाता। कृष्ण की भाषा का भी नहीं हो सकता। जिन्होने भी सत्य को कहा है उनकी भाषा 'सध्या भाषा' हो गयी। क्योंकि, वे दोनों को साथ-साथ कहेंगे, हाँ और ना को, या दोनों को साथ-साथ इन्कार कर देंगे। और, हमारी भाषा की कोई तर्क व्यवस्था में वे नहीं बैठ पायेंगे। इसलिए, मौन रह गये वे लोग, जिन्होने जाना कि मैं और तू दोनों खो जाते हैं।

प्रश्न आचार्यजी, सार्वं जो कहता है 'एडिजस्टेस प्रिसीड्स इसेस' आप—  
इसेस (सत्त्व) को एकिजस्टेम के पहले मानते हैं या कि दोनों का एक  
सबध आप करते हैं? इधर साधना शिविर में आने वाले लोग भी  
चक्कर में पड़ गये हैं कि वे अपने को साधक माने या उपासक?

उत्तर गडबड में डालना में ग काम है। साधना और उपासना के बीच का फासला गिर जाय तो समझे शिविर का मतलब ममझ में आ गया। मार्तं या और अस्तित्वादी ऐसा मानते हैं, 'एकिजस्टेस प्रिसीड्स इसेस'। बड़ी अजीब बात है। क्योंकि, दुनिया में ऐसा मुश्किल से कभी माना गया है। इससे उल्टी बात सदा मानी जाती रही है। दुनिया के जितने तत्त्व चिन्तन है, उन सबका मानना है 'इसेस प्रिसीड्स एविजस्टेम'। इसे ममझ ले। सार्वं के पहले या अस्तित्वादियों के पहले जितने भी तत्त्व चिन्तन है वे यह मानते हैं कि बीज वृक्ष के पहले हैं। स्वभावत, सार्वं कहता है, वृक्ष बीज के पहले हैं। मार्ग चिन्तन साधारणत कहेगा कि अस्तित्व के पहले आत्मा है। तभी तो अस्तित्व हो सकेगा? मार्तं कहता है, अस्तित्व पहले है, फिर आत्मा है। क्योंकि, अस्तित्व ही न होगा तो आत्मा कैसे गठित होगी? कृष्ण के सदर्भ में क्या मतलब होगा? असल में, आदमी के तत्त्व चिन्तन की मारी लडाइया बड़ी बचकानी है। वे बच्चों के छोटे से सवाल में समाहित हो जाती है कि मुर्गा पहले होती है कि अण्डा। बड़े-से-बड़ा तत्त्व चिन्तन,

बड़ी-से-बड़ी फिलोसिफी इस छोटे-से मुद्दे पर लडती रही है। जो जानते हैं, वे कहेंगे कि मुर्गी और अण्डा दो नहीं हैं इमलिंग कौन पहले है, इसे नासमझ पूछ सकता है। और, बड़ा नासमझ उत्तर दे सकता है। अगर हम टीक में समझे तो अण्डे का मतलब क्या होता है? अण्डे का मतलब कुल छिपी हुई मुर्गी होता है। मुर्गी का क्या मतलब होता है? प्रकट हुआ अण्डा होता है। अण्डा और मुर्गी दो चीजें अगर होतीं तो कौन पहले है, यह सार्थक था भवाल। अण्डा और मुर्गी एक ही चीज हैं या एक ही चीज को हमारे देखने के दो ढग हैं, या एक ही चीज के दो धारों में दिखायी पड़ने की स्थितिया है। लेकिन, दो चीजें नहीं हैं। अण्डा और मुर्गी एक चीज के दो 'फेज', एक ही चीज के प्रकट होने के दो ढग हैं। बीज और वृक्ष दो चीजें नहीं हैं। जन्म और मृत्यु दो चीजें नहीं हैं। एक ही चीज के होने के दो ढग हैं—यह हो सकता है कि हम पूरी तरह देख नहीं पाने इमलिंग हम दो में तोड़कर देखते हैं। दृष्टि हमारे पास छोटी है।

जैसे ममझ ले, एक बड़ा कमरा हो, एक बड़ा भवन हो, उमकी दीवार में एक छोटा सा छेद हो और उम छेद में मैं आख गडाये देखना हूँ। पुरा कमरा दिखायी नहीं पड़ता है। छेद से पहले मुझे एक कुर्मी दिखायी पड़ती है, फिर मैं आख को और घुमाता हूँ। मुझे दूसरी कुर्मी दिखायी पड़ती है, फिर मैं आख को और घुमाता हूँ मुझे तीसरी कुर्मी दिखायी पड़ती है। मैं पूछ सकता हूँ कि इन तीनों कुर्मियों में पहल कौन है? लेकिन, कमरे के भीतर जाकर मैं क्या कहगा, कौन पहले है मब 'साइमलटेनियम' है। तीनों कुर्मिया एक माथ हैं। लेकिन, जिस छेद से मैंने देखा वह पहले एक कुर्मी दिखायी पड़ी, फिर दूसरी कुर्मी दिखायी पड़ी, फिर तीसरी कुर्मी दिखायी पड़ी। पहले कौन था? कमरे के भीतर मैं जाकर पूछगा कि पहले कौन है? मैं कहूँगा कि तीनों कुर्मिया साथ हैं।

एक लेबोरेटरी है आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी में जिसने अभी इस सदी की श्रेष्ठतम खोजें की है। मैं मानता हूँ कि भविष्य के लिए सबसे बड़ा काम उस प्रयोगशाला में हो रहा है। एक बड़ी चमत्कारपूर्ण घटना जो घटी है, वह यह है कि एक कली का फोटोग्राफ लेते वक्त कली का फोटो नहीं प्राया, फूल का फोटो आ गया बहुत 'सेसिटिव फिल्म' में। अब तक जो भवसे ज्यादा 'सेमिटिव फिल्म' बन सकी है उम फिल्म के सामने कली रवने से गुलाब की, थी तो कली, फोटो आ गया गुलाब के फूल का। बड़ी कठिनाई हो गयी। जो कली अभी फूल हुई नहीं है उस फूल का फोटो कैसे आ गया? या तो किसी बहुत रहस्यपूर्ण जगत में वह फूल अभी भी हो चुकी है, जो हमें दिखायी नहीं पड़ रहा है। और कैमरा उसे देख पाया,

जो हम नहीं देख पाये। शायद कैमरा कमरे के भीतर जाकर देख पाया, जहा कली और फूल 'साइमलटेनियम' है। हमारी आख कमरे के बाहर से देखती थी जहा पहले कली है, फिर फूल है। लेकिन, हो सकता है शायद कोई भूल हो गयी हो। शायद इस कैमरे की फिल्म पहले ही 'एक्सपोज' हो गयी हो। तो प्रतीक्षा करनी पड़ी जब तक वह कली फूल न बन जाय। फिर, वह कली फूल बन गयी और तब बहुत मुश्किल हो गया। क्योंकि, जैसा वह फूल बनी उसका वैसा ही फोटो पहले आ गया कैमरे में। डीलाबार लेबोरेटरी के छोटे-भी कमरे में घटी यह घटना बड़ी मुश्किल में डाल गयी। इसका मतलब यह हुआ कि हमारे देखने के ठग की बजह से एक दफा हमें अण्डा दिखायी पड़ता है, फिर एक दफा मुर्गी दिखायी पड़ती है, लेकिन अगर कृष्ण जैसी आख हो देखने की हमारे पास तो क्या मुर्गी और अण्डा एक साथ नहीं दिखायी पड़ सकते? हमें बड़ी मुश्किल पड़ेगी, क्योंकि यह तकि के बाहर का मामला हो गया। लेकिन, विज्ञान बहुत से तर्कों के बाहर के मामलों को पिछले पचीस मालों में स्वीकार कर रहा है। एक और आपको उदाहरण दूँ। इसमें ख्याल आ सके ताकि ऐसा न लगे कि मैं कोई अवैज्ञानिक बात कह रहा हूँ।

आज से पचास माल पहले तक कभी कोई सोच भी नहीं सकता था लेकिन इधर पचास वर्षों में बड़ी मुश्किल पड़ी। जैसे ही हमने अणु का विस्फोट किया और इलेक्ट्रान्स की खोज की वैसे एक बड़ी कठिनाइ आयी जो मनुष्य जानि के सामने पहली दफा आयी। और, वह यह थी कि इलेक्ट्रान को हम क्या कहे? क्योंकि, कभी इलेक्ट्रान का फोटो ऐसा आता है जैसे 'इलेक्ट्रान वेव', लहर जैसा, और कभी ऐसे आता है जैसे 'पार्टिकल' है, कण है। और, कभी एक ही साथ दो कैमरे फोटो लेते हैं तो एक कैमरे में आता है वेव का और दूसरे में फोटो आता है कण का। कण और लहर में बड़ा फर्क है। इसको क्या कहे? इसको लहर कहे? अगर लहर कहने हैं तो यह कण नहीं हो सकता। अगर कण कहें तो यह लहर नहीं हो सकता। इसलिए, अप्रेजी में एक नया शब्द ईजाद हुआ है जो अभी दुनिया की दूसरी भाषा में नहीं हुआ। क्योंकि, दुनिया की दूसरी भाषाएँ उस गहराई पर नहीं पहुँची हैं, वह है, 'क्वाटा'। क्वाटा का मतलब है 'बोथ साइमलटेनियम, दी वेव एण्ड पार्टिकल'। मगर क्वाटा बड़ा 'मिस्टिरियस' मामला है। क्वाटा का मतलब होना है, दोनों एक साथ, लहर भी और कण भी। मुर्गी भी और अण्डा भी। तो सार्व से मैं राजी नहीं हूँ न सावं के विरोधियों से राजी हूँ। जो कहते हैं कि अस्तित्व पहले, फिर आत्मा। जो कहते हैं आत्मा पहले, फिर अस्तित्व। उनसे से किसी से मैं राजी नहीं हूँ। मेरा मानना है, अस्तित्व और आत्मा एक ही सत्य को देखने के दो ढग

है। हमारी कमजोर नजर की बजह से हम दो मेरे तोड़कर बेखते हैं। अस्तित्व ही आत्मा है। 'इसेस इज एकिजस्टेस', 'एकिजस्टेस इज इसेस'। अस्तित्व आत्मा है, आत्मा अस्तित्व है ही। ये दो चीजें नहीं हैं। इसलिए, जब हम कहते हैं कि आत्मा का अस्तित्व है तो हम गलत भाषा का उपयोग करते हैं। जब हम कहते हैं, परमात्मा का अस्तित्व है, तब भी हम गलत भाषा का उपयोग करते हैं। क्योंकि, परमात्मा का अस्तित्व है, इसका मतलब यह हुआ कि परमात्मा कुछ है और उसका अस्तित्व कुछ है। नहीं, अगर हम ठीक से समझे तो हम कहेंगे, परमात्मा अस्तित्व है। परमात्मा का अस्तित्व है, गलत है। फूल का अस्तित्व है, क्योंकि कल फूल का अस्तित्व नहीं भी हो जायेगा। लेकिन, परमात्मा का अस्तित्व कब नहीं होगा? जो कभी अनस्तित्व में नहीं जा सकता उसका अस्तित्व नहीं कहा जा सकता। हम कह सकते हैं कि मेरा अस्तित्व है। क्योंकि, कल मेरा अस्तित्व नहीं होगा। लेकिन, परमात्मा का अस्तित्व है, यह भाषा की भूल है। 'गाड एकिजस्टेस' यह गलत बात है। परमात्मा अस्तित्व है, 'गाड इज एकिजस्टेस' यहीं ठीक है। परमात्मा का अर्थ है होना। परमात्मा का अर्थ है अस्तित्व। 'है' शब्द भी पुनरुक्ति है। इतना भी हम कहे कि ईश्वर है तो पुनरुक्ति है। क्योंकि, जो है, उसका नाम ईश्वर है। इसलिए, कठिनाई है बड़ी, भाषा की। और जैसे उसमें भीतर प्रवेश करते हैं तो जो जानता है वह कहता है छोड़ो झक्षण, चुप रह जाओ। कौन कहे कि ईश्वर है? किसको कहा कि ईश्वर है? जिसको कहो वह 'अव्जेक्ट' बन जाय। चुप ही रह जाओ।

एक जेन फकीर के पास कोई गया। वह उससे पूछता है, ईश्वर के सम्बन्ध में कुछ कहो। तो वह हसता है, डोलता है। फिर वह पूछता है, कुछ कहो भी, हसने-डोलने से क्या होगा। वह और जोर से नाचता है। वह कहता है, पागल तो नहीं हो? हम कहते हैं, कुछ कहो। वह फकीर कहता है, मैं कहता हूँ, लेकिन तुम सुनते नहीं। उस आदमी ने कहा, गजब की बातों कर रहे हों। खुद पागल हो, मुझको भी पागल बनाते हो। एक शब्द तुम बोले नहीं। उम फकीर ने कहा, अगर मैं बोलूँगा तो गल्ती हो जायेगी। अगर नहीं बोलने से नहीं समझ सकते हों तो जाओ, वहा समझो जहा बोलकर समझाया जा रहा है। लेकिन, बोलकर समझाने से परम तत्व में गलती हो ही जायेगी। इसलिए, हम बोल सकते हैं आखिरी क्षण तक। लेकिन, बिल्कुल आखिरी क्षण पर बोलना रुक जायेगा, उसके बाद चुप रह जाना पड़ेगा।

बिडिगस्टीन ने अपने सारे जीवन के बाद एक छोटा-सा बाक्य लिखा है-

और वह वाक्य बहुत अद्भुत है। उसने लिखा है-'दैट व्हिच कैनाट बी सेड, मस्ट नाट बी सेड'। जो नहीं कहा जा सकता उसे कहना ही नहीं चाहिए। लेकिन, इतना तो कहना ही पड़ता है। विडिगस्टीन मर गया नहीं तो उससे मैं कहता, इतना तो कहना ही पड़ता है कि जो नहीं कहा जा सकता उसे नहीं कहना चाहिए। इससे क्या फर्क पड़ता है इतना कहकर, कुछ तो कहना ही पड़ता है। हा, उसने पहली किताब में कहा है कि जो भी कहा जायेगा वह भाषा में ही कहा जायगा। यह थोड़ी दूर तक ठीक है। क्योंकि, अगर 'जेस्चर' को भी हम कहना समझें तो वह भी एक भाषा है। एक गूगा हाथ उठाकर कह देता है पानी पीना है, तो वह भी भाषा है। गूगे की भाषा है। इसलिए, हम तो कहते ही रहे हैं कि परमात्मा गूगे का गुड़ है, लेकिन उसका मतलब यही है कि गूगे की भाषा में कहना पड़ेगा। लेकिन, कहेंगे हम जो भी किसी ढग से, नाचकर कहे, भौंन में कहे, तो भी हम कह रहे हैं। और, इसलिए जो है, वह हमारे सब कहने के बाद छूट जायेगा। इसलिए, लाओत्से ने विडिगस्टीन से बहुत गहरी बात कही है। लाओत्से ने कहा कि सत्य कहा कि अमर्त्य हो जाता है। बस इतना ही कहा जा सकता है। इसलिए, जो जानते हैं वे चुप रह जाते हैं।

प्रश्न आचार्यश्री, आप बहुधा कहते हैं कि 'मैं' जब पूर्ण होता है तब वह सर्व, अर्थात् 'न मैं' हो जाता है। उपर्युक्त कथन का अभी आप संख्यान कर रहे हैं। इसमें लगता है कि केवल शब्दों की 'इम्फेसिस' बदल रहे हैं आप। पूर्ण मैं और 'न मैं' क्या एक नहीं हैं?

उत्तर कोई अन्तर नहीं है। क्योंकि, पूर्ण मैं का मतलब ही इतना होता है कि तू नहीं बचा अब बाहर। सब तू, मैं में समा गये। और, जब सब तू, मैं में समा जायेगे तो इसको मैं कहने का कोई अर्थ नहीं रह जाता। इससे उल्टा भी कह सकते हैं कि हमारा मैं, तू में समा गया। लेकिन, जब मेरा मैं तू में समा गया तब तू को तू कहने का कोई अर्थ नहीं रह जाता। इसलिए, 'मैं' चाहे पूर्ण कहे हम, चाहे 'मैं' शून्य कहे हम, ये दोनों एक ही बात के कहने के दो ढग हैं। मैं पूर्ण हो जाय तो शून्य हो जाता है, मैं शून्य हो जाय तो पूर्ण हो जाता है। कहा से हम कहते हैं इससे बहुत फर्क नहीं पड़ता। परम सत्य को अगर हम हा कहे तो ठीक है, ना कहे तो भी ठीक है। क्योंकि, परम सत्य के सम्बन्ध में हाँ के भीतर ना सम्मिलित होगा और ना के भीतर हा सम्मिलित होगा। इसलिए, परम सत्य के सम्बन्ध में हम कुछ न भी कहे तो भी ठीक है और बहुत कुछ कहे, कहते रहे अनन्तकाल तक, तो पूरा नहीं होता। और, चुप रह जाय कुछ भी न कहे तो भी पूरा हो जाता है। सत्य को, जो

है, उसे जब भी हम किसी दृष्टि से देखते हैं तो कठिनाई में पड़ते हैं। कोई जगह से देखते हैं, कोई धारणा से देखते हैं, कोई भाव से देखते हैं, कोई विचार से देखते हैं, जब तक हमारी कोई धारणा है, कोई दृष्टि है, तब तक जिस सत्य को हम देखेंगे वह अपूर्ण होगा, अवूरा होगा, खण्ड होगा, अश होगा। इतना भी हम जाने कि वह अश है, खण्ड है, तो भी ठीक है। लेकिन, हर दृष्टि धोषणा करती है कि मैं पूर्ण हूँ। और, जब दृष्टि धोषणा करती है कि मैं पूर्ण हूँ, और जब दृष्टि कहती है कि मैं दृष्टि हूँ, तब कोई खतरा नहीं। दर्शन तो उसी दिन उपलब्ध होंगा जिस दिन कोई दृष्टि न होगी। आप किसी दृष्टि से न देख रहे होंगे, आप किसी जगह से न देख रहे होंगे, आप सब जगह से देख रहे होंगे, एक साथ सब जगह हो गये होंगे। उस दिन दर्शन उपलब्ध होगा। उस दर्शन को कहने के दो ढग हो सकते हैं। निषेध के या विधेय के। या तो हम निषेध का उपयोग करे, जैसा बुद्ध ने उपयोग किया और कहा कि निर्वाण है, शून्य है। या जैसा शकर ने उपयोग किया, कहा कि ब्रह्म है, पूर्ण है। और, मजा यह है कि शकर और बुद्ध दोनों विपरीत मालूम पड़ते हैं और दोनों बिल्कुल एक बात कहे चले जाने हैं। सिर्फ उनकी भाषा का मोड भिन्न है। शकर विधायक शब्द को पसन्द करते हैं। वे कहते हैं, ब्रह्म है। बुद्ध नकारात्मक शब्द को पसन्द करते हैं, वह कहते हैं शून्य है। अगर मुझसे पूछे कि मैं क्या कहूँ, तो मैं कहूँगा कि शून्य का एक नाम ब्रह्म है और ब्रह्म का एक नाम शून्य है। और, जहा बुद्ध और शकर दोनों मिल जाते हैं वहा भाषा खत्म हो जाती है। वहा से असली बात शुरू होती है।

प्रश्न आचार्यजी, आपने यह सो स्वीकारा है कि पूर्ण 'मैं' और 'न मैं' में कोई फर्क नहीं है, लेकिन इसके पहले आप अपनी चर्चा में यह कह चुके हैं कि साधना पूर्ण मैं की दिशा में ले जाती है और उपासना 'न मैं' की दिशा में ले जाती है। आपने साधना और उपासना में बहुत फर्क किया, लेकिन बाद में आप दोनों को एक मान रहे हैं?

उत्तर नहीं मैंने यह नहीं कहा कि साधना पूर्ण 'मैं' की दिशा में ले जाती है। मैंने कहा साधना मैं की दिशा में ले जाती है। अगर साधना पूर्ण मैं की दिशा में ले जाय तो फिर उपासना में कोई फर्क नहीं है। लेकिन, साधना नहीं ले जा पाती। और, इसलिए साधक को एक दिन मैं को भी खोना पड़ता है। वह मैं की ही दिशा में ले जाती है, क्योंकि पूर्ण मैं तभी हो सकता है जब मैं खो जाय। इसलिए, साधक को एक छलांग और लगानी पड़ेगी अत मे। एक साधना करके वह मैं को पायेगा, आत्मा को पायेगा। उसे अन्त में आत्मा को भी खोने की छलांग लगानी

पड़ेगी। और, अगर वह नहीं लगाता तो एक कदम पहले रुका रह जायेगा। उपासक जो छलांग पहले ही दिन लगा लेता है वह साधक को अतिम दिन लगानी पड़ेगी। वह मैंने पीछे बात की है। साधक, साधना, प्रयास एक जगह ले जायेगे जहाँ मैं बच जाऊँगा। सब खो जायेगा। फिर, इस मैं को भी खोना पड़ेगा। उपासक पहले ही क्षण से मैं को खोने की बात करता है इसलिए अत मे उसके पास खोने के लिए कुछ नहीं बचता। जो काम साधक को अन्त मे करना पड़ता है वह उपासक को प्रथम करना पड़ता है। जिस बोझ को फेक ही देना हो और पहाड़ के अतिम शिखर पर जहा जाकर सब बोझ छोड़ देना हो, उसको इतनी पहाड़ी तक कन्धे पर ढोने का भी प्रयोजन नहीं है। उपासक यह कहता है कि तुम पहाड़ के नीचे ही कन्धे का बोझ रख दो। क्योंकि, आखिरी शिखर पर पहुँचने के पहले यह बोझ छोड़ना पड़ेगा। उस ऊचाई पर यह बोझ नहीं ले जाया जा सकता, लेकिन, हम कहते हैं, नहीं जब तक ले जाया जा सकता है तब तक हम ले चले। जब आयेगा मौका तब देख लेंगे तो, हम पूरा पहाड़ बोझ ढोते हैं। आखिरी शिखर के पहले तो छोड़ना पड़ता है। उपासक नीचे ही छोड़ आता है। वह इतने ढोने से बच जाता है, इतना फर्क है। आखिरी शि खर पर फर्क नहीं रह जायेगा। लेकिन जब आखिरी शिखर पर इतनी दूर तक सीधा गया बोझ छोड़ने का क्षण आयेगा तब उपासक मजे से बढ़ता रहेगा और साधक अड़चन मे पड़ेगा। क्योंकि जिसे इतनी दूर तक सीधा उसके साथ राग और मोह तो बन ही जाता है। मन करेगा कि इतनी पहाड़ चढ़कर आये, इतनी दूर तक सीधा, अब अन्त मे छोड़े ?।

वह रोयेगा कि इसको अगर ले जा सके तो अच्छा। या सोचेगा कि यही टिक जाय तो क्या हर्ज है, अपने बोझ के साथ ही रुक जाय। यह समस्या उसके मामने खड़ी होगी। यह उपासक के सामने पहले दिन ही खड़ी होगी नीचे ही पहाड़ के। उसकी भी कठिनाई तो है। कठिनाई यह है कि साधक बोझ को ले जाता दिखायी पड़ेगा। और उसको लगेगा कि कुछ लोग तो लिये चले जा रहे हैं और मुझको यही छोड़ना पड़ रहा है। कहीं ऐसा न हो कि ये शिखर पर साथ लिए पहुँच जाय और मैं गरीब यही छोड़ जाऊँ। और आखिर मे पता चले कि यह तो पहुँच गये बोझ के साथ और मैं खाली हाथ पहुँच गया। इसलिए, साधक की कठिनाई अन्त मे है, उपासक की कठिनाई प्रथम है। टाइप है दुनिया मे। किसी को अच्छा लग सकता है एक, किसी को अच्छा लग सकता है दूसरा। लेकिन, कृष्ण को समझते बनत मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि कृष्ण का जगत उपासक का है।

**प्रश्न** आचार्यजी, आप सात आठ साल से धर्मचक्र प्रबल्तन कर रहे हैं। उसका केन्द्रीय तत्त्व ध्यान और साधना ही है, तो कृष्णा बतायें कि ध्यान और उपासना में क्या फर्क है और आपके धर्मचक्र प्रबल्तन का केन्द्रीय भूख ध्यान और साधना है, कि उपासना है?

उत्तर मेरे लिए कोई भी फर्क नहीं है। मेरे लिए शब्दों से कोई भी फर्क नहीं पड़ता। सत्य का सबाल है। मैं ध्यान में भी उसी सत्य को कहता हूँ। उसी सत्य को प्रार्थना में भी कह देता हूँ। उसी सत्य को साधना में भी कहता हूँ, उसी सत्य को उपासना में भी कह देता हूँ। मेरे लिए फर्क नहीं पड़ता। लेकिन, कृष्ण के सदर्भ में आप पूछते हैं तब फर्क है। महावीर के सदर्भ में पूछते होंगे तो फर्क है। महावीर के लिए भोग शब्द उपासना नहीं है। महावीर उपासना शब्द के लिए राजी नहीं होगे। महावीर साधना के लिए राजी होगे, बुद्ध साधना के लिए राजी होगे। उनका जोर साधना पर होगा। क्राइस्ट उपासना के लिए राजी होगे, कृष्ण उपासना के लिए राजी होगे, मुहम्मद उपासना के लिए राजी होगे। मेरे लिए कोई कठिनाई नहीं है। इसलिए, बहुत बार ऐसा लगेगा कि कल जो मैंने कहा, आज उससे उल्टा कह रहा हूँ। मैं बिल्कुल मजे से कह सकता हूँ। मुझे कोई अन्तर नहीं पड़ता। अभी कृष्ण पर बोल रहा हूँ इसलिए उपासना की बात कर रहा हूँ। पिछले वर्ष महावीर पर बोल रहा था तो माधवना की बात कर रहा था। अगले वर्ष क्राइस्ट पर बोलूँगा तो कुछ और बात करूँगा। मेरे लिए जो जैसा सत्य दिखायी पड़ता है उस सत्य के दिखायी पड़ने में अब मेरे लिए कोई फर्क नहीं रह गया है। लेकिन, जब आप कृष्ण को समझने जाते हैं तब मैं कृष्ण पर साधना शब्द रखूँ तो कृष्ण के साथ अन्यथा होगा। वह कृष्ण का शब्द नहीं है। जैसे, महावीर के ऊपर मैं नाचने को थोप दूँ, मेरे लिए कोई फर्क नहीं है। महावीर शान्त खड़े हैं इस पहाड़ की कन्दरा में। वे जिस आनन्द में हैं उस आनन्द में, और कृष्ण एक वृक्ष के नीचे बासुरी बजा रहे हैं उस आनन्द में, मेरे लिए कोई फर्क नहीं है। लेकिन, अगर कोई कहे कि महावीर और कृष्ण के लिए कोई फर्क नहीं है तो मैं राजी नहीं होऊँगा। महावीर नाचने को राजी न होगे। कृष्ण महावीर की तरह आख बन्द करके वृक्ष के नीचे नग्न खड़े होने को राजी न होगे। मेरे लिए दिक्कत नहीं है। वृक्ष के नीचे कृष्ण ने सदा नाच किया है, ध्यान कभी नहीं किया। महावीर कभी नाचे हैं साधना के पहले, वह नहीं सभव है। जब मैं कृष्ण की बात कर रहा हूँ, उपासना शब्द पर जोर दे रहा हूँ। मेरे लिए तो साधना भी एक टाइप के लोगों के लिए जरूरी है। उपासना भी एक टाइप के लोगों के लिए जरूरी है। और, मैं दोनों में सत्य को

देख रहा हूँ और दोनों का सत्य मैंने आपसे कहा कि दोनों की अडचन है, दोनों की सुविधा है। लेकिन, फिर भी दोनों को ठीक से साफ-साफ समझ लेना आपके लिए उपयोगी है। मेरे लिए जरा भी उपयोगी नहीं है दोनों में फासला करना। आपके लिए तो निर्णय करना पड़ेगा कि आप साधक की यात्रा पर जाते हैं कि उपासक की यात्रा पर जाते हैं। मेरे लिए कोई यात्रा नहीं है। मुझे किसी यात्रा पर जाना नहीं है। मुझे कोई उपासक समझे कि साधक समझे, कि दोनों न समझे, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। आपको तो तथ करना होगा कि आप किस ढंग के आदमी हैं। आपके लिए क्या निकट होगा। आप उपासना के निकट से पहुँच पायेगे कि साधना के निकट से पहुँच पायेगे? जिन्हे पहुँचना है उन्हें तथ करना पड़ेगा, जिन्हे जाना है उन्हें तथ करना पड़ेगा। जो जहा खड़े हैं, वही पहुँचे हुए समझ रहे हैं, उनके लिए कोई सवाल नहीं है। अगर किसी दिन आपको यह समझ में आ जाय कि न कही जाना है, न कही पहुँचना है, तब न उपासना शब्द सार्थक है, न साधना शब्द सार्थक है। तब आप दोनों पर हस मकते हैं।

एक जेन फकीर एक गुफा के बाहर सोया रहता है और जिस गुफा के बाहर वह सोता है वह तीर्थयात्रियों का मार्ग है। जो भी वहाँ से गुजरता है, उस फकीर को वहा सोया देखकर कहता है, कि अरे, तुम यहा क्यों पड़े हो? तीर्थयात्रा पर नहीं चलना है? तो, वह फकीर कहता है कि तुम जहा जा रहे हो, हम वहा पहुँच गये हैं। फिर लौटता हुआ कोई उससे पूछता है, अरे तुम यहीं पड़े हुए हो, ऊपर तक नहीं गये? वह कहता है, तुम जहा से आ रहे हो, हम वहीं रहते हैं। और वह वहीं पड़ा रहता है। वह न कभी तीर्थ करने गया, न कभी जायेगा और यात्री अपना सिर ठोककर आगे बढ़ जाते हैं कि पागल हैं। वह कहता है, तुम जहा रहे हो वह वहा है ही। तुम जहा से आ रहे हो हम वहा से आते हैं। ऐसे आदमी को न साधना का अर्थ है, न उपासना का अर्थ है। मैं कभी साधना की बात करता हूँ, कभी उपासना की, कभी दोनों के पागलपन की भी बात करूँगा। लेकिन, अगर आप समझेंगे तो विरोधाभास दिखायी नहीं पड़ेगा, विरोधाभास है नहीं।

प्रश्न एक जगह और विरोधाभास लग गया। आपने कहा कि कृष्ण जन्म से ही सिद्ध है और महावीर साधक है। जब कि कश्मीर शिविर में महावीर के बारे में आपने कहा कि उन्होंने पिछले जन्म में ही अपनी सारी साधना पूरी कर ली थी। इस जन्म में उन्हें कुछ भी साधना नहीं करनी थी, केवल अभिव्यक्ति करनी थी। तब महावीर भी जन्म से सिद्ध हुए, कृष्ण ही जैसे।

उत्तर नहीं, ऐसा मैंने नहीं कहा। मैंने इतना ही कहा है कि महावीर जो भी हुए हैं वे साधन होकर हुए हैं। चाहे उन्होंने पिछले जन्म में साधना की हो या उसके पिछले जन्म में साधना की हो। इससे कुछ लेना-देना नहीं है। वह जो भी हुए हैं, साधना से हुए हैं। उनकी सिद्धावस्था के पहले साधना की यात्रा है। कृष्ण ने किसी जन्म में कभी भी साधना नहीं की।

**प्रश्न** . फिर कैसे पूर्ण हो गये ?

उत्तर हमे कठिनाई लगती है कि सीधे पूर्ण हो गये। हमे लगता है कि आडे तिरछे चलकर ही पूर्ण हो सकते हैं। वही फकीर का सवाल। फकीर यही तो कह रहा है कि आने-जाने वाले लोग कहेंगे कि अच्छा तुम यही पड़े-पड़े पहुच गये। हम तीर्थ तक चढ़कर पहुचे। ऐसा हो नहीं सकता। वह फकीर कहता है कि अगर तुम यही पड़े-पड़े नहीं पहुच सकते तो ऊपर चढ़कर भी कैसे पहुच जाओगे? जहा पहुचना है वह कोई ऐसी चीज नहीं है जिसके लिए यात्रा जरूरी हो। लेकिन, टाइप है कुछ जो बिना यात्रा किये नहीं पहुच सकते। जिन्हे अपने घर भी आना हो तो दम-पाच दूसरों के घर के दरवाजे खटखटाये बिना नहीं आते। अपने घर का भी जिन्हे पता लगाना हो तो दूसरे से पूछकर ही आ सकते हैं। यह टाइप का फर्क है। महावीर और कृष्ण के टाइप का फर्क है। महावीर बिना साधना किये पहुचेंगे ही नहीं। असल में महावीर राजी भी न होंगे। इसे समझ लेना चाहिए।

अगर महावीर को कोई कहे कि बिना साधना के यह रखा-रखाया मिलता है, तो महावीर कहेंगे क्षमा करे, ऐसा हम न लेंगे। क्योंकि, जिसको अर्जित नहीं किया उसको ले लेना चोरी है। हम न लेंगे। अगर महावीर को मोक्ष कोई दान में मिलता हो, ऐसा रास्ते के किनारे पड़ा हुआ मिलता हो, तो महावीर को जैमा मैं समझता हूँ, वह उसे ठुकराकर आगे चले जायेंगे। वह कहेंगे, ऐसा हम न लेंगे। हम तो पायेंगे, अर्जित करेंगे। खोजेंगे। जिस दिन मिलेगा उस दिन लेंगे। अधिकारी बनेंगे तो लेंगे। कृष्ण कहेंगे कि जो पाने-खोजने से मिलता हो उसको पाकर भी क्या करेंगे, क्योंकि जो पाने से मिल सकता है वह खो भी सकता है। हम तो उसी को पायेंगे जो पाने वाले से नहीं मिलता, जो है ही। यह टाइप का फर्क है। यह व्यक्तित्व भेद है। इसमें मैं ऊँचौनीचे की बात नहीं कर रहा हूँ। यह व्यक्तियों के भेद है।

कृष्ण और महावीर का दो तरह के बडे गहरे व्यक्तियों का भेद है। महावीर के लिए वही सार्थक है जो खोज से उघाड़ा जाता है, श्रम से पाया जाता है। इसलिए, महावीर का नाम ही श्रमण हो गया। महावीर की पूरी परम्परा

का नाम श्रमण परम्परा हो गया। महावीर कहते हैं, जो भी मिलेगा वह श्रम से मिलेगा। श्रम के बिना हुआ सब चोरी है, चाहे परमात्मा भी मिल जाय बिना श्रम के तो वह कुछ न कुछ जालसाजी है। कहीं न कहीं कोई छल कपट है। महावीर कहते हैं, हमारा स्वाभिमान नहीं कहता कि बिना श्रम के हम कुछ पा ले। हम तो मेहनत करेगे और जितना मिल जायेगा उतने के लिए राजी होगे। इसलिए महावीर की भाषा में, महावीर के भाषा शास्त्र में प्रसाद और 'ग्रेस' जैसा कोई शब्द नहीं है। प्रयास, श्रम, पुरुषार्थ, साधना, सघर्ष जैसे शब्द हैं।

हिन्दुस्तान में दो परम्पराएँ हैं। श्रमण और ब्राह्मण। ब्राह्मण परम्परा का अर्थ है जो मानते हैं ब्रह्म हम है ही। होना नहीं है। श्रमण परम्परा का अर्थ है कि ब्रह्म हमे होना है, हम है नहीं। दो तरह के ही लोग हैं। और मैं मानता हूँ कि ब्राह्मण तरह के लोग बड़े न्यून हैं। ब्राह्मण भी नहीं है। जिनको हम ब्राह्मण समझते हैं वे भी ब्राह्मण नहीं हैं। क्योंकि, इस बात के लिए हिम्मत जुटाना कि हम बिना पाये पा लेगे, हम बिना अधिकारी बने अधिकारी हैं, हम बिना गये पहुँचे हैं, बड़ा मुश्किल है। माध्यरण मन कहता है पाना ही होगा। श्रम करना ही होगा। कुछ किये बिना कैसे मिलेगा? हमारा सब मणित कहता है, माध्यन के बिना साध्य नहीं, श्रम के बिना उपलब्ध नहीं, प्रयास के बिना पहुँचना कैसा? इसलिए, ब्राह्मण तो कभी-कभी दो, चार, दम सदियों में बस एकाध आदमी होता है। ब्राकी सब श्रमण हैं। चाहे वह अपने को जैन और श्रमण मानते हों कि न मानते हा। इसलिए, बुद्ध और महावीर के बड़े भेद होने हुए भी दोनों की परम्परा को श्रमण नाम मिल गया है। बुद्ध का भी आग्रह है कि बिना पाये नहीं मिलेगा। खोजना पड़ेगा। कृष्ण ब्राह्मण है। वे कहते हैं, ब्रह्म हम है ही। और, मैं किसी एक को गलत और दूसरे को मर्ही नहीं कह रहा हूँ यह ध्यान मेरखना। क्याकि, मुझे दोनों ही ठीक दिखायी पड़ने हैं। इसमें बहुत कठिनाई नहीं है। ये दो तरह के सोचने के ढग, दो तरह के व्यक्तित्व, दो तरह के चित्त हैं, उनकी यात्रा है।

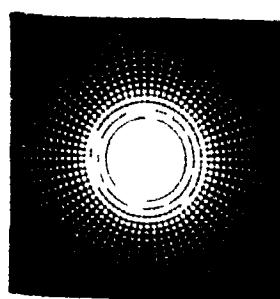
**प्रश्न** एक अतिम बात पूछूँ, कृष्ण अपने पिछले जन्मो में कभी-न-कभी अपूर्ण और अज्ञानी रहे ही होंगे।

उत्तर अपूर्ण और अज्ञानी तो महावीर भी किसी जन्म में नहीं रहे हैं। मिफ पता उनको इस जन्म में चला और कृष्ण को सदा से पता है। अपूर्ण और अज्ञानी तो आप भी नहीं हैं, अपूर्ण और अज्ञानी तो कोई भी नहीं है, बस पता चलने की देर है। जो फर्क है वह अपूर्ण होने का नहीं है, वह बोध का है। यहा सब आदमी सोये हैं, सूरज निकला हुआ है और एक आदमी जागा हुआ है। जो आदमी सोये हुए है

और जो जागा हुआ है इन दोनों के लिए सूरज निकला हुआ है। सूरज के निकलने में कोई फर्क नहीं। एक आदमी जागा हुआ है, उसे पता है कि सूरज निकला है बाकी सोये हैं, उन्हे पता नहीं कि सूरज निकला हुआ है। जब वे जागेंगे, वे कहेंगे, और अब सूरज निकला। नहीं, उचित यही होगा कि वे कहे कि सूरज तो निकला था, हम अब जाएँ। अपूर्ण अज्ञानी न महावीर है, नूँ कृष्ण है, न आप हैं। लेकिन, कृष्ण अपने को किसी भी तल पर कभी भी ऐसा नहीं जानते। इसलिए कोई चेष्टा नहीं करते। किसी तल पर महावीर चेष्टा करके जानते हैं कि अपूर्ण अज्ञानी नहीं है, पूर्ण है और ज्ञानी है। जिस दिन वे जानते हैं उस दिन यह भी जान लिया जाता है कि यह होना उनका सदा से था। सिर्फ पता अब चला—और क्या फर्क पड़ता है कि किसी को दो जन्म पहले चला और दो जन्म बाद चला। हमको बहुत दिक्कत मालूम होती है। किसी को दम जन्म पहले चला, किसी को दस जन्म बाद चला, क्योंकि हम टाइम में जीते हैं। हमारा मारा सवाल है कि कौन पहले, कौन पीछे है। लेकिन, जगत में समय का न कोई प्रारम्भ है, न कोई अन्त है। इसमें आगे और पीछे का क्या मतलब है? आगे और पीछे का तभी तक मतलब है जब तक अन्त और आदि को हम मानते हैं। अगर समय का कोई प्रारम्भ ही नहीं है तो मुझसे दो दिन पहले जिसे ज्ञान मिला, उसे मुझमें पहले मिला? और अगर समय का कोई अन्त ही नहीं है तो मुझे दो दिन बाद मिला, मुझे उससे बाद में मिला? नहीं, ये बाद और पहले तभी सार्थक हो सकते हैं, जब आगे पीछे खम्भे लगे हो कि वहा समय खत्म हो जाता है, यहा समय शुरू होता है। अगर कभी समय शुरू होता हो तो उसको मुझसे दो दिन पहले मिल गया, उस खम्भे से नाप की जा सकती है। लेकिन, पीछे कोई प्रारम्भ न हो और आगे कोई अन्त न हो तो कौन पहले पहुँचा और कौन पीछे पहुँचा? जो भी पहुँचते हैं, वे समयातीत, कालातीत, 'बियोन्ड टाइम' पहुँचते हैं।

मैं एक अजीब सी बात आपसे कहूँ कि जिस क्षण महावीर पहुँचते हैं, उसी क्षण कृष्ण पहुँचते हैं। मगर, यह बड़ा मुश्किल होगा। इसे थोड़ा समय को समझ कर फिर समझना पड़ेगा। जिस क्षण कोई भी पहुँचा है इस जगत में उसी क्षण मध्य पहुँचते हैं। इसे ऐसा समझें—एक बड़ा बर्तुल हम बनायें, एक सकिल हम बनायें। सकिल के बीच में एक सेटर हो और सकिल की परिधि से हम कई रेखाएं सेटर की तरफ सीधे। परिधि पर रेखाओं में फासला होगा। दो रेखाओं में दूरी होगी। फिर दोनों रेखाएं केन्द्र की तरफ चलती हैं तो दूरी कम हो जाती है। फिर जब वे केन्द्र पर पहुँचती हैं तो दूरी अन्त दो जानी है। परिधि पर दूरी जोनी है केन्द्र

पर दूरी समाप्त हो जाती है। टाइम की जो सरकमफेस है, समय की जो परिधि है उस पर से महावीर एक दिन छलाग लगाकर केन्द्र पर पहुंचते हैं। समय की परिधि पर कृष्ण और महावीर के बीच फासला है। मेरे और कृष्ण के बीच फासला है, आपके और मेरे बीच फासला है। लेकिन, जिस दिन केन्द्र पर पहुंचते हैं उस दिन कोई फासला नहीं रह जाता। समय के केन्द्र पर सब फासले समाप्त हो जाते हैं। लेकिन, यह जरा कठिन है। यह स्थाल में लेना कठिन है, क्योंकि हम परिधि पर जीते हैं और हमें सेन्टर का कोई पता नहीं है। इसे ऐसा भी समझ ले कि एक बैलगाड़ी का चाक चलता है, तो चाक चलता है लेकिन कील खड़ी रहती है। और बड़े मजे की बात तो यह है कि खड़ी हुई कील पर ही चाक चलता है। चलता उसके आधार पर है जो नहीं चलती है। चाक कई भील चल जायेगा और चाक कहेगा कि दस भील की यात्रा की, और कील से पूछेंगे कि कील तूने कितनी यात्रा की? कील कहेगी मैं वही हूँ। लेकिन, बड़े मजे की बात है, जिस पर चाक दस भील चल गया वह कील जरा भी नहीं चली। तो चाक कैसे चला होगा जब कील नहीं चली जरा भी? कील तो यही कहेगी कि मैं वही हूँ। मैं बिल्कुल चली ही नहीं। और चाक कहेगा, मैं दस भील चला। और कील और चाक एक ही साथ जुड़े हैं। यह दोनों बातें एक साथ कैसे हो सकती हैं? लेकिन, एक साथ हो जाती है, हम रोज गाड़ी में देखते हैं। यह इसलिए हो जाती है कि कील सेटर पर है और चाक परिधि पर है। परिधि पर इतिहास है, समय है और कील पर सत्य है, ब्रह्म है। महावीर और कृष्ण एक ही क्षण वहा पहुंचते हैं और जब वे वहा पहुंचते हैं तब ऐसा पता नहीं चलता कि कौन पहले पहुंचा और कौन पीछे पहुंचा। लेकिन, जहा परिधि पर जीने वाले लोग हैं, चाक पर जीने वाले लोग हैं वहा कोई कभी पहुंचता है, कोई कभी पहुंचता है। ये सब समय के फासले हैं। समय के फासले वहा नहीं हैं, क्योंकि समय के बाहर समय का कोई फासला नहीं है।



## पर्व : चारह

हुण से आत्म साक्षात्कार  
सकीर्तन का उपयोग  
अविन्द्य भेदाभेद  
हुण लेतना आनंदोद्धत  
गरीब समाज और गरीब अस्ति  
शिशुवर्ग का चिन्तक बर्य पर प्रभाव नहीं  
बीज शब्द और ओम् का अनुभव





## १२

प्रश्न अभी एक चर्चा में आपने कहा है कि श्रीकृष्ण की आत्मा का साक्षात्कार हो सकता है, क्योंकि कुछ भरता नहीं। कृष्ण दर्शन को समाविता की हड्ड में लाने के लिए बहुत से 'प्रार्थित' से गुजरना पड़ेगा। और साथ ही यह बताये कि कृष्ण-मूर्ति पर व्याख, कृष्ण-नाम का जप और कृष्ण-नाम के संकीर्तन से क्या उपरासनर की पूर्णता की ओर जाया जा सकता है?

उत्तर विश्व-अस्तित्व में कुछ भी एकदम मिट नहीं जाता और विश्व-

अस्तित्व में कुछ भी एकदम नया पैदा भी नहीं होता । रूप बदलते हैं, आङ्कुरिया बदलती है, आकार बदलते हैं, लेकिन अस्तित्व के गहनतम रहस्यों में जो है वह सदा बैसा ही है । व्यक्ति आते हैं, सो जाते हैं, लहरे उठती है सागर पर, बिलीन हो जाती है । लेकिन, जो लहर में छिपा था वह कभी बिलीन नहीं होता । कृष्ण को हम दो तरह से देखेंगे तो समझ में आ जायेगा । अपने को भी फिर हम दो तरह से देख पायेंगे । एक हमारा लहर रूप है एक हमारा सागर रूप है । लहर की तरह हम व्यक्ति हैं, सागर की तरह हम ब्रह्म हैं । कृष्ण का जो चेहरा देखा गया, कृष्ण का जो शरीर देखा गया, कृष्ण की जो वाणी सुनी गयी, कृष्ण के जो स्वर सुने गये वे लहर रूप हैं । लेकिन, जो इन वाणियों, इन नृत्यों तथा इस व्यक्तित्व के पीछे खड़ा है, वह सागर रूप है । वह सागर रूप कभी भी नहीं सोता है । वह सदा अस्तित्व के प्राणों में निवास करता है, वह मदा है ही । वह कृष्ण नहीं हुए थे तब भी था, जब कृष्ण नहीं है, तब भी है । जब आप नहीं थे तब भी था, आप जब नहीं होंगे, तब भी होगा । ऐसा समझें कि जैसे कृष्ण एक लहर की तरह जागे है, नाचे है सागर की छाती पर, सूरज की किरणों में, हवाओं में, और फिर सागर में खो गये हैं । हम सब भी ऐसे ही हैं । थोड़ा-सा फर्क है । कृष्ण जब लहर की भाति नाच रहे हैं तब भी वे जानते हैं कि वे सागर हैं । हम जब लहर की भाति नाच रहे हैं तब हम भूल जाते हैं कि सागर है । तब हम समझते हैं कि हम लहर ही हैं । चूंकि हम अपने को लहर समझते हैं, इसलिए कृष्ण को भी कैसे मागर समझ सकते हैं? लहर जिस रूप में प्रकट हुई थी, जिस आङ्कुरि और आकार में प्रकट हुई थी, उस आङ्कुरि और आकार का उपयोग किया जा सकता है उस लहर के पुनर्साक्षात्कार के लिए । लेकिन, खेल सब छाया जगत का है । दो तीन बातें स्थाल में लेंगे तो पूरी बातें स्पष्ट हो सकेंगी ।

कृष्ण के सागर रूप से आज भी, कभी भी साक्षात्कार किया जा सकता है । महाबीर के भी सागर रूप से साक्षात्कार किया जा सकता है, बुद्ध के सागर रूप से भी साक्षात्कार किया जा सकता है । जिस रूप में वे प्रकट हुए थे कभी, जो आङ्कुरि उन्होंने ली थी, उसका उपयोग इस सागर रूप साक्षात्कार के लिए किया जा सकता है । वह माध्यम बन सकता है । मूर्तिया सबसे पहले पूजा के लिए नहीं बनी थी । मूर्तिया सबसे पहले एक 'इजोटेरिक साइस' की तरह बनी थी, एक गुप्त विज्ञान की तरह बनी थी । उन मूर्तियों में जो व्यक्ति उस रूप में जिया था उसने बायदा किया था कि इस मूर्ति पर पूरी तरह ध्यान किया गया तो भेरे सागर रूप अस्तित्व से मम्बन्ध हो सकेगा कभी रास्ते पर आपने किसी मदारी को हिन्दोसिस का एक छोटा-सा खेल करते देखा होगा ।

छोटा खेल है कि किसी लड़के की मदारी लिटा देता है। उसकी आती पर एक ताबीज रखता है। ताबीज रखने से वह बेहोश हो जाता है। बेहोश होने के बाद वह मदारी उस लड़के से बहुत-सी बाते पूछता है और वह बताना शुरू कर देता है। आपके पास वह मदारी आता है और कहता है, कान में अपना नाम बोल दें। आप नाम बोलते हैं, वह लड़का वहां से चिल्ला देता है कि यह नाम है इस आदमी का। आप इतने धीमे-धीमे बोलते हैं कि उस लड़के के सुनने का कोई उपाय नहीं, क्योंकि आपके बगल का पड़ोसी भी नहीं सुन पाया। वह मदारी कहता है कि आपके स्थिसे मे नोट रखा हुआ है, इसका नम्बर कितना है और वह लड़का नोट का नम्बर बोल देता है। वह मदारी आपसे कहेगा कि यह ताबीज बड़ा अद्भुत है। इस ताबीज की बदौलत इस लड़के की इतनी सामर्थ्य हो गयी। बस वही वह घोका देना है। फिर वह चार आठ आने में बेच ही देता है। आप घर आकर आठ आने का ताबीज आती पर रखकर लेट जाते हैं, लेकिन कुछ नहीं होता है। नहीं होगा। ताबीज से कोई लेना देना नहीं था। लेकिन, उस लड़के के सम्बन्ध में लेना देना था।

पोस्ट हिप्पोटिजम की एक छोटी-सी प्रक्रिया है। वह प्रक्रिया यह है कि यदि किसी व्यक्ति को गहरी बेहोशी में डाल दिया जाय, जो कि बिल्कुल बहुत सरल है। उम गहरी बेहोशी की हालत में यदि उसे कहा जाय कि यह ताबीज ठीक से देख लो और जब भी इस ताबीज को हम तुम्हारी आती पर रखेंगे तो तुम पुन बेहोश हो जाओगे। उसके अचेतन की गहराइयों में यह सुझाव बैठ जाता है। फिर कभी भी उस व्यक्ति के ऊपर वह ताबीज रखा जाय वह तत्काल बेहोश हो जायेगा। और बेहोशी में हमारे मस्तिष्क की अचेतन शक्तिया काम करना शुरू कर देती है। जो हम होश में नहीं कर पाते, वह हम बेहोशी में कर लेते हैं। जितना हम होश में सुनते हैं उससे बहुत तीव्रता में बेहोशी में सुनने लगते हैं। जितना हम होश में देखते हैं उससे बहुत गहरा बेहोशी में देखने लगते हैं। लेकिन, वह ताबीज आपके ऊपर काम नहीं करेगा। क्योंकि, वैसा आपके अचेतन में कोई गहरा सुझाव नहीं दिया गया।

कृष्ण, महावीर, बुद्ध और क्राइस्ट जैसे लोग जब पृथ्वी से विदा होते हैं तो जो उन्हे प्रेम करते हैं, जिन्होने उन्हे चाहा है, जिन्होने उनके निकट बहुत कुछ पाया है, वह उनसे अगर निवेदन करे कि आपके देह रूप के छूट जाने के बाद अगर हम आपको स्मरण करना चाहें और सबधित होना चाहे तो हम क्या करे? तो अत्यंत गहरी ध्यान की अवस्था में कृष्ण अगर उनसे कह दे कि मेरी यह रही प्रतिमा,

मेरा यह रहा रूप, जब भी तुम इसपर ध्यान करोगे तो तुम तत्काल मुझसे संयुक्त हो जाओगे—मेरे सागर रूप से। यह ध्यान की अवस्था में दी गयी प्रतिमाएँ हैं। यह ध्यान की अवस्थाओं में दिये गये प्रतीक हैं। ये सबके काम के नहीं हैं। आप कृष्ण की मूर्ति के सामने जिन्दगी भर चिल्लाते रहे, कुछ होगा नहीं। आप महाबीर की मूर्ति के सामने कितने नाचे कूदे कुछ होगा नहीं। ध्यान की अवस्था में पहले आपके पास यह अन्तर्सुझाव चाहिए कि इस मूर्ति के द्वारा आपका सम्बन्ध उस व्यक्ति से हो सकेगा जिसकी यह मूर्ति है।

तो पहली बात, बुद्ध, महाबीर और कृष्ण जैसे लोग पृथ्वी से विदा होते हैं तो उनके निकटतम जो वर्ग है उसे वे सूचनाएँ दे जाते हैं। पहली पीढ़ी जो डस वर्ग की होती है वह तो उसका पूरा लाभ उठाती है। दूसरी पीढ़ी में वे लोग लाभ उठा सकते हैं जिनको पहली पीढ़ी के द्वारा पुन वह सुझाव ध्यान की गहराइयों में चित में डाला दिया गया हो। धीरे-धीरे सुझाव खो जाता है। मूर्ति हाथ में रह जाती है। वैसे ही जैसे बाजार में आप आते हैं ताबीज हाथ में ले आने हैं और सुझाव का कोई पता नहीं होता। किर उस मूर्ति को रखे आप बैठे रहे जिन्दगी भर, उससे कुछ होने का नहीं। मैंने मूर्ति के लिए कहा—मूर्ति एक ‘इजोटैरिक ब्रिज’ है जिसके माध्यम से लहर रूप व्यक्ति ने बायदा किया है कि उसके सागर रूप में पुन सबध स्थापित किया जा सकेगा। ठीक उसी तरह नाम भी है। नाम का भी उपयोग किया जाता है। लेकिन, वह भी ध्यान की गहराइयों में दिया गया हो तो। अब गुरु, कान फ़क्ते रहते हैं, लोगों के उससे कुछ होता नहीं। क्योंकि सबाल कान फ़क्ने का नहीं है। सबाल तो बहुत गहरे ध्यान की अवस्था में कोई शब्द प्रतीक रूप देने से है कि उस शब्द के स्मरण करते ही, उसका उच्चारण करते ही सारी चेतना रूपातिरित हो जायेगी। ऐसे शब्दों को बीज शब्द कहा जाता है, वह ‘सीड बडम्’ है, उनमें बड़ा कुछ भर दिया गया है।

तो कृष्ण का नाम अगर बीज शब्द है—उसका अथ यह हुआ कि अगर ध्यान की बहुत गहरी अवस्था में आपके चित के अंतर्ल में उसको छिपाया गया है, (और बीज सदा ही गहरे और नीचे जमीन के छिपाये जाते हैं। वृक्ष ही ऊपर आते हैं।) अगर आपके चित के गहरे गम्भ में कोई शब्द डाला गया है और उस शब्द के माध्यम सुझाव डाला गया है तो उसके परिणाम होने शुरू हो जायेगे।

रामकृष्ण बड़ी दिक्कत में थे। वे सड़क से निकल नहीं पाते थे। वह सड़क से जा रहे हो और किसी ने कह दिया, जय रामजी, रामकृष्ण वही गिर जायेगे और ध्यानस्थ हो जायेगे। रामकृष्ण को सड़क से ले जाना बहुत मुश्किल था।

रामकृष्ण सड़क से जा रहे हों तागे भे बैठकर, किसी प्रदिव मे कोई राम धुन चल रही है, वह वही गये । वह डूब गये वही । किसी के घर पर बैठकर बात कर रहे हैं और किसी ने राम का नाम ले दिया, वह गये । वह शब्द उनके लिए बीज है । वह शब्द पर्याप्त है उनके लिए, लेकिन हमें कठिन होगा यह मानना । हमारे लिए भी कुछ बीज बातें हैं वह हम समझ ले तो स्थाल मे आ जाय । कोई आदमी चिन्तित होता है तो फौरन माथे पर हाथ रख लेता है । आप उसका हाथ नीचे रोक ले, वह बहुत बेचैनी मे पड़ जायेगा । कोई आदमी परेशान होता है तो एक विशेष आमन मे बैठ जाता है । आप उसको उसमे न बैठने दे, वह बहुत मुश्किल मे पड़ जायेगा ।

डा हरीसिंह गौड़ प्रियी कौमिल मे एक मुकदमा लड़ते थे । उनकी सदा की आदत थी कि जब कभी कोई उलझन का मामला होता और दलील करनी कठिन होती तो कोट के ऊपर का बटन धुमाने लगते थे । जिन लोगो ने भी उनके साथ बकालत की थी उन सबको पता था कि उनका कोट के बटन पर हाथ गया कि उनकी वाणी एकदम प्रखर हो जाती और वे इस तरह बोलने लगते थे जैसे कि इसके पहले बोल ही नहीं रहे थे । एक बड़ा मुकदमा था । विरोधी वकील बड़ी परेणानी म पड़ा हुआ था । उसने डाक्टर हरीसिंह गौड़ के एक 'शोफर' को कहा कि जितना पैसा तुझे चाहिए ले, लेकिन कल जब तू कोट कार से उतार कर लाये तो उसके ऊपर का बटन तोड़कर फेंक देना । बस बटन उमने तोड़वा कर फिकवा दिया । उस दिन आखिरी पैरबी थी । हरीसिंह गौड़ ने अपना कोट अपने गले पर ढाल लिया, लटका लिया और वह विवाद करने को खड़े हो गये । ठीक उस क्षण पर जब उनका हाथ खोजने लगा बटन को और पाया कि बटन वहा नहीं है वह एकदम बेहोश होकर गिर गये कुर्सी पर । उन्होने अपने समरणों में लिखा है कि मेरे मस्तिष्क ने काम करना एकदम बन्द कर दिया । मुझे ऐसा लगा कि जैसे सब खो गया । अब मैं कुछ बोल सकूगा ही नहीं । मजिस्ट्रेट से उन्हे प्रार्थना करनी पड़ी कि यह मुकदमा आगे के लिए टाल दिया जाय, आज मेरी कोई सामर्थ्य नहीं है । बड़ी अजीब-सी बात मालूम पड़ती है, एक बटन इतना अर्थ रख सकता है ? 'एसोसिएशन' का अर्थ है । अगर सदा ही उस बटन पर हाथ रखकर मन सक्रिय हो गया है तो आज उस बटन को न पाकर मन एकदम निष्क्रिय हो जायेगा । यह 'कण्डशन रिफ्लेक्स' की बात है । नाम का प्रयोग भी इसी भाति किया गया है । वह जो बटन था, हरीसिंह गौड़ के लिए बीज हो गया, साधारण बटन नहीं रहा, जो सिर्फ़ कोट के लगाया और अटकाया जाता है । इस बटन से उनका मन भी अटकने और लगने लगा ।

नाम का उपयोग इस भाति किया जा सकता है। किया गया है। लेकिन, खाली शब्द का उपयोग करने से कुछ भी नहीं होता। खाली शब्द और बीज शब्द में वही फर्क है। बीज शब्द का अर्थ यह है कि आपकी अचेतन गद्धराइयों में उसे डाला जाय और इतने गहरे में बिठा दिया जाय कि उसके स्मरण मात्र से आप तत्काल रूपातरित हो जाय। तो वह बीज बन जाता है। कृष्ण, राम या बुद्ध या महावीर या और तरह के शब्द और नाम बीज की तरह उपयोग किये गये हैं, लेकिन अब लोग उनको ऐसे ही दोहरा रहे हैं। बैठे दुए हजार दफा 'राम राम' कह रहे हैं, कुछ भी नहीं होता। बीज होता तो एक बार में ही हो जाता। हजार बार कहने की बात न थी। और राम से ही होगा ऐसा नहीं, कोई भी अ-ब-स शब्द को बीज बनाया जा सकता है और आपके व्यक्तित्व में गहरे में डाला जा सकता है। शब्द और मत बीज बन जाय तो साधक की गद्धराइयों को रूपातरित करने में उपयोगी होते हैं। लेकिन, हमारी कठिनाई यह है कि मूल सूत्र सो जाते हैं, ऊपरी बाते रह जाती हैं। कोई भी राम राम जपता रहता है, कोई भी कृष्ण कृष्ण चिल्लाता रहता है। उससे कुछ हो सकता नहीं, कभी नहीं होगा। जीवन भर चिल्लाने में भी नहीं होगा।

कीर्तन के लिए पूछते हैं। ध्यान के जो प्रयोग हम कर रहे हैं, उसमें जो दूसरा चरण है, ठीक वही उपयोग कीर्तन का किया जा सकता है, किया जाता रहा है। जो जानते हैं उन्होंने वैसा ही उपयोग किया है। जो नहीं जानते हैं वे सिर्फ चिल्लाते हैं, नाचते हैं। ध्यान का जो दूसरा चरण है अगर ठीक वैसा ही उपयोग कीर्तन का, भजन का, नृत्य का किया जा सके तो उसके बड़े व्यापक परिणाम हैं। पहला परिणाम तो यह है कि जब आप बहुत भाव से नाचने लगें तो शरीर आपको अलग दिखायी पड़ने लगेगा। शरीर पृथक मालूम होने लगेगा, आप अलग मालूम होने लगेंगे। आप थोड़ी ही देर में देखने वाले हो जायेंगे, नाचने वाले नहीं। जब शरीर पूरी त्वरा में आयेगा, पूरी गति में आयेगा नृत्य की, तब अचानक एक क्षण ऐसा आयेगा कि आप पायेंगे आप अलग हो गये। उस क्षण को अलग करने के उपाय किये गये थे कि वह क्षण अलग हो जाय और आप तत्काल टूट जाय। नृत्य का उपयोग चाक की तरह किया गया है। जोर से घूमे तो एक घड़ी आ जाती है जहाँ कील दिखायी पड़ने लगती है। यह बड़े मजे की बात है, जब चाक और कील खड़े हो तो कील और चाक का पता लगाना मुश्किल है कि कौन कील है, कौन चाक है? क्योंकि दोनों खड़े हैं। चाक चले, तो कील का फर्क फौरन पता चल जाता है। जो

नहीं चलेगी वह पहचान में आ जायेगी। नाचे आप। आपके पीछे, भीतर कुछ छूट जायेगा जो नहीं नाचता है। बस वह आपकी कील है, वह आपका सेन्टर है। जो नाच रहा है, वह आपकी परिविहि है, वह आपका चाक है। इस क्षण में अगर साक्षी हो जाय तो समझे कीर्तन का अद्भुत उपयोग हो गया। लेकिन, अगर साक्षी न हुए और कीर्तन ही करते रहे तो बेकार चली गयी भेहनत, उसका कोई अर्थ न रहा।

प्रक्रियाएँ पैदा होती हैं और सो जाती हैं। सो जाती है इसलिए कि सब प्रक्रियाएँ अनिवार्य रूपेण मनुष्य के स्वभाव जैसी है। वह उसमें जो सार्थक है भूल जाता है, जो निरर्थक है उसको पकड़ लेता है। क्योंकि, जो सार्थक है वह गहरे में होता है, जो निरर्थक है वह ऊपर होता है। जो निरर्थक है वह वस्त्र की तरह ऊपर होता है, जो सार्थक है वह आत्मा की तरह भीतर होता है। जो भीतर है वह दिखायी नहीं पड़ता, धीरे-धीरे ऊपर का ही रह जाता है, भीतर का भूल जाता है। और, इसलिए ऐसे बक्त आ जाते हैं — जैसे मैं ही हूँ मुझमें कोई पूछते आये कि कीर्तन से कुछ होगा तो मैं सख्ती से मना करता हूँ कि कुछ भी नहीं होगा। क्योंकि, मैं जानता हूँ अब कीर्तन मृत परम्परा हो गयी है। अब मरा हुआ ढाचा रह गया है। वह चाक ही है, कील का पता लगाना बहुत मुश्किल है।

नहीं, चैतन्य ने जरूर कीर्तन और भजन से वही पा लिया जिसके पाने की मैं बात कर रहा हूँ। चैतन्य ने नाचकर उसे पा लिया जिसे बुद्ध और महावीर खड़े होकर पाते हैं। ये दोनों बातें हो सकती हैं। कील को पकड़ने के दो रास्ते हो सकते हैं — एक रास्ता तो यह हो सकता है कि आप इतने खड़े हो जाय कि आपमें कपन ही न रह जाय कोई। इतने ठहर जाय, इतने घिर हो जाय कि 'जस्ट स्टैंडिंग' की हालत रह जाय। तो उस हालत में आप कील पर पहुँच जायेंगे। या दूसरा रास्ता यह है कि आप इतने 'मूवमेंट' में हो जाय, इतनी गति में हो जाय कि चाक पूरा चल पड़े और कील पहचान में आ जाय। आसान दूसरा ही होगा। चाक जोर से चले तो कील को पहचानना आसान होगा। बहुत कम लोग हैं जो खड़े हुए चाक में कील को पहचान पाये। महावीर खड़े होकर पहचानते हैं, कृष्ण नाचकर। और, चैतन्य तो कृष्ण भी जितना नहीं नाचे उतना नाचे है। चैतन्य का तो कोई मुकाबला नहीं। चैतन्य के नृत्य का तो कोई हिसाब ही नहीं, शायद पृथ्वी पर ऐसा कोई नाचा ही नहीं। पर, ध्यान में लेने की बात इतनी ही है कि हमारी परिविहि जो है, गतिमान है, परिवर्तन है वहा, और हमारी जो गहराई है आत्मा है, वहा शाश्वतता है, 'इटरनिटी' है, वहा कोई परिवर्तन नहीं, वहा सब चुप और शात और सदा

खड़ा हुआ है। वह कील की भाति है— वह थिर है। उस थिर को, उस परिवर्तन अतीत को किस भाति पहचान ले ?

ध्यान का जो दूसरा चरण है उस बात का ही गहरा प्रयोग किया जा रहा है। लेकिन, कीर्तन मैं उसे नहीं कह रहा, क्योंकि कीर्तन शब्द अब अपदस्थ हो गया। कीर्तन शब्द ने अब अर्थ खो दिया है। सभी शब्द, जैसे रूपये चल चलकर घिस जाते हैं और घिस घिस कर नकली हो जाते हैं, वैसे ही शब्द भी चल चलकर घिस जाते हैं और खराब हो जाते हैं। और, वक्त आ जाता है कि टकसाल में नये रूपये ढालने पड़ते हैं। मुझे भी समझने में बहुत बार दिक्कत पड़ेगी क्योंकि मैं नयी टकसाल में जो रूपये ढाल रहा हूँ कि पुराने सिक्के बहुत चल चुके और इतने हाथों में चल चुके हैं कि बिल्कुल घिस गये हैं। उनमें न चेहरा पहचान में आता है, न क्या लिखा है वह पहचान में आता है, न यही पता चलता है कि वह मिक्के हैं कि ठीकरे हैं। इसलिए, सब फिर से शुरू से करना पड़ता है हर बार, और यह जानते हुए शुरू करना पड़ता है कि नये मिक्के जो आज टकसाल से निकल रहे हैं कल यह भी हाथ में चलकर घिस जायेंगे और खराब हो जायेंगे। और, फिर किसी को नये सिक्के ढालने पड़ेगे। नये सिक्के ढालने वाले के सामने बड़ी कठिनाई आ जाती है कि उसे उन्हीं सिक्कों से लड़ना पड़ता है जिनके लिए वह जी रहा है। लड़ना मजबूरी हो जाती है। जब नये मिक्के बाजार में लाने पड़ते हैं तब पुराने सिक्के वापस टकसाल में भेजने पड़ते हैं। तो मुझे वापस मिक्के आपसे छीनने पड़ते हैं कि इनको वापस टकसाल में भेजो। ये बेकार हो गये हैं, अब तुम नये ले लो। लेकिन, पुराने सिक्के का मोह होता है। बहुत दिन साथ रहा है। घिसा भी है तो अपने ही हाथों में घिसा है। नये मिक्के का एकदम भरोसा नहीं होता।

धर्म के साथ ऐसा रोज होता है। कीर्तन का बड़ा उपयोग किया जा सकता है। समझ लिया जाय तो कीर्तन का बड़ा अद्भुत उपयोग है, लेकिन अब समझना बहुत मुश्किल होगा। क्योंकि, जब मैं कीर्तन कहूँगा तब आप वही कीर्तन समझेंगे जो आप समझ रहे हैं। तब आप कहेंगे कि बिल्कुल ठीक कहते हैं आप। हम तो कर ही रहे हैं यह कीर्तन। हम तो राम राम कर ही रहे हैं, बिल्कुल ठीक कह रहे हैं आप। जब आप का मन कहता है, बिल्कुल ठीक कर रहे हैं तब मुझे ऐसा लगता है कि कहीं मैंने कह कर कुछ भूल तो नहीं की? क्योंकि, आपको मैं ठीक नहीं कहना चाहूँगा। आप अगर ठीक होने तब तो कोई बात ही न थी। वह राम राम तो आप कह ही रहे हैं। मैं आपके राम राम का समर्थन नहीं कर रहा हूँ। आप तो कीर्तन करते ही रहे हैं, आपके कीर्तन का समर्थन नहीं कर रहा हूँ। क्योंकि,

अगर आप कीर्तन से पहुच सकते हो तो पहुच ही गये होते । पर, आप नहीं पहुचे । मैं तो कीर्तन का जो मूल है उसकी बात कह रहा हूँ, आपके कीर्तन की बात नहीं कर रहा हूँ । नाम का जो मूल है, उसकी बात कर रहा हूँ, आपके नाम की बात नहीं कह रहा हूँ । मूर्ति का जो मूल है उसकी बात कर रहा हूँ, आपके धरो ये रखी हुई मूर्तियों की चर्चा नहीं कर रहा हूँ । उनको तो मैं निकालूँगा और फिकवा दू़गा । उनको तो नहीं रखा जा सकता है । लेकिन, इसकी मतलब वह नहीं है कि उन सब सूत्रों के पीछे कुछ भी नहीं था । उन सब सूत्रों के पीछे बहुत कुछ था । सच तो यह है कि हम सिर्फ उसी सूत्र के नाम पर हजारों साल तक गलत सूत्रों को खीच सकते हैं, जिसमें कुछ रहा हो । नहीं तो खीच भी नहीं सकते । अगर हम किसी चीज को हजारों साल तक खीचते हैं विना कुछ पाये तो उसका मतलब इतना ही है कि मनुष्य की चेतना में कहीं वह अनुभव छिपा है कि उसे पाया गया था । नहीं तो उसे हम खीच नहीं सकते । कचरे को भी अगर कोई आदमी बहुत दिन तक खीचता है कि उस कचरे में भी कभी हीरे के दर्शन हुए हैं किसी अतीत के क्षण में । नहीं तो उस कचरे को कोई खीचेगा कैसे? अगर गलत चीजें भी चलती हैं तो इसीलिए चल पाती है कि उन गलत के पीछे कभी कोई मत्य था जो खो गया है । अन्यथा गलत को खीचा नहीं जा सकता ।

**प्रश्न** आचार्यजी, चैतन्य महाप्रभु का जीव-जगत, जो जगदीश से भिन्न भी है और अभिन्न भी है, वह अचिन्त्य भेदभेद है, वह आपके कील और पहिये के नजदीक आता है?

उत्तर बिल्कुल आ जायेगा । चैतन्य, कृष्ण को प्रेम करने वाले यात्रियों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है । अचिन्त्य भेदभेद-इसमें कीमती शब्द अचिन्त्य है । जो सोचते हैं वे या तो कहेंगे कि जगत में जीव और जगत का भेद है तो भेदवाद होगा । या वे कहेंगे कि जीव और जगत एक हैं, तो अभेदवाद होगा । चैतन्य कहते हैं दोनों हैं । भेद-अभेद दोनों हैं । एक भी है, भिन्न भी है । जैसे लहर भिन्न भी है सागर से और एक भी है । निश्चित ही, लहर भिन्न है तब तो हमने उसे नाम दिया है लहर और एक तो है ही । अगर सागर से एक न हो तो होगी कहा? लहर एक भी है और भिन्न भी है । भेद भी है और अभेद भी है । लेकिन, इतना भी चिन्तन में आ जाता है । यह भी चिन्तन की ही बात हुई कि एक भी हो सकती है, भिन्न भी हो सकती है । उस पर एक शब्द और जड़ देते हैं । वह कहते हैं, अचिन्त्य है, वही शब्द बड़ा अद्भुत है । वह यह कहते हैं कि अगर यह भी तुमने चिन्तन से पाया तो हमने कुछ पाया नहीं । अगर यह भी तुमने सोच-सोच कर पाया है तो वह सिर्फ

सिद्धांत है, कुछ पाया नहीं। अगर सोचने के बाहर पाया है तो फिर अनुभव में पाया है। इसे समझना अच्छा होगा।

जब तक हम सोचकर पाते हैं तब तक हम शब्दों में ही पाते हैं। और, जब हम जीकर पाते हैं तब हम शब्दों के बाहर पाते हैं। वह अचिन्त्य हो जाता है। जीवन पूर्य ही अर्चित्य है। उसका कोई चिन्तन नहीं होता। एक आदमी प्रेम को समझे, तो शास्त्रों से समझ ले, बहुत लिखा है शास्त्रों में। शायद प्रेम के सम्बन्ध में जितना लिखा है किसी और चीज़ के सम्बन्ध में नहीं लिखा। विराट साहित्य है प्रेम का। काव्य है, महाकाव्य है, व्याख्याएँ हैं, चर्चाएँ हैं। कोई आदमी प्रेम को समझ ले तो समझ लेगा, प्रेम की व्याख्या कर देगा। लेकिन, फिर भी प्रेम को उसने जाना नहीं। और एक आदमी है, जिसने प्रेम के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं सुना, कुछ भी नहीं समझा, कुछ भी नहीं जाना। लेकिन, प्रेम को जिया है। इन दोनों में क्या फर्क होगा? इतनी जानकारी का क्या भेद होगा? एक की जानकारी चिन्त्य है, चिन्तन से उपलब्ध हुआ है। एक की जानकारी चिन्त्य नहीं है, अनुभव है। अनुभव सदा अचिन्त्य है। वह चिन्तन से नहीं आता, चिन्तन के पहले आ जाता है। और, अनुभव के पीछे चिन्तन चलता है। अनुभव पहले आ जाता है, चिन्तन सिर्फ अभिव्यक्त करता है। इसलिए, चैतन्य कहते हैं,—अचिन्त्य!

चैतन्य के कहने का अर्थ भी जरा ज्यादा है। ऐसे तो मीरा भी कहेगी कि सोच समझ के परे है, लेकिन मीरा कभी बहुत सोच समझ की स्त्री थी ही नहीं। लेकिन, चैतन्य तो महा तार्किक है। चैतन्य की जो खूबी है, वह यह है कि यह आदमी तो महातार्किक था। इसके तर्क का तो कोई अन्त न था। इसने तो चिन्तन के ऊचे से ऊचे शिखर को छुआ था। इसके साथ विवाद करने की सामर्थ्य न थी किसी की। विवाद में जहा खड़ा होता है विजेता ही होता है। जब यह चैतन्य सब विवाद करके, उतना मब पापित्य रचकर, इतना सब तर्क और ऊहापोह करके एक दिन कहने लगे कि अब मैं नाचूगा और अचिन्त्य को सोजूगा तब इसका जर्य और हो जाता है। मीरा तो कभी कोई तार्किक थी नहीं। प्रेम उसका जीवन था। उसमें प्रेम के फूल लगे तो सहज थे। लेकिन, उल्टे थे चैतन्य। यह आदमी प्रेम की तरफ आये तो चिन्तन की परायज से आये, किमी और से पराजित होकर नहीं। अपने भीतर चिन्तन को पराजित पाकर—कि वह अगह आ गयी जहा चिन्तन हार जाता है और बाहर जीवन शेष रह जाता है।

इसलिए मैंने कहा, कृष्ण के मार्ग पर चले हुए लोगों में चैतन्य का मुकाबला नहीं है। ध्यान में है मेरे कि मीरा भी उम मार्ग पर है; लेकिन चैतन्य से मुकाबला

नहीं है। क्योंकि, चैतन्य जैसा आदमी नाच नहीं सकता। चैतन्य जैसा आदमी भजीरा ठोककर सड़को पर भाग नहीं सकता। और जब चैतन्य जैसा आदमी भजीरा ठोकने लगे और हरे कृष्ण हरे राम कह कर सड़को पर नाचने लगे तो सोचने जैसा है। ऐसे कि जैसे बट्टेन्ड रसेल नाचने लगे। वैसा ही आदमी है वह। इसके वक्तव्य का मूल्य बहुत ज्यादा हो जाता है। इसके वक्तव्य का मूल्य ही यही है कि इस आदमी का नृत्य में उत्तर जाना, ज्ञान भजीरा पीटने लगता और यह कह देना, अचिन्त्य है वह, और हम चिन्तन छोड़ते हैं। अचिन्त्य से उसे पायेंगे—इस बात की सखर देता है कि चिन्तन के पार भी केवल वे ही जा सकते हैं जो गहन चिन्तन में उत्तरते हैं। जो गहन चिन्तन में उत्तरते हैं, वे एक दिन जरूर उस सीमा रेखा पर पहुँच जाते हैं जहा वह 'लिमिट' आ जाती है, सीमात आ जाता है, जहा पत्थर लगा है और लिखा है कि बुद्धि अब यही तक चलती है, आगे नहीं चलती। जहा बुद्धि का सीमात आ जाता है। इसलिए, चैतन्य के वक्तव्य का बड़ा मूल्य है। वह उस पत्थर के आगे गया मूल्य है। भीरा उस पत्थर तक कभी पहुँची नहीं। उसने उस पत्थर पर कभी कोई याता नहीं की।

**प्रश्न** आचार्यजी, अमेरिका, इण्डियन तथा अन्य देशों में आजकल कृष्ण-चेतना आदोलन बहुत लेजी से चल रहा है और वे संकीर्तन वर्गीकरण का बहुत उपयोग करते हैं। इससे ऐसा मालूम होता है कि कोई नया 'वेराइटी आइटम' या कोई मनो-विनोदक चीज है यह कोई नया 'फेड' है। क्या आप ऐसा कह सकते हैं कि वहां कृष्ण जन्म की कोई पूर्व भूमिका बन रही है?

**उत्तर** बड़े गहरे 'इम्लीकेशन्स' हैं। कृष्ण चेतना का आदोलन, कृष्ण 'कासेसनेस' का आन्दोलन योरोप-अमरीका में रोज़ जोर पकड़ता जाता है। जैसे, किसी दिन चैतन्य बगाल के गावों में नाचते हुए कुछ जगह निकले थे वैसा भज्ञा न्यूयार्क और लदन की सड़को पर भी हरिकीर्तन सुनायी पड़ता है। यह आकस्मिक नहीं है। असल में जहां चैतन्य व्यक्तिगत रूप से थक गये थे वहा पश्चिम सामूहिक रूप से थक रहा है। चैतन्य सोच-सोचकर व्यक्तिगत रूप से थक गये थे और पाया था कि सोचने से पार नहीं, और पश्चिम सामूहिक रूप से सोचने से थक गया है। सुकरात से लेकर बट्टेन्ड रसेल तक, पश्चिम ने सिर्फ़ सोचा ही और सोच-सोच कर ही खोजने की कोशिश की है सत्य को। बड़ी विराट साधना थी यह भी। बड़ा अनूठा प्रयोग था यह भी कि पश्चिम ने अपने पूरे प्राण इस बात पर लगा दिये हैं, सुकरात से लेकर रसेल तक कि हम सोचकर ही सत्य को पा सेंगे। सत्य को

किसी-न-किसी तरह 'लाजिक' और तर्क की सीमा में उपलब्ध करना है। उस सत्य को पश्चिम निरन्तर इन्कार करता रहा है जो तर्क की सीमा में नहीं आता, जो अतर्क्य है। उसने कहा, नहीं हम नहीं मानेगे जब तक हमारी बुद्धि और मस्तिष्क स्वीकार नहीं कर लेना। २५०० माल की यात्रा में पश्चिम ने गहन तर्क किया है। पश्चिम सामूहिक रूप से थक गया है और सत्य की कोई झलक नहीं मिली। बार-बार लगा कि यह रहा, यह रहा, पास है, पास है। और, पास पहुँचकर पाया नहीं। फिर 'क्सेप्ट' ही हाथ में रह गये, मिद्दान्त ही हाथ में रह गये, सत्य नहीं। पश्चिम की सामूहिक चेतना 'क्लेक्टिव कासेसेनेस' उस जगह आ गयी जहाँ चैतन्य अचिन्तित रूप से आ गये हैं। इसलिए, पश्चिम में एक 'एक्सलोजन' सभावी है, जो हो रहा है। वसन्त के पहले फूल आने शुरू हो गये हैं। जगह-जगह चिस्कोट हो रहा है। पश्चिम की युवा पीढ़ी जगह-जगह टूट रही है। और, जगह-जगह उसने अचित्य की दिशा में कदम उठाने शुरू कर दिये हैं। और, अगर अचित्य की दिशा में कदम रखने हैं तो कृष्ण से ज्यादा ठीक प्रतीक दूसरा नहीं है।

महावीर के वक्तव्य बहुत तक युक्त हैं। अगर महावीर रहस्य की बात भी करते हैं तो भाषा मदा तर्क की है। अगर महावीर कभी भी कोई बात करते हैं तो विचार की सगति कभी भी टूटनी नहीं। बुद्ध अगर पाने हैं कि कोई बात रहस्य की है तो चर्चा करने से इन्कार कर देते हैं। उसकी चर्चा ही नहीं करते। वह कह देते हैं, अव्याख्य, इसकी बात नहीं होगी। बात वही तक करेगे जहाँ तक तक है।

पश्चिम के चित्त में आज जो तनाव है, वह चिन्तन से पैदा हुआ तनाव है। जो 'एग्जाइटी' है, जो 'मैटल एग्रिवश' जो सताप है वह चिन्तन को परम तक खीचने का परिणाम है। वहा नयी पीटियाँ बगावत करेगी। यह बगावत बहुत रूपों में प्रकट होगी। क्योंकि, चैतन्य एक आदमी थे, एक रूप में हो गयी। पीढ़ी जब बगावत करती है तो बहुत रूपों में प्रकट होगी। उस अचिन्त्य में यात्रा करने के लिए कोई भजन कीनन कहकर कृष्ण नाम जपने लगेगा। कोई उस अचिन्त्य में प्रवेश करने के लिए 'एल एस डी' और 'मैस्कलीन' का प्रयोग करने लगेगा। कोई उस अचिन्त्य में प्रवेश करने के लिए भारत चला आयेगा और हिमालय की यात्रा करने लगेगा। कोई उस अचिन्त्य की खोज में जेन फकीरों के पास जापान चला जायेगा। मब अचिन्त्य की खोज चल रही है। लेकिन, मुझे लगता है कि कृष्ण इस अचिन्त्य की खोज में धीरे-धीरे पश्चिम के रोज निकट आते चले जायेंगे। 'एल एस डी' दूरगामी साथी नहीं हो सकता। और, कब तक लोग भारत की यात्रा करते रहेंगे और कितने लोग यात्रा करते रहेंगे? कब तक लोग

जापान में जाकर जेन फकीरों के चरणों में बैठते रहेने ? पश्चिम को अपनी ही चेतना स्वोजनी पड़ेगी । ये उधार बतते ज्यादा देर नहीं चल सकती । तो पश्चिम के चित्त में वह घटना टूट रही है । और, वहे भजे की बात है कि अगर हिंदुस्तान में आप किसी व्यक्ति को भजन कीर्तन करते देखे तो उसके बेहरे पर वह आनंद का भाव नहीं होता जो लदन के लड़के और लड़किया जब भजन कीर्तन करते हैं, उनके बेहरे पर होता है । हमारे लिए वही पिटा-पिटाया कम है, जिसा हुआ सिक्का है । हम सब भली भाँति जानते हैं कि क्या कर रहे हैं ? उनके लिए बड़ा नया सिक्का है । उनके लिए छलाग है । हमारे लिए परम्परा है । हमारे लिए 'ट्रेडीशन' है, उनके लिए बिल्कुल 'एण्टीट्रेडीशनल' है । जब लदन की सड़क से कोई गुजरता है मजीरे बजाते हुए और नाचते हुए तो ट्रैफिक का पुलिस वाला भी खड़ा होकर सोचता है कि इनका दिमाग स्वराब हो गया ? हमारे मुल्क में कोई नहीं सोचेगा । लेकिन, दुनिया के धर्म पागलों से चलते हैं बुद्धिमानों से नहीं । दुनिया में सारे केन्द्रीय, जिनको 'बैंक ऑफ' कहे हम, जहाँ चौंजे टूटती हैं और बदलती है, पागलों से होती है, दीवानों से होती है । हमारे मुल्क में भजन कीर्तन करना दीवानापन नहीं है । कभी रहा होगा, चैतन्य जब बगाल में नाचा तब दीवाना था । लोगों ने समझा कि पागल हो गया । अब नहीं है वह बात । 'ट्रेडिशन' सबको पचा जाती है, बड़े-से-बड़े पागलों को पचा जाती है । उनके लिए भी जगह बना देती है कि यह रहा तुम्हारा धर, तुम भी विश्राम करो । पश्चिम में एक विस्फोट की हालत है । इसलिए, पश्चिम का युवा चित्त जब नाचता है तो उस नाच में एक बड़ी मोहकता होती है, बड़ी मरलता होती है ।

कृष्ण-जन्म की कोई तैयारी नहीं हो रही, लेकिन कृष्ण-चेतना के जन्म की तैयारी जरूर हो रही है । कृष्ण-चेतना का कोई सम्बन्ध कृष्ण से नहीं है । कृष्ण-चेतना प्रतीक शब्द है, जिसका मतलब है ऐसी चेतना की सम्भावना पश्चिम में हो रही है कि लोग काम को छोड़ेंगे और उत्सव को पकड़ेंगे । हा, 'सिम्बोलिक', प्रतीकात्मक रूप से काम बेमानी हो गया, पश्चिम बहुत काम कर चुका । पश्चिम बहुत चिन्तन कर चुका । पश्चिम का मनुष्य जो भी कर सकता था मनुष्य की सीमाओं में, वह सब कर चुका और थक गया, बुरी तरह थक गया । या तो पश्चिम मरेगा या कृष्ण-चेतना में प्रवेश करेगा । मरता तो कुछ है नहीं इसलिए चेतना में प्रवेश करना होगा । क्राइस्ट उतने प्रतीकात्मक आज पश्चिम को नहीं मालूम होते । उसका भी वही कारण है 'ट्रेडिशन' । 'क्राइस्ट ट्रेडिशन' और कृष्ण अब 'एण्टीट्रेडीशन' है । कृष्ण चुनाव है और क्राइस्ट कोई चुनाव नहीं है, अरोपण

है। फिर, क्राइस्ट गम्भीर हैं और पश्चिम गम्भीरता से ऊब गया – ‘दूर मच सीरिएसनेस’, अन्ततः ‘डिसीज्ड’ हो जाती है। बहुत ज्यादा गम्भीरता गहरे में रुणता बन जाती है। पश्चिम गम्भीरता से उठना चाहता है। क्रास बड़ा गम्भीर प्रतीक है। क्रास पर लटका हुआ जीसस बड़ा गम्भीर व्यक्तित्व है। पश्चिम घबड़ा गया है, हटाओ क्रास के लाखों बासुरी को। क्रास के लिलाफ अगर कोई भी प्रतीक दुनिया में खोजने जायेगे तो बासुरी के सिवाय मिलेगा भी क्या? इसलिए, कृष्ण की अपील और कृष्ण के निकट आने की सम्भावना पश्चिम के चित की रोज बढ़ती चली जायेगी। और भी कारण है।

कृष्ण के करीब सिर्फ ‘एफ्युलिएट’ सोसाइटी हो सकती है। कृष्ण के करीब सिर्फ वैभव सम्पन्न समाज हो सकता है। क्योंकि, बासुरी बजाने का चैन गरीब दीन दरिद्र समाज में नहीं हो सकता। कृष्ण जिस दिन पैदा हुए उन दिनों के माप दण्ड से कृष्ण का समाज काफी सपन्न समाज था। खाने पीने को बहुत था। दूध और दही तोड़ा फोड़ा जा सकता था। दूध और दही की मटकिया सड़कों पर गिरायी जा सकती थी। उन दिनों के हिसाब से, उन दिनों के ‘स्टैडर्ड ऑफ लिविंग’ से सपन्न समाज था। सुखी थे लोग, खाने पीने को बहुत था। एक आदमी काम कर लेता और पूरा परिवार बासुरी बजा सकता था। उस सपन्न क्षण में कृष्ण की अपील पैदा हुई थी। पश्चिम अब फिर, आज के मापदण्डों के हिसाब से सपन्न हो रहा है। शायद भारत में कृष्ण के लिए अभी बहुत दिन तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। अभी भारत के मन में कृष्ण बहुत ज्यादा गहरे नहीं उत्तर सकते। क्योंकि, दीन दरिद्र समाज बासुरी बजाने की बात नहीं सोच सकता। उसको क्राइस्ट ही ठीक है, क्योंकि जो खुद ही शूली पर लटका है रोज, उसके लिए क्राइस्ट ही ठीक मालूम पड़ सकते हैं। इसलिए, यह बड़ी अनहोनी घटना घट रही है कि हिन्दुस्तान में रोज क्राइस्ट का प्रभाव बढ़ रहा है और पश्चिम में रोज क्राइस्ट का प्रभाव कम हो रहा है। कोई यह सोचता ही कि यह मिशनरी लोगों को बरगला कर ईसाई बना रहे हैं, इतना ही काकी नहीं है। ईसा का प्रतीक हिन्दुस्तान के दीन सुखी मन के बहुत करीब पड़ रहा है। सिर्फ मिशनरी बरगला नहीं सकता। अगर वह बरगला भी सकता है तो सिर्फ इसीलिए कि वह प्रतीक निकट आ रहा है। कृष्ण की स्वर्ण-मूर्ति और राम की वैभव में खड़ी हुई मूर्तियाँ हिन्दुस्तान के गरीब मन के बहुत विपरीत पड़ती हैं। बहुत दूर न होगा वह दिन जिस दिन हिन्दुस्तान का गरीब, अमीर पर ही न टूटे, कृष्ण और राम पर भी टूट पड़े। इसमें बहुत कठिनाई नहीं होगी। क्योंकि, यह स्वर्ण मूर्तिया नहीं चल सकती। लेकिन, क्राइस्ट का शूली पर लटका

हुआ व्यक्तित्व गरीब के मन के बहुत करीब आ जाता है। हिन्दुस्तान के ईसाई होने की बहुत संभावनाएँ हैं उसी तरह, जैसे पश्चिम के कृष्ण के निकट आने की संभावनाएँ हैं। पश्चिम के मन में क्रास का कोई अर्थ नहीं रहा। न पीड़ा है, न दुःख है। वे दुःख और पीड़ा के दिन गये। सचाई यह है कि अब एक ही दुःख है कि सम्प्रभाव बहुत है, इस सम्प्रभाव के साथ क्या करे? सब कुछ है, अब इसके साथ क्या करें? निश्चित ही कोई नाचता हुआ प्रतीक, कोई गीत “गाता प्रतीक, कोई नृत्य करता प्रतीक पश्चिम के करीब पड़ जायेगा और इसलिए पश्चिम का मन अगर कृष्ण की धून से भर जाय तो आस्थयं नहीं।

प्रश्न आचार्यथी, कृष्ण कासेसनेस के अंदोलन का नेतृत्व किए एस्ट गिन्सबर्ग ने किया है। चिन्तक वर्ग पर अभी तक कोई प्रभाव पढ़ा नहीं। बूसरा आप एफलुएट सोसाइटी के लिए अभी कल ही बात करते थे। वे चतुर्वर्ष थे। गीता में भी, भागवत में भी सुदामा का जो वर्णन आता है उसमें यह बारिदध्य का प्रतीक है। कृष्ण के जन्मने में भी सुदामा ‘पुरवर्द्धी’ का प्रतीक था? गीता में “कलो केशव कीर्तनात और यज्ञानाम यज्ञोपि” का क्या अर्थ है?

उत्तर नहीं, मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि उस दिन कोई गरीब न था और न मैं यह कह रहा हूँ कि आज पश्चिम में कोई गरीब नहीं है। खोजने से पश्चिम में गरीब मिलेगा ही। गरीब तो है। समाज गरीब नहीं है। गरीब उस दिन भी थे, सुदामा उस दिन भी था। लेकिन, समाज गरीब नहीं था। समाज की गरीबी और बात है, गरीब व्यक्ति खोज लेना और बात है। आज हम भारत के समाज को गरीब कह सकते हैं, हालांकि बिडला भी मिलेगे। लेकिन, बिडला के कारण भारत का समाज अमीर नहीं हो सकता। सुदामा के कारण उस दिन का समाज गरीब नहीं हो सकता। हिन्दुस्तान के इनने गरीब समाज में अमीर तो मिलेगा ही। पश्चिम के, अमरीका के सम्प्रभाव समाज में भी गरीब तो मिलेगा ही। यह सचाल नहीं है। सचाल यह है कि बहुजन, समाज का पूरा-का-पूरा ढाढ़ा सम्प्रभाव था। जो उस दिन जीवन की सुविधा थी वह अधिकतम लोगों को उपलब्ध है। सम्प्रभाव समाज में उत्सव प्रवेश कर सकता है। गरीब समाज में उत्सव प्रवेश नहीं कर सकता। गरीब समाज में उत्सव धीरे-धीरे विद्या होता जाता है। या उत्सव भी फिर एक काम बन जाता है। गरीब समाज उत्सव भी मनाता है, दिवाली भी मनाता है तो कर्ज लेकर मनाता है। होली भी खेलता है तो पिछले वर्ष के पुराने कपड़े बचाकर

खलता है। होली के दिन फटे पुराने कपड़ों को सिलाकर निकल आता है। जब होली हो खलनी है तो फटे पुराने कपड़ों से खेली जा सकती है। तो मत खेलो। होली का मतलब ही यह है कि कपड़े इतने ज्यादा हैं कि रग में भिगाये जा सकते हैं। गरीब आदमी भी होली तो खेलेगा, लेकिन वह पुराने ढांचे को ढो रहा है सिर्फ। ब्रह्मा होली के दिन तो जो सबसे अच्छे कपड़े थे वही पहनकर निकलते थे लोग। उसका मतलब ही यह था कि इतने अच्छे कपड़े हैं, तुम रग डालो। लेकिन, हम कपड़ा पुराना सी कर आ गये हैं और रग डालने वाले को भी धोखां दे रहे हैं। हमारा होली खेलना सिर्फ ढोना है एक रुढ़ि को। इसलिए, होली के दिन कोई कपड़े पर रग डाल जाता है तो दिल दुखता है। दिल खुश होना चाहिए कि किसी ने रग डालने योग्य माना। लेकिन, दिल दुखता है। क्योंकि, कपड़े भारी महरे पड़ गये हैं। हा, पश्चिम में होली खेली जा सकती है। अभी कृष्ण का नृत्य चल रहा है, आज नहीं कल होली पश्चिम में प्रवेश करेगी, इसकी घोषणा की जा सकती है। पश्चिम होली खेलेगा। उनके पास कपड़े हैं, रग भी है, समय भी है, फुर्सत भी है, अब वे खेल सकेंगे और उनकी होली में एक आनन्द होगा, उत्सव होगा जो हमारी होली में नहीं हो सकता है। सपन्नता में मेरा मतलब है, 'आन द होल'। पश्चिम का समाज सम्पन्न हुआ है। और, जब समाज पूरा सपन्न होता है तो उस समाज का दरिद्र भी उस समाज के सपन्न से बेहतर होता है, जो समाज दरिद्र होता है। यानी आज अमरीका का दरिद्रतम आदमी पैसे पर उतनी पकड़ बाला नहीं है जितना हिन्दुस्तान का सम्पन्नतम आदमी। हिन्दुस्तान के अमीर-से-अमीर आदमी की पैसे पर पकड़ इतनी ज्यादा होगी, क्योंकि चारों तरफ दीन दरिद्र समाज है। अगर वह जोर से न पकड़े तो कल वह भी दीन दरिद्र हो जायेगा।

मैंने मुनी है एक घटना कि एक बहुत मस्त, स्वस्थ, तगड़ा भिखारी एक घर के सामने भीख मार रहा है। गृहिणी ने उसे दिया है, दिल खोलकर दिया है। फिर, उसकी तरफ गौर से देखा कि वह स्वस्थ है, सुन्दर है। उसने उससे पूछा कि तुम्हें देखकर तो ऐसा नहीं लगता कि गरीब घर में पैदा हुए हो। लेकिन, गरीब कैसे हो गये? उसने कहा, इसी भाति, जिस भाति एक दिन तुम हो जाओगी। जितने मजे से तुमने दिया है इतने मजे से मैं भी देता रहा था। ज्यादा देर न लगेगी कि तुम सड़क पर आ जाओगी।

जब चारों तरफ गरीब समाज हो तो धन की पकड़ पैदा होती है। अमीर से अमीर आदमी धन को पकड़ लेता है। जब समाज सम्पन्न हो तो गरीब आदमी धन को छोड़ पाता है, क्योंकि कल किर मिल सकता है। कोई असुरक्षा नहीं है, कोई भय नहीं है। इस अर्थ में मैंने कहा।

दूसरी बात जो पूछी है वह भी सोच लेनी चाहिए — वह यह पूछी है कि पश्चिम में ऐलन गिन्सबर्ग और इस तरह के लोगों से वह जो “बैकथ्रो” है, वह जो छलांग है, आ रही है। ये सारे के सारे लोग — चाहे ‘एक्जिस्टेशियलिस्ट’ हो, चाहे बीटल हो, चाहे बीटनिक हो और चाहे हिप्पी हो चाहे किसी भी तरह के लोग हो, ये सारे के सारे लोग ‘इरेंशनलिस्ट’ हैं। ये सारे के सारे लोग अबुद्धिवादी हैं। पश्चिम का कोई बुद्धिवादी अभी इन बातों से प्रभावित नहीं है। इसके कारण है

यह जो अबुद्धिवादी पीढ़ी पश्चिम में पैदा हुई है ‘इरेंशनलिस्ट जेनरेशन’ यह पिछली पीढ़ी के अति बुद्धिवाद से पैदा हुई है। यह उसकी प्रतिक्रिया है। असल में किसी ममाज में अबुद्धिवादी तभी पैदा होते हैं जब बुद्धिवाद चरम पर पहुच जाता है। रहस्य की बात तभी शुरू होती है जब तर्क बिल्कुल प्राण लेने लगता है। परमात्मा की बात तभी शुरू होती है जब पदार्थ छाती पर पत्थर होकर बैठ जाता है। और ध्यान रहे, गिन्सबर्ग, सार्व या कामू या कोई झोर ये सारे लोग जहां धूम फिरकर एक्सर्ड में खो जाते हैं, अतर्क में खो जाते हैं उससे आप यह मत ममक्ष लेना कि ये हमारे ग्रामीण अबुद्धिवादी जैसे लोग हैं। ये अपने अबुद्धिवादी में बड़े बुद्धिवादी हैं। इनका अतर्क्य होना, अचिन्त्य होना ऐसा नहीं है जो किसी थदालू का है। वह चैतन्य जैसा ही है। वह उसका ही अचिन्त्य होना है जिसने चिन्तन कर करके, थक थक करके पाया है कि सब बेकार हैं। तो गिन्सबर्ग के बक्तव्य या उसकी कविता अगर एक्सर्ड है, अगर अतर्क्य है या बुद्धि के परे है या अबुद्धिवादी है या बुद्धिविरोधी है तो ध्यान रखना, उसके इस अबुद्धिवादी होने में एक सिस्टम है, एक व्यवस्था है। नीत्से ने कहा है— कि मैं पागल हूँ, बट माई मैडनेस हैज इट्स ओन लाजिक’, लेकिन मेरे पागल होने का अपना तर्क है। मैं कोई ऐसा पागल नहीं हूँ जैसा पागल होते हैं। मेरे पागल होने का भी कारण है। मेरे पागल होने की भी मिस्टर्म है। यह अबुद्धिवाद जो है, जानकर है, होणपूर्वक है, चेष्टापूर्वक है। इस अबुद्धिवाद का अपना आग्रह है। इस अबुद्धिवाद में बुद्धिवाद का स्पष्ट विरोध है। खण्डन है। निश्चित ही जब अबुद्धिवाद खण्डन करता है, तो तकों से नहीं करता। क्योंकि अगर वह तकों से करे तो वह खुद ही बुद्धिवादी हो जाता है। नहीं, वह अतर्क जीवन व्यवस्था से करता है।

गिन्सबर्ग एक छोटी-सी ‘पोएट्स मेदरिंग’ में कविता पढ़ रहा था। कविता उसकी बेमानी है, मीनिंगलेस है। एक कड़ी की दूसरी कड़ी से कोई समति नहीं है। अगर है भी तो इसनी ही समति है कि एक ही आदमी से निकलती है। आकृति पहली कड़ी और दूसरी कड़ी में कोई ताल मेल नहीं है। प्रतीक भाष्ट बेहूदे है।

प्रतीकों का परम्परा से कोई सम्बन्ध नहीं है। बड़ा दुस्साहस है। असगत दीखने से बड़ा दुस्साहस जगत में दूसरा नहीं है। इसलिए, असगत होने का दुस्साहस केवल वही कर सकता है जिसे प्राणों के बहुत गहरे में सगति का भाव हो। जो जानता है कि मैं सगत हूँ ही, कितना ही असगत बक्तव्य दूँ इससे कोई बहुत फर्क नहीं पड़ता है। मेरी सगति सुरक्षित है। जिनकी सगति बहुत आत्मिक नहीं है, वह एक-एक बक्तव्य को तौलकर चलेगे, क्योंकि डर है कि अगर दो बक्तव्य असगत हो गये तो भीतर की असगति प्रकट न हो जाय। जो भीतर बिल्कुल ही कसिस्टेंट है, 'ही कैन एफोर्ड टु बी अनकसिस्टेंट'। तो गिन्सबर्ग बड़ी असगत कविता कर रहा है। एक आदमी खड़े होकर कहता है कि बड़े दुस्साहसी आदमी मालूम पड़ते हो, लेकिन कविता करने से क्या होगा? कोई 'एक्ट', कोई 'डीड', कोई कृत्य करके दिखाओ साहस का? तो गिन्सबर्ग सारे कपड़े छोड़ कर नगा खड़ा हो जाता है। वह कहता है, यह मेरी कविता की आखिरी कड़ी है। और, उस आदमी से कहता है, कृपा करो और तुम भी नगे खड़े हो जाओ। वह आदमी कहता है यह मैं कैसे हो सकता हूँ? और वह सकते में आ जाता है, क्योंकि किसी को ख्याल न था कि कविता का अत ऐसा हो सकता है। उससे लोग पूछते हैं, गिन्सबर्ग तुमने ऐसा क्यों किया? गिन्सबर्ग कहता है, हम सोचकर नहीं करते हैं, ऐसा हो गया। मुझे ऐसा लगा कि अब क्या करूँ? यह आदमी पूछता है कि कुछ करके दिखाओ? यह 'स्पोटेनियस' है, यह कोई सोचा विचारा नहीं है, लेकिन अतक्षर है। कविता से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। कोई कालिदाम, कोई भवभूति, कोई रवीन्द्रनाथ यह नहीं कर सकते। वे कवि हैं, परम्परा से बघे हुए कवि हैं। यह आदमी कर पा रहा है, क्यों? यह यही कह रहा है कि तर्क से सोच सोचकर कब तक जियोगे? कब तक तुम दो और दो जोड़कर जिन्दा रहेगे? छोड़ो खाते-बही छोड़ो हिसाब और जिन्दा रहो। अब यह जिन्दा रहना कैसा होगा? इसलिए गिन्सबर्ग जैसे व्यक्ति मेरे लिए गाव के गदार, ग्रामीण, श्रद्धालु नहीं है। एक बहुत पक्के और गहरी बुद्धिवादी परम्परा की आखिरी कड़ी है। और, जब बुद्धिवादी परम्परा भरती है, जब वह सीधा पर पहुँच जाती है, तब उसे इन्कार करने वाले लोग पैदा होते हैं।

मैं मानता हूँ कृष्ण भी एक बहुत बड़ी बुद्धिवादी परम्परा की आखिरी कड़ी है। हिन्दुस्तान ने बुद्धि के चरम शिखर छुए हैं। हमने शब्दों की खाल उधेड़ डाली है। हमारे पास बहुत ऐसा साहित्य है जो दुनिया की किसी भाषा में अनुवादित नहीं हो सकता, क्योंकि इतने बारीक शब्द दुनिया की किसी भाषा के पास

नहीं है। हमारे पास ऐसे शब्द हैं जो पूरे पृष्ठ पर एक ही शब्द होता है। क्योंकि, हम इतने विशेषण लगाते हैं उसमें, इतनी शर्तें लगाते हैं, इतनी बारीकिया करते हैं कि पूरे पृष्ठ पर एक ही शब्द फैल जाता है। कृष्ण भी एक अत्यत बुद्धिवादी परम्परा के आखिरी छोर है। जहा हम सब सोच चुके। जहा हम वेद-उपनिषद् सोच चुके। जहा हम पतञ्जलि सोच चुके और जहा हम कपिल और कणाद सोच चुके। जहा हमने बृहस्पति से लेकर सब सोर्वे डाला है और सोच सोच कर हम बुरी तरह थक गये हैं। उसकी आखिरी कड़ी में यह आदमी कृष्ण आता है। यह कहता है अब बहुत सोचना हो गया, अब हम जीना शुरू करे। 'लेट अस नाऊ लिव' बहुत हो चुका सोचना। अब जियेगे कब ?

इसरी बात भी इस सन्दर्भ में आपसे कहूँ कि चैतन्य भी बगाल में ऐसे ही समय में आते हैं। जिस गाव में चैतन्य पैदा हुए वह हिन्दुस्तान के तार्किकों का अन्यतम गाव है। नवद्वीप, जहा वे जन्मे, हिन्दुस्तान के श्रेष्ठतम तार्किक वहा द्वितीये थे। वह काशी थी तार्किकों की। हिन्दुस्तान भर का तक नवद्वीप में जन्मा और ध्रेष्ठ तार्किक नव्य न्याय वहा पैदा हुआ। वहा हमने तर्क की ऐसी ऊचाइया छोई जो अभी पश्चिम छूने को है। पश्चिम के पास जो भी तर्क है सब 'ओल्ड' है, नव्य नहीं है। अभी अरस्तू पश्चिम के लिए तर्कशास्त्री है। नवद्वीप में हमने अरस्तू के आगे कदम बढ़ाये। इतना ही कह देना काफी था कि कोई पण्डित नवद्वीप से आता है, फिर उससे कोई विवाद नहीं करता था। उससे विवाद करना बेकार था। वह नवद्वीप से आता है, इतनी गवाही काफी थी। वह जीत का सटिफिकेट लेकर आता है। उस नवद्वीप में चैतन्य पैदा हुए। चैतन्य खुद भी वैसे ही तार्किक हैं। उन्होंने बड़े तार्किकों को उस नवद्वीप में हराया। वहा कोई एकाध तार्किक न था, वह घर के घर तार्किक थे। वह पूरा गाव तार्किकों का था। पूरे नवद्वीप को जीतकर लौटना असम्भव था। उस नवद्वीप में चैतन्य भवसे जीत गये। और एक दिन यही चैतन्य झाझ मजीरा लेकर सड़क पर नाचने लगे और कहा अचिन्त्य है सत्र ! इस बात का तो बड़ा अर्थ है। यह उसी तर्क की आखिरी परम्परा का हिस्सा है। यह चैतन्य उस तर्क की गहनतम चिन्तना, सोज, अन्वेषण, बारीक से बारीक समझ के बाद यह कहता है कि हम नासमझ होने को राजी हैं। अब हम समझदार नहीं होना चाहते। अब समझदारी हम छोड़ते हैं। अब हम नाचेगे नासमझी से। अब हम तर्क से सत्य को न खोजेगे, अब हम जियेगे। तर्क की आखिरी कड़ी पर जीना शुरू होता है।

**प्रश्न :** अभी चंतस्य महाप्रभु और उनके अचिन्त्य भेदाभेद की बात हुई, गिन्तवर्ग की भी बात हुई। इसके पहले शब्द के मत बन जाने को विशिष्टता बापने बतायी और यही बात नाम-कोर्तन पर लागू होती है। साथ ही सुबह के प्रबचन में आपने कहा था कि शब्द का उपयोग किया नहीं कि हैत भाव सहा हो जाता है। लेकिन, कृष्ण ने बड़े विश्वास के साथ कहा है कि जो पुरुष ओम् अक्षय रूप चाहू का उच्चारण करता हुआ उसके अर्थ स्वरूप मेरा चिन्तन करता हुआ शरीर त्याग करता है वह पुरुष परम गति को प्राप्त होता है। आचार्यजी, तब कृष्ण के शब्द ओम् से अद्वैत का बोध केसे होता है? ओम् 'रेशनल' है या 'इरेशनल' है?

**प्रश्न :** आपके ध्यान प्रयोग में ओम् को प्रवेश देने से क्या क्या बाधाएँ थीं?

उत्तर समझ में आ जायेगा, उत्तर से समझ में आ जायेगा। शब्द मत्य नहीं है। सत्य को प्रकट करना ही तो भी शब्द से किया नहीं जा सकता है। सत्य तो नि शब्द में ही अभिव्यक्त होता, मौन में ही प्रकट होता है। मौन ही मत्य की मुखरता है। मौन ही सत्य के लिए वाणी है। ऐसा मैंने सुबह कहा। पूछा जाना है, अगर ऐसा है तो फिर आप कैसे कहते हैं कि शब्द बीज बन सकते हैं और शब्द साधना के लिए आधार बन सकता है? दोनों में कोई विरोध नहीं है। दोनों की बात अलग है।

मैंने कहा सुबह कि शब्द सत्य नहीं है। लेकिन, जो असत्य में घिरे है, सत्य तक पहुँचने के लिए असत्य के महारे ही चलते हैं, या तो वे छलाग लगाये और सीधे शब्द से मौन में कूद जाय। अगर छलाग लगाने की हिम्मत न हो तो शब्द को धीरे धीरे-छोड़ते चले। बीज शब्द का मतलब है, सब शब्दों को छोड़ो एक शब्द को पकड़ो। हिम्मत नहीं है सब एक साथ छोड़ने की तो एक पकड़ो। फिर अन्तत उस एक को भी छोड़ना पड़ता है। वह जो बीज शब्द है वह भी सत्य तक नहीं ले जाता, मिर्फ मदिर के द्वार तक ले जाता है। जैसे, मदिर के बाहर जूते छोड़ देन पड़ते हैं ऐसे ही उस बीज शब्द को भी बाहर ही छोड़ देना पड़ता है। मदिर में प्रवेश करते वक्त वह साथ नहीं जाता। उतनी दुविधा भी साथ नहीं ले जायी जा सकती। उतना शोर गुल भी बाधा है। सब शब्द तो बाधा है, बीज शब्द भी अन्तत बाधा है। जब बीज शब्द भी खो जायेगा, तब तुम समझना कि ठीक हुआ। नाम जपना, लेकिन फिर अजपा नाम पर पहुँच जाना। जप से शुरू करना और अजपा पर पहुँच जाना, एक छड़ी आयेगी, जप

छूटे और अजप में कूद जाना। यह सारा मामला वही है। चाहे पहले छोड़ो, या आखिर मेरे छोड़ो। कहीं छोड़ देना पड़ेगा। जो पहले छोड़ने की हिम्मत रखते हैं, वह पहले छोड़ दे, जो नहीं छोड़ने की हिम्मत रखते हैं, वाकी शब्द छोड़ें, एक पकड़ ले और उसको अन्त मेरे छोड़ दे। मैं छलांग का आभ्रह करता हूँ। इसलिए साधना मेरे जहा तक बने बीज शब्द से बचने की बात करता हूँ। उसे पीछे भी छुड़वाना पड़ेगा। रामकृष्ण के साथ ऐसा हुआ, उससे समझ मेरा आज्ञायेगा।

रामकृष्ण ने, मा का स्मरण करके ही, परमात्मा को मा स्वरूप मानकर ही साधना की। फिर वे उस जगह पहुँच गये जहा मंदिर की आखिरी सीढ़ी आ गयी। मा के साथ पहुँच गये। लेकिन, उस सीढ़ी के बाद तो अकेले ही प्रवेश हो सकता है। मा को भी साथ नहीं लिया जा सकता। वह तो प्रतीक था, वह तो शब्द था। वह तो रूप था, वह तो लहर थी। अब सागर मेरे प्रवेश करने के पहले उसे छोड़ देना जरूरी है। गमकृष्ण बड़ी मुश्किल मेरे पड़ गये। रामकृष्ण की जिन्दगी मेरे सबसे बड़ी मुश्किल उस दिन आती है जिस दिन मा को छोड़ने का सबाल उठता है। जिसको इतने प्रेम से सवारा हो, इतने आसुओ से सीधा हो, इतना नाच नाच कर जिसको रमाया हो, पुकार पुकार कर जिसको बचाया हो, श्वास-श्वास और हृदय की धड़कन-धड़कन मेरे जिसको लेकर जिया गया हो, आखिरी क्षण सबाल उठता है कि इसे छोड़ दूँ? तोतापुरी नाम के एक अद्वैतवादी साधक के पास वह सीखते हैं इसका छोड़ना। तोतापुरी के लिए प्रतीक का कोई मतलब नहीं है। वह कहता है छोड़ो इस मा को इससे नहीं चलेगा, अकेले ही जा सकते हो। रामकृष्ण आख बन्द करते हैं, फिर आख खोल देते हैं और कहते हैं नहीं, यह नहीं हो सकता। मैं कैसे छोड़ सकता हूँ? मैं अपने को छोड़ सकता हूँ मा को नहीं छोड़ सकता। तोतापुरी कहते हैं, कोशिश करो क्योंकि तुम अगर अपने को छोड़ दोगे तो मंदिर के बाहर रह जाओगे, मा मंदिर के भीतर चली जायेगी, उससे तुम्हे क्या होगा? इससे कोई मतलब नहीं है। तुम्हे ही जाना है सत्य के सागर मेरे, तो छोड़ो, यह द्वृत नहीं चलेगा, ये दो नहीं चलेगे। यह प्रेम की गली बहुत सकरी है। सत्य की गली बहुत सकरी है। यहा आखिर मेरे एक ही बच जाता है। रामकृष्ण नहीं छोड़ पाते। तीन दिन तक तोतापुरी मेरनक करते हैं। फिर तोतापुरी कहते हैं, तो मैं जाऊँ? रामकृष्ण कहते हैं, एक बार और मेरे साथ मेरनक कर लो। क्योंकि, तड़पता तो हूँ उसके लिए जो अनजाना रह गया है। लेकिन, प्रतीक, जिन्हें बहुत प्रेम किया बड़े जोर से भीतर बध गये हैं। तोतापुरी एक कांच का टुकड़ा लेकर आता है। रामकृष्ण आख बन्द करके बैठते हैं, सोतापुरी कहता है कि मैं तुम्हारे माथे पर

आज्ञानक जहा है वहा काच से काट दूगा तुम्हारी चमड़ी को । जब खून बहने लगे और कटाई तुम्हे काच की मालूम पड़ने लगे तब तुम भीतर एक तलवार उठाकर मां के दो टुकड़े कर देना । रामकृष्ण कहते हैं, मा को और दो टुकड़े और तलवार से । क्या कहते हैं आप ? और, किर वहा तलवार लाऊगा कहा से ? तोतापुरी कहता है, पागल हो तुम, जो मा नहीं थी, उसको तुम ले आये तो जो तलवार नहीं है, उसको भी ले आओ । जब इतना बड़ा क्षण तुमने सत्य कर लिया जो नहीं है कही भी, तो एक तलवार और साकार कर लो, इसमें क्या देर लगेगी ? तुम कुशल हो, तलवार भी आ जायेगी । क्षूटी तलवार काम करेगी । रामकृष्ण आख बन्द करके बैठते हैं । क्योंकि, तोतापुरी ने कहा है, आज वह चला जायेगा । वह इस तरह बचकाने खेल में नहीं पड़ सकता । वह पहले ही छलाग लगवा लेने वाले लोगों में से है । रामकृष्ण आखिरी सीढ़ी पर दिक्कत में पड़े हैं । वह काच उठाकर रामकृष्ण के माथे को काट देता है । इधर वह माथे को काटता है, उधर रामकृष्ण हिम्मत जुटाकर तलवार से दो टुकड़े मा के कर देते हैं । मूर्ति गिर जाती है । रामकृष्ण परम समाधि में खो जाते हैं । बापस लौटकर वह कहते हैं आखिरी बाधा गिर गयी, 'दी लास्ट बैरिंग' । जो शब्द है, जो मन है, जो बीज है, वह मब के सब 'लास्ट बैरिंग' बनेगे । एक दिन तलवार उठाकर उनको तोड़ना पड़ेगा, फिर बड़ा कष्ट पड़ता है । इसलिए, मैं कोशिश करता हूँ कि उनकी जगह न बने अन्यथा पीछे मुझे और एक झज्जट करनी होगी ।

दूसरा सबाल पूछा है कि कृष्ण कहते हैं कि ओम् रूप में मुझे देखकर, जानकर, जी कर, पहचान कर, अत क्षण में तू मुझको उपलब्ध हो जायेगा । तो यह ओम् शब्द है या नहीं ?

यह ओम् बड़ा अद्भुत शब्द है । यह असाधारण इसलिए कि अर्थहीन शब्द है । सब शब्दों में अर्थ होते हैं । इस शब्द में कोई अर्थ नहीं है । इसलिए, ओम् का हम दुनिया की किसी भाषा में अनुवाद नहीं कर सकते । कोई उपाय नहीं है । अर्थ हो तो अनुवाद हो सकता है । यह शब्द जिन्होंने बनाया उन्होंने शब्द और नि शब्द के बीच में एक कड़ी खोजी । शब्द है अर्थपूर्ण, नि शब्द न अर्थ है न अनर्थ है । इन दोनों के बीच में एक निज बनाया ओम् का । भाषा की समस्त शब्द ध्वनिया अङ्ग में का विस्तार है, 'ए यू एम' का विस्तार है । उन तीनों को जोड़कर इस ओम् को बना लिया । किर, इस ओम् को शब्द की तरह लिखा भी नहीं, इसको पिक्टोरियल बना लिया । इसका चित्र बना दिया, जिसमें कि यह ही स्थाल में न रहे कि यह कोई शब्द है । यह एक चित्र है और वहा खड़ा है, जहाँ शब्द समाप्त होते हैं और नि-

शब्द शुरू होता है। यह सीमात का पत्थर है। इसलिए, कृष्ण कहते हैं कि अगर तू मुझे (ओम् रूप का मतलब है अर्थात्, शब्दातीत, भाषाकोश में नहीं मिलता है जो, ऐसे शब्द में) सीच सके अत क्षण में तो तू मुझे उपलब्ध हो जायेगा। क्योंकि, यह सीमात का शब्द है। अन्त समय अगर इस सीमात पर कोई पहुँच सके तो छलांग हो जायेगी। इस ओम् शब्द ने भारत के मन में बहुत कुछ बदला है। बड़ा विस्तीर्ण अर्थ दिया है। इतना विस्तीर्ण अर्थ दिया है कि अब इसमें कोई सीमा नहीं रही। लेकिन, ओम् के पाठ का सवाल नहीं है। ओम् के बनुभव का सवाल है। और, अगर ध्यान में आप उत्तररेखे से जब सब शब्द खो जायेंगे तब आपके भीतर ओम् की ध्वनि होने लगेगी। यह आपको करनी नहीं पड़ेगी। अगर करनी पड़ी तो धोखा हो सकता है कि वह आप ही कर रहे हैं। इसलिए भी मैंने ध्यान में ओम् की जगह नहीं बनायी है। अगर हम अपनी तरफ से ओम् की ध्वनि करे तो हो सकता है, वह शब्द-ध्वनि ही होगी। ओम् की ध्वनि वह है जब हमारे सब शब्द खो जाते हैं तो शेष रह जाती है। उसको कहना चाहिए वह 'काजिमिक साइलेस' की ध्वनि है। जब सब मिट जाता है सब बुद्धि, सब विचार, तब एक ध्वनि का स्पदन रह जाता है जिसकी इस देश में ओम् की तरह व्याख्या की गयी है। उसकी व्याख्या और भी हो सकती है। वह हमारी व्याख्या है। जैसे, आप रेलगाड़ी में बैठकर अगर चाहे तो चक्के की आवाज की बहुत तरह की व्याख्या कर सकते हैं। चक्का जब आवाज करता है तो वह आपके लिए आवाज नहीं करता, न आपसे कुछ कहता है, लेकिन आप जो चाहें, आप उसमें खोज सकते हैं। वह आपकी खोज होगी।

जब विराट शून्य उत्पन्न होता है तो विराट शून्य की अपनी ध्वनि है अपना सगीत है। उस ध्वनि का नाम अनाहत है। वह किसी कारण से पैदा नहीं होती। हम ताली बजाते हैं तो यह आहत नाद है। दो चीजों की टक्कर से पैदा होता है। आहत नाद का अर्थ है दो चीजों की टक्कर से पैदा हो। ढोल पाठते हैं आहत नाद — ढोलते हैं तो ओठ और जीभ का आहत नाद है। जब सब बन्द हो जाता है जहा दो ही नहीं रह जाते, एक ही रह जाता है तब अनाहत नाद होता है। बिना किसी चोट के, बिना किसी दो के टकराये ध्वनि होती है। वह जो ध्वनि है अनाहत उसे इस देश के मनीषियों ने ओम् की तरह व्याख्या की है। दूसरे देश के मनीषियों ने भी उसकी व्याख्या की है तो वह भी ओम् के करीब करीब है। जैसे, किंशिमन 'आमीन' कहते हैं। वह 'आमीन' की व्याख्या है। वह ओम् की व्याख्या है। मुसलमान भी आमीन कहते हैं। उपनिषद् लिखा जायेगा तो सब लिखने के बाद आखिर मे-

ऋषि लिखेगा—ओम् शाति शाति शाति । मुसलमान आयत पढ़ेगा, शास्त्र लिखेगा तो आखिर मे सब लिखने के बाद लिखेगा आमीन, आमीन, आमीन । उससे पूछो, आमीन का अर्थ क्या है ? आमीन अर्थहीन है । वह उसी 'काजिमक' ध्वनि की व्याख्या है ।

अग्रेजी मे कुछ शब्द है 'ओमनीसिएट', 'ओमनी प्रजेट', 'ओमनी पोटेट' । ये बड़े अजीब शब्द हैं । इनका अग्रेजी भाषा शास्त्र के पास व्युत्पत्ति का सूत्र नहीं है । ये सब ओम् से बने हैं । 'ओमनीसिएट' का मतलब है, जिसने ओम् को देखा । यह बहुत मुश्किल मामला है । इसलिए, अग्रेजी भाषा शास्त्री बड़ी कठिनाई मे पड़ता है कि इम 'ओमनीसिएट' का मतलब क्या है ? 'बन् हू है ज सीन द ओम्' । 'ओमनी प्रजेट' का क्या मतलब है ? जो ओम् मे उपस्थित हो गया । जो ओम् के माथ एक हो गया । 'ओमनी पोटेट' का क्या मतलब है ? कि, जिसको उतनी ही ऊर्जा मिल गयी, जितनी ओम् की है । जो उतना ही शक्तिशाली हो गया जितना ओम् है । यह ओम् की व्याख्या बहुत-बहुत रूपो मे पकड़ी गयी है । बड़े मजे की बात है कि जैन हिन्दुओ का कुछ भी स्वीकार न करेगे । लेकिन ओम् को इन्कार न करेगे । बौद्ध हिन्दुओ का कुछ भी स्वीकार न करेगे । लेकिन ओम् को इन्कार न करेगे । अगर जैन, बौद्ध और हिन्दुओ के बीच कोई एक शब्द है जो समान है तो वह ओम् है । अगर हिन्दू, बौद्ध, जैन, ईसाई, मुसलमान, सबके बीच कोई शब्द एक समान है तो वह ओम् है । हा, उनकी व्याख्या आमीन की है । यह उसे ओम् कहते हैं । वह हमारा गाड़ी के चाक मे सुना गया फर्क है । पक्का नहीं कहा जा सकता कि वह आमीन है या ओम् है । लेकिन, एक बात पक्की है कि आमीन मे भी और ओम् मे भी एक ही ध्वनि की व्याख्या की गयी है । वह ध्वनि अतिम है । जब हम सब शब्दो के पार पहुचते हैं तो एक ध्वनि शेष रह जाती है जो 'काजिमक साउण्ड' है ।

जैन फकीर कहते हैं अपने माधक को कि तुम उम जगह जाओ और ऐसी बात खोजकर ले आओ जहा एक हाथ की ताली बजती है । यह एक हाथ की ताली जैन फकीरो का अपना ढग है अनाहत को कहने का । उन्हे अनाहत का कोई पता नहीं है । वह कहते हैं कि जहा एक हाथ की ताली बजेगी वहां ओम् रह जायेगा । जहां तक दो हाथ की ताली बजेगी वहा तक शब्द होगे, ध्वनिया होगी ।

मैंने जानकर ध्यान मे ओम् को बिल्कुल जगह नहीं दी । क्योंकि, अगर आपने उच्चारण किया ओम् का तो आपके द्वारा पैदा की हुई ध्वनि होगी, वह आहत नाद होगा । मैं प्रतीक्षा करता हूँ उस ओम् की कि जब आप बिल्कुल खो जायेंगे

और ओम् प्रणट होना और आपके भीतर से जायेगा । वह हुंकार होगी, वह बनाहत होगा । वह 'काञ्चिक साउण्ड' होगी । उस दिन, जैसा कृष्ण कहते हैं और ठीक कहते हैं कि अगर ओम् को तुमने समझा और जाना और जिया तो आखिरी क्षण में तुम मुझे उपलब्ध हो जाओगे । लेकिन, वह आपके द्वारा कहा गया ओम् नहीं है । मरते बवत अगर आप अपने ओठ से ओम् ओम् कहते रहें तो बेकार भेहनत करेंगे । शांति से मर सकते थे, और शांति से मरना हो जायेगा । ओम आना चाहिए, प्रकट होना चाहिए, विस्फोट होना चाहिए ।



## पर्व : तेरह

आत्म-समरण तथा कर्म आकर्म विकल्प  
योग और संन्यास  
शंकर की परिचय  
परिचय ही असत्य का पर्याय  
शंकर का 'काम्योदाइज'  
दुष्कृति सौभाग्य  
गीता पर टीकाएँ  
शंकर और शिल्प का जोड़  
बर्यिद की 'मुप्रस्त्रेन्द्रित' की बात





## १३

प्रश्न . आपने कहा है कि श्रीकृष्ण के मार्ग में कोई साधना नहीं है । केवल 'सेलक रिमेकरिंग' पुनर्जीवन-स्तरण हैं । लेकिन, आप सात शरीरों की साधना की बात करते हैं । सात शरीरों के सदर्शन में कृष्ण को साधना की रूपरेखा क्या होगी, कृपया इसे स्पष्ट करें ।

उत्तर कृष्ण के विचार दर्शन में साधना की कोई जगह ही नहीं है । इसलिए, सात शरीरों का भी कोई उपाय नहीं है । साधना के मार्ग पर जो मील के पथर मिलते हैं वह उपासना के मार्ग पर नहीं मिलते । साधना मनुष्य की जिस

भासि विभाजित करती है उस तरह उपासना नहीं करती। साधना सीढ़ियाँ बनाती है इसलिए आदमी के व्यक्तित्व को सात हिस्सों में तोड़ती है। फिर, एक-एक सीढ़ी चढ़ने की व्यवस्था करती है। लेकिन, उपासना आदमी के व्यक्तित्व को तोड़ती नहीं। कोई खण्ड नहीं बनाती। मनुष्य का जैसा अखण्ड व्यक्तित्व है उस पूरे को ही उपासना में लीन कर देती है। इसलिए साधकों ने बहुत-सी सीढ़ियाँ बनायी हैं, बहुत-से मील के पथर लगाये हैं, बहुत-बहुत विभाजन किये हैं। सप्त शरीरों में विभाजन किया है मनुष्य के व्यक्तित्व का। मात चक्रों में विभाजन किया है मनुष्य के व्यक्तित्व का। तीन हिस्सों में विभाजन किया है मनुष्य के व्यक्तित्व का। अलग-अलग साधकों ने मनुष्य के व्यक्तित्व को अलग-अलग सीढ़ियों में बाटकर साधना की है। लेकिन, उपासना के जगत में मनुष्य जैसा है, उस पूरे मनुष्य को सिर्फ स्मरण करना है। स्मरण खण्ड खण्ड नहीं होता। साधना खण्ड खण्ड हो सकती है। किसी आदमी को स्मरण ऐसा नहीं आता कि मैं थोड़ा परमात्मा हूँ और थोड़ा नहीं हूँ। जब आता है तो पूरा आता है, अन्यथा नहीं आता है।

स्मरण की प्रक्रिया ही अलग है। स्मरण की प्रक्रिया 'सड़न' है। 'प्रेजुअल' नहीं है। स्मरण पूरा-का-पूरा एक ही छलाग में धटित होता है। स्मरण एक विस्फोट है। साधना का एक क्रम है। स्मरण का कोई क्रम नहीं है। जैसे, उदाहरण के लिए ऐसा समझें—आपको किसी का नाम पक्का मालूम है। बक्त पड़ा है और याद नहीं आ रहा है। आप कहते हैं, ओठ पर रखा है और याद नहीं आ रहा है। असल में दोनों बातें आपको याद आ रही हैं कि मुझे याद भी है और याद नहीं भी आ रहा है। बड़ी असमजस की स्थिति है। आपको मालूम है कि मालूम है। आपको भली भाति पता है कि पता है। लेकिन याद नहीं आ रहा है। विस्मरण का मतलब ही यही है कि जो याद है और याद नहीं आ रहा है। मन के किसी गहरे तल को पता है कि याद है, लेकिन मन के ऊपरी तल तक खबर नहीं पहुँच पाती। बीच में सेतु नहीं बन पा रहा। गहरा मन कहता है कि मालूम है, लेकिन उथला मन कहता है कि मुझ तक खबर नहीं आ रही। इसलिए, हम कहते हैं कि जीभ पर रखा है, लेकिन याद नहीं आ रहा है। दोनों बातें एक साथ याद आ रही हैं। फिर आप क्या करते हैं? आप बड़ी कोशिश करते हैं, हजार उपाय करते हैं, मिर पर बल देते हैं, मुटियाँ कस लेते हैं। सब तरह में खोजते हैं, बीनते हैं और जितना खोजते हैं उतना ही पाते हैं कि याद नहीं आ रहा है। क्यों? क्योंकि जितना आप खोजते हैं उतने आप 'टेंस' और तनाव से भर जाते हैं। और जितने तनाव

से भर जाते हैं उतना ही आपके गहरे मन और आपका संबंध टूट जाता है। तनाव से भरा हुआ मन खण्डित हो जाता है, शान्त मन इकट्ठा हो जाता है। जितभी कोशिश करते हैं कि याद करें, याद करें, याद करें, उतनी ही आप भूमिकल में पड़ते हैं। क्योंकि, जो आदमी वह कह रहा है कि मैं याद करें, वह साथ वह भी स्मरण रखे हुए है कि मुझे याद नहीं आ रहा है। ये दोहरे सुझाव उसको एक साथ मिल रहे हैं। और, मन तनाव जा रहा है। वह याद नहीं कर पायेगा। फिर वह आदमी कहता है कि नहीं आता याद, तो जाने दो। वह आदमी बैठकर सिचरेट पीने लगा है या बगिया में काम करने लगा है। या रेडियो स्रोतकर सुनने लगा है, या अलबार पढ़ने लगा है और अचानक उसे याद आ गया है। क्यों, इस आकस्मिक अ-तनाव की हालत में, या 'रिलेन्सेशन' की हालत में क्यों याद आ गया? तनाव मिट गया है, आपने याद करने की बात छोड़ दी। दोनों मन जो टूटे थे, याद करने वाला और जिसे याद था वे दोनों लड़ रहे थे। याद करने वाला कहता था, याद आना चाहिए और तनाव दुखा था। वही बाधा थी, वही तनाव था। वह छूट गया। आप बगिया में काम कर रहे हैं और अचानक याद आ गया। जो प्रयास से नहीं सोजा जा सका था वह अप्रयास में उपलब्ध हो गया है। लेकिन, जब यह याद आती है तो अद्वृती नहीं आती है। वह पूरा ही याद आ जाता है। क्योंकि, पूरा ही आपको मालूम है।

यह मैंने उदाहरण के लिए कहा। यह हमारी सामान्य स्मृति की बात है। इस स्मृति में मन के दो हिस्से काम करते हैं, जिसको हम 'कासेस माइण्ड' कहते हैं, वह—जिसको हम 'अनकॉसेस माइण्ड' कहते हैं, वह—हमारा चेतन मन और हमारा अचेतन मन। इसे हम ऐसा समझ ले सकते हैं कि चेतन मन हमारा वह हिस्सा है मन का, जिससे हम चौबीस घण्टे काम लेते हैं। अचेतन मन हमारे मन का वह हिस्सा है जिससे हमें कभी-कभी काम लेना पड़ता है। चौबीस घण्टे काम नहीं होते। चेतन मन हमारा प्रकाशित मन है, अचेतन मन हमारा अन्धकार में ढूँढ़ा मन है। जिस स्मृति का मैंने उदाहरण लिया, यह अचेतन में दबी है और चेतन याद करने की कोशिश कर रहा है। चेतन, अचेतन के सिलाफ लड़ रहा है। जब तक लड़ेगा तब तक याद नहीं आयेगा। जैसे ही लड़ाई छोड़ेगा, दोनों मिल जायेंगे और याद आ जायेगा। जो अचेतन के द्वार पर खड़ा था बिल्कुल चेतन से प्रवेश करने को, उसी को आप कह रहे थे कि जीभ पर रखा है। परमात्मा की स्मृति, या आत्म स्मृति, या 'सेल्फ रेमेमरिंग' जरा गहरी बात है। वह अचेतन में नहीं दबा है। उसके नीचे एक और अचेतन मन है जिसको हम 'कलेक्टिव अन-

'आंसेस' कहे—हम सदका समूहिक अचेतन मन। इसे ऐसा समझो, जेतन मन है जैवशर्वा उपर वाह प्रकाशित हिस्सा, उसके नीचे दबा हुआ हमारा अचेतन मन है। हमारा ही व्यवितरण अव्यवहारे में दबा है। उसके नीचे हम सदका समूह मन है। वह भी अव्यवहार में दबा है। और, उसके भी नीचे 'काजिमक अनकांसेस' है जो समस्त जगत, समस्त जीवन, समस्तता का अध्यकार में दबा हुआ मन है। परमात्मा की स्मृति उस 'काजिमक अनकांसेस' में, समष्टि अचेतन में दबी पड़ी है। स्मरण का कुल मतलब इतना ही है कि हम अपने भीतर इतने एक हो जाय कि न केवल अपने अचेतन से जुड़ जाय बल्कि समूह अचेतन से जुड़ जाय, उसके नीचे समष्टि अचेतन से जुड़ जाय। उकाहरण के लिए—

जब आप ध्यान में बैठते हैं, और जब ध्यान की गहराई आती है तो वहले आप व्यक्ति चेतन में उत्तरते हैं। आप रोने लगते हैं, हसने लगते हैं। कोई नाचता है, कोई डोलता है। यह आपके व्यक्ति अचेतन में दबी हुई क्रियाएं प्रकट होती हैं। लेकिन, दस मिनट पूरे होते-होते आप व्यक्ति नहीं रह जाते, आप एक 'कलेक्टिविटी' हो जाते हैं। आप अलग अलग नहीं रह जाते। जो गहरे उत्तर आते हैं वे समूह अचेतन में उत्तर आते हैं। किर, उस क्षण में उन्हें ऐसा नहीं लगता कि मैं नाच रहा हूँ। उस बक्त ऐसा लगता है कि नाच चल रहा है और मैं एक हिस्सा ही गया हूँ। उस बक्त उन्हें ऐसा नहीं लगता है कि मैं हस रहा हूँ, ऐसा लगता है कि हसी फूट रही है और मैं भी भागीदार हूँ। उस बक्त ऐसा नहीं लगता है कि मैं हूँ, बल्कि ऐसा लगता है कि मैं कुछ नाचता हूँ, सारा जगत नाच रहा हूँ। चाढ़-जारे नाच रहे हैं, पांधे-पक्षी नाच रहे हैं। आम-पास जो भी है, कण-कण वह सभी नाच रहा है—उस नाचने के हम एक हिस्से हो गये हूँ। तब आप 'कलेक्टिव अनकांसेस' में उत्तर गये हैं। तब आप समूह अचेतन में उत्तर गये हैं। उसके भी नीचे दबा हुआ 'काजिमक अनकांसेस' है। उसमें जिस दिन आप उत्तर जायेंगे और यह समूह चित्त जब और गहरा होता जायेगा तो आपको यह भी पता नहीं चलेगा कि सब नाच रहे हैं और मैं एक हिस्सा हूँ। आपको यह भी पता नहीं चलेगा कि मैं हिस्सा हूँ। आपको यही पता चलेगा कि सब और मैं एक हूँ। हिस्सा भी नहीं। 'टोटल' का मैं एक भाय नहीं हूँ, मैं ही टोटल हूँ। जिस क्षण ऐसी प्रतीति होगी, उस क्षण 'काजिमक अनकांसेस' से तीर की तरह कोई स्मरण आपके अचेतन मन तक उठकर आ जायेगा। उस बक्त आपको स्मरण होता है कि मैंने जाना—जो था; पर मुझे पता नहीं था कि मैं कौन हूँ। मैं बहु हूँ—अह बह्यास्म का बोध उस क्षण में आपके चेतन तक फैल जाता है।

यह स्मरण की प्रक्रिया मैंने चार हिस्सों में बाटी आपको समझाने के लिए। कृष्ण इसको बाटते ही नहीं। मैंने सिर्फ समझाने के लिए बाटी है। वर्ना यह आपको कठिन होगा। यह अलग—अलग चार चीजें नहीं हैं, यह एक ही चीज का फैलाव है। गहरे, और गहरे, और गहरे। और, जितना गहरा होता है उतना हम उस खण्ड को अलग नाम दे रहे हैं। बहुत गहरे मे हमें पता ही है कि हम परमात्मा हैं। हमें परमात्मा होना नहीं, सिर्फ 'हिंस्कवर' करना है। सिर्फ आविष्कार करना है, उधाड़ना है। ऋषि कहते हैं उपनिषद में कि 'स्वर्णै पात्र से ढका है जो सत्य, तू उसे उधाड़ दे।' परमात्मा होना हमारी उपलब्धि नहीं है, सिर्फ उधड़ना है। 'अनकवर' होना है। कुछ जो ढका है वह उधड़ जाय। किससे ढका है? हमारी ही विस्मृति से ढका है। हम अपने मन के बिन्कुल अग्रिम भाग मे जी रहे हैं। जैसे, कोई बड़े भवन मे रहता है लेकिन दालान मे जीता हो। वह दालान मे ही पैदा हुआ हो, दालान मे ही बढ़ा हुआ हो, दालान में ही जिया हो और भूल ही गया हो, उसे पता ही न हो कि बड़ा भवन भी है उस दालान से जुड़ा हुआ। असल में कोई दालान अकेली नहीं होती है। कभी देसी है कोई दालान अकेली? दालान किसी बड़े भवन का हिस्सा ही होती है। उस बड़े भवन का हमें कोई पता नहीं। हम अपने चेतन मन मे ही जी रहे हैं। वह हमारी दालान है, वह हमारा सिर्फ बाहर का हिस्सा है जहा छपरी पड़ती है। इससे ज्यादा नहीं है। लेकिन, हमें कोई पता नहीं है भीतर का। उस भीतर का हमारे बहुत गहरे मे स्मरण है। पर, उस भीतर की अपनी गहराई मे हम कभी नहीं उतरे। ध्यान रहे इस भीतर की गहराई मे उतर जाना खण्ड मे नहीं होगा। चर्चा और समझाना खण्ड मे होगा। साधना के मार्ग से जो चलते हैं वह एक-एक खण्ड को साधने की कोशिश करते हैं। कृष्ण कहते ही इतना है कि तुम परमात्मा हो, इसे स्मरण करना। इसलिए, उपनिषद् बार-बार कहते हैं—स्मरण करो, स्मरण करो। सिर्फ 'रिमेवर' करना है, कौन है हम। यह हम सिर्फ भूल गये हैं। यह हमने कुछ खो नहीं दिया है या कुछ ऐसा भी नहीं है कि हमारा कोई अविष्य है, जो हमे होना है। सिर्फ विस्मरण हुआ है। लेकिन, हधर बात बदल जाती है। साधना पथ मे सिर्फ विस्मरण नहीं है, साधना के ख्याल मे कोई चीज खो गयी है या कोई चीज अभी हुई ही नहीं है, वह होने वाली है। अथवा इसमे ऐसा है कि साधना के क्रम मे कुछ चीज गलत जुड़ रही है जिसे काटना होगा, अलग करना होगा। स्मरण की प्रक्रिया मे न कुछ काटना है, न कुछ अलग करना है, न कुछ गलत जुड़ गया है, न हमें कुछ होना है, न हम अन्यथा हो गये हैं। हम जो है वह है। सिर्फ विस्मरण है। बस विस्मरण के अतिरिक्त और कोई पर्दा नहीं है।

कृष्ण का सारा—का—सारा आधार उपासना का है और उपासना का सारा आधार स्मरण का है। लेकिन, भूल गये उपासक 'स्मरण' को। उसकी जगह उन्होंने 'सुमिरन' शुरू कर दिया। अब वह सुमिरन कर रहे हैं। बैठे हैं, और राम राम जप रहे हैं। राम राम जपने से याद न आयेगा कि मैं राम हूँ। स्मरण शब्द धीरे-धीरे सुमिरन बन गया और स्मृति शब्द धीरे-धीरे सुरति बन गया। उस शब्द के दूसरे ही 'कनोटेशन' और दूसरे ही अर्थ हो गये। एक आदमी बैठकर अगर यह भी दोहराता रहे कि मैं परमात्मा हूँ, मैं परमात्मा हूँ तो भी कोई हल न होगा। इस दोहराने से, 'रिपीटीशन' से कोई वास्ता नहीं है। इससे भ्रम भी पैदा हो सकता है कि वह आदमी नीचे तो उत्तर ही न पाये और चेतन मन में ही समझ-ने लगे कि मैं परमात्मा हूँ, किन्तु भीतर के तलों का उसे कोई बोध न हो।

तो फिर स्मरण की क्या होगी प्रक्रिया? क्या होगा मार्ग? क्या होगा ढार? ऐरे देखे, अगर आप शान्त और शून्य सिर्फ बैठ जाय, कुछ न करें, तो शायद कुछ हो सकता है। क्योंकि आपका कुछ भी करना बाधा बनेगा। असल में करने से हम वह पा सकते हैं जो हम नहीं हैं। करने से वह मिल सकता है जो हमारे पास नहीं है। स्मरण का तो बहुत गहरा अर्थ 'टोटल इनेक्टिविटी' है, अकर्म है। इसलिए कृष्ण बहुत जोर देते हैं अकर्म पर। वह निरन्तर कहे जाते हैं अकर्म। जैसा मैंने आपसे कहा, छोटी सी बीज भी भूल जाते हैं तो जब आप 'एक्टिवली' उसको याद करने की कोशिश करते हैं, नहीं कर पाते। लेकिन जब आप उस हिस्से को छोड़ देते हैं, उस हिस्से में इनेक्टिव हो जाते हैं, अकर्म में हो जाते हैं, तब वह स्मरण आ जाता है। अगर हम 'टोटल इनेक्टिविटी' में हो जाय तो वह जो 'काजिम्क अनकासेस में है, वह जो ब्रह्माद में पढ़ा है वह एकदम तीर की तरह उठता है। जैसे बीज फूटता है एक अकुर में ऐसे ही हमारे चित्त के किसी गहरे में बीज टूटता है और एक अकुर उठकर हमारे चेतन मन के प्रकाश तक आ जाता है और हम जानते हैं कि हम कौन हैं। अकर्म है सूत्र। माधवना में सदा कर्म है सूत्र, साधना में सदा किया है मार्ग। उपासना में सदा अक्रिया है ढार।

कृष्ण के इस अकर्म को थोड़ा ठीक से समझ लेना अच्छा होगा। मैं मानता हूँ कि इसे ठीक से नहीं समझा जा सका। इसे समझना बहुत मुश्किल था। क्योंकि जिन लोगों ने कृष्ण पर टीका लिखी और जिन लोगों ने कृष्ण की व्याख्या की, उनकी किसी की भी पकड़ में अकर्म नहीं बैठ सका या तो अकर्म का मतलब उन्होंने समझा कि ससार छोड़कर भाग जाओ। लेकिन छोड़कर भागना एक कर्म है। छोड़ना एक कर्म है, कृत्य है। अकर्म का निरन्तर यही मतलब समझा यद्या

कि तुम कुछ भी मत करो । दुकान मत करो, काम मत करो, गृहस्थी मत करो प्रेम मत करो, धारा जाओ सब छोड़कर । सिफे 'भागना' करो । सिफे 'त्यागना' करो । लेकिन त्याग उतना ही कर्म है जितना भोग कर्म है । हिन्दुस्तान की लब्दी परम्परा त्याग रही है, छोड़ रही है, धारा रही है और कोई गौर से नहीं देखता कि कृष्ण बिल्कुल भागे हुए नहीं है । कभी कभी हँरानी होती है कि एक लम्बी परम्परा भी अंधी हो सकती है । कोई यह नहीं देख रहा है कि जो आदमी जो अकर्म की बात कर रहा है वह गहन कर्म से खड़ा हुआ है । इसलिए भागना उसका अर्थ नहीं सकता । कृष्ण तीन शब्दों का प्रयोग करते हैं - अकर्म, कर्म और विकर्म ।

सिफे करने को ही वे कर्म नहीं कहते । अगर करने को ही कर्म कहे तब तो अकर्म में कोई जा ही नहीं सकता । फिर तो अकर्म हो ही नहीं सकता । ऐसे करने को कृष्ण कर्म कहते हैं जिसमें कर्ता का भाव है । जिसमें करने वाले को यह स्वाल है कि मैं कर रहा हूँ । मैं कर्ता । 'इगोसेट्रिक' कर्म को वे कर्म कहते हैं । ऐसा कर्म जिसमें कर्ता भौजूद है । जब तक मैं करने वाला हूँ तब तक हम जो भी करेंगे वह कर्म है । अगर मैं सन्यास ले रहा हूँ तो सन्यास एक कर्म हो गया । अगर मैं त्याग कर रहा हूँ तो त्याग एक कर्म हो गया । अकर्म का मतलब ठीक उल्टा है । अकर्म का मतलब है, ऐसा कर्म जिसमें कर्ता भौजूद नहीं है । जिसमें मैं कर रहा हूँ, ऐसा कोई बिन्दु नहीं है । ऐसा कोई केन्द्र नहीं जहा से यह भाव उठता है कि मैं कर रहा हूँ । अगर मैं कर रहा हूँ, यह खो जाय तो सभी कर्म, अकर्म हैं । कर्ता खो जाय तो सभी कर्म अकर्म हैं । इसलिए कृष्ण का कोई कर्म, कर्म नहीं है । सभी कर्म अकर्म हैं ।

कर्म और अकर्म के बीच में विकर्म को जगह है । विकर्म का अर्थ है विशेष कर्म । अकर्म तो कर्म ही नहीं है । कर्म कर्म है । विकर्म का अर्थ है विशेष कर्म । इस शब्द को भी ठीक से समझ लेना चाहिए । यह दोनों के बीच में खड़ा है । विशेष कर्म किसे कहते हैं? जहा न कर्ता है और न कर्म । फिर भी चीजें तो होती । आदमी श्वास तो लेगा ही । न कर्म है, न कर्ता है । फिर भी श्वास एक प्रकार का कर्म तो है ही । खून तो गति करेगा ही शरीर में । भोजन तो पचेगा ही । यह कहा पड़ेगा । यह विकर्म है । यह मध्यम है । यहा न कर्ता है, न कर्म है । साधारण मनव्य कर्म में है । सन्यासी अकर्म में है, परमात्मा विकर्म में है । वहा न कोई कर्ता है, न कोई कर्म है । वहा चीजें ऐसी हो रही हैं जैसे श्वास चलती है । वहा चीजें बस हो रही हैं । 'जस्ट हेपेनिंग' । आदमी के जीवन में भी ऐसा कुछ है । वह सब वह परमात्मा के द्वारा ही किया जा रहा है । क्या आप श्वास ले रहे हैं

विकर्म है। लेकिन अपनी श्वास लेते होंगे, फिर कभी भर न सकेंगे। मौत खड़ी हो जायेगी और आप श्वास लिये चले जायेंगे। या जरा श्वास रोककर ढेढ़े हो पता चलेगा कि नहीं रुकती है। जरा श्वास को बाहर ठहरा दे, तो पता चलेगा तब्दी है। भीतर जाकर रहेगी। जीवन की बहुत क्रियाएं ऐसी ही हैं। अकर्म में कहीं आदमी प्रवेश कर पाता है जो विकर्म के इस रहस्य को समझ लेता है। तब वह कहता है, फिर मैं नाहक क्यों कर्ता बनूँ? जब जीवन का सभी महत्वपूर्ण हो रहा है तो मैं क्यों बोझ लूँ? वह बड़ा होशियार आदमी है, वह 'बाइजमैन' है। वह उस तरह का आदमी है जैसा कि मैंने सुना है—

एक आदमी ट्रेन में सवार हुआ और अपनी पेटी-बिस्टर को अपने मिर पर लेकर बैठ गया। पास-पडोस के यात्रियों ने उससे कहा कि पेटी-बिस्टर मिर पर क्यों लिये हो? नीचे रख दो। उस आदमी ने कहा, ट्रेन पर बहुत बजन पड़ेगा। तो यह सोचकर कि मैं अपने सिर पर रखे हूँ कि थोड़ा बजन मैं भी बटा ल। यात्री बहुत हँसान हुए। उन यात्रियों ने कहा, तुम पागल तो नहीं हो? तुम अपने सिर पर भी रखोगे तो भी ट्रेन पर तो बजन पड़ता ही है। ट्रेन पर तो बजन पड़ेगा ही और तुम पर नाहक पड़ेगा। वह आदमी हँसने लगा। उस आदमी ने कहा कि मैं तो समझता था तुम सब ससारी हो; लेकिन सन्यासी मालूम पड़ते हो। मैं तो तुम्हें देखकर ही यह बोझा सिर पर रखे था। वह आदमी एक सन्यासी था। उसने उन सबसे पूछा, पूरी जिन्दगी में तुमने बजन कहा रखा है? अपने सिर पर रखा है या परमात्मा पर छोड़ दिया है? क्याकि, तुम अपने मिर पर भी रखो तो भी परमात्मा पर ही पड़ता है। यह तुम अपने मिर पर क्यों रखे हो? उसने न केवल नीचे रखा बजन, बल्कि बजन के ऊपर बैठ गया। उसने कहा अब मैं अपनी स्थिति में बैठूँ। यह भेरा छग है। लेकिन, सोचकर कि तुम सबको अजीब न लगे—मैंने ऐसा किया। जो विकर्म को समझ लेगा वह अकर्म में उतर जायेगा।

कर्म हमारी स्थिति है, जैसे हम जी रहे हैं। विकर्म हमारी समझ होगी, अकर्म हमारा होना होगा। कृष्ण की साधना, उपासना, जो हम नाम इना चाहे, उसमें गहरे में अकर्म है। आपको कुछ करना नहीं है, जो हो रहा है उसे होने देना है। आपके कर्ता को मिट जाने देना है। जिस दिन आपका कर्ता मिटा कि बीच की दीवाल टूट जायेगी और स्मरण आ जायेगा। कर्ता ही आपकी बाधा है। 'द हूअर', वह जो करने वाला है वह कह रहा है मैं कर रहा हूँ। वही पर्त है स्टील की, लोहे की, जिसके नीचे दबी पड़ी है स्मृति। और, जब तक आप कर्ता बने रहेंगे तब तक स्मृति नहीं लौटेगी। इसलिए, बैठकर राम दोहराने से नहीं होगा। बैठकर

यह कहने से कि मैं परमात्मा हूँ, नहीं होगा। क्योंकि, मैं आपसे कहता हूँ कि वह आपका कर्ता ही दोहरा रहा है। यह आप ही दोहरा रहे हैं। कृपा करके इस कर्ता को जाने दें।

कौसे जायेगा कर्ता? विकर्म को समझें। कर्म करते रहे और विकर्म को समझें। कर्म करते रहे, और जीवन को समझें। जिन्होंने की समझ बतायेगी कि मैं क्या कर रहा हूँ [न मैं जन्मता हूँ, न मैं अरता हूँ, न मैं श्वास लेता हूँ। न मुझसे कभी किसी ने पूछा कि आप क्या होना चाहते हैं? न मुझसे कभी कोई पूछेगा कि अब जाने का बक्त आ गया, आप जाना चाहते हैं? न मुझसे कभी कोई पूछता कि कब मैं जाना हो जाता हूँ और कब बूझा हो जाता हूँ? कोई मुझसे पूछ ही नहीं रहा है। मेरा कुछ होना नहीं है। मैं न रहूँ तो क्या फर्क पड़ जायेगा? मैं नहीं था तो क्या फर्क पड़ा था? ये चाद तारे कुछ फीके थे? फूल कुछ कम खिल्ले थे? पहाड़ कुछ छोटे थे? बादल कुछ गम्भीर थे? सूरज कुछ परेशान था? मैं नहीं था तब सब ऐसा था, मैं जब नहीं रहगा तब भी सब ऐसा ही रहेगा। मैंने पानी पर खीची गयी रेता मिट जाय ऐसे मैं मिट जाऊँगा। कहीं कुछ फर्क नहीं पड़ेगा। सब ऐसा ही चलता रहेगा। सब ऐसा ही चलता रहा है। तो मैं नाहक इस 'मैं' को क्यों ढोक? जब मेरे बिना सब का सब चलता रहेगा तो मैं भी मेरे बिना क्यों न चलता रहूँ? जब मेरे बिना कहीं भी कोई फर्क नहीं पड़ेगा तो मैं ही नाहक मुझमें इस मैं से क्यों अन्तर कर लू।]

विकर्म की समझ का नाम प्रश्ना है। विकर्म की समझ का नाम 'विजडम' है। जो विकर्म को समझ लेता वह सब समझ लेता है। तब कर्म एकदम अकर्म हो जाता है। विकर्म कीविया है, वह दीर्घ का द्वार है जो कर्म से मुख्यते बक्त पड़ेगा। विकर्म और अकर्म मे स्मरण बन जाता है। आपको ज्ञाना नहीं पड़ता। जिस स्मरण को आप लेंगे वह कर्म होगा। जो स्मरण आयेगा, वही आपके कर्ता के बाहर से आयेगा—'कॉर्जिमक' से आयेगा, ब्रह्माण्ड से आयेगा। इसलिए, वेद को हम कह सके कि यह अपौरुषेय है। इसका यह मतलब नहीं है कि जिन्होंने लिखा वे आदमी नहीं थे। हम इसलिए अपौरुषेय कह सके कि जो सबरे उन्होंने वेद मे दी है वे उनके पुरुष से नहीं आयी थी। वे उनके पुरुष के पार से आयी। वे उनकी 'पर्सनलिटी' के बाहर से आयी। वे उनके हृतों के आवे से आयी थी, वे 'कॉर्जिमक' सबरे थीं। 'इतिहास' कह सके कि वेद ईक्षवर का बचता है। उसका यह मतलब नहीं है कि 'वेद ही ईश्वर का' मत्तन है। जब भी किसी के अस्तित्व अवित के पार से कोई लबर आती है वह ईश्वर का बचता होता है। इसलिए, अुहम्मद के कुरान

को कहा जा सका कि वह ईश्वर का इलाहाम है । उसकी तरफ से दिया गया ज्ञान है । इसलिए, जीसस कह सके कि मैं तुमसे जो कह रहा हूँ वह मैं नहीं कहता, वह परमात्मा ही कह रहा है । इसलिए कृष्ण तो सीधा कह सके कि मैं हूँ ही नहीं, परमात्मा ही हूँ । इसलिए यह सब मैं ही करवा रहा हूँ— यह खेल, यह युद्ध, यह सब मैं ही करवा रहा हूँ । और तू घबड़ा मत अर्जुन, क्योंकि जिन्हे तू मारेगा, उन्हे मैं पहले ही मार चुका हूँ । यह कृष्ण इतनी सहजता से कह सके । अर्जुन, तेरा काम उन तक खबर पहुँचाने का है कि तुम मर गये हो, और कोई बात नहीं है ज्यादा । यह काम मैं कर ही चुका हूँ, यह हो ही चुका है । यह जो व्यक्ति बोल रहा है मह अब व्यक्ति नहीं है, 'कॉर्जिमक' खबर है । यह ब्रह्माड से, गहरे से आयी हुई सूचना है कि जो सामने तुझे जिन्दा दिलायी पड़ते हैं, मैं कहता हूँ, ये मर ही चुके हैं । घड़ी दो घड़ी की देर है । उम्मे तू निमित्त भर है । तू यह मत सोच कि तू मार रहा है । तू मार रहा है यह ध्यान होते ही तू भयभीत हो जायेगा । कर्ता आया कि भय आया । कर्ता आया कि चुनाव आया । कर्ता आया कि चिन्ता आयी, कर्ता आया कि सताप आया । तो तू यह सोच ही मत, तू यह जान ही मत । तू भूल मे पड़ा है, तू यह नहीं कर रहा है । तू 'कॉर्जिमक' के हाथों मे, जहा के हाथों मे एक इशारे से ज्यादा नहीं है, एक 'जैस्चर' से ज्यादा नहीं है । करने दे उसे, वह जो कर रहा है । तू अपने को छोड़ । इसलिए वे कहते हैं— सब धर्मान्परित्यज्य— तू सब छोड़-छोड़कर आ । तू अपने को छोड़कर आ, तू अकर्म मे आ जा ।

अकर्म प्रक्रिया है स्मरण की ।

प्रश्न आचार्यजी, अभी आपने कर्व, अकर्म और विकर्म पर बड़ी गहरी और बड़ी असरात्मक चर्चा की । कर्मोर प्रकाश के समय भी जिस समय महेश योगी के विदेशी शिष्यों के सामने आत्म साक्षात्कार की बात आयी थी, उस समय भी आपने उन्हें अकर्म का बोध कराया था । इससे पहले कोई 'कन्क्यूजन' नहीं रहता है । लेकिन कृष्ण ने जो कुछ गीता मे कहा, उसमें बोड़ा-सा 'कन्क्यूजन' अहर विज्ञानी पड़ता है । गीता के चौथे और पांचवें अध्याय मे अकर्म दशा पर कृष्ण ने भी बोर दिया है, किन्तु गीता की अकर्म दशा शोहरी भासित होने के कारण 'कन्क्यूजन' पंचा करती है, कि "सब कर्म करके, वे कर्त्त्व किये न हों, ऐसा होना योग बताया है" और "कर्म कर्त्त्व न करते हुए सब कर्म किये हों, ऐसा होना सन्धात है" इस शोहरी बात का अर्थ क्या है, इसका प्रकाश ढालें ?

प्रश्न शाकरभाष्य में ज्ञानी को कर्म की अकरत नहीं— ऐसा शाकरभाष्य  
महसूल करते हैं। और, कर्मों को कर्म करना उनको मंदूर है।  
और यही आपने बताया कि हमें कुछ करना नहीं है, तो अर्जुन  
केबल यंत्र ही नहीं रह जायेगा? उसकी 'इच्छीवीच्छलिटी' का  
क्या होगा?

उत्तर कृष्ण कहते हैं, सब कर्म किये हो और फिर भी ऐसा होना कि कर्म  
किये ही नहीं, योग है। अर्थात् अकर्ता से प्रतिष्ठित होना योग है। दूसरी बात  
वे जो कहते हैं, वे इसी बात का दूसरा पहलू है। कुछ भी न करते हैं, ज्ञानना  
कि सब कुछ किया है, सन्यास है। सन्यास और योग एक ही सिवके के दो पहलू  
हैं। निश्चित ही पहलू उल्टे होते हैं। लेकिन, दोनों पहलू जुड़े हुए भी होते हैं। और  
तथ करना बहुत मुश्किल है कि पहला पहलू कहा खत्म होता है और दूसरा कहा  
शुरू होता है। दोनों की एक दूसरे की तरफ पीठ होती है। अगर हम इस सिवके  
को चीड़े फाड़े और तथ करने जाय कि सामने बाला पहलू कहा खत्म होता है और पीछे  
बाला पहलू कहा शुरू होता है तो बड़ी मुश्किल में पड़ेंगे। वे दोनों कहीं खत्म नहीं  
होते, दोनों बिल्कुल ही एक साथ जुड़े होते हैं। जिसे हम पृथग्भूमि कह रहे हैं, जिसे  
हम पिष्ठला पहलू कह रहे हैं वह अगले पहलू की ही पीठ होती है। अगर हम ज्ञानी  
को उसके बेहरे की तरफ से देखेंगे तो वह योगी मालूम पड़ेगा, उसकी पीठ की  
तरफ से पकड़ेंगे तो वह सन्यासी मालूम पड़ेगा। कृष्ण की दोनों परिशाशाओं से  
कोई 'कन्फ्यूजन' नहीं है। वह ज्ञानी की दोनों तरफ से परिभाषा कर रहे हैं। वह  
यह कह रहे हैं, वह करते हुए न-कर्ता हैं, न करते हुए कर्ता हैं। और, ध्यान रहे,  
ज्ञानी में ये दोनों बातें एक साथ ही हो सकती हैं, अलग नहीं हो सकती। क्योंकि, जो  
आदमी करते हुए न कर्ता है वही न करते हुए कर्ता हो सकता है। ये दोनों बातें  
एक ही चीज के पहलू हैं। कोई भी सिवका एक पहलू का नहीं होता। अब तक  
बनाया नहीं जा सका। दूसरा पहलू होगा ही। कहा से हम पकड़ते हैं, यह हम पर  
निर्भर करेगा। कृष्ण दोनों तरफ से पकड़ रहे हैं। और, वह अर्जुन को सब तरफ  
से समझाने की कोशिश कर रहे हैं। वह उससे यह कह रहे हैं कि अगर तू योग  
में उत्सुक हो गया हैं तो योगी का यह मतलब है कि करते हुए न करने को उपलब्ध  
हो। अगर तू कहता है कि मुझे योग बर्गरह से कोई मतलब नहीं, मैं तो सन्यास  
के लूगा, सब छोड़कर चला जाऊगा, मुझे योग बर्गरह की गहन चर्चा में मत उल-  
ज्ञाइये। मैं यह दुख, यह भय, यह मोह देखकर पीड़ित हूँ। मैं इनको नहीं मारता,  
मैं सन्यास ले लेना चाहता हूँ। तो वह उससे कहते हैं कि तू सन्यासी ही हो जा।  
लेकिन, सन्यासी का भत्तलब ही यह है कि जो कुछ न करते हुए भी सब करता है।

वह अर्जुन को सब तरफ से बेरा डाल रहे हैं और इसलिए कई जगह उनके बकरव्य 'कृष्णाडिकटरी' मालूम पड़ते हैं। आपके साथ मेरी वही हालत है। आप पर मैं सब तरफ से बेरा डालता हूँ, आप एक तरफ से कहते हैं, यह नहीं, तो मैं कहता हूँ जाने दें, चलो दूसरी तरफ से शुरू करे। लेकिन, आप कही मेरी भी राजी हो जाय। आखिर मेरी आप पायेगे कि दूसरी तरफ से राजी होकर आप उस छोर पर भी पहुँच गये हैं, जहा आप राजी नहीं हुए थे। अर्जुन कही मेरी भी राजी हो जाय। वह योगी होने को राजी हो जाय तो कृष्ण कहते हैं, चलो, चलेगा। क्योंकि, वह जानते हैं कि एक सिक्के मेरे दो पहलू होते हैं। इससा पहलू बच नहीं सकता। तुम कहते हो, हम सीधा सिक्का लेंगे। लो। उसका उल्टा हिस्सा कहा जायेगा? वह तुम्हारे हाथ मेरे पहुँच जायेगा।

एक ताओइस्ट कहानी है, वह मैं आपसे कहूँ। उससे ख्याल मे आ जाय। लाओत्से के फकीरों ने बड़ी अद्भुत कहानिया कही है। ऐसी कहानिया दुनिया मेरी किसी ने भी नहीं कही है।

एक फकीर है, जगल मेरहता है, उसने दस बीस बन्दर पाल रखे हैं। एक दिन सुबह कोई आ गया है जिज्ञासु और उससे ऐसा सबाल पूछा है जैसा सबाल आपने पूछा। उसने कहा—कभी आप ऐसा कहते हो, कभी आप ऐसा कहते हो। हम बड़े कल्पयुजन मेरे पड़ जाते हैं। साक्ष आप कुछ कहते हो, सुबह आप कुछ कहते हो, हम बड़ी उलझन मेरे पड़ जाते हैं। उस फकीर ने कहा, तू बैठ और देख। उसने अपने बन्दरों को बुलाया और उनसे कहा, सुनो बन्दरों, आज से तुम्हारे भोजन मेरी परिवर्तन किये देता हूँ। बन्दरों को रोज सुबह चार रोटिया मिलती थी, शाम तीन रोटिया मिलती थी। उसने कहा कि आज से तुम्हे सुबह तीन रोटिया मिलेगी, शाम चार रोटियां मिलेगी। बन्दर एकदम नाराज हो गये और उन्होंने कहा, हम बगावत कर देंगे। यह बरदाश्त के बाहर है। यह परिवर्तन हम नहीं सह सकते। हम तो अपने पुराने नियम पर कायथ रहेंगे। चार रोटी सुबह चाहिए। उसने कहा, यह नहीं होगा। तीन रोटी मिलेगी सुबह, चार रोटी मिलेगी शाम। बन्दर हमला करने को उतारू हो गये। उसने कहा, अच्छा भाई, ठहरो, तुम चार सुबह ले लेना। बन्दर बड़े प्रसन्न हुए। उसने उस आदमी की तरफ मुह फेरा और कहा, सुनते हो, रोटिया सात ही मिल रही है। मगर, तीन सुबह मिलेगी, इससे बन्दर बहुत नाराज है। अभी भी सात ही मिलेगी। वे चार सुबह ले कि चार साक्ष ले, कि तीन सुबह ले कि तीन साक्ष ले। लेकिन, अब वे प्रसन्न ह।

अर्जुन को कृष्ण ऐसे ही बेरहे हैं। वे कभी उसको कहते हैं कि अम्ब

तू तीन ले ले । वह कहता, यह नहीं हो सकता । वे कहते हैं, चार ले ले । रोटिया सात ही है । उसको कैसे अर्जुन लेने को राजी होगा यह अर्जुन पर छोड़ते हैं । इसलिए, इतनी लम्बी गीता चलती है । वह बार-बार बदलते हैं कि अच्छा यह कर ले । अच्छा तू भक्त हो जा, अच्छा तू योगी हो जा । तू कर्मयोग साध ले, तू भक्तियोग साध ले । नहीं तो ज्ञानयोग ही साध ले । तू क्या कहता है, वही साध ले । यद्यपि वही रोटिया सात है । अर्जुन को गीता के आखिर आखिर तक समझ में आता है कि रोटिया सात है और यह आदमी सात रोटियों से ज्यादा देगा नहीं । कहीं से भी लिया जाय, इससे कोई बहुत फर्क नहीं पड़ता ।

दूसरे प्रश्न का उत्तर शकर की परिभाषा चुनाव की है । शकर कर्म के सख्त विरोध में है । वे कहते हैं, कर्म ही बन्धन है । वे कहते हैं, कर्म ही अज्ञान है । कर्म को छोड़े बिना उपाय नहीं । यहा वे कृष्ण के अकर्म को कर्म को छोड़ना बना लेते हैं । कर्म छोड़ो । और कर्म के छोड़ने का मतलब भी वे यही लेते हैं कि जो जो कर्म का ससार है, जो कर्म करने वाले का जगत है उससे भाग जाओ । कर्म के सम्बन्धों से हट जाओ । ज्ञानी के लिए कोई कर्म नहीं है । यह बात तो सच है; लेकिन शकर इसे जो व्याख्या देते हैं वह ठीक नहीं है, अधूरी है । ज्ञानी के लिए कोई कर्म नहीं है यह बिल्कुल ही सच है क्योंकि ज्ञानी के लिए कोई कर्ता नहीं है । लेकिन, 'एम्फेसिस' कर्ता के न होने पर होनी चाहिए । अर्जुन से जैसा कि कृष्ण कह रहे हैं । शकर 'एम्फेसिस' को बदलते हैं । वह कर्म पर 'एम्फेसिस' डालते हैं कि कर्म नहीं होना है । असल में कर्म के दो हिस्से हैं, कर्ता और कर्म । कृष्ण का पूरा जोर इसपर है कि कर्ता न रह जाय । कर्म तो रहेगा ही । परमात्मा भी कर्म बिना नहीं है । वह या तो कर्मी है या ससारी है या अज्ञानी है । क्योंकि यह ससार उसका कर्म है । अन्यथा यह ससार कैसे चलता? उस चलने के पीछे चलने वाली ऊर्जा का हाथ है । तो कर्म के बाहर यदि परमात्मा भी नहीं है तो ज्ञानी कैसे होगा? लेकिन, जोर है कृष्ण का कर्ता न होने पर ।

ससार को छोड़कर भागने वाला सन्यासी 'एस्केपिस्ट' है, पलायनवादी है । वह कहेगा, कर्म छोड़ो । तब शकर को, ससार को माया कहने पर मजबूर हो जाना पड़ता है । उनको कहना पड़ता है कि यह परमात्मा का कर्म नहीं है, सिर्फ हमारा भ्रम है । नहीं तो मुश्किल पड़ जायेगी । अगर यह परमात्मा का कर्म है—यह फूलों का खिलना, यह पहाड़ों का बनना और मिटना, यह चाद-तारों का चलना, उगना और फूलना, तब तो परमात्मा भी सन्यस्त नहीं है । फिर आदमी से आप अपेक्षा क्या करते हैं? इसलिए शंकर को दूसरी ज़कार में पड़ना

पड़ता है। असल में तकों की अपनी जानकारी है। एक तर्क आपने पकड़ा। फिर आपको उसकी आखिरी सीमा तक जाना पड़ेगा। एक बार शकर ने यह कहा दिया कि कर्म बन्धन है, कर्म ही अज्ञान है और ज्ञानी का कोई कर्म नहीं है (हालत बड़ी मुश्किल हो गयी)। किन्तु सामने तो कर्म का विराट जाल है, फिर इसको सपना कहे बिना कोई रास्ता नहीं है। फिर कहना ही पड़ेगा कि यह झूठ है, यह है ही नहीं। यह सिफे भास रहा है। यह 'एफीयरेस' है। यह सब माया है। यह सिफे जादूगरी है।

यह ऐसा ही है जैसे जादूगर एक बीज बोता है और आम का वृक्ष हो जाता है, उसमें आम लग जाते हैं। न कही कोई बीज है, न कही कोई आम है, न कही कोई वृक्ष है, एक 'हिप्पोटिक ट्रिक' है। बस सिफे भासता है। लेकिन बड़े भजे की बात है कि हिप्पोटिक ट्रिक, देखने वालों के लिए झूठ हो, करने वाले के लिए कर्म है। 'हिप्पोटिज्म' भी तो करना ही पड़ता है। शकर इसलिए जाल में पड़ते हैं और बड़ी मुश्किल लड़ी होती है कि अब वह क्या करे? अब इस माया को कैसे समझायें? अगर माया सिर्फ हमारा ध्रम है, हमने पैदा किया है तो भी कर्म से कर्म परमात्माका इतना तो कर्म मानना ही पड़ेगा कि वह हमको आज्ञा देता है कि तुम ध्रम देखो। क्योंकि उसकी इतनी आज्ञा भी न हो तो हम कैसे देख पायेगे? हम ध्रम देख रहे हैं। हो सकता है कि ध्रम झूठ हो, लेकिन हमारा देखना तो कर्म होगा ही। इसलिए शकर छूट नहीं पाते, चक्कर बढ़ता जाता है। और वह बड़ी मुश्किल में पड़ जाते हैं। लेकिन बड़े तार्किक हैं वे। और गहरी चेष्टा करने हैं यह समझाने की कि कर्म असत्य है। ज्ञानी के लिए कोई कर्म नहीं है। बस उनका जोर कर्ता के मिटाने पर उतना नहीं पड़ता जितना कर्म के मिटाने पर पड़ता है। लेकिन क्या मैं यह कह रहा हूँ कि शकर मत्य को पहुँच गये? क्योंकि जिस दिन कर्म को आप बिल्कुल मिटा देंगे तो कर्ता बचेगा कैसे? क्योंकि कर्ता बच ही तब सकता है जब तक कर्म का भाव है। तो शकर का पूरा 'लाजिक एब्सर्ड' है, गलत है, लेकिन शकर की अनुभूति गलत नहीं है। बहुत गलत सलत गास्टे से भी वह पहुँच तो गये। भट्टके, इधर उधर बहुत चक्कर लगाये, मदिर के आस पास बहुत दौड़े, तब मदिर में प्रवेश किया। लेकिन कर गये। कर गये इसके दूसरे कारण हैं।

क्योंकि कर्म को अगर बिल्कुल निषिद्ध किया जा सके, कल्पना में, ज्ञान में भी अगर यह माना जा सके कि कर्म है ही नहीं तो कर्ता बचेगा कहा? क्योंकि, कर्ता बच सकता है कर्म करने से, इस भाव से कि कर्म है, बच सकता है। उन्होंने बिल्कुल गलत छोर से यात्रा शुरू की, हृष्ण के छोर से यात्रा शुरू नहीं की। हृष्ण कह रहे हैं कि कर्ता को जाने दें, क्योंकि जब कर्ता चला गया तो कर्म चला जायेगा।

ये दोनों एक ही चीज के दो छोर हैं। लेकिन मैं, शकर के मुकाबले कृष्ण को चुनने को राजी हूँ। इसलिए राजी हूँ कि शकर की पूरी व्याख्या 'एस्केपिस्ट' बन जाती है, शकर भगाने वाले बन जाते हैं। और शकर के भगाने वालों को भी उन लोगों पर निर्भर रहना पड़ता जो भागने वाले नहीं हैं। अगर यह पूरी पृथ्वी शकर से राजी हो जाय तो एक क्षण चल नहीं सकता। एक क्षण चलने का उपाय नहीं रह जायेगा। इसलिए, पूरी पृथ्वी राजी नहीं हो सकी। और, शकर भी कितनी ही चेष्टा करे, कर्म को कितना ही माया करें, वह माया होकर भी शेष रह जाता है। शकर भी भ्रूख तो मागने निकलते हैं, भिक्षा तो लेते ही हैं, समझाने तो जाते ही हैं, समझाने की चेष्टा तो करते ही हैं। शकर के विरोधियों ने शकर का सूख मजाक किया है। शकर के विरोधी कहते हैं, तुम किसको समझाते हो? अगर सब माया है तो कहे भ्रम में पड़ते हो? तुम गाव-गाव किसलिए भटकते हो? यह चलना किसलिए है? यह समझाना किसलिए है? किसको समझा रहे हो, जो नहीं है उसको? कहा जा रहे हो, जो नहीं है वहा? कहा से जा रहे हो, जो नहीं था वहा से? यह भिक्षा का पात्र, यह भिक्षा का मांगना, यह भ्रूख, यह त्याग, यह करना यह न करना। शकर कहेगे, सब माया है। एक कहानी मुझे याद आती है

एक बौद्ध भिक्षु, जो जगत् को माया ही मानता रहा, सासार को झूठा ही मानता रहा वह एक सम्राट् के दरबार में गया। उसने बडे तर्क दिये और सिद्ध कर दिया कि सब झूठ है। तर्क में एक सुविधा है। तर्क यह तो सिद्ध कभी नहीं कर पाता कि सत्य क्या है, हा यह सिद्ध कर सकता है कि झूठ क्या है। तर्क यह तो कभी नहीं बता पाता है कि क्या है, तर्क यह जरूर बता पाता है कि क्या नहीं है। तलवार की तरह है। तलवार मार तो सकती है, लेकिन जिला नहीं पाती। तोड़ तो सकती है, जोड़ नहीं सकती। मिटा तो सकती है, बना नहीं सकती। तर्क में एक धार है तलवार जैसी जो 'हिस्ट्रिक्टव' है। तर्क ने कभी कुछ 'कम्प्रेक्ट' नहीं किया, कर नहीं सकता। सम्राट् के दरबार में उसने सिद्ध कर दिया कि सब झूठ है। लेकिन, सम्राट् भी अपने डग का आदमी है। उसने कहा, सब होगा झूठ, लेकिन एक चीज नहीं हो सकती। वह मेरे पास है। उसे मैं बुलाये लेता हूँ। उसके पास एक पागल हाथी है। उसने उस पागल हाथी को बुलवा लिया। पागल हाथी छोड़ दिया गया और उस गरीब भिक्षु को उसके आगे छोड़ दिया गया। सम्राट् छत पर खड़ा हो गया है। पागल हाथी दौड़ता है, वह भिक्षु भागता है। वह चिल्लता है कि मुझे बचाओ, मैं मरा, मैं मर जाऊगा, मुझे बचाओ, लेकिन वह हाथी को दौड़ाये चले जाते हैं। पूरे गाव में दौड़वाते हैं। वह चिल्लता है, हाथ पैर जीड़ता है, गिरगिड़ता है कि मैं मर जाऊगा, तब उसे छुड़ाया जाता है। सम्राट् उसे महल

के भीतर बुलाता है, किर उससे पूछता है कि यह हाथी? वह भिक्षु कहता है, सब असत्य है। तुम्हारा रोना? वह भिक्षु कहता है, आप भ्रम में आ गये, सब असत्य है। वह हाथी असत्य, वह मेरा रोना-चिल्लाना असत्य, मेरा भय असत्य, वह मेरी प्रार्थना असत्य, वह तुम जिनसे प्रार्थना की गयी वह भी असत्य है। तुमने जो छुड़वाया वह भी असत्य है। कोई सत्य नहीं है। अब इसके साथ बड़ी मुश्किल है। अब कोई मनलब न रहा। क्योंकि, यह आदमी कहता है कि जब सभी असत्य हैं तो मेरा होना कैसे सत्य होता है? वह कहता है, सब असत्य है, बचाने की पुकार असत्य है। यह यह कह रहा है कि जब मैं यह कह रहा हूँ, सासार असत्य है, तुमने भ्रम समझा, मेरी बचाने की आबाज मूठी भी, माया भी। जो आदमी सारे जगत को माया कहने को राजी है उसे समझाना बड़ा कठिन है।

शकर के विरोधी मजाक उड़ाते हैं, लेकिन शकर को इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। शकर कहते हैं, तुम्हारा यह देखना असत्य है कि मैं समझाने जाता हूँ, कि मैं समझाता हूँ, कि कोई समझाता है, कि कोई समझाने वाला है। न कोई समझाने वाला है, न कोई समझने वाला है। सब माया है। जिसने यह कहा, सब माया है उसको अब तर्क का कोई उपाय न रहा। लेकिन, तर्क में यह कितना ही सही हो जाय, हम जीवन को चाहे माया ही नाम दे, लेकिन माया भी है। उसके होने का शकर भी इन्कार नहीं कर सकते। वह है। रात हम सपना देखने हैं, वह मूठ है; लेकिन वह है। उसकी 'एकिजस्टेंस' को, उसके अस्तित्व को इकार नहीं कर सकते। सपना कितना ही मूठा हो, पर है। साप मुझे रस्सी में दिखायी पड़ा हो, लेकिन दिखायी पड़ा है। यह सबाल नहीं है कि वह है या नहीं, लेकिन मुझे दिखायी पड़ना तो कम-से-कम है। न होगा साप, रस्सी नहीं है। न होगी रस्सी, मुझे दिखायी पड़ा—यह तो है। दिखायी पड़ना तो है। अस्तित्व को हम अन्तत निषिद्ध नहीं कर सकते। वह बच ही जाता है। वह ठीक कहता है कि हम सब निषेध कर दें, लेकिन आखिर उसको कैसे निषेध करेगे जो निषेध कर रहा है। 'ही कैनाट निगेट दी निगेटर'। सब असत्य कर दे, लेकिन स्वयं शकर? शकर तो है? इस-लिए शकर की जो व्याख्या है वह अघूरी है और एक पहलू की है। वह सिक्के के एक पहलू पर जोर दे रहे हैं, दूसरे पहलू का उनको पता नहीं है। दूसरे पहलू को इन्कार कर देंगे जब कि सिक्के के दो पहलू हैं।

तो इस दृष्टि से शकर, कृष्ण से कम 'कफ्यूंजिंग' है। अकर कृष्ण से कम-से-कम भ्रम में डालते हैं। इसलिए शकर के साथ जो खड़े हैं वे निझोत खड़े हो गये हैं। इसलिए, शकर हिंदुस्तान में सन्यासियों का बड़ा आत्मविश्वासी वर्षे पैदा

कर सके, जो कृष्ण पैदा नहीं कर सके। सच तो यह है कि शकर का ही एक निप्रान्ति सन्यासियों का बर्ग खड़ा हुआ। क्योंकि, शकर एक पहलू की बात करते हैं। बिना इसकी फिक किये कि दूसरा पहलू अस्तित्व में है। लेकिन, दूसरे पहलू के अस्तित्व की भी अगर बात की जाय तो उसको समझने के लिए बड़ी गहरी समझ चाहिए। इसलिए, शकर सन्यासियों का एक बड़ा बर्ग तो पैदा कर सके, लेकिन नासमझ सन्यासियों को भी बड़ी सख्त्या में इकट्ठा कर सके। हिन्दुस्तान का सन्यास शकर के साथ पैदा हुआ और हिन्दुस्तान का सन्यास शकर के साथ ही मन्द बुद्धि भी हुआ है। ये दोनों बातें एक साथ हुई हैं। क्योंकि, कृष्ण के साथ खड़े होने के लिए बड़ी भेद्या चाहिए, जो कट्टाडिक्षण से कन्फ्यूज़ नहीं होती। जो विरोधों से भ्रम में नहीं पड़ती। हम सब विरोध से भ्रम में पड़ जायेंगे। इसीलिए शकर की, कृष्ण की गीता की जो व्याख्या है वह सर्वाधिक लोकप्रिय हुई है। उसका कारण यह है कि शकर ने पहली दफा गीता को निप्रान्ति कर दिया। उसमें सब आतिथ्य अलग कर दी। साफ सुथरा कर दिया। सब विरोध छाट डाले। एक सीधी, एकरस व्याख्या कर दी। लेकिन, मेरा मानना है, कृष्ण के साथ जितना अन्याय शकर ने किया उतना किसी और ने नहीं किया है। हालांकि यह भी हो सकता है कि अगर शकर ने टीका न की होती तो गीता खो गयी होती। क्योंकि शकर की टीका के कारण गीता सारे जगत में बची है।

प्रस्तु शकर की भाषा का अर्थ मूठ न होकर परिवर्तनशीलता नहीं हो सकता ?

उत्तर अर्थं तो कुछ भी किया जा सकता है। लेकिन, शकर परिवर्तनशीलता को ही मूठ कह रहे हैं। शकर कहते ही यह है कि वही है असत्य जो सदा एक-सा नहीं है। वही है मिथ्या जो कल था कुछ और, और आज है कुछ और, कल होगा कुछ और। शकर की मिथ्या और असत्य की परिभाषा ही परिवर्तन है। शकर कहते हैं, जो शाश्वत है, सदा है, वही है वैसा ही है। जिसमें कभी कोई परिवर्तन नहीं हुआ, जिसमें परिवर्तन हो ही नहीं सकता, वही है सत्य। शंकर की परिभाषा शाश्वत है। 'इटरनिटी' है। और ससार की परिभाषा परिवर्तन है, जो बदल रहा है, जो बदलता जा रहा है। जो एक क्षण भी वही नहीं है जो एक क्षण पहले कुछ और था, एक क्षण बाद कुछ और हो गया यानी जो एक क्षण पहले था वह भी वह नहीं था, और एक क्षण बाद जो हो गया वह भी वह नहीं है, क्योंकि एक क्षण बाद वह फिर कुछ और हो जायेगा। जो नहीं है उसी का नाम असत्य है।

जो एक क्षण पहले भी वही था, एक क्षण बाद भी वही है, एक क्षण बाद भी वही होगा, जो नित्य है—जो है ही वही, वही है सत्य। शकर सत्य और असत्य की जो परिभाषा करते हैं उसमें परिवर्तन ही असत्य का पर्याय बन जाता है। और अपरिवर्तन ही सत्य का पर्याय बन जाता है।

जो मैं कह रहा हूँ, या कृष्ण जो कहेंगे वह मह कहेंगे कि परिवर्तन उतना ही सत्य है जितना अपरिवर्तन भय है। क्योंकि वह जो अपरिवर्तित है, परिवर्तन के बिना नहीं हो सकता। और वह जो परिवर्तित हो रहा है, अपरिवर्तित की लैंगिक के बिना नहीं धूम सकता। असल में अपरिवर्तित के होने के लिए परिवर्तन जरूरी है। और परिवर्तन के होने के लिए अपरिवर्तित होना जरूरी है। वह जो ‘अनमूर्विग’ वह है ही इसीलिए कि उसके चारों तरफ ‘मूर्विग’ है। कृष्ण सारे द्वन्द्व को आत्मसात करते हैं सब दिशाओं से। वह यह कहते हैं, गति का आधार अगति है। अगति का होना गति पर है। अगर हम कृष्ण को समझे तो उसका मतलब यह होगा कि सत्य के होने के लिए भी अमत्य अनिवार्यता है। नहीं तो सत्य भी नहीं हो सकेगा। जैसे प्रकाश के होने के लिए अधिकार अनिवार्यता है। जैसे जीवन को होने के लिए मृत्यु अनिवार्यता है। जैसे स्वास्थ्य के होने के लिए बीमारी अनिवार्यता है। जो विपरीत है वह अनिवार्य है। हमारी इक्कित यही है कि हम उसको विपरीत मानकर चल पड़ते हैं। असल में वह एक ही चीज के दो पहलू हैं।

हम सदा पूछते हैं, असत्य आया कहा से? यह क्यों नहीं पूछते कि सत्य आया कहा से? जब सत्य बिना कहीं से आये आ-जा जाता है तो असत्य को कौन-सी कठिनाई है। बड़े मजे की बात है कि ब्रह्मज्ञान पर चर्चा करनेवाले लोग निरन्तर पूछते हैं कि असत्य आया कहा से? और, उनमें से एक भी इतनी बुद्धि नहीं लड़ता कि सत्य आया कहा से? बल्कि सच तो यह है कि असत्य को ज्यादा सुविधा है बिना कहीं से आने के, बजाय सत्य के। सत्य को कहीं से आना चाहिए, असत्य को आने की क्या जरूरत है? असत्य का मतलब ही है कि जो नहीं है। उसके आने के लिए मूलस्रोत की क्या जरूरत है? नहीं, सत्य और अमत्य आये कहा से, ऐसा सोचना गलत है—सत्य और असत्य ‘साइमलटेनियस’ हैं। वे एक ही अस्तित्व के दो पहलू हैं। उनके आने जाने का सवाल नहीं है। जिस दिन तुम्हारा जन्म आया उस दिन मौत आ गयी, आयेगी ही। वह जन्म का ही दूसरा पहलू है। लेकिन अभी तुमने एक पहलू देखा, सत्तर साल लग जायेगे दूसरे पहलू को देखने में, यह दूसरी बात है। यह तुम्हारी असमर्थता है कि तुम एक साथ नहीं देख सके, तुमको सिक्का उल्टाने में सत्तर साल लग गये। बाकी जिस दिन जन्म आया

उसी दिन मौत आती है। जिस क्षण सत्य है, उसी क्षण असत्य वा गया। वा गया की भाषा ही गलत है—सत्य है, असत्य है। 'एकिजस्टेंस' है, 'नान एकिजस्टेंस' है। अस्तित्व है, अनस्तित्व है।

शकर ने एक पहलू पर जोर दिया, इसके साथ एक दूसरा पहलू भी ध्यान में लेना जरूरी है। शकर ने जोर दिया कि यह जो दिखायी पड़ रहा है वह माया है, यह एक पहलू है। बुद्ध ने ठीक इससे उल्टे पहलू पर जोर दिया जो नागार्जुन में जाकर पूरा हो गया। उसने कहा, जिसको दिखायी पड़ रहा है वह माया है। तो शकर की भाषा में सासार झूठ हो गया, नागार्जुन की भाषा में आत्मा झूठ हो गयी। नागार्जुन यह कहता है कि जो दिखायी पड़ रहा है और जिसको दिखायी पड़ रहा है इन दोनों में मौलिक आधार वह नहीं है जो दिखायी पड़ रहा है, मौलिक आधार वह है जिसको दिखायी पड़ रहा है। वह झूठ है, और सब झूठ उससे पैदा हो रहे हैं। क्योंकि, मैं आख बन्द कर लेता हूँ, सासार दिखायी नहीं पड़ता, लेकिन मैं आख बन्द करके सपने देखने लगता हूँ। असली बुनियादी झूठ मैं हूँ। अगर सासार भी न हो तो मैं सपने पैदा कर लूँ। मजे की बात है कि मैं सपने के भीतर भी सपने पैदा कर लेता हूँ। आपने ऐसे भी सपने देखे होंगे जिसमें आपको लगता है आप सपना देख रहे हैं। बहुत 'मिराकुलस' है यह बात कि एक आदमी सपना देख रहा है कि वह सपना देख रहा है। जैसे कि एक जादूगर के डिब्बे के भीतर डिब्बे होते हैं ऐसे सपने के भीतर सपने, सपने के भीतर सपने होते हैं। आप सपना देख सकते हैं कि मैं एक फिल्म देख रहा हूँ। फिल्म में अपनी ही कहानी देख रहा हूँ। उस कहानी में मैं सो गया हूँ और सपना देख रहा हूँ। नागार्जुन कहता है कि सासार को किसलिए झूठ कहने की ज़क्षण में पड़े हो, असली झूठ भीतर बैठा हुआ है। नागार्जुन कहता है, वह जो भीतर है वही झूठ है।

असल बात यह है कि जगत में सत्य और असत्य एक साथ है। अगर किसी ने बहुत जोर दिया कि सत्य ही है तो उसको असत्य को कही न कही दिखाना पड़ेगा कि वह कहा है। अगर किसी ने जोर दिया कि असत्य ही है तो उसको दिखाना पड़ेगा, सत्य कहा है? कृष्ण की दुविधा बड़ी गहरी है। और, जो लोग दुविधा में नहीं होते वे अक्सर उथले होते हैं। दुविधा में होना बड़ी गहरी बात है। सौभाग्य से दुविधा मिलती है। दुविधा का मतलब यह है कि जिन्दगी को हमने उसकी पूर्णता में देखना शुरू किया। न हम यह कहते हैं, यह असत्य है और वह सत्य है। न हम यह कहते हैं कि सिर्फ सत्य है। न हम यह कहते हैं कि सिर्फ असत्य है। इस देखते हैं और पाते हैं, सत्य और असत्य किसी एक ही चीज के तालमेल हैं। किसी

एक ही चीज के स्वर है, किसी एक ही बांसुरी से पैदा हुआ अस्तित्व भी है, अनस्तित्व भी है। जब कोई आदमी इसको ऐसी पूर्णता में देखता है तब उसकी कठिनाई हम समझ सकते हैं, वह जो भी वक्तव्य देगा वह 'कन्फ्यूजिंग' होगा। इसीलिए, कृष्ण के सभी वक्तव्य 'कन्फ्यूजिंग' हैं। बहुत गहरे दर्शन से ही 'कन्फ्यूजिंग' वक्तव्य दिये गये हैं।

**प्रश्न .** शकर का माया को अनिर्वचनीय कहना क्या उनका 'कम्प्रोमाइज' करना नहीं है ?

उत्तर शकर को तो 'कम्प्रोमाइज' करनी ही पड़ेगी। जो भी अधूरे सत्य पर जोर देगा उसको समझौता करना ही पड़ेगा, किसी-न-किसी तल पर जाकर। क्योंकि, दूसरे को इन्कार किया ही नहीं जा सकता, वह है ही। उसको किसी-न-किसी रूप में स्वीकार करना पड़ेगा—कहो कि माया है, कहो कि निवृत्ति सत्य है, कहो कि व्यवहार सत्य है— कुछ नाम दो, लेकिन कही-न-कही उसको स्वीकृति देनी पड़ेगी, क्योंकि वह है। शकर भी ऐसा नहीं कह सकते कि हम माया की बात नहीं करते, क्योंकि जो है ही नहीं उसकी क्या बात करूँ। उनको भी बात तो करनी ही पड़ेगी। शकर को 'कम्प्रोमाइज' करना पड़ेगा। सिर्फ कृष्ण जैसा आदमी 'कम्प्रोमाइजिंग' नहीं होता। उसको 'कम्प्रोमाइज' की कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि, वह दोनों को एक साथ स्वीकार कर रहा है। वह कह रहा है, दोनों हैं। जो दोनों को स्वीकार करता है, उसको समझौते का कोई कारण नहीं है। ऐसा कहे कि समझौता पहले से ही है।

**प्रश्न .** दुविधा को आपने मुझ कहा; लेकिन वह तो अकल्याणकारी है ?

उत्तर मैंने कहा कि दुविधा सौभाग्य है। इसका मतलब यह नहीं कि दुविधा में रहना सौभाग्य है। इसका मतलब है कि जिनको दुविधा पैदा होती है वे दुविधा के पार जाने की चेष्टा में लग जाते हैं। जिनको होती नहीं पैदा, वे वही खड़े रह जाते हैं। कही जाते नहीं। दुविधा सक्रमण है। दुविधा यादा का बिन्दु है। दुविधा पैदा हो तो दुविधा के पार होना पड़ेगा। यह पार होना दो तरह से हो सकता है— या तो किसी पक्ष में हो जाय नीचे गिर कर, तो दुविधा मिट जायेगी। शंकर से राजी हो जाये, नागार्जुन से राजी हो जाये दुविधा मिट जायेगी। जो उनसे राजी होते हैं, इसीलिए राजी होते हैं कि दुविधा मिट जाती है। झक्ट के बे बाहर हो जाते हैं। लेकिन, दुविधा वे खोते हैं, बुद्धि को खोकर। जिसमें बुद्धि नहीं है उसके पास दुविधा होती ही नहीं। बुद्धि खो दे, दुविधा मिट जाती है। लेकिन, मैं मानता हूँ, यो दुविधा को मिटाना महगा हुआ, हुर्भाग्य हुआ। दुविधा मिटनी आहिये

बुद्धि के अतिकमण से, और ऐसे बिन्दु पर पहुंचकर मिटनी चाहिए जहाँ से दोनों एक मालूम पड़ते लगे कि दुविधा न रह जाय। दो में से एक चुनना एक रह जायेगा। आप दुविधा के नीचे गिर जायेंगे। यह अगर ठीक से कहे तो यह 'इरेशनल' हालत होनी। यह 'एस्सर्ड' हालत होनी—बुद्धि से नीचे गिर जाये आप। दुविधा जरूर मिट गयी। पागल इसी तरह अपनी दुविधा मिटाते हैं। बुद्धि छोड़ देते हैं, फिर दुविधा मिट जाती है। 'ट्रासरेशनल' स्थिति भी है, 'इरेशनल बिलो रीजन' है 'ट्रासरेशनल अबव रीजन' है। बुद्धि के पार जाकर ही दुविधा मिटती है जहा दोनों एक दिखायी पड़ते हैं। वहा विरोध सो जाता है, एक के बचने से नहीं दो के मिट जाने से। एक ही रह जाने से। इसलिए मैं कहता हूँ, दुविधा सौभाग्य है। वह अबुद्धि से बुद्धि मे ले जाती है। और, सौभाग्य इसलिए है कि उससे बुद्धि के पार बुद्धि अतीत का द्वार खुलता है।

**प्रश्न :** आपने कहा, आखार्य जी, कि शंकर की व्याख्या अधूरी है। गीता पर लगभग चालीस पचास व्याख्याएँ हैं। क्या कोई व्याख्या पूरी भी है? लोकमान्य तिलक की व्याख्या को क्या आप पूरी कहेंगे? वह 'एस्केपिस्ट' तो नहीं है, 'एकटीविस्ट' है और 'भोरालिस्ट' भी है। आप उनके 'एकटीविजन' को और शकर के 'सुपरसोरालिज्म' दोनों को एक साथ मिलाने का प्रयत्न करते हैं क्या?

उत्तर कृष्ण पर कोई टीका पूरी नहीं है। हो नहीं सकती जब तक कि कृष्ण जैसा व्यक्ति ही टीका न करे। कृष्ण के अनन्त पहलू है। उनमें से टीकाकार जो प्रीतिकर है, चुन लेता है। शकर उसी टीका में सन्यास सिद्ध कर देते हैं, अकर्म सिद्ध कर देते हैं। उसी गीता में तिलक कर्म सिद्ध कर देते हैं, कर्मयोगी सिद्ध कर देते हैं। शकर से ठीक उल्टा पहलू तिलक चुन लेते हैं। शकर के पहलू को चुने हुए हजार साल हो गये। और, हजार साल में शकर के पलायनवादी पहलू ने हिन्दुस्तान की जड़ों को बहुत तरह से कमज़ोर किया। हिन्दुस्तान में जो भी संकिय होने की क्षमता थी हजार साल के अनुभव ने पैण्डुलिम को घुमा दिया। जरूरी हो गया गीता की कोई व्याख्या हो जो कर्म को प्रश्न दे और कहे जोर से कि गीता कर्म के लिए ही कहती है। ठीक दूसरे 'एक्सट्रीम' पर तिलक ने बक्सव्य दिया। शकर ने पहलू चुना था अकर्म का—कर्म छोड़ने वाले का, तिलक ने दूसरा पहलू चुना कर्म में छूटने वाले का। और, कर्म की व्याख्या जो तिलक ने की, वह भी उतनी ही अधूरी है। बहुत सी व्याख्याएँ हैं गीता पर, पचास नहीं, हजार और रोज़ बढ़ती जाती हैं। लेकिन, कोई टीका गीता के साथ न्याय नहीं कर पाती।

उसका कारण है कि कोई टीकाकार 'द्रासरेशनल' होने की हिम्मत नहीं कर पाता। असल में टीकाकार सदा रेशनल ही होता है। तर्क से पार अगर वह जाय तो गीता निर्मित हो जायेगी। टीका निर्मित नहीं होगी। तब टीका की कोई जरूरत नहीं रह जायेगी। टीका का मतलब ही यह होता है कि जो हमें समझ में नहीं पड़ता उसे हम समझाने योग्य टिप्पणी दे रहे हैं। टीका का मतलब ही यह होता है, 'कमेट्री' का मतलब ही यह होता है कि जो गीता में आपको समझ में नहीं आता वह मैं समझाता हूँ। मैं उसकी एक व्याख्या करूँगा। और, जब समझाने के लिए ही व्याख्या करूँगा तब वह तर्क के पार नहीं जा सकेगी। तर्क के पार अगर कोई भी बात जायेगी तो वह स्वयं गीता बन जायेगी यह बात पक्की है, वह फिर कमेट्री नहीं होगी – वह टीका नहीं होगी।

प्रश्न मेरे प्रश्न का एक अश बाकी था। शकर अकर्म और तिलक का कर्म इन दोनों को मिलाने से आप मानते हैं गीता पूरी हो, जायेगी? क्योंकि, जिस अति नैतिकता की बात आप करते हैं उसकी बात शकर करता है, तिलक नहीं। तिलक घोर नैतिकता-बाबी है। और, जिस प्रवृत्ति की बात आप करते हैं वह तिलक करता है, शकर नहीं।

उत्तर यह बात सब है, शकर अति नैतिकवादी है, 'सुपरमोरालिस्ट'। क्योंकि नैतिकवादी कर्मवादी होगा। नैतिक धारणा कहेगी, यह करो और यह मत करो। शकर कहते हैं, सभी कर्म माया है। तुम चोरी करो कि साधुता करो, सब कर्म माया है। रात में सपना देखूँ कि डाकू हो गया कि रात में सपना देखूँ कि साधु हो गया। सुबह उठकर कहता हूँ, दोनों सपने थे, दोनों एक से बेकार हो गये। इसलिए, शकर के लिए कोई नीति नहीं है, कोई अनीति नहीं है। हो नहीं सकती। चुनाव का भी उपाय नहीं है। दो सपने में कोई चुनाव होता है? न, चुनाव तो तभी हो सकता है जब हम दो यथार्थों में चुनाव करते हो। चूँकि जगत माया है इसलिए शकर के विचार में नैतिकता की कोई जगह नहीं है। शकर की दृष्टि अति नैतिक है। वह नैतिकता के पार चली गयी। अकर्म नैतिकता के पार जायेगा ही। इसलिए, शकर की टीका के जब पहली दफा पश्चिम में अनुवाद हुए तो लोगों ने उसे 'इममारल' ही समझा। उसे समझा गया कि यह तो बड़ी अनैतिक दृष्टि है। क्योंकि, अगर कुछ ठीक नहीं, कुछ गलत नहीं, सभी कर्म एक से है और सभी स्वप्न एक से है तो आदमी भटक जायेगा। आदमी पतित हो जायेगा। तब आदमी का क्या होगा? पश्चिम में जो कि हिन्दू विचार पर खड़े लोग हैं— जहा कि सार

धर्म 'दू दिस एण्ड डू नाट डू दिस,' इस पर लडा हुआ है, जहा 'टेन कमान्डमेंट्स' के अधार पर सारी संस्कृति खड़ी हुई, जहा धर्म का मतलब है साफ-साफ बताना। कि क्या करो और क्या न करो, उनके लिए अगर शकर की बात अनैतिक भालूभ पड़े तो कठिन नहीं है। लेकिन, शकर की बात अनैतिक नहीं है। क्योंकि अनैतिक का मतलब होता है, नीति के विपरीत चुनाव। शकर की बात अचुनाव की है, 'च्वाइसलेस' की है इसलिए अति नैतिक है। वह यह भी नहीं कहते कि तुम अनैतिक हो जाओ। वह यह नहीं कहते कि तुम नैतिक हो। वह यह नहीं कहते कि तुम चोर हो जाओ। वह यह भी नहीं कहते कि तुम साधु होने को चुनो। यही गलती है तुम्हारी। तुम कुछ होने को ही मत चुनो। तुम न होने में हो जाओ। यह अति नैतिक 'ट्रासमोरल' दृष्टि है।

तिलक की दृष्टि नैतिक दृष्टि है। 'मोरल' दृष्टि है। वे कहते हैं, कर्म में चुनाव है—शुभ कर्म है, अशुभ कर्म है, करने योग्य कर्म है, न करने योग्य कर्म है। वाक्षनीय है, अवाक्षनीय है। तिलक तो कर्मवादी है इसलिए वह जगत को अध्यार्थ नहीं कहते, यथार्थ कहते हैं। यह जो दिखायी पड़ रहा है यह माया नहीं है सत्य है। और, इस सत्य के बीच हम जो हैं, निर्णायक हैं और ठीक और गलत का प्रतिपल चुनाव करते हैं। धर्म का अर्थ ही यही है कि प्रतिपल हम उसको चुने जो शुभ है। तिलक ठीक विपरीत व्याख्या में है।

प्रश्न यह पूछा गया है कि क्या इन दोनों के मिला देने से पूरी बात हो जायेगी? नहीं, नहीं होगी पूरी बात। उसके कई कारण हैं। पहला जो सबसे बुनियादी कारण है, वह यह है कि अगर हम एक आदमी के हाथ पैर और हड्डिया सब अलग कर ले और फिर मिलाकर रख दे, तो क्या आदमी पूरा ही जायेगा? नहीं, पूरा नहीं होगा। आदमी पूरा हो तो हड्डिया इकट्ठी काम करती है। हड्डियों को जोड़ कर आदमी को पूरा करे तो पूरा आदमी नहीं होता है। 'पार्ट' को इकट्ठा करने से 'होल' पैदा नहीं होता, अश को जोड़ने से पूर्ण नहीं बनता। जोड़ कभी पूर्ण पर नहीं ले जाता। हा, पूर्ण में अश जुड़े होते हैं, यह बिल्कुल दूसरी बात है। तो जो भै कह रहा है, उसमें तिलक और शकर समाहित हो जायेंगे। लेकिन, तिलक और शकर को जोड़ने से कृष्ण की पूरी दृष्टि नहीं समझी जा सकती।

और भी कारण है कि तिलक और शकर ये सिर्फ दो दृष्टियां हैं। कृष्ण की बाबत और हजार दृष्टियां हैं। लेकिन, सबको जोड़ने से कृष्ण नहीं बनेंगे। जोड़ हमेशा 'मिकेनिकल' होगा, 'अर्गनिक' नहीं होगा। एक मशीन को तो जोड़कर हम पूरा बना सकते हैं, लेकिन एक व्यक्तित्व को—जीवन्त व्यक्तित्व को हम जोड़कर

कभी पूरा नहीं कना सकते। 'मिकेनिकल' जोड़ में और 'आर्गनिक' जोड़ में, मृत जोड़ में और जीवन्त जोड़ में एक बुनियादी फर्क है जो स्थाल में ले लेना चाहिए। मृत जोड़ अपने अशो का पूरा जोड़ होता है। जीवन्त जोड़ अपने अशो से थोड़ा ज्यादा होता है। जीवन्त जोड़ का भतलब है, जैसे आप हैं, अगर आपके शरीर के हम सारे अणों का हिसाब किताब कर ले कि कितना लोहा है आपके भीतर, कितना तावा है आपके भीतर, कितना अल्युमीनियम है आपके भीतर, कितना नमक है, कितना पानी है, कितना फासफोरस है— कितना क्या है वह हम सब जोड़-कर निकाल ले तो एक आदमी के भीतर मुश्किल से तीन-चार रूपये का सामान होता है। इससे ज्यादा नहीं होता। कोई ६० हिस्सा तो पानी ही होता है। जिसका दाम लगाना फिलहाल ठीक नहीं है। बाकी जो अल्युमीनियम, फासफोरस, लोहा इत्यादि होता है मिला-जुलाकर वह कोई तीन और चार रूपये या पाच रूपये के बीच में होता है। यह सारा अगर हम एक कागज पर रख ले और इसको जोड़ लेतो जोड़ तो हो जाएगा, लेकिन आप उसमें बिल्कुल नहीं होगे। आप भर मही होगे, और सब होगा। क्योंकि, आप एक जीवन्त व्यक्ति हैं जो इस जोड़ से ज्यादा—इस जोड़ के भीतर थे, लेकिन जोड़ ही नहीं थे। यह जोड़ पूरा हो जायगा और आप नहीं होगे।

कृष्ण का जो जीवन दर्शन है वह एक 'आर्गनिक यूनिटी' है। उसके हजार पहलुओं पर टीकाए हैं। रामानुज कुछ और कहते, शकर कुछ और कहते, निम्बार्क कुछ और कहते हैं, बल्लभ कुछ और कहते हैं, तिलक कुछ और कहते हैं, गाधी कुछ और कहते हैं, विनोबा कुछ और कहते हैं, अर्जुन कुछ और कहते हैं। यह हजारों कुछ कुछ कहने वाले लोगों को अगर हम सबको इकट्ठा करके रख ले तो भी वह 'आर्गनिक यूनिटी' पैदा नहीं होती जो कृष्ण है। सब इकट्ठा हो जायेगा, कृष्ण उसमें नहीं होगे। हाँ, इससे उल्टी बात जरूर सच है। अगर कृष्ण हो तो यह सब उनमें होगा, इससे कुछ ज्यादा भी हो सकता है। इसलिए, शकर और तिलक के जोड़ने से तो कुछ मामला बनता नहीं। अगर हम समस्त व्याख्याकारों को, समस्त टीकाकारों को जोड़ ले तो भी वह पूर्ण से कम होगा और मृत होगा। वह जीवन्त नहीं हो सकता।

इसलिए, मैं जो कह रहा हूँ वह कृष्ण की व्याख्या नहीं कर रहा हूँ। मुझे उनकी व्याख्या से प्रयोजन ही नहीं है। इसलिए मैं जरा भी चिन्तित और भयभीत नहीं हूँ कि मेरे वक्तव्यों में विरोध हो जायेगा। होगा ही। क्योंकि, वह कृष्ण में है, उसका मैं कुछ कर नहीं सकता। मैं कृष्ण को सिर्फ़ आपके सामने खोल रहा हूँ।

मैं अपने को उनपर धोपने का कोई उपाय नहीं कर रहा हूँ। सिफे उनको खोल रहा हूँ। वह जैसे है, गलत है, सही है, अनुचित है, उचित है, 'एवसर्ड' है, 'इरेशनल' है, 'सुपररेशनल' है। जैसे है, नैतिक है, अनैतिक है, जैसे है। मुझे उनमें कोई चुनाव नहीं है। जैसे, कृष्ण के जीवन में चुनाव नहीं है, ऐसा मैं उनमें कोई चुनाव नहीं करता। उनको बस खोले चला जा रहा हूँ। इसमें मैं बहुत कठिनाई में पड़ूँगा ही। लेकिन, मैं तो सीधा पूरा ही खोल दे रहा हूँ। उसमें मैं कह फर्क कर ही नहीं रहा कि ऐसा कहने से कृष्ण की दूसरी बात कहने में क्या कठिनाई होगी। न, इसका हिसाब ही नहीं रखना है। दूसरी बात जब होगी तो दूसरी कह दूगा, तीसरी बात जब होगी तब तीसरी कह दूगा। उनको खोलता चला जाऊगा। वह जैसे है पूरे आपके सामने खुल जाय। इसीलिए मैंने कहा, वह व्याख्या नहीं है, वह 'कमेट्री' नहीं है।

**प्रश्न -** आजायंजी, श्री अरविन्द ने जो टीका श्रीमद्भगवद् गीता पर लिखे हैं सूष्टि दृष्टिबाद, जिसमें सूष्टि पर भार है और दृष्टि सूष्टि-बाद जिसमें दृष्टि पर भार है—आप करोब करोब बोनो के पास आ गये। अरविन्द सुप्रामेंटल की जब बात करते हैं कि प्रभु की चेतना नीचे उतरेगी तब एक 'डिविनिज्म' आ जाता है। वह आ जाता है कि नहीं? और रमण महर्षि का अज्ञात बायु और चैतन्य महाप्रभु का अचिन्त्य भेदाभेद आपके पास भी आता है कि नहीं?

उत्तर अरविन्द 'सुप्रामेटल' की बात करते हैं। अति चेतन की, अति मनस की बात करते हैं। लेकिन, बात है 'रेशनल'। अरविन्द बुद्धि से पार कभी नहीं जाते। वे अगर बुद्धि के अतीत की बात भी करते हैं तो विगत की धारणाओं में करते हैं। अरविन्द निपट बुद्धिवादी है। वे जो बात करते हैं, जिन शब्दों, जिन धारणाओं की, वे बुद्धिवाद की धारणाएं हैं। अरविन्द के पूरे वक्तव्यों में बड़ी संगति है। जो 'सुपररेशनल' के वक्तव्यों में कभी नहीं होती। बड़ी 'कसिस्टेसी' है। बड़ा गणित है। बड़ा तर्क है। जो 'मिस्टिक' के शब्दों में नहीं होता। हो नहीं सकता। मिस्टिक के, रहस्यवादी के शब्द में तो एक शब्द के बाद जो दूसरा शब्द होता है वह पहले का खण्डन करता है। अरविन्द कही अपना खण्डन नहीं करते। अरविन्द एक मुव्यवस्थित 'सिस्टम मेकर' है। 'सिस्टम मेकर' कभी भी 'सुपररेशनल' नहीं होता। सिस्टम बनाना हो तो 'रीजन' से बनती है। और, जो सुपररेशनल होते हैं उन्हाँ गैर सिस्टमैटिक होते हैं। सोचिए, व्यवस्था होगी कैसे असर्कर्य में? अचिन्त्य में अविद्या होगी कैसे? इसलिए, इस सदी में जितने लोग 'रीजन' के खोड़े पार

गये हैं वे सब 'फ्रेगमेटरी' हैं, सिस्टेमेटिक नहीं हैं। चाहे विडिगनस्टी हो, चाहे हुसेरर हो, चाहे हाइडिगर हो, मारलुकान्टी हो—कोई भी हो, चाहे कृष्णपूर्ति हो सब फ्रेगमेटरी हैं। उनकी कोई सिस्टम नहीं है। ये कोई व्यवस्था नहीं बनाये हुए हैं। इनके वक्तव्य 'एटामिक' हैं। आणविक हैं। और एक वक्तव्य दूसरे वक्तव्य का खण्डन कर सकता है, करता है।

अरविन्द का मामला बहुत भिन्न है। सच तो यह है कि शकर के बाद हिन्दुस्तान में अरविन्द के मुकाबले बड़ा 'सिस्टम मेकर' नहीं हुआ। इतना बड़ा व्यवस्थापक नहीं हुआ, लेकिन यही उनकी दीनता है। क्योंकि, वह शब्द, तर्क और सिद्धान्त के बड़े माहिर और कुशल खिलाड़ी है। लेकिन, जिन्दगी का असली शब्द इन सबके पार है। असल में अरविन्द की शिक्षा पश्चिम में हुई। सीखकर लौटे वे तर्क और गणित। सीखकर लौटे वे पश्चिम के सोचने की 'अरिस्टोटेलियन' पद्धति। सीखकर लौटे वे डार्विन का विकासवाद। सीखकर लौटे वे विज्ञान की तर्क-चिन्तन व्यवस्था। अरविन्द से ज्यादा पाश्चात्य मानस का व्यक्ति नहीं था इस मरी में। किर पूरब की उन्होंने व्याख्या की। जो होना था वह हुआ। पूरब के पास कोई तर्क व्यवस्था नहीं है। पूरब की गहनतम अनुभूतिया अतर्क्य है, पूरब के अनुभव अचिन्त्य हैं, पूरब के अनुभव अज्ञात हैं। अनज्ञान के, ज्ञान के अतीत के, ज्ञानने वाले के पार के हैं। पूरब का अनुभव रहस्य का है। 'मिस्ट्री' का है। अरविन्द पश्चिम का मानस लेकर पूरब की अनुभूतियों की व्याख्या करने वैठे, सो एक अच्छी व्यवस्था बनी, जो कि पूरब का कोई आदमी न बना सकता था। उन्होंने सारी बातें की अचिन्त्य की, और सारे साधन उपयोग किये चिन्त्य के। लेकिन, वे बातें, बातें ही हैं जो वे चिन्त्य के माध्यम से कर सके। अगर अनुभव भी अरविन्द का अचिन्त्य का हो तो सब 'कटेंट्रीज' टूट जाती हैं। वे कटेंट्रीज में नहीं जी सकते हैं। यानी मजे की बात यह है कि वे उन चीजों के लिए भी धारणाएं बनाते हैं, जिनके लिए कभी धारणाएं नहीं बनायी गयी थी। जैसे 'मुझमेटल'—वह बनाते जाते हैं धारणाएं, वह खण्ड करते जाते हैं, वह ठीक गणित बिठाये चले जाते हैं, वह सारी बात करते हैं।

दूसरी बात जो पूछी है वह इस सबध में स्थाल लेने जैसी है। समस्त धर्मों का चिन्तन एक अर्थ में गैर विकासवादी है। 'नानइवोल्यूशनरी' है। समस्त धर्म दो हिस्सों में बटे हैं। एक हिस्सा है, जो 'क्रिएशन' में मानसा है, सृष्टि में मानता है। जैसे ईसाई है, मुसलमान है, हिन्दू है, सब सृष्टि में मानते हैं। यह मानते हैं परमात्मा ने सृष्टि की। और जो लोग सृष्टि में मानते हैं वे गहरे में विकास

में नहीं मान सकते। क्योंकि, विकास में मानने का यह मतलब होगा कि परमात्मा ने जब पहले बनायी सृष्टि तो वह अपूर्ण थी। और, फिर धीरे धीरे उसमें विकास हुआ। पूर्ण परमात्मा अपूर्ण को नहीं बना सकता। इसलिए सृष्टिवादी विकासवादी नहीं हो पाता। विकास का मतलब है, रोज विकास हो रहा है। सृष्टि का मतलब है एक अण में पूरा-का-पूरा सूजन किया गया है। विकास नहीं हो रहा है।

जो ऐसा नहीं मानते थे — जैसे जैन या बौद्ध, उन्होंने माना कि सृष्टि हुई ही नहीं। जो है वह अनादि है। उसका कभी सूजन नहीं है। सूजन हुआ ही नहीं। इसलिए बड़े मजे की बात है, सूष्टि हिन्दुओं का शब्द है। प्रकृति जैनों, बौद्धों, साध्यों का शब्द है। अब सब चोलमेल हो गया। प्रकृति शब्द हिन्दुओं का नहीं है। क्योंकि, हिन्दू प्रकृति कह ही नहीं सकते। प्रकृति का मतलब है, जो बनाने के पहले से भौजूद है। 'प्रीक्रिएशन' है। जो सदा भौजूद ही है, जिसको कभी बनाया नहीं गया। सृष्टि का मतलब है, जो भौजूद नहीं थी और कभी बनायी गयी। इसलिए प्रकृति शब्द बड़े और लोगों का है। साध्य, जैन या बौद्ध चूंकि सृष्टि को नहीं मानते हैं इसलिए उनके पास स्पष्टा की कोई धारणा नहीं है। जब बनाया ही नहीं गया तो बनाने वाले का कोई सवाल नहीं, इसलिए ईश्वर खो गया। उसकी नई जगह वहा नहीं रही। जिन्होंने सृष्टि मानी उनके पास स्पष्टा है।

अरविन्द पश्चिम से धारणा लेकर आये 'इवोल्यूशन' की। अरविन्द की शिक्षा हुई तब डार्विन छाया हुआ था योरोप में। वह धारणा लेकर आये विकास की। यहा आकर पूर्वी मनस का, पूर्वी अनुभूतियों का उन्होंने अध्ययन किया। मैं कहता हूँ — जाना नहीं। अध्ययन उनका गहन है, जान उनका इतना गहन नहीं है। मनन और चिन्तन उनकी बड़ी तीव्र मेधा है। लेकिन, अनुभूति उनकी बहुत क्षीण है। जब उन्होंने पूरब का अध्ययन किया और पश्चिम का मनस और डार्विन के स्थाल लेकर आये, तो जिसको हम कहते हैं, 'कास ड्रीडिंग'—अरविन्द में क्रासओर्डिंग हो गयी। एक वर्णशकर विचार पैदा हुआ। उस वर्णशकर विचार में विकास का सिद्धांत भारत के मनस में जुड़ गया। अब बड़ी तकलीफ हुई। क्योंकि भारत का मनस प्रकृति की, पदार्थ की चिन्तना ही नहीं करता। वह चिन्तना करता है चित की, मनस की, आत्मा की। किन्तु दोनों के जोड़ से एक 'साईकिक इवोल्यूशन' का स्थाल अरविन्द को पैदा हो गया—कि एक मनस का विकास हो रहा है। इस विकास में एक नयी बात उन्होंने जोड़ी जो बिल्कुल उनकी थी और बिल्कुल नयी है। और इसी कारण बिल्कुल गलत है। शौलिक बाते अक्सर गलत हो जाती हैं। क्योंकि एक ही व्यक्ति उनको खोजता है। परम्परागत बाते

सङ् जाती है, जड़ हो जाती है, लेकिन अक्सर गलत नहीं होती। क्योंकि, करोड़ो लोग उन्हें खोजते हैं।

अरविन्द का नवीनतम स्थाल जिसकी बजह से उनकी प्रतिष्ठा हुई, वह ही परमात्मा की चेतना का अवतरण। सदा ऐसा ही सोचा गया है कि व्यक्ति उठेगा और परमात्मा से मिलेगा। एक ऊर्ध्वरूप होगा। अरविन्द कहते हैं, परमात्मा उतरेगा और गले से मिलेगा। एक तरह से सोचने पर यह भी एक सिक्के के दो पहलू है। असल में सत्य बहुत बीच में है। सत्य यह है कि मिलन वहा होता है, जहा हम भी कुछ चले होते हैं और परमात्मा भी कुछ चला होता है। लेकिन, पुरानी धारणा हमारे चलने पर जोर देती थी। उसका कारण था। क्योंकि, परमात्मा का चलना तो सुनिश्चित है, हमारा चलना ही सुनिश्चित नहीं है। वह तो चलेगा ही, इसलिए उसको छोड़ा जा सकता है, हिसाब के बाहर रखा जा सकता है। हमारे चलने भर की बात है। हम अपने चार कदम उठा ले, उसके चार कदम उठने ही वाले हैं। इसलिए उसको छोड़ दिया था, स्थाल के बाहर रखा था। क्योंकि, उसके चलने पर जोर देने का कहीं परिणाम हमारे चलने की कमजोरी न बन जाय। अरविन्द ने दूसरे पहलू से पकड़ा और कहना शुरू किया कि परमात्मा उतरेगा। इसका प्रभाव पड़ा। क्योंकि, जो चलने के लिए बिल्कुल उत्सुक नहीं थे, उन्होंने कहा, यह बड़ी हृदय की बात है। यह लगती है, जचती है। इसलिए हिन्दुस्तान में अरविन्द की तरफ जितने लोग दौड़े पिछले वर्षों में उतना किमी के पीछे नहीं दौड़े। उसका कुल कारण इतना था, कि जो भी और गहरे अर्थों से दौड़ नहीं सकते थे वह पाण्डीचेरी की तरफ दौड़ने लगे। उन्हें लगा कि यह सस्ता मामला है। पाण्डीचेरी तो पहुंचा जा सकता है। उसके बाद परमात्मा उतरेगा।

परमात्मा के उतरने की बात सच है, लेकिन हमारे चढ़े बिना वह कभी नहीं उतरता। इसमें एक दूसरी बात ध्यान रखने की है, इस चढ़ने के मामले में कि मैं चढ़ूगा तो परमात्मा मुझ पर उतरेगा, आप चढ़े तो आप पर उतरेगा, लेकिन उतरने के मामले में कैसे तय होगा कि किस पर उतरे? कोई हिसाब करेगा, चुनाव करेगा कि इसपर उतरूँ, इसपर न उतरूँ? तो पाण्डीचेरी में एक स्थाल पैदा हुआ कि अरविन्द कोशिश करेगे और सब पर उतर जायेगा। स्थाल यह हुआ कि जब एक पर उतर आयेगा—जैसे कि गगा उतरी भगीरथ पर तो भगीरथ पर थोड़े ही उतरी, उतर गयी सबके लिए, बह गयी। भगीरथ का काम अरविन्द कर देंगे और एक दफा परमात्मा उतर गया तो फिर सब पानी पियेंगे। फिर गगा के किनारे

सब बस जायेगे। इस अम ने बड़ा उपद्रव पैदा किया मैं मानता हूँ वह बड़ी बलत धारणा है। घटना उतरने की घटती है, लेकिन व्यक्ति को तैयारी करनी पड़ती है। और सामूहिक रूप से कभी परमात्मा उतरेगा, ऐसा मुझे कोई कारण नहीं दिखायी पड़ता। क्योंकि, परमात्मा की तरफ से तो वह सदा उतरने को तैयार ही है, लेकिन समूह कब तैयार होगा? और समूह में आप आदमी ही हैं सिर्फ, उड़ते हुए पक्षी नहीं हैं, पौधे नहीं हैं। जगल के जानवर नहीं हैं, मैडक के किनारे के पत्थर नहीं हैं? परमात्मा जिस दिन उतरेगा उस दिन पत्थर रहेगा? आपको मिल जायेगा? उम दिन पौधे बचित रहेंगे, आपको मिल जायेगा? यह सोचना असभव है। इसलिए अरविन्द की जो धारणा उतरने की है उसने हमारे लोभ को तो बड़ा सुख दिया लेकिन वह सार्थक नहीं है। इसलिए पाण्डीचेरी में जो प्रयोग चल रहा है उससे ज्यादा व्यर्थ प्रयोग मनुष्य जाति के इतिहास में कभी नहीं चला। एकदम व्यर्थ प्रयोग चल रहा है। लेकिन वह हमारे लोभ के अनुकूल पड़ता है इसलिए चल सकता है।

अरविन्द को सोचते बक्त दूसरा नाम स्मरण दिलाया है रमण का। रमण अरविन्द से ठीक उल्टे आदमी है। अरविन्द बड़े पण्डित हैं तो रमण का पाण्डित्य से कभी कोई नाता नहीं था। अरविन्द बड़े जानकार हैं, तो रमण से गैर जानकार आदमी खोजना मुश्किल है। अरविन्द सब जानते मालूम पड़ते हैं लेकिन रमण अज्ञानी होने की तैयारी में है। रमण कुछ जानते हुए नहीं मालूम पड़ते। इसलिए रमण की जिन्दगी में जो सम्भव हो वह अरविन्द की जिन्दगी में सम्भव नहीं हो सका है। अरविन्द जानकार बने रहे और रमण जान गये। रमण की जिन्दगी में घटना घटी है। लेकिन वे जानकार बिल्कुल नहीं हैं इसलिए उनके बक्तव्य एक ऐसे आदमी के हैं जो ज्ञान की भाषा जानता ही नहीं। ज्ञान मिल गया है, पर ज्ञान की भाषा नहीं जानता। इसलिए बक्तव्य की दृष्टि से बक्तव्य बड़े कमज़ोर है। तर्क की दृष्टि से बड़े दीन हैं, लेकिन अनुभव की दृष्टि से उनकी समृद्धि का कोई मुकाबला नहीं है। रमण कोई सिस्टम नहीं बना सकते, कोई व्यवस्था नहीं दे सकते। रमण के सब बक्तव्य 'एटामिक' हैं। आणविक हैं। ज्यादा हैं भी नहीं, योड़ा सा कहने को हैं जितना जाना है। और वह जो जाना है, उसको कहने के लिए भी उनके पास बहुत शब्द नहीं हैं। थोड़े शब्दों में वह उसको कहे चले जाते हैं। इसलिए रमण को तो एक पञ्च पर इकट्ठा किया जा सकता है। एक पञ्च भी बड़ा पड़ सकता है, योस्टकाड़ भी काफी है। लेकिन, अपर अरविन्द को इकट्ठा करने चलो तो एक लाइब्रेरी भी छोटी है। और ऐसा नहीं है कि अरविन्द जो कह सकते थे वह सब कह गये हैं। उसको कहने के लिए भी दस-पाच जन्म लेने पड़ेंगे। उनके

पास कहने को बहुत था। इसका यह मतलब नहीं है कि उनके पास कहने को बहुत था इसलिए उन्होंने नहीं जाना। नहीं, इससे कोई बाधा नहीं पड़ती। बुद्ध के पास कहने को बहुत है। बुद्ध ने बहुत कहा। बुद्ध, रमण जैसे आदमी हैं अनुभव की दृष्टि से, और जानकारी की तरह वे अरविन्द जैसे आदमी हैं। कहने का उपाय उनके पास बहुत है। महावीर ने बहुत कम कहा है। महावीर का ज्यादा समय मौन में बीता। बहुत थोड़े वक्तव्य हैं महावीर के। और जो भी हैं बहुत सक्रिय हैं। रमण जैसा मामला दीखता है। महावीर ने बहुत नहीं कहा। दिग्म्बरों के पास तो कोई ग्रन्थ ही नहीं है महावीर का। श्वेताब्दरों के पास ग्रन्थ हैं, वह भी महावीर के पाच सौ वर्ष बाद इकट्ठे किये गये।

दूर और पास नहीं है कुछ। कृष्णमूर्ति ठीक रमण जैसे व्यक्ति है। रमण, बुद्ध, अरविन्द—इनको मैंने क्यों तौला, उसका कुछ कारण है। कृष्णमूर्ति ठीक रमण जैसे अनुभव के व्यक्ति है। लेकिन, अरविन्द जैसी जानकारी कृष्णमूर्ति की भी नहीं है। हा, रमण से ज्यादा मुखर है। रमण से ज्यादा तर्कयुक्त है, लेकिन कृष्णमूर्ति के तर्क में बड़ा फर्क है। अरविन्द एक तार्किक है, कृष्णमूर्ति तार्किक नहीं है। और, अगर तर्क का उपयोग कर रहे हैं तो पूरे वक्त तर्क को मिटाने के लिए ही कर रहे हैं। अगर तर्क की पूरी-की-पूरी चेष्टा है तो वह अतर्क में प्रवेश के लिए ही है। लेकिन, जानकार बहुत नहीं है। इसलिए, मैंने दूर का उदाहरण लिया। बुद्ध से मैंने इसलिए कहा, ताकि आपको दोनों बातें स्थाल में आ जायें—बुद्ध का अनुभव रमण जैसा और जानकारी अरविन्द जैसी। कृष्णमूर्ति का अनुभव रमण जैसा, जानकारी अरविन्द जैसी नहीं।

दूसरा फर्क, रमण बहुत मौन है, कृष्णमूर्ति मुखर है। इसलिए, कृष्णमूर्ति के भी वक्तव्यों को अगर छाटा जाय तो बहुत ज्यादा नहीं है। इसलिए, जो कृष्ण-मूर्ति को सुनते हैं वह अनुभव करेगे कि वह एक ही चीज़ को निरन्तर चालीस वर्षों से दोहराये चले जा रहे हैं। एक पोस्टकार्ड पर उनके वक्तव्य भी इकट्ठे हो सकते हैं। लेकिन, वह कहने में ज्यादा विस्तार लेते हैं। तर्क का उपयोग करते हैं। रमण विस्तार भी नहीं लेते। इसको ऐसा भी समझें कि कृष्णमूर्ति के वक्तव्य तो एटामिक हैं, लेकिन वक्तव्यों के आस-पास वे तर्क का, विचार का, चितन का जाल भी खड़ा करते हैं। रमण के वक्तव्य निपट एटामिक हैं। उनके आस-पास कोई वक्तव्य का, तर्क का, समझाने का जाल भी नहीं है। रमण के वक्तव्य उपनिषदों जैसे हैं। सीधे 'स्टेटमेंट' हैं। उपनिषद कह देता है, बहु है और वह यह भी फिक्क नहीं करता है कि क्यों है? है कि नहीं है। कैसे है, क्या तर्क है, क्यों है, यह कुछ नहीं। रमण उपनिषद के कृषियों से जोड़े जा सकते हैं।

रमण, या रमण जैसे और लोग भी जो हैं के कहते हैं—वह कभी जन्मा नहीं, अजात हैं। यह दूसरा पहलू है एक और बात का, जिसे हम निरन्तर कहते हैं, लेकिन स्थाल में नहीं लेते। सैकड़ों वक्तव्य हैं इस बात के कि जो है वह मरेगा नहीं। अमृत है। अमर्त्य है। इसका दूसरा पहलू, अमर्त्य वही हो सकता है जो अजात है। जो जन्मा न हो। रमण कहते हैं, जो है वह जन्मा नहीं है। इसीलिए तो जो है वह मरेगा नहीं। यह बड़े मजे की बात है, आप कब जन्मे, आपको पता है? आप कहेंगे—नहीं, पता तो नहीं है। हा, जन्म के लेखे जोखे हैं, जो दूसरों ने हमें बताये। अगर मुझे कोई न बताये कि मैं जन्मा, तो क्या मुझे पता चल सकेगा कि मैं जन्मा? ये 'इन्फर्मेशन' हैं जो दूसरों ने मुझे दी है। दूसरे मुझे कहते हैं कि फला फला तारोख को फला फला धर में मैं जन्मा। अगर यह खबर मुझे न दी जाय तो क्या कोई भी उपाय मेरे पास भीतरी है, जिससे मैं पता लगा सकूँ कि मैं कभी जन्मा? नहीं, आपके पास भीतरी कोई 'एविडेस' नहीं है कि आप जन्मे हैं। असल में भीतर जो है वह कभी जन्मा ही नहीं, 'एविडेस' हो कैसे सकता है? आप कहते हैं कि मैं कभी मरूगा, लेकिन आपको मरने का कोई अनुभव है? नहीं। आप कहेंगे, दूसरों को हमने मरते देखा। लेकिन, समझ ले कि एक आदमी को हम किसी को मरते न देखने दे—इसमें कोई कठिनाई नहीं है। क्या एक ऐसा आदमी, जिसको हम किसी को मरते न देखने दे, कभी इस नतीजे पर पहुँच सकेगा किसी भी कारण से, किसी भीतरी वजह से कि मैं मरूगा? नहीं पहुँच सकता है। यह भी 'आउटर एविडेस' है। यह भी हमने किसी और को मरते देखा है। लेकिन, हमारे भीतर कोई प्रभाण नहीं है, कोई गवाही नहीं है कि हम मरेंगे। इसीलिए, शायद इतने लोग मरते हैं, फिर भी हमें स्थाल नहीं पैदा होता कि हम मरेंगे। मरते जाते हैं, सोचते हैं मर रहा होगा दूसरा कोई। बाकी भीतरी कोई गवाही नहीं है कि मैं मरूगा, न भीतरी कोई गवाही है कि मैं कभी जन्मा। भीतर की गवाही किस चीज़ की है? भीतर की सिर्फ़ एक गवाही है कि मैं हूँ। और कोई गवाही नहीं है। तो गैर-गवाही की बाते माने जाने के लिए रमण मना करते हैं। वह कहते हैं कि जो जितनी पक्की गवाही है उतना ही मानना काफी है। मैं हूँ, इतनी गवाही है। मैं भी यही कहता हूँ, मैं हूँ इतनी गवाही हूँ। और, अगर थोड़े और भीतर प्रवेश करेंगे तो पायेंगे, मैं भी नहीं हूँ। हूँ, इतनी ही गवाही है।



**पर्व : चौदह**  
धर्मविद का हृष्ण-दर्शन  
अर्जुन का अविलत्य  
बुद्ध पूर्णिमा : लाभा-आत्मा से संबंध स्थापन  
आत्मा का पुनर्जन्म  
समर्पण और सम्बन्ध





१४

प्रश्न : कृष्ण-दर्शन के बारे में कुछ कहने को आकी रह गया था । आपने अहमदाबाद में बताया था कि बहुत हड़ तक मानसिक प्रसोपण हो सकता है । अरविन्द का कृष्ण-दर्शन क्या मानसिक प्रसोपण है या mystic अनुभूति है ?

प्रश्न : अर्जुन यदि सिर्फ निमित्त मात्र है तो वे यदि मात्र रह जाते हैं, उनकी individuality का क्या होगा ?

उत्तर : कृष्ण-दर्शन या काइट का दर्शन या बुद्ध या महावीर का दर्शन

दो प्रकार से सम्भव है। एक, जिसको 'मेटल प्रोजेकशन' कहे, मानसिक प्रक्षेपण कहें। जब कि वस्तुत कोई साम्य नहीं होता, लेकिन हमारे मन की वृत्ति ही आकार लेती है। जब कि वस्तुत हमारा विचार ही आकार लेता है। जब कि वस्तुत हम ही बाहर के भी रूप के निर्माता होते हैं। मानसिक प्रक्षेपण से मतलब यह है कि वस्तुत उस प्रक्षेपण, उस रूप, उस आकृति के थीछे कोई भी नहीं होता। मन की यह भी क्षमता है। मन की यह भी शक्ति है। जैसे, रात हम स्वप्न देखते हैं वैसे ही हम सुली आत्म से भी सपने देख सकते हैं। एक तो यह सभावना है।

दूसरी सभावना कृष्ण-दर्शन की—कृष्ण-रूप के दर्शन की सभावना नहीं है, कृष्ण-आकृति के दर्शन की सभावना नहीं है। कृष्ण चेतना में ढूबे होने की, कृष्ण चेतना के विस्तार के अनुभव की, कृष्ण चेतना के साक्षात्कार की सभावना है। जैसा मैंने कल कहा था कि एक तो सागर रूप कृष्ण और एक लहर रूप कृष्ण है। लहर रूप कृष्ण का उपयोग उनके सागर रूप अनुभव के लिए किया जा सकता है। उनके चित्र, उनके प्रतीक, उनकी मूर्ति का उपयोग उनके सागर रूप दर्शन के लिए किया जा सकता है। लेकिन, जब उनका सागर रूप दर्शन होगा तब कृष्ण की प्रतिमा विदा हो जायेगी, विलीन हो जायेगी। कृष्ण की आकृति स्थो जायेगी, शून्य हो जायेगी। कृष्ण की प्रतिमा का उपयोग हो सकता है उनके विराट दर्शन के प्राथमिक बिन्दु की तरह। लेकिन, अगर किसी को विराट का तो दर्शन नहीं होता, कृष्ण की प्रतिमा का ही दर्शन होता है, कृष्ण की आकृति का ही दर्शन होता है तो वह सिर्फ मानसिक प्रक्षेपण है। परन्तु, जिसको कृष्ण चेतना का दर्शन होगा उस चेतना का अनुभव, आकृति का अनुभव नहीं है। उस चेतना का अनुभव रूप का अनुभव नहीं है। यह सब नाम की बात होगी कि वैसा आदमी चूकि कृष्ण को प्रेम करता है या कृष्ण की आकृति से उसने यात्रा की है इसलिए इस अनुभव को कृष्ण चेतना का अनुभव कहेगा। यही अनुभव बुद्ध की आकृति से भी हो जायेगा, जीसस की आकृति से भी हो जायेगा। जीसस से चलने वाला इसको क्राइस्ट का अनुभव कहेगा, कृष्ण से चलनेवाला कृष्ण का अनुभव कहेगा। लेकिन, यह अनुभव सागर रूप का है।

अरविन्द जिस अनुभव की बात कर रहे हैं वह कृष्ण की आकृति है। वे कृष्ण के व्यक्ति के अनुभव की बात कर रहे हैं। वे कहते हैं, कृष्ण ही उनके सामने साकार खड़े हैं। ऐसा अनुभव प्रक्षेपण है। 'मेटल प्रोजेकशन' है। इसका बड़ा सुख है, इसका बड़ा रस है, लेकिन है यह हमारे मन का विस्तार। यह हमारे मन ने ही चाहा है, यह हमारे मन का ही खेल है, यह हमारे मन ने ही फैलाया और

जाना है। मन से हम शुरू करेंगे, लेकिन अत तो अ-मन पर, 'नोमाइण्ड' पर होगा। यह बड़े मजे की बात है कि जहाँ तक रूप है वहाँ तक मन होता है। जहाँ तक आकृति है वहाँ तक मन होता है। जहाँ रूप और आकृति नहीं होती वहाँ मन खो जाता है, वहाँ मन के होने का उपाय नहीं। मन का भोजन है, आकृति, रूप, संगुणता। अगर संगुण खो जाय तो मन भी खो जाता है। और, जिस कृष्ण के दर्शन की मैं बात कर रहा हूँ, वह मन के रहने नहीं होगा, वह मन के खोने पर होता है। तो जिसने भी कभी कहा हो कि मैंने कृष्ण को व्यक्ति रूप में जाना, पहचाना देखा और मिले, वे विराट चेतना के पर्दे पर अपने मन की आकृति को 'प्रोजेक्ट' कर रहे हैं। जैसे, फिल्म के पर्दे पर पीछे प्रोजेक्टर होता है और पर्दे पर चीजें दिखायी पड़नी शुरू हो जाती हैं जो दरअसल वहाँ नहीं है। वहाँ सिर्फ कोरा पर्दा है। ऐसे ही हमारे मन का उपयोग हम 'प्रोजेक्टर' की भाँति कर सकते हैं, करते हैं। लेकिन, यह अनुभव आध्यात्मिक अनुभव नहीं है। यह अनुभव 'साइकिक एक्सपीरिएंस' है, मानसिक अनुभव है। सुख इससे मिलेगा, क्योंकि कृष्ण को जानना, कृष्ण को देख लेना बड़ा तृप्तिदायी होगा। लेकिन, यह सुख ही है, आनन्द नहीं है। और, न सत्य की अनुभूति है। अरबिन्द पण्डित थे इसलिए मैं कह रहा हूँ कि उनका अनुभव प्रोजेक्शन है, ऐसी बात नहीं है। अनुभव का जो ढंग है वह, 'प्रोजेक्शन' का है। अनुभव का जो वे चित्तण कर रहे हैं, जो वर्णन कर रहे हैं वह 'प्रोजेक्शन' का है। अगर सागर रूप कृष्ण का अनुभव हो या सागर रूप क्राइस्ट का, उसमें बहुत फर्क नहीं पड़ता। वह अनुभव कभी खोयेगा नहीं। वह एक बार कभी हुआ कि हुआ। इसके बाद उसके अतिरिक्त कोई अनुभव ही नहीं बचेगा। इसके बाद वृक्षों में, पौधों में, पत्थर में, लोगों में सब तरफ कृष्ण ही दिखायी पड़ने लगेंगे। लेकिन, प्रोजेक्शन तो आयेगा और चला जायेगा। वह एक क्षण चमकेगा और खो जायेगा।

यह भी ध्यान में लेने जैसी बात है कि 'प्रोजेक्शन' का जो अनुभव है, या मानसिक चित्तों का जो देख लेना है, उसे अरबिन्द केवल पण्डित होने के कारण नहीं देख पा रहे हैं (क्योंकि, पण्डित तो चित्तों को देखने में भी असमर्थ होता है) अरबिन्द की एक और दिशा भी है, वह काव्य की दिशा है। अरबिन्द पण्डित ही नहीं महाकवि भी है। और, रवीन्द्रनाथ से कम हैसियत के कवि नहीं हैं। अमर नोबल प्राइज उन्हें नहीं मिल सका तो इसका कारण यह नहीं है कि उन्होंने रवीन्द्रनाथ से कम हैसियत की कविता लिखी। उसका कुल कारण यह है कि उनकी कविता दुरुह है और समझ में नहीं आ सकी। 'सावित्री' दुनिया के अंष्टतम महाकाव्यों में से एक है, सिर्फ दस-पाँच महाकाव्य उसकी कोटि के महाकाव्य हैं। इसलिए,

पण्डित तो नहीं देख सकता प्रोजेक्शन; लेकिन अरविन्द का कवि देख सकता है। और, अरविन्द के भीतर जो कवि की क्षमता है वही आसान कर देगी उन्हें कि कृष्ण को वह देख ले। उनका कवि हृदय ही प्रोजेक्शन कर पाता है। प्रक्षेपण कवि हृदय के लिए आसान है। शुरू तर्क ही अगर उनके जीवन में हो तो प्रक्षेपण भी नहीं हो सकता है। उन्होंने जो अभिव्यक्ति की है, अति बुद्धिवादी शब्दों में, इस कारण नहीं कह रहा हूँ कि वे सिर्फ जानकार हैं। क्योंकि, अभिव्यक्ति तो तर्क के और बुद्धि के शब्दों में करनी ही होती है। लेकिन, यह तर्क किसी पार की कोई खबर नहीं लाते, किसी 'ट्रासिडेस' की कोई खबर नहीं लाते, इसलिए कह रहा हूँ।

हम शब्दों का प्रयोग दो तरह से कर सकते हैं—एक तो शब्दों का प्रयोग हम ऐसा कर सकते हैं जब शब्दों का अर्थ शब्द की सीमा के भीतर होता है। जितना बड़ा शब्द होता है उतना ही बड़ा अर्थ होता है। एक शब्द का प्रयोग हम ऐसा कर सकते हैं जबकि अर्थ तो बड़ा होता है और शब्द छोटा होता है। अरविन्द के साथ उल्टा मामला है। उनके शब्द बहुत बड़े हैं, अर्थ बहुत छोटा है। अरविन्द बड़े शब्दों का उपयोग करते हैं। लम्बे-लम्बे शब्दों का उपयोग करते हैं। शब्द से अर्थ अगर ज्यादा हो तो 'ट्रासिट' करता है और 'मिस्ट्री' में प्रवेश कर जाता है। अगर शब्द, अर्थ से बहुत बड़ा हो तो ज्यादा 'फिलोसफी' में—बल्कि 'फिलोसफी' भी न कहकर 'फिलोलोजी' में, दर्शन में भी नहीं, भाषा शास्त्र में प्रवेश कर जाता है। शब्द से बड़ा अर्थ जब शब्द लेकर चलता है तो गर्भित हो जाता है, 'प्रेगनेन्ट' हो जाता है। अरविन्द का कोई शब्द 'प्रेगनेन्ट' नहीं है। उसके पार जाने वाला उसमें कोई सूचक 'एरो' नहीं है। कारण है उसके।

जैसा मैंने सुबह आपसे कहा कि अरविन्द का सारा शिक्षण जहा हुआ, वहा उन दिनों जैसा विज्ञान पर डार्विन हावी था, ठीक वैसे ही 'फिलोसफी' पर हीगल हावी था। हीगल ने बड़े-बड़े शब्दों का प्रयोग किया है जिनमें अर्थ उतना नहीं है। लेकिन, हीगल को पढ़ते वक्त ऐसा लगता है कि बड़ी गहरी बातें कही जा रही हैं। क्योंकि, अक्सर हमें जो बात समझ में नहीं आती उसे हम गहरा समझ लेते हैं। यह जहरी रूप से सच नहीं है। हालांकि यह जरूर सच है कि जो गहरी होती है वह आसानी से समझ में नहीं आती। अरविन्द का भी कहने का ढग हीगेलियन है। वह कहते तो बहुत कम हैं, लेकिन शब्द बड़े उपयोग करते हैं। वह बहुत लम्बा चक्कर लेते हैं। अरविन्द को पढ़ जाने के बाद मूँह में जो स्वाद छूट जाता है वह सिर्फ शब्दों का है, अनुभव का जरा भी नहीं है। अरविन्द को पठकर ऐसा लगेगा कि जो भी कहने योग्य था उससे भी ज्यादा अरविन्द कह सके।

इसमें तो रवीन्द्रनाथ का मुझे एक स्मरण जाता है, उससे आपकी समझ में आये।

रवीन्द्रनाथ के मरने के कुछ घटियों पहले एक मित्र ने रवीन्द्रनाथ को कहा कि तुमने तो गालिया, जो तुम्हें गना था। अब तुम श्राति से, सुख से, परमात्मा को धन्यवाद देते हुए बिदा हो सकते हो। तुम्हें जो करना था वह तुम कर चुके पृथ्वी पर। रवीन्द्रनाथ ने आख खोली और कहा कि कैसी गलत बात कर रहे हो? मैं तो यह प्रार्थना कर रहा हूँ परमात्मा से कि अभी तो मैं साज जमा पाया था, बिठा पाया था, ठोक पीटकर, मृदग को, सितार को तैयार कर पाया था और यह बिदा होने का बक्त आ गया। अभी मैंने गाया कहा? जिसको लोगों ने गीत समझा है वह केवल साज का ठोक पीटना था। अभी मैं वह कहा कह पाया जो मुझे कहना था। लेकिन, अगर कोई अरविन्द से कहे तो अरविन्द यह न कह सकेगे। अरविन्द बिल्कुल कह चुके हैं जो उन्हे कहना था। बड़े ढग से और व्यवस्था से कह चुके हैं। अरविन्द और रवीन्द्र मेरे मैं कहूँगा कि रवीन्द्र कहीं ज्यादा 'मिस्टिक' है बजाय अरविन्द के। ज्यादा रहस्य की तरफ उनके इशारे हैं। अरविन्द के इशारे बहुत साफ हैं। रहस्य की तरफ नहीं है।

एक बात और पूछी है—यह पूछी है कि अगर अर्जुन सिर्फ निमित्त भाव है और जो होना था वह होना ही है तो फिर अर्जुन के व्यक्तित्व का क्या होगा? फिर वह एक 'इन्स्ट्रूमेट' भाव, एक साधन रह जायेगा। इसे ऐसा समझने की कोशिश करेंगे तो बड़ी सरलता से कुछ सत्य दिखायी पड़ेंगे। अगर किसी व्यक्ति को 'इन्स्ट्रूमेट' बनाया जाय तो उसका व्यक्तित्व नष्ट होता है। लेकिन, अगर कोई व्यक्ति इन्स्ट्रूमेट बन जाय तो उसका व्यक्तित्व खिलता है, नष्ट नहीं होता। अगर कोई दबाव डालकर किसी आदमी को साधन बना दे तो उस आदमी की आत्मा मर जाती है। लेकिन, अगर कोई अपने ही हाथ से समर्पण कर दे और अपने आप को पूरा छोड़ दे विश्व की धारा में और साधन बन जाय तो उसकी आत्मा पूरी तरह खिल जाती है। उसका व्यक्तित्व नष्ट नहीं होता, 'फुलफिल्ड' होता है। फर्क इतना ही है कि अधर मेरे ऊपर जबरदस्ती आप हथकड़िया डाल देतो मैं गुलाम हो जाता हूँ। और, मैं हथकड़िया उठाकर आपको दे दू और कहूँ कि मेरे हाथ मे डाल दे, तो मैं गुलामी का भी नियन्ता हो जाता हूँ। मैं अपनी गुलामी का भी निर्धारक हो जाता हूँ। मैं निरन्तर डायोजनीज की कहानी कहता हूँ। उस बात को कहना अच्छा होगा।

डायोजनीज गुजरता है एक खगल से। नगा फकीर और अलमस्त आदमी

है। कुछ लोग जा रहे हैं गुलामों को बेचने वाजार। उन्होंने देखा इस डायोजनीज को। सोचा कि यह आदमी पकड़ मे आ जाय तो दाम अच्छे प्रिल सकते हैं। ऐसा गुलाम कभी वाजार मे बिका नहीं है। बड़ा शानदार। ठीक महाबीर जैसा शरीर अगर किसी आदमी के पास था दूसरे फक्तीरों मे तो वह डायोजनीज के पास था। मैं तो यह निरन्तर कहता रहा हूँ कि महाबीर नन्हे इसलिए खड़े हो सके कि वह इतने सुन्दर थे कि ढाकने योग्य कुछ था नहीं। बहुत सुन्दर व्यक्तित्व था। वैसा डायोजनीज का भी व्यक्तित्व था। गुलामों ने सोचा, हम हैं तो आठ, लेकिन पकड़ेंगे कैसे? यह हम आठ की भी मिट्टी कर दे सकता है। यह अकेला काफी है। मगर, फिर भी उन्होंने सोचा कि हिम्मत बाधी। यह ध्यान रखे, जो दूसरे को दबाने जाता है वह हमेशा भीतर अपने को कमज़ोर समझता है। वह सदा भयभीत होता है। वह आठों डर गये, लेकिन बड़ा पक्का निर्णय करके आठों एकदम से हमला करते हैं। अगर डायोजनीज उनके हमले का जवाब देता तो वह मुश्किल में न पड़ते। क्योंकि, उनकी योजना मे इसकी चर्चा हो गयी थी। डायोजनीज उनके बीच मे आख बन्द करके हाथ जोड़कर खड़ा हो जाता है और कहता है, क्या खेल खेलने का इरादा है? वह बड़ी मुश्किल मे पड़ गये है कि इससे क्या कहे। उन्होंने कहा, माफ करें, हम आपको गुलाम बनाना चाहते हैं। डायोजनीज ने कहा, इतने जोर से कूदने फादने की क्या जरूर है? नासमझी, निवेदन कर देते, हम राजी हो जाते। इतनी उछल कूद, इतना छिपना छिपाना, यह सब क्या कर रहे हैं? बन्द करो यह सब। कहा है तुम्हारी जजीरे? डायोजनीज ने कहा। वह तो एकदम मुश्किल में पड़ गये। ऐसा आदमी कभी नहीं देखा था जो कहे, कहा है तुम्हारी जजीरे? और, इतना डाटकर वह पूछता है जैसे मालिक वह है, और गुलाम ये हैं। जजीरे उन्होंने निकाली और डरते हुए दे दी। डायोजनीज ने हाथ बढ़ा कर कहा कि बन्द करो। वह कहने लगे, आप मह क्या कर रहे हैं। हम आपको गुलाम बनाये आये थे, आप खुद बने जा रहे हैं। डायोजनीज ने कहा, हम यह राज समझ गये कि इस जगत मे स्वतंत्र होने का एक ही उपाय है और वह कि गुलामी के लिए भी दिल से राजी हो जाओ, तब हमें कोई गुलाम बना नहीं सकता है। अब उपाय ही न रहा तुम्हारे पास। अब तुम कुछ न कर सकोगे। फिर वह डरे हुए उसको बाधकर चलने लगे। डायोजनीज ने कहा, नाहक तुम्हे इन जजीरों का बोझ ढोना पड़ रहा है। इन्हें उतार कर फेंक दो। मैं तुम्हारे माथ चल ही रहा हूँ और भागने वाला नहीं हूँ। उन्होंने जजीरे उतार कर रख दी, क्योंकि जिसने अपने हाथ में जजीरे पहनवा लीं उसको अब और जजीरों में बाघ कर ले जाने का क्या भतलब? डायोजनीज फिर भी शान से चल रहा है और जिन्होंने

गुलाम बनाया है वे बड़े डरे हुए चल रहे हैं कि पता नहीं वह उपद्रव न कर दे ! जगह-जगह जो भी देखता है वह डायोजनीज को देखता है। डायोजनीज कहता है, क्या देख रहे हो ? ये मेरे गुलाम हैं। वह जगह-जगह यह कहता फिरता है कि ये मुझे छोड़कर नहीं भाग सकते हैं, ये मुझसे बचे हैं। वह बेचारे बड़े हतप्रभ हुए जा रहे हैं। किसी तरह वह बाजार आ गये हैं। उन्होंने जाकर किसी से गुफ्तगू की, जो बेचनेवाला था उससे बातचीत की। कहा कि जल्दी नीलाम इस आदमी को चढ़ा दो, क्योंकि इसकी बजह से हम बड़ी मुसीबत में पड़े हुए हैं। भीड़ लग जाती है और वह लोगों से यह कहता है कि ये मेरे गुलाम हैं। कीमती आदमी है और पैमा अच्छा भिल जायेगा इसलिए उसे तख्त पर खड़ा किया जाता है। नीलाम करने वाला जोर से चिल्लाता है कि एक बहुत शानदार गुलाम बिकने आया है। कोई खरीददार है ? उसी बक्त डायोजनीज बड़े जोर से चिल्लाता है और कहता है, चुप नासमझे, अगर तुम्हें आवाज लगाना नहीं आता है तो आवाज हम लगा देते हैं। वह घबरा जाता है, क्योंकि किसी गुलाम ने कभी उस नीलाम करने वाले को इस तरह नहीं डाटा था। डायोजनीज चिल्लाकर कहता है कि आज एक मालिक इस बाजार में बिकने आया है, किसी को खरीदना हो तो खरीदे !

जिस 'इन्स्ट्रूमेटलिटी' में, जिस यात्रिकता में हम यत्र बनाये जाते हैं, जहाँ हमारी मजबूरी है, जहाँ हम गुलाम की तरह है वहा तो व्यक्तित्व मरता है। लेकिन, कृष्ण अर्जुन से यह नहीं कह रहे हैं कि तू यत्रवत बन जा। कृष्ण अर्जुन से यह कह रहे हैं कि तू समझ, इस जगत की धारा से तू व्यर्थ ही लड़ मत। इस धारा को समझ, इसमें आड़ा मत पड़, इसमें बह। और, तब पूरा खिल जायेगा। अगर कोई आदमी अपने ही हाथ से समर्पित हो गया है इस जगत के प्रति, इस सत्य के प्रति, इस विश्व यात्रा के प्रति तो वह यत्रवत नहीं है, वही आत्मवान है। क्योंकि, सुभर्ण से बड़ी और कोई धोषणा अपनी मालकियत की। इस जगत में नहीं है। इस बात को आड़ा ठीक से समझ लेना। क्योंकि, अगर मैं अपने को समर्पित करता हूँ तो उसका मतलब ही यह है कि मैं अपना मालिक हूँ और समर्पित कर सकता हूँ। इसमें अर्जुन यत्रवत नहीं हो जाता। इससे अर्जुन आत्मवान हो जाता है। और, उसका व्यक्तित्व पहली दफा पूरी निश्चेष्टा में 'इफटलेसली' खिलता है।

**प्रश्न :** फिर लौटकर अरविन्द के हृष्ण-दर्शन पर आ रहे हैं। आपने बताया कि वह आत्म प्रोजेक्शन लगता है। लेकिन, आपने दोपहर एक बात बतायी कि आज भी सामाजिक सुरक्षा के अनुसार एक ऐसा विन

आता है जबकि कुछ अधिकारी लामा, बुद्ध के साथ आज भी संपर्क स्थापित करते हैं। एक बार और भी। जब आप गांधीजी पर बोल रहे थे तब किसी ने आपसे प्रश्न किया था कि आप ऐसी बात गांधीजी के सबध में कैसे कहते हैं? क्या गांधीजी ने ऐसा कहा? तो आपने कहा, मैं यह बात गांधी से पूछकर कह रहा हूँ। तीसरी बात और। लामा पढ़ति के बारे से ऐसा भी पढ़ने में आया है कि अब भी तिब्बत में कुछ वर्ष पूर्व तक ऐसे लामा थे जो कि जीवित अवस्था में भी सूक्ष्म शरीर से दूसरे स्थान पर पहुँचकर स्थूल रूप से अपने दर्शन देते थे और बापस अपने स्थान पर आ जाया करते थे। इन बातों के बारे में मैं आपसे कुछ जानना चाहता हूँ।

उत्तर इस सम्बन्ध में दातीन बाते समझ ले। ऐसा मैंने कहा है कि बुद्ध-पूर्णिमा के दिन, जिस हिमालय की श्रृङ्खलाओं में हम बैठे हैं, इसी हिमालय के किसी शिखर पर एक विशेष घड़ी में बुद्ध के व्यक्तित्व का दर्शन होता है। पाच सौ लामाओं में ज्यादा उस पर्वत शिखर पर कभी नहीं हुए हैं। उन पाच सौ में से जब एक कम होता है तभी एक नये लामा को जगह मिलती है। लेकिन इसमें, और कृष्ण के दर्शन में जो अरविन्द को हुए, बुनियादी फर्क है। कृष्ण के दर्शन में अरविन्द चेष्टारत है। इस दर्शन में बुद्ध चेष्टारत है। लामा नहीं। लामा सिर्फ मौजूद होते हैं। इस फर्क को बहुत ठीक से समझ लेना चाहिए। यह बुद्ध का आश्वासन है कि बुद्ध-पूर्णिमा के दिन फला-फला पवत पर राति के इतने क्षणों में वे प्रकट होंगे। बुद्ध का सागर रूप जो है, इस रात की इस घड़ी में फिर लहर बनेगा। लेकिन, इसमें लामा कुछ भी नहीं कर रहे हैं। उनका कोई 'पार्ट' नहीं है। दूसरा फर्क—अरविन्द का दर्शन अकेले में हुआ दर्शन है। 'प्रोजेक्शन' में और इसमें बुनियादी फर्क है। ये पाच सौ लोग इकट्ठा दर्शन करते हैं। 'प्रोजेक्शन' हमेशा 'पर्सनल' होता है। उसमें दूसरे आदमी को 'पार्टीसिपेट' नहीं करवाया जा सकता। अगर अरविन्द को जिस कृष्ण के दर्शन हो रहे हैं, आप कहें कि हम भी इस कमरे में आ जाय, हमको भी करवा दे तो वह कहेगे, यह नहीं हो सकता। यह मुझको ही होता है। इसको दूसरे आदमी के साथ भागीदारी में नहीं देखा जा सकता। लेकिन, पाच सौ व्यक्तियों के सामने जब कोई चीज प्रकट होती है तो इसको व्यक्तिमन का 'प्रोजेक्शन' नहीं कह सकते। दूसरी बात यह कि पांच सौ लोग 'टैली' करते हैं कि हा ठीक है—ठीक घड़ी पर, ठीक समय पर जो दिखायी पड़ा है, जो सुनायी पड़ा है—इसके पांच सौ गवाह हैं। अरविन्द तो अकेले

खुद ही गवाह है। उससे भी पहले जो मैंने बात कही, उस कृष्ण-दर्शन में अरकिन्द की सतत चेष्टा है। उसमें पूरा प्रयाम है कि कृष्ण का दर्शन कैसे हो। इसमें कोई चेष्टा नहीं है। इसमें एक घड़ी पर एक आश्वासन है, जो पूरा होता है। एक लहर, जो पीछे सागर से उठी थी, बायदा कर गयी है कि फला-फला घड़ी तुम इस तट पर इकट्ठे हो जाना, मैं फिर उठूँगी।

यह जो पात्र सौ की सीमित सख्त्या है, इसमें ही व्यक्ति प्रवेश नहीं पाता। सिर्फ वे ही लोग प्रवेश पाते हैं जो अपने अचेतन चित्त को जानने में समर्थ हो सके हैं। वह उसकी पात्रता का नियम है। जब तक अचेतन चित्त पर हमारी अपनी सामर्थ्य नहीं है तब तक 'कलेक्टिवली' हम 'हिप्नोटाइज' हो सकते हैं। लेकिन, जिस दिन मेरे अपने अचेतन चित्त का मुझे पता हो गया उस दिन मुझे 'हिप्नोटाइज' नहीं किया जा सकता। उस दिन कोई उपाय नहीं है। क्योंकि, मेरे भीतर वह हिस्सा नहीं रहा जहा सुन्नाव डालकर मेरे सामने कोई 'प्रोजेक्शन' करवाया जा सके। इस-लिए एक लाभा के हटने पर ही दूसरा लाभा चुना जाता है और वह चुनाव भी बड़ी मुश्किल का चुनाव है। उसके बड़े अजीब नियम हैं।

अभी यह दलाई लामा जो आज है, यह पिछले दलाई लामा की ही आत्मा है। पिछला दलाई लामा जब मरता है या एक दलाई लामा जब मरता है तो वह अपना बक्तव्य छोड़ जाता है कि अगली बार इस-इस शरीर के ढंग में मैं प्रकट होऊंगा, तुम खोज लेना। एक अजीब बात और है कि एक छोटा-सा सूत भी छोड़ जाता है। उस सूत की पूरे तिव्वत के गाव-गाव में दैण्ड पीटकर धोषणा की जाती है। दलाई लामा जब मरेगा, तो कितने वर्ष बाद तिव्वत के गाव-गाव वह सूत घुमाया जाय, इसकी वह सूचना कर जायेगा। क्या-क्या चिन्ह उस लड़के पर होंगे, इसकी सूचना कर जायेगा। और, इसका उत्तर सिवाय इस दलाई लामा के किसी को भी पता नहीं है। वह उत्तर लिखकर रख जायेगा वह सब 'सील्ड' होगा। और, जब कोई बच्चा उसका उत्तर दे देगा, सारे चिन्ह मिल जायेंगे, तब वह 'सील्ड' उत्तर खोला जायेगा। अगर वह उत्तर वही है जो इस बच्चे ने दिया है तो गवाही होगी कि यह दलाई लामा के योग्य हो गया, इसको दलाई लामा की जगह पर बिठा दिया जायेगा। यह उसकी ही आत्मा, जो उत्तर लिखकर गयी थी, उत्तर दे रही है। तिव्वती लामाओं की परम्परा के अपने बड़े अजीब सूत हैं। यह जो एक आदमी खाली हो जायेगा, इस खाली आदमी को खोजने के नियम हैं। और इस पर सब तरह के प्रयोग करके यह जाचने की कोशिश की जायेगी कि यह आदमी 'हिप्नो-टाइज' तो नहीं हो सकता। बगर यह हो जाता है तो यह पात्र नहीं होगा। बुद्ध-

पूर्णिमा के दिन किया कुछ भी नहीं जाता । पाच सौ लामा एक खास घड़ी में, एक खास क्षण में भौन चुपचाप खड़े हो जाते हैं । और घटना घटती है । न कोई सुनाव दिया जाता है, न कोई बात की जाती है, न कुछ किया जाता है । यह बहुत भिन्न मामला है । यह अरविन्द के कृष्ण-दर्शन का मामला नहीं है ।

दूसरी बात, जैसा मैंने कहा, उन आत्माओं से, जिनके शरीर तो छूट गये, लेकिन जो अभी सागर रूप नहीं हो गयी है, सबधू स्थापित किये जा सकते हैं । जो आत्माएं, शरीर तो छोड़ चुकी हैं, लेकिन अभी सागर रूप में खो नहीं गयी हैं, अशरीरी जिनका व्यक्तित्व है, उनसे सम्बन्ध स्थापित किये जा सकते हैं । उसमें जरा भी कठिनाई नहीं है । कृष्ण अशरीरी आत्मा नहीं है । सागर रूप हो गये हैं । गाढ़ी अशरीरी आत्मा है । साधारण रूप से जो लोग भी मर जाते हैं, उन सबसे सम्बन्ध स्थापित किये जा सकते हैं । उसके अपने नियम, अपनी विधि, अपनी 'टेक्नोलॉजी' है । यह बड़ी सरल-सी बात है । कई बार ऐसी आत्माएं अपने स्वजनों से खुद भी सम्बन्ध स्थापित करने की चेष्टा करती है । पर, हम घबरा जाते हैं उससे, हम परेशान हो जाते हैं । जिनको हमने बहुत प्रेम किया है उनको भी हम अशरीर देखकर प्रेम करने को राजी न हो ! जिन्हे हमने बहुत चाहा है वे भी अगर कल शरीर के बिना हमारे द्वार पर उपस्थित हो जाय तो हम दरवाजा बन्द करके पुलिम को चिल्लायेगे कि हमे बचाओ । क्योंकि, हमने केवल शरीर को ही पहचाना है । उसमें गहरी हमारी कोई पहचान नहीं है । जो आत्माएं शरीर के बाहर हैं, लेकिन नये जन्मों की तलाश में हैं उनसे सम्बन्ध स्थापित करना बहुत सरल-सी बात है । न उसमें 'प्रोजेक्शन' का सवाल है, न उसमें उनके प्रकट होने का सवाल है । सिर्फ उनके पाम शरीर रूपी यत्न नहीं रहा । बाकी उनके पास सारे यत्न हैं । इस-लिए आपको उनसे सम्बन्ध स्थापित करने का थोड़ा-सा ल्याल हो तो बड़ी आसानी से कर सकते हैं ।

यहा हम इतने लोग बैठे हैं । यहा ऐसा नहीं है कि हम इतने ही लोग बैठे हैं । जितने दिखायी पड़ते हैं उतने तो बैठे ही हैं, जो नहीं दिखायी पड़ते हैं वह भी मौजूद है । और उनसे अभी तत्काल, अभी सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है । सिर्फ आपको 'रिसेटिंग' होने की जरूरत है । कमरा बन्द कर ले और तीन आदमी कमरे में सिर्फ आख बन्द करके हाथ जोड़कर बैठ जाय, और इतनी ही प्रारंभना कर ले कि इस कमरे में कोई आत्मा हो तो वह अपनी सूचनाएं दे । आप जो सूचनाएं उसको कह दे वह देना शुरू करती है । आप इतना ही कह दे कि टेबल पर जो पेपरवेट रखा है, यह उछलकर जबाब देने लगे, तो आप दो-चार दिन में पायेंगे कि

आपका पेपरबैट उछलकर जवाब दे रहा है। आप यह कह सकते हैं कि दरवाजे पर स्ट-स्ट करके आवाज कर दे वह आत्मा, तो दरवाजे पर आवाज हो जायेगी। किर इसको आप आगे बढ़ा सकते हैं। यह बहुत कठिन नहीं है। क्योंकि, आत्मा ए चौबीस घण्टे चारों तरफ मौजूद है। और, ऐसी आत्माएं भी चारों तरफ मौजूद हैं जो हमेशा 'विलिंग' हैं, अगर आप कुछ कहें तो करने को मूदा तत्पर है। जो बड़ी उत्सुक है कि आप किसी तरह का सम्बन्ध उनसे स्थापित कर ले। जो 'कम्युनिकेशन' के लिए बड़ी आत्मा है। जो कुछ कहना चाहती है, लेकिन उनको कहने का उपाय नहीं मिल रहा क्योंकि उनके और आपके बीच गगर का ही 'कम्युनिकेशन' का माध्यम था, वह टूट गया और दूसरे माध्यम का हमें कोई पता नहीं है। इसमें अडचन नहीं है। यह बहुत सीधी-सी, सरल-सी प्रेतात्मा-विद्या का हिस्सा है।

यह जो पूछा गया है कि क्या जैसा कहा जाता है कि इस शरीर से आत्मा दूर जाकर वापस लौट आ सकती है? बिल्कुल ही लौट आ सकती है। जा भी सकती है। क्योंकि, शरीर से हमारा होना, शरीर में हमारा होना है। उससे बाहर की यात्रा सदा सम्भव है। उसके अपने मार्ग, अपनी विधिया है। शरीर के बाहर हुआ जा सकता है, यात्रा की जा सकती है, दूर तक जाया जा सकता है, फिर वापस लौटा जा सकता है। कई बार आकस्मिक रूप से भी वैसा हो जाता है। जिसका आपको कुछ पता नहीं लगता। ध्यान के किसी गहरे क्षण में आप अचानक कई बार ऐसा अनुभव कर पायेगे कि आपको लगेगा कि आप शरीर के बाहर हो गये हैं और अपने ही शरीर को देख रहे हैं। फिर उम सबके विस्तार है। पर वह अलग बात है। उस पर कभी अलग ही हम इकट्ठे मिले तो प्रेतात्मा-विद्या पर सारी बात की जा सकती है।

**प्रश्न - आचार्यजी, रहस्य विद्या के अतिरिक्त बौद्धिक स्तर पर भी आत्मा को समझने का और पुनर्जन्म का कोई प्रभाव है? यानी दार्शनिक रूप से भी क्या हम सिद्ध कर सकते हैं, किना साधना में गये, कि आत्मा है और पुनर्जन्म होता है?**

**उत्तर.** जो व्यक्ति मरता है, उसका सिफे शरीर ही मरता है, उसका चित्त नहीं मरता। उसका मन नहीं मरता, वह उसके साथ जाता है। जैसे, हम सुबह स्वप्न से जब आगते हैं तो थोड़े समय तक स्वप्न याद रहता है। दोपहर होते-होते तिरोहित हो जाता है। साँझ होते-होते कुछ याद नहीं रहता कि क्या स्वप्न था। लेकिन, जब उस स्वप्न से हम एकदम उठते हैं तब स्वप्न का प्रियला हिस्सा हमें थोड़ा-सा याद होता है। हालांकि स्वप्न हमने बेहोशी में देखा। स्वप्न होश में नहीं देखा।

लेकिन, जब नीद टूटने के करीब होती है और थोड़ा सा होश आने लगता है तो उस होश में जितना स्वप्न, जितने भी सस्कार छूट जाते हैं वह हमे जाशने पर याद रहते हैं। प्रेतात्मा को, जैसे ही कोई व्यक्ति शरीर को छोड़ता है (प्रत्येक व्यक्ति की याददाश्त पर समय भिन्न-भिन्न होगा) उसे थोड़े समय तक अपने स्वजन, अपने प्रियजन याद रहते हैं। इन स्वजन और प्रियजनों को भुलाने के लिए बहुत उपाय किये गये हैं। आदमी मरा नहीं कि हम उसकी लाश को तत्काल मरघट ले जाना चाहते हैं। हम उसकी 'आइडिन्टी' को तत्काल नष्ट करना चाहते हैं। क्योंकि, अब कोई अर्थ नहीं है कि वह हमे याद रखे। यह शरीर जितनी देर रखा जा सके उतनी देर तक वह हमे याद रख सकेगा, क्योंकि इसी शरीर के माध्यम से उसकी सारी स्मृतियां हमसे हैं। यह शरीर बीच का जोड़ है। इसको हम ले जाते हैं— एकदम से आदमी मरता है तो थोड़ी देर तक उसे पता ही नहीं चलता कि वह मर गया है। क्योंकि, भीतर तो कुछ मरता नहीं। थोड़ी देर तक उसे ऐसे ही अनुभव होता है कि क्या कुछ गडबड हो गयी। शरीर अलग मालूम पड़ता है, मैं अलग हो गया हूँ। हा, जो लोग ध्यान में गये हैं, उन्हें यह तकलीफ नहीं होती, क्योंकि इस अनुभव से वे पहले गुजर गये होते हैं। मरने पर अधिकतम लोगों को बड़ी बेचैनी पैदा होती है? पहली बेचैनी यही पैदा होती है कि यह मामला क्या है? यह लोग रो क्यों रहे हैं? यह चिल्ला क्यों रहे हैं कि मैं मर गया, क्योंकि मैं तो हूँ। सिर्फ इतना ही मालूम होता है कि शरीर अलग पड़ा है जो मेरा था और मैं जरा अलग मालूम पड़ रहा हूँ। और तो कुछ मर नहीं गया। इसी शरीर के माध्यम से हमारा सारा 'एसेसिंशन' है स्मृतियों का। इसलिए, हम तत्काल मरघट ले जाते हैं शरीर को और उसको जला देते हैं या गाड़ देते हैं। शरीर के टूटे ही उस आदमी की स्मृतियों के जाल हमसे एकदम विच्छिन्न हो जाते हैं। जैसे सपने से उठा आदमी थोड़ी देर में स्वप्न भूल जाता है, ऐसा मृत्यु से उठा आदमी या जिसे हम जीवन कहते थे उससे उठा हुआ आदमी थोड़ी देर में सब भूल जाता है। वह कितनी देर में भूल जाता है उसके हिसाब से हमने दिन तय किये हैं। जिनकी स्मृति बहुत कमजोर है वह तीन दिन में भूल जाते हैं। जिनकी स्मृति थोड़ी अच्छी है वह तेरह दिन में भूल जाते हैं। ये बहुत सामान्य हिसाब से तय किये गये दिन हैं। तीन दिन में भूल जायेगे कि तेरह दिन में भूल जायेगे, लेकिन यह आमतौर से है। लेकिन, प्रगाढ़ से प्रगाढ़ स्मृति का आदमी एक वर्ष में भूल जाता है। इसलिए, वर्ष तक भूतक के कुछ सस्कार हम जारी रखते हैं, सभाबना है। लेकिन, सामान्यतया तीन दिन में सब टूट जाता है। वह व्यक्ति व्यक्ति पर निर्भर होगा। साल भर तक

बहुत कम आत्माएं बचती हैं आत्मा रूप में, शीघ्र नये जन्म ग्रहण कर लेती हैं। जो मरते बक्त पूरे होश में हैं वह तो कभी मरता नहीं। क्योंकि, वह जानता है कि सिर्फ शरीर छूटा। और जो इतने होश में हैं उसका न कोई स्वजन है, न कोई प्रियजन है, न कोई पराया है। जो इतने होश में हैं वह स्मृतियों के बोध से लदता नहीं। जो इतने होश में हैं उसकी तो बात हैं ही नहीं। और, जो मृत्यु में होश से मरता है वह अगले जन्म को होश से ले पाता है। जैसा, मैंने कहा कि मृत्यु के बाद थोड़े दिन तक हमें स्मरण होता है जहां से हम आये। जन्म के बाद भी बच्चे को थोड़े दिन स्मरण होता है, जहां से वह आया। एक प्रेतात्म जीवन का जो अनुभव जीव में गुजरा उसकी थोड़ी स्मृतियां उसके पास होगी। लेकिन, वह धीरे-धीरे खो जाती है। और इसके पहले कि बाणी उसे उपलब्ध होती है, खो जाती है। कभी-कभी बहुत ही तीव्र स्मृति वाले बच्चों को वे स्मृतियां शेष रह जाती हैं जो उसके बोलने के बाद भी जारी रहती है। वह 'रेयर' घटना है, स्मृति की बहुत ही अनूठी समाचन के कारण ऐसा होता है।

एक सवाल इस सम्बन्ध में पूछा गया है कि क्या रहस्यात्मक अनुशूति के अतिरिक्त भी पुनर्जन्म का कोई दार्शनिक प्रमाण है? दार्शनिक प्रमाण तो सिर्फ तार्किक रूप है। तर्क के आधार पर होते हैं। और, तर्क की एक खराबी है कि जितने बजन का तर्क पक्ष में दिया जा सकता है ठीक उतने ही बजन का तर्क विपक्ष में दिया जा सकता है। जो जानते हैं वह तर्क को वेश्या कहते हैं। वह किसी के भी साथ खड़ा हो सकता है। कोई अपना निजी मन्त्रव्य तर्क का नहीं है। जिन लोगों ने तर्क और दर्शन से सिद्ध करने की कोशिश की है कि पुनर्जन्म है उनके विपरीत ठीक उतने बजन के तर्क है, उससे सिद्ध किया जा सका है कि पुनर्जन्म मही है। तर्क बकील की तरह है। उसका अपना कोई हिसाब नहीं है। किसने उसको किया है अपनी तरफ, उसकी तरफ वह बोलता है। वह अपनी पूरी ताकत लगाता है। इसलिए तर्क से कभी कोई निष्कर्ष निष्पक्ष नहीं होता। बहुत निष्कर्ष निष्पक्ष होते हुए मालूम होते हैं, होते कभी नहीं। क्योंकि, ठीक विपरीत तर्क से उतना ही खड़न किया जा सकता है, उसमें कोई कठिनाई नहीं है। इसलिए दर्शन शास्त्र कभी तय नहीं कर पायेगा कि पुनर्जन्म है या नहीं। बाते कर पायेगा, हजारों साल तक बाते कर पायेगा; लेकिन कुछ सिद्ध नहीं होता है। तर्क के साथ एक मजा है कि जिसे आप सिद्ध करते हैं उसे आपने पहले ही भाना होगा। तर्क तो आप पीछे उपयोग में करते हैं। हाँ, 'एज्यूम' पहले ही किया होता है।

एक भिन्न है, बड़े प्रोफेसर है और किसी विश्वविद्यालय में पुनर्जन्म पर खोल

का कार्य करते हैं। कोई मुझे उनको मिलाने लिवा ले आया। उन्हेने मुझसे भिलते ही कहा कि मैं वैज्ञानिक रूप से सिद्ध करना चाहता हूँ कि पुनर्जन्म है। मैंने उनसे कहा कि यह तो फिर वैज्ञानिक न हो पायगा, क्योंकि क्या सिद्ध करना चाहते हैं, यह आप पहले ही पक्का किये हुए हैं। वैज्ञानिक का मतलब यह होता है कि आप ऐसा कहिये कि मैं जानना चाहता हूँ कि पुनर्जन्म है या नहीं। आप कहते हैं, मैं सिद्ध करना चाहता हूँ कि पुनर्जन्म है—तो जो सिद्ध होना है वह तो पहले ही आपके मन में है। पुनर्जन्म है यह तो पक्का ही है। अब रह गया यह कि दलीले इकट्ठी करनी है। तो दलीले इकट्ठी की जा सकती है। एक आदमी सिद्ध करना चाहता है कि पुनर्जन्म नहीं है, तो दलीले विषय में भी इकट्ठी की जा सकती है। यह जगत इतना अद्भुत है और इतना जटिल है कि यहा सब तरह के पक्षों के लिए दलीले उपलब्ध हो जातो हैं। इसमें कोई कठिनाई नहीं है।

दर्शन कभी सिद्ध नहीं कर पायेगा कि पुनर्जन्म है या नहीं। आप सवाल को थोड़ा और हटाकर पूछें। ऐसा पूछे कि क्या विज्ञान कुछ कह सकता है कि पुनर्जन्म है या नहीं? दर्शन तो कभी नहीं कह पायेगा, वह कह रहा है पाच हजार माल में, कुछ हल नहीं होता। जो मानते हैं, वह माने चले जाते हैं। जो मानते हैं नहीं है, वह नहीं माने चले जाते हैं। और 'है वाला' कभी 'नहीं है वाले' को 'कनविस' नहीं कर पाता। 'नहीं है' वाला 'है वाले' को 'कनविस' नहीं कर पाता। यह बड़े मजे की बात है, जो 'कनविस' पहले से ही नहीं है वह कभी 'कनविस' होता ही नहीं। तक के साथ तक की यह नपुसकता है कि आप सिर्फ़ उसी को 'कनविस' कर सकते हैं जो 'कनविस्ड' था ही। अब इसमें कोई मतलब ही नहीं। एक हिन्दू को आप कनविस कर सकते हैं कि पुनर्जन्म है, क्योंकि वह कनविस्ड है। एक युसलमान को कनविस करने जाइये तब पता चलता है। एक ईमाई को आप कनविस कर सकते हैं कि पुनर्जन्म नहीं है, एक हिन्दू को कनविस करने जाइए तब पता चलता है। जो पहले से ही राजी है किसी सिद्धान्त के लिए, तर्क उसी के लिए खोल कर पाता है, और कुछ नहीं कर पाता है।

सवाल को कुछ ऐसा पूछिये कि क्या वैज्ञानिक ढग से कुछ कहा जा सकता है कि पुनर्जन्म है या नहीं? हाँ, विज्ञान कोई पक्ष लेकर नहीं चलता। दर्शन पक्ष लेकर चलता रहता है, तर्क पक्ष लेकर चलता रहता है। असल में वैज्ञानिक वित्त का मतलब ही यह है कि जो निष्पक्ष है, और जिसके लिए दोनों 'अल्टरनेटिव', खोले हुए हैं, जिसने अभी 'क्लोज' नहीं किया। जो कहता है, यह भी हो सकता है, वह भी हो सकता है। हम खोजने चलते हैं। योरोप और अमरीका में अभी 'साइकिक

‘सोसाइटीज’ निर्मित हुई, उन्होंने थोड़ा-सा काम करना शुरू किया है। अभी कोई पचास साल हुए कुछ थोड़े से बुद्धिमान लोगों ने खोज मूरू की है जिनके पास कि वैज्ञानिक की बुद्धि है, रहस्यवादी की नहीं। क्योंकि, रहस्यवादी तो बहुत दिन से कहता है कि है, लेकिन प्रमाण नहीं दे पाता। वह कहता है कि मैं जानता हूँ। तुम भी जान सकते हो। लेकिन, मैं तुम्हें नहीं जान सकता। रहस्यवादी कहता है कि मेरे सिर के दर्द जैसा है, मुझे पता है कि है। तुम्हारे सिर मेरे दर्द होगा, तुम्हें पता चल जायेगा, लेकिन मेरे सिर-दर्द का पता तुम्हें नहीं चल सकता। पिछले पचास वर्षों मेरे योरोप मेरे कुछ थोड़े से लोग हुए—ओलीवर लाज, ब्राड, राइन इन सारे लोगों ने कुछ दिशाएं स्वेच्छा शुरू कीं। ये सारे वैज्ञानिक चिल्स के लोग हैं। जिनकी कोई मान्यता नहीं है। इन्होंने कुछ काम करना शुरू किया है, वह काम धीरे-धीरे प्रामाणिक होता जा रहा है। इन्होंने जो काम किया है उसकी निष्पत्तिया गहरी है, और उसकी निष्पत्तिया कि पुनर्जन्म होता है इस दिशा मेरे प्रगाढ़ होती जाती है। नहीं होता है इस दिशा मेरे क्षीण होती जाती है। जैसे, प्रेतात्माओं से सम्बन्ध स्थापित किये जा सके हैं बड़ी तरकीबों से, बड़ी व्यवस्थाओं से। सब तरह के वैज्ञानिक ढगों से कोशिश की जा सकी है कि कोई धोखा नहीं है। प्रेतात्माओं से सम्बन्ध स्थापित किये गये हैं वैज्ञानिक ढग से और उन सम्बन्धों के आधार पर सूचना मिलनी शुरू हो गयी कि आत्मा शरीरों को बदलती है। कुछ ‘साइकिक सोसायटीज’ के सदस्यों ने, जिन्होंने जिन्दगी भर काम किया, मरते वक्त वे वायदा करके गये कि मरने के बाद पूरी कोशिश करेंगे सूचना देने की। उसमें दो-एक लोग सफल हो सके। मरने के बाद उन्होंने कुछ निश्चित सूचनाएं दी जिसका वायदा उन्होंने मरने के पहले किया था। उनसे कुछ प्रभाव इकट्ठे हुए हैं।

मनुष्य के व्यक्तित्व में कुछ और नयी दिशाओं का अनुभव है—जैसे ‘टेलीपैथी’ का, ‘क्लेरोबाइस’ का, दूरब्रहण का, दूर दृष्टि का और दूर सवाद का। इस पर काफी काम हुआ है। हजार मील दूर बैठे आदमी को भी मैं यहाँ बैठकर सदेश भेज सकता हूँ जिना किसी बाह्य उपकरण का उपयोग किये। तब इसका मतलब यह होता है कि शरीर ही नहीं, अशरीरी ढग से भी सवाद संभव है। वह मन भी हो तो भी शरीर से भिन्न कुछ होना शुरू हो जाता है। और, शरीर से भिन्न कुछ होना एक बार विज्ञान के लक्षाल में आना शुरू हुआ तो बहुत दूर नहीं है आत्मा का होना। क्योंकि, अगदा जो है वह यही है कि शरीर से भिन्न मन भी है तो भी याका शुरू होती है। विज्ञान की याका ऐसे ही शुरू होती है। पहले मन ही होगा, फिर धीरे-

धीरे हम आत्मा तक विज्ञान को ले जा सके, इशारे करवा सके। लेकिन मन है।

अभी एक आदमी है—टेट नाम का एक व्यक्ति है जिसके बड़े अनूठे अनुभव साइकिक सोमायणीज में हुए हैं। अनूठे अनुभव उसके यह हैं कि वह आदमी अगर न्यूयार्क में बैठा है—उसने मुझे कभी देखा नहीं। मेरा कोई चिन्ह नहीं देखा, मेरे सम्बन्ध में कभी जाना नहीं, लेकिन आप अगर उससे कहे कि वह मेरे सम्बन्ध में सोचे, विचार करे तो वह आख बन्द कर लेगा और वह मेरे सबध में ज्यान करेगा। और, जब आधा घंटे बाद वह आख खोलेगा तो उसकी आख में मेरा चिन्ह उतारा जा सकता है। केमरा उसकी आख से मेरा चिन्ह उतार लेता है। इस तरह के हजारों चिन्ह उतारे गये हैं और फिर असली चिन्ह से जब मिलाया जाता है तो बड़ी हैरानी होती है। बस 'फेटनेस' का फर्क होता है, इससे ज्यादा फर्क नहीं होता है। इतना साफ नहीं होता, लेकिन होता यही है।

इसका मतलब क्या है? इसका मतलब यह है कि उसकी आख किसी न किसी तरह मुझे देखने में समर्थ हो गयी है। न केवल देखने में समर्थ हो गयी है, बल्कि जैसा मेरे सामने आप मुझे देखे तो आपकी आख में मेरा चिन्ह बनता है। ऐसा ही हजारों मील के फासले पर अज्ञात अपरिचित आदमी का चिन्ह भी उसकी आख में बन गया है। इसके हजारों प्रयोग हुए हैं और हजारों चिन्ह हजारों तरह के उस आदमी की आख में पकड़े गये हैं। 'टेलीपैथी' के तो बहुत प्रयोग हो गये हैं। अभी चूंकि 'स्पेस ट्रावेल' शुरू हुई, और चाद पर हम चले गये हैं। कल मगल पर जाना है, फिर लम्बी यात्राएं शुरू होगी जिनमें यात्री बरसों के लिए जायेंगे और बर्षों बाद लौटेंगे। मगल पर भी एक वर्ष लगेगा आने जाने में। इस एक वर्ष की लम्बी यात्रा में अगर यत्रों ने जरा-सी भी चूंक कर दी तो फिर हमारा उन यात्रियों से कभी कोई सबध नहीं हो सकेगा कि वे कहा गये और क्या हुआ? बचे कि नहीं बचे, अनन्त काल तक फिर हमें उनका कोई पता नहीं चलेगा। वे हमसे किसी तरह का कम्युनिकेशन नहीं कर पायेंगे। इसलिए, रूस और अमरीका दोनों, जहा अत-रिक्ष की यात्रा पर गहन शोध चलती है, 'टेलीपैथी' में उत्सुक हो गये हैं। ताकि किसी दिन स्पेस यात्री का यत्र खराब हो जाय और वह रेडियो यत्रों के द्वारा हमें सबर न दे पाये तो टेलीपैथी से सबर दे सके। एक 'अल्टरनेटिव' तो चाहिए। रूस में एक आदमी है फ्यादेव। उस आदमी ने हजारों मील दूर तक सदैश पहुंचाने का प्रयोग सफलता से किया है। बैठकर वह सदैश भेजेगा किसी व्यक्ति विशे को। उस व्यक्ति विशेष को उसे भीतर से सदैश आता हुआ मालूम पड़ेगा।

विज्ञान धीरे-धीरे, आदमी शरीर ही नहीं है उसके भीतर कुछ अशरीरी

भी है, इस दिशा में कदम उठा रहा है। और, एक बार यह तथा हो जाय कि आदमी के भीतर असारीरी भी है तो पुनर्जन्म का द्वार सुल जायेगा। दर्शन से जो नहीं सम्भव हो सका, रहस्यवादी जो सम्भव नहीं कर सके सबको समझाना, वह विज्ञान संभव कर पायेगा। वह सम्भव हो सकता है। वह होता जा रहा है।

प्रश्न ग्लास कास्केट में मरते हुए आदमी को सुखाया गया था !

जल्दी ऐसा प्रयोग बहुत जगह करने की कोशिश की गयी, लेकिन परिणामकारी नहीं हुआ। ऐसा स्थाल है स्वाभाविक, विज्ञान जब सोचता है तब पदार्थ की भाषा में सोचता है। अगर एक आदमी मरता है और उसमें शरीर के अतिरिक्त कुछ और है और वह निकल जाता है तो 'वेट' कम हो जाना चाहिए, लेकिन यह हो सकता है कि जो निकल जाता है वह 'वेटलेस' हो। वह इतने कम 'वेट' का हो कि हमारे पास कोई मापदण्ड न हो। सूरज की किरण है, इसमें कोई 'वेट' है? लेकिन है 'वेट'। अगर एक वर्गमील की सब सूरज की किरणें इकट्ठी की जायं तो एक तोले का 'वेट' देगी। वह बड़ा मुश्किल मामला है। बब कितनी आत्मा में कितना वेट होगा, अभी देर है जानने को। प्रयोग कई जगह किया गया, क्योंकि स्वाभाविक हमारा स्थाल है कि आदमी मरता है तो मरते आदमी को काच के 'कास्केट' में बन्द कर दिया, सब तरफ से, कोई रध द्वारा नहीं रहने दिया। वह मर गया। जितना बजन जिदा मेरा उससे कुछ तो कम हो ही जाना चाहिए, अगर कुछ इसमें से निकल गया। एक बात। दूसरा जो निकला है उसके निकलने के लिए भी काच टूट जाना चाहिए, क्योंकि कोई रध द्वारा नहीं है। मगर दोनों सम्भव नहीं हुए। न तो को काच टूटा, क्योंकि सभी चीजों के निकलने के लिए काच बाधा नहीं है। सूरज निकल जाता है। किरण निकल जाती है। एक्स-रे की किरण आपकी हड्डी को पार करके चिन्ह ले आती है और कही कोई टूटता नहीं, कहीं कुछ छेद नहीं होता। तो जब एक्स-रे की बहुत स्थूल किरण भी काच को बिना तोड़े, हड्डी को बिना तोड़े, लोहे के सीखों को बिना तोड़े लोहे की दीवाल को पार कर लेती है तो आत्मा को ही कौन-सी कठिनाई हो सकती है? 'लाजिकली' कोई कठिनाई नहीं मालूम पड़ती। और, जगत में बहुत कुछ 'वेटलेस' है। असल बात वह है कि जिसको हम वेट कहते हैं वह बहुत गहरे में हम समझें तो वेट नहीं, सिर्फ 'प्रेविटेशन' है। मगर, इसको जरा गणित की तरह समझना पड़ेगा।

आपका बजन है यहां, समझ लीजिये कि चालीस किलो। तो चांद पर आपका बजन चालीस किलो नहीं होगा। आप बिल्कुल यही होगे। चांद पर आपका बजन आठगुना कम हो जायेगा। इसलिए, आप अगर यहां छह फीट कूद सकते

है तो चाद पर आठगुना ज्यादा कूद सकेगे, क्योंकि चाद की जो कमिश है, ग्रेविटेशन है वह पृथ्वी से आठगुना कम है और सब बजन जमीन के स्थिताव का बजन है। यह हो सकता है कि जमीन आत्मा को न खीच पाये। कोई जल्दी नहीं है कि ग्रेविटेशन आत्मा को खीचता हो। किर बजन नहीं होगा। भेरी अपनी समझ यह है कि पदार्थ पर जो नियम काम करते हैं वह पदार्थ की सघनता के कारण ही करते हैं। आत्मा को अगर ठीक से हम मझे तो विरलता की अन्त है वह। इसलिए, उस पर कोई नियम काम नहीं करते। वह नियम के बाहर हो जाती है। और, जब तक हम नये नियम से उसको लोजने नहीं जाते, जब तक हम पदार्थ के नियमों को ही आधार बनाकर आत्मा के सम्बन्ध में लोज करते रहेगे, तब तक विज्ञान का उत्तर आत्मा के सम्बन्ध में इन्कार का रहेगा। वह कहेगा नहीं है।

साइकिक सोसायटीज की जो मैने बात की। रायन और मायस के प्रयोग की मैने बात की, ओलिवर लाज और ब्राट की चर्चा की, यह सारे लोग विज्ञान की प्रतिष्ठित पदार्थ को नापने की पद्धति को छोड़कर आत्मा के अज्ञात मापदण्डों की लोज कर रहे हैं। इनसे आशा बनती है कि कुछ सूत्र धीरे-धीरे निसृत होंगे और विज्ञान उस बात की गवाही दे पायेगा जिस बात की गवाही रहस्यवादियों ने सदा से दी है, लेकिन प्रमाण नहीं दे पाये।

प्रश्न आपने कहा कि अर्जुन कृष्ण के प्रति समर्पित हुए इसलिए घबबत न होकर स्वतन्त्र हुए। विवेकानन्द रामकृष्ण के प्रति समर्पित होकर भी घबबत रहे, आत्मबान वयों न हो पाये, इसका क्या कारण है?

उत्तर इसके कारण है। रामकृष्ण और विवेकानन्द के बीच का जो सम्बन्ध है, पहली तो बात, गुरु और शिष्य के बीच का सम्बन्ध है। कृष्ण और अर्जुन के बीच जो सम्बन्ध है वह गुरु शिष्य का सम्बन्ध नहीं है। दूसरी बात, कृष्ण की पूरी चेष्टा अर्जुन के द्वारा जगत को कोई सन्देश पहुचाने की नहीं है। अर्जुन को ही सदेश देना है। रामकृष्ण की चेष्टा विवेकानन्द को सदेश देने की नहीं, विवेकानन्द के द्वारा जगत तक सदेश पहुचाने की है। कृष्ण को तो पता भी नहीं है कि वह जो कह रहे हैं वह गीता बन जायेगी। आकस्मिक घटना है कि वह बन गयी। कृष्ण ने तो सहज ही युद्ध के स्थल पर खड़े होकर कहा होगा। यह पता भी नहीं होगा कि यह बक्तव्य इतना कीमती हो जायेगा और सदियों तक आदमी इसपर सोचेंगे। यह कहा तो गया था सिर्फ अर्जुन के लिए। अर्जुन को ही बदलने की थी यह सबर। यह उसके लिए ही था निपट। यह बड़ी 'इन्टीमेट' चर्चा थी। यह दो व्यक्तियों के बीच की सहज व्यक्तिगत बातचीत है। और, मेरा अपना

अनुभव यह है कि इस जगत में जितना भी महत्वपूर्ण है वह सदा 'इन्टीमेट डायलाम' है। इसलिए, लिखने वाला कभी उस गहराई को उपलब्ध नहीं होता जो बोलनेवाला उपलब्ध होता है। इसलिए, दुनिया में जो भी श्रेष्ठ है वह बोला गया है। सुबह हम बात कर रहे थे, अरबिद ने कुछ भी नहीं बोला, सब लिखा है। कृष्ण ने, काइस्ट ने, बुद्ध ने, महावीर ने, रमण ने, कृष्णमूर्ति ने सब बोला है। बोलने का माध्यम 'पर्सनल' है, लिखने का माध्यम 'इम्पर्सनल' है। लिखते हम किसी के लिए नहीं, पढ़ो को छोड़कर। कौन है रिसीवर, उसका कोई पता नहीं होता—'एक्स्ट्रेक्ट' है। लेकिन, बोलने का माध्यम तो बड़ा व्यक्तिगत है, निजी है। हम किसी से बोलते हैं। कृष्ण तो अर्जुन से बोल रहे हैं सीधे। जगत का कोई सवाल नहीं है यहा। यहां दो भिन्नों के बीच एक बात हो रही है।

रामकृष्ण के माथ स्थित और है। जैसा मैंने सुबह कहा, उसे थोड़ा स्थाल में ले गे तो समझ में आ जायेगा। रामकृष्ण को अनुभव तो हुआ, लेकिन रामकृष्ण के पास वाणी बिल्कुल नहीं थी। रामकृष्ण को जीवन भर यही पीड़ा रही कि कोई मुझे मिल जाय जो वाणी दे दे। वह स्वयं बोल नहीं सकते थे। रामकृष्ण एकदम अशिक्षित, अपढ़ है। जान तो लिया उन्होंने बहुत, लेकिन इसको कहे कैसे? इसके लिए उनके पास शब्द नहीं, सुविधा नहीं, व्यवस्था नहीं। कोई चाहिए जिसके पास शब्द हो, सुविधा हो, व्यवस्था हो। विवेकानन्द के पास तक है, वाणी है, अभिव्यक्ति है। रामकृष्ण के पास अनुभव है, तर्क नहीं, वाणी नहीं, अभिव्यक्ति नहीं। रामकृष्ण के जो वक्तव्य भी हमें उपलब्ध हैं, बाद में बहुत काट-चाटकर सुधार कर किये गये हैं। क्योंकि, रामकृष्ण तो देहाती आदमी थे। वह बोलने में गाली भी दे देते थे। वह सब गालिया काटनी पड़ी। मैं तो नहीं भानता कि ठीक हुआ। 'अर्थेटिक' होनी चाहिए रिपोर्ट। जो उन्होंने कहा था वैसा होना चाहिए था। लेकिन, हमारे मन में डर लगेगा कि साधु और परमहंस गाली दे रहा है, इसको अलग कर दें। इसलिए, बहुत काट-चाटकर रामकृष्ण को पेश करना पड़ा। विवेकानन्द जब रामकृष्ण के पास आये तो रामकृष्ण को आशा बधी कि यह व्यक्ति, जो मेरे भीतर घटा है, उसे दुनिया तक कह सकेगा। इसलिए, विवेकानन्द को 'इस्ट्रूमेंट' बनना पड़ा। एक घटना आपको कहूँ, जिससे स्थाल में आ जाय।

विवेकानन्द को समाधि की बड़ी आकंक्षा थी। रामकृष्ण ने उन्हे समाधि का प्रयोग समझाया। करवाया। रामकृष्ण महिमाशाली थे, उनकी मौजूदगी भी किसी के लिए समाधि बन सकती थी। उनके स्पर्श से भी बहुत कुछ हो सकता था। उतना जीवन्त व्यक्तित्व था उनका। जिस दिन पहली दफा विवेकानन्द

को समाधि का अनुभव हुआ, विवेकानन्द ने क्या किया ? उस आश्रम में कालू नाम का एक आदमी था वह दक्षिणेश्वर के मंदिर के पास ही रहता था । बहुत भोलाभाला आदमी था । मंदिरों के पास जब तक भोले-भाले आदमी रहे तभी तक मंदिरों की सुरक्षा है । जिस दिन वहा चालाक आदमी पहुचते हैं, सब खराब हो जाता है । कालू दिन भर पूजा में लग जाता था । क्योंकि, उसके कमरे में जमाने भर के देवी देवता थे । जो भी देवी देवता मिलते थे कालू उनको ले जाता था । उस कमरे में कालू के लिए जगह नहीं बची थी । वह बाहर सोता था । जो भी आदमी भगवान के चक्कर में पड़ेगा, एक दिन बाहर सोना पड़ेगा क्योंकि भगवान भीतर सब जगह घेर लेता है । उसके पास सैकड़ों भगवान हैं । तरह-तरह के भगवान हैं, जहा जो भगवान मिले, ले आया । वह सुबह से पूजा शुरू करता तो साझ हो जाती । उसको तो सभी की पूजा करनी पड़ती । विवेकानन्द ने उसे कई दफा समझाया कि कालू बड़ा नासमझ है । फेक इन सबको, भगवान तो अदृश्य है । वह तो सब जगह मौजूद है । विवेकानन्द ने बहुत उसको तर्क दिये, लेकिन सीधे-सादे आदमी को तर्क भी नहीं दिये जा सकते । वह हृसता था, कहता था, ठीक कहते हो । लेकिन, अब जिनको ले ही आये, इनका स्वागत सत्कार तो करना ही पड़ेगा । कई दफा उसको कहा कि फेक, कहा के ककड़-पत्थर इकट्ठे कर रखे हैं—कहीं छोटे शकर, बड़े शकर, न मालूम क्या क्या, और दिन भर इसी में गवाता है । किसी को टीका लगाता है, कभी घट्टा बजाता है । तेरा समय इसमें जाया हो रहा है । कालू कहता, औरो का समय जिसमें जाया हो रहा है, मेरा इसमें जाया हो रहा है, और कोई खास फर्क नहीं पड़ रहा ।

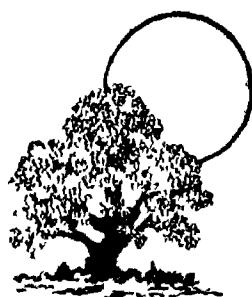
जिस दिन विवेकानन्द को पहली दफा समाधि लगी अचानक भीतर झक्कित की ऊर्जा का जन्म हुआ और जो पहला स्थाल आया वह यह आया कि इस ऊर्जा के क्षण में मैं कह दू कालू को कि फेक अपने भगवानों को, तो वह रुक नहीं सकता । टेलीपैथी जैसा हुआ । उन्होंने ऐसा सोचा, उधर बैचारे कालू जैसे सीधे सादे आदमी को सन्देश मिल गया । उसने बाधी पोटली अपने सब भगवानों की और चला गंगा की तरफ फेंकने । यह तो मन में ही सोचा था विवेकानन्द ने, जो अपने कमरे में बन्द थे । लेकिन, जब ऊर्जा जगे तो यह समझ ही लेना कि ऊर्जा जगी, भूलकर भी उसका उपयोग मत करना । अन्यथा भारी नुकसान होता है । उसे जगने देना, बस उसका जगना ही उसका उपयोग है । विवेकानन्द ने तत्काल उपयोग किया । जिस कालू को वह तर्क से नहीं समझा सके थे उसके पीछे के रास्ते से उपद्रव किया । उसको स्थाल ही नहीं था, उन्होंने सिर्फ यह सोचा ही कि अगर इस बक्त भी काल को कह दू कि उठ कालू, फेक सब, इतनी ऊर्जा मेरे भीतर है कि अब कालू बच

नहीं सकेगा, वह उन्होंने सोचा ही। उधर कालू ने, जो अपनी पूजां आदि कर रहा था सबकी घोटली बाधी। सब भगवानी को कन्धे पर टाच कर वह बाहर निकला। रामकृष्ण मिल गये। रामकृष्ण ने उससे कहा कि पांगल इन्हें अन्दर ले जा। उसने कहा कि सब बेकार है। रामकृष्ण ने कहा—कालू, यह तू भी ही बोलता है, यह कोई और बोल रहा है, तू भीतर चल। मैं उसको देखता हूँ, जो बोल रहा है।

वह आगे गये, दरखाजा तोड़ा, और विवेकानन्द को हिलाया और कह कि बस यह तुम्हारी आखिरी समाधि हुई, अब आगे तुम्हे समाधि की अभी जरूरत नहीं है। यह कुजी मैं अपने पास रखे लेता हूँ। तुम्हारी समाधि की चाभी मैं अपने पास रखे लेता हूँ। मरने के तीन दिन पहले लौटा दूगा। विवेकानन्द बहुत चिल्लाये और रोये कि आप यह क्या करते हैं, मुझे समाधि दे। रामकृष्ण ने कहा कि अभी तुम्हसे और बहुत काम लेने हैं। अभी तू समाधि में गया तो बिलकुल चला जायेगा। वह काम जो चाहिए वह नहीं हो पायेगा। अभी तुम्हे जो मैंने जाना है वह सारी दुनिया तक पहुँचाना है। तू मोह मत कर और स्वार्थी मत बन। तुम्हे एक ऐसा वृक्ष बनना है वट वृक्ष, जिसके नीचे हजारों लोगों को विश्राम मिल सके, छाया मिल सके, इसलिए तेरी चाभी अपने पास रखे लेता हूँ। मरने के तीन दिन पहले यह विवेकानन्द को बापस मिली। मरने के तीन दिन पहले उनको दुबारा समाधि उपलब्ध हुई।

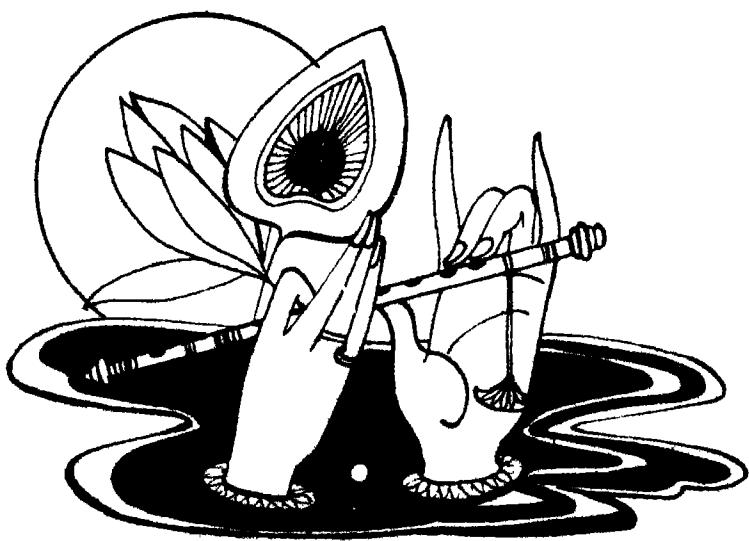
इसमें जो मैं कहना चाहता हूँ वह यह कि जिस समाधि की चाभी रखी जा सके वह समाधि 'साइकिक' से ज्यादा नहीं हो सकती। जो समाधि किसी दूसरे के हा या ना कहने पर निर्भर हो वह गहरे मनस से ज्यादा नहीं हो सकती। मन के पार की नहीं हो सकती। और, जिस समाधि में कालू को मूर्तिया केकने का रूपाल आ जाय वह समाधि बहुत आत्मिक नहीं हो सकती। उसका कोई कारण नहीं ह होने का। विवेकानन्द को जो समाधि घटी वह मानसिक है, शरीर से बहुत ऊपर है, लेकिन आत्मा के बहुत नीचे है। और फिर रामकृष्ण की जो तकलीफ थी, उसकी बजह से विवेकानन्द को रोकना जरूरी था कि वह और गहरे न चले जाये। अन्यथा कौन उस सदेश को लेकर जाता? आज रामकृष्ण को हम जानते हैं तो सिर्फ विवेकानन्द की बजह से। लेकिन, विवेकानन्द को बड़ी कुर्बानी करनी पड़ी। लेकिन, इस विराट जगत के लिए वैसी कुर्बानी अर्थपूर्ण है। और, रामकृष्ण को विवेकानन्द को रोकना पड़ा साइकिक पर, कि वह आगे न चले जाय अन्यथा फिर विवेकानन्द को राजी नहीं किया जा सकता था। रामकृष्ण को दुविधा यही थी कि बुद्ध को जो दोनों एक साथ मिले हैं वह रामकृष्ण को एक ही मिल पाया है।

जानना तो मिल गया है, बताना नहीं है उनके पास। इसलिए किसी और आदमी के कन्धे का सहारा लेना पड़ा। रामकृष्ण ने विवेकानन्द के कन्धों पर बैठकर ही यात्रा की है। इसमें मैं मानता हूँ कि विवेकानन्द 'इन्स्ट्रूमेट' करे। बनाये गये। लेकिन, कृष्ण अजुन को 'इन्स्ट्रूमेट' नहीं बना रहे हैं। वैसी कोई बात ही नहीं उसमें, वह सिर्फ कह रहे हैं जो है। जो है, उसको प्रकट कर रहे हैं।



## पर्व : पन्द्रह

अरविंद और योगी सेले  
एसिस बेली के संदेश  
आपके कोई गुरु या 'मास्टर'  
तीव्र स्मृति बाली भास्याए  
कुख्यात में रहा चार छोड़े गीता जली  
कृष्ण और नेमीनाथ  
आस्तिक और नास्तिक



प्रश्न १ अरविन्द को हृष्ण-दर्शन हुए .. वे योगी लेले के सम्बंध में जो  
तो आये थे ?

२ ऐलिसबेली के विषय में आपका क्या ज्ञान है औ उसका  
कहना है कि उसे सरेश भिलते हैं ? वे सरेश कौन देता है ?  
कौन देता है ?

३. क्या आपका भी ऐसे किसी 'मास्टर' या गुड से सम्बन्ध है ?

उत्तर अरविन्द का हृष्ण-दर्शन, जेल की दीवालों में, सीकची में, जेलर

में, स्वयं में, अगर कृष्ण का दर्शन है तो किसको पता लगता है कि कृष्ण का दर्शन हुआ ? कौन जानता है कि कृष्ण का दर्शन हुआ ? कौन पहचानता है कि कृष्ण दिलायी पड़ रहे हैं ? अगर वहचानने वाला पीछे बच जाता है तो प्रोजेक्शन है, प्रश्नेपण है । अगर कोई कहता है कि मुझे कृष्ण के दर्शन हुए तो कम-से-कम मैं कृष्ण नहीं हूँ, इतना पक्का हूँ । जिसे दर्शन होगे वह तो भिन्न हो जाता है ।

नहीं, जिस विराट सागर रूप कृष्ण की मैंने बात की है, वह ऐसा नहीं है कि मुझे कृष्ण के दर्शन हुए । वह ऐसा ही है कि मैं नहीं रहा । और, फिर जो बच गया है वह कृष्ण ही है । उसे कृष्ण कहे, क्राइस्ट कहे, बुद्ध कहे, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता । यह हमारी पारिभाषिक शब्दावली की बात होगी की कौन-सी शब्दावली में हम जन्मे । यदि एक बार कृष्ण के दर्शन हो जाय और अगर दर्शन प्रश्नेपण न हो, 'प्रोजेक्शन' न हो तो दुबारा लौटना असभव है । फिर, उस दर्शन का खो जाना असभव है । और, बड़े मजे की बात यह है कि अरविन्द की सारी साधना उसके बाद शुरू होती है । जिस योगी लेले की बात उठायी है उस योगी लेले से वह बाद में मिलते हैं । योगी लेले से उनका बाद में मिलना है और ध्यान सीखना है । लेले से ही उन्होंने ध्यान सीखा । जिस व्यक्ति को अभी ध्यान भी सीखने को बाकी हो उसको कृष्ण के विराट दर्शन हो गये हो, यह नहीं माना जा सकता । और, कृष्ण के ही दर्शन हो गये हा तो अब ध्यान सीख कर क्या करियेगा ? किसके पास सीखने जाइयेगा ? बड़े मजे की बात है कि लेले से उन्होंने जो ध्यान सीखा, वह बहुत छोटी-भी प्रक्रिया थी जिसमें कुछ बड़ा गहरा नहीं था । और, यह भी आप जान ले कि उसके बाद ध्यान में उनकी कोई गति नहीं हुई । जितना उन्होंने लेले से सीखा, वह आखिरी चरण था । कुल तीन दिनों तक वे लेले के साथ ध्यान के लिए बैठे थे, और एक छोटा-सा प्रयोग या 'विट्टनेसिंग' का, साक्षी भाव का । इसमें लेले ने कहा कि आप बस बैठ जाय और अपने विचारों को देखे । उन्होंने विचार देखना शुरू किया, लेकिन भयकर विचारों का जाल मन पर उतरा । वे बहुत घबराये । लेले ने उन्हे इतना ही कहा की आप विचारों को ऐसे ही समझें, जैसे आपके मस्तिष्क में चारों ओर मक्खियां चक्कर लगा रही हैं । आप बीच में बैठे देखते रहे और उन मक्खियों को चक्कर लगाने दे । तीन दिन सतत वे विचारों का दर्शन करते रहे—कोई भी करे और सिर्फ देखता रहे तो विचार क्षीण हो जाते हैं, शात हो जाते हैं । मन निर्विचार हो जाता है । इसके बाद फिर उन्होंने कोई बात लेले से नहीं सीखी । इसको उन्होंने आखिरी बात समझ ली । यहां अरविन्द की बड़ी-से-बड़ी भूल हो गयी । यह बिल्कुल प्राथमिक चरण था । साक्षी भाव पहला चरण है । साक्षी भाव अद्वैत भाव

नहीं है। साक्षी भाव के माध्यम से अन्तत अद्वैत भाव की उपलब्धि होती है। पर और कदम आगे बढ़ाने पड़ते हैं। साक्षी भाव भी मिट जाना चाहिए। क्योंकि, जबतक मैं साक्षी हूँ और किसी का साक्षी हूँ, तब तक द्वैत बना रहता है। एक बड़ी आनी चाहिए कि न मैं बचूँ, न बह बचे, जिसका मैं साक्षी हूँ। एक बड़ी आनी चाहिए कि जब शुद्ध चेतना ही बच जाय और उस चेतना में 'जज' करना मुश्किल हो जाय, कि कौन 'सब्जेक्ट' है, कौन 'ऑब्जेक्ट' है। कौन जान रही है, कौन जाना जा रहा है। जब तक यह साफ है कि कौन जान रहा है और किसको जान रहा है तब तक द्वैत जारी रहता है। तब तक मन के बाहर जाना नहीं होता। तब तक मन का अतिक्रमण नहीं होता है। तब तक मन से 'ट्रासेंडेंस' नहीं होती।

तो, न तो मैं कहूँगा कि अरविन्द का अनुभव वास्तविक अनुभव था; क्योंकि जो आये और चला जाय वह वास्तविक नहीं है। वह स्वप्नवत है। वह 'प्रोजेक्शन' है। जो आये और आ ही जाय फिर जाने का उपाय न हो वही वास्तविक अनुभव है। जो आये और खो जाय वह मन का खेल है, मन की लीला है। ध्यान के सम्बन्ध में भी साक्षी भाव साधने के ऊपर वे कभी नहीं गये। जिस व्यक्ति से उन्हाँने सीखा था उस व्यक्ति से भी पीछे उन्होंने कोई सम्बन्ध नहीं रखे। उस व्यक्ति के पास सम्भावना और भी थी आगे ले जाने की, लेकिन जब 'दुबारालेले से अरविन्द का मिलना हुआ तो अरविन्द खुद गुह हो चुके थे। लेले से उनका जो दूसरा मिलन है उसमे उनका जो व्यवहार है वह बड़ी हैरानी का है। उनकी पूरी चाप्टा ऐसी रही जैसे यह बात भुलायी जा सके कि इस आदमी से कुछ सीखा है। अरविन्द ने बहुत थोड़ा ही सीखा था, बहुत ज्यादा सीखा नहीं था।

अरविन्द के साथ ही ऐसा हुआ हो ऐसा नहीं, बहुत बार ऐसा हुआ है कि थोड़ा-ना अनुभव भी रोकने वाला मिछ हो जाता है। आनन्दपूर्ण होता है और फिर मन वहा ठहर जाता है। इसलिए, आध्यात्मिक साधना में सबसे बड़ी कठिनाइया न तो बाहर के साधन में आती है न बाहर के सम्बन्धों से, आती है। आध्यात्मिक साधना में सबसे बड़ी कठिनाइया भीतर के प्राथमिक अनुभवों से आती है। वे इतने सुखद हैं, इतने आनन्दपूर्ण हैं, इतने 'ब्लिसफुल' हैं कि मन होता है यही ठहर जाओ। और, पठाव को मकान समझ लेने की भूल अरविन्द के साथ नहीं, हजारों लोगों के साथ हुई है। पठाव को मुकाम समझ लेना बहुत आमान है। सुखद हो पड़ाव लो मुजिल भान लेने का मन होता है। अरविन्द ने फिर जितनी भी साधना नूसदी को बतायी वह लेले की बतायी गयी साधना से इच्छ भर आगे नहीं गयी। इसलिए, मैं कहता हूँ कि उस साधना के आगे वे कही गये नहीं। क्योंकि, उन्होंने

कभी किसी को उसके आगे कोई बात नहीं कही। वह उतनी ही बात। लेकिन, लेले बेचारा सीधा सादा आदमी था, उसने दो शब्दों में कह दिया था अरविन्द जटिल चित्र के, बुद्धि के ठीक निष्णात व्यक्ति है वह उसी बात को हजारों पूँछ में रखते रहे। लेकिन, लेले ने जो बताया था उससे जरा भी आगे उन्होंने कुछ बताया हो अपनी किसी किताब में, किसी वक्तव्य में, ऐसा नहीं है। उससे ज्यादा वह कुछ बता नहीं पाये। साक्षी भाव से ज्यादा कुछ भी फलित नहीं हुआ। और, मैं मानता हूँ कि वह भी उन्होंने खो दिया। यह भी आनंद आपको हैरानी होगी कि लेले ने खुद क्या कहा है अरविन्द से बाद में? लेले ने कहा है कि तू प्रष्ट हो गया। लेले ने यह कहा है कि जो तुझे मिला था वह तूने खो दिया, और तू बकवास में लग गया। तू सिद्धान्तवादी बातों में पड़ा हुआ है। इससे कोई सम्बन्ध अनुभव का नहीं है। लेले का यह वक्तव्य बड़ा अद्भुत है। लेकिन, अरविन्द को मानने वाले इस वक्तव्य की इधर-उधर चर्चा नहीं करते। क्योंकि, यह वक्तव्य बहुत हैरान करने वाला है। जिम आदमी से सीखा था, उस आदमी का यह वक्तव्य बहुत सूचक है। लेले ने अरविन्द से कहा कि कृपा करके इम लिखने-पढ़ने के जाल में भत उलझो, अभी तुम पहुँचे नहीं वहा, जिसकी तुमने बात शुरू कर दी, लेकिन, लेले की इस बात पर अरविन्द ने कोई ध्यान नहीं दिया है। जब अरविन्द ने ही नहीं दिया तो अरविन्द-भक्त क्यों देने लगे। यह जो मैंने कहा—मौलिक बात, कि खोज तो व्यक्ति में होती है लेकिन उसके भूल भरे होने की सम्भावना ज्यादा होती है। इसका यह मतलब नहीं है कि वह भूल ही होती है। भूल की सम्भावना ज्यादा होती है।

दूसरी बात भी मैंने कही कि परम्परा से जो बात आती है उसकी सड़ने, गलने की, गन्दे हो जाने की सम्भावना बहुत होती है। लेकिन, इसकी सारी सड़न और गलन के पीछे भी कही किसी सत्य का होना बहुत सम्भावी है। क्योंकि, हजारों हजारों साल तक लोग बिल्कुल अकारण ही किसी गन्दगी को ढो नहीं सकते। हा, किसी हीरे की वजह से ककड़ पत्थरों को भी ढो सकते हैं, लेकिन यह हो सकता है कि वह हीरा कही बिल्कुल खो गया हो, ककड़ पत्थर ही दिखायी पड़ते हो। जो मैंने यह कहा, उसी के कारण दूसरी बात आपकी समझाना चाहूँगा।

अरविन्द कहते हैं, 'सुप्रामेटल' की, उस आत मानस की जो वे बात कर रहे हैं उसके सकेत बेद में उपलब्ध है। इस मुल्क में एक बड़ा अनैतिक कृत्य चलता रहा है। और वह अनैतिक कृत्य यह है कि इस मुल्क में जो लोग कोई नयी बातें खोजते हैं वे भी साहस नहीं बुटा पाते यह कहने का कि यह नयी बात मेरी है। क्योंकि

इस मुल्क को पता है कि नयी बातों के गलत होने की सम्भावना है। इसलिए, इस मुस्क की लम्बी परम्परा में एक व्यवस्था बन गयी है कि कितनी ही नयी बात स्वोजो, किसी पुराने शास्त्र को आधार बनाओ। सदा यह बताओ कि वह वेद में है, सदा बताओ कि वह उपनिषद में है। सदा बताओ कि वह ब्रह्मसूत्र में है। इसीलिए वेद, उपनिषद और ब्रह्मसूत्र का अपना क्या अर्थ है, यह तथ करना ही मुश्किल हो गया। क्योंकि, हर आदमी अपने को उनमें थोड़ कर बताता है। यह पुरानी दुकान की 'कैंडिट' का लाभ लेने के उपाय है, और कुछ भी नहीं है। वेद में है या नहीं, इसका मवाल नहीं है लेकिन, दयानन्द उसी सूत्र में कुछ और दिखायेंगे जो उनको सिद्ध करना है। शकर कुछ और दिखायेंगे जो उनको सिद्ध करना है। उस सूत्र की दुर्गति ही गयी, उसकी बिल्कुल मिट्टी पलीद कर दी है। वेदों की, ब्रह्मसूत्र की और उपनिषद की—इन तीनों की बुरी तरह से कठिनाई हमने खड़ी की है—बही हाल गीता का भी किया है। प्रत्येक व्यक्ति यह सिद्ध करने की कोशिश करेगा कि वह जो कह रहा है वह वही है जो उपनिषद भी कहते, गीता भी कहती, वेद भी कहते हैं। इसलिए एक बहुत ही अजीब सी मानसिक व्यभिचार की स्थिति इस देश में पैदा हुई। एक बौद्धिक व्यभिचार पैदा हुआ, 'इटलेक्चुअल प्रास्टीट्यूशन'। चीजों को सीधे न कहकर थोपने का आग्रह ही ज्यादा हो गया, क्योंकि उसी के बल खड़े हो सकते हैं। मैं मानता हूँ कि यह आत्मविश्वास की कमी है। अगर अरविन्द को कोई सत्य का अनुभव हुआ है तो वेद उससे उल्टा भी कहते हो तो भाड़ में जाय, वेद से क्या लेना देना? अगर अरविन्द को कोई सत्य दिखायी पड़ा है तो वह निष्ठ निजता में कह सकते हैं कि यह सत्य है। यह मैंने देखा और जाना। लेकिन, भीतर अगर सबैह हैं तो फिर वेद का सहारा लिये बिना कोई रास्ता नहीं है। वेद के कन्धे पर बैठना पड़ेगा। फिर गीता के कन्धे पर बैठना पड़ेगा। फिर उपनिषद के कन्धे पर बैठना पड़ेगा। और, फिर इन सबको पीछे लड़ा करके दिखाना पड़ेगा कि जो मैंने जाना वह इन्होंने भी जाना।

यह भी ध्यान रहे कि वेद का ऋषि किसी का सहारा नहीं खोजता। उपनिषद का ऋषि किसी का सहारा नहीं खोजता। उसके बक्तव्य सीधे हैं। ब्रह्मसूत्र का ऋषि किसी का सहारा नहीं खोजता, उसके बक्तव्य सीधे हैं। वह कहता है, ऐसा है। लेकिन, भारत में एक बौद्धिक पतन की लम्बी कहानी है जिसमें फिर कोई कहने की हिम्मत नहीं जुटाता कि ऐसा है और ऐसा मैं जानता हूँ। सीधा बक्तव्य खोता चला गया। अरविन्द उस कठी में आखिरी हिस्से है। इससे मैं कहता हूँ कि रथण ज्यादा ईमानदार आदमी है, कुछ शून्यता ज्यादा ईमानदार

आदमी है। अगर गलती भी करनी है तो भी वेद पर मत थोपो। खुद ही अपने उपर लो। अगर ठीक भी खोजना है तो खुद ही अपने ऊपर लो। निर्णय तो हो सके, तथा तो हो सके कि तुमने जो जाना था, उसमें कुछ सारा था कि नहीं था। लेकिन, सबको 'कपथूजन' में डाल दिया जाता है। सारी गवाहिया खड़ी कर दी जाती है। इसलिए, मैं मानता हूँ कि भारत में दर्शन का वैसा 'आनेस्ट', ईमानदार विकास नहीं हो सका जैसा पश्चिम में दर्शन का ईमानदार विकास हुआ।

सुकरात अगर कहता है तो खुद 'अथारिटी' है, काट कुछ कहता है तो खुद अधिकारी है, अगर विडिगिस्टीन कुछ कहता है तो खुद अधिकारी है। इनमें से कोई भी दूसरे पर अधिकार खोजने नहीं जाता। कोई भी यह कहने नहीं जाता कि मैं जो कहसा हूँ वह ठीक है क्योंकि सुकरात भी ऐसा कहता है। इसलिए, पश्चिम में एक ईमानदारी दर्शन की पैदा हुई और उमीं ईमानदारी से विज्ञान पैदा हुआ है। बल्कि, उसी ईमानदारी का परिणाम विज्ञान है। हिन्दुस्तान में विज्ञान पैदा नहीं हो सका, क्योंकि एक बहुत गहरी बौद्धिक बैर्झानी में हम फसे हैं। यहा यह तथ करना ही मुश्किल है कि कौन आदमी क्या कह रहा है। क्योंकि, हर आदमी दूसरे की वाणी बोल रहा है। हर आदमी दूसरे शास्त्रों पर खड़ा हुआ है। मैं तो कहूँगा कि अरविन्द का यह आप्रह कि वेद में भी यही है, एक आत्महीनता के बोध से पैदा होता है। इसमें बहुत अनुभव की बात नहीं है। इसमें बहुत आमान सहारे खोजने की बात है। इस मुल्क का मन, जो वेद से प्रभावित है, इस मुल्क का मन जो महावीर से प्रभावित है, जो बुद्ध से प्रभावित है, इस मुल्क का मन परम्परा में रत है, इसलिए जब एक दफा कोई आदमी सिद्ध कर दे इतनी सी बात कि ऐसा ही वेद से कहा है तो हम उसे स्वीकार कर लेने हैं। इस आदमी को अलग से जात्वने की फिर हमें कोई जरूरत नहीं रह जाती। इसलिए, वेद की आड में यह आदमी स्वीकृत हो जाता है। लेकिन, आड ही क्या लेनी? सत्य को किस आड की जल्दगत है? अगर मुझे कुछ दिखायी पड़ता है तो मैं कहूँगा, ऐसा मुझे दिखायी पड़ता है। और, अगर वेद के ऋषियों को भी ऐसा दिखायी पड़ा होगा तो वह ठीक थे और नहीं दिखायी पड़ा होगा तो वह गलत थे। पर, मेरा दिखायी पड़ना मेरे आत्मविश्वास की बात है। मैं वेद की वजह से गलत और सही नहीं हो सकता हूँ। मेरे लिए तो मेरी वजह से वेद सही और गलत हा सकते हैं। वह दूसरी बात है अगर मुझे कोई आकर कहता है कि आप ऐसा कहते हैं, लेकिन महावीर ने ऐसा कहा है, तो मैं कहता हूँ कि अगर महावीर ने ऐसा कहा होगा तो वे गलत होंगे। क्योंकि, मैं कैसे पक्का करूँ कि महावीर ने ऐसा कहा है कि नहीं, मैं पक्का कर सकता

हूँ कि मैं क्या कह रहा हूँ। सारी दुनिया भी अगर कहती हो कि ऐसा है, लेकिन मैं तो कहूँगा कि सारी दुनिया गलत होगी, मुझे जो दिखायी पड़ता है वह ऐसा है। मैं सिर्फ अपने ही दिखायी पड़ने के लिए गवाह हो सकता हूँ, दुनिया भर के दिखायी पड़ने के लिए गवाह नहीं हो सकता हूँ। लेकिन, यह तरकीब बड़ी आसान है, बड़ी सुविधापूर्ण है। अपने व्यक्तित्व को सीधा-का-सीधा सत्य के आमने-आमने छढ़े कर लेने में हजारों माल लगेंगे इतिहास को तब करने में कि आपको मिला कुछ कि नहीं मिला। लेकिन, वेद की आड़ खड़ी कर लेने में बड़ी आसानी है। वेद सही, फिर आप भी सही हैं, क्योंकि जो आप कहते हैं वही वेद में कहा हुआ है। यह 'ट्रिक' बड़ी आसान है – एक छोटी-सी कहानी से समझाऊ।

एक फैच काउटेस, शाही परिवार की ओरत, बड़ी 'फेस्टीवियस' सब चीजों में, अपने डग से जीने की आदी है। वह एक 'एश्ट्रे' खरीद लायी थी चीन से। 'एश्ट्रे' पर जो रग था, उसने कहा कि यही रग मेरे बैठकखाने में होना चाहिए। बड़े-बड़े चित्रकार बुलाये गये, लेकिन रग में कुछ फर्क पड़ जाता था। उस 'एश्ट्रे' का रग ठीक-ठीक दीवाल पर न आ पाता। वह चीनी रग थे। वे रग भी उपलब्ध न थे। ठीक एश्ट्रे के रगों का ताल-मेल दीवालों पर नहीं बैठता था। बड़े-बड़े चित्रकार आये और हार कर चले गये। अन्त में एक चित्रकार ने कहा, मैं यह रग कर दूगा। लेकिन, एक शर्त पर कि एक महीने तक इस कमरे के भीतर कोई प्रवेश नहीं कर सकेगा। शर्त मजूर हो गयी। वह एक महीने के लिए दरवाजा बन्द करके अन्दर चला जाता, ताला लगा लेता, कुछ करता रहता, फिर बाहर निकल आता। महीने भर के बाद उसने महिला को कहा कि अब आप अन्दर आ जाय। अन्दर आकर देखा तो ठीक एश्ट्रे की 'कलर' की भाति सारी दीवाल हो गयी। उस महिला ने उसे लाखों रुपये इनाम दिये। मरते वक्त उस चित्रकार ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि एक ही रास्ता था। पहले मैंने दीवाले पोत दी, फिर उसी रग में 'एश्ट्रे' पोत दी। तब मेल बिल्कुल बैठ गया।

यह अरविन्द और दयानंद और सब पहले दीवाले पोतते, फिर एश्ट्रे पोतते थे। पहले अपना सिद्धान्त बना लेते हैं, फिर वेद पर पोत देते हैं। फिर, उसमें से सब निकाल लेते हैं। सरकृत, ग्रीक, लैटिन और अरबी, जितनी भी पुरानी भाषाएँ हैं सब काव्य भाषाएँ हैं, विज्ञान भाषाएँ नहीं हैं। काव्य भाषाओं से एक खतरा है, एक सुविधा भी है। सुविधा यह है कि काव्य भाषाओं के एक-एक शब्द अनेकार्थी होते हैं। खतरा यह है कि एक-एक शब्द जूँकि अनेकार्थी होते हैं, इसलिए कभी तय नहीं किया जा सकता कि मूल रूप से जिस आदमी ने उन शब्दों का प्रयोग किया

था उसका क्या अर्थ है। एक-एक शब्द के दस-दस बारह-बारह अर्थ होते हैं तो आज किस हिसाब से हम तय करे कि जिस आदमी ने यह वक्तव्य दिया था उसका इन दस-बारह अर्थों में कौन-सा अर्थ रहा था। काव्य के लिए बड़ी अच्छी है ये भाषाएँ, क्योंकि काव्य में एक शब्द जितना अर्थी हो, उतने रग आ जाते हैं। कविता की दो कड़ियों में जितने रग आ जाय उतनी कविता गहरी हो जाती है। और हस्तपठने वाला अपना अर्थ निकाल सकता है। और, ढग ढग के लोग प्रभावित हो सकते हैं लेकिन, विज्ञान ऐसे नहीं चलता। विज्ञान में तो भाषा 'एकेजेट' होनी चाहिए। 'अ' का अर्थ 'अ' ही होना चाहिए। पुरानी कोई भाषा वैज्ञानिक नहीं है, क्योंकि विज्ञान, पुरानी भाषा में पैदा नहीं हुआ था। इसलिए, विज्ञान अब रोज नयी भाषा पैदा करता जा रहा है। आप जानकर हैरान होंगे कि फिजिक्स, जो कि इस समय सर्वाधिक विज्ञान है, उसने तो धीरेंधीरे भाषा के शब्दों का उपयोग बन्द कर दिया है और गणित के 'फार्मूले' का उपयोग शुरू कर दिया। क्योंकि, गणित का 'फार्मूला' एकेजेट हो सकता है। आदमी के प्रयोग किये गये शब्दों की 'एकेजेटनेम' सदिक्षण है। उसमें कई अर्थ हो सकते हैं और हर उपयोग करनेवाले का अपना अर्थ हो सकता है। इसलिए, आइन्स्टीन की किताब सिर्फ वही आदमी समझ सकता है जिसने बहुत 'हायर मैथेमेटिक्स' को समझा हो। आइन्स्टीन की किताब को समझने के लिए भाषा का ज्ञान पर्याप्त नहीं रहा। गणित का ज्ञान अनिवार्य हो गया। क्योंकि, भाषा गणित बन रही है। और, आइन्स्टीन जैसे लोगों का स्थाल है कि भविष्य की जो विज्ञान की भाषा होगी वह शब्द को ग्रोड़कर मिम्बल को ले लेगी गणित के। क्योंकि, उसी में ठीक बात कही जा सकती है अन्यथा कोई भी कुछ अर्थ कर सकता है।

सब पुराने ग्रन्थ पुरानी भाषाओं में है। पुरानी भाषाओं काव्य के आसपास निर्मित हुई थी, इसलिए जानकर हैरानी होगी कि हिन्दुस्तान में वैद्यक के ग्रन्थ भी कविता में लिखे हुए उपलब्ध हैं। थोड़ा साक्षने जैसा मामला है। असल में कविता ही लिखने का ढग थी। उसके कारण थे। क्याकि, लिखना, बोलने के बहुत बाद में आया। और याददाश्त रखकर ही शास्त्रों को मन में रखना पड़ता था। कविता को, पद्य को याद रखना आसान है, गद्य को याद रखना मुश्किल है। उसमें तुक के कारण सुविधा है कि वह याददाश्त में रह जाती है। इसलिए, सब वेद, सब उपनिषद, सब गीताएँ, सब कुरान, काव्य की भाषा में पद्यबद्ध हैं। ताकि, उन्हें याद रखना आसान था। हजारों साल तक याद ही रखना पड़ा, लिखने का उपाय न था। और उस याद रखने के लिए कविता ने सुविधा दी, लेकिन अर्थ की सुविधा खो गयी। इसलिए, अब हर आदमी को सुविधा है कि जो अर्थ चेद

में करना चाहे, कर ले। भगव, अब मैं मानता हूँ कि किसी आदमी को ऐसा अर्थ करने नहीं जाना चाहिए। नहीं जाना चाहिए इसलिए कि यह बहुत बचकाना खेल हो गया। इसमें कोई बहुत प्रयोजन नहीं है और क्यों सहारा खोजा जाय? क्यों न ऐसा कहा जाय कि मुझे ऐसा दिखायी पड़ता है। कोई वेद ने ठेका ले रखा है सदा के लिए ठीक होने का कि पीछे के लोगों को सिर्फ़ सिद्ध करना होगा कि जो वेद ने कहा है वह ठीक कहा है? मूँझे नहीं दिखायी पड़ता। और, जो मैंने कहा कि पाण्डी-चरी में जो प्रयोग हो रहा है वह अर्थात् प्रयोग है अध्यात्म के क्षेत्र में, इसको भविष्य को तय करने की जरूरत नहीं है। यह तो अध्यात्म की प्रक्रिया को समझकर आज तय किया जा सकता है। अगर एक आदमी पानी को गरम कर रहा है नीचे आग जला कर तो यह भविष्य के बच्चे तय नहीं करेगे कि यह भाप बनेगा। यह हम अभी तय कर सकते हैं कि भाप बन जायेगा। लेकिन, अगर चून्हे में आग की जगह बर्फ़ रखी जा रही है तो यह कोई भविष्य के बच्चे तय नहीं करेगे कि पानी भाप नहीं बनेगा, बर्फ़ बन जायेगा। यह हम तय कर सकते हैं। भविष्य के बच्चों पर छोड़ने का कोई सवाल नहीं है।

अध्यात्म भी एक विज्ञान है। अध्यात्म कोई ज्योतिष-शास्त्र नहीं है। कोई सामुद्रिक नहीं है। अध्यात्म के अपने गणित के सूत्र हैं। इसलिए उल्टी प्रक्रियाओं से कुछ हल होनेवाला नहीं है, यह आज कहा जा सकता है। और भविष्य अगर तय करेगा तो इतना ही तय करेगा कि मैंने जो कहा था वह ठीक था, कि अरबिन्द ने जो किया था वह ठीक था। भविष्य और कुछ तय नहीं करेगा। जगत् में समस्त विकास वैयक्तिक है, 'इण्डीवीजुअल' है। उपलब्धि 'काजिमक' है। उपलब्धि अह्याण्डगत है। जगत् में समस्त चेतना की अभिव्यक्ति व्यक्तिगत है। मूल स्रोत समष्टिगत है। सामर समष्टि है, लहर सदा व्यक्तिगत है। चेतना जहा भी दिखायी पड़ेगी व्यक्ति की दिखायी पड़ेगी। हा, जब व्यक्ति की चेतना को स्रोतेगे तो समष्टि की चेतना का अनुभव शुरू होगा। लेकिन, मैं अपनी चेतना को खोकर अनुभव करूँगा। मेरे अनुभव के साथ आपका अनुभव नहीं हो जायेगा।

एक पुराना सूत्र स्थाल में लेना जरूरी है। जिन लोगों ने सबसे पहले कहा, एक ही आत्मा है सब में, तो जो मानते थे कि अनेक आत्माएँ हैं, उन्होंने कहा कि तब तो एक आदमी भरे तो सबको मर जाना चाहिए। एक आदमी दुखी हो तो सबको दुखी हो जाना चाहिए। ठीक कहते हैं, उनकी दलील दुर्स्त है। अगर चेतना एक ही है हम सबके भीतर और उसके बाहर कही कोई दीवाले नहीं है, व्यक्ति व अव्यक्ति में टूट नहीं गयी है चेतना, तो मैं जब दुखी होऊँगा तो आप कैसे सुखी रह सकते हैं? अगर मेरी चेतना जुड़ी हुई है आपसे तो मेरा हुस आपसे प्रबोच कर जायेगा।

जब मैं मरणा तो आप कैसे जिन्दा रह सकते हैं ? मैं मरणा तो आपको मरना पड़ेगा—। इस तर्क के आधार पर वे लोग मानते रहे कि आत्मा एक नहीं है, सबमें अलग अलग है । मैं उनके तर्क को बहुत ठीक नहीं मानता । क्योंकि, मैं यह मानता हूँ कि विजली सारे 'बल्बो' में एक है, लेकिन एक बल्ब को फोड़ दे तो सब बल्ब फूट जायेगे ? हालांकि सारी विजली को हटा ले, सब बल्ब बन्द हो जायेगे । 'मैंन स्विच आफ' कर दे तो सब बल्ब बुझ जायेगे । लेकिन, एक-एक बल्ब का अपना स्विच भी है । और एक एक स्विच को बन्द करते रहे तो एक एक बल्ब बन्द होता रहेगा । और बिना स्विच बन्द किये भी एक बल्ब फोड़ दे तो वह तो खो जायेगा । लहरे सब अलग है । उनके नीचे का जुड़ा हुआ सागर एक है । इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता कि जब एक लहर गिरेगी तो सब लहरों को गिरना चाहिए या जब एक लहर उठे तो सब लहरों को उठना चाहिए । एक लहर गिरेगी तो एक लहर गिरेगी बाकी लहरे उठ सकती हैं, कोई रोकने वाला नहीं है । अगर हम इसके विपरीत सोचते हुए चले कि समस्त चेतना, ब्रह्म चेतना या परमात्मा उत्तर आये, तो मुझमें और आप में क्या फर्क कर पायेगा ? मैंन स्विच आफ हो गया । इसलिए अरविन्द जो कल्पना कर रहे हैं—कल्पना कहता हूँ—कल्पना सुखद है । बहुत कल्पनाएँ सुखद होती हैं लेकिन सुखद होने से कल्पनाएँ सही नहीं हो जाती । यह बड़ी सुखद कल्पना है कि परमात्मा हम सब पर अवतरित हो जाय । लेकिन, अगर मैं अज्ञानी रहने का तय किया हुआ हूँ तो अरविन्द की कोई ताकत नहीं कि मुझ पर परमात्मा को उतरवा दें । न परमात्मा की खुद की कोई ताकत है कि मुझ पर उतरे आये । इतनी स्वतन्त्रता तो मुझ देंगे कि मैं अज्ञानी रह सकूँ । और जिस दिन अज्ञानी रहने की स्वतन्त्रता न रह जायेगी उस दिन ज्ञान का कितना मूल्य होगा ? उस दिन तो अज्ञान एक परवशना होगी, ज्ञान भी एक गुलामी होगी, जो आपकी छाती पर सवार हो जायेगा । अरविन्द की कल्पना देखने में सुखद है, भीतर भयावह है ।

नहीं, मैं ऐसा नहीं देखता हूँ । आज तक की मनुष्य जाति का इतिहास ऐसा नहीं कहता । आज तक की मनुष्य जाति का इतिहास यही कहता है कि व्यक्ति चेतना उठती है और परमात्म चेतना में लीन हो जाती है । जब लीन होती है तो परमात्म चेतना भी उत्तर आती है । फिर तय करना मुश्किल होता है कि बूद सागर में गिरी कि सागर बूद में गिर गया । लेकिन व्यक्ति सदा बूद ही है । अब तक सागर को बूद में गिरते नहीं देखा गया । गिर जाने के बाद अले ही तय करना मुश्किल है कि कौन मिला, कौन किसमें गिरा ? मिल जाने के बाद उब करना मुश्किल है कि कौन मिला, कौन किसमें गिरा, लेकिन मिलने के पहले ऐसा कथी नहीं हुआ कि सागर

बूदमे निरा हो । अरविन्द इसकी कामना करते हैं कि सागर बूद मे निर जाय । लेकिन किसी दिन अगर सागर बूद पर गिरेगा तो मैं भौनता हूँ कि बूद इन्कार ही करेगी । बूद को बूद होने का हक है । सागर इन्कार नहीं करता बूद को गिरने से; क्योंकि बूद के गिरने से सागर का कुछ बनता बिगड़ता नहीं, कुछ कभ ज्यादा नहीं होता । सागर को पता ही नहीं चलता बूद के गिरने का । बूद को ही पता चलता है जब वह सागर मे गिरती है कि मैं सागर मे गिरी और सागर हो गयी । सागर ने कभी ऐसा वक्तव्य नहीं दिया कि मैं बूद से एक हो गया । कभी परमात्मा का कोई वक्तव्य नहीं कि मैं व्यक्ति से एक हो गया । सब वक्तव्य व्यक्तियों के हैं कि मैं परमात्मा से एक हो गया । लेकिन सागर अगर बूद पर गिरे तो बूद कह भी सकती है कृपा करो, तुम तो मुझे मिटा ही दोगे और तुम्हारा गिरना मुझ पर भारी हो जायेगा । मैं मानने को राजी नहीं हूँ कि 'काजिमक कासेसनेस', चहाण्ड चेतना व्यक्ति के ऊपर गिरेगी जैसा अरविन्द का स्थाल है । और समस्त मनुष्य जाति के अनुभव के विपरीत है वह बात, इसलिए भविष्य पर नहीं छोड़ेगा । और फिर अरविन्द एक अर्थ मे अतीत हो गये । अब वे नहीं हैं जमीन पर ।

अरविन्द ने और भी वक्तव्य दिये थे जो निपट नासमझी के सिद्ध हुए हैं । अरविन्द ने कहा था, मैं 'फिजिकली इमर्मार्ट' हूँ । मैं शरीर रूप से अमृत हूँ । और मजा यह है कि वह अन्धे भक्त, जो अभी भी आशा कर रहे हैं कि परमात्मा चेतना उनपर उत्तर आयेगी, वह यह भी माने बैठे हुए थे कि अरविन्द 'फिजिकली' शरीरात रूप से अमर है । उनकी मृत्यु नहीं हो सकती । और जिस आदमी मे परमात्मा उत्तर आया हो, (और अरविन्द का स्थाल यह था कि परमात्मा आत्मा तक ही नहीं उतरेगा, 'फिजिकल बाई' तक उतरेगा । ये जो भौतिक शरीर के अनुहूँ हैं, ये भी परमात्म रूप हो जायेगे, जब वह उतरेगा ) तो फिर मृत्यु कैसे घटित हो सकती है? तो तर्क तो ठीक ही था । इसी के सदर्भ मे था तर्क कि जब परमात्मा उत्तर ही जायेगा और शरीर के कण तक उत्तर जायेगा, 'मेटर' तक उत्तर जायेगा, प्रकृति तक उत्तर जायेगा तो फिर मृत्यु का क्या सबाल है? अमृत की बहुत लोगों ने बातें की हैं लेकिन वह आत्मिक अमृत की बातें की हैं । अरविन्द पहले आदमी हैं पृथ्वी पर जो भौतिक अमृत की, 'फिजिकल इमर्मार्टिलिटी' की बाते करते हैं । लेकिन इस तरह की बात करने मे एक बड़ा फायदा है कि जब तक मैं नहीं मरा हूँ तब तक आप मुझे हरा नहीं सकते । और जब मैं मर ही गया तो मुझे आप क्या हराइयेगा । जब तक अरविन्द जिन्दा थे, दलील सही थी । कैसे सिद्ध करियेगा कि यह बात गलत होगी? और जब मर गये तो अब किसके सामने सिद्ध

करने जाइयेगा ? लेकिन आश्वर्यं यह नहीं है कि अरविन्द मर गये । अरविन्द के मरने के चौबिस घण्टे तक जो मा नाम की महिला उस आश्रम से है मानने की राजी नहीं हुई कि वह मर सकते हैं । उन्होंने यही माना कि वह गहरी समाधि में चले गये हैं । और तीन दिन तक शरीर को बचाने की कोशिश की इस आशा में कि योगी का शरीर मरने के बाद सड़ता नहीं । क्यों कि इस मुल्क की एक पुरानी धारणा है कि योगी का शरीर 'डिसइन्टीग्रेट' नहीं होता । लेकिन तीन दिन बाद जब अरविन्द के शरीर से बदबू छूटने लगी तब बड़ी मुश्किल हुई । फिर इसको जल्दी से दफनाना पड़ा । क्योंकि यह खबर अगर सब जगह पहुंच जाय तो जैसा अभी पूछा गया, कि यह मुल्क बहुत समझदार है और हर किसी को योगी नहीं कह देता । यह मुल्क मानता है कि योगी मर जाय तो उसके शरीर से बास नहीं आने चाहिए, तो फिर क्या होगा ? जब बास आने लगेगी तो यह मुत्क कहेगा, कि अरे हम बड़ी गलती में थे । यह आदमी योगी नहीं है इसको जल्दी दफनाओ और यह खबर मन फैलाने दो । और आज भी अरविन्द आश्रम में बैठे हुए नाममंडो में बहुत ऐसे हैं जो मानते हैं कि वह वापस लौट आयेंगे । क्योंकि वह 'फिजिकल इम्पार्टल' है ।

ये जो नासमझिया है हमारी, ये जो अन्धविश्वास है, ये बड़े विचारणीय हैं । हम क्या क्या पागलपन की बाते करते हैं ! मैं न तो मानता हूँ कि योगी के शरीर में कोई विशेषता हो जाती है कि उसमें सडाध न आये, वह सडेगा । क्योंकि जिस योगी का शरीर संडेशा ही नहीं, वह मरेगा क्रियत्रिगा ? आखिर सडने से तो मरना आता है । हमारी मुत्यु जो है, बुढ़ापा जो है वह 'डिसइन्टीग्रेशन' की शुरूआत है । जब योगी बुढ़ा हो जायेगा और जब योगी का शरीर बाकी सब नियम का पालन करेगा, बचपन से जवानी में जायेगा, जवानी से बुढ़ापे में जायेगा, बुढ़ापे से मौत में जायेगा तो सिर्फ एक नियम चूक जायेगा उसका कि मरने के बाद उसका शरीर सड़गा नहीं ? इससे कोई सम्बन्ध नहीं है कि उसके भीतर की आत्मा ज्ञान को उपलब्ध हुई थी कि ज्ञान को उपलब्ध नहीं हुई थी । इससे उसके शरीर के सडने न सडने का कोई भी सम्बन्ध नहीं है । कोई 'रिलेवेस' नहीं है । और आत्मा तो दोनों हालत में आपके भीतर है चाहे आप योगी हैं, चाहे आप योगी नहीं हैं । आत्मा की मौजूदगी में तो कोई फर्क नहीं पड़ता, सिर्फ आत्मा के बोध में फर्क पड़ता है । योगी जानता है कि मैं आत्मा हूँ और आप नहीं जानते । लेकिन इस बोध से शरीर के मड़ने न मड़ने का कोई सबध नहीं है । फिर योगी बीमार भी पड़ता है । तब हमें ज्ञानी कहानिया गढ़नी पड़ती हैं । फिर हमें परेशानिया होती है ।

महाबीर को मरने के पहले छह महीने पेचिस की बीमारी हुई। तब जैनियों को कहानिया गढ़नी पड़ी, क्योंकि महायोगी को पेचिस की बीमारी हो जाय। और वह भी उसको जिसने महा-उपवास किये हो। उसका तो पेट कम-से-कम बिल्कुल ठीक ही होना चाहिए। पेचिस और महाबीर को! तो फिर हम सबका क्या होगा? महाबीर तो खाते-नहीं ही नहीं। कथा तो यह है कि बारह साल में उन्होंने तीन सौ पैसठ दिन खाना खाया। कभी तीन महीने छोड़कर, कभी दो महीने छोड़कर, कभी चार महीने छोड़कर एक दिन खाना खाया। इस आदमी को पेचिस हो जाय। हालांकि मेरे हिसाब से इस आदमी को ही होनी चाहिए। क्योंकि, यह जो खाने के साथ अनाचार होगा तो पेट को नुकसान पहुँचेगा। मेरे लिए तो सचित्पूर्ण है, यानी मैं तो मानता हूँ कि इसमें सगति है कि पेचिस हुई छह महीने, लेकिन महाबीर को महायोगी जो मानकर चल रहा है उसकी बड़ी दिक्षकत है। मेरे लिए दिक्षकत नहीं आती, महायोग होने से पेचिस होने की कोई बाधा मुझे नहीं पड़ती। मैं महायोगों को इतना बड़ा मानता हूँ कि पेचिस से कोई खास नुकसान नहीं हो जाता है। लेकिन, कुछ है कि जिसके लिए पेचिस हो गयी तो महायोगी कैसे? उनको वहानी गढ़नी पड़ी कि यह पेचिम साधारण नहीं है। यह गोसालक के द्वारा, मव के द्वारा फेंकी गयी पेचिस है जिसको महाबीर ने क्षम्भ लिया है। कस्त्रणवश पी गये हैं और इसको क्षम्भ रहे हैं। जब योगी बीमार पड़ता है तो हमें कहना पड़ता है कि यह किसी की ली गयी बीमारी है। बड़ा मजा यह है कि योगी को खुद आप बीमार तक न नहीं होने देंगे। हम कैसी नालायकियों की बातों में पड़े हुए हैं। इससे कोई मतभव नहीं है।

अरविन्द मेरे, शरीर सड़ा। 'फिजिकल इम्पार्टिंटी' की बात बेमानी हो गयी। पहले ही बेमानी थी। लेकिन, पहले यह कहा जाता है कि अभी आप कैसे कह सकते हैं, अभी तो अरविन्द जिन्दा है। लेकिन, तब भी हम कह सकते थे, क्योंकि आज तक पूर्णी पूर 'फिजिकल इम्पार्टिंट' सभव नहीं हुई। उसके कारण है। जैसे बुद्ध न कहा है और ठीक कहा है कि जो भी चीज जोड़ से बनती है वह टूटेगी। क्योंकि, सब जोड़ों की सीमा है। एक पत्थर को मैं फेंकूँगा तो वह गिरेगा, क्योंकि मेरे हाथ की ताकत है फेंकने के लिए। वह ताकत जब चुक जायेगी तो 'रेसिस्टेंस' टूट जायेगा, पत्थर गिर जायेगा। ऐसा कोई पत्थर नहीं हो सकता कि मैं फेंकूँ और गिरे ही नहीं। दूरी बढ़ सकती है लेकिन गिरेगा। जन्म होगा, मृत्यु होगी। हाँ, ऐसा योगी 'फिजिकल इम्पार्टिंटी' को उपलब्ध हो सकता है जो जन्म ही न के। स्वधर्भु खड़ा हो जाय एकदम जमीन पर आकर। किसी माता पिता से जन्म न के। बड़ा मजा है कि एक छोर को तो आप मानते हैं कि माता पिता से जन्म के

और दूसरे छोर को नहीं मानते कि मृत्यु होगी। इस जगत में दोनों छोर सदा साथ हैं। जो माता पिता से जन्मेगा वह मरेगा। क्योंकि, माता पिता 'इममार्टल' को पैदा नहीं कर सकते। दो शरीर हैं वे बेचारे। दो शरीर जो पैदा करेंगे, वह शरीर के नियमों से चलेगा और शरीर के नियमों से मरेगा। लेकिन हम कहेंगे कि जब तक अरविन्द नहीं मरते तब तक आप कुछ नहीं कह सकते। मैं कहता हूँ, मैं कह सकता हूँ। उनके मरने के लिए राह देखने की जरूरत नहीं है। क्योंकि, सीधा गणित और विज्ञान का सूत्र है। इसमें उनकी कल्पनाओं से बाधा नहीं पड़ती, इसमें उनके अनुभानों से कोई अर्थ नहीं है। और, फिर भजा यह है कि मर जाने के बाद किससे कहियेगा? अब वह मर गये। अब किससे कहियेगा? अब अरविन्द से विवाद का कोई उपाय न रहा। और आप कहते हैं कि पाण्डीचरी में जो हो रहा है वह बाद की पीढ़िया तय करेगी। तो यह पीढ़ी तो मृदृ बन ही जायेगी वहा जाकर। इसका क्या होगा? इस पीढ़ी का क्या होगा जो वहा बैठकर मृदता कर लेगी। इसको बनने दें? भविष्य की पीढ़िया तय करेगी, लेकिन यह पीढ़ी मर जायेगी। नहीं, भविष्य के लिए नहीं रुका जा सकता है। यह भी आदमी कीमती है जो वहा बैठकर काम में लगे हैं। इनको भी खबर पहुँचानी जरूरी है कि तुम जो कर रहे हो उसे एक दफा पुनर्विचार कर लो।

परमात्मा कभी नहीं उत्तरता व्यक्ति तक, व्यक्ति ही परमात्मा तक जाता है। लेकिन, जाकर जो अनुभव होता है वह ऐसे ही होता है कि परमात्मा ही उत्तर आया। वह बिल्कुल दूसरी बात है। उसका इससे कोई लेना देना नहीं है।

एलिस बेली के सम्बन्ध में एक सवाल पूछा है। एलिस बेली का स्थाल है कि कोई मास्टर के तिष्ठत की किन्हीं गुफाओं, हिमालय की किन्हीं कन्दराओं से उसे सन्देश देते रहे हैं। इसकी बहुत सम्भावना है। इसमें बहुत सचाइया है।

असल में ऐसी आत्माएँ हैं जो शरीर से हट गयी हैं लेकिन जिनकी अनुकम्पा इस जगत से नहीं हट गयी है। ऐसी आत्माएँ हैं, जो अपने अशरीरी जगत से भी इस जगत के लिए निरतर सदेश भेजने की कोशिश करती हैं। और कभी उन्हें अगर भीड़ियम उपलब्ध हो जाय, माध्यम उपलब्ध हो जाय तो उसका उपयोग करती है। ऐसा कोई बेली के साथ पहली दफा हुआ हो, ऐसा नहीं है। ए पी सिनेट ने भी ठीक बैसे ही माध्यम का काम इसके पहले किया था। उसके पहले लीड बीटर ने भी, कर्नेल अल्गाड ने भी, एनीबेसेन्ट ने भी, ब्लेवेलेस्की ने भी—इन सबने भी इस तरह के माध्यम के काम किये थे। इसका एक लम्बा इतिहास है। ऐसी आत्माओं से सम्बन्धित होकर, जो आत्मक विकास के दौर में हमसे आगे की

सीढ़ियों पर हैं, बहुत कुछ जाना जा सकता है और बहुत कुछ 'कम्युनिकेट' किया जा सकता है।

ठीक इस तरह का एक बहुत बड़ा प्रयोग, जो असफल हुआ वह ब्रह्मवादियोंने जे. कृष्णमूर्ति के साथ करना चाहा था। बड़ी व्यवस्था की थी कि कृष्णमूर्ति को उन आत्माओं के निकट सम्पर्क में लाया जाय जो सदेश देने को आतुर हैं, लेकिन जिनके प्रलैंग माध्यम नहीं मिलते। और, कृष्णमूर्ति की पृहली किताब 'एट द फीट आफ द मास्टर' या 'लाइक्स आफ अलक्योनी' उन्हीं दिनों की किताब है इसलिए, जे कृष्णमूर्ति उनके लेखक होने से इन्कार करते हैं। वे उन्होंने अपने होश में नहीं लिखी हैं। 'एट द फीट आफ द मास्टर', गुरु चरणों से बड़ी अदभुत किताब है, लेकिन कृष्णमूर्ति उसके लेखक नहीं है। सिर्फ माध्यम है। किसी आत्मा के द्वारा दिये गये सन्देश उसमें संग्रहीत हैं। बैली का भी दावा यही है। पश्चिम के मनो-वैज्ञानिक इसे इन्कार करते हैं। क्योंकि मनोविज्ञान के पास अभी कोई उपाय नहीं है जहां से वह स्वीकार कर सके। पश्चिम के मनोविज्ञान को अभी कुछ भी पता नहीं है कि मनुष्य के इस शरीर के बाद और शरीर भी है। पश्चिम के मनोविज्ञान को कोई पता नहीं है कि इस शरीर के बाद भी कोई शेष रह जाता है। पश्चिम के मनोविज्ञान को अभी यह भी बहुत स्पष्ट पता नहीं हो पा रहा है—मैं मनोविज्ञान कह रहा हूँ, 'साइकिक सार्डिसेस' की बात नहीं कर रहा हूँ—'साइकोलॉजी' की बात कर रहा हूँ। 'आंफीशियल साइकोलॉजी' जो आक्सफोर्ड, कैम्ब्रिज और हावर्ड से पठाई जाती है विद्यार्थी को, उस मनोविज्ञान को अभी इन सबका कोई भी पता नहीं है कि मनुष्य अशरीरी स्थिति में भी रह सकता है। और, अशरीरी स्थितियों से भी सन्देश दिये जा सकते हैं। ऐसी बहुत-सी आत्माएँ हैं जो निरन्तर सन्देश देती रही हैं। इस सदी में ही नहीं, महाबीर के जीवन में भी बहुत उल्लेख है।

महाबीर एक गाव के किनारे खड़े हैं। मौन है, एक ग्वाला अपनी गायों को उनके पास छोड़कर और यह कहकर कि मैं थोड़ी देर में आता हूँ, जरा मेरी गायों को देखते रहना, गाव वापस चला आया। महाबीर मौन खड़े हैं, इसलिए हा भी नहीं भर सकते, ना भी नहीं कर सकते। वह लौट कर जब आया तब तक गायों चल पड़ी हैं और जगल के अन्दर खो गयी हैं। उस आदमी ने समझा कि बड़ा बैर्झमान आदमी भालूम पड़ता है, गाये चोरी करवा दी इसने। महाबीर को उसने मारा, पीटा, ठोका। उनके कान में कीले ठोक दी। और, कहा, बहरे हो? लेकिन वह किर भी चुप रहे; क्योंकि वह मौन है। तो कथा है कि इन्द्र ने आकर महाबीर को कहा कि मैं आपकी रक्षा का कोई उपाय करूँ? यह इन्द्र कोई व्यक्ति नहीं है। यह अशरीरी एक आत्मा है। जो इतने निरीह, निपट, सरल आदमी पर

हुए व्यर्थ के अनाचार से पीड़ित हो गयी, लेकिन महावीर ने कहा, नहीं। यह बड़े मजे की बात है कि महावीर ग्वाले से नहीं बोले और इन्द्र से कहा नहीं। तो निश्चित ही यह 'नहीं' भीतर कहा गया है, बाहर नहीं कहा गया, नहीं तो ग्वाले से ही बोल लेते, उसमें क्या कठिनाई थी। इसलिए, इन्द्र से जो बात है यह 'इनर' है, यह भीतरी है, यह 'साइकिक' है, 'एस्ट्रल' है। महावीर तो ओठ बन्द किये हैं। यह बात किसी और तल पर हुई है। नहीं तो महावीर का मौन टूट गया होता, वह बारह साल के लिए मौन है। यह मौन नहीं टूटा। महावीर के पीछे चलने वालों को बड़ी कठिनाई आती है क्योंकि इसे कैसे हल करें? अगर यह इन्द्र कोई आदमी है तो फिर महावीर बोल यथों और मौन टूट गया। और जब इन्द्र से ही तोड़ दिया तो गरीब ग्वाले ने क्या बिगड़ा था? उसमें ही तोड़ लेते। लेकिन मौन न टूटा, क्योंकि ऐसे मार्ग हैं जहा बिना वाणी के वाणी भव्यता है। जहा बिना शब्द के बोला जा सकता है और जहा बिना कानों के सुना जा सकता है। और ऐसे व्यक्तित्व हैं जो अशरीरी हैं। महावीर ने कहा, नहीं। क्योंकि, तुम्हारे द्वारा रक्षित होकर मैं परतन्त्र हो जाऊँगा। मुझे ब्रह्मरक्षित ही रहने दो। वह मेरी स्वतन्त्रता तो है। अगर तुम्हें मैंने रक्खा ली तो मैं तुमसे बध जाऊँगा। असल में महावीर यह कह रहे हैं कि ग्वाला मुझे इतना नुकसान नहीं पहुंचा सकता जितना तुमसे सुरक्षा लेकर मुझे पहुंच जायेगा। उसे मारने दो, उससे कुछ हर्ज़ी नहीं होता।

बुद्ध को जब पहली दफा ज्ञान हुआ तो देवताओं के आने की कथा है कि देवता आये और बुद्ध से प्रार्थना करने लगे। क्योंकि, बुद्ध मात्र दिन तक बोले ही नहीं ज्ञान के बाद। उन्हें ज्ञान हो गया, लेकिन वाणी खो गयी। अक्सर ऐसा होगा ही। जब ज्ञान होगा, वाणी खो जायेगी। अज्ञान में बोलना बहुत आसान है। क्योंकि कोई डर ही नहीं है कि क्या बोल रहे हैं। जिसका हमें पता नहीं है उस मन्त्रधृत्रे बोलना बहुत सुविधापूर्ण है। देवता बुद्ध के आस-पास हाथ जोड़े खड़े रहे और प्रार्थना करते रहे, बोलो। मात्र दिन बाद वह सुन पाये। देवताओं ने प्रार्थना की कि आप नहीं बोलेगे तो जगत का बड़ा अहित होगा। लाखों वर्षों में ऐसा व्यक्ति पैदा होता है। आप चूप न रहे, आप बोले।

ये देवता कोई व्यक्ति नहीं हैं। ये वे आत्माएं हैं जो आतुर हैं कि एक व्यक्ति को उपलब्ध हो गया है और इस व्यक्ति के पास अभी शरीर है, यह कह सकता है। इसको वह मिल गया है जो कहा जाने योग्य है। पूर्वी पर ऐसी घटना मुश्किल से कधी घटती है। इसलिए, वे आत्माएं प्रार्थना करती हैं कि आप कहें। बुद्ध को दमुश्किल राजी कर पाती हैं, लेकिन बुद्ध का वे माध्यम की तरह उपयोग नहीं

करतीं। सन्देश उनका और बुद्ध की वाणी नहीं हैं। बुद्ध का जपना ही सदेश है, अपनी ही वाणी है।

एलिसबेली जैसे व्यक्ति गलत नहीं कह रहे हैं। लेकिन वे सही कह रहे हैं इसको सिद्ध करना उनके लिए बहुत मुश्किल हैं। वे केवल माध्यम हैं। माध्यम इतना ही कह सकता है कि मुझे ऐसा सुनायी पड़ता है भीतर के अन्तर आकाश में। लेकिन, कैसे सिद्ध करेगा कि भीतर के अन्तर आकाश में मुझे जो सुनायी पड़ता है, यह सही है? यह मेरे ही मन का खेल नहीं है, यह कैसे सिद्ध करेगा? यह मेरा ही 'बनकासेस' नहीं बोलता है, यह कैसे सिद्ध करेगा? या मैं ही अपने को किसी 'हिसेप्शन' में नहीं डाल रहा हूँ, यह कैसे सिद्ध करेगा? बहुत मुश्किल है। माध्यम को सिद्ध करना मुश्किल है। इसलिए, बैली को मनोवैज्ञानिक हरा सकते हैं।

और, आखिरी सवाल पूछा है कि क्या मेरा किसी इस तरह के 'मास्टर' या ऐसे गुरु से सम्बन्ध है? नहीं, उधार काम मैं करता ही नहीं। मेरा सम्बन्ध सिफं मुझसे है। जो भी मैं कह रहा हूँ, वह मैं ही कह रहा हूँ। उसकी भ्रूल चूक, उसके सही गलत होने का सारा जिम्मा मुझपर है। किसी मास्टर से मेरा कोई लेना देना नहीं है। अगर मैं किसी को मास्टर बनाऊ तो ढर यह है कि फिर मैं किसी का मास्टर बन सकता हूँ। वह काम मैं करता नहीं। न मैं किसी का शिष्य हूँ, न किसी को शिष्य बनाने का सवाल है। निषट जो सीधा मुझे दिलायी पड़ रहा है वह मैं कह रहा हूँ। इसलिए, मुझे सिद्ध करने जाने की बरूरत नहीं है कि मास्टर होते हैं कि नहीं होते हैं। मैंने सिर्फ बात कही है आपसे।

इतना मैं कहता हूँ, कि शरीर छूट जाने के बाद बुरी आत्माएं भी बच जाती हैं जिन्हें हम प्रेत कहते हैं, अच्छी आत्माएं भी बच जाती हैं, जिन्हें हम देवता कहते हैं। इन देवताओं के लिए परिचय मैं जो नया शब्द है मास्टर का बह पकड़ गया है। इन देवताओं ने सदा सदेश भेजे हैं। वे आज भी सन्देश भेजने के लिए उत्सुक हैं। प्रेतात्माओं ने भी—बुरी आत्माओं ने भी सदेश भेजे हैं। अगर आपके मन की स्थिति ऐसी हो कि प्रेतात्मा आपको सदेश दे सके तो बरबर होगी। और बहुत, बार आदमियों ने ऐसे काम किये हैं जो उन्होंने नहीं किये हैं, किसी ने उनसे करवाये हैं। बुरी आत्माएं भी आपसे काम करवा लेती हैं जो आपने नहीं किया है। इसलिए, बहुती नहीं कि जब अदालत में एक आदमी कहता है 'कि वह हत्या मैंने नहीं की, मेरे बाबजूद हो गयी है तो पक्का नहीं है कि वह आदमी शूठ ही कहता हो। यह हो सकता है। ऐसी आत्माएं हैं, जिन्होंने निरस्तर हत्याएं करवायीं। ऐसे बर ही जमीन पर जिनपर उन आत्माओं का बास है कि उस घर

में जो भी रहेगा, वे उनसे हत्या करवा लेंगी। सिफ़ पीछियों तक नहीं चलते छागड़े, जन्मों तक भी चलते हैं।

एक युवक मेरे पास लाया गया। जिस मकान में वह रह रहा है, अभी कोई तीन साल पहले वह मकान खरीदा गया, तबसे उस लड़के में कुछ गडबड होनी शुरू हो गयी। उसका सारा व्यक्तित्व बदल गया। वह सौम्य था, विनम्र था, वह सब खो गया। वह दम्भी, अहकारी, हिंसक, हर चीज के तोड़फोड़ में उत्सुक, जरा-जरा-सी बात में लड़ने को आतुर हो गया। अचानक जिस दिन घर में वह आये, एकदम से 'पर्सनलिटी चैज' हुई, एकदम से व्यक्तित्व बदला। वह मेरे पास उसे लाये। उन्होंने कहा कि हम बड़ी मुश्किल में पड़ गये हैं। हम जैसे उम्मको घर के बाहर ले जाते हैं वह ठीक ही जाता है। जब वह मेरे पास लाये तो वह ठीक था। वह कहने लगा, मैं खुद ही मुश्किल में हूँ। अभी मैं बिल्कुल ठीक हूँ। लेकिन, न मालूम उस घर में जाकर क्या होता है कि मैं एकदम गडबड हो जाता हूँ। उम्मको बेहोश किया। उम्मको सम्मोहित किया और उससे पूछा तो पता चला ग्यारह सौ माल लम्बी कहानी है। कोई आदमी ग्यारह सौ साल पहले उम्म खेत का मालिक था, जहा वह मकान है। और ग्यारह सौ साल से वह निरन्तर कोई पैंतीस हत्याएं करवा चुका। उसने सब बक्तव्य दिया कि मैं तो इससे जब तक हत्या न करवा लू तब तक छोड़नेवाला नहूँ। ग्यारह सौ माल से निरन्तर वह उस परिवार के लोगों की हत्या करवा रहा है जिनके द्वारा उसकी हत्या ग्यारह सौ साल पहले की गयी थी। तबसे वह प्रेत है और उस जगह बैठा है। वह किसी रूप में और कहीं पैदा हो वह उनकी हत्या करवा रहा है।

बुरी आत्माएं भी अपने मदेश पटुचाने की चेष्टा करती है। बहुत बार आप इस रूपाल में होगे कि आप कर रहे हैं, आप नहीं कर रहे होते हैं। बहुत बार आपसे ऐसा अच्छा कृत्य हो जाता है जो कि आप खुद ही नहीं सोच सकते कि मैं कर सकता था। दूमरे की बात छोड़े, दूसरा तो मानता ही नहीं कि किसी ने अच्छा किया। आप खुद भी नहीं मान पाने कि इतना अच्छा मैं कर सकता था जो मैंने किया। उसमें भी कोई सदेश काम करते चले जाते हैं। और मैंने इस बीच एक बात कही, उम्मको थोड़ा और समझा दू। मैंने कहा कि कृष्णमूर्ति के साथ एक बहुत बड़ा प्रयोग किया जा रहा था जो असफल गया। जिनको हम देवस्तोक की आत्माएं कहे, उनमें बहुत-भी आत्माएं एक साथ उत्सुक होकर इस व्यक्ति में एक ऐसी चेतना को अन्मात्रा चाहती थी जैसा कि खुद या महाबीर या कृष्ण।

इस तरह की एक बड़ी चेतना इस व्यक्ति के भीतर प्रवेश कर जाय, ऐसी कोई चेतना आतुर है। उसने मेरुद का ही एक आश्वासन अभी प्रतीक्षा कर रहा है।

बुद्ध का एक आश्वासन है कि मेरी भैंसेय के नाम से एक बार और लौट आऊगा। तो, भैंसेय नाम का बुद्ध अवतार आतुर है। लेकिन, उसके योग्य शरीर उपलब्ध नहीं हो रहा है। उसके योग्य डीक संस्थान और भीड़ियम उपलब्ध नहीं हो रहा है। यिदोसाफी का सारा-का-सारा आयोजन, कोई सौ वर्ष की निरन्तर श्रम व्यवस्था एक ऐसे व्यक्ति को खोजने की थी जिसमें भैंसेय की आत्मा प्रवेश कर जाय। इसलिए, तीन-चार व्यक्तियों पर मेहनत उन्होंने शुरू की, लेकिन सभी असफल हुआ। सर्वाधिक मेहनत कृष्णमूर्ति पर की गयी थी। लेकिन, वह तभी हो सका। और, नहीं होने का कारण व्यक्ति मेहनत ही बनी। सारे लोग इतने बेघारत हो गये, वारे तरफ से इतना दबाव ढाला गया कि स्वभावत कृष्णमूर्ति का अपना व्यक्तित्व विद्वाही और बगावती हो गया। वह 'रीएक्ट' कर गया। उसने अन्ततः इन्कार कर दिया कि नहीं। और, उसके बाद चालीस साल हो गये, लेकिन कृष्णमूर्ति 'रिएक्शन' से पूरी तरह मुक्त नहीं है। वह अभी भी उन्हीं के खिलाफ बोले जाए हैं जो अब हैं ही नहीं। बहुत गहरे में वह धाव एकदम भर नहीं गया। लेकिन, थोड़ी गलती भी हो गयी। कृष्णमूर्ति की हैसियत के आदमी को दूसरे की आत्मा के प्रवेश को राजी नहीं किया जा सकता था। थोड़ी और कमज़ोर आत्मा चुननी थी। फिर उन्होंने कृष्णमूर्ति से कमज़ोर आत्मा ए चुनी। लेकिन उसकी भी तकलीफ है। उतनी कमज़ोर आत्मा उस आत्मा के प्रवेश के योग्य नहीं बन पाती। पात्र छाटा पड़ जाता है और भैंसेय को आत्मा उसमें प्रवेश न कर पायेगी। जो पात्र बढ़ा पड़ सकता है वह सुद अपनी आत्मा से इतना गहरा है कि किसी आत्मा के प्रवेश के लिए राजी क्यों हो? इसलिए, बचपन से तो कृष्णमूर्ति को उन्होंने किसी तरह राजी रखा, लेकिन जैसे-जैसे उनकी उम्र बढ़ी, उनकी 'अवेयरनेस' बढ़ी, उनकी सुद की चेतना का जन्म हुआ जैसे इन्कार करता चला गया। एक बड़ूत बड़ा प्रयोग सफल नहीं हो सका। भैंसेय की आत्मा आज भी भटकती है। कठिनाई यही है कि जो राजी हो सकते हैं उसके लिए वह योग्य नहीं है और जो योग्य है वे राजी नहीं हो सकते। इसलिए, कहा नहीं जा सकता कि कितनी देर लगेगी भैंसेय के व्यक्तित्व को उत्तरण में। उत्तर भी उकेगी जल्दी, मह भी सभावना सिकुड़ती जाती है। क्षेत्रिक, अब तो कोई बड़ा आयोजन भी नहीं है उसकी तैयारी के लिए। अब तो आकस्मिक आयोजन ही काम कर सकता है। ऐसा ही आयोजन सदा काम करता है अदीत में। बुद्ध के लिए किसी व्यक्ति को राजी नहीं करना पड़ा। एक गर्भ उपलब्ध हो गया और बुद्ध प्रवेश कर सके। शरीर के लिए

किसी को राजी नहीं करता पड़ा, गर्भ उपलब्ध हो गया और महाराजीर प्रवेश हो गये। लेकिन, उतने श्रेष्ठ गर्भ उपलब्ध होने मुश्किल होते चले गये हैं।

**प्रश्न :** गीता के सात सौ एक श्लोकों का पारायण करने में कम से कम चार घंटे लग जाते हैं। तो क्या कुछमोऽने रज मंदान में आव श्रीहृष्णर्जुन संवाद हुआ उस इत्यान चार घंटे तक युद्ध स्थगित कर दिया गया?

**उत्तर :** बिल्कुल ठीक।

**प्रश्न :** मायने कहा था कि ज्यादा से ज्यादा एक साल तक शरीर छोड़ने के बाद आत्मा दूसरा जन्म से लेती है। आज कहा कि म्यारह सौ साल तक खून करवाते रहे!

उत्तर हा, ये विशेष स्मृतिवाले लोग हैं। साधारण स्मृति की बात कर रहा था मैं, परन्तु हमारे बीच विशेष स्मृतिवाले लोग भी हैं।

कर्जन ने अपने सम्मरणों में एक घटना लिखी है। कर्जन ने लिखा है कि उसके पास एक विशेष स्मृति का आदमी राजस्थान से लाया गया। विशेष शब्द भी छोटा पड़ जाता है उस स्मृति के लिए। वह सिर्फ राजस्थानी के अतिरिक्त कोई भाषा नहीं जानता है। तो स भाषा बोलनेवाले लोग लाड कर्जन के वायसराय भवन में बिठाये गये। उन तीसों से कहा गया कि वह एक-एक बाक्य अपनी-अपनी भाषा का स्थाल में ले ले। फिर, वह राजस्थानी ठेठ गवार गाव का आदमी पहले आदमी के पास जायेगा और वह पहला आदमी अपनी भाषा के बाक्य का पहला शब्द उसे बतायेगा। फिर, एक जोर का घण्टा बजाया जायेगा, फिर वह दूसरे के पास जायेगा। वह अपनी भाषा के अपने बाक्य का पहला शब्द बतायेगा। फिर, जोर का घण्टा बजाया जायेगा। ऐसे वह तीस लोगों के तीस बाक्यों का पहला शब्द लेकर पहले आदमी के पास बापस लौटेगा। अब वह दूसरा शब्द बतायेगा, फिर घण्टा, और ऐसा चलेगा। ऐसे घण्टों की लम्बी यात्रा में वे तीस आदमी अपने तीस बाक्य बता पायेंगे और हर शब्द के बाद तीस शब्दों का अन्तराल होगा। बाद में, इस प्रकार उस आदमी ने तीसों आदमियों के तीसों बाक्य अलग-अलग बता दिये कि इस आदमी का पूरा बाक्य यह है, इस आदमी का पूरा बाक्य यह है, इस आदमी का पूरा बाक्य यह है। अब ऐसा आदमी अबर प्रेत हो जाय तो म्यारह सौ साल बहुत कम है, ऐसे आदमी के लिए वह म्यारह लाख साल तक भी याद रख सकता है। वह विशेष स्मृति की बात है। और आप जो पूछते हैं, वह बहुत कीमती सवाल है गीता के बारे में। ठीक पूछते हैं।

चार घण्टे लग जायेंगे अगर हम गीता पढ़ें, तो चार घण्टे तक युद्ध सका रहा होगा? सम्भव नहीं मालूम होता। कोई तो सवाल उठाता कि यह क्या हो

रहा है ? हम यहा मुझ करने आये हैं, कोई लम्बा गीता का पाठ सुनने नहीं आये। यह कोई गीता ज्ञान-यज्ञ नहीं है कि चार थण्टे तक गीता का पाठ चले। ये चार थण्टे विचारणीय हैं। अगर हम इतिहासम से पूछेंगे तो वह कहेगा कि कुछ बात ऐसी हुई होगी कि गीता तो थोड़े में कही गयी होगी, फिर बाद में उसका विस्तार किया गया। अगर हम महाभारत के ज्ञानकारों से पूछेंगे तो वे कहेंगे, गीता जो है वह प्रक्षेप है। ऐसा भालूम होता है कि महाभारत पहले लिखा गया और फिर किसी कवि ने इस भोके को चुनकर अपनी पूरी कविता इसमें ढाल दी। लेकिन, यह जगह मौजू नहीं भालूम पड़ती, मुझ के स्थल पर। इतने बड़े सदेश देने का कोई अवसर नहीं है। मैं क्या कहूँगा ? न तो मैं मानता हूँ कि प्रभिष्ठ है गीता, न मैं मानता हूँ कि पहले सक्षिप्त में कही गयी और फिर बड़े में कही गयी। एक छोटे-से उदाहरण से समझाऊ तब स्थाल में आ जाय।

विवेकानन्द जर्मनी गये और ड्यूसेन के घर में भेहमान हुए। ड्यूसेन पश्चिम में उन दिनों 'इण्डोलाजी' का, भारतीय ज्ञान का बड़े से बड़ा पण्डित था। उस कोटि के एक ही दो आदमी थे—मैक्समूलर का नाम गिना सकते हैं। फिर भी, कई मामलों में मैक्समूलर से ड्यूसेन की अन्तर्दृष्टि गहरी है औ उपनिषदों को समझनेवाला पश्चिम में वह पहला आदमी है, गीता को समझनेवाला भी पश्चिम में वह ठीक पहला आदमी है। ड्यूसेन का अनुबाद ही लेकर शोपेनहार सड़क पर नाचा था। गीता का अनुबाद शोपेनहार ने जब पहली दफा पढ़ा तो सिर पर रखकर वह बाजार में नाचने लगा। उसने कहा, यह किताब पढ़ने जैसी नहीं, नाचने जैसी है। और शोपेनहार साधारण आदमी नहीं था। असाधारण रूप से उदास आदमी था। उसकी जिन्दगी में नाच बहुत मुश्किल बात है। वह एकदम 'पेसिमिस्ट' था। मानता ही यह था कि जिन्दगी दुख है। वह सुख से आगे आनेवाले दुख में ढालने की तरकीब है। जैसे कि हम मञ्जुली को आटा लगाकर काटा डाल देते हैं। वह आटा है सुख, असली चीज काटा है जो दुख है। वह शोपेनहार ड्यूसेन का अनुबाद लेकर नाचा था। उस ड्यूसेन के घर विवेकानन्द भेहमान थे। ड्यूसेन जर्मन भाषा में लिखी एक किताब पढ़ रहा था। जब विवेकानन्द उसके पास गये थे तो वह आधी पढ़ रहा था। उसने कहा, यह बड़ी अद्भुत किताब है। विवेकानन्द ने कहा कि थण्टे भर के लिए मुझे भी दे दो। उसने कहा, आप तो ज्यादा जर्मन जानते नहीं। विवेकानन्द ने कहा कि जो ज्यादा जर्मन जानते हैं क्या वे समझ ही लेंगे ? उसने कहा, यह जल्दी नहीं है। तो विवेकानन्द ने कहा, उल्टा भी हो सकता है कि जो कम जर्मन जानता हो वह भी समझ ले। और मुझे दो। पर ड्यूसेन ने कहा, आप दो तीन दिन ही तो यहा भेहमान होंगे। पन्द्रह दिन तो मैं भेहमान

कर चुका, अभी आधी ही पढ़ पाया हूँ। विवेकानन्द ने कहा, मैं इधूसेन नहीं हूँ, मैं विवेकानन्द हूँ। सैर, वह किताब दे दी गयी और घण्टे भर बाद विवेकानन्द ने वह किताब वापस कर दी। इधूसेन ने कहा कि क्या किताब पढ़ गये? विवेकानन्द ने कहा, पढ़ ही नहीं गये, समझ भी गये। इधूसेन ऐसे छोड़नेवाला आदमी न था। उसने दस पाँच प्रश्न पूछे जो हिस्सा वह पढ़ चुका था उस बाबत। और विवेकानन्द ने जो समझाया तो इधूमेन दग रह गया। उसने कहा कि आप समझ भी गये! कैसे यह हुआ, यह चमत्कार कैसे हुआ। विवेकानन्द ने कहा, पहले के साधारण ढग भी है, असाधारण ढग भी है।

हम सब साधारण ढग से पढ़ते हैं, इसलिए जिन्दगी में दस पाँच किताबें पढ़ पायें, समझ पायें तो बहुत है। और ढग भी है, और असाधारण ढगों की बड़ी सीढ़िया है। ऐसे लोग भी हैं जो किताब को हाथ में रखे, आख बन्द करें और किताब फेंक दें। लेकिन, वे 'साइकिक' ढग हैं। वे बहुत आतंरिक ढग हैं। मेरा अपना मानना जो है, वह मैं आपको कहूँ। कृष्ण ने यह गीता कोई प्रकट वाणी में अर्जुन से नहीं कही है। यह बड़ा 'साइकिक कम्युनिकेशन' है। इसका किसी को पता ही नहीं चला है। आसपास जो युद्ध में खड़े हुए लोग हैं उन्होंने यह नहीं सुनी है। नहीं तो भीड़ लग जाती वहाँ। वहा सभी इकट्ठे हो जाते। चार घटे कृष्ण जैसा आदमी बोलता हो तो कम-से-कम पाण्डव तो सब इकट्ठे हो ही जाते, कौरव भी इकट्ठे हो सकते थे। लेकिन, नहीं, यह कृष्ण और अर्जुन, के बीच 'इनर कम्युनिकेशन' है, 'यह साइकिक कम्युनिकेशन' है। यह शब्दों में बाहर कहा नहीं गया, यह भीतर बोला गया है, भीतर पूछा गया है। इसकी सबर आसपास खड़े लोगों को नहीं चली। सबसे पहले सज्जय को पता चला। अब यह भी बड़े मजे की बात है कि इतनी दूर बैठा है सज्जय और अन्धे धूतराष्ट्र से कहता है। अन्धा धूतराष्ट्र पूछता है कि मेरे बेटे क्या कर रहे हैं युद्ध में? कौरव पाण्डवों के बीच क्या हो रहा है? बहुत भीलों का फासला है। सज्जय उस कथा को कहता है कि वहा वे धर्म के क्षेत्र में, कुरुक्षेत्र में इकट्ठे हो गये हैं, वहा यह सब ही रहा है। वहा अर्जुन दुविंश्च में पढ़ गया है। वहा अर्जुन जिज्ञासा कर रहा है। वहा कृष्ण ऐसा समझा रहे हैं।

यह भी टेलीपैथिक कम्युनिकेशन है। सज्जय के पास और कोई उपाय नहीं है कुरुक्षेत्र में क्या हो रहा है उसको कहने का। तो, वो आदमियों ने गीता सुनी सबसे पहले। पहले सुनी अर्जुन ने, उसके साथ सुनी सज्जय ने, उसके बाद सुनी धूतराष्ट्र ने, उसके बाद सुनी खण्डन ने। फिर सब फैलाव हुआ। बाकी यह कोई बाहर कही गयी नहीं है। इसलिए, चार घण्टे हमें लगते हैं गीता को पढ़ने

में, क्योंकि हम ब्राह्मण होते हैं। चार काण में हो गयी ही, यह भी सभव है, एक काण भी न लगा ही, यह भी सभव है।

**प्रश्नः** जैन हृतिहास के बाधार पर जैनों के बाईसवें तीर्थकर नेमिनाथ कृष्ण के चबेरे भाई हैं। और तथश्वर्य के बाल शायद वे ही हिन्दुओं के अगि ऋषि के नाम से प्रचलित हुए और अव्यास्म ज्ञान की परम्परा में वे भीकृष्ण के 'लिंग' रहे। अपकी इस सम्बन्ध में क्या दृष्टि है? क्या ऐसा सम्बन्ध होता है? "क्योंकि आपने ही कहा कि कृष्ण का होना आंतरिक कारणों पर बदलावित था। वे आंतरिक कारण क्या थे—'इसोटैरिक' ज्ञान के सबैमें में?

उत्तर नेमिनाथ कृष्ण के चबेरे भाई हैं। और यह उन दिनों की कथा है जब हिन्दू और जैन दो धाराए नहीं बनी थीं। हिन्दू और जैन महावीर के बाद स्पष्ट रूप से टूटे और अलग धाराए बनी। नेमिनाथ कृष्ण के चबेरे भाई हैं और जैनों के बाईसवें तीर्थकर हैं। लेकिन, नेमिनाथ और कृष्ण के बीच किसी तरह का कोई 'इसोटैरिक' सम्बन्ध नहीं है। किसी तरह का कोई गुह्य ज्ञान का सम्बन्ध नहीं है। उसका कारण है, क्योंकि नेमिनाथ एक बहुत ही विभिन्न प्रकार की 'जन डायमेण्टनल' परम्परा के व्यक्ति है। जैनों की जो चौबीस तीर्थकरों की परम्परा है, जिसने सभवत न्याय की डायमेण्टन का इस पृथ्वी पर सर्वाधिक प्रयोग किया है। इस पृथ्वी पर इननी लम्बी परम्परा और इतने अद्भुत व्यक्तियों की इननी बड़ी कड़ी कही भी नहीं हुई है। जैनों के पहले तीर्थकर ऋग्वेद के समकालीन या थोड़े से पूर्वकालीन हैं। क्योंकि, ऋग्वेद में पहले तीर्थकर के प्रति इतने सम्मानवाची शब्द है कि समकालीन लोग समकालीन के प्रति इतनी शिष्टता कभी नहीं दिखानती। वे शब्द इतने आदरपूर्ण हैं कि ऐसा लगता है कि यह आदमी आदृत तब तक हो चुका होगा और थोड़ा बक्त बीत गया होगा। क्योंकि, समकालीन आदमी के प्रति इतने सम्मानजनक शब्द। अभी तक मनूष्य इतना सम्म नहीं हो पाया। पर इतना तो पक्का है कि वह समकालीन है, क्योंकि उनका नाम उपलब्ध है और आदर से उपलब्ध है। वेद से लेकर महावीर तक हजारों साल का फासला है। हृतिहास निर्णय नहीं कर पाता कि हजार साल कितने हैं। पश्चिम के नाप जोख के जो ढैंग है उसमें क्रिश्चयनिटी एक बहुत गहरे पश्चात से भरी है कि जीसस के चार हजार साल पहले ही सृष्टि बनी। तब कोई छह हजार साल जगत की सृष्टि को ही हुए तो इसमें हिन्दुओं की और जैनों की काल गणना का तो उपाय ही नहीं है। क्योंकि, जब सृष्टि ही केवल छह हजार साल पहले बनी हो तो लाखों साल के लम्बे समय का कहा हिसाब होगा? इसलिए, जिन लोगों ने पहली दफा पश्चिम की काल गणना के हिसाब से यहाँ सौचना लगा किया उन्होंने हजार छोड़ हजार के 'स्पान' में सारी बातों को

बिठाने को कोशिश की; लेकिन वह सच नहीं है। अब तो क्रिप्तियन्ती को अपनी काल गणना काढ़ग छोड़ देना पड़ा है। लेकिन, बड़े मजेदार लोग हैं। अधिविश्वास भी बड़ी मुश्किल से छूटते हैं। अब तो जमीन में ऐसी हड्डिया मिल गयीं जो लाखों साल पुरानी हैं। लेकिन, एक बड़े मजे की बात आपसे कहूँ, अधिविश्वासियों को कोई प्रभाण डिगा नहीं सकता। एक ईसाई धियोलाजियन ने, जब यह लाखों साल पुरानी हड्डिया जमीन से मिली, तो क्या कहा? उसने कहा, कि भगवान के लिए सब कुछ सम्भव है। जब उसने पृथ्वी बनायी तो उसने ऐसी हड्डियों भी उसमे डाल दी कि जो पाच लाख साल पुरानी मालूम पड़े। आदमी का मन! लेकिन, अब विज्ञान की काल गणना लम्बी हुई। तिलक ने तो तय किया कि ऋग्वेद को कम-से-कम नब्बे हजार वर्ष हुए हैं—कम-से-कम! नब्बे न भी हो तो भी लम्बा काल है। हजारों साल तक वेद सिर्फ स्मरण रखे गये हैं, फिर हजारों साल से लिखे हुए हैं। और, जितना काल उनका लिखा हुआ थीता है उससे भी बहुत बड़ा काल उनका अनलिखा थीता है। उसमे ऋग्वेद मे जैनों का पहला तीर्थकर मौजूद है। और चौबीसवा तीर्थकर तो बहुत ही ऐतिहासिक प्रभाणों से पञ्चास से साल पुराना है। यह जो चौबीस तीर्थकरों की लम्बी परम्परा है, इसका कोई मुकाबला पृथ्वी पर कही भी नहीं है और भविष्य मे भी कही हो सकेगा, बहुत मुश्किल है। अब 'डायमेशन' धीरे-धीरे क्षीण होता चला गया। इसलिए, यह बात बहुत सार्थक मालूम पड़ती है कि चौबीस तीर्थकर के बाद पञ्चासवा तीर्थकर नहीं होगा। क्योंकि, त्याग का 'डायमेशन' जो है वह सूख गया। लेकिन, अतीत मे वह बड़ा सार्थक 'डायमेशन' था।

नेमिनाथ उसमे बाईसवी कड़ी है। कृष्ण के बे चचेरे भाई है। कभी-कभी कृष्ण का उनसे मिलना भी होता है। यह भी बड़े मजे की बात है, नेमिनाथ गाव से निकलते हैं तो कृष्ण सम्मान देने जाते हैं। नेमिनाथ कभी कृष्ण को संम्मान देने नहीं गये। त्यागी किसी को सम्मान दे, यह बड़ा मुश्किल है, बहुत कठिन है। त्यागी बड़ा कठोर हो जाता है, बड़ा पथरीला हो जाता है। उसके लिए व्यक्ति, सबधू और राग का कोई मूल्य नहीं रह जाता तो ऐसा समझें कि कृष्ण की तरफ से नेमिनाथ चचेरे भाई है। नेमिनाथ की तरफ से कोई भाई-बाई नहीं है। क्योंकि, नेमिनाथ कभी कुशल क्षेम पूछते भी नहीं गये, वह तो राग की दुनिया के बाहर है। विराग के डायमेशन है, जहा, वह सब सबधू छोड़ देने हैं, असंग हो जाना है। जहा कोई अपना ही नहीं जिससे कोई सम्बन्ध जोड़ने की बात हो। लेकिन, अगर कोई सोचता हो कि नेमिनाथ से कोई गुह्य बात कृष्ण को मिली हो, ऐसा नहीं है। क्योंकि, नेमिनाथ कृष्ण को कुछ नहीं दे सकते, चाहते तो

कृष्ण से कूच्छ के सकते थे। उसके कारण है। क्योंकि, कृष्ण मलटी डायरेंसनल हैं। कृष्ण बहुत कूच्छ जानते हैं जो नेमिनाथ नहीं जानते, नहीं जान सकते हैं। नेमिनाथ जो जानते हैं, उसे कृष्ण जान सकते हैं, पहचान सकते हैं, उसमें कोई कठिनाई नहीं है। कृष्ण का व्यक्तित्व समग्र को आच्छादित करता है। नेमिनाथ का व्यक्तित्व एक दिशा को पूरा-का-पूरा जीता है। इसलिए, नेमिनाथ कीमती व्यक्ति ये कृष्ण के युग में, लेकिन इतिहास पर उनकी कोई छाप नहीं छुट जाती। त्यागी की कोई छाप इतिहास पर नहीं छूट सकती।

इतिहास पर त्यागी की क्या छाप छूटेगी? एक ही घटना है जो इतिहास अकित करेगा कि उसने सब छोड़ दिया। कृष्ण का व्यक्तित्व सारे हिन्दुस्तान पर छा गया। सच तो ऐसा है कि कृष्ण के साथ हिन्दुस्तान ने जिस ऊचाई को देखा, फिर वह दुबारा नहीं देख पाया। कृष्ण के साथ उसने जो युद्ध लड़ा महाभारत पर फिर वैसा युद्ध नहीं लड़ पाया। फिर, हम छोटी-मोटी लड़ाइयों में, टुच्ची लड़ाइयों में उलझे रहे। महाभारत जैसा युद्ध कृष्ण के साथ सम्भव हो सका। और, ध्याम रहे साधारणतया लोग सोचते हैं कि युद्ध लोगों को नष्ट कर जाते हैं। लेकिन, हिन्दुस्तान ने तो कृष्ण के बाद, महाभारत के बाद कोई बड़ा युद्ध नहीं लड़ा। हिन्दुस्तान को तो सबसे ज्यादा समृद्ध होना चाहिए था। नष्ट होने का कोई कारण नहीं। लेकिन, आज पृथ्वी पर वे ही कौमि समृद्ध हैं जो बड़े युद्धों से गुजरी है। युद्ध नष्ट नहीं कर जाते। युद्ध सोयी हुई ऊर्जा को जगा जाते हैं। असल में युद्ध के क्षणों में ही कोई कौमि अपनी चेतना की, अपने होने की, अपने अस्तित्व के शिखरों को छूती है। चुनौती के क्षण में ही हम जगते हैं। तो, महाभारत के बाद ऐसे जागरण का कोई क्षण नहीं आया कि जब हमने पूरी तरह अपने को जाना हो। पिछले दो महायुद्ध जहा गुजरे हैं, एक कथा है उनकी कि वह टूटे और मिटे, लेकिन वह अधूरी है कथा। जापान नष्ट हो गया था बुरी तरह, लेकिन सिफं बीस साल में, जैसा जापान कभी नहीं था वैसा प्रकट हो गया। जर्मनी टूटकर बिखर गया था। दो युद्ध गुजरे उसकी छाती पर, लेकिन पहला युद्ध १९१४ में गुजरा और बीस साल बाद वह फिर दूसरा युद्ध लड़ने के योग्य हो गया। और, कोई नहीं कह सकता कि दस-पाँच वर्ष में वह फिर तीसरा युद्ध लड़ने के योग्य नहीं हो जायेगा! यह बड़ी आश्चर्य कि बात है कि हमने युद्ध का एक ही पहलू देखा है कि वह नष्ट कर जाता है। हमने दूसरा पहलू नहीं देखा कि जो हमारी सारी सोयी हुई प्रसुप्त चेतना को जगा सकता है। हमने यह नहीं देखा कि उसकी चुनौती में हमारे वे जो अश बेकाम पड़े रहते हैं, सकिय हो उठते हैं। 'क्रिएटिव' हो उठते हैं। असल में विज्ञास के साथ सुजन की क्षमता और आत्मा भी पैदा होती है। वे भी जीवन

के दो पहलू हैं इकट्ठे। और कृष्ण, जो इतने राम रवित है, जो इसमें नृत्य में और भान में मस्त है, जो गीत और बासुरी में जिये हैं वे उस युद्ध को स्वीकार कर लेते हैं। इस स्वीकृति में कोई विरोध नहीं पड़ता। और, इतने बड़े युद्ध के वे कारण बन जाते हैं।

नेमिनाथ जैसे व्यक्ति इतिहास पर कोई रेखा नहीं छोड़ जाते। इसलिये बहुत जगे की बात है कि जैनों के चौबीस तीर्थकरों में पहले तीर्थकर का उल्लेख हिन्दू ग्रन्थों में है। फिर, पाश्वनाथ का योडा उल्लेख हिन्दू ग्रन्थों में है तेईसवें तीर्थकर का। और बाईसवें तीर्थकर का अनुमान किया जाता है कि घोर अगिकृष्णि के नाम में जिस व्यक्ति का उल्लेख है, वह नेमिनाथ है। भवावीर तक का उल्लेख हिन्दू ग्रन्थों में नहीं है। इतने प्रभावी व्यक्ति! लेकिन इतिहास पर कोई रेखा नहीं छोड़ जाते। असल में 'रिननसिएशन' का मतलब ही यह है, त्याग का मतलब ही यह है कि हम इतिहास से विदा होते हैं। हम उस घटना क्रम से विदा होते हैं जहा चीजे घटती हैं, बनती हैं, बिगड़ती हैं। हम उस तरफ जाते हैं, जहा न कुछ बनता है, न कुछ बिगड़ता, जहा सब शून्य है। लेकिन, कृष्ण से सीखने को हो सकता है नेमिनाथ के लिए, लेकिन नेमिनाथ सीखने नहीं। कोई जरूरत नहीं है, कोई प्रयोजन नहीं है। और, नेमिनाथ के पास एक धरोहर है। उनके पीछे इक्कीस तीर्थकरों की एक बड़ी धरोहर है, एक बड़े अनुभव का सार उनके पास है। जहा वे चल रहे हैं, उस यात्रा पथ पर उनके पास पर्याप्त पायेय है। उनको नुच्छ सीखने की कही कोई जरूरत नहीं है। इसलिए, नमस्कार वर्गीकृत होता है, कुछ आदान-प्रदान नहीं होता। ऐसे कृष्ण, कभी नेमिनाथ बोलते हैं तो वहा भी सुनने चले जाते हैं। इससे कृष्ण की गरिमा ही प्रकट होती है। इससे महिमा ही प्रकट होती है, सीखने की सहजता ही प्रकट होती है। नहीं, वह कृष्ण ही कर सकते हैं। क्योंकि, जिसे जीवन के सब पहलूओं में रस ही वह कही भी सीखने जा सकता है। वह किसी को भी गुरु बना सकता है। वह किसी से भी सीख ले सकता है।

प्रश्न . कृष्ण ने किस नास्तिकता से गुजर कर इतनी गहरी अस्तिकता पाई?

उत्तर जो गहरा आस्तिक है वह गहरा नास्तिक होता ही है। सिर्फ उथले आस्तिक उथले|नास्तिको के विरोध में होते हैं। झगड़ा सदा उथलेपन का है। गहरे में कोई झगड़ा नहीं है। झगड़ा सिर्फ नासमझ आस्तिको का, नासमझ नास्तिको से है। समझदार आस्तिक नास्तिक से झगड़ने नहीं जायेगा। समझदार नास्तिक आस्तिक

से इश्वरने नहीं जायेगा । क्योंकि, समझ कहीं से भी आजाय, एक पर पहुच जाती है । आस्तिक कहता क्या है? आस्तिक इतना ही कहता है कि परमात्मा है । लेकिन, जब आस्तिकता की गहराई बढ़ती है तो परमात्मा दूसरा नहीं रह जाता । जो है वही परमात्मा हो जाता है । नासेमझ आस्तिक कहता है, वहा है परमात्मा, कही और । समझदार आस्तिक कहता है, यही है परमात्मा, यही । नास्तिक कहता है, कही कोई परमात्मा नहीं है । मतलब यही है कि उसके अतिरिक्त कोई परमात्मा नहीं है, जो है वही है । वह उसे प्रकृति का नाम देता है ।

नीत्ये का एक वचन है और नीत्ये गहरे नास्तिकों में एक है – उतना ही गहरा जितना कोई आस्तिक कभी गहरा होता है । नीत्ये का एक वचन है कि शदि कहीं भी कोई परमात्मा है तो मैं बरदाष्ट न कर पाऊगा । क्योंकि, फिर मेरा क्या होगा? तब मैं कहा खड़ा होता हूँ । और, अगर किसी को परमात्मा होना ही है तो मेरे होने में हर्ज क्या है? मैं ही परमात्मा हो जाऊ । यह धोर नास्तिक है । यह कहता है कोई परमात्मा नहीं है, मतलब यही है कि जो है वही परमात्मा है । अतिरिक्त परमात्मा को सोचने की बात गलत है । गहरा आस्तिक भी यही कहता है कि अतिरिक्त परमात्मा नहीं है, जो है वही परमात्मा है । मैंने गहरी आस्तिकता और गहरी नास्तिकता में कभी कोई फर्क नहीं देखा । असल में, आस्तिक विधेयवादी शब्दों का प्रयोग करता है, इतना ही फर्क है । और नास्तिक निषेधवादी शब्दों का प्रयोग करता है, इतना ही फर्क है । इसलिए, जो विधेयवादी आस्तिक था उसने बुद्ध को, महावीर को नास्तिक कहा है । बुद्ध और महावीर राजी नहीं हैं नास्तिक मानने को अपने को । सार्व या योग उथले आस्तिक को नास्तिक दिखायी पड़ते हैं । लेकिन, सार्व और योग नास्तिक नहीं हैं । नास्तिक उस अर्थों में नहीं है जिस अर्थों में दिखायी पड़ते हैं । तिर्के वे शब्दों का प्रयोग करते हैं वह निषेध का है । कृष्णमूर्ति जैसे व्यक्ति उथले आस्तिकों को नास्तिक मालूम पड़ सकते हैं क्योंकि वह जो शब्द का प्रयोग करते हैं वह ‘निगेटिव’ के शब्द है । ‘निगेटिव माइण्ड’ पर उनका जोर है । और मुसीबत यह है कि कोई भी शब्द का हम प्रयोग करे, दो ही उपाय हैं – या तो पोजेटिव शब्द का उपयोग करे या निगेटिव शब्द का उपयोग करे । आस्तिक कह रहा है, जो है वह ईश्वर है । वह विधेयात्मक वक्तव्य दे रहा है । नास्तिक कह रहा है, जो है वह ईश्वर नहीं है, वह निषेधात्मक दे रहा है । ऐसे भी लोग हुए हैं जो इन गहराइयों को स्पर्श करते हैं । जैसे, उपनिषद् कहते हैं ‘नैति नैति’ । उपनिषद् कहते हैं, वह भी नहीं, वह भी नहीं । और, जो है वह कहा नहीं गया । नास्तिक भी आधा कहता है, आस्तिक भी आधा कहता है । ‘नीदर दिस, नार दैट’ । न यह, न वह । दोनों ही आधी आधी बातें

कहते हैं। हम पूरी कहते हैं, और पूरी कही नहीं जा सकती। इसलिए, हम चुप रह जाते हैं। वे लोग भी चुप हैं।

कृष्ण को किसी नास्तिकता से गुजारने का कारण नहीं है। क्योंकि कृष्ण किसी उथली आस्तिकता को पकड़ने को आतुर नहीं है। असल में कृष्ण, जो है उसको इतनी गहनता में स्वीकार करते हैं कि उसे क्या नाम दिया जाता है इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। उसे ईश्वर कहो, उसे प्रकृति कहो, उसे अनीश्वर कहो तो भी क्या फर्क पड़ता है, जो है वह है। ये पौधे फिर भी हसेगे, ये फूल फिर भी खिलेगे, ये बादल फिर भी चलेगे, ये पृथ्वी फिर भी होनी रहेगी, ये चाद तारे घूमते रहेगे। यह जीवन उत्तरेगा और विदा होगा, लहरे बतेगी और मिटेगी। ईश्वर है या नहीं, यह सिर्फ नासमझों का विवाद है। जा है उससे क्या फर्क पड़ता है—‘दैट ब्हिच इज’ उसमें क्या फर्क पड़ता है।

मैं एक गाव में ठहरा हुआ था और उस गाव के दो बूढ़े आदमी मेरे पास आये। एक उसमें जैन था और एक उसमें ब्राह्मण हिन्दू था। वे दोनों पड़ोसी थे। दोनों। बूढ़े, और उनका विवाद लम्बा था। असल में सब विवाद लम्बे होते हैं, क्योंकि विवाद में कोई अत तो आता नहीं। आदमी चुक जाते हैं और विवाद चलते जाते हैं। साठ साल के ऊपर दोनोंकी उम्र थी। वह मुझसे मिलने आये। उन्होंने कहा, हम एक सवाल लेकर आये हैं जो कि हमारे बीच में पचास साल से चलता है। मैं ईश्वर को नहीं मानता हूँ, ये सज्जन ईश्वर को मानते हैं। आपका क्या कहना है? मैंने कहा, आपने विवाद पूरा कर लिया। तीसरे के लिए उपाय कहा है? आधा-आधा आप बाट चुके, अब मैं कहा खड़ा होऊँ? फिर मैंने उनसे पूछा कि चालीस-पचास साल से आप विवाद करते हैं, कुछ तथ नहीं हो पाया, कुछ तथ नहीं हो पाता? वे कहने लगे, मेरी दलीले मुझे ठीक लगती हैं, इनकी दलीले इहे ठीक लगती हैं। न मैं इनको गलत कर पाता, न ये मुझे गलत कर पाते हैं। मैंने उनसे कहा कि आज तक कोई आस्तिक किसी नास्तिक को समझा पाया? कोई नास्तिक किसी आस्तिक को समझा पाया? क्या इससे यह पता नहीं चलता कि दोनों के पास आधी-आधी दलीले तो नहीं हैं? क्योंकि दोनों अपनी दलील पर मजबूत हैं। और कहीं ऐसा तो नहीं कि सत्य का आधा आधा छोर पकड़े हुए हैं। इसलिए दोनों के हाथ में छोर दिखायी पड़ता है और उससे विपरीत छोर को वह कैसे मान सकते हैं कि उपयोगी होगा? मैंने कहा कि मैं तुम्हारे विवाद में न पड़ूँ तो सहयोगी हो सकता हूँ। क्योंकि अगर मैं पड़ जाऊँ तो ज्यादा से ज्यादा यहीं होगा कि मैं एक पक्ष में खड़े होकर दलीले दूँ। उससे कोई अन्तर पड़ेगा? मैं तुमसे

यह कहता हूँ कि अब तुम दोनों जाओ और इस बात को देखने की कोशिश करो कि दूसरा जो कह रहा है, क्या उसमें भी सत्य हो सकता है? फिर, मैंने उनसे कहा कि यह तथ्य हो जाय कि ईश्वर है, परका हो जाय, 'गारण्टीड'। कोई लिखकर दे दे और यह निर्णय हो जाय कि ईश्वर है, तो तुम क्या करोगे? उन्होंने कहा, नहीं, करना क्या है? मैंने कहा, फिर इस व्यर्थ विवाद में क्यों पड़े हो? तुम, ईश्वर नहीं हैं तो भी श्वास लेते हो, इनका ईश्वर है तो भी ये श्वास लेते हैं। तुम ईश्वर को नहीं मानते तो भी प्रेम करते हैं, ये ईश्वर को मानते हैं तो भी प्रेम करते हैं। तुम ईश्वर को नहीं मानते तो ईश्वर तुम्हें दुनिया के बाहर निकाल नहीं देता, तुम्हे स्वीकार करता है। ये ईश्वर को मानते हैं तो इनको किसी सिंहासन पर नहीं बिठा दिया। वह इनकी भी फिक्र नहीं करता है। जब ऐसी स्थिति हो तो इस विवाद का कितना अर्थ है? नहीं, ईश्वर और अनेश्वर को लेकर आस्तिक और नास्तिक को लेकर 'लिगिविस्टिक' भूल हो गयी, सिर्फ भूल हो गयी। और हमारी अधिक 'फिलोसिफी', तत्त्व चिन्तन नहीं है, फिलोलाजी में की गयी भूल है। भाषा शास्त्र में की गयी भूल है। शास्त्र की भूलें ऐसी हैं कि अगर उनको हम सत्य मानकर चल पड़ते हैं तो बड़े उपद्रव बन जाते हैं।

समझ लो कि एक गूरा आदमी है और नास्तिक है, और एक गूरा आदमी है और आस्तिक है। इनके बीच विवाद कैसे चलेगा? ये क्या करेगे जिससे कि ये कहे कि मैं आस्तिक हूँ, और एक कहे कि मैं नास्तिक हूँ। एक दिन को सोचे कि चौबीस धण्टे के लिए हमारी भाषा खो जाय तो हमारे विवाद कहा होगे? चौबीस धण्टे के लिए आपकी भाषा छोन ली जाय तो कहा होगा हिन्दू, कहा होगा मुसलमान? कहा होगा आस्तिक, कहा होगा नास्तिक? और आप तो होगे, फिर भी भाषा के बिना। वह क्या होगे आप? वह होना ही धार्मिक होना है। एक छोटी सी घटना और अपनी बात मैं बन्द करूँ।

मैंने सुना है, मास्ट्रो एक मजाक किया करता था कि एक बार ऐसा हुआ कि सारी पृथ्वी के लोगों ने तथ्य किया कि अगर हम सब मिलकर एक क्षण में जोर से चिल्लाये तो चाद तक आवाज पहुँच सकती है। अगर चाद पर कोई होगा तो सुन लेगा और जवाब भी आ सकता है। वे लोग इकट्ठे होकर जवाब देंगे। चाद पर आदमी की आखे बहुत दिन से गड़ी हैं। चाद पर सबध जोड़ने का मन बड़ा पुराना है। बच्चा पैदा नहीं होता और चांद से सम्बन्ध जोड़ना शुरू कर देता है। तो सारी पृथ्वी के लोगों ने एक शास्त्र दिन नियत किया कि ठीक बारह बजे सारी दुनिया के लोग जोर से हुक्कार करेंगे, 'हूँ' की आवाज

करेंगे इकट्ठे । चाद तक आवाज पहुंच जायेगी, भायद उत्तर शिल सकेगा । किर वह दिन आ गया । और बारह बजे की आतुरता से लोगों ने प्रतीका की सड़कों पर, गाड़ी में फैलकर, पहाड़ों की छोटियों पर । सब तरफ लोब फैल गये पूरी पृथ्वी पर ठीक बारह बजे, सन्नाटा आ गया, कोई चिल्लाया ही नहीं । क्योंकि सबने मोत्ता कि मैं सुन तो ल 'ह' की आवाज । जब सारी पृथ्वी चिल्लायेगी तो एक मीका मैं न चूकू चिल्लाने मे, मैं सुन लू । तो उस दिन बारह बजे जैसा सन्नाटा हुआ पृथ्वी पर, ऐसा कभी नहीं हुआ था ।

अगर ऐसा सन्नाटा कभी हो जाय तो जो दिखायी पड़ता है, वह सत्य है । ऐसा सन्नाटा अगर भीतर हो जाय, भाषा और शब्द सब खो जाय तो जो दिखायी पड़ता है वह सत्य है । सत्य का आधा हिस्सा आस्तिको के पास है, सत्य का आधा हिस्सा नास्तिको के पास है । और आधा सत्य असत्य से सदा बर्दंतर होता है । क्योंकि असत्य को छोड़ा भी जा सकता है, आधे सत्य को छोड़ा नहीं जा सकता । सत्य मालूम पड़ता है । और ध्यान रहे, सत्य तोड़ा नहीं जा सकता, काटा नहीं जा सकता । इसलिए अगर आपके पास आधा सत्य है तो सिर्फ आधे सत्य का सिद्धान्त हो सकता है । सिद्धान्त काटा जा सकता है । सत्य को काटने का कोई उपाय नहीं है । इसलिए न आस्तिक सत्य है, न नास्तिक सत्य है । दोनों आधे आधे सत्यों के शब्दों को पकड़ कर लड़ते रहते हैं ।

कृष्ण को पूरा ही स्वीकार है । इसलिए कृष्ण को आस्तिक कहे तो गलती हो जायेगी, कृष्ण को नास्तिक कहें तो गलती हो जायेगी । कृष्ण को क्या कहें, बिना गलती किये कहना मुश्किल है ।



पर्व ३ सोलह  
अनादि सत्य  
कुण्ड के अद्वितीय की घोषणा  
कुण्ड का अनुकरण



## १६

**प्रश्न :** एक जगह लिखा है - "काम टाइम टेक अवे व मैन, व सरकेस्ट, बट  
दू नाट टेक अवे व सरकमस्टारेस बैट इज आकेवट । सम टाइम टेक अवे  
व सरकमस्टारेस बैट दू नाट टेक अवे व मैन " मे यहाँ आया या तब  
मुझे ऐसा होता या कि मे निरहंकारी रजनीकांडी के पास आ रहा हूँ और  
मेरा अहंकार बिल्ली हो जायेगा । मे यहाँ आकर इतना छोटा हो गया जैसे  
हृष्ण कहते हैं कि अनादि काल से प्राप्त जो ज्ञान है वह ज्ञान में तुमको  
देता हूँ, अर्जुन । वह हृष्ण की बात है; पर आप भी तर्क में कहते जाते

है। यह तर्दे की छोड़ता, आप सब सत्त्वोंमें आ जाते हैं तब भी स्वयं सहजे लगते हैं कि वही सत्त्व की अनादि काल से बढ़ा जा रहा है जी कृष्ण बहुते हैं, जो बुद्ध कहते हैं, वही पुराने का समर्थन, वही पुराने का सहारा ... ?

उत्तर सत्य तो अनादि है। अनादि का अर्थ पुराना नहीं है, अनादि का अर्थ है जिसका कोई प्रारम्भ नहीं है। अनादि का अर्थ है 'विभिन्निंगलैस', 'एनसिएट' नहीं। पुराने का तो प्रारम्भ होता है, सत्य का कभी प्रारम्भ नहीं होता। और जो पुराना पड़ गया वह सत्य नहीं हो सकता। क्योंकि सत्य तो अभी भी है, इस क्षण भी है। सत्य न तो नया होता है, न पुराना होता है। मब जिनको हम पुराना कहते हैं वह कभी नये थे और जिनको हम आज नया कहते हैं कल पुराने हो जायेंगे। नया पुराना हो जाता है, पुराना कभी नया था। सत्य न तो नया है, न पुराना है। सत्य तो वही है जो सदा है। अनादि का अथ यह है। तो, यदि कृष्ण कहते हैं, मैं वही सत्य कह रहा हूँ जो अनादि है तो आप यह मत समझ लेना कि कृष्ण कह रहे हैं कि मैं वही सत्य कहता हूँ जो पुराना है। कृष्ण कह रहे हैं कि मैं वही सत्य कहता हूँ जो है। अनादि का मतलब इतना ही होता है। जिन्होंने पहले जाना होगा, अगर सत्य जाना है, तो यही जाना होगा, जो आज जान रहे हैं। यदि सत्य जानेगे, तो यही जानेगे। जो कल जानेगे, यदि सत्य जानेगे तो यही जानेगे। सिर्फ असत्य नये और पुराने हो सकते हैं, सत्य पुराना और नया नहीं हो सकता। इसलिए, सत्य की घोषणा दो प्रकार से हो सकती है।

बुद्ध उन सारे पुराने लोगों की बात नहीं करते जिन्होंने सत्य जाना है। कोई कारण नहीं है। क्योंकि, जब बुद्ध स्वयं ही सत्य जान रहे हैं तो और गवाहिया जुटाने से कुछ ज्यादा फर्क नहीं पड़ने वाला है। जो वह जान रहे हैं, जान रहे हैं। किन किन ने जाना, उनका नाम लेने में सत्य से कुछ और जुड़ेगा नहीं। सत्य की गरिमा में कोई फर्क पड़ने वाला नहीं है। सत्य की प्रतिष्ठा में कोई अन्तर पड़ने वाला नहीं है। इसलिए, बुद्ध सीधे निष्ठ कहते हैं कि ऐसा जो बैठे जाना, तुमसे कहता हूँ। और, जानबूझकर ही वह पुराने लोगों का नाम नहीं लेते, क्योंकि पुराने लोगों का नाम लेने के साथ बुद्ध के समय तक बड़ा खतरा हो चुका है। बुद्ध अपने सुनने वालों को यह भी कहते हैं कि तुम इसलिए मत मार लेना कि मैं कहता हूँ। तुम इसलिए मत मान लेना कि बुद्ध ने ऐसा जाना। जब तक तुम स्वयं न जान लो, तब तक तुम, किसने कहा, किसने जाना इससे कुछ प्रमाण मत जुटा लेना।

बुद्ध जिनसे बोल रहे हैं वे साधक हैं। बुद्ध जिनसे बोल रहे हैं वे सत्य की खोज पर निकले हुए लोग हैं। बुद्ध के सामने जो सुनने वाला है वह बहुत धिन है कृष्ण

के सामने जो भुग्नने वाला है उससे । अपितु सत्य को खोजने जो लोग निकले हैं उनसे यह कहना ही होगा कि तुम मेरी मत मान लेना क्योंकि फिर तुम खोज पर कैसे जाओगे ? अगर बुद्ध अपने पिछले प्रमाणों को दोहरायें तब फिर वे रास्ता बना रहे हैं अपने से पीछे आने वालों के लिए कि वे भी बुद्ध के प्रमाण को दोहरायें । इसलिए, बुद्ध निपट रूप से पिछले किन्हीं सम्बन्धों की बात ही नहीं करते । वे कहते हैं ऐसा मैंने जाना है, यह सत्य मैंने देखा है, यह मैं तुमसे कहता हूँ । और तुम भी जान न लो, तब तक मत मान लेना क्योंकि बुद्ध ने कहा है ।

लेकिन, कृष्ण के सामने बहुत दूसरी तरह का आदमी है । वह कोई साधक नहीं है । वह कोई सत्य की खोज पर निकला हुआ व्यक्ति नहीं है । वह सिर्फ मोहग्रस्त हुआ है । वह सिर्फ विश्वसित हुआ है, वह सिर्फ 'कन्यूज्ज' हो गया है । स्थिति ने उसे भयभीत कर दिया है, इसलिए कृष्ण उसके सामने सत्य का अनावरण करने को उतने उत्सुक नहीं है जितना सत्य क्या है यह कहने को उत्सुक है । वह अनावरण करने के लिए आया भी नहीं है । इसलिए, कृष्ण कहते हैं कि जो मैं तुझसे कह रहा हूँ अर्जुन, यह मैं ही तुझमें कह रहा हूँ ऐसा नहीं है, यह और भी पहले औरों ने औरों से कहा है । अगर अर्जुन साधक हो तो उसे भी सत्य के माक्षात्कार के लिए कहा जा सकता है । वह कोई साधक नहीं है । वह सिर्फ समझने के लिए आतुर है कि सत्य क्या है ? खोजने का कोई मवाल नहीं है अर्जुन के लिए । वह कोई आश्रम में, किसी पहाड़ की कन्दरा में, किसी गुह के पास बैठकर सत्य सीखने नहीं गया है । वह आया है युद्ध करने, किन्तु युद्ध की स्थिति ने उसे भयभीत और डावाडोल कर दिया है । इसलिए, कृष्ण उससे कहते हैं कि जो मैं कह रहा हूँ यह मैं ही तुझसे कह रहा हूँ, ऐसा नहीं, यह मुझसे पहले औरों ने भी औरों से कहा है । वह जो अनादि है, जो सदा कहा गया है वही मैं मुझसे कह रहा हूँ ।

अर्जुन के लिए इसमें अर्थ है । अर्जुन खुद खोजने जाता तो बात और हो जाती । अर्जुन खुद खोजने नहीं जा रहा है । इसलिए, कृष्ण केवल सत्य की लम्बी धारा की बात उससे कर रहे हैं । उधर बुद्ध के पास जो व्यक्ति आया है वह बुद्ध की शरण होकर आया है, किन्तु अर्जुन तो मित्र है । वह कृष्ण की शरण नहीं है । वहा इसको दूसरे दृष्टिकोण से लीजिये कि बुद्ध के भिखुओं ने बुद्ध की बात मान ली, लेकिन बुद्ध की पत्नी ने नहीं मानी । बुद्ध गांव बापस लौटे सत्य को जान लेने के बाद और पत्नी उनसे मिली है बारह साल के बाद । वे सारी तुनिया के लिए बुद्ध हो गये हैं; लेकिन अपनी पत्नी के लिए बुद्ध नहीं है । उनकी पत्नी ने वही बात प्रारूप की, जो बारह वर्ष पहले जब वे घर से गये थे, तब की थी । वह उसी तरह नाराज थी

और कहने लगी कि तुमने मुझे धोखा दिया, तुम मुझे छोड़कर भाग गये। बुद्ध की पत्नी का अपना कोण है। और अगर अपनी पत्नी को बुद्ध कहें कि मैं बुद्ध हूँ तो वह कहेगी कि छोड़ यह बात, कोई बुद्ध नहीं है, तुम वही के वही हो। बुद्ध की पत्नी के लिए बुद्ध को और तरह की बात करनी पड़ेगी। बुद्ध की पत्नी का एक दृष्टिकोण है। एक बहुत भीठी कथा इससे जुड़ी है।

आनन्द दीक्षित हुआ था और वह बुद्ध का बड़ा चचेरा भाई था। दीक्षा लेते समय उसने कहा कि मैं कुछ वचनबद्धता आपसे अभी करवा लेना चाहता हूँ, क्योंकि दीक्षा लेने के बाद तो मैं छोटा हो जाऊँगा। तीन वचन उसने लिये। कहा, एक वचन तो यह कि मैं सदा तुम्हारे साथ रहूँगा। तुम कभी यह न कह सकोगे कि जाओ विहार करो, उस जगह चले जाओ, इम जगह चले जाओ। दूसरा वचन मैं तुमसे यह लेता हूँ कि कभी भी मैं किसी को मिलाना चाहूँगा, चाहे आधी रात हो, तो भी तुम्हे मिलाना पड़ेगा। और कोई भी प्रश्न मैं पूछना चाहूँ या पूछवाना चाहूँगा तो आप किसी तरह टाल न सकोगे, उस प्रश्न का उत्तर देना ही पड़ेगा। और तीसरी बात, कितनी ही निजी चर्चा किसी से हो रही हो, अगर मैं वहाँ मौजूद रहना चाहूँगा तो मुझे रोका नहीं जा सकेगा। ऐसे तीन वचन उसने बुद्ध से दीक्षा के पहले लिये। बुद्ध छोटे भाई थे इसलिए इस खेल को उन्होंने निभा दिया। उन्होंने कहा कि ठीक है वह कोई ज्यादा मार्ग भी नहीं रहा है। लेकिन, बड़ी कठिनाई आ गयी, बुद्ध को स्थाल में न था। जब वह पत्नी से मिलने गये तब आनन्द ने कहा, मैं साथ नहीं छोड़ सकता। बुद्ध ने कहा, तू बड़ा पागल है, तू थोड़ा तो सोच, क्योंकि मैं उसके लिए कोई गौतम बुद्ध नहीं, उसका पति हूँ। उसके लिए तो अभी पति हूँ। अगर तू मेरे साथ गया, तो वह बहुत मानिनी है, बहुत नाराज हो जायेगी, कि तुम आये भी बारह साल बाद तो एक आदमी को साथ लेकर आये। मुझे थोड़ा तो मौका देते कि वह एकान्त में बारह साल की मब दुख पीड़ा, सारा क्रोध निकाल लेती। बुद्ध ने आनन्द से कहा कि माना मैंने तुझे वचन दिया था लेकिन तुझसे प्रार्थना करता हूँ कि तू इस बार कृपा करके उस वचन का आग्रह भत कर। यह थोड़ा सोचने जैसा है। बुद्ध का यह कहना अति मानवीय है, अद्भुत है। आनन्द कहता भी है कि क्या आपके लिए भी कोई पत्नी है? बुद्ध कहते हैं, मेरे लिए नहीं है, लेकिन उसके लिए मैं पति हूँ, इसको कैसे मिटाऊँ? यह मेरे हाथ में नहीं है। आनन्द दूर खड़ा रह गया और बुद्ध पत्नी के पास गये और उसने चिल्लाना शुरू किया। बारह साल की लम्बी बात थी, बहुत पीड़ाए थी। अचानक रात में बिना कहे उसको छोड़कर भाग गये थे। उसका दुख बिल्कुल स्वाभाविक है। बुद्ध चुपचाप खड़े हैं। वह उसकी सारी बात सुन लेते हैं। फिर, वह आसू पोछती है

और बुद्ध उससे कहते हैं कि तू ठीक से देख। मैं वही नहीं हूँ जो गया था। अब मैं तेरे पति की तरह नहीं आया हूँ, तेरा जो पति था वह मर चुका। मैं कोई और ही हूँ।

कृष्ण और अर्जुन के बीच स्थिति बहुत और है। अर्जुन मिल है। गले में हाथ ढालकर भ्रमे, खेले हैं, गपशप की है। यहा कृष्ण सिफ़ इतना ही कहे कि मैंने जो सत्य जाना है वह मैं तुझसे कहता हूँ, तो वह कहेगा कि जानते हैं हम आपको और आपके सत्य को। लेकिन कृष्ण उससे कहते हैं कि और भी पहले इस सत्य को औरों ने भी औरों से कहा है, वही मैं तुझसे कह रहा हूँ। तू मुझे मिल मानकर कहीं इस ख्याल में मत पढ़ जाना — इसलिए ‘पर्टीकुलर सिच्चुएशन’ की बात है। वह चूक जाय ख्याल से तो आप गलती में पढ़ेगे। बुद्ध वैसी स्थिति में नहीं है। बुद्ध कह सकते हैं कि मैं कह रहा हूँ। किसी ने किसी से कहा हो कि न कहा हो इससे मुझे प्रयोजन नहीं है। और, तुमसे मैं यह भी कहे देता हूँ कि मेरे कहने से तुम मत मान लेना। यहा बुद्ध कोई अहकार की घोषणा कर रहे हो ऐसा नहीं मालूम होता है। क्योंकि, अहकारी यह कहेगा कि मैं कहता हूँ, इसलिए मान लो। बुद्ध तो निपट निजता की बात कर रहे हैं। वह कहते हैं, मैं कहता हूँ, इससे तुम मान मत लेना, लेकिन कहता मैं ही हूँ। हम जानते हैं कि बुद्ध जो कह रहे हैं वह औरों ने भी कहा है। हम जानते हैं कि बुद्ध जो कह रहे हैं वह उपनिषद् ने भी कहा है। हम जानते हैं कि बुद्ध जो कह रहे हैं वह वेदों ने भी कहा है। लेकिन, बुद्ध क्यों जोर देते हैं इस बात पर। अगर कोई बुद्ध से कहे भी कि यह वेदों ने कहा है, उपनिषद् में कहा है तो बुद्ध कहेगे कि नहीं, यह मैं ही तुमसे कह रहा हूँ।

इसके भी कारण है। यह ‘सरकभटेसियल’ है। क्योंकि, बुद्ध के समय तक वेद और उपनिषद् की परम्परा मड़ चुकी थी। यह जानते हुए भलीभांति कि बुद्ध जो कह रहे हैं सारभूत, वही वेद-उपनिषद् में कहा गया है फिर भी वेद उपनिषद् का सहारा नहीं दिया जा सकता, क्योंकि उस सहारे पर बहुत बड़ा पासष्ठ का जाल खड़ा हो गया था जो जनता को लूट रहा था, घसीट रहा था, गलत रास्तों पर भटका रहा था, अन्धविश्वास में डुबो रहा था। इसलिए, वेद और उपनिषद् के पक्ष में वह विल्कुल चुप रह जाते हैं। ऐसा नहीं है कि बुद्ध को यह बोध नहीं था या ख्याल नहीं था। लेकिन, कई बार इतिहास में ऐसा बक्त आ जाता है कि कल के सत्यों को आज के सत्यादी व्यापार उत्थापक फेंकना पड़ता है। क्योंकि, कल के सत्य, कल के होने की बजह से असत्यों के साथ इस बुरी तरह बुलमिल जाते हैं कि अब उनका साथ देना, उन असत्यों का भी साथ देना है जिनके साथ उनका जोड़ और गठबन्धन हो गया है। कृष्ण के सामने वैसा सवाल नहीं था।

कृष्ण के सामने वेद और उपनिषद् की परम्परा जरा भी अशुद्ध नहीं थी। वह अपनी ऊचाई पर थी, शिखर पर थी। सच तो यह है कि हम गीता को इसलिये कह सके कि वह समस्त वेदों और समस्त उपनिषद् का सार है। असल में कृष्ण को हम कह सकते हैं कि उपनिषद् ने जो सस्कृति पैदा की थी उसके बे सारभूत है। जो 'एसेसियल' था उस सस्कृति में वह सब कृष्ण से प्रकट हो गया है। कृष्ण तो उस सस्कृति के शिखर पर पैदा हुए और बुद्ध उस सस्कृति के बिलकुल पतन की अवस्था के समय पैदा हुए—जो सस्कृति बिलकुल धूलि धूसरित हो गयी थी और उसमें का सब सड़ गया था। ब्राह्मण, ब्रह्मज्ञानी नहीं रह गया था, ब्राह्मण सिर्फ ब्रह्म के नाम पर शोषक हो गया था। उस सस्कृति के माथ सब कुछ गन्दा जुड़ गया था। धर्म का जिससे कोई नाता नहीं था। पर, कृष्ण तो 'धीक' पर पैदा हुए हैं जब उपनिषद् अपनी कीर्ति के शिखर पर है और उनमें जो ज्ञान प्रकट हुआ था उसकी किरणें चारों ओर व्याप्त हैं। लेकिन, बुद्ध के बक्त तक वह सब नष्ट हो गया और लाश पड़ी रह गयी थी। उस लाश की गवाही बुद्ध नहीं दे सकते। यही कारण है यह न कोई बुद्ध का अहकार है और न कोई कृष्ण का अहकार है कि वह पुराने का समर्थन खोजते हैं।

**प्रश्न :** कृष्ण ने गीता के अध्याय दस में अपने को घोड़ो मे उच्चःश्वा, हाथियो मे ऐरावत, गौबो मे कामधेनु, सर्पो मे वासुकी, पशुओं मे सिंह, पक्षियो मे गरुड, नदियो मे गंगा, ऋतुओं में वसन्त आदि बताया है। अर्थात् अपने को सर्वश्रेष्ठ बताने का प्रयत्न किया है। तो, क्या वे निकृष्ट वर्ग का प्रतिनिधित्व नहीं करते? क्या निकृष्ट वर्ग कृष्ण का रूप नहीं था? उन्होंने निकृष्ट और साधारण का जिक बयो नहीं किया?

**उत्तर :** यह बड़ा मजेदार सूत्र है। इस सूत्र मे दो बातें हैं। पहली बात तो यह है कि कृष्ण इसमे अपने को सभी मे श्रेष्ठ घोषित करते हैं। वे ऋतुओं मे वसन्त कहते हैं, हाथियो मे ऐरावत कहते हैं, गायों मे कामधेनु कहते हैं। लेकिन, दूसरी मजे की बात यह भी है कि गाय और घोड़ जैसे निम्नतम प्राणियों मे भी वे अपनी तुलना खोजते हैं। ये दो बातें एक साथ हैं—इधर वह हर जाति मे अपने को श्रेष्ठ घोषित करते हैं, लेकिन इसकी जरा भी किक नहीं करने कि जाति किसकी है। आखिर ऐरावत भी होगे तो हाथियो मे ही होगे न! और, कामधेनु होगे तो गायो मे ही होगे न! और वसन्त होगे तो ऋतुओं मे ही होगे न! ये दोनों बातें एक साथ हैं। निम्नतम मे भी जो श्रेष्ठतम है उसकी वे घोषणा करते हैं। कारण है कि इस श्रेष्ठतम की घोषणा क्यों की जा रही है।

ऊपर से देखने से लगेगा कि अहकार की बात है, क्योंकि हमें सिवाय अहकार के कूद़ और लगाया ही नहीं। भीतर से देखने पर पता चलेगा कि जब प्रत्येक जाति में, प्रत्येक वर्ग में श्रेष्ठतम की बात कही जा रही है तो उसका कुल मतलब ही इतना है कि जब वे कहते हैं कि हाथियों में ऐरावत हैं तो वे यह कहते हैं कि जो हाथी ऐरावत नहीं हो पाये वे अपने स्वभाव से च्युत रहते हैं। ऐसे तो हर हाथी ऐरावत होने को पैदा हुआ है। जो ऋतु वसत नहीं होया वह ऋतु होने से च्युत हो गयी, उसके स्वभाव से च्युत हो गयी। ऐसे तो हर ऋतु वसन्त होने को पैदा हुई है। जो गाय कामधेन नहीं हो पायी वह असल में ठीक अर्थों में गाय ही नहीं हो पायी, वह अपने स्वभाव से च्युत हो गयी। कृष्ण इस घोषणा में सिर्फ इतना ही कहते हैं कि मैं प्रत्येक के स्वभाव की सिद्धि हूँ। जो हो सकता है चरम शिखर पर, वह मैं हूँ। इसका मतलब आप समझें? इसका मतलब यह है कि जो हाथी ऐरावत नहीं है वह कृष्ण नहीं है ऐसा नहीं, वह भी कृष्ण है, लेकिन वह पिछड़ा हुआ कृष्ण है। वह ऐरावत नहीं हो पाया है जो कि हो सकता है। जिसकी कि 'पोटेशियलिटी' है। कृष्ण यह कह रहे हैं कि सबके भीतर जो 'पोटेशियलिटी' है वह मैं हूँ। इसको अगर हम पूरे सारे में रखे तो इसका मनव द्वारा कि सबके भीतर जो बीज रूप सभावना है, जो अतिम उत्कर्ष की सभावना है, जो अतिम विकास का शिखर है वह मैं हूँ। और, जो इससे जरा भी पीछे छूट जाता है वह अपने स्वभाव के शिखर से च्युत हो जाता है। वह अपने को पाने से बचित रह गया है। इसमें कहीं भूलकर भी कोई अहकार की घोषणा नहीं है। इसका सीधा और साफ मतलब इतना ही है कि तुम जब तक हाथियों में ऐरावत न हो जाओ तब तक तुम मुझे न पा सकोगे। तुम अपने पूरे खिलने में, अपनी पूरी 'फ्लवारिंग' में ही मुझे पाने हो। वह अर्जुन को यही समझा रहे हैं। वह उसको यही कह रहे हैं कि क्षतियों में तू पूरा श्रेष्ठ हो जा, तो तू कृष्ण हो जायेगा। अगर कृष्ण कभी हजार दो हजार साल बाद आते तो वह जरूर कहते कि क्षतियों में मैं अर्जुन हूँ। जब कृष्ण अपने होने की यह घोषणा कर रहे हैं तो यह श्रेष्ठता का दावा नहीं है क्योंकि श्रेष्ठता का दावा करने के लिए घोड़ों और हाथियों में जाना पड़ेगा! गायों और बैलों में जाना पड़ेगा। श्रेष्ठता का दावा तो सीधा ही हो सकता है। पर वह सीधा नहीं कर रहे हैं। असल में वह श्रेष्ठता का दावा ही नहीं कर रहे हैं, वह एक जागतिक विकास की बात कर रहे हैं कि जब तुम अपने श्रेष्ठतम रूप में प्रकट होते हो तब तुम प्रभु हो जाते हो।

शब्द हैं हमारे पास ईश्वर। शब्द बनता है ऐश्वर्य से ही। जब तुम अपने पूरे ऐश्वर्य में प्रकट होते हो तो ईश्वर हो जाते हो। ईश्वर शब्द ऐश्वर्य का ही रूप है।

हमने कभी सोचा नहीं। ईश्वर का मतलब ही यह है कि गायों में कामधेन और हाथियों में ऐरावत और कृतुओं में वसन्त। ईश्वर का मतलब ही यह है कि जिसकी 'पोटेशियलिटी' और 'एक्चुअलिटी' में फर्क नहीं है। जिसकी वास्तविकता में और जिसकी सभावना में कोई फर्क नहीं है। जिसके जीवन में सम्भावना और वास्तविकता एक ही हो गयी है। जो सम्भावना थी वह पूरी की पूरी वास्तविकता बन गयी है, वह ईश्वर है। जिसकी सम्भावना और वास्तविकता में अन्तर है, 'डिस्टेंस' है वह अभी ईश्वर की तरफ याका कर रहा है। यानी जो मेरे भीतर छिपा है, जिस दिन पूरी तरह प्रकट हो जायेगा उस दिन मैं ईश्वर को उपलब्ध हो जाता हूँ। लेकिन अभी, जो मेरे भीतर छिपा है वह थोड़ा थोड़ा प्रकट होता है। वह पूरा वसन्त नहीं बन पाता है। फूल पूरा नहीं खिल पाता है। अगर कृष्ण इस बगिया में आये और वह कहें कि इन फूलों में सबसे ज्यादा खिला हुआ पूरा फूल हूँ, तो क्या मतलब होगा? उसका मतलब यह होगा कि दूसरे फूल इतने ही खिल सकते थे, लेकिन नहीं खिल पाये हैं। और उचित ही है कि कृष्ण अद्विले फूल से अपने को नहीं जोड़ते। जो अभी शाखाओं में छिपा है उससे नहीं जोड़ते। जो बीज में पड़ा है उससे नहीं जोड़ते। वे उससे जोड़ते हैं जो पूरा खिला है। क्योंकि, जिससे वे बात कर रहे हैं उसको पूर्ण खिलाने की ही बात कर रहे हैं कि पूरा खिल जा। तू क्षमित्व का पूरा फूल बन जा, तू वसन्त हो जा क्षमित्व का। तो तू मुझे पा सकेगा। मुझे पा सकेगा का मतलब है कि तू अपने ईश्वर को पा सकता है। यहा कृष्ण पूरे समय दोहरा काम कर रहे हैं। कृष्ण का पूरा रोल ढबल है। इधर वह अर्जुन के साथी है, उसके मित्र हैं, इसलिए अर्जुन पर ज्यादा डाट-डप्ट नहीं कर पाते। उससे मित्रता की भाषा बोलते हैं। लेकिन, साथ-ही-साथ पूरे समय वे पूरे खिले हुए फूल भी हैं। इस मित्रता के बीच में उनकी पूर्णता की घोषणा ए जगह-न्जगह से फूट पड़ती है और अर्जुन तक पहुंच जाती है। यह दोनों ही जरूरी हैं। अगर वह निपट मित्र रह जाय तो किसी काम के नहीं रहेंगे। और अगर वह निपट परमात्मा हो जाय तो अर्जुन कहेगा कि क्षमा करो, अपनी दोस्ती समाप्त। इन दोनों के बीच पूरे बक्त तालमेल बिठाना पड़ रहा है। जब जब भी उन्हे लगता है कि अर्जुन जरा राजी दिखता है तब वे परमात्मा होने की घोषणा करते हैं। और जब जब उन्हें दिखता है कि अर्जुन जरा सदिग्ध दिखता है तब वे फिर उससे मित्रता की बातें करने लगते हैं कि हे भारत, हे महाकाशो! उनका काम बड़ा 'डेलीकेट' और बड़ा नाजुक है। ऐसा नाजुक भौका बहुत कम आया है। बुद्ध के पास ऐसा नाजुक भौका नहीं है। क्योंकि, जो आया है वह निश्चित है कि कौन है। जो बैठा

है वह निश्चित है कि कौन है। बात सीधी साफ होती है। महाबीर को ऐसा मीका नहीं आता, क्योंकि बाते साफ सुधरी है। सीधा 'डायलाग' है। उसमें कुछ दोहरे रोल का काम नहीं है। कृष्ण के साथ बड़ी कठिनाई है। मिल के गुरु होना बड़ी कठिन बात है। मिल को उपदेश देना बड़ी कठिन बात है। मिल को सलाह देना बड़ी कठिन बात है। अर्जुन कह सकता है कि ज्यादा ज्ञान मत बधारो। मेरे ही साथ खेले, मेरे साथ बड़े हुए और मुझे ही इतना ज्ञान। कृष्ण पूरे बक्त उसे थपथपाते भी जाँ रहे हैं कि हे महाबाहो, और उससे कहते भी चले जाते हैं कि तू अज्ञानी है। तू पहचान नहीं पा रहा है कि असली बात क्या है। यह दोनों बाते साथ चल रही हैं। इसको स्थाल में लेंगे तो सरलता हो सकती है।

**प्रश्न :** आचार्यजी, लगभग सभी महापुरुषों का कुछ तो चरित्र वैयक्तिक होता है, और कुछ होता है सम्बिंदित। अभी पिछले दिनों में कृष्ण के जीवन पर चर्चा रही है। उसमें बहुत कुछ वैयक्तिक विशेषताएं भी थीं जो कि आज के युग में, मुमकिन है कि यदि हम उनका थोड़ा सा भी अनुकरण करने लगें, तो पिट जाने की ही समायना है, और तो कोई दूसरों बात विखायी नहीं पड़ती। आज हम किसी दधि और दूध की मटकी को ककड़ी मारकर फोड़ नहीं सकते हैं। आज हम कहीं स्वान करते हुए बालाओं के बल्टों को उठाकर भाग नहीं सकते हैं। और तो और, किसी राधा के साथ चाहते हुए हम प्रेम नहीं कर सकते हैं। आज कृष्ण का होना कठिन हो गया है। उधर कृष्ण ने गीता में कर्मयोग की बात कही है। यह जीवन वशंन हमारे लिए सबसे महत्वपूर्ण है, जो जीवन जीने की कला सिखाता है, जीवन का एक नया भाग हमें देता है, एक नयी दृष्टि देता है और हम जीवन के हर क्षण में उसे व्यवहार रूप में उतार भी सकते हैं। इसलिए आचार्यजी, हम चाहते हैं कि उनके जीवन वशंन पर विशद रूप से कुछ चीज हमारे सम्मुख प्रस्तुत करें ताकि हम उसका अनुकरण कर सकें।

**उत्तर :** पहली बात तो यह स्थाल में लेनी चाहिए कि आज कृष्ण का होना कठिन हो गया है, ऐसा नहीं है। उस दिन भी आसान नहीं था। अन्यथा बहुत कृष्ण हो जाते। फिर, आपको कठिन मालूम होता है कृष्ण 'होना'। लेकिन कृष्ण आज भी पैदा हो तो आज भी सरल होगा कृष्ण को। लेकिन, यह आंति वहाँ से शुरू होती है जहाँ से हम अनुकरण का स्थाल

लेते हैं। वही से उपद्रव शुरू होता है। न तो आप उस दिन कृष्ण का अनुकरण कर सकते थे, न आज कर सकते हैं। कर ही नहीं सकते और करेंगे तो टीक कहते हैं कि मुसीबत में पड़ेंगे। उनके जीवन पर जो चर्चा हृद्दि है वह इसलिए नहीं कि आप अनुकरण करेंगे। बल्कि इसलिए कि कृष्ण के व्यक्तित्व के अगर पूरे जीवन को हम समझ पाये तो शायद अपने जीवन को समझने के लिए सुविधा हो। अनुकरण के लिए नहीं है कृष्ण भी। अगर इस कृष्ण के व्यक्तित्व का, जो कि बड़ा विराट्, बहुआयामी है, पूरा खुलाव हो जाय तो हम अपने व्यक्तित्व को भी खोलने की कूजी पा सकते हैं। लेकिन, आप अगर अनुकरण की भाषा में सोचेंगे तो कृष्ण को नहीं समझ पायेंगे। उन्हें समझना मुश्किल हो जायेगा।

जिसका भी हम अनुकरण करना चाहते हैं उसे हम समझना तो चाहते ही नहीं। और अनुकरण हम करना ही इसलिए चाहते हैं कि हम अपने को भी नहीं समझना चाहते। किसी को अपने ऊपर आरोपित करके जी लेंगे तो सुविधा होगी, समझने की झज्जट से बच जायेंगे। समझने का काम तो वही से शुरू होता है जहां से हम न किसी दा अनुकरण करना चाहते न किसी के जैसे होना चाहते, बल्कि इस बात का पता लगाना चाहते हैं कि मैं क्या हूँ, और क्या हो सकता हूँ? जिन लोगों ने अपनी जिन्दगी में पूरी तरह खुलाव से अपने को प्रकट किया है उनकी जिन्दगी को समझने से अपनी जिन्दगी को समझने का रास्ता सुगम हो जाता है। इससे जिन्दगिया एक नहीं हो जायेगी, जिन्दगी तो अलग-अलग ही होगी। और उपाय भी नहीं है कि वह एक जैसी हो जाय। अगर इतनी सारी चर्चाओं में कहीं भूलकर भी आपके मन में अनुकरण का ख्याल रहा, जैसा कि प्रश्न से लगा कि रहा होगा, तो आप कृष्ण को ही समझ नहीं पायेंगे, अपने को भी समझना मुश्किल हो जायेगा।

दूसरी बात, कृष्ण के विचार, उनके सत्य जो सदा उपयोग के हो सकते हैं, लेकिन उनमें भी मैं आपसे यही कहना चाहूँगा कि वे भी अनुकरणीय नहीं हैं। क्योंकि, जब कृष्ण का जीवन्त व्यक्तित्व अनुकरण नहीं किया जा सकता तो शब्दों में प्रकट सिद्धान्त और सत्य कैसे अनुकरण किये जा सकते हैं? नहीं, वह भी नहीं किया जा सकता। वह भी समझा ही जा सकता है। हा, उसके समझने की प्रक्रिया में आपकी समझ बढ़ती है और वह समझ आपके काम आ सकती है। सिद्धान्त काम नहीं आयेगे, समझ ही काम आयेगी। लेकिन, हर हालत में अनुकरण हमारी मांग होती है। या तो जीवन का अनुकरण करें या हम सिद्धान्तों का अनुकरण करें, लेकिन अनुकरण हम करेंगे ही।

पहली बात, आपसे उनके सिद्धान्त के सम्बन्ध में बात करने के पहले यह कह देना जरूरी है कि जीवन अनुकरणीय नहीं है - इसलिए नहीं कि आज मटकी नहीं फोड़ी जा सकती, इसलिए भी नहीं कि आज प्रेम नहीं किया जा सकता, इसलिए भी नहीं कि आज बासुरी नहीं बजायी जा सकती। सब किया जा सकता है। इसमें कोई कठिनाई नहीं है। मटकी फोड़ने से उस दिन भी तकलीफ आती थी, आज भी आयेगी। बासुरी बजाने से उस दिन भी आदमी मुश्किल में पड़ता था, आज भी पड़ेगा। थोड़े बहुत भेद होगे। कोई बहुत बुनियादी फर्क नहीं पड़ता है इससे। इसलिए नहीं कह रहा हूँ कि अनुकरण नहीं किया जा सकता, क्योंकि परिस्थिति बदल गयी है। अनुकरण ही भलत है, परिस्थिति बिल्कुल वही हो तो भी अनुकरण 'स्वीसाइडल है'। अपने को मारना हो, आत्महत्या करनी हो तो ही अनुकरण ठीक है। कृष्ण किसका अनुकरण करते हैं? कोई व्यक्तित्व दिखायी नहीं पड़ता कृष्ण ने जिसका अनुकरण किया हो! बुद्ध किसका अनुकरण करते हैं? कोई व्यक्तित्व दिखायी नहीं पड़ता। बड़े मजे की और बड़े रहस्य की बात है कि उन्हीं लोगों का हम अनुकरण करते हैं जिन्होंने कभी किसी का अनुकरण नहीं किया। यह बड़ों 'एबसर्ड' बात है। ये लोग किसी का अनुकरण नहीं करते। ये सारे के सारे अपनी निजता के फूल हैं। हम किसी और के फूल के ढग से खिलता चाहेगे तो कठिनाईं में पड़ ही जायेंगे। और यह कठिनाईं मटकी फोड़ने की कठिनाईं, राधा के प्रेम की कठिनाईं नहीं हैं, यह बहुत गहरी कठिनाईं हैं। वह तो बहुत छोटी कठिनाईया हैं। उसमें तो आप रोज पड़ते ही रहते हैं, वह रुकता नहीं। कोई दूसरों की स्त्रियों से प्रेम करने से रुकता हो ऐसा दिखायी नहीं पड़ता। कोई अपनी पत्नियों से डरकर दूसरे की पत्नियों का नाम न लेता हो ऐसा भी नहीं है। पत्निया डराये चली जाती है, पति डरे चले जाते हैं। पति डराये चले जाते हैं, पत्निया डरी चली जाती है। यह कोई आज की बात नहीं है वह सदा की बात है। असल में जब तक पति और पत्नी रहेंगे, तब तक डर रहेगा। आदमी जैसा है, वह चूंकि डरा हृआ है इसलिए उसकी सारी व्यवस्था में डर व्याप्त हो जाता है। नहीं, यह सवाल नहीं है कि अनुकरण में यह भय है। अनुकरण में जो बुनियादी भय है वह मैं आपसे कह दूँ, किर कल सुबह से आप प्रश्न उठाइए जीवन के सत्यों के सम्बन्ध में। क्योंकि जीवन के सम्बन्ध में मैं चर्चा नहीं कर रहा था आप प्रश्न उठा रहे थे। कल सुबह से आप प्रश्न उठाइये उनके दर्शन और सत्यों के सम्बन्ध में, उसकी चर्चा कर लूँगा।

जो अनुकरण का बुनियादी भय है वह यह है कि इस जगत में दो व्यक्ति एक जैसे नहीं हैं। न हो सकते हैं। बेजोड़ हैं। अद्वितीय सब हैं। कोई तुलना का उपाय नहीं। बस आप आप ही हैं। आप जैसा पहले कभी नहीं हुआ और आप जैसा बाद में भी कभी नहीं होता। असल में आपका कोई साचा भगवान के पास नहीं है जिस साचे में और लोग ढाले जा सकते हैं। जब भी आप अपनी इस निजता को अस्वीकार कर देंगे और किसी जैसे होने की कोशिश करेंगे तो जो भूल भगवान ने नहीं की वह आप करेंगे। उसने आपको बनाया व्यक्ति और आप नकल बनने की कोशिश-में लग जायेंगे। उसने आपको दी निजता और आप पराये को ओढ़ने लग जायेंगे। वही कठिनाई है। लेकिन, अब तक सभी धर्म अनुकरण पर जोर देते रहे हैं। सारी दुनिया में मा, बाप, शिक्षक, गुरु सिखाते रहे हैं—किसी जैसे हो जाओ। बस अपने जैसे भर मत होना। एक भूल भर मत करना, बाकी सब करना। कृष्ण जैसे हो जाना, राम जैसे हो जाना, बुद्ध जैसे हो जाना। बस एक भूल भर मत करना, अपने जैसे मत हो जाना। क्या कारण है कि सारी दुनिया की शिक्षाएं किसी आदमी को यह नहीं कहती कि अपने जैसे हो जाओ? कुछ कारण है।

बड़ा कारण तो यह है कि प्रत्येक व्यक्ति अगर अपने जैसा हो जाय तो खतरा है समाज को, गुरुओं को, मा बाप को, व्यवस्थापकों को, सबको खतरा है। क्योंकि, कौन कैसा हो जायेगा, इसके बाबत पहले से सुनिश्चित नहीं हुआ जा सकता। लेकिन, राम जैसे हो जाओ, इसमें खतरा नहीं है। राम के बाबत सुनिश्चित है, हमें पता है पक्षा कि राम क्या करते हैं, क्या नहीं करते हैं। ऐसा ही तुम भी करो ताकि खतरनाक न रह जाओ। तुम्हारे बाबत 'प्रीडिक्शन' हो सके, तुम्हारे बाबत घोषणा हो सके कि तुम ऐसा करेंगे। और जिस दिन तुम न करो तो हम तुम्हें अपराधी ठहरा पायें। अगर प्रत्येक व्यक्ति अपना जैसा हो तो बहुत मुश्किल हो जायेगा तथा करना कि क्या अपराध है और क्या अपराध नहीं है। क्या पाप है, क्या पुण्य है, क्या ठीक है, क्या गलत है, बहुत मुश्किल हो जायेगा। इसलिए, समाज की जड़-व्यवस्था को इसी में सुविधा है कि सब साफ-सुधरी रेखाये रहे। चाहे जिन्दगी कट जाय और लोग मर जाय, चाहे उनके व्यक्तित्व समाप्त हो जाय, चाहे उनकी आत्माएं दीन हो जाय इसकी कोई चिन्ता नहीं। ऐसा मालूम होता है कि मनुष्य समाज के लिए जी रहा है। समाज मनुष्य के लिए नहीं जी रहा। शिक्षा मनुष्य के लिए नहीं है, मनुष्य इसलिए पैदा हुआ है कि वह शिक्षा के काम आ सके। सिद्धान्त मनुष्य

के काम में आयें, इसलिए नहीं है, मनुष्य इसलिए पैदा किया गया है कि सिद्धातों के काम में आ सके। धर्म मनुष्य के लिए नहीं है, मनुष्य धर्म के लिए है। मनुष्य को नीचे रखते हैं, साधन बनाते हैं और मनुष्य के ऊपर सब चीजों को थोप देते हैं। खतरा यह है। अनुकरण का खतरा परिस्थितिगत खतरा नहीं है, आत्मगत खतरा है। अनुकरण का खतरा अपने को धीरे-धीरे मारने और 'पादजनिंग' का खतरा है। अपने को धीरे-धीरे जहूर देने का खतरा है। उस जहूर पर आपने कृष्ण का 'लेबल' रखा है, कि बुद्ध का, कि महावीर का, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। दुनिया में कोई 'टाइप' नहीं है जिसमें सबको ढलना है। प्रत्येक को अपने जैसा होना है। इसलिए कृष्ण पर जो मैं बात कर रहा हूँ कोई भूल कर यह न समझ ले कि मैं आपसे कह रहा हूँ कि आप कृष्ण जैसे हो जाय। नहीं, बाहर से जो मुसीबतें आयेगी वे गौण हैं। भीतर से जो मुसीबत आयेगी वही असली है। आप बिना मुर्दा हुए कृष्ण जैसे नहीं हो सकते और मुर्दे अगर पिट जाय तो आश्चर्य है कुछ? मुर्दे पिटेगे ही। वह जो डर है पिटाई का, वह मुर्दा होने का डर है। जिन्दा आदमी तो जैसा होता है, होता है। और जितना जिन्दा आदमी होता है उतना ही जैसा होता है वैसा ही होता है। और बड़े भजे की बात है कि जो ममाज जिन्दा आदमी की निन्दा से शुरू करता है यात्रा, वह प्रशंसा पर पूरी करता है।

सदा ऐसा हुआ है। जिन्दा आदमी को गाली से हम प्रारम्भ करते हैं, निन्दा से शुरू करते हैं और पूजा पर अन्त होता है। यह हमारा ढग है। यह बात दूसरी है कि वह जिन्दा आदमी पूरा जिन्दा न हो, बीच से लौट जाय, यह बात दूसरी है। अगर वह जिन्दा आदमी पूरा है तो आपकी गाली पूजा तक पहुँचेगी ही। सदा पहुँचती रही है। उसका अपना 'लाजिक' है। हा, अगर वह मुर्दा आदमी है तो डर जायेगा, गाली से लौट जायेगा। तब पूजा तक नहीं पहुँच पायेगा। यह उसका कम्पुर है, इसमें आपकी कोई गलती नहीं है। आपने तो ठीक से शुरूआत की थी, वह बीच से भाग गया। कृष्ण को इससे कोई फिक्र पैदा नहीं होती।

क्या आप सोचते हैं कि कृष्ण भगवान की तरह स्वीकृत हो गये थे उस दिन? नहीं। कृष्ण पर सब दोषारोपण थे और आज भी है। अगर आप अपनी आख बचाकर चले तो ही दोषारोपण से बच सकते हैं कृष्ण के, अन्यथा बहुत मुश्किल है मामला। सब दोषारोपण थे। जीसस को जब सूली दी गयी, तो जिन लोगों ने सूली दी थी उन्होंने एक आवारा आदमी को सूली दी थी। जीसस को जब सूली पर लटकाया तो दोनों तरफ दो ओर भी लटकाये थे, अकेले जीसस को सूली नहीं दी थी। तीन लास लड़े किये थे, बीच में जीसस को लटकाया था। दोनों तरफ

दो चोर भी लटकाये, इस बात की सूचना के लिए कि जीसस की हैसियत हम चोरों से ज्यादा नहीं समझते। और, मजे की बात यह है कि और लोगों ने मजाक किया हो, किया हो, एक चोर ने भी मरते वक्त आखिरी समय जीसस से मजाक किया था। उस चोर ने कहा था कि अब तो हम साथ मर रहे हैं, बड़ा सम्बन्ध हो गया। अगर तुम्हारे प्रभु के राज्य में आऊ तो जरा जगह मेरे लिए भी बना देना। वह भी सदिग्द है कि कहा का प्रभु का राज्य और कहा का क्या? चोर ज्यादा आश्वस्त था। वे लोग जो सूली पर लटका रहे थे, वे ही नहीं निश्चित थे कि यह आदमी आवारा और फिजूल हैं, वह चोर भी यही समझ रहे थे कि तुमसे बहतर तो हमीं हैं। हम कुछ करके मर रहे हैं, तुम बिना किये ही मर जा रहे हो।

कृष्ण या क्राइस्ट को, महावीर या बुद्ध को, उनका समाज एकदम से उन्हे भगवान नहीं कह देता है। गालियों से शुरू करता है। पर, वे जिन्दा आदमी हैं वे गालिया पिये चले जाते हैं। कब तक आप गालिया देंगे? और जो आदमी गालिया पिये ही चला जाता है, फिर धीरे-धीरे आप उसका सम्मान करने लगते हैं। वह सम्मान को भी पीता चला जाता है, वह उससे भा प्रभावित नहीं होता है, फिर आप उसको भगवान बनाने में लग जाते हैं।

कृष्ण की चर्चा मेरे लिए इसलिए महत्त्वपूर्ण नहीं है कि आप उनका अनुकरण करे। इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि ऐसा व्यक्ति, इतना 'मल्टी डायमेशनल' व्यक्ति पृथ्वी पर नहीं हुआ। इस बहु आयामी व्यक्तित्व के अगर सारे खजाने आपके सामने खुल जाय तो आपको अपने खजाने खोलने का ख्याल आ जाय, बस इससे ज्यादा नहीं। आपके खजाने आपके होगे। और कोई नहीं कह सकता कि आपके खजाने कृष्ण से ज्यादा गहरे और ज्यादा समृद्ध नहीं होगे। यह कोई सबाल नहीं है। लेकिन जो कृष्ण के भीतर घटित हुआ वह किसी और के भीतर भी घटित हो सकता है, इसका स्मरण ही काफी है। उस स्मरण के लिए ही सारी चर्चा है।

लेकिन, आप पूछते हैं कि जीवन-सिद्धान्त। हमारा मन होता है कि कोई सिद्धान्त मिल जाय तो उनको आरोपण करना आसान होगा। उनके सिद्धान्तों की हम कल सुबह से चर्चा करेंगे, लेकिन वह भी आरोपण के लिए नहीं, वह भी जिन्दगी को समझने के लिए। कृष्ण जैसे लोग जब पैदा होते हैं तो जिन्दगी को बड़ी जहराई से देखते हैं और गलती होगी यह कि हम उनकी आख में आख डालकर योही देर जिन्दगी को न देखें। उनकी आख में आख डालकर जिन्दगी को देख करने से हमारी भी देखने की क्षमता, हमारा 'पर्सेप्रेक्टिव' बदलता है। मनाली आप आये हैं,

मह आरोतरफ पहाड है, लेकिन आपके पास जितनी आख और जितना 'पर्सीप्रेसिट्व' है उतना सर्वदर्य ही तो इन पहाडों में दिखायी पड़ेगा? यहीं निकोलस रोरिक भी था। उसके चित्र आप देख आयेगे तो यह पहाड कुछ और कहते हुए मालूम पड़ने लगेंगे तत्काल, क्योंकि उसकी आख में आपने आख डालकर देखना शुरू कर दिया। निकोलस रोरिक रूस से यात्रा करके इन पहाडों में आ गया है। आज तो रास्ता है, तब तो रास्ता भी नहीं था, और तब से वह जिन्दगी भर यहीं रह गया। इस हिमालय ने उसे बिल्कुल ही पागल कर दिया। जहा तक मेरा स्थाल है, आपको काफी दिन हो गये हिमालय में आये, अब शायद ही आपको पहाड़िया दिखायी पड़ती हो। पहले दिन दिखायी पड़ी होगी थोड़ी बहुत देर, अब नहीं दिखायी पड़ती होगी। अब बात खत्म हो गयी। पहाड है, ठीक है, बात खत्म हो गयी। लेकिन, निकोलस जिन्दगी भर लगा रहा था। वह एक एक पहाडों को पोतता रहा, रगता रहा जिन्दगी भर, और पहाड नहीं चुके। निकोलस का भन नहीं चुका। तो, निकोलस की आख से अगर आप देख पायेंगे एक दफा तो ये पहाड कुछ और आपको कहते दिखायी पड़ने लगेंगे। उसने सैकड़ों ढाँगों से इन पहाडों को देखा। कभी चाद में, कभी अधेरे में, कभी सूरज में, कभी वर्षा में, कभी बर्फ में, कभी धूप में, हजार रगों में इन पहाडों को देखा और जिन्दगी भर बस इन पहाडों को ही रखता रहा। मैं नहीं कहता कि निकोलस ने जैसा देखा वैसा आप देखना। वैसा आप देख भी नहीं सकते, उपाय भी नहीं है। लेकिन, निकोलस को जानने के बाद ये पहाड सिर्फ साधारण पहाड नहीं रह जायेगे जो एक दफा देखकर चुक जाते हैं।

प्रेम तो बहुत लोगों ने किया है, लेकिन कभी फरहाद और मजनू को पढ़ लेना उपयोगी है। हमारा प्रेम जन्दी चुक जाता है। पता नहीं चलता, कब चुक गया। ठीक से याद भी नहीं कर सकते कि कभी था। सब रुखा-सूखा रह जाता है भीतर। नदी आने के पहले ही विदा हो जाती है और मरस्थल हो जाते हैं। लेकिन कुछ ऐसे लोग भी रहे हैं जो कि जिन्दगी भर प्रेम किये ही चले गये। इनके प्रेम का हिमाव लगाना मुश्किल है। अगर इन प्रेम करनेवालों से आप थोड़े परिचित हुए तो अपने प्रेम को समझने में बड़ी सुविधा हो जायेगी। और, हो सकता है कि आपके भीतर भी कोई धारा अन्तर्गम्भ में बहती हो और उसका स्मरण आ जाय। ऐसा नहीं कि आप मजनू हो जायेंगे, उसका तो कोई उपाय नहीं है। होना भी नहीं है। और इस तरह बना हुआ मजनू क्या मजनू हो सकता है? बाहर से बाल बर्गेरह बढ़ा लेगा, मजनू की तरह कटे कपड़े पहन लेगा, मजनू की तरह सदृक से गुजर के चिल्लाने लगेगा—लला, लैला। लेकिन, सब बेकार होगा,

उसमें कोई मतलब नहीं होगा । उसके भीतर से कहीं कुछ आयेगा नहीं । लेकिन, आपका भी अपना प्रेम है जो मजनू और फरहाद के प्रेम से शायद अधिक हो जाय, सुलभ जाय, शायद बारूद आग पकड़ जाय और आपको भी पता चले कि मैं भी ऐसे ही चुक जाने वाला नहीं हूँ, मेरे भीतर भी कोई धारा है । उसी अर्थ में मैं कह रहा हूँ । बहुत लोगों ने गीत लिखे हैं, लेकिन कालिदास या रवीन्द्रनाथ का गीत पढ़कर आपको पहली दफा कुछ दिखायी पड़ना शुरू होता है जो आपको शायद कभी दिखायी नहीं पड़ा था । वह आपकी भी समझवना थी, लेकिन प्रसुप्त थी ।

कृष्ण के सिद्धान्तों की कल सुबह हम बात करेगे, इस आशा में नहीं कि आप उनको मानकर सिद्धान्तवादी हो जाय । कृष्ण जैसा गैरसिद्धान्तवादी आदमी नहीं है । इसलिए, इस उपद्रव में पड़ना ही नहीं । कृष्ण को समझने का कुल मतलब इतना है कि जब ऐसा महिमा का पूरा खिला हुआ आदमी जगत को देखता है तो उसका 'वर्डिक्ट' क्या है— वह क्या कह जाता है इम जगत की बाबत ? चित्त की गहराईयों की बाबत वह क्या खबर दे जाता है ? आदमी के खिलने के सम्बन्ध में वह क्या सूचनाएँ दे जाता है ? वे सूचनाएँ शायद आपके अन्तर्गत में पड़ी हुई किन्हीं धाराओं को छ दे, तो ऐसा नहीं कि फिर आप कृष्णवादी हो जायेंगे । तब ऐसा ही होगा कि आप अपने होने की यादा पर निकल जायेंगे । तभी आप ममझ पायेंगे कि यह आदमी जो स्वधर्म में भर जाने को कहता है, यह आदमी आपके ऊपर सिद्धान्त थोपने वाला आदमी नहीं हो सकता है । तो कल आप पूछें । जो आप पूछेंगे उसकी मैं बात करूँगा । मुझे इसमें सुविधा पड़ती है कि आप पूछ लेते हैं । क्योंकि, इसमें मुझ सोच-विचार की झज्जट नहीं रह जाती । नहीं तो मुझे सबसे बड़ी दिक्कत यही हो जाती है कि क्या कहूँ ? ऐसे जब तक आपसे बोलता हूँ तभी तक सब विचार मेरे साथ होते हैं । जब मैं नहीं बोल रहा हूँ तब मैं खाली हो जाता हूँ तो मुझे बड़ी कठिनाई होती है । मैं कहूँ क्या ? आप कुछ पूछ लेते हैं, खूटी बन जाते हैं, मुझे टागने की सुविधा हो जाती है । अपनी तरफ से मेरा बोलना बहुत मुश्किल होता जा रहा है । इधर बहुत मित्रों ने कहा कि आप कुछ स्वतत्र रूप से बोलें । वह मेरे लिए मुश्किल है । और ज्यादा दिन अब मैं स्वतत्र रूप से नहीं बोल सक्ता । उसमें बहुत कठिनाई पड़ती है, क्योंकि मुझे समझ ही नहीं पड़ता । आप पूछ लेते हैं तो मुझे 'रिस्पॉड' करना पड़ता है । आप नहीं पूछते हैं तो मेरे पास अपने से बोलने को क्या है । अपनी तरफ से अब मैं चुप हूँ, आपकी तरफ से ही बोल रहा हूँ, इसलिए कल सबाल उठा लेंगे । जो सबाल आप उठा लेंगे, उसकी हम बात कर लेंगे ।



एवं : सत्रह  
 अनासकित  
 कर्म सम्यात और निष्काम कर्म  
 निष्काम और निष्क्रियता  
 समान व्यसन की मेरी  
 समस्त की उपलक्ष्य ही स्वर्ग





## १७

प्रश्न आखायंची, भीकुण्ठ कहते हैं कि निष्कामता और अनासक्ति से अन्धनों का नाश होता है और परम पद की प्राप्ति होती है। कृपया इसका अर्थ स्पष्ट करते हुए समझायें कि किस साधना या उपासना से यह उपलब्धि होगी। सामाज्य अन के लिए सीधे निष्काम व अनासक्त होना तो संभव नहीं है।

उत्तर सबसे पहले तो अनासक्ति का अर्थ समझ लेना चाहिए। अनासक्ति घोड़े से अभागे शब्दों में से एक है कि जिसका अर्थ नहीं समझा जा सका है। अना-

सक्षित से लोग समझ लेते हैं—विरक्षित। अनासक्षित विरक्षित नहीं है। विरक्षित भी एक प्रकार की आसक्षित है। विरक्षित विपरीत आसक्षित का नाम है। कोई आदमी काम से आसक्षत है, वासना में आसक्षत है। कोई आदमी काम के विपरीत ब्रह्मचर्य में आसक्षत है। कोई आदमी धन में आसक्षत है, कोई आदमी धन के इयुग में आसक्षत है। कोई आदमी शरीर के श्रृङ्गार में आसक्षत है, कोई आदमी शरीर को कुरुप करने से आसक्षत है। लेकिन, शरीर को कुरुप करने वाला विरक्षित मालूम पड़ेगा, धन का त्याग करने वाला विरक्षित मालूम पड़ेगा, क्योंकि उम्रकी आसक्षितया 'निगेटिव' है, नकारात्मक है।

आसक्षित के दो स्वप्न हैं—किसी के पक्ष में आसक्षत होना, या किसी के विपक्ष में आसक्षत होना। जो विपक्ष में आसक्षत है वह भी उतना ही आसक्षत है जितना पक्ष में आसक्षत है। अनासक्षित, इन दोनों तरह की आसक्षितयों से मुक्ति का नाम है। अनासक्षित का नाम ह, आसक्षत भी नहीं, विरक्षित भी नहीं। अनासक्षित दोनों का अतिक्रमण है। इसलिए, मैंने कहा कि अनासक्षित थोड़े से अभागे शब्दों में एक है। वह विरक्षित के माध्यम पर्यायवाची हो गया है।

आध्यात्मिक जगत में ऐसे बहुत-से शब्द हैं जो इसी भाँति भ्रान्त हा गये हैं। 'वीतराग' ऐसा ही शब्द है। वीतराग, विराग का पर्यायवाची बन गया है। वीतराग का अर्थ है, राग और विराग दोनों के पार। महावीर की धारा में जो वीतराग का अर्थ है, कृष्ण की धारा में वह अनासक्षित का अर्थ है। अनासक्षित और वीतरागता पर्यायवाची है। लेकिन महावीर वीतराग होगे राग और विराग दानों का छोड़कर, और कृष्ण अनासक्षत हुए दानों को स्वीकार करके—उतना फर्क है। और ये दो ही ढांग हैं। इसलिए, वीतराग और अनासक्षित की परिणति नो एक है, मार्ग भिन्न है। वीतराग का मतलब है, जिसने राग भी छोड़ा विराग भी छोड़ा। लेकिन, छोड़ने पर जोर है। अनासक्षत का अर्थ है, जिसने राग भी स्वीकारा, विराग भी स्वीकारा। स्वीकार पर जोर है। इसलिए, बहुत गहरे में वीतराग शब्द निषेधात्मक है और अनासक्षित शब्द विषेधात्मक है, वह 'पोजेटिव' है।

अनासक्षित चित्त वह है जिसने सब स्वीकार किया। यह बड़े मजे की बात है कि जिसने सब स्वीकार किया, जैसा है बैसे के लिए ही राजी हो गया, ऐसे व्यक्ति के चित्त पर किसी चीज की कोई रेखा नहीं छूटती। हम किसी चीज को जोर से पकड़े तो ही रेखा छूटती है चित्त पर। किसी चीज को जोर से छोड़ें तो भी रेखा छूटती है चित्त पर। लेकिन, न हम पकड़े, न हम छोड़ें तब हम दर्पण की भाँति हो जावे हैं, कोई रेखा नहीं छूटती है। चित्त रेखाकित न हो, चित्त पर कोई रेखा

न सूटे, ऐसे वित का नाम अनासक्त है। यह अनासक्ति, पूछा है, कौसे साधारण जन को आये?

सभी जन साधारण हैं जब तक अनासक्ति न आ जाय। इसलिए ऐमा सवाल नहीं है कि साधारण जन को कौसे आये? अनासक्ति आ जाय तभी असाधारणता में फर्ज़न होती है। इसलिए, ऐसा नहीं है कि साधारण जन के लिए अनासक्ति का और रास्ता होगा, असाधारण जन के लिए और हींगा। क्योंकि, असाधारण जीवन का एक ही अर्थ है कि वह अनासक्ति को उपलब्ध हुआ है। यह अनासक्ति कैसे उपलब्ध हो? इसको समझने के पहले जरा इसे समझ ले कि यह हमसे चूक कैसे गयी है? अनासक्ति, कृष्ण की दृष्टि से स्वभाव है। इसलिए, ऐसा नहीं है कि कुछ कि हमे कुछ साधना है अनासक्ति में, इतना ही जानना है कि स्वभाव से हम चूक कैसे गये हैं, हमने अनासक्ति खोयी कैसे? कोई व्यक्ति मेरे पास आया और उसने पूछा, मैं ईश्वर को खोजता हूँ। तो, मैंने उससे पूछा कि तुमने खोया कब? अगर खोया हो तो खोज सकते हो। उसने कहा, नहीं मैंने खोया तो कभी भी नहीं। मैंने कहा कि फिर खोजना पागलपन है। जिसे खोया ही न हो उसे खोजा कैसे जा सकता है? इसलिए, असली सवाल मैंने उस व्यक्ति को कहा कि यह नहीं है कि तुम ईश्वर कैसे खोजो, असली सवाल यह है कि तुम यह खोजो की तुमने ईश्वर को खोया भी है? और, अगर तुम्हे यह पता चल जाय कि मैंने खोया ही नहीं तो खोज पूरी हो जाती है।

अनासक्ति स्वभाव है। यह बहुत भजे की बात है। क्योंकि, अनासक्ति हमारा स्वभाव है, इसलिए, हम आसक्त भी हो सकते हैं और विरक्त भी हो सकते हैं। अगर आसक्ति हमारा स्वभाव हो तो विरक्त हम कभी भी नहीं हो सकते। अगर विरक्ति हमारा स्वभाव हो तो हम आमने कभी भी नहीं हो सकते। एक वृक्ष की शाखा है। हवा चलती है पश्चिम की तरफ तो शाखा पश्चिम में झुक जाती है। हवा चलती है पूरब की तरफ तो शाखा पूरब में झुक जाती है। वह इसलिए झुक जाती है कि शाखा न पूरब में है, न पश्चिम में है। वह बीच में है। हवाएं जिस तरफ चलती है वह उसी तरफ झुक जाती है। पानी को हम गरम करते हैं, गरम हो जाता है, ठण्डा करते हैं तो ठण्डा ही जाता है। क्योंकि, पानी खुद न ठण्डा है न गरम। अगर पानी गरम ही हो तो फिर ठण्डा न हो सकेगा। ठण्डा ही हो तो फिर गरम न हो सकेगा। पानी का स्वभाव ठण्डे और गरम के पार है। इसलिए, दोनों तरफ याका सम्भव है। हम विरक्त लोगों को देखते हैं और लोगों को जोर से चीजों की पकड़े देखते हैं। इसका अर्थ इतना ही है कि हमारा स्वभाव दोनों नहीं है। इसलिए, हम जिस तरफ जाना चाहें जा सकते हैं। हमारा स्वभाव दोनों

का अतिक्रमण करता है, इसलिए हम दोनों तरफ खुक सकते हैं। हम आख खोल सकते हैं, आख बन्द कर सकते हैं, क्योंकि आख का स्वभाव न खुला होना है, न बन्द होना है। अगर आंख का स्वभाव खुला होना हो तो किर बन्द कैसे करियेगा? अगर आंख का स्वभाव बन्द होना हो तो खोलियेगा कैसे? आख खुलती और बन्द होती है, क्योंकि आख खुलने और बन्द होने, दोनों का अतिक्रमण करती है। दोनों के पार है। खुलना और बन्द होना बाहरी घटनाएँ हैं। आख भीतर न खुली है, न बन्द है। सिर्फ पलकें ही झपकती और खुलती हैं।

बहुत गहरे में चित हमारा, चेतना हमारी अनासक्त है, सिर्फ पलकें ही अनासक्त होती हैं और विरक्त होती है। तो, पहली बात जो समझ लेनी जरूरी है वह यह कि स्वभाव हमारा अनासक्ति है। और, यह भी ध्यान रहे कि जो हमारा स्वभाव है उसे ही पाया जा सकता है। जो हमारा स्वभाव नहीं है उसे हम कभी न पा सकेंगे। सिर्फ हम वही पा सकते हैं जो बहुत गहरे में हम हैं ही। एक बीज फूल बन जाता है, क्योंकि गहरे में वह फूल है ही। एक पत्थर फूल नहीं बन पाता, क्योंकि गहरे को छोड़ दे, उथले में भी वह फूल नहीं है। पत्थर को बो दे तो पत्थर ही रह जाता है। बहुत गहरे में वह पत्थर ही है। बीज को बो दे, देखने में दोनों एक-से मालूम पड़ते थे, पत्थर की ककड़ी और बीज। लेकिन, जब बोया तब पलक चलता है कि बीज पत्थर नहीं था, वह फूल हो गया। अब हम कह सकते हैं कि बीज फूल था ही, इसीलिए फूल हो गया। अगर न होता तो नहीं हो सकता था। जीवन के गहनतम सूत्रों में से एक है कि हम वही हो सकते हैं, जो हम हैं ही। किसी गहरे तल पर है, किर हम परिधि पर भी प्रकट हो जायेंगे। अनासक्ति हमारा स्वभाव है। इसीलिए, अनासक्ति पायी जा सकती है। जो बीज हैं वह फल बन सकता है।

अनासक्ति सभी का स्वभाव है। ऐसा नहीं कि किसी का है और किसी का नहीं। जहा भी चेतना है, चेतना सदा अनासक्त है। हा, चेतना का व्यवहार, पलक के झपने और बन्द होने जैसा आसक्त हो जाना है या विरक्त हो जाना है। यह दूसरी बात ठीक से समझ लें। चेतना अनासक्त है, व्यवहार आसक्त या विरक्त है। अगर मुझे निपट अकेजा छोड़ दिया जाय जहाँ सिर्फ भेरी चेतना ही है तो उस क्षण में मैं आसक्त हूँ या विरक्त? नहीं, उस क्षण में मैं कोई भी नहीं हूँ। आसक्ति और विरक्ति सदा दूसरे के सम्बन्ध में पैदा होती है। अगर मैं कहूँ कि फलां बादमी आसक्त हैं तो आप तत्काल पूछेंगे कि किस चीज में? क्योंकि, चिना किसी चीज के आसक्त कैसे होगा? अगर मैं कहूँ कि फलां बादमी विरक्त हैं

सो आप पूछेंगे, किस सम्बन्ध में ? क्योंकि, विरक्ति का कोई अर्थ नहीं । विरक्ति और आसक्ति दोनों बस्तुओं, या व्यक्तियों, या 'पर' से हमारे सम्बन्ध हैं । 'रिलेशनशिप्स' हैं । वह हमारा 'व्यवहार है' । वह हम नहीं है । यह दूसरी बात ठीक से ध्यान में रख लें कि आसक्त या विरक्त हमारा व्यवहार है । और इसलिए, यह भी सुविधापूर्ण है कि जिसके प्रति आज हम आसक्त हैं, कल विरक्त हो सकते हैं । जिसके प्रति आज विरक्त है, कल आसक्त हो सकते हैं । और, ऐसा भी नहीं है कि कल ही हो, कभी-कभी तो ऐसा होता है कि एक ही काण में, एक ही आदमी के किसी हिस्से के प्रति हम आसक्त हैं और किसी हिस्से के प्रति विरक्त होते हैं । एक ही चीज के प्रति भी हमारी दुविधा होती है, दून्ह होता है । कहीं से वह पकड़ने योग्य लगती है, कहीं से वह छोड़ने योग्य लगती है । लेकिन, एक बात तथ है कि विरक्ति और आसक्ति हमारा व्यवहार है, हमारा स्वभाव नहीं है । व्यवहार का मतलब है जिसमें 'पर' अनिवार्य हो । जो अकेले में न हो सकेगा । और, स्वभाव का मतलब है, जो निपट अकेले में ही है । अगर मुझे बिल्कुल ही अकेला छोड़ दिया जाय मारी बस्तुओं से, मारे लोगों से, सारे विचारों से, मैं निपट अपने अकेलेपन में, टोटन् 'लोनलीनेस' में रह जाऊं तो वहाँ आसक्त और विरक्त ये दोनों बातें असगत होगी । वहाँ मैं कोई भी नहीं होऊँगा । क्योंकि, मैं सारे-के-सारे मम्बन्धों के सूचक शब्द हूँ । वहा असग होऊँगा या वहा मैं अनासक्त होऊँगा । यह मैं ममझाने के लिए कह रहा हूँ कि आप इन शब्दों की पूरी अर्थवत्ता को समझ ले तो फिर बहुत कठिन। इसी नहीं रहेगी ।

आसक्ति-विरक्ति सम्बन्ध है, पर अपेक्षित । जो 'दी अदर' है वह अनिवार्य है । इसीलिए, आसक्ति भी गुणामी है और विरक्ति भी गुलामी है । दासता है । क्योंकि, जो दूसरे के बिना न हो सके उसमें हम कभी स्वतत्र नहीं हो सकते । इसलिए, आसक्त भी एक तरह का गुलाम होता है और विरक्त भी दूसरे तरह का गुलाम होता है । आपके पास तिजोरी न हो तो मुश्किल में पड़ जाते हैं, विरक्ति के कमरे में रात तिजोरी रख दो तो मुश्किल में पड़ जाता है । लेकिन, तिजोरी से दोनों का बड़ा गहरा सम्बन्ध है । आसक्ति के पास स्त्री न हो, पुरुष न हो तो मुश्किल में पड़ जाता है । विरक्ति के कमरे में रात स्त्री को ढहरा दो, पुरुष को ढहरा दो तो उतनी ही मुश्किल में पड़ जाता है । दोनों गुलाम हैं । और, दोनों दूसरे पर निर्भर हैं । दूसरे के होने या न होने पर इससे कहाँ नहीं पड़ता । लेकिन, दूसरा उनके होने से अनिवार्य है । वह दूसरे के बिना अपने को नहीं सोच पा सकता । लोभी धन के बिना नहीं सोच पाता । त्यागी धन के साथ नहीं सोच पाता । लेकिन, दोनों के केन्द्र पर धन कहीं वह सदृ-

मौजूद रहता है। हमारा व्यवहार ठीक से समझ लें तो फिर व्यवहार में परिवर्तन से कोई अन्तर नहीं पड़ता कि आसक्त विरक्त हो जाते हैं या विरक्त आसक्त हो जाते हैं। जो लोग धने आसक्त में सड़े हैं, जब वे मुझे मिलते हैं तो सदा रेते मिलते हैं कि हम बहुत बन्धन में पड़े हैं। इससे छुटकारे का उपाय क्या है? जो विरक्त है, जब वे मुझे मिलते हैं तो कहते हैं, कही हमने भूल तो नहीं कर दी। हम जिन्दगी से भाग गये। कही ऐसा तो नहीं है कि जिन्दगी में कुछ लोगों को मिल रहा हो और वह हमें नहीं मिल रहा। विरक्त को सदा स्थाल बना रहता है कि पता नहीं, आसक्त तो कुछ नहीं लूट रहा। आसक्त को सदा स्थाल बना रहता है कि कही विरक्त तो कुछ नहीं लूट रहा। पता नहीं, विरक्त को क्या मिल रहा है जो आसक्त मोचता रहता है कि मुझे नहीं मिल रहा। दोनों की स्थितिया भर अलग है, परिस्थितिया भर अलग है, मनस्थितिया अलग नहीं है। दोनों मनस्थितियों पर निर्भर है।

पर-निर्भरता से न कोई स्वतन्त्रता है, न कोई सत्य है। पर-निर्भरता से न कोई आनन्द है, न कोई मुक्ति है। 'पर' ही बन्धन है। लेकिन, विरक्त कहता है हम 'पर' को छोड़कर भाग जाते हैं। लेकिन, उसे पता नहीं कि जिसे वह छोड़कर भागता है उससे उसके सबध नहीं टूट गये, सिफ भागने के सम्बन्ध हो जाते हैं। और, जिसे हम छोड़कर भागते हैं वह हमारा पीछा करता है। वह नहीं करता पीछा, लेकिन हम छोड़कर भागे हैं उस कारण ही हम उसमे भयभीत हैं, हम उससे डर हैं, हम उससे चिन्तित हैं। वह हमारी वृत्ति हमारा पीछा करती है। और फिर, 'पर' को छोड़कर जाइयेगा कहा? सब जगह 'पर' मौजूद है, सिर्फ एक जगह को छोड़कर। स्वयं के भीतर को छोड़कर और तो सब जगह 'पर' मौजूद है। घर छोड़कर जाइयेगा तो आश्रम मौजूद है। पत्नी-पति को छोड़कर जाइएगा तो शिष्य-शिष्याएं मौजूद हैं। गाव को छोड़कर जाइयेगा तो जगल मौजूद है। महलों को छोड़कर जाइयेगा तो क्षोपडिया मौजूद है। कीमती वस्त्र छोड़कर जाइयेगा तो लगोटिया मौजूद है, नगापन मौजूद है। वह सब मौजूद है। 'पर' को छोड़कर इस जगत में भागा नहीं जा सकता, क्योंकि जगत ही पर है। भागियेगा कहाँ? जगत तो होगा। जहा भी जाइयेगा वहा जगत होगा। इसलिए, जगत को छोड़कर नहीं भागा जा सकता और पर को भी छोड़कर नहीं भागा जा सकता, पर तो रहेगा ही। हा, नये रूपों में प्रकट होगा। नये-नये रूप लेगा। 'पर' सिर्फ स्वयं के गहरे केन्द्र में प्रवेश नहीं कर सकता, क्योंकि स्वयं के बहुत गहरे केन्द्र पर 'स्व' भी मिट जाता है। 'मैं' भी मिट जाता है, इसलिए पर के होने का उपाय मिट जाता है। इसको अब ऐसा समझिये कि जब तक आप हैं, तब तक पर से नहीं बच सकते।

अभी मैंने कहा कि जब तक आप जगत में हैं, कही भी भाविये, पर होगा। अब मैं दूसरी बात आपसे कहता हूँ कि जब तक आप हैं, अगर आख भी बन्द कर लेजिये और जगत न हो तो भी पर होगा। हाँ, बन्द आख में होगा। सफ्ने में होगा, कामना में होगा, कल्पना में होगा, वासना में होगा, लेकिन पर होगा। जब तक आप हैं तब तक 'पर' भी होगा।

स्वभाव का मतलब है, जहा 'स्व' भी मिट जाता है। इसलिए, स्वभाव भी उन अभ्यागे शब्दों में एक है, क्योंकि उसका मतलब होता है, स्वयं का भाव। लेकिन, जहाँ स्वभाव मुरू होता है वहा स्व मिट जाता है। स्वभाव का स्वयं से कोई भी सम्बन्ध नहीं है। स्वभाव का मतलब ही है कि जो हमसे होने के पहले था। हमसे होने के बाद होगा। हम हैं तब भी हैं, हम नहीं हैं तब भी हैं। अगर मैं बिल्कुल भी मिट जाऊँ, मेरा मैं बिल्कुल भी मिट जाय तब भी जो शेष रह जायेगा वह स्वभाव है। स्वभाव में स्व शब्द खतरनाक है। उससे खतरा पौदा होता है, उससे लगता है कि स्वयं का होना। नहीं, स्वभाव का मतलब है 'द नेचर', स्वभाव का मतलब है प्रकृति, स्वभाव का मतलब है जो हमारे बिना भी है। जब आप रात सो गये होते हैं तो स्व नहीं होता। लेकिन, स्वभाव होता है। जब गहरी प्रसुप्ति में होते हैं तब स्व नहीं होता, लेकिन स्वभाव होता है। जब एक आदमी मूर्छित पड़ा है, गहरी मूर्छा में तब स्व नहीं होता, लेकिन स्वभाव होता है। सुषुप्ति और समाधि में इतना ही फर्क है कि सुषुप्ति में मूर्छा के कारण स्व नहीं होता, समाधि में अमूर्छा के कारण, जागरण के कारण, ज्ञान के कारण स्व नहीं होता।

तो जब तक जगत है, तब तक पर है और जब तक मैं हूँ तब तक पर है। अब इसे हम और तरह से भी ले ले। जब तक मैं हूँ तभी तक जो मुझे दिलाई पड़ रहा है वह जगत है। जगत मेरे मैं के बिन्दु से देखा गया कोण, मेरे मैं के बिन्दु से देखा गया सत्य है। अगर मेरा मैं मिट जाय तो पर कोई भी नहीं है। फिर, मैं किससे बचूगा और किससे बघवा। फिर मैं ही हूँ। तो अनासक्ति स्वभाव है। कैसे चले इसकी तरफ? जो बड़ी-से-बड़ी भूल हुई है वह यह है कि कोई विरक्ति की तरफ चल पड़े अनासक्ति को पाने के लिए। स्थाल रहे, आसक्ति उतना बड़ा खतरा नहीं है अनासक्ति के मार्ग पर; क्योंकि आसक्ति का चेहरा साफ है। कोई भूल नहीं करेगा आसक्ति को अनासक्ति समझने की। कैसे करेगा? कोई भूल नहीं करेगा धन को पकड़ने को अनासक्ति समझने की, लेकिन धन को छोड़ने को अनासक्ति समझने की भूल होती रही है, होती है, हो सकती है। इसलिए, बड़ा खतरा, अनासक्ति की याचा में आसक्ति नहीं है, बड़ा खतरा विरक्ति है। विरक्ति के बेहरे पर बुरा है। विरक्ति को जो न पहचान पाये वह अनासक्ति के नाम पर विरक्ति

का स्टोरा सिक्का लेकर बूमता रहेगा। इसलिए, अनासक्ति की यात्रा में विरक्ति से सावधान रखने की पहली ज़रूरत है। विरक्ति भी आसक्ति है, इतना समझते ही सावधानी उत्पन्न हो जाती है।

द्वितीय बात 'पर' कहीं भी हम जायेंगे रहेगा, इसलिए हम उसी जगह चले जहा 'पर' नहीं रहेगा। हम भीतर चलें। हम स्वयं में चले, हम अपने एकान्त में चलें, हम अपने अकेलेपन में उतरे। लेकिन, इसका क्या मतलब है? क्या मैं बाहर के जगत से आख बन्द कर लूँ तो एकान्त में उत्तर जाऊँगा? अकेला हो जाऊँगा? आख तो हम रोज बन्द करते हैं, लेकिन एकान्त नहीं होता। क्योंकि, आख बन्द करते ही वे चित्र, वे प्रतिमाएं, वे प्रतीक, वे 'इमेजेस' जो हमने बाहर से ग्रहण की थीं, भीतर से उठनी शुरू हो जाती हैं। विचार आते हैं, कल्पनाएं आती हैं, स्वप्न आते हैं, दिवास्वप्न आते हैं और फिर हम जगत को ही देखते रहते हैं। हा, अब जो जगत होता है वह कल्पित होता है। जो बाहर आख के था वह वास्तविक था। अब उसकी सिर्फ छायाए होती है। अब सिर्फ फ़िल्म होती है उसकी। अब वह खुद नहीं होता। हम अपनी आखों और अपने मन का उपयोग बिल्कुल 'भूवी कैमरे' की तरह कर रहे हैं। जो देखते हैं, उसे उत्तराते चले जाते हैं। फिर, आखे बन्द करके उसको पर्दे पर देखते रहते हैं मन के। यह पर की छाया है। यह भी हट जाय तो हम स्वयं में उत्तरते हैं। यह हट सकती है, इसमें कोई कठिनाई नहीं है। हम इसे चलाते हैं डमीलिए यह चलती है। हम इसे चलाने में न रह जाय तो ये प्रतिमाएं तन्काल गिर जाती हैं, इनका कोई अर्थ नहीं रह जाता। हमारा रस ही उन प्रतिमाओं के चलने का मूल आधार है। ध्यान रहे, रस ही नहीं, विरस भी। जिसे हम याद करना चाहते हैं वह भी याद आता है और उसमें भी ज्यादा वह याद आना है जिसे हम भूलना चाहते हैं। लेकिन, जिसे न हम भूलना चाहते, जिसे न हम याद करना चाहते हैं वह अचानक गिर जाता है। वह हमारे चित्त से अर्थहीन हो जाता है। वह पर्दे से हट जाता है। तो, इस भीतर चलती हुई फ़िल्म को अगर कोई साक्षी भाव से देखे, सिर्फ देखें न रस ले, न विरस ले, न आसक्त हो, न विरस हो इस भीतर की फ़िल्म पर, तो थोड़े ही दिन में साक्षी का बोध इस फ़िल्म को नियता जाता है। और एक साल आता है जब निपट चेतना रह जाती है। और कोई 'ओब्जेक्ट,' कोई विषय नहीं होता, निविषय चेतना रह जाती है। इस निविषय चेतना में जिसका अनुभव होता है वह अनासक्ति है। इस निविषय चेतना से जो व्यवहार निकलता है उसका नाम अनासक्ति योग है। निश्चित ही अब व्यवहार बिल्कुल दूसरा होता। जिस व्यक्ति ने अपने इस स्वयाद की अनासक्ति को पहचाना, जिसने यात्रा कि शुद्धी

बंध जाती है, खुल जाती है, लेकिन मुट्ठी के दोनों काम नहीं हैं। इसलिए, दोनों काम कर पाती है। अब ऐसा व्यक्ति, बाहर के जगत में लौटकर, भीतर से बाहर आकर वही नहीं होगा जो बाहर से भीतर जाते बक्त था। इसने अपने चेतना के दर्पण को पहचाना है, अब यह चित्त का उपयोग कैमरे की तरह नहीं; दर्पण की तरह करेगा। और, अब इसके चित्त का सम्बन्ध नहीं पैदा होगा, सम्बन्ध बनेगा, लेकिन सम्बन्ध पैदा नहीं होगा। सम्बन्ध होगा, लेकिन असमाता होगी। यह प्रेम भी करेगा ऐसे ही जैसे पानी पर लकीर खीची जाती है। मह लड़ेगा भी ऐसे ही जैसे पानी पर लकीर खीची जाती है। इसका दर्पण, लड़ने को भी दिखायेगा ॥ और प्रेम को भी दिखायेगा। और, वह दोनों के बाहर—पूरे समय दोनों के बाहर चलता रहेगा।

इस व्यक्ति के व्यवहार की स्थिति अभिनय की हो जायेगी, 'एक्टिंग' की हो जायेगी। यह व्यक्ति अब कर्ता नहीं, अभिनेता हो जायेगा। कृष्ण अगर कुछ है तो अभिनेता है, और उनसे कुशल अभिनेता पृथ्वी पर दूसरा नहीं हुआ है। उन्होंने इस पूरे जगत को मच बना लिया है। बाकी अभिनेता एक छोटेसे मच को मच बनाते हैं। उन्होंने पूरी पृथ्वी को मच बना लिया। इससे क्या फर्क पड़ता है? दस-पाच तरल रखकर हम एक मच बनाते हैं। किर, उस पर अभिनय चलता है। यह पूरी पृथ्वी मच क्यों नहीं हो सकती? इस पूरी पृथ्वी पर अभिनय क्यों नहीं चल सकता? और अभिनेता जो है, उसे न तो आमू बाधते हैं, न उसे मुस्कुराहट बाधती है। जब वह रोता है तब भी रोता नहीं, जब हमता है तब भी हसता नहीं, जब प्रेम करता है तब भी प्रेम करता नहीं, जब लड़ता है तब भी लड़ता नहीं। उसकी मित्रता मित्रता नहीं, उसकी शकुता शकुता नहीं। ऐसे व्यक्ति का जीवन एक क्रिमज्ज बन जाता है। हम त्रिमूर्ति नहीं हैं, हमारा तीसरा जो कोण है, वह जो 'अङ्ग एगल' है वह अध्येरे में डबा हुआ है। हमारे सिर्फ दो कोण हमें दिखायी पड़ते हैं। आसक्ति, विरक्ति। इन दोनों को जोड़ने वाला द्रायगल का तीसरा हिस्सा अध्येरे में दबा है। अनासक्त व्यक्ति का वह भी प्रकाश में आ जाता है। उसकी पूरी जिन्दगी ऐसी है कि वह दोनों कोणों पर व्यवहार करता है। लेकिन, रहता सदा अपने तीसरे कोण पर है। जब भी दूसरों से सम्बन्ध होता है तो यह आसक्त दिखायी पड़ता है, विरक्त दिखायी पड़ता है; लेकिन वह सिर्फ दिखायी पड़ता है, वह सिर्फ 'एथियरेस' है। रहता सदा अपने तीसरे कोण पर है। इस तीसरे कोण पर, इस, 'अङ्ग एगल' पर हो जाने का बास बनासक्त है। हम सबके थास तीनों कोण हैं। लेकिन, दो कोण हमारी आँखों के सामने और एक कोण हमारी आँख के पीछे है। दो कोण स्पष्ट हैं। याथे और दायें सक्त हैं, रात और विराम आँख

है। इधर कुआं इधर सार्द साफ है। लेकिन, तीसरा कोण जो अम्बेरे में डूबा है यह तो जब हम अपने भीतर उतरेगे एकान्त में, तभी हमें स्पष्ट होगा, तभी रोशनी वहा पहुँचेगी। जिसने अपने तीसरे कोण को पा लिया उसने कृष्ण को पा लिया, उसने बुद्ध को पा लिया, उसने महावीर को पा लिया, उसको कुछ पाने को चाचता नहीं। क्योंकि, एक बार उसे यह पता हो गया कि आसक्त होते हुए मैं अनासक्त होता हूँ। विरक्त होते हुए मैं अनासक्त होता हूँ, तब फिर आसक्त और विरक्त खेल हो गये।

एक विचारक ने एक किताब लिखी है, जिसका नाम है—‘गेम डैट पिपुल प्ले’—खेल, जो लोग खेलते हैं। उस बड़ी किताब में उसने सब खेलों की चर्चा की है, केवल वृनियादी खेल की नहीं चर्चा कर पाया। वृनियादी खेल यह है कि अनासक्त रहते हुए आसक्त और विरक्त का जो खेल है वह वृनियादी खेल है, वह ‘अल्टीमेट प्ले’ है। बहुत कम लोग खेल पाते हैं। उसको पता भी नहीं होगा, इसलिये कोई चर्चा नहीं की। अनासक्त भीतर उतरने से उपलब्ध होती है। और भीतर उतरना साक्षी भाव से सम्भव होता है। इसलिए, जीवन के किसी भी कोण से साक्षी होना शुरू हो जाय, आप भीतर पहुँच जायेगे। और जिस दिन आप भीतर पहुँच जायेगे उस दिन आप अनासक्त हो जाते हैं।

**प्रश्न** आशार्थजी, आसक्ति पर आपने अभी प्रकाश डाला। इसी के साथ गीता में कृष्ण ने दो बातें कही हैं। कर्म से सन्यास अर्थात् पूर्ण कर्म से कर्तापन का त्याग, और निष्काम कर्म अर्थात् समस्त बुद्धि से कर्मों का करना। अतएव अनासक्ति, कर्म-सन्यास और निष्काम-कर्म इन तीनों में क्या रिश्ता या भिन्नता है, इस पर और प्रकाश डाले।

उत्तर अनासक्ति योग मूल है। अनासक्ति योग तीसरा कोण है। इस कोण से जीवन के दो कोण निकलेंगे। करते हुए न करना, न करते हुए करना। एक को हम कर्म-सन्यास कहें, एक को हम निष्काम-कर्म कहें। निष्काम-कर्म का बर्थ है करते हुए न करना। करते हुए भी करने की बाबना जहां नहीं है। करते हुए भी करने का आग्रह जहा नहीं है। करते हुए भी न करना आ जाय सो दुःख या पीड़ा वहा नहीं है। करते हुए भी जहा करने का फल न मिले तो कोई विवाद नहीं है। करते हुए भी सब किया हुआ अनकिया हो जाय तो कोई पीड़ा नहीं है। यह निष्काम-कर्म है। इसको बाद में हम थोड़ा और विस्तार से समझेंगे।

न करते हुए भी करते हुए पाना। इसे थोड़ा समझना पड़ेगा। यह और भी कठिन है। जिसको सन्यास कहे कि न करते हुए करते हुए पाना। मैं कुछ भी नहीं

करता, लेकिन आपके द्वार पर भिक्षा तो मांगने आता हूँ, और आपने अगर चोरी की है और चोरी का अन्न खाते हैं तो मुझे भी चोरी का अन्न देते हैं। अगर व्यक्ति सच में सन्यासी है तो वह कहेगा मैं भी चोर हूँ। अगर सच में सन्यासी नहीं है तो वह कहेगा कि मुझे क्या मतलब कि तुम क्या करते हो। मुझे कोई प्रयोजन नहीं। अगर व्यक्ति अठा सन्यासी है तो वह चोर की रोटी खाकर चोर नहीं होता। लेकिन, अगर सच्चा सन्यासी है तो वह कहेगा कि नहीं करता हूँ मैं चोरी, लेकिन मैं भी भागीदार तो हूँ। यह तो मैंने कहा कि भिक्षा मानता है, समझ ले कि भिक्षा भी नहीं मानता। ठीक सन्यासी इस पृथ्वी पर है अगर, और वियतनाम में लोग कट रहे हैं तो वह मानता है कि मैं भी जिम्मेदार हूँ। नहीं करता हुआ भी मैं इसका भागीदार हूँ। इस पृथ्वी पर जो चेतना निर्मित हुई है वह मेरे बिना तो नहीं हो सकती है। मैं भी हूँ। अगर इस गाव में मैं हूँ और इस गाव में हिन्दू-मुस्लिम दग्ध हो जाय, और न मैं हिन्दू हूँ न मैं मुमलमान हूँ, मैं यिर्फ़ सन्यासी हूँ तो भी जिम्मेदार मैं हूँ। जरूर मैंने भी कुछ ऐसा किया होगा जिसने इस झगड़े को बल दिया। या हो मृक्ता हूँ मैंने कुछ भी न किया होगा, मैं खड़ा देखता रहा, मेरा खड़ा होना भी झगड़े के लिए आधार बन सकता है। सन्यास का अर्थ यह है कि न करते हुए भी जानना कि जो भी हा रहा है, चूंकि मैं भी हूँ, उससे बच नहीं सकता। उसमें मैं भी भागीदार हूँ। होउगा ही। क्योंकि, मैं एक हिस्सा हूँ और मैं जो कुछ भी करूँगा उसके विराट फल आयेगे। अगर हिन्दू-मुस्लिम लड़ रहे थे और मैं चुपचाप निकल गया तो कम-से-कम मैं रोक तो सकता ही था। मैंने नहीं रोका, नहीं रोकना भी मेरा कृत्य है। नहीं रोकने की भी जिम्मेदारी मेरी है। आयतौर से लोग जिसे सन्यास ममकर्ते हैं वह सन्यास नहीं है, वह विरक्ति है। कृष्ण जिसे सन्यास कहते हैं, वह बहुत कठिन मामला है। वह अनासक्त व्यक्ति की स्थिति है। वह यह कहता है कि जो मैं नहीं कर रहा हूँ उसके लिए भी मैं जिम्मेवार हूँ, क्योंकि मैं भी हूँ। और चेतना अन्ततः संयुक्त है, इकट्ठी है।

“ सागर में आपने लहरे देखी हैं, लेकिन शायद ही आपको कभी रुप्याल आया हो। लहरे आती हुई मालूम पड़ती हैं, आती नहीं। आप कहेंगे, कैसी बात कर रहे हैं, लहरें बराबर आती हैं। लगता है कि एक लहर मील भर दूर से चली आ रही है। और, आप स्नान भी करते हैं उस लहर में सागर के तट के किनारे बैठकर, तो आप मेरी कैसे मानेंगे कि नहीं आ रही है? लेकिन, जो जानते हैं सागर को वह कहेंगे कि कोई लहर आती नहीं। एक लहर दूसरी लहर को उठाती है। वह मील भर की लहर इस किनारे तक नहीं आती। वह मील भर की लहर जब उठती है तब पहास में गढ़ा पैदा हो जाता है। उस गढ़े की बजह से, अहं

गड़ा खत्म होता है बूसरी लहर पैदा हो जाती है। वह लहर अपने उठने से हजारों लहरों को उठाती है, आसी नहीं। उस लहर के हजारों धबको का कोई धबका सिर्फ आता है। जब आप सागर के किनारे नहाते हैं तो वह मील भर से आती हूई लहर आपके पास नहीं आती। बस, सागर की छाती कप गयी है उसके उठने की बजह से, और कपन आते हैं आपके पास। कपती हूई जो लहर आपको दिखायी पड़ती है वह इतनी 'कटीन्युअस' है कि आप कभी फर्क नहीं कर पाते कि यह लहर सच में आ रही है। लेकिन, अगर इम किनारे आयी हुई लहर से कोई बच्चा ढूबकर भर जाय तो क्या मील भर दूर उसी लहर को जिम्मेदार ठहरा सकेगे कि तू जिम्मेदार है? वह कहेगी कि मैंने डुबाया नहीं। मैं गयी नहीं तट पर कभी। मैं सदा थही हूँ। मील भर का फासला है उस बच्चे के डबने में और मेरे होने में। न, कृष्ण कहते हैं कि अगर वह लहर सन्यासी है तो कहेगी कि मैंने डुबाया। क्योंकि, मैं सागर का हिस्सा हूँ। उस तट पर गयी या नहीं, यह सवाल नहीं है। उस तट पर जो गया है उसमें भी मेरा हाथ है।

इस जगत में कहीं भी कुछ घट रहा है, सन्यासी उसमें अपने को कर्ता मानता है जो उसने कभी किया ही नहीं। यह बड़ा कठिन है। कर्म करते हए अपने को अकर्ता मानना इतना कठिन नहीं है। हालांकि एक ही मिक्के के दो पहलू हैं। लेकिन, सन्यास की यह दृष्टि हमारे स्थान में नहीं है। सन्यास की हमारी कुल इतनी दृष्टि है कि जो छोड़कर चला जाता है। जो कहता है कि अब मैंने छोड़ ही दिया तो मेरी क्या जिम्मेदारी? लेकिन, यह जगत पूरा-का-पूरा मागर की छाती पर उठी हुई लहरों जैसा है। इसमें काई लहर यह नहीं कह सकती कि मैं जिम्मेदार नहीं हूँ जो 'पैटन' बन रहा है उसका। जिन्दगी बड़ी जटिल है, उसमें भी चेतना के सागर में लहरें हैं। मैं एक शब्द बोलता हूँ, मैं कह नहीं रहगा, लेकिन उस शब्द के परिणाम अनन्त काल तक जगत में आते रहेंगे। कौन होगा जिम्मेदार? मैं नहीं बोलता हूँ, चूप खड़ा रह जाता हूँ, लेकिन मेरी चृप्ती के परिणाम इम जगत में अनन्त काल तक प्रभावी होते रहेंगे। कौन होगा जिम्मेदार? हो सकता है कि जिस लहर के धबके से यह किनारे की लहर उठी, वह अब न हो, और बच्चा ढूब कर मरा तो वह लहर कहेगी कि मैं किनारे गयी नहीं। उस लहर को आप किसी अदालत में जिम्मेदार न ठहरा सकेंगे, कोई मुकदमा न चला सकेंगे। लेकिन, कृष्ण की अदालत में वह लहर भी मुकदमे में फस जायेगी। कृष्ण कहेगे कि तेरा होना या न होना दोनों बच्चों में इस विराट जाल को पैदा करता है। इसमें तू भागीदार हैं ही। इसलिए, न करते हुए जानना कि कर रही है। वह एक पहलू है। इसका अर्थ सन्यास है। पेसा बादमी सन्यासी नहीं है जो कहता है कि हमारा क्या जिम्मा?

हिन्दुस्तान में सन्धासी थे, हजारों लाखों की संख्या में। मुल्क गुलाम था। वह सन्धासी कहते, हमें क्या मतलब ? इस मुल्क की गुलामी का हमसे क्या मतलब ? वह तो सन्धासी है। लेकिन, उन लाखों सन्धासियों का यह भाव भी इस मुल्क को गुलाम बनाने में सहयोगी है। जिम्मेदारी उनकी है, वह भाग नहीं सकते। सन्धासी किसी भी जिम्मेदारी से भागेणा नहीं। सन्धासी का मतलब ही यह है कि जो दूसरे की जिम्मेदारी है वह भी अपनी है। वह जो दूसरे का पाप है वह भी अपना है। वह जो दूसरे का पुण्य है वह भी अपना है। क्योंकि, हम अलग कहा है ? अगर दूसरा नहीं है तो किर न करते हुए भी कर्ता हैं। यह बड़े मजे की बात है अगर न करते हुए भी कोई कर्ता हो जाय तो अनासक्त हो जायेगा। क्योंकि, अब तो अपना कर्म और पराया कर्म का भी कोई फासला नहीं रहा। अब मैं किसको छोड़ और किससे भागूँ। अगर मैं चोरी न करूँ तो भी कोई फक्के नहीं पड़ता, जमीन पर चोरी चलती रहेगी। मैं चोरी करूँ तो भी कोई फक्के नहीं पड़ता। तो अब किसको मैं अपना भानू, इसका कोई अर्थ नहीं रहा। अगर सभी कुछ का मैं आगीदार हूँ, सभी पाप मेरे, सभी पुण्य मेरे, सभी युद्ध मेरे, सभी शातिया मेरी तो अब मैं किसको छोड़ और किसको पकड़ूँ। अब पकड़ने न पकड़ने का कोई सवाल न रहा। सभी हाथ मेरे हैं अगर, तो इन दो हाथों को छोड़कर अगर भाग भी जाऊँगा तो क्या फक्के पड़ता है ? और, सभी आँखें अगर मेरी हैं तो मैंने अपनी दो आँखें फोड़ भी ली तो क्या फक्के पड़ता है ? और अगर सभी घर मेरे हैं तो मैं एक घर छोड़कर अगल चला गया तो क्या फक्के पड़ता है ?

सन्धास का अर्थ है कि यह जो कर्म का विराट 'पेटने' है, यह जो जाल है, इसमें हम आगीदार हैं। हम इसके हिस्से हैं। इसलिए, न करते हुए जानना कि मैं कर रहा हूँ। ठीक दूसरा पहलू कृष्ण कहते हैं, करते हुए जानना कि नहीं कर रहा हूँ। अब तो वह भी कठिन मालूम पड़ेगा। इस बात को समझने के बाद वह और भी कठिन हो जायेगा। ऐसे साधारणत वह सरल मालूम पड़ता है। आदमी कहता है कि हम अभिनेता बनकर कर सकते हैं। लेकिन, बड़ी है कठिन आत वह भी। सच तो यह है कि जो अभिनेता होता है वह भी कई बार चूक जाता है और कर्ता हो जाता है। अभिनय करते वक्त भी पच्चीस दफा चूक जाता है। अभिनय जो आदमी करता है, वह अब अपने अभिनय में पूरा लीन होता है तब वह भूल जाता है कि मैं अभिनव कर रहा हूँ। तब तो वह बही हो जाता है जो वह कर रहा है। तब वह आविष्ट हो जाता है। तब अध्यास हो जाता है। इस अध्यास को बोझा समझना बहरी है अभिनेता के। क्योंकि, जब अभिनेता को अध्यास पकड़ जाता हो कि मैं यही हो जाना, तो हम जो भी रहे हैं, हम किर अभिनेता कैसे हो पायें ? याम जी सीढ़ा

खोये तो राम अभिनेता कैसे हो पायेगे ? अगर रामलीला में भी सीता लोती हो और रामलीला में बने राम के भी असली आंसू आ जाते हो—आ जाते हैं कई बार—क्यों न आ जाते होंगे ! जब देखनेवालों के आ जाते हैं, जो कि राम नहीं बने हैं, जब वे रोने लगते हैं तो जो सच में राम बना है उसकी स्थिति तो और जरा गहरे भी है ! अगर उसकी सीता खो जाती है और वह रोने लगता हो और वे आंसू थोड़ी देर के लिए असली आंसू हो जाते हो तो हँरानी नहीं है। अभिनेता भी भूल जाता है उन क्षणों में कि मैं अभिनय कर रहा हूँ, तो हम तो जीवन में हैं। वहाँ यह जानना कि हम अभिनय कर रहे हैं, बड़ी कठिन, बड़ी 'आरडूअम' बात है। लेकिन, जो हम कर रहे हैं अगर उसे हम ठीक से पहचान ले तो तत्काल दिखायी पड़ने लगेगा कि यह हम अभिनय कर रहे हैं। रास्ते पर आप गुजर रहे हैं और किसी ने कहा, कहिये कैसे हैं, और आप कहते हैं, बिल्कुल ठीक, और ख्याल में भी नहीं आता कि क्या आप कह रहे हैं ! एक क्षण वही रुक जाय और गौर से देखें, बिल्कुल ठीक है ? तो, तत्काल पता चलेगा कि जो आपने कहा है वह अभिनय बचन था। एक आदमी मिलता है, उसको आप नमस्कार करते हैं और कहते हैं कि आपको देखकर बड़ा आनन्द हुआ। रुक जाय एक क्षण, पीछे लौटकर देखें, सच में ही आनन्द हुआ है ? तब दिखायी पड़ जायेगा अभिनय कर रहे हैं। जिन्दगी के क्षणों में कभी-कभी जब आप कर्ता होते हैं, एक क्षण रुक जाय और लौटकर पीछे देखे कि जो आप कर रहे हैं, वह है ? किसी से कहते हैं कि मेरे प्रेम का तेरे लिए कोई अन्त नहीं। तेरे बिना मैं जी न मङ्कूगा। लेकिन, कितने प्रेमी मरे हैं ? फिर, लौट कर जरा पीछे देखे। नहीं जी सकते ? और, अभिनय साफ हो जायेगा। जिन्दगी में चारों तरफ भीके खोल लें और रुक जाय। एक क्षण को पीछे देखे और देखे कि आप जो कर रहे हैं, जो कह रहे हैं, वह क्या है ? अभिनय आप तभी समझ पायेगे जब अभिनय दिखायी पड़ने लगे।

मैं नमरुद्धीन की कहानी निरन्तर कहता रहता हूँ। एक सञ्चाट की पत्नी से उसका प्रेम है। रात चार बजे वह विदा हो रहा है और दूसरे गांव आ रहा है। तो, उससे कहता है कि तेरे बिना मैं कैसे रह सकूगा ? एक पल बिताना मुश्किल हो जायेगा। तुझसे ज्यादा सुन्दर, तुझसे ज्यादा प्रेमी कोई भी नहीं है। वह स्त्री उसकी यह बाते सुनकर रोने लगी है। नमरुद्धीन ने लौट कर देखा, उसने कहा कि माफ कर, ये बाते मैंने दूसरी स्त्रियों से भी कही हैं। उनसे भी मैंने यही कहा है कि तेरे बिना पल भर न रह सकूगा; लेकिन मैं हूँ और मैं रहूगा, क्योंकि कल मुझे फिर किसी स्त्री से कहने का भौमक

आ सकता है। यह मैंने भी सभी स्थिरों से कहा है कि तुमसे ज्यादा सुन्दर कोई भी नहीं है। वह स्त्री बहुत नाराज हो जाती है। वह बहुत दुखी हो जाती है। नसरहीन कहता है, मैं तो सिर्फ भजाक करता हूँ। वह फिर खुश हो जाती है।

यह जो आदमी है नसरहीन, यह आदमी समझ सकता है कि जिन्दगी अभिनय है। यह आदमी पहचान सकता है कि जिन्दगी अभिनय है, लेकिन इस स्त्री को पहचानना बड़ा मुश्किल पड़ जायेगा कि जिन्दगी अभिनय है। ऐसा नहीं है कि अभिनय होने से जिन्दगी बड़ी कुशल हो जाती है, इसलिए कृष्ण कहते हैं योग तो कर्म की कुशलता है। असल में जब जिन्दगी अभिनय हो जाती है तो इश्वर चला जाता है, पीछा चली जाती है, काटा चला जाता है, फ़ल ही रह जाते हैं। जब अभिनय ही करना है तो प्रेम का अभिभव क्या नहीं किया जा सकता है? फिर, क्रोध के अभिनय का क्या प्रयोजन है? जब सपना ही देखना है तो दीनता, दिनदिता का क्यों देखना, मन्नाट होने का देखा जा सकता है। अपने कृत्यों को ज्ञाक-ज्ञाकर देखने से धीरे-धीरे पता चलता है कि मैं अभिनय कर रहा हूँ। पिता का अभिनय कर रहा हूँ, बेटे का अभिनय कर रहा हूँ, मा का अभिनय कर रहा हूँ, पत्नी का अभिनय कर रहा हूँ, पति का अभिनय कर रहा हूँ। प्रेमी का अभिनय कर रहा हूँ, मित्र का अभिनय कर रहा हूँ। हमी दिलायी पड़ना चाहिए। आप एकएक कृत्य को 'एटामिकलों', एक-एक कृत्य की अणु में पकड़ लें और देखे कि क्या हो रहा है, और आप बहुत हसेंगे। हो सकता है, बाहर आमूर गिर रहे हो और भीतर हसी आनी शुरू हो जाय कि यह मैं क्या कर रहा हूँ। हो सकता है, बाहर कुछ और हो रहा है, भीतर कुछ और शुरू हो जाय। तत्काल आप इस स्थिति को समझ पाने में समर्थ होते चले जायेंगे। जैसे-जैसे यह साफ होगा, वैसे-वैसे जिन्दगी अभिनय हो जायेगी।

एक जेन फ़कीर मर रहा है। मरते वक्त उसने मिठो से पूछा कि मुझे जरा कुछ बताओ। क्योंकि, मरे तो बहुत लोग हैं, मैं भी मरना चाहता हूँ; लेकिन कोई नये दृश्य से मरें, कब तक पुराने दृश्य से मरते रहेंगे? उन्होंने कहा, आप कैसी बातें कर रहे हैं, मरना कोई भजाक है? उस फ़कीर ने कहा, तुमने कभी किसी आदमी को चलते-चलते मरते हुए सुना है? चल रहा हो और मर याहो। लोगों ने कहा, ऐसा तो सुना नहीं, फिर भी एक बूढ़े ने कहा कि ऐसी एक कहानी मैंने पढ़ी है कि एक दफ़ा एक फ़कीर चलता हुआ मर याहा। उस मरने वाले फ़कीर ने कहा कि फ़कीर ही चलते हुए मर सकता है। मर याहा होया। छोड़ो इस दृश्य को। तुमने

कभी किसी को खड़े-खड़े मरते हुए सुना है ? किसी ने कहा, हाँ मुझे ऐसा पता है कि एक आदमी एक बार खड़े-खड़े मर गया था । तो, उस फकीर ने कहा कि जो ढग से जिन्दा रहा हो वह ढग से मरता है, मर सकता है । अच्छा, तुमने कभी यह सुना है कि कोई आदमी शीर्षसिन करते हुए मर गया हो ? उन्होंने कहा, न सुना, न सोच सकते हैं । शीर्षसिन करते कोई कैसे मरेगा ? तो, फकीर ने कहा कि फिर यह ढग अपने लिए ठीक रहेगा । वह शीर्षसिन लगाकर खड़ा हो गया और मर गया । अब बड़ी मुसीबत हुई उस मनूष्य की । सब तरफ से जांच-पड़ताल की गयी उसकी; पाया कि न सास का कोई पता है, न घड़कन का कोई पता है । वह मरही गया, लेकिन शीर्षसिन कर रहा हो मुर्दा, तो कौन उतारे ? फिर, पीछे कोई क्षमट भी खड़ा हो । तब किसी ने कहा, इसकी बहन भी साथी है और वह पास की एक 'मीनेस्ट्री' में रहती है । जब भी यह कोई उपद्रव करता था तो उसको लोग बुलाकर लाते थे इसको ठीक करवाने के लिए । तो, उसको बुला लिया जाय । वह बड़ी बहन कोई नब्बे वर्ष की चूढ़ी औरत थी । वह आयी । उसने अपना डण्डा जोर से बजाया और कहा कि जिन्दगी भर मजाक की, अब मरते बस्त भी छोड़ते नहीं हो ? ढग से मरो, जैसा कि सदा लोग मरते रहे हैं । वह आदमी नीचे उतर कर बैठ गया और उसने कहा कि भई, नाराज मत होओ, हम ढग से भरे जाते हैं, हमें क्या फक्त पड़ता है । वह आदमी बैठ गया और मर गया । उसकी बहन ने लौट कर भी नहीं देखा उसे फिर । वह डण्डा लेकर बापस चली गयी ।

अब यह जो आदमी है, अगर मृत्यु के क्षण में अभिनय कर सकता है तो इसकी पूरी जिन्दगी एक अभिनेता की जिन्दगी है । इसको मैं कहूँगा, यह निष्काम कर्म है । तब, सब खेल हो जाता है । तब, जिन्दगी एक खेल है । तब, हम सारी चीजों को खेल की तरह ले सकते हैं । लेकिन, हम पहचानेगे अपने भीतर के अभिनेता को अपने कृत्यों में, तभी यह समझ पायेगे । आप अभिनय कर न सकेंगे, आप अभिनय कर ही रहे हैं । इस सत्य को पहचानना है ।

यह नहीं कहते कृष्ण कि तुम अभिनय करो । अगर कोई अभिनय करेगा तो अभिनय करने में कर्ता बन जायेगा और गम्भीर हो जायेगा । क्योंकि, कर्ता तो रहेगा ही वह, अभिनय का कर्ता हो जायेगा । कृष्ण यह कह रहे हैं, तुम जो करते हो उसे मैं जानता हूँ कि वह अभिनय है । तुम भी जानो, तुम भी पहचानो, तुम भी खोजो और जिस दिन दिल जाय कि वह अभिनय है, उस दिन तुम करते हुए भी अकर्ता हो जाओगे ।

फिर, वो हिस्सों में उन्होंने बाट दिया—निष्काम कर्मों को और संन्यासी को । वह अपने-अपने ढंग की बात है, वह किसकी कथा पस्त है उसकी बात है । कोई

करते हुए न करने वाला हो जायेगा, कोई न करते हुए करने वाला हो जायेगा। वो ही तरह के लोग हैं जगत में। वह अपने 'टाइप' की बात है। जैसे, मैं मानता हूँ कि पुरुष के लिए आसान पढ़ेगा कि वह करते हुए न करने वाला हो जाय, स्त्री के लिए आसान पढ़ेगा कि वह न करने वाली होती हुई करने वाली हो जाय। उसके 'टाइप' के फर्क हैं। स्त्री का जो चित्त है वह 'पैसिव' है। पुरुष का जो चित्त है वह 'एक्टिव' है। पुरुष चित्त करने वाले का है। स्त्री चित्त न करने वाले का है। स्त्री को अगर कुछ करना हो तो वह न करने के ढग से करती है। पुरुष को कुछ न भी करना हो तो वह करने वाले की तरह हमला कर देता है। मोटा विभाजन कर रहा हूँ। मोटा इसलिए कहता है कि पुरुषों में कई स्त्रीण-चित्त लोग हैं, और स्त्रियों में कई पुरुष-चित्त स्त्रिया हैं। स्त्री कुछ करना भी चाहे तो उसकी सारी व्यवस्था 'न' करने की होगी। अगर वह किसी को प्रेम करती है तो भी दिखाना भी नहीं चाहेगी कि प्रेम करती है। प्रकट भी नहीं करना चाहेगी कि प्रेम करती है। सब तरफ से छिपायेगी। इस प्रेम को वह न करना बनायेगी। और, पुरुष अगर प्रेम न भी करता हो तो भी वह इतना उपाय करके प्रकट करेगा कि चारों तरफ से घेर लेगा और प्रेम की वर्षा कर देगा कि मैं प्रेम करता हूँ। दो ही तरह के चित्त हैं जगत में—स्त्रिया और पुरुष में नहीं कह रहा हूँ, स्त्री-चित्त और पुरुष-चित्त की बात कर रहा हूँ। कृष्ण ने इन दो चित्तों को ध्यान में रखकर ही दो हिस्से कर दिये। सन्ध्यास का तो मतलब एक ही है, हिस्से दो हैं। अगर स्त्रीण-चित्त का प्रतीक्षारत व्यक्तित्व समर्पण करनेवाला, खोनेवाला, 'पैसिव माइड' इस दिशा में जायेगा तो न करना ही उसकी व्यवस्था होगी। और, न करते हुए के बीच अपने को कर्ता जानना उसका अनुभव होगा। इसलिए, स्त्री कभी 'इनीसिएटिव' नहीं लेती किसी चीज का। कोई पहल नहीं करती। और पुरुष-चित्त, 'एक्टिव माइड' की व्यवस्था इसकी विपरीत होगी।

ये जो चित्त के दो विभाजन हैं, इम विभाजन के कारण दो हिस्से हैं—करते हुए न करता हुआ जानना, न करते हुए करता हुआ जानना। ये एक ही मिक्के के दो पहलू हैं।

**प्रश्न :** आचार्यजी, एक तकलीफ और पैदा हो गयी। जैसे, आज 'प्राइवेट सेक्टर'

है। अगर हमने प्राइवेट सेक्टर को नष्ट कर दिया तो 'इनिसिएटिव' खास हो जाता है। और, 'इनिसिएटिव' खास हो जाने पर गति इक जाती है। तो, अनासनिस में उत्तर जाने पर या लिङ्गाम में उत्तर जाने पर या कर्म संन्ध्यास में उत्तर जाने पर ऐसा लगता है कि जो स्कूलि है, जो

‘इनिशिएटिव’ हैं वह सारी जोड़ ‘कन्वर्ट’ हो जाती हैं जाकर निषिक्षणता में—कहरों ऐसी बात नहीं हो जाय ?

उत्तर . ऐसा हो सकता है, अगर उल्टा व्यक्तित्व हो । जैसा मैंने कहा, वो तरह के व्यक्तित्व है । मैंने कहा, एक व्यक्तित्व जिसको स्वैर्ण व्यक्तित्व कहे, जो कि न करते हुए भी करने वाले का है । अगर स्वैर्ण व्यक्तित्व सन्धान हो जाय तो निषिक्षणता आ जायेगी, क्योंकि वह उस व्यक्तित्व का स्वभाव नहीं है । दूसरा, जैसा मैंने कहा पुरुष व्यक्तित्व, जो कि करने वाले मे ही न करने वाले को जान सकता है । करेगा तो सही । करना तो उसका जीवन ही होगा । अब इसके भीतर वह जान सकता है कि मैं अकर्ता हूँ । यह जाना जा सकता है । अगर ऐसा व्यक्ति न करने की दुनिया मे उत्तर जाय और फिर जानना चाहे कि मैं कर्ता हूँ तो निषिक्षण हो जायेगा । निषिक्षणता फॉन्ट होती है विपरीत व्यक्तित्व के कारण, इसलिए बहुत साफ-साफ चुनाव जरूरी है, और प्रत्येक व्यक्ति को समझना जरूरी है कि उसका ‘टाइप’ क्या है । अपने से उल्टे को चुनने से कठिनाइया पैदा होती है । अपने से उल्टे को चुनकर सिर्फ एक ही फल हो सकता है कि हमारा समस्त जीवन क्षीण हो जाय । उल्टे भर को चुनने की भूल न हो तो कर्म फैलेगा, बड़ा होगा, प्रखर हो जायेगा, प्रखरता आयेगी । निखर जायेगा कर्म । क्योंकि, पुरुष चित्त का कम अगर कहीं से भी बाधा पाता है तो उसके कर्ता होने से बाधा पाता है । अगर कर्ता विदा हो जाय और सिर्फ कर्म ही रह जाय तो कर्म की गति का अनुमान ही लगाना मुश्किल है—पूर्ण गति को उपलब्ध हो जायेगा, क्योंकि कर्ता होने मे जितनी शक्ति स्वर्च होती थी वह भी अब कर्म को मिलेगी । कर्म पूर्ण हो जायेगा, ‘टोटल एक्ट’ पैदा हो जायेगा । स्त्री को कर्म करने मे जितनी कठिनाई पड़ती है अगर उससे मुक्ति मिल जाय और वह अपने अकर्म मे पूरी राजी हो जाय तो उसके अकर्म, उसके न करने से विराट कर्म का जन्म होगा । क्योंकि सारी शक्ति उसको उपलब्ध हो जायेगी । डग मे फर्क होगे । लेकिन हम अकर्म भूल मे पढ़ जाते हैं । हम अकर्म अपने से विपरीत व्यक्तित्व को चुन लेते हैं । उसका भी कारण आप समझ ले ।

हमारी पूरी जिन्दगी मे आकर्षण विपरीत का होता है, ‘दी अपोजिट’ का । पूरी जिन्दगी मे पुरुष स्त्री को पसन्द करता है, स्त्री पुरुष को पसन्द करती है । अध्यात्म मे यही उपद्रव बन जाता है । उसमे भी हम विपरीत से चुन लेते हैं । अध्यात्म विपरीत की यात्रा नहीं है, अध्यात्म स्वभाव की यात्रा है । अध्यात्म उसका पाना नहीं है जो आकर्षक है, अध्यात्म उसका पाना है जो मैं हूँ ही । लेकिन, जीवन की यात्रा मे विपरीत आकर्षक है, यही भूल हो जाती है ।

मैंने एक कहानी सुनी है कि एक छोटे से द्वीप पर, सागर के अनजान किसी कोने में, लोग एक बार बिल्कुल निष्ठिक्य हो गये और तामसी हो गये। उन्होंने सब काम-द्वाम बन्द कर दिया। जो मिल जाता, खा पी लेते, पड़े रहते, सोये रहते। उस द्वीप के ऋषि बड़े चिन्तित हुए, उन्होंने कहा कि अब क्या करे? लोग सुनते ही नहीं। तुम तामसी हो गये हो, यह भी तो सुनने कोई नहीं आता। ऋषि बहुत डोडी भी पीटते तो पीट के आ जाते, लेकिन कोई आँता नहीं सुनने उनको। कोई रास्ता न सूझे। गाव धीरे-धीरे भरने दग्गा, सिकुड़ने लगा। बड़ी कठिनाई हो गयी, क्या किया जाय, क्या न किया जाय? गाव के एक बहुत बुढ़ आदमी से जाकर उन्होंने सलाह ली। उमने कहा, अब एक ही उपाय बचा है कि पास में एक द्वीप है, सब स्त्रियों को उम पर भेज दो, पुरुषों को इस पार रहने दो। उन्होंने कहा, इससे क्या होगा? वह बोला, वह जल्दी नाव बनाने में लग जायेगे। उधर स्त्रिया भी, जल्दी तैयारी में लग जायेगी, इनको बाटो। अब इनका पास पास होना ठीक नहीं है। विपरीत को विपरीत ही खड़ा कर दो, किर जल्दी सक्रियता गूजने र गेगी। जबानी में आदमी सक्रिय इसीलिए होता है, बुढ़ापे में निष्ठिक्य इसीलिए हो जाता है। और कोई कारण नहीं है। जबानी में पुरुजोश उमसे मन्त्रित्व और पुरुषत्व होता है। वह दोनों नाव बनाने में लग जाते हैं। यात्राएं करने में लग जाते हैं। बुढ़ापा आते आते सब थक जाता है। स्त्री पुरुष को जान लेती है, पुरुष स्त्री को जान लेता है। विपरीतता कम हो जाती है। वह जो 'अपोजिट' का आकर्षण है, परिचित होने से विदा हो जाता है। बुढ़ापे में आदमी शिथिर हो जाता है।

जिन्दगी के सहज नियम में विपरीत आकर्षक है। अध्यात्म के सहज नियम में स्वभाव आकर्षक है, विपरीत नहीं। इसीलिए भूल होती है। इसलिए, अध्यात्म जिन जिन भूलको में फैलता है वह निष्ठिक्य हो जाता है। यह मुल्क हमारा निष्ठिक्य हुआ। और उमका कुल कारण इतना है कि विपरीत का आकर्षण वहा भी खीच कर ले गये। वहा जिसे पुरुषगत साधना चुननी चाहिए वही उसने स्त्रीगत साधना चुन ली और जिसे स्त्रीगत साधना चुननी चाहिए वही उसने पुरुषगत साधना चुन सी। दोनों मुश्किल में पड़ गये। पूरा मुल्क निष्ठिक्ष हो गया। जिसको मीरा होना चाहिए वह महावीर हो गया, जिसको महावीर होना चाहिए वह शाश्वत मजीरा लेकर मीरा हो गया। वही दिक्षकत हो गयी। इसलिए, भविष्य के अध्यात्म की जो सबसे बड़ी वैज्ञानिक प्रक्रिया मेरे स्थाल में आती है वह यह है कि हम साक इस सूत्र को करे कि 'बायोलॉजी' का जो नियम है वह 'स्ट्रीच्युअलिटी' का नियम न हो। यीव शास्त्र जिस आधार से चलता है वह विपरीत का आकर्षण है। अध्यात्म

विपरीत का आकर्षण नहीं है, स्वभाव में निमज्जन है। वह दूसरे तक पहुचना नहीं है, अपने तक पहुचना है। लेकिन, जिन्दगी का अनुभव बाधा डालता है।

मैंने सुना है कि जब पहली दफा बिजली आयी तो फायड के घर एक आदमी भेहमान हुआ। उसने कभी बिजली नहीं देखी थी। उसने तो हमेशा लालटेन देखी थी, दिया देखा था। उसको सुलाकर फायड कमरे के बाहर चला गया। वह बड़ी मुश्किल में पड़ा, प्रकाश में नीद न आये। उसने सीढ़िया लगाकर किसी तरह फूकने की कोशिश की; लेकिन फूकने से बिजली बुझी नहीं। अब वह आदमी भी क्या करे, उसकी कोई गलती नहीं। उसका एक ही अनुभव था कि दिये फूकने से बुझ जाते हैं। उसकी परेशानी का अन्त नहीं। सामने बटन लगा है, लेकिन बटन से कोई सम्बन्ध नहीं है। उसके चित्त में बटन कहीं दिखायी ही नहीं पड़ता। अखिर अनुभव ही तो हमें दिखलता है। वह सारे कमरे में सब तरह की खोज करता है कि माजरा क्या है? चढ़कर बल्ब को सब तरफ से देखता है कि कहाँ से ढार है जिसमें से फूक मार दू। कहीं कोई ढार नहीं मिलता। नीद आती नहीं, करवट बदलता है, लेकिन पुराने अनुभव से ही जीता है। डर लगता है कि किसी से जाकर कहूँ तो लोग कहेंगे कि ऐसे नासमझ कि तुम्हें दिया बुझाना नहीं आता? पूछने में भी भयभीत है। सुबह जब उठता है और फायड कमरे में आता है तो देखता है बिजली जली है। वह पूछता है कि क्या बिजली बुझायी नहीं? उसने कहा, बुझायी तो बहुत, बुझी नहीं। अब तुमने पूछ ही लिया तो निवेदन कर दू। रात इसी को बुझाने में बीती। क्योंकि, इसके जल्ते नीद नहीं आती और यह है कि बुझती नहीं। फायड ने कहा, पाग़ द्वारे हुए हो? यह रहा बटन। लेकिन, उस आदमी के अनुभव में बटन का कोई सवाल नहीं उठता था। उस आदमी को हम दोषी नहीं ठहरा सकते।

हमारी जिन्दगी भर का अनुभव विपरीत के आकर्षण का अनुभव है। इसलिए, जब हम अध्यात्म के जगत में पहुचते हैं, जहा कि याका बिल्कुल बदल जाती है, हम उसी अनुभव से दिये फूकते चले जाते हैं, बटन का हमें स्थाल नहीं होता। यह भूल बड़ी लम्बी है। और बड़ी पुरानी है। इसलिए, जिस मुल्क में अध्यात्म प्रभावी हो जाता है वह निष्क्रिय हो जाता है। और, जिस मुल्क में सेक्स प्रभावी होता है वह सक्रिय होता है। इसलिए, दुनिया की सभी सक्रिय सम्यताएं कामुक सम्यताएं होती हैं। और, दुनिया की सभी निष्क्रिय सम्यताएं आध्यात्मिक सम्यताएं होती हैं। ऐसा होना आवश्यक नहीं है। ऐसा अब तक हुआ है। इसलिए जिस मुल्क में मुक्त काम हो जायेगा, 'फ्री सेक्स' होगा उस मुल्क की 'एफटीविटी' एकदम बड़

जायेगी। उसकी 'एकटीविटी' का हिमाच न रहेगा। अगर हम प्रकृति में जारी तरफ नजर डाले तो 'एकटीविटी' सेक्स से ही पैदा होती है। वसन्त में फूल खिलने लगते हैं, और किसी कारण से नहीं। पक्षी गीत गाने लगते हैं, और किसी कारण से नहीं। पक्षी घोमले बनाने लगते हैं किसी और कारण से नहीं। सबके पीछे काम और 'सेक्स' की ऊर्जा है। पक्षी वह घोसला बना रहा है जो उसने कभी बनाया नहीं। उस अण्डे को रखने की तैयारी कर रही है मादा, जो उसने कभी रखा नहीं। लेकिन सब तरफ गुनगुन हो गयी है। सब तरफ गीत चल रहा है, सब तरफ भारी क्रिया पैदा हो गयी है। वह 'बायोलजिकल एक्टिविटी' है। आदमी भी अभी एक ही तरह की 'एक्टिविटी' जानता है 'बायोलजिकल'। इसलिए, जिन मुल्कों में सेक्स स्वतन्त्र है उन मुल्कों में मकान आकाश को छूने लगेंगे। वह घोमना बनाने का ही विस्तार है, कोई और बड़ी बान नहीं है। जिन मुल्कों में मुक्त हांगा काम उन मुल्कों में नाच, रंग, गीत पैदा हो जायेंगे, रंग-विरंगे कपड़े कैल जायेंगे। वह पक्षियों के गीत और मोर के पक्ष का विस्तार है। कोई बहुत अन्तर नहीं है। जिन मुल्कों में हम कहेंगे कि हम जीव शास्त्र के विपरीत चलते हैं और नियम जीव शास्त्र का ही मानेंगे, विपरीत में आकर्षित होंगे वहा भव उदास शून्य हो जायेगा। वहा मनान झोपड़े रह जायेंगे जमीन से 'ग जायेंगे, वहा सब गतिविधि क्षीण हो जायेगी, वहा काई गीत नहीं गयेंगा, गीत गाता हुआ आदमी अपराधी मालूम पड़ेंगा, वहा रंग-विरंगे कपड़े खो जायेंगे, वहा सौदर्य खो जायेगा। वहा भव उदास, दीन-हीन और क्षीण हो जायेगा।

मेरा अपना मानना। यह है कि दोनों के अपने नियम हैं। और, ठीक पूरी सम्झौति दोनों नियमों पर खड़ी होती है। ठीक सम्झौति मुर्क काम होगी, काम में आनन्द लेगी, काम में उल्लसित होगी तो क्रिया होगी। विराट क्रिया का जाल फैलेगा। और, ठीक अध्यात्म, ठीक टाइप के चुनाव से अगर होगा तो अध्यात्मिक क्रिया का जाल फैलेगा। कृष्ण ठीक अपने टाइप में है। बुद्ध अपने टाइप में है, महावीर अपने टाइप में है। इसलिए, कृष्ण एक तरह की क्रिया करते हैं, लेकिन ऐसा नहीं है कि बुद्ध कोई क्रिया नहीं करते। बुद्ध का जीवन भी क्रिया का विराट जाल है। महावीर भी एक धर्म शास्त्र नहीं बैठे हैं। चालीस वर्ष सतत, एक गाव से दूसरे गाव भाग रहे हैं, भाग रहे हैं। युद्ध परलड़ने वह नहीं जाते हैं, लेकिन किसी और बड़े विराट बुद्ध में वह सलग्न है। किसी चीज को तोड़ने, मिटाने बनाने में वह सलग्न है। बुद्ध बासुरी नहीं बजाते, लेकिन बुद्ध की बाणी में किसी और बड़ी बासुरी का स्वर है। इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। लेकिन, बुद्ध ने अपना 'टाइप' पा लिया।

प्रामाणिक रूप से बुद्ध ने वह पा लिया जो वह हो सकते हैं, वह हो गये हैं। हुण्ड ने पा लिया, जो वह हो सकते हैं, वह हो गये हैं। पीछे चलने वाले साधक अक्सर टाइप की भूल में पड़ते हैं। 'टाइप' का 'कन्फ्यूजन'—इसकी मैने पीछे बात की, वह वही मतलब है, "स्वधर्म निघन श्रेय"। अपनी निजता में मर जान। थ्रेयल्कर है और दूसरे के धर्म को स्वीकार कर लेना भयावह है।

टाइप समझने में बहुत कठिनाई नहीं है। एक तो रास्ता यह है कि जो तुम्हे आकर्षित करता हो, समझन। वह तुम्हारा 'टाइप' नहीं है। सीधा सूत्र है। वह तुम्हारा 'टाइप' नहीं है। उससे बचना। उससे सावधान रहना। और, जो तुम्हे विकृष्टि करता हो, उस पर जरा चिंतन करना, वह तुम्हारा 'टाइप' होगा। अब यह बड़ी मुश्किल की बात है। जो तुम्हे विकृष्टि करता हो, 'रिपल्सिव' सिद्ध हो वह तुम्हारा 'टाइप' है। जैसे, पुरुष कैसे पहचाने कि मैं पुरुष हूँ? अगर पुरुषों के प्रति उसे कोई प्रेम लगाव पैदा न होता हो, वह पहचान ले। और, क्या रास्ता है? पुरुष उसे आकर्षित नहीं करते, वह विकर्षक है। स्त्री कैसे ममझे कि वह स्त्री है? स्त्री को देखकर ही दिक्कत होती हो और अड़चन पैदा हो जाती हो। दो स्त्रियों को पास रखना बड़ी कठिन बात है। वह विकर्षक है, वह एक दूसरे के लिए आकर्षक नहीं है, 'रिपल्सिव' है। एक दूसरे का हटाती है। एक दूसरे की तरफ उनकी आकर्षण की धारा नहीं बहनी, विकर्षण की धारा बहती है। इसलिए, दो स्त्रियों को साथ रखने से बड़ी कठिनाई और कुछ नहीं है। जो तुम्हे आकर्षित करे, वह तुम्हारा टाइप होगा। यह बड़ी कठिन और जटिल बात है। और, इसी ए बड़े मज की बात है। आमतौर से जिन चीजों की तुम निन्दा करते हो और जिनके तुम खिलाफ हो वह तुम्हारी हांगी। वह तुम्हारे भीतर होगी। जो आदमी दिन-रात मेक्स का विरोध करता है उसकी खबर मि ती है कि उसके भीतर मेक्सुअलिटी है। यह बड़ा जटिल है। लेकिन, ख्याल में ले लिया जाय तो बहुत आसान हो जायेगा। जो आदमी दिन-रात धन की निन्दा करता हो, जानो कि वह धन लोलुप है। जो आदमी ससार में भागता हो, जानना कि ससारी है। उसके टाइप का मैं कह रहा हूँ। आपका विपरीत जो है वह आपके लिए आकर्षक होता है। इसलिए, जो आपका आकर्षित करे, समझ लेना कि वह आपका टाइप नहीं है।

प्रश्न : कभी यह आकर्षित करे, कभी वह आकर्षित करे तो ?

उत्तर : तो समझना कि तुम 'कन्फ्यूज टाइप' हो। उसका और कोई मतलब नहीं होता।

**प्रश्न :** समान व्यसन हो तो मैत्री हो जाती है ?

उत्तर . बहुत-सी बातें इसमें स्थाल में लेनी पड़ेंगी । समान व्यसन की जो मैत्री है वह एक ही टाइप के लोगों में भी हो सकती है । लेकिन, समान व्यसन उनकी मैत्री का आधार होगा । उनके बीच कोई मैत्री नहीं होगी । व्यसन ही उनकी मैत्री का सेतु होगा । अगर व्यसन टूट जाय तो मैत्री तत्काल छूट जायेगी । अगर दो आदमी शराब पीते हैं तो मैत्री हो जाती है । शराब पीने के कारण । एक ही काम दोनों करते हैं, इसलिए मैत्री हो जाती है । लेकिन, मैत्री नहीं है कोई भी । क्योंकि, मैत्री सदा अकारण होती है । अगर कारण हो तो मैत्री नहीं, सिर्फ़ 'एसोसिएशन' है, साथ है । साथ और मैत्री में फर्क है । हम दो आदमी एक रास्ते पर चल रहे हैं । साथ हो जाता है । यह कोई मैत्री नहीं है । फिर, देरी मजिल का रास्ता मुड़ जाता है अलग, और आपकी मजिल का अलग तो हम अपने रास्तों पर चले जाते हैं । एक रास्ते पर चलने वाले दो राहगीर जैसे बीच में साथ हो जाते हैं ऐसे एक व्यसन पर चलने वाले दो लोग साथ हो जाते हैं । लेकिन, यह मैत्री नहीं है । सच तो यह है कि मैत्री सदा विपरीत व्यक्तित्वा में होती है । इसलिए, मैत्री जितनी गहरी होगी उतने विपरीत व्यक्तित्व होगे । क्योंकि, वह 'काम्लीमेटरी' होते हैं । मिव जो है वह एक दूसरे को 'काम्लीमेटरी' होते हैं । एक दूसरे के परिपूरक होते हैं । इसलिए, अक्सर ऐसा होगा कि दो बुद्धिमान लोगों में मैत्री नहीं हो सकेंगी । वह 'काम्लीमेटरी' नहीं है । उनमें कलह हो सकती है, मैत्री नहीं हो सकती । अगर बुद्धिमान की किसी से मैत्री होगी तो वह निर्बुद्धि से होगी, वह 'काम्लीमेटरी' है । दो शक्तिशाली व्यक्तियों में मैत्री नहीं हो सकती । असल में दो समकक्ष और ठीक एक दिशा से आये हुए व्यक्तियों में मैत्री कभी नहीं होती । दो कवियों में मैत्री मुश्किल है । दो चित्रकारों में मैत्री मुश्किल है । अगर होगी तो उसके कारण उसके चित्रकार होने से अन्य होगे । क्योंकि एक व्यक्ति से बहुत सी बातें हैं । दोनों शराब पीते हो यह हो सकती है मैत्री, कि दोनों जुआ खेलते हो यह हो सकती है मैत्री । लेकिन, यह सब साथ है । यह मैत्री नहीं है । मैत्री का नियम भी विपरीत का ही है । मैत्री प्रेम का ही एक रूप है । इसलिए, मनोवैज्ञानिक तो यह कहते हैं कि अगर दो पुरुषों में बहुत गहरी मैत्री है तो किसी-न-किसी गहरे अधीन में वह 'होमोसेक्सुअल' होने चाहिए । अगर दो स्त्रियों में बहुत गहरी मैत्री है तो वह 'होमोसेक्सुअल' होने चाहिए । एकदम से राजी होना बहुत मुश्किल हो जाता है । लेकिन, इसमें सचाइयां हैं । इसलिए, आप देखेंगे कि बचपन जैसी मैत्री फिर बाद में कभी निर्मित नहीं होती, क्योंकि

बचपन में एक 'फेज होमोसेक्सुअलिटी' का हर आदमी की जिन्दगी में आता है। लड़के, इसके पहले कि लड़कियों में उत्सुक हो, लड़कों में उत्सुक होते हैं। लड़किया इसके पहले कि लड़कों में उत्सुक हो पहले लड़कियों में उत्सुक है। असल में 'सेक्स मेच्योरिटी' होने के पहले काम की दृष्टि से, यौन की दृष्टि से परिपक्व होने के पहले कोई काम भेद बुनियादी नहीं होता। लड़के लड़कों में उत्सुक होते हैं, लड़किया लड़कियों में उत्सुक होती है। इसलिए, बचपन की सहेलिया और बचपन के मित्र चिरस्थायी हो जाते हैं। 'सेक्स' के जन्म के बाद, जब 'सेक्स' अपने पूरे प्रभाव में प्रकट होता है तो जो लोग सहज स्वस्थ हैं, लड़के लड़कियों में उत्सुक होना शुरू हो जायेगे। पुरानी मित्रताएं और सहेलीपन शिथिर होने लगेंगे या याददाष्टे रह जायेगी। धीरेधीरे नयी मैत्रिया बननी शुरू होगी जो 'अपोजिट्स' में होगी, विपरीत से होगी। हा, बीसवीं से 'परसेट' लोग नहीं पार कर पायेंगे इस स्थिति को। उसका मतलब है कि उनकी 'मेटल एज' पिछड़ गयी। उसका मतलब है कि वह मानसिक रूप से अस्वस्थ है। ऐसा हो सकता है कि एक लड़का अट्ठारह बीस साल का हो गया, फिर भी लड़कियों में उत्सुक नहीं हैं लड़कों में ही उत्सुक हैं। तो इसकी मानसिक उम्र पिछड़ गयी। यह मानसिक रूप से बीमार है, इसकी चिकित्सा की जरूरत है। अगर कोई लड़की पच्चीस साल होकर लड़कियों में ही उत्सुक है और लड़कों में उत्सुक नहीं है तो इसके मानस के साथ कुछ बीमारी हो गयी है। कोई दुर्घटना घट गयी है। यह स्वस्थ नहीं है। इसका यह मतलब नहीं है कि बाद में मित्रताएं नहीं होंगी, बाद में मित्रताएं होंगी, लेकिन वे 'एसो-सिएशन' की होंगी। एक ही कलब में आप ताण खेलते हैं, मित्रता हो जायेगी, एक ही धधे में काम करते हैं, मित्रता हो जायेगी। एक ही सिद्धान्त को मानते हैं, कम्युनिस्ट हैं दोनों, तो मित्रता हो जायेगी। एक ही गुरु के शिष्य हो गये हैं तो मित्रता हो जायेगी, लेकिन ये मित्रताएं वैमी मित्रताएं नहीं हैं जैसा कि यीन जन्म के पहले गहरा एक प्रगाढ़ मैत्री का सम्बन्ध होता है। इसलिए, बचपन की मैत्री फिर कभी नहीं लौटती। वह लौट नहीं सकती। उसका आधार खो गया और विपरीत में बड़ा गहरा आकर्षण है।

अगर आप इसको ऐसा भी समझें तो थोड़ा स्थाल में आ जायेगा। आप अक्सर देखेंगे, नगे फकीर के पास कपड़ों को प्रेम करने वाले लोग पहुंचेंगे। त्यागी के पास भोगी इकट्ठे हो जायेंगे। जो खूब खाने पीने में मजा लेते हैं वे किसी उपवास करने वाले की पूजा में लगे रहते हैं। एक बड़े मजे की बात है, महाकीर नन थे और जैन कपड़ा बेचने का ही काम करते हैं। कैसे जैनों ने कपड़ा बेचने का काम

चुन लिया ? थोड़ा सोचने जैसा है। जरूर पकड़े को प्रेम करने वाले लोग महावीर के इर्दगिर्द इकट्ठे हो गये। महावीर सब छोड़कर दीन हो गये। हिन्दुस्तान में महावीर को माननेवाले सबसे ज्यादा समृद्ध हैं। यह आकस्मिक नहीं है, यह 'एक्सिडेंटल' नहीं है घटनाए। इनके ऐतिहासिक कारण हैं। असल में महावीर ने जब सब छोड़ा तो जो सबसे ज्यादा प्रभावित होगे वे ही होंगे जो सब पकड़े हुए हैं। क्योंकि, वह कहेंगे, अरे, हम एक पैसा नहीं छोड़ सकते और इसुआदमी ने सब छोड़ दिया, लात मार दिया ! भगवान हैं यह आदमी ! यह जो आकर्षण है चित्त का, यह उनकी पकड़ की बजह से है। त्यागी महावीर से बिल्कुल प्रभावित नहीं होगा। वह कहेगा, क्या किया तुमने, इसमें ही ही क्या। राग को लात मार दी तो मार दी, इसमें कौन सी बड़ी बात है। लेकिन, राग को जो समझता था हीरा है, वह फौरन महावीर के चरणों में भिर रख देगा कि मान गये। आप हैं आदमी ! हम एक पैसा नहीं छोड़ सकते और तुमने सब छोड़ दिया ? तुम हमारे गुरु हूँ। फिर, जो कुछ नहीं छोड़ सकता उसके मन में छोड़ने की कामना भदा बभी रहती है। जो कुछ भी नहीं छोड़ सकता वह भी मोचता है कि बड़ा दुख झेल रहा हूँ पकड़ने में। कब वह दिन आयेगा जब सब छोड़ूँ। तो, जो सब छोड़ देता है वह उसका आदर्श बन जाता है।

फौरन, कि इस आदमी को वह दिन आ गया जिसकी मुझे अभी प्रतीक्षा है। कोई बात नहीं, अभी मैं तो नहीं हो सका, लेकिन तुम हो गये। हम तुम्हे भगवान तो मान ही सकते हैं। इसलिए, त्यागियों के पास भोगी इकट्ठे हो जायेंगे। यह बड़ा 'मेगेटिक' काम है जो अपने आप चलता रहता है। इसको अगर हम पहचान ले तो हम सारी दुनिया की चेतना को 'मेगेटिक फील्ड्स' में बाट सकते हैं कि किस तरह दुनिया की चेतना आकर्षित होती रहती है, बनती रहती है, मिटती रहती है। अजीब काम चलता रहता है जो दिखायी नहीं पड़ता ऊपर से। तो, जब भी आप किसी से आकर्षित हो तो एक बात पक्की समझ लेना कि इस आदमी से बचना। यह आपका 'टाइप' नहीं है। यह उल्टा 'टाइप' है। 'काप्लीमेटरी' है। अध्यात्म की यात्रा में सहयोगी न होगा, सप्ताह की यात्रा में साथी हो सकता है। अध्यात्म की यात्रा में आपको अपनी ही खोज करनी पड़ेगी स्वधर्म की, मैं कौन हूँ। वह खोज हो जाय तो आप जीवन को बिना छोड़े, गति को बिना छोड़े, कर्म को बिना छोड़े अकर्म को उपलब्ध हो जायेंगे। सप्ताह को बिना छोड़े सत्य को उपलब्ध हो जायेंगे। सब जैसा है वैसा ही रहेगा, सिर्फ आप बदल जाते हैं। और, जिस दिन आप बदल जाते हैं उस दिन सब बदल जाता है। क्योंकि, जो सब दिखायी पड़ता है वह आपकी दृष्टि है।

**प्रश्न .** श्रीकृष्ण अर्दुन से कहते हैं कि यदि तू सुख-नुख, लाभ-हानि, अस-पराजय को समान समझकर युद्ध करेगा तो तू पाप को नहीं, स्वर्ग को उपलब्ध होगा । यह क्यों और कैसे समझ है ? क्या हिंसा तब हिंसा की घटना न एह जावेगी ?

उत्तर इसमें दो तीन बातें स्थाल में लेनी चाहिए । पहली तो बात यह कि कृष्ण कहते हैं कि हिंसा एक असत्य है जो हो नहीं सकती । अम है, जो सम्भव नहीं है कि कोई मारा जा सकता है । 'न हन्ते हन्त्यमाने शरीरे' । शरीर के मार डालने से वह नहीं मरता जो पीछे है । और, शरीर मरा ही हुआ है इसलिए शरीर मरता है, यह कहना व्यर्थ है । कृष्ण पहले तो यह कहते हैं कि हिंसा असभव है । क्या इसका यह मतलब है कि कोई भी व्यक्ति किसी की हिंसा करे ? नहीं । कृष्ण यह कहते हैं, हिंसा तो असभव है, लेकिन हिंसक वृत्ति सभव है । तुम किसी को मारना चाहो यह सभव है, कोई नहीं मरेगा, यह दूसरी बात है । तुम्हारे मारने से कोई मरेगा नहीं, यह दूसरी बात है । तुम मारना चाहते हो, इसमें पाप है । उमके मरने का तो कोई सवाल नहीं, वह तो मरेगा नहीं । हिंसा में पाप नहीं, हिंसकता में पाप है । तुमने मारना चाहा, वह नहीं मरा, यह दूसरी बात है । तुम्हारी चाह तो मारने की है । कोई नहीं बचेगा कि कोई बचेगा, इसमें पुण्य नहीं है । तुमने बचाना चाहा, इसमें पुण्य है । एक अदमी मर रहा है । मब जानते हुए कि मरेगा, तुम बचाने की कोशिश में लगे हो । तुम्हारी इस बचाने की कोशिश से वह बचेगा नहीं, मर जायेगा कल, लेकिन तुम्हारी बचाने की कोशिश में पुण्य है । पाप दूसरे को नुकसान पहुँचाने की वृत्ति है, पुण्य दूसरे को लाभ पहुँचाने की वृत्ति है ।

कृष्ण तीसरी बात कहते हैं, वह कहते हैं कि अगर तू पाप और पुण्य, अगर तू सुख और दुख दोनों के पार उठ जा तो फिर न पाप है, फिर न पुण्य है । फिर कुछ भी नहीं है । फिर न हिंसा है, न अहिंसा है । अगर तू इन दोनों के ऊपर उठ जाय और जान ले कि उस तरफ हिंसा नहीं होती तो मैं नाहक हिंसा के स्थाल से क्यों मारूँ ? और, उस तरफ कोई बचता नहीं तो मैं नाहक बचाने के पागलपन में क्यों पड़ूँ ? अगर तू सत्य को देखकर अपनी वृत्तियों को भी समझ ले कि ये वृत्तिया व्यर्थ हैं, असभव हैं । अगर तू दोनों बातों को ठीक से समझ ले तो तू स्वर्ग को उपलब्ध हो ही गया । हो जायेगा, ऐसा नहीं, हो ही गया । क्योंकि, हो जाने का क्या सवाल है ? एसी स्थिति में जहा सुख और दुख, लाभ और हानि, जय और पराजय, हिंसा और अहिंसा सब समान हो गये हैं, समत्व उपलब्ध हुआ, ऐसी स्थिति में स्वर्ग मिल ही गया । अब कुछ स्वर्ग बचा नहीं पाने को । ऐसी स्थिति में, ऐसी समत्व बुद्धि को ही कृष्ण योग कहते हैं ।

वे कहते यह हैं कि दो तरह की भ्रातिया हैं। एक भ्राति यह कि कोई मरेगा और एक भ्राति यह कि मैं बचउगा। एक भ्राति यह कि कोई बचेगा और एक भ्राति यह कि मैं बचतउगा। यह दोनों ही भ्रातियां हैं। अगर पहली भ्राति छूट जाय कि कोई मरता नहीं, कोई बचता नहीं, जो है वह है, अगर यह पहली भ्राति छूट जाय तो फिर एक दूसरी भ्राति बचती है। कोई नहीं मरता तो भी मैं भारने की कोशिश करता हूँ तो पाप है। कोई नहीं बचता तो भी मैं बचाने की कोशिश करता हूँ तो पुण्य है। लेकिन, पाप और पुण्य भी अद्वूरा अज्ञान हैं। आधा! आधा अज्ञान बच गया। अगर यह भी चला जाय कि न मैं किसी को बचाता, न कोई बचता, न मैं किसी को भारता, न कोई मरता। अगर यह पूरा ही चला जाय तो ज्ञान है। फिर ऐसे ज्ञान वाला व्यक्ति, जो हो रहा है वह होने देता है। बाहर भीतर कही भी जो हो रहा है वह होने देता है। क्योंकि, अब न होने देने का कोई सवाल नहीं है। तब वह 'टोटल एक्सेट्रिबिलिटी' को, समग्र स्वीकार को उपलब्ध हो जाता है। कृष्ण अर्जुन से यही कहते हैं कि तू सब देख और स्वीकार कर और जो होता है होने दे। तू धारा के खिलाफ लड़ मत, तू बह और फिर तू स्वर्ग को उपलब्ध हो जा।



## पर्व : अठारह

जीवन के 'रिचुअल्स' और यज्ञ

जन्मबन्धन की प्रतीति से मुक्ति

नपुसकता का अनुपात

अर्धनारीश्वर

जैन शास्त्रों में स्त्री को मोक्ष नहीं





प्रश्न . साधना जगत में यज्ञों और 'रिक्वुअल्स' का बहुत उल्लेख है। यज्ञ की बहुत सी विधियाँ भी हैं। होमात्मक यज्ञ की बात अल्पी है, लेकिन गोता में जपयज्ञ और ज्ञानयज्ञ की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। साथ ही अपने जप पर बात करते हुए अजगरा जप के बारे में कहा था। तो, गोता के जपयज्ञ, ज्ञानयज्ञ और अजगरा जप पर प्रकाश डालने को कहा करें।

उत्तर : जीवन में 'रिक्वुअल्स' की, कियाकाण्ड की अपनी जगह है। जिसे हम जीवन कहते हैं वह नन्हे प्रतिशत 'रिक्वुअल' और कियाकाण्ड से ज्यादा नहीं

है। जीवन को जीने के लिए, जीवन से गुजरने के लिए बहुत कुछ जो अनावश्यक है, आवश्यक भालूम होता है। आदमी का मन ऐसा है। मनुष्य जाति के पूरे इतिहास में हजारों तरह के 'रिचुअल', हजारों तरह के क्रियात्मक खेल विकसित हुए हैं। ये सारे के सारे खेल अगर गम्भीरता से लिये जाय तो बीमारी बन जाती है। अगर ये सारे खेल खेल की तरह लिये जाय तो उत्सव बन जाते हैं। जैसे

पहली बार जब अग्नि का आविष्कार हुआ तो सबसे बड़े आविष्कारों में अग्नि का आविष्कार था। आज हमें पता नहीं कि आदमी ने सबसे पहले अग्नि पैदा की थी। लेकिन, जिसने भी पैदा की ही, उससे बड़ी क्राति अभी तक नहीं हो सकी है। बहुत कुछ आदमी ने फिर खोजा है। फिर, न्यूटन है, गेलीलियो है, कोपरनिकर है, केपलर है, आइन्टीन है, मेक्सिब्लाक है और हजारों खोजी है, लेकिन अब तक भी, हमारी अणु की खोज भी, हमारा चाद पर पहुच जाना भी उतना बड़ा आविष्कार नहीं जितना बड़ा आविष्कार उस दिन हुआ था, जिस दिन पहले आदमी ने अग्नि पैदा कर ली थी। आज हमें बहुत कठिनाई होगी यह सोचकर, क्योंकि अग्नि आज बिल्कुल सहज बात है। माचिस में बन्द है, लेकिन सदा ऐसा नहीं था। फिर, हमारा जो भी विकास हुआ है—मनुष्य का, जैसा मनुष्य आज है उसमें नब्बे प्रतिशत अग्नि का हाथ है। हमारे जो भी आविष्कार हुए हैं वे सब बिना अग्नि के हो नहीं सकते थे। उन सबकी बुनियाद में वह अग्नि का आविष्कर्ता खड़ा है। स्वभावत, जब पहली बार अग्नि किमी ने खोजी होगी तो हमने अग्नि का भी स्वागत किया था उसके चारों ओर नाच कर। यह जिन्दगी की बिल्कुल सहज घटना थी। अग्नि को और किसी तरह धन्यवाद दिया भी नहीं जा सकता था। अग्नि ने एक केन्द्रीय अर्थ उस दिन मनुष्य की जिन्दगी में बना लिया था। मनुष्य के सारे पुराने धर्म किसी न किसी रूप में अग्नि या सूरज के आसपास विकसित हुए हैं। रात थी अधकारपूर्ण। खतरनाक पशुओं का डर था। दिन उजाले से भरा था, निर्भय। हमला कोई कर सके, इसके पहले पता चल जाता था। उस समय सूर्य बड़ा मित्र भालूम हुआ। अन्धकार बड़ा शतु था। सूर्य के साथ सब खतरे तिरोहित हो जाते थे, भय मिट जाते थे। तो, सूर्य परमात्मा की तरह स्थाल में आया था। और, जब अग्नि का आविष्कार कर लिया तो स्वभावत रात के अन्धकार पर हमारी विजय हो गयी। सूर्य से भी ज्यादा अग्नि प्रीतिकर हो गयी थी। इस अग्नि के आसपास, नाच का, गान का, नृत्य का, प्रेम का, उत्सव का विकसित हो जाना बिल्कुल स्वाभाविक था। वह विकसित हुआ।

कभी आपने स्थाल किया कि जब यूरी गागरिन पहली बार अंतरिक्ष की

यादा करके लौटा तो सारी पृथ्वी उत्सव से भर गयी और यूरी गागरिन एक दिन में बिश्वविस्थापन व्याप्त हो गया। ठेठ दूर देहात के गाव में भी उसका नाम पहुंच गया था। लाखों लोगों ने अपने बच्चों का नाम यूरी गागरिन के ऊपर रखा—सारी दुनिया में, बिना जाति, पाति, धर्म की फिक्र किये हुए। यूरी गागरिन की हैसियत पाने के लिए किसी आदमी को सत्तर अस्ती साल मेहनत करनी पड़ती है, तब सारी दुनिया उसे जान पाती है। इस आदमी ने कुछ और नहीं किया, यह सिर्फ पृथ्वी की जो 'आरबिट' है उसको पार कर गया। लेकिन, बड़ी घटना थी। यूरी गागरिन जहा गया, वहीं लोग दीवाने हो गये उसके दर्शन करने को। बड़े नगरों में कई लोग मरे 'एक्स्ट्रीडेट' से जहा यूरी गागरिन गया।

मनुष्य का मन उस सब के प्रति उत्सव से भर जाता है जो नया है, या जिस नये का आगमन होता है। नये बच्चे के जन्म पर भी हम बैण्ड बाजा बजाते और उत्सव से भर जाते हैं। जब भी इस जगत में नया कुछ पैदा होता है तो हमारा चित्त उत्सव से उसका स्वागत करता है। और, उचित है कि ऐसा हो। क्योंकि, जो आदमी नये के स्वागत में भी उत्सवपूर्ण नहीं रहेगा उस दिन समझना चाहिए कि आदमी के मीतर कुछ भहत्वपूर्ण मर गया है। यह मने इसलिए कहा कि हम यज्ञ को समझ सके। यज्ञ उन लोगों का आविष्कार था जिनकी जिन्दगी में अग्नि पहली बार आयी थी। और, इस अग्नि के लिए वे उत्सव मना रहे थे। इसके चारों ओर नाच रहे थे और जो कुछ श्रेष्ठ उनके पास था अग्नि को उन्होंने दिया। क्या वे सकते थे वे? उनके पास गैहू था उन्होंने गैहू दिया। उनके पास सोमरस था, उस दिन भी सुरा थी, वह उन्होंने दी। उनके पास जो श्रेष्ठतम् गाय होगी वह उन्होंने अग्नि को दी। उनके पास जो भी था, वह उन्होंने अग्नि को भेट किया। एक देवता अवतरित हुआ था जिसने जिन्दगी को सब बदल दिया था। उसके उत्सव में उन्होंने सब यह किया। यह बहुत सहज था। लेकिन, यह बहुत 'सोफिस्टिकेटेड' नहीं था। यह बिल्कुल ग्रामीण चित्त से उठी हुई बात थी और उस समय ग्राम ही थे जगत में, ग्रामीण चित्त ही था।

गीता के समय तक ऐसा यज्ञ बेमानी हो गया था, क्योंकि गीता के समय तक अग्नि घर घर की जीज हो गयी थी। उसके आसपास नाचना व्यर्थ भालूम होने लगा था। उसमें गैहू फेकना, भव पढ़ना सार्थक नहीं रह गया था। हजारों लोग इसका बिरोध कर चुके थे इस बीच की प्रतिक्रिया में, क्योंकि उनको कुछ भी पता नहीं था कि अग्नि का पहला आगमन जिनकी जिन्दगी में हुआ था वे उसे भगवान की तरह ही स्वीकार कर सकते थे। उनके लिए वह बड़ा बरदान थी। इस-कु ३३

लिए गीता ने फिर शब्दों पर नयी कलमे लगायी। और, हृष्ण ने नये शब्द ईजाद किये ज्ञान यज्ञ। यज्ञ पुराना शब्द था, ज्ञान से उसे जोड़ा। जैसे अभी बिनोदा ने नयी कलम लगायी भूदान यज्ञ। यज्ञ था शब्द पुराना, भूदान से उसे जोड़ा। हृष्ण के समय तक जीवन काफी 'सोफिस्टिकेटेड', काफी विकसित हुआ था और तब अग्नि के आसपास नाचना अपने में अर्थपूर्ण नहीं था। इसलिए, ज्ञान की अग्नि जलाने की बात हृष्ण ने उठायी थी, लेकिन स्वभावत पुराने शब्दों का उपयोग करना पड़ता है। अब अगर नाचना ही था तो ज्ञान की ज्योति के आसपास नाचना था। अब कुछ भेट भी करना था तो गेह के दानों से कथा भेट होगी, अपने को ही दान कर देना था। ज्ञान यज्ञ का अर्थ है, ज्ञान की अग्नि में जो स्वयं को जो समर्पित कर देता है। ज्ञान यज्ञ का अर्थ है, ज्ञान की अग्नि में जो स्वयं की अस्मिता और अहकार को जला डालता है। ज्ञान यज्ञ का अर्थ है कि साधारण अग्नि से नहीं ज्ञान की अग्नि से, जिसमें व्यक्ति जलता है और समाप्त हो जाता है। अग्नि का प्रतीक लेकिन जारी रहा। इसके जारी रहने के पीछे बहुत गहरे कारण थे।

सबसे बड़ा गहरा कारण यो था वह यह था कि अतीत के मनुष्य की जिन्दगी में सदा ऊपर की तरफ जाने वाली चीज मिवाय अग्नि के और कोई भी न थी। पानी नीचे की तरफ जाता है। उसे कहीं से भी ढालो, वह नीचे की जगह खोज लेता है। अग्नि के साथ कुछ भी उपाय करो, उसकी लपटे सदा ऊपर की तरफ भागती है। पुराने मनुष्य के समक्ष एक अग्नि भर ऐसी चीज थी, जो सदा ऊपर की तरफ भागती है, ऊर्ध्वंगमन ही जिसका स्वभाव है। जिसे हम नीचे की तरफ बहा ही नहीं सकते। उसकी लपटे आकाश की यादा की, अज्ञात की यादा की सूचक हो गयी। जमीन के 'प्रेविटेशन' को ताढ़ने वाली वह पहली चीज मालूम पड़ी। पूर्थवी की कशिश का अग्नि पर कोई प्रभाव नहीं। एक कारण तो यह था कि ऊर्ध्वंगमन की प्रतीक अग्नि बन गयी। इसलिए, जिन्होंने अग्नि की लपटों के आसपास नृत्य किया था, नीचे थे, गीत गाये थे, खुशी प्रकट की थी उन्हाँने एक प्रतीक के अर्थ में लिया कि वह दिन होगा जिम दिन अग्नि की लपटों की तरह ऊपर की तरफ यादा करेगे। अभी आदमी का मन जैसा है वह सदा नीचे की तरफ यादा करता है पानी की तरह। वह नीचे गड़ँ खोजता है। उसे पर्वत शिखर पर भी छोड़ दो तो बहुत जल्दी खाई में नीचे आकर विश्राम करने लगता है। अग्नि के आस-पास नाचने वाले ऋषियों ने घोषणा की कि हम ऊपर की तरफ की यादा के सूत्र को नमस्कार करते हैं। और, हम अपने भीतर के प्राणों को अग्नि जैसा बनाना चाहते हैं कि वे ऊपर की तरफ भागें। यह बड़ा 'सिम्बालिक', बड़ा प्रतीकात्मक था।

दूसरी बात अग्नि में और बड़ी खबरी की थी, वह और भी गहरी थी कि अग्नि पहले तो इंधन को जलाती है और फिर सुद ही जल जाती है। पहले इंधन राख होता है, फिर सुद राख हो जाती है। ज्ञान के लिए यह प्रतीक बड़ा गहरा बन गया। ज्ञान पहले तो अज्ञान को जलाता है, अज्ञान को मिटाता है और फिर ज्ञान ज्ञान को भी मिटा देता है। इसलिए, उपनिषद् कहते हैं, अज्ञानी तो भटकते ही है अन्धकार में, ज्ञानी महाअंधकार में भटक जाते हैं। निश्चित ही, यह व्यग्य में कही गयी बात है उन ज्ञानियों के लिए, जिनके पास उधार ज्ञान है। क्योंकि, जिनके पास अपना ज्ञान है, वे तो बचते ही नहीं। उनके भटकने का तो उपाय नहीं है। तो, ज्ञान की घटना जिनके जीवन में घटी उनको दिखायी पड़ा कि ज्ञान की घटना अग्नि जैसी है। पहले अज्ञान जलेगा, फिर ज्ञान भी जलेगा, फिर ज्ञानी श्री कृष्ण जलेगा और पीछे नो सिद्धाय राख के कुछ बचेगा नहीं सब तिरोहित हो जायेगा। इतना शून्य होने को जो नेयार है वह ज्ञान की यात्रा पर निकल सकता है।

तीसरी बात, अग्नि की लपटे हमने उठती देखी है। थोड़ी दूर तक ही दिखायी पड़ती है, फिर खो जाती है। अग्नि बहुत थोड़ी दूर तक दृश्य है, इसके बाद अदृश्य हो जाती है। ज्ञान भी बहुत थोड़ी दूर तक दिखायी पड़ता है। या ऐसा कहे, थोड़ी दूर तक ज्ञान का सम्बन्ध दृश्य में रहता है। और, इसके बाद उम्रका सम्बन्ध अदृश्य से हो जाता है। फिर, दृश्य खो जाता है, अदृश्य ही रह जाता है। इन सारे कारणों से अग्नि बड़ा ही समय प्रतीक ज्ञान का बन गयी। और, कृष्ण ज्ञान यज्ञ शब्द का उपयोग कर सके। ये प्रतीक अगर हमारे ख्याल में हो तो ज्ञान यज्ञ सदा जारी रहेगा। अग्नि के आस-पास निमित्त हुए दूसरे 'रिचुअल' और यज्ञ तो खो जायेंगे, क्योंकि वे परिस्थिति से पैदा होते हैं, लेकिन ज्ञान यज्ञ सदा जारी रहेगा। इसलिए, कृष्ण ने यज्ञ को पहली दफा परिस्थिति से मुक्त करके शाश्वत अर्थ दे दिया। वेद जिस यज्ञ की बात करते थे वह परिस्थिति से बधा था, एक घटना से जुड़ा था। कृष्ण ने उसे उस घटना से मुक्त कर दिया। अब कृष्ण के अर्थ में ही यज्ञ का प्रयोजन होगा आगे। उसका अर्थ कृष्ण के द्वारा ही निकल सकता है। अब जो कृष्ण के पहले की यज्ञ की बात करता है वह असामयिक, 'आउट आफ डेट', व्यर्थ की बात करता है। उसमें कोई अर्थ नहीं रह गया, वह बात समाप्त हो चुकी।

कृष्ण जप यज्ञ की भी बात करते हैं। जप के साथ भी वही राज है जो ज्ञान के साथ है। जप पहले तो दूसरे विचारों को जलायेगा, जब दूसरे विचार जल जायेंगे तो जप का विचार भी जल जायेगा। जो शेष रह जाये वह अजपा स्थिति होती

है। इसलिए उसको भी अग्नि का प्रतीक बनाया जा सकता है, वह भी यश बनाया जा सकता है। आपके मन में बहुत विचार है। आप एक शब्द का जप की भाँति प्रयोग करते हैं। सारे विचारों को हटा देते हैं। एक ही विचार पर आप अपने मन को डोलाते हैं। एक घड़ी ऐसी आती है कि यह विचार भी बेमानी हो जाता है कि इसको क्यों दोहराये चले जाना। जब सब विचार ही छूट गये, तो इस एक को क्यों पकड़े चले जाना? फिर, यह भी छूट जाता है। फिर, आप जिस स्थिति में होते हैं वह अजपा स्थिति है। वहा जप भी नहीं है। अग्नि ने पहले इंधन जलाया, फिर खुद भी जल गयी। लेकिन, खतरा है जप के साथ। जैसा कि ज्ञान के साथ खतरा है। खतरे मध्य चीजों के साथ है। ऐसा कोई भी रास्ता नहीं है जिस पर न भटका जा सके। ऐसा रास्ता हो भी कैसे सकता है? जो भी रास्ता पहुचा सकता है उस पर यत्नी चाहे तो भटक भी सकता है। मध्य रास्ते इस तरह भटकाने वालों की तरह प्रयोग किये जा सकते हैं। और, आदमी ऐसा है कि वह सब रास्तों को पहुचने के लिए काम में कम लाता है, भटकने के ज्यादा काम में लाता है।

मैंने कहा कि ज्ञान यश है, जैसा कृष्ण कहते हैं, लेकिन आदमी ज्ञान का अर्थ ले सकता है पाण्डित्य, 'इन्कर्मेशन', सूचनाएं, शास्त्र, सिद्धान्त और शब्द में तथा इनको इकट्ठा कर ले सकता है। तब वह भटक गया। वैसा आदमी ज्ञान को उपलब्ध ही नहीं हुआ। ज्ञान के नाम से उमने कुछ और ही अपने उपर थोप लिया। और ध्यान रहे, अज्ञान से इतना नुकसान नहीं है, जितना मिथ्या ज्ञान से है, वासे ज्ञान से है। क्योंकि, वासे ज्ञान में कोई अग्नि नहीं होती। वासा ज्ञान, समझना चाहिए कि बुझ गये अगरे, बुझे कोयलों की तरह है। उसे कितना ही इकट्ठा कर लो कोई जीवन रूपातरण नहीं होता है। कोई अगर ज्ञान का यह अर्थ ले ले तो भटकेगा। ऐसे ही जप के साथ भी कठिनाई है। जप का अगर कोई यह अर्थ ले ले कि जप करते-करते ही पहुच जाऊगा, तो गलती में है। जप करते-करते कोई कभी नहीं पहुचा है। जप का उपयोग ऐसा ही किया जाता है, जैसे पैर में एक काटा लग गया हो और उस काटे को हम दूसरे काटे से निकाल देते हैं, लेकिन फिर दूसरे काटे पहले वाले काटे के धाव में रख नहीं लेते सुरक्षित। पहला काटा निकाला कि दूसरा बिल्कुल वैसे ही बेकार है जैसे पहला है और दोनों को एक साथ फेंक देते हैं। लेकिन हो सकता है कोई नासमझ, वह कहे कि जिस काटे ने मेरा काटा निकाला उसको म कैसे फेंक सकता है? वह कहे कि शिष्टता भी तो कम-से-कम

इतना कहती है कि जिस काटे ने मेरा काटा निकाला उसको मैं समाल कर रखूँ। तब वह आदमी पागल है। बुद्ध निरन्तर एक कहानी कहते हैं —

गाव में कुछ लोग एक नाव से उतरे। वे बड़े बुद्धिमान हैं। उन्होंने तथ किया कि जिस नाव ने हमें नदी पार करायी उस नाव को हम छोड़ कैसे सकते हैं? जिस पर हम बैठकर सवार हुए, अब उचित है कि उसको हम अपने ऊपर मवार करे। तो उन्होंने नाव को अपने सिरो पर उठा लिया और बाजार की तरफ चले। गाव में उनसे लोग पूछते लगे कि पागलो, हमने नाव पर तो बहुत बार लोगों को देखा, लेकिन नाव लोगों पर नहीं देखी। यह बात क्या है? वे सब कहने लगे, तुम तो अकृतज्ञ, तुम्हे 'ग्रेटीट्यूट' कुछ पता नहीं। हम जानते हैं अनुग्रह का भाव। इस नाव ने हमें नदी पार करवायी, हम इस नाव को समार पार करवा के रहेंगे। अब तो सदा यह हमार मिर पर रहेगी। बुद्ध यह मजाक में कहते हैं कि बहुत लोग हैं जो फिर भाधन को इस बुरी तरह पकड़ लेते हैं कि वही साध्य हो जाता है। नदी पार करने को नाव है, सिर पर ढोने को नाव नहीं है। जप का उपयोग किया जा सकता है इस होण के साथ कि वह भी एक काटा है। और, अगर आपने उसको काटा नहीं समझा और प्रेम में पड़ गये उसके, तो जो दूसरा विचार आपको भर हुए थे वह तो हट जायेंगे जप आपको भर देगा। एक आदमी चौबीस घटे निरर्थक विचारों से भरा हुआ है। और दूसरा आदमी चौबीस घटे 'राम राम राम राम राम' कर रहा है। इन दोनों के मन पर एक सा तनाव है। और, मजे की बात यह है कि जो आदमी चौबीस घटे 'राम राम राम राम' कर रहा है उसकी बजाय हो सकता है जो व्यर्थ विचारों से भरा है उसके जीवन में कुछ सार्थकता फैलत हो जाय। उसके व्यर्थ विचारों में भी कुछ आ सकता है, इसके पास सिवाय 'राम राम' के कुछ आने को नहीं। यह राम राम छोड़ने को राजी नहीं होगा। यह कहेगा, सब विचारों से छुटकारा दिलाया राम राम ने। अब मैं कैसे छोड़ सकता हूँ इसे? अब मैं नाव को सिर पर रखूँगा।

जप को यज्ञ कहना बड़ी 'सीकेट' बात है। कृष्ण जब जप को यज्ञ कहते हैं तो वह कहते हैं, ध्यान रखना, जप भी अग्नि की भाति है। पहले दूसरे को जलायेगा, फिर खुद को जलायेगा। और, जब खुद को जला ले तभी समझना कि सार्थक हुआ है। तो, हम शब्द का उपयोग कर सकते हैं दूसरे शब्दों को बाहर करने में लेकिन फिर उस शब्द को भी बाहर करना पड़ेगा। लेकिन मोहग्रस्त हुए और उस शब्द को सम्हाल कर रखा तो जप यज्ञ न रहेगा, जप सम्मोहन हो जायेगा। फिर हम जप शब्द से ही 'ओबसेस्ड' हो गये। फिर हम उसी में पीड़ित होकर रहने

लगेंगे। और, वही हमारा पागलपन बन जायेगा। इसलिए, जो लोग जप करते वक्त जप में लीन हो जाते हैं वे लोग फिर जप को कभी न छोड़ सकेंगे क्योंकि लीनता में एक गहरा सम्बन्ध स्थिर हो जाता है। जो लोग जप करते समय साक्षी बने रहते हैं, जो ऐसा अनुभव नहीं करते कि मैं जप कर रहा हूँ, बल्कि ऐसा अनुभव करते हैं कि जप मन से हो रहा है और मैं देख रहा हूँ वे एक दिन जप के पार जा सकते हैं, तब जप यज्ञ हो जाता है। क्योंकि, तब जप अग्नि की भाति हो जाता है। पहले वह दूसरे विचारों को जला देता है, फिर खुद जलकर राख हो जाता है। आप जब खाली रह जाते हैं शून्य—आप ध्यान को, समाधि को उपलब्ध होते हैं। इसलिए, कृष्ण ने ज्ञान और जप दोनों के साथ यज्ञ का प्रयोग किया। यज्ञ का प्रयोग अग्नि के केन्द्र पर है और अग्नि के प्रतीक को हम समझ ले तो ये दोनों बातें भी साफ समझ में आ सकती हैं। असल में जो जलने को तैयार है वह यज्ञ के लिए तैयार है, जो मिट्टने को तैयार है वह यज्ञ के लिए तैयार है,, जो होम होने के लिए तैयार है वह यज्ञ के लिए तैयार है। और तब, सब यज्ञ छोटे पड़ जाते हैं और जीवन यज्ञ ही शेष रह जाता है।

**प्रश्न** आचार्यजी, श्रीकृष्ण कहते हैं कि ज्ञानी जन कर्म कल स्थाग कर जन्मरूप बद्धन से छूट जाते हैं और परम पद को प्राप्त करते हैं। तो क्या कृष्ण जन्म को बन्धन मानते हैं? आपको दृष्टि की कुछ कल्पना दें।

उत्तर कृष्ण कहते हैं, ज्ञानी जन कर्म फल की आसक्ति को छोड़कर, फलासक्ति को छोड़कर जन्मरूपी बन्धन से मुक्त हो जाते हैं। ये सब बातें समझने जैसी हैं।

पहली बात, कर्म से मुक्त होकर नहीं, फलासक्ति से मुक्त होकर। कर्म से मुक्त होने को नहीं कहा जा रहा है, फलासक्ति से मुक्त हो जाते हैं। फलासक्ति में मुक्त हो जाने का जोर ही इसलिए है कि कर्म पीछे बचाया गया है। कर्म तो रहेगा। फलासक्ति नहीं रहेगी। फलासक्ति से मुक्त होकर कोई कैसे कर्म को उपलब्ध होगा, यह थोड़ा सोचने जैसा है। हम अगर फल से मुक्त हो जाय तो कर्म से ही मुक्त हो जायेगे। अगर कोई आपसे कहे कि फल की कामना न करे और कर्म करे, तो आप कहेंगे, मैं पागल हूँ? अगर फल की कामना नहीं है तो कर्म क्यों होगा? फल की कामना से ही तो कर्म होता है। एक कदम भी उठाते हैं तो किसी फल की कामना से उठाते हैं। अगर फल की कामना ही नहीं होगी तो यह कदम ही क्यों उठेगा? हम उठायेंगे ही क्यों? 'फलासक्ति से मुक्त होकर' इस शब्द ने, जिन लोगों

ने कृष्ण को सोचा है उन्हें, बड़ी कठिनाई में डाला है। और सबसे बड़ी कठिनाई उन्होंने यह पैदा की है कि तब उन्होंने एक बहुत ही रक्ष्यपूर्ण ढग से फल की पुनर्प्रतिष्ठा कर दी है। तब उन्होंने यह कहा कि जो फलासक्ति से मुक्त होते हैं वे मोक्ष को या मुक्ति को उपलब्ध हो जाते हैं। मुक्ति और मोक्ष को फल की तरह उपयोग में लाना शुरू किया है कि तुम ऐसा करोगे तो ऐसा मिलेगा। तुम ऐसा नहीं करोगे तो ऐसा नहीं मिलेगा, यहीं तो फल की आकाशा है। मोक्ष को भी फल बना लिया, तभी वे लोगों को समझा पाये कि तुम सब और फलों को छोड़ दो। मोक्ष को अगर पाना चाहते हो तो सब फलों को छोड़कर ही तुम मोक्ष को पा सकते हो। लेकिन यह तो कृष्ण के साथ बड़ी ज्यादती हो गयी। अगर कृष्ण ऐसा कहते हैं कि जो सब फलासक्ति से मुक्त हो जाते हैं वे ज्ञानीजन जन्मरूपी बन्धन से मुक्त होते हैं। तो उनके मुक्त होने की जो बात है वह सिर्फ परिणाम की सूचक है। 'कोन्सीवेस' की खबर है। वह फल नहीं है। ऐसा नहीं है कि जिन्हे जन्मरूपी बन्धन से मुक्त होना है वे फल की आकाशा छोड़ दे। तब तो फिर यह फल की ही आकाशा होगी। यह सिर्फ खबर है कि ऐसा होता है। फल की आकाशा छोड़ने से मुक्ति होती है, ऐसा होता है। लेकिन, मुक्ति की आकाशा जो करता है उसे तो मुक्ति कभी फलित नहीं हो सकती। क्योंकि, वह फल की आकाशा करता है। लेकिन, हम बिना फलाकाशा के कर्म कंसे करेगे?

इसे समझने के लिए यह देखना जरूरी होगा कि हमारी जिन्दगी में दो तरह के कर्म हैं। एक कर्म तो वह है जो हम अभी करते हैं कल कुछ पाने की आशा में। ऐसा कर्म भविष्य की तरफ से 'पुल' है, खीचना है। भविष्य खीच रहा है लगाम की तरह। जैसे, एक गाय कोई गले में रस्सी बाधकर लिये जा रहा है। ऐसा भविष्य हमारे गले में रस्सिया डालकर हमें खीचे लिये जा रहा है। यह मिलेगा, इसलिए हम यह कर रहे हैं। वह मिलेगा इसलिए हम वह कर रहे हैं। मिलेगा भविष्य में, कर अभी रहे हैं। रस्सी अभी गले में पड़ी है, हाथ में जो फदा है रस्सी का, वह भविष्य का है। मिलेगा, नहीं मिलेगा, यह पक्का नहीं है। क्योंकि, भविष्य का अर्थ ही यह है कि जो पक्का नहीं है। भविष्य का अर्थ ही है कि जो अभी नहीं हुआ है, होगा। लेकिन, उस आशा में हम रस्सी में बधे हुए पशु की तरह भागे चले जा रहे हैं। यह बड़े मजे की बात है, यह शब्द पशु बड़ा बढ़िया है। कभी आपने शायद स्थान न किया होगा कि पशु का मतलब ही होता है, जो पाश में बधा हुआ चला जा रहा है। तब तो हम सब पशु हैं। पशु जो भविष्य से बधा है, जिसकी लगाम भविष्य के हाथों में है और जो आज इसलिए जीता है कि कल कुछ होगा। कल भी इसलिए

जियेगा कि परसो कुछ होगा । जो हर दिन आज, कल के लिए जियेगा और कभी नहीं जी पायेगा क्योंकि जब आयेगा तब आज आयेगा और जीना उसका सदा कल होगा । कल भी यही होगा, परसो भी यही होगा, क्योंकि जब भी समय आयेगा, वह आज की तरह आयेगा और यह आदमी पाश में बधा हुआ पशु की तरह, भविष्य से खिचा हुआ कल में जियेगा । इसकी पूरी जिन्दगी अनजियी, 'अनलिङ्ग' बीत जायेगी । मरते वक्त यह कह सकेगा कि मैंने सिर्फ जीने की कामना की, मैं जी नहीं पाया हूँ । और, मरते वक्त इसकी सबसे बड़ी पीड़ा यही होगी कि अब आगे कोई कल नहीं दिखायी पड़ता । अगर आगे कोई दिखायी पड़ जाय तो यह मौत को भी क्षेलने को राजी हो जायेगा । इसलिए, मरता हुआ आदमी पूछता है, पुनर्जन्म है? मैं मरणा तो नहीं । वह असल में यह पूछ रहा है कि कल है अभी बाकी? अगर कल है तो चल सकता है, क्यों कि मेरे जीने का ढग कल पर निर्भर है । अगर कल नहीं है तब तो बड़ा मुश्किल हो गया । मैं तो रोज कल के लिए जिया और आज अचानक पाता हूँ कि आज के भाथ ही सब समाप्त होता है, और कल नहीं है । 'फूँचर ओरिएटेड लिविंग' जो है वह फलासक्ति का अर्थ है । भविष्य केन्द्रित जीवन ।

एक ऐसा कर्म भी है जो भविष्य से खिचाव की तरह नहीं निकलता, बल्कि 'स्पोटेनियस' है और ज्ञाने की तरह हमारे भीतर से फूटता है । जो हम हैं, उससे निकलता है । जो हम होगे उससे नहीं । रास्ते पर आप जा रहे हैं, किसी आदमी का जो आपके सामने चल रहा है उसका छाता गिर गया है । आपने उठाया और छाता दे दिया । न तो छाता देते वक्त यह स्थाल आया कि कोई 'प्रेस रिपोर्टर' आस-पास ह या नहीं, न छाता देसे वक्त यह स्थाल आया कि कोई 'फोटोग्राफर' आस-पास ह या नहीं । न छाता देते वक्त यह स्थाल आया कि कोई देख रहा है कि नहीं देख रहा है । न छाता देते वक्त यह स्थाल आया कि यह आदमी धन्यवाद देगा कि नहीं । तो यह कर्म फलासक्ति रहित हुआ । यह आपसे निकला सहज । लेकिन भमझे कि उस आदमी ने आपको धन्यवाद नहीं दिया । दबाया छाता और चल दिया । और आपके अगर मन में विषाद की जरा सी भी रेखा आयी तो आपको फलाकाशा का पता नहीं था, लेकिन अचेतन में फलाकाशा प्रतीक्षा कर रही थी । आप सचेतन नहीं थे कि इसके धन्यवाद देने के लिए मैं छाता उठाकर दे रहा हूँ, लेकिन अचेतन मन भाग ही रहा था कि धन्यवाद दो । उसने धन्यवाद नहीं दिया । उसने छाता दबाया और चल दिया । तो आपके मन में विषाद की एक रेखा छूट गयी और आपने कहा कि यह कैसा कृतध्न, कैसा अकृतज्ञ आदमी है, मैंने छाता उठाकर दिया और धन्यवाद भी नहीं । तो भी फलाकाशा हो गयी । अगर कृत्य

अपने में पूरा है, 'टोटल' है अपने से बाहर उसकी कोई माग ही नहीं है, तो फलाकाशा रहत हो जाता है। कोई भी कृत्य जो अपने में पूरा है, 'सर्किल' की तरह है, बृत की तरह अपने को घेरता है और पूर्ण हो जाता है। अपने से बाहर की कोई अपेक्षा ही उसमे नहीं है, बल्कि छाता देकर आपने उसे धन्यवाद दिया कि तूने मुझे एक पूर्ण कृत्य करने का भीका दिया, जिसमे कि कोई आकाशा न थी, वह अबसर भेरे लिए दे दिया। वह इतना आनन्द दे जाता है कि उसके पार कोई माग नहीं है। फलाकाशा रहत कृत्य का भेरी दृष्टि मे जो अर्थ है वह यह कि कृत्य पूर्ण हो, उसके बाहर कोई सवाल ही नहीं है। वह खुद ही इतना आनन्द दे जाता है, वह खुद ही अपना फल है, कृत्य ही अपना फल है। आज ही अपना फल है, यही क्षण अपना फल है।

जीसस एक गाव से गुजर रहे हैं। उस गाव के आसपास लिली के फूलों के बड़े सेत हैं। वह अपने शिष्यों से कहते हैं, देखते हो, लिली के फूलों को ? शिष्य बड़ी देर से देख रहे थे, लेकिन नहीं देख रहे थे। क्योंकि, मिर्फ़ आखों से ही नहीं देखा जाता है, प्राणों से देखा जाता है। जीसस ने कहा, देखते हो इन लिली के फूलों को ? शिष्य ने कहा, देखते हैं, इसमे देखते जैसा क्या है। जैसे लिली के फूल होते हैं, वैसे हैं। जीसस ने कहा कि नहीं, मैं तुमसे कहता हूँ कि सम्प्राट सोलोमन भी अपनी पूरी प्रतिष्ठा और गौरव मे इतना सुन्दर न था जितने ये गरीब लिली के फूल इस गाव के किनारे हैं। यहदी विचार मे कुबेर का तुनात्मक प्रतीक है सोलोमन। कहा सोलोमन, कहा ये गरीब लिली के फूल अनजान गाव के रास्तो पर खिले, शिष्य ने कहा। जीसस ने कहा, लेकिन देखो गौर से। सोलोमन भी अपनी पूरी 'र्लोरी' मे, जब वह पूरा अपने वैभव पर था तब भी इस एक साधारण लिली के फूल के बराबर सुन्दर न था। कोई पूछता है कि क्या कारण है ? तो जीसस कहते हैं, फूल अभी और यही खिलते हैं। सोलोमन सदा भविष्य मे रहता है। भविष्य का तनाव कुरुप कर जाता है। फूलों को कल का कोई पता नहीं। यही हवा का झोका सब कुछ, यही सूरज की किरण मब कुछ, यही पृथ्वी का टुकड़ा सब कुछ है। यही राह, यही होना, बस यही सब कुछ है, इसके बाहर कुछ होना नहीं। ऐसा नहीं कि साक्ष नहीं आयेगी। साक्ष अपने से आयेगी। आपकी अपेक्षाओं से आती है या आपकी आकाशाओं से आती है क्या ? ऐसा नहीं कि इन फूलों मे बीज नहीं लगेंगे और फल नहीं बनेंगे, वह अपने से लगते हैं, आपकी अपेक्षाओं से नहीं लगते हैं। लेकिन, हम उस पाशल औरत की तरह हैं जिसके बाबत हम सबको पता होगा ही, क्योंकि हम सब उसकी तरह हैं।

एक पागल औरत एक दिन सुबह अपने गाव से नाराज होकर चली गयी। गांव भर के लोगों ने कहा, क्या कर रही हो, कहा जा रही हो? उसने कहा, अब मैं जा रही हूँ, तुमने मुझे बहुत सताया, कल से तुम्हे पता चलेगा। पर, लोगों ने कहा, वरंत क्या है? उसने कहा, मैं वह मुर्गा अपने साथ लिये जा रही हूँ जिसकी बाग देने से इस गाव में सूरज उगा करता है। अब यह सूरज दूसरे गाव में उगेगा। वह दूसरे गाव पहुँच गयी। मुर्गे ने बाग दी, सूरज उगा, उसने कहा, अब रोते होगे नासमझ। क्योंकि, अब सूरज इस गाव में उग रहा है।

उस बूढ़ी औरत के तर्क में कोई खामी है? जरा भी नहीं। उसके मुर्गे की बाग देने से सूरज उगता था और फिर जब दूसरे गाव में भी बाग देने से सूरज उगा तब तो बिल्कुल पक्का ही हो गया न, कि अब उस गाव का क्या होगा? मुर्गे ऐसी प्राप्ति में नहीं पड़ते, लेकिन मुर्गे के मालिक पड़ जाते हैं। मुर्गे तो सूरज उगता है इसलिए बाग देते हैं। मुर्गे के मालिक समझते हैं कि अपना मुर्गा बाग दे रहा है इसलिए सूरज उग रहा है। हम सबका चित्त ऐसाही है।

भविष्य तो अता है अपने से। वह आ ही रहा है। वह हमारे रोके न रुकेगा। फल आते हैं अपने से, वे हमारे रोके न रुकेगे। हम अपने कृत्य को पूरा कर ले, इतना काफी है। उम्मेके बाद हमें हेने की जरूरत नहीं है। कृष्ण इतना ही कहते हैं कि तुम्हारा कृत्य पूरा हो, 'द एक्ट मस्ट बी टोटल'। टोटल का मतलब है कि उसके बाहर करने को तुम्हें कुछ भी न बचे। तुमने पूरा उसे कर लिया, बात खत्म हो गयी। इसलिए, वे कहते हैं कि तुम परमात्मा पर छोड़ दो फल। परमात्मा पर छोड़ने का मतलब यह नहीं कि कोई नियन्ता, कोई 'कटोलर' कही बैठा है, उस पर तुम छोड़ दो और वह तुम्हारा हिसाब—किसाब रखेगा। नहीं, परमात्मा पर छोड़ने का कुल इतना ही मतलब है कि तुम कृपा करो, तुम सिफ़ करो, और समर्पित से उस करने की प्रतिष्ठनि अती ही है। वह आ ही जायेगी। जैसे कि इन पहाड़ों में मैं जोर से चिल्लाऊ और काई मुझसे कहे कि तुम चिल्लाओ भर, प्रतिष्ठनि की चिन्ता मत करो, पहाड़ प्रतिष्ठनि करते ही हैं। तुम पहाड़ों पर छोड़ दो प्रतिष्ठनि की बात, तुम नाहक चिन्तित मत होओ, क्योंकि तुम्हारी चिन्ता तुम्हें ठीक से ध्वनि भी न करने देती और फिर हो सकता है, प्रतिष्ठनि भी न हो पाये। क्योंकि प्रतिष्ठनि होने के लिए ध्वनि तो होनी चाहिए? फलाकांक्षा कर्म को करने ही नहीं देती, बल्कि फलाकांक्षा में उलझे हुए लोग कर्म करने से चूक ही जाते हैं। क्योंकि, कर्म का क्षण है वर्तमान और फल का क्षण है भविष्य। जिनकी आसे भविष्य पर गढ़ी हैं, वे अगर वर्तमान के बहुत नाजुक क्षण से चक जाते हों तो इसमें आश्चर्य

मही है। क्योंकि, आखें तो गड़ी हैं भविष्य पर, कल पर, फल पर। तो काम बेमानी हो जाता है। किसी तरह करते हैं। नजर लगी होती है अगे, ध्यान लगा होता है अगे, और जहा ध्यान है वही हम है। अगर ध्यान बर्तमान क्षण पर नहीं है तो गेर ध्यान में 'इनबटेटिवली', जो होता है, होता है। उस होने से बहुत गहराई नहीं होती, उस होने से पूर्णता नहीं होती, उस होने से आनन्द नहीं होता। कृष्ण की कलाकाशा रहित कर्म की जो दृष्टि है उसका कुँल मतलब इतना है कि तुम इतना भी अपना हिस्सा भविष्य के लिए मत छोड़ो कि इस काम में बाधा पढ़ जाय। तुम इस काम को पूरा ही कर लो। भविष्य जब आये तब तुम भविष्य में पूरे हो लेना, कृपा करके अभी तुम इसी में पूरे हो लो। भविष्य आयेगा और तुम्हारे पूरे होने से फल निकलेगा। उसकी तुम चिन्ता ही मत करो, उसे तुम निश्चित हो परमात्मा पर छोड़ सकते हो।

इसका मतलब यह हुआ कि हम जो कर रहे हैं वह हमारा आनन्द हो जाय तभी हम भविष्य से और कल से बच सकते हैं। जो हम कर रहे हैं वह हमारे आनन्द से सृजित हो, वह हमारे आनन्द से निकले, उसका आविर्भाव हमारे आनन्द से हो। वह हमारे भीतर से झरने की तरह फूटे। किसी भविष्य के लिए नहीं। पशु की तरह नहीं, झरने की तरह। झरना किसी भविष्य के लिए नहीं फूट रहा है। भला आप मोचते होंगे कि नदिया सागर के लिए बह रही है? गलती में है आप। सागर तक पहुँच जाती है यह दूसरी बात है। नदिया बहती है अपने बेग से, नदिया बहती है अपने 'ओरीजन' सोसं की क्षमता से। गगोती की क्षमता से गगा बहती है। सागर तक पहुँचती है, यह बिल्कुल दूसरी बात है। इस पूरी लम्बी यात्रा में गगा को सागर में कुछ लेना-देना नहीं है। सागर मिलेगा कि नहीं मिलेगा, इससे कोई सम्बन्ध ही नहीं है। गगा की भीतरी ऊर्जा इतनी है कि वह बहाये लिये जाती है।

बहाये लिए जाती है। और, हर तट पर गगा नाच रही है। कोई सागर के तट पर ही नाचती है, ऐसा नहीं, हर तट पर नाच रही है। पत्थरों में, पहाड़ों में, गड्ढों में, ऊचाइयों पर, नीचाइयों में, सुख में, दुख में, निंजन में, रेगिस्तान में, बुक्षों में, हरियाली में, मनुष्यों में, न मनुष्यों में, वह हर जगह नाच रही है। जहा है जिस तट पर, वहा नाच पूरा है। उसी नाच से वह अगले तट पर पहुँच जाती है यह दूसरी बात है। लेकिन, अगले तट पर पहुँचने के लिए वह किसी तट से अलदी में नहीं है। फिर, एक दिन वह सागर तक भी पहुँच जाती है। सागर तक पहुँच जाना उसके जीवन की कलशुति है, वह फल है। लेकिन, उस कल के लिए कहीं कोई आकाशा नहीं है। एक झरना कूट रहा है, अपनी भीतरी ऊर्जा से

फूटता है। कृष्ण यह कह रहे हैं कि आदमी ऐसा जिये कि अपनी भीतरी ऊर्जा से उसका कृत्य फूटता रहे। मेरी दृष्टि में, सन्यासी और गृहस्थ में यही फर्क है। गृहस्थ रोज कल के लिए जीता है, सन्यासी आज की ऊर्जा से फूटता है और जीता है। आज पर्याप्त है। कल आयेगा, वह भी आज की तरह आयेगा। उसमें भी हम आज की तरह जी लेंगे।

मुहम्मद के जीवन में एक छोटी-भी घटना है। मुहम्मद उन थोड़े-से सन्यासियों में से हैं जैसे सन्यासी मैं दुनिया में देखना चाहूँगा। मुहम्मद को रोज लोग भेट कर जाते हैं। कोई मिठाइया दे जाता है, कोई रुपये दे जाता है, कोई कुछ कर जाता है। साझे नक्कलोंग आते हैं, खाते हैं, पीते हैं। माझ को मुहम्मद अपनी पत्नी को कहते हैं कि अब मब बाट दो, क्योंकि माझ हो गयी। तो जो भी होता है, मब बाट दिया जाता है। साझे मुहम्मद किर फकीर हो जाते हैं। उनकी पत्नी उनसे कहती है कि यह ठीक नहीं, कल के लिए कुछ बचाना उचित है। तो, मुहम्मद कहते हैं, जो आज ले आया था, कल उसकी फिर प्रतीक्षा करें। और, जब आज बीत गया तो कल भी बीत जायेगा। फिर, वह अपनी पत्नी में कहते हैं कि, क्या तू मुझे नामितक समझती है कि मैं कल का इन्तजाम करूँ? कल का इन्तजाम नामितकता है। कल का इन्तजाम इस बात की मूरचना है कि जिस समिट ने मुझे आज दिया, कल पता नहीं देगी, नहीं देंगी। कल का इन्तजाम अश्रद्धा है। कल का इन्तजाम अश्रद्धा है जागतिक ऊर्जा पर, विश्व प्राण पर। जिसने मुझे आज दिया, वह कल मुझे देंगा या नहीं देगा इसलिए मैं इन्तजाम कर लूँ? लेकिन, मैं कितना इन्तजाम कर पाऊँगा? मेरे इन्तजाम कहा तक काम पड़ेंगे। मुहम्मद कहते हैं बाट दे, कल सुबह फिर श्रद्धा से प्रतीक्षा करेंगे। मुहम्मद कहते हैं, मैं आन्मिक हूँ। तो, कल के लिए बचाकर नहीं रख सकता, नहीं तो परमात्मा क्या कहेगा कि ऐ मुहम्मद, तुझे इतना भी भगोसा नहीं।

रोज माझ मब बट जाता है। फिर, मुहम्मद की मौत आती है। भरने की रात चिकित्सकों ने कहा, वि, आज वह बच न सकेंगे। उनकी पत्नी ने सोचा कि आज तो कुछ बचा ही लेना चाहिए। रात दबा दाढ़ की जरूरत हो सकती है। तो, उसने पाच दीनार, माझ को जब मब बाटा है, तो छिपा दिये। रात को बारह बजे मुहम्मद बड़ी तड़पन में है, बड़ी पीड़ा में है। आखिर उन्होंने अपनी चादर उघाड़ी और पत्नी से पूछा कि मैं सोचता हूँ, ममन्नता हूँ, मालूम होता है कि आज गरीब मुहम्मद गरीब नहीं है, कुछ घर में बचा है? उसकी पत्नी तो बहुत घबरा गयी। उसने कहा कि आपको कैसे पता चला? मुहम्मद ने कहा कि तेरे चेहरे को

देखकर पता चलता है कि आज तु वैसी निर्श्वत नहीं है जैसी सदा रहती है। घर में तूने जरूर कुछ बचाया है। जो चिन्तित है वे बचा लेते हैं, जो बचा लेते हैं वे भी चिन्तित हो जाते हैं। वह 'लिंगियस सकिल' है। मुहम्मद कहते हैं, उसे निकाल और बाट दे। मुझे शांति से मरने दे। आखिरी रात कही ऐसा न हो कि परमात्मा कहे कि आखिरी रात मुहम्मद तू चूक गया। और, जब मैं उमके सामने जाऊं तो अपराधी की तरह खड़ा होना पड़े। निकाल कहा है? उसकी पत्नी ने घबराहट में वह पाच रूपये जो छिपा रखे थे कि रात दवा दारू कि जरूरत पड़े, निकाले। मुहम्मद ने कहा, किसी को भी पुकार कर दे सड़क से। उसने कहा, आधी रात कौन होगा? उसने कहा, तू पुकार तो। पुकार दी गयी है, कोई बाहर सड़क पर भिखारी था वह भीतर आ गया। मुहम्मद ने कहा, देख आधी रात को देने वाला था। सकता है तो लेने वाला भी आ सकता है। ये पाच रूपये दे दे। वह पाच रूपये उसे दे दिये गये, किर मुहम्मद ने चादर ओढ़ ली। वही उनका आखिरी कृत्य था। मुहम्मद डूब गये उसी वक्त। जैसे, वह पाच रूपये अटकाव थे। जैसे, वह पाच रूपये बाधा थे। जैसे, वह पाच रूपये पीड़ा थी, जैसे वह पाच रूपये की गाठ उस सत्यसी को भारी पड़ रही थी।

प्रत्येक कृत्य, प्रत्येक क्षण और प्रत्येक दिन अपने में पूरा होता जायेगा। तो भी कल आता है, कल सदा आता रहा है, लेकिन तब कल रोज नया होता है। बासा नहीं होता है। और, तब कल जैसा भी आता है वह 'फस्ट्रेट' नहीं करता। कल हमें विषाद से भर देगा अगर आज की हमारी अपेक्षाओं के विपरीत पड़ा। और, किन अपेक्षाओं के अनुकूल भविष्य पड़ता है? कभी नहीं पड़ता। क्योंकि, भविष्य इतने विराट पर निभर है और हमारी अपेक्षाएँ इतने क्षुद्र पर निभर हैं कि इस क्षुद्र की अपेक्षाएँ इस विराट में कैसे पूरी होंगी? उनका कोई पता ही नहीं चलेगा। यह ऐसा ही है जैसे कि नदी की बहती धार में एक बूद तप करती हो कि अगर पश्चिम को कल बहे तो बड़ा अच्छा है। एक बूद कहा निर्णायक होगी कि पश्चिम को बहे? नदी को जहा बहना है बहेगी। एक बूद उसके साथ ही होगी। लेकिन, कल दुखी होगी। क्योंकि, उसने तय किया था पश्चिम बहने का और नदी पूरब बही जा रही है। और, तब विषाद और पीड़ा भर जायेगी। वह अपेक्षाएँ, फलाकाक्षाएँ, विषाद, दुख, फस्ट्रेशन और पीड़ा से भर जाती है, असफलताओं से भर जाती है। जो आदमी प्रतिपल पूरा जी रहा है उसके जीवन में विषाद नहीं है। इसलिए, जो कर रहे हैं, उस करने में पूरे हो जाएँ और फल परमात्मा पर छोड़ दे। ऐसा जो करेगा तो कृष्ण कहते हैं कि वह अन्यरूपी बन्धन से छूट जाता है।

वह बड़े मजे की बात कह रहे हैं। वह यह कह रहे हैं, जन्मरूपी बन्धन से। जन्म बन्धन है ऐसा वह नहीं कह रहे। असल में जो आदमी फलाकाशा से भरा है वह आदमी जन्म लेने की आतुरता से भरा होता है। क्योंकि, फल के पूरा करने के लिए कल तो होना चाहिए न। जो आदमी फलों में जीता है वह आदमी जन्म लेने की आतुरता में जीता है। उसे जन्म लेना ही पड़ेगा। इसेलिये, जो आदमी फलों में जीता है उसके लिए जन्म बन्धन बन जाता है। उसकी मुक्ति नहीं रहती। रहेगी नहीं मुक्ति, क्योंकि जन्म का भी आनन्द उसे नहीं है। आनन्द तो उसे कुछ फल मिलने का है। जन्म भी उसके लिए आनन्द नहीं है, जन्म भी एक अवसर है जिसमें वह कुछ फलों को पाकर आनंदित होना चाहता है। मृत्यु उसके लिए दुख होती, क्योंकि मृत्यु उसके उन सब मार्गों को तोड़ देगी जिन मार्गों से भविष्य में जिया जा सकता था। और, जन्म उसके लिए बन्धन मालूम पड़ेगा। जन्म उसके लिए इसलिए बन्धन मालूम पड़ेगा कि वह उस जीवन को जानता ही नहीं है जो मुक्ति है। एक बार कोई जीवन को जान ले तो जन्म भी नहीं रह जाता है, और मृत्यु भी नहीं रह जाती। कृष्ण ने उसमें जो बात कही है वह अधूरी है। उसे पूरा किया जाना चाहिए। वह कह रहे हैं, जन्मरूपी बन्धन से मुक्त हो जाता है। मैं आपसे कह रहा हूँ, वह मृत्युरूपी बन्धन से भी मुक्त हो जाता है। इसका मतलब यह नहीं है कि जन्म और मृत्यु बन्धन हैं। इसका मतलब यह है कि जन्म और मृत्यु बन्धन प्रतीत होते हैं अज्ञान में। ज्ञानी के लिए तो जन्म और मृत्यु रह ही नहीं जाते। यह जो बन्धन की प्रतीति है वह ज्ञानी चित्त की प्रतीति है और जो मुक्ति की प्रतीति है वह ज्ञानी चित्त की प्रतीति है। जन्म बुरा है, ऐसा वह नहीं कह रहे। लेकिन, जैसे हम हैं, उनको जन्म बन्धन मालूम होगा। हम जैसे आदमी प्रेम तक को बन्धन बना लेते हैं। मेरे पास न मालूम कितने मिलों की लड़कियों के लड़कों के विवाह के आमत्रण आते हैं। उसमें लिखा रहता है कि मेरी पुत्री प्रणय के बन्धन में बधने जा रही है। मेरा बेटा विवाह के बन्धन में बध रहा है। हम प्रेम को भी बन्धन बना लेते हैं। जबकि प्रेम मुक्ति है। कहना तो यही उचित होगा कि मेरी बेटी प्रेम में मुक्त होने जा रही है। हम कहते हैं बेटी प्रेम में बधने जा रही है। हम प्रेम को भी बन्धन बना लेते हैं। प्रेम बन्धन है, ऐसा नहीं, हम जैसे हैं, हम प्रेम को भी बन्धन बना लेते हैं। हम जैसे हैं, हम जन्म को भी बन्धन बना लेते हैं। हम जैसे हैं, हम मृत्यु को भी बन्धन बना लेते हैं। हम जैसे हैं, हम पूरे जीवन को बन्धनों की एक शूलकां बना लेते हैं। जो

व्यक्ति काण मे जीता, बर्तमान मे जीता, फलाकाला से मुक्त जीता, अनासक्त जीता, जो व्यक्ति जीवन को अभिनय की तरह जीता, जो करता हुआ न करता है, जो न करता हुआ करता है ऐसा व्यक्ति जिन्दगी मे जो भी ही उस सबको मुक्ति बना लेता है। उसके लिए बन्धन भी मुक्ति हो जाते हैं। हमारे लिए मुक्ति भी बन्धन है। यह हमारे होने के ढग पर निर्भर करता है। इसलिए, कृष्ण की बात मे, कि जन्म बन्धन है ऐसे जन्म की निन्दा नहीं है। हम जैसे हैं, हमने जन्म को बन्धन बनाया है। और, अगर हम फलाकाला रहित होकर जीना शुरू करे तो जन्म हमारे लिए बन्धन नहीं रह जायेगा। ऐसा व्यक्ति जीवन मुक्ति का उपलब्ध होता है। यही जीवन है मुक्ति। यही है वह जीवन, अभी है वह जीवन। हमारे देखने पर निर्भर करता है।

मैंने सुना है एक विद्रोही सूफी फकीर को, किसी खलीफा ने कारागृह मे डाल दिया। उसके हाथो मे जजीरे डाल दी, उसके पैरो मे बेड़िया डाल दी और वह सूफी फकीर जो निरन्तर स्वतन्त्रता के गीत गाता था, जेल के सीखचो मे डाल दिया गया। वह समाट, वह खलीफा उससे मिलने गया। उसने पूछा कि कोई तकलीफ तो नहीं है? उस फकीर ने कहा, तकलीफ कैसी? शाही मेहमान को तकलीफ कैसे हो सकती है? आप मेहमान, आप 'होस्ट', तकलीफ कैसे हो सकती? हम बड़े आनन्द मे हैं। झोपड़े से महल मे ले आये। समाट ने कहा, मजाक तो नहीं करते हो? उस फकीर ने कहा, जिन्दगी को मजाक समझा, इसलिए ऐसा कह पाते हैं। समाट ने पूछा, जजीरे बहुत बोक्षिल तो नहीं हैं? ये जजीरे कोई पीड़ा तो नहीं देती? उस फकीर ने जजीरो को गौर से देखा और कहा, मुझसे बहुत दूर है। मेरे और इन जजीरो के बीच बड़ा फासला है। तुम इस भ्रम मे होगे कि तुमने मुझे कारागृह मे डाला, लेकिन मेरी मुक्ति को तुम कारागृह नहीं बना सकते, क्योंकि मैं कारागृह को भी मुक्ति बना सकता हूँ।

इस पर ही सब निर्भर करता है कि हम कैसे देखते हैं। उस फकीर ने कहा, बड़ा फासला है इन जजीरो मे और मुझमे। तुम कैसे मुझमे जजीरे डालोगे? मसूर को भूली दी गयी और मसूर के हाथ पैर काटे गये। लाखोलोग देखने इकट्ठे थे; लेकिन मसूर हसता ही रहा और उसकी हसी बढ़ती ही गयी। जब उसके पैर काटे तब वह जितना हस रहा था, जब हाथ काटे तो और जोर से हँसने लगा। लोगो ने पूछा कि पागल मसूर, यह कोई हसने की बड़ी है? मसूर ने कहा, मैं इसलिए हस रहा हूँ कि तुम समझ रहे हो, मुझे मार रहे हो और तुम किसी और को काटे जा रहे हो। याद रखना, मसूर ने कहा कि मसूर

को जब तुम काट रहे थे तब वह हस रहा था । ध्यान रखना तुम मसूर को कू भी नहीं सकते, काटना तो बहुत दूर की बात है और तुम जिसे काट रहे हो, वह मसूर नहीं है । मसूर तो वही है जो हस रहा है । उन्होंने जीभ काट दी मसूर की । लेकिन, तब मसूर की आखे हस रही थी । उन लाखों लोगों ने कहा, जीभ तो तुमने काट दी, लेकिन मसूर हस रहा है । उसकी आखे हस रही है । उन जल्लादों ने उसकी आखे फोड़ दी, लेकिन मसूर का चेहरा हसता रहा । उसका रोया रोया हस रहा था । लोगों ने कहा, तुम इसको न रुला सकोगे । अब इस आदमी के पास काटने को भी कुछ न बचा, लेकिन उसका पूरा अस्तित्व हस रहा है ।

जीवन वैमा ही हो जाता है, जैसे हम हैं। जन्म वैमा ही हो जाता है जैसे हम हैं, मृत्यु वैसे ही हो जाती है जैसे हम हैं। यदि हम मुक्त हैं तो जन्म मुक्ति है, जीवन मुक्ति है, मृत्यु मुक्ति है । यदि हम बधे हैं पाश में, पशु हैं, तो जन्म बन्धन है, जीवन बन्धन है, प्रेम बन्धन है, मृत्यु बन्धन है, सब बन्धन है । परमात्मा भी तब एक बन्धन की तरह ही दिलायी पड़ता है ।

**प्रश्न** . पहले एक चर्चा में आपने कहा था कि पुरुष में साठ प्रतिशत पुरुष और चालीस प्रतिशत स्त्री, तथा स्त्री में उसका उल्टा अनुपात होता है । यदि पचास-पचास प्रतिशत अनुपात हो जाय तो क्या नपुसक पैदा होगा ? परमात्मा को अर्धनारीश्वर क्यों कहा है ?

उत्तर मैंने ऐसा नहीं कहा कि साठ और चालीस का अनुपात होता है— उदाहरण के लिए कहा । अनुपात बहुत हो सकते हैं । सत्तर तीस भी हो सकता है, अम्सी बीस भी हो सकता है । नब्बे दस भी हो सकता है । इन्द्रावन भी हो सकता है । और पचास पचास भी हो सकता है । और, जब पचास पचास होता है तभी वह व्यक्ति यीन की दृष्टि से द्वन्द्व के बाहर हो जाता है, जिसको हम नपुसक या 'इम्पोटेट' कह रहे हैं । यह बड़े मजे की बात है कि इस मुल्क ने बहु शब्द को नपुसक लिंग में रखा है । बहु पुरुष है कि स्त्री ? नहीं, बहु 'इम्पोटेट' है । वह जो कि 'ओमनीपोटेट' है, वह जो कि सर्वशक्तिमान है, उसका जो हमने लिंग रखा है उसको हमने नपुसक लिंग में रखा है । क्योंकि, वह कैसे स्त्री हो सकता है, वह पक्ष हो जायेगा । वह कैसे पुरुष हो सकता है, वह पक्ष हो जायेगा । वह निष्पक्ष है । निष्पक्ष है तो वह पचास पचास दोनों पूरा है । तभी वह निष्पक्ष हो सकता है । अर्धनारीश्वर की कल्पना बहु की कल्पना है । उसमें तारी तत्व और पुरुष तत्व आधा आधा है । वह दोनों हैं एक साथ, क्योंकि

वह दोनों नहीं है। अगर पुरुष है तो स्त्री सत्त्व का इस जगत में कहाँ से आविभावि होगा? अगर वह स्त्री है तो पुरुष तत्त्व कहाँ से आयेगा, कहाँ से शुरू होगा? कहाँ से पैदा होगा?—वह दोनों ही हैं, एक साथ दोनों हैं। इसलिए, दोनों को पैदा कर पाता है। और, हम जब तक स्त्री हैं और पुरुष हैं, तब तक हम परमात्मा के टूटे हुए दो हिस्से हैं। इसलिए, स्त्री पुरुष का आपसी आकर्षण एक होने का आकर्षण है। स्त्री पुरुष की आकर्षण पूरा होने का आकर्षण है।

अर्धनारीश्वर की हमारी कल्पना और हमारी प्रतिमा बड़ी अनूठी है। दुनिया ने बहुत प्रतिमाएँ बनायी हैं, लेकिन अर्धनारीश्वर में, जो बहुत मनोवैज्ञानिक मत्य है, उमका कोई मुकाबला नहीं है। अर्धनारीश्वर में हम इतना ही कह रहे हैं कि परमात्मा दोनों हैं एक साथ, और पूरा है। एक पहलू उसका स्त्रैंग है और एक पहलू उसका पुरुष है। या ऐसा कहे कि वह दोनों का सम्मिलन है, दोनों का मध्य है या दोनों का 'बियान्ड' है, दोनों का पार है। यह जो मैंने कहा कि परमात्मा, ब्रह्म की यह जो मध्य की स्थिति है—जीसस ने एक बहुत अच्छा शब्द उपयोग किया है। 'इनच ऑफ गाड'। जीसस ने कहा है, जिसे प्रभु को पाना है उसे प्रभु के लिए नपुसक हो जाना पड़ेगा। बड़ी अजीब बात कही है। पर, कही बिल्कुल ठीक है। जिसे प्रभु को पाना है उसे प्रभु जैसा होना ही पड़ेगा। इसलिए, बुद्ध अपनी पूरी गरिमा में या कृष्ण अपनी पूरी गरिमा में न स्त्री हैं, न पुरुष हैं। अपनी पूरी गरिमा में वे दोनों हैं। अपनी पूरी गरिमा में वे मिथित हैं। अपनी पूरी गरिमा में, एक अर्थ है। वे पार हो गये दोनों द्वन्द्वों के और द्वन्द्वों के बाहर हो गये।

लेकिन, हमारे बीच द्वन्द्व हैं—मात्राओं का द्वन्द्व है। और, जो उन्होंने पूछा, हमारे बीच 'थर्ड सेक्स' पैदा होता है कभी, उसका क्या कारण है? उसका वही कारण है। अगर उसके भीतर 'फिजियोलॉजिकली' शारीरिक तल पर दोनों तत्त्व समान रह गये तो उसका लिक विकसित नहीं हो पाता, किसी भी दिशा में उसकी जाति ठीक से विकसित नहीं हो पाती। दोनों बराबर समतुल शक्तिया एक दूसरे को काट जाती हैं। यह भी सभव हो गया है। पहले तो कभी कभी आकस्मिक होता था कि कोई स्त्री बाद के जीवन में पुरुष हो गयी या कोई पुरुष बाद में स्त्री हो गया।

लन्दन में पीछे एक बड़ा मुकदमा चला। और, सनसनीखेज मुकदमा था। मुकदमा यह था कि एक लड़की और लड़के का विवाह हुआ। लेकिन, विवाह के कृ.—३४

बाद वह लड़की जो थी वह लड़का हो गयी। अदालत में जो मुकदमा था वह यह था कि उस लड़की ने धोखा दिया। वह लड़का थी ही। बड़ी कठिनाई हुई इस मुकदमे में। उस लड़की का तो कहना था, वह लड़की थी और यह विकास उसमे बाद मे हुआ है। लेकिन, तब तक विज्ञान इस सम्बन्ध मे बहुत साफ नहीं था। लेकिन, अभी इधर बीस पच्चीस वर्षों मे विज्ञान बहुत साफ हुआ और घटनाए बहुत तरह की घटी है जिनमे 'सेक्स' रूपातरण हुआ। जिनमे कोई पुरुष स्त्री हो गया, कोई स्त्री पुरुष हो गयी। अगर ये 'मार्जिनल केसेज' है, अगर उन्वास और इक्यावन की मार्जिन है तो बदलाहट कभी भी हो सकती है। थोड़े से 'केमिकल' फर्कों से बदलाहट हो सकती है। और अब, अब तो बहुत सुविधापूर्ण हो गयी है बात और भविष्य मे बहुत ज्यादा दिन नहीं है कि कोई आदमी जिन्दगी भर पुरुष रहने का कष्ट भोगे, या कोई स्त्री जिन्दगी भर स्त्री रहने के ही चक्कर मे रहे। इसमे बदलाहट कभी भी की जा सकती है। सेक्स रूपातरित हो सकेगा। क्योंकि, उसके केमिकल सूत्र सारे स्थाल मे आ गये हैं। अगर एक केमिकल की मात्रा बढ़ा दी जाय व्यक्तित्व के शरीर मे, 'हारमोन्स' बदल दिये जाय तो उम व्यक्तित्व मे स्त्री प्रकट हो सकती है। पुरुष स्त्री हो सकता है, और स्त्री पुरुष हो सकती है। स्त्री और पुरुष एक ही तरह के व्यक्ति हैं मिर्क मात्राओं के फर्क हैं उनमे।

अर्धनारीश्वर इस बात की सूचना है कि विश्व का मूल स्रोत न तो स्त्री है, न पुरुष है। वह दोनो एक साथ है। लेकिन, क्या मैं आपसे यह कहौं कि वह जो इम्पो-टेट है, नपुसक है वह परमात्मा के ज्यादा निकट पहुच जायेगा? यह मैं नहीं कह रहा हूँ। परमात्मा दोनो है, और नपुसक दोनो नहीं है, इस फर्क को आप स्थाल मे ले लेना। परमात्मा दोनो है एक साथ और जिसे हम नपुसक कहे वह दोनो नहीं है। नपुसक हमारा मिर्क अभाव है, 'एब्सेस' है और परमात्मा भाव है, 'प्रेजेस' है। परमात्मा मे स्त्री और पुरुष दोनो है इसलिए, अर्धनारीश्वर की प्रतिमा है, उसमे बाधी स्त्री है, आधा पुरुष है। हम परमात्मा को नपुसक जैसा भी बना सकते थे। जिनमे न स्त्री होती है, न पुरुष होता है, लेकिन वह अभाव होता। परमात्मा दोनो का भाव है, दोनो की 'पोजीटीविटी' है। नपुसक बेचारा दोनो का अभाव है। उसके पास कोई व्यक्तित्व नहीं है। उसकी पीड़ा का कोई अन्त नहीं है। इसलिए, जब जीसस कहते हैं, 'इनच ऑफ गाड' तब वह बिल्कुल दूसरी बात कह रहे हैं। वह यह नहीं कह रहे हैं कि लोग नपुसक हो जाय। वह यह कह रहे हैं कि परमात्मा मे, परमात्मा के लिए, वे न स्त्री रह जाय, न पुरुष रह जाय और तब वे दोनो रह जायेंगे, दोनो हो जायेंगे।

प्रश्न : जैन शास्त्रों में क्यों कहा है कि स्त्रियों के लिए मोक्ष नहीं है ?

उत्तर उसका कारण है कि जैन शास्त्र पुरुष चित्त के द्वारा निर्मित शास्त्र है। जैन साधना पुरुष साधना है। जैन साधना की पूरी प्रक्रिया 'अग्रेसिव' है, आक्रमक है और इसलिए जैन शास्त्र सोच ही नहीं सकता कि स्त्री को कैसे मोक्ष हो सकता है? अगर कृष्ण के भक्त से हम पूछे तो 'वह बहुत मुश्किल में पड़ेगा। वह कहेगा स्त्री के सिवा और किसी का मोक्ष हो ही कैसे सकता है? पुरुष का मोक्ष होगा कैसे? क्योंकि, कृष्ण भक्त अगर पुरुष भी है तो अपने को स्त्री बनाकर कृष्ण के प्रेम में पड़ता है।

मीरा जब गयी वृन्दावन, वहा के मदिर में उसके प्रवेश पर रोक लगायी गयी। क्योंकि उस मदिर में जो पुजारी था वह स्त्रियों को नहीं देखता था। जब मीरा को रोका तो मीरा ने कहा, एक सवाल उन पुजारी से पूछ लो कि क्या कृष्ण के अलावा और कोई पुरुष भी है। कृष्ण के पुजारी होकर अभीतक पुरुष बने हुए हो? तो उस पुजारी ने कहा, उसको आने दो। मेरी भूल मुझे पता चल गयी। मैं गलती में था। कृष्ण के तो आसपास 'पैसिव', समर्पण, सरेण्डर - वह जो स्त्री का चित्र है, वह है। महावीर के आसपास पुरुष चित्त की गति है। महावीर स्वयं पुरुष चित्त के साधक है। उनकी सारी साधना पुरुष चित्त की साधना है। इमलिए महावीर सोच भी नहीं मकत, मान भी नहीं मकते कि स्त्री मोक्ष जा सकती है। महावीर की परम्परा में स्त्री को थोड़ी प्रनीक्षा करनी पड़े, उमे एक पर्याय और लेनी पड़े। एक बार पुरुष होना पड़े, फिर मोक्ष को वह जा सकती है। और मैं मानता हूँ गलती है। अगर महावीर की ही साधना करनी हो तो दुनिया में कोई स्त्री नहीं कर सकती। स्त्रैण चित्त महावीर की साधना ही नहीं कर मकता। सिर्फ़ पुरुष चित्त ही कर सकता है। और अगर पुरुष चित्त की साधना करनी हो तो कृष्ण के साथ बहुत कठिनाई है। पुरुष चित्त का कृष्ण के साथ ताल-भेल नहीं बैठेगा।



## पर्व : उच्चीस

महाबोर की वीतरागता काइस्ट की होली इनडिफरेंस  
बुद्ध की उपेक्षा और कृष्ण की अनासक्षित  
सुख-दुख में अनुद्विग्न वह स्थितप्रश्न  
उत्तरायण दक्षिणायन का सूर्य  
स्थिप्रतश्श और प्रक्षत  
कृष्ण का विराट आकर्षण  
सेवा और कृष्ण





१९

प्रश्न . आखार्यंजी, महावीर की वीतरागता, काइस्ट की 'होली इनडिफरेंस',  
बुद्ध की उपेक्षा और कृष्ण की अनासक्षित-इनमें क्या सूक्ष्म विभिन्नता है ? इसपर प्रकाश डालें ।

उत्तर काइस्ट की तटस्थिता और बुद्ध की उपेक्षा, महावीर की वीतरागता और कृष्ण की अनासक्षित, इनमें बहुत-सी समानताएँ हैं । लेकिन बुनियादी भेद भी है । समानता अ त पर है, उपलब्धि पर है । भेद मार्ग में है । अतिम क्षण में ये चारों बातें एक ही जगह पहुचा देती हैं । लेकिन चारों के रास्ते

बहु अलग अलग है। जीसस जिसे तटस्थता कहते हैं, बुद्ध जिसे उपेक्षा कहते इनमें बड़ी गहरी समानता है। यह जगत जैसा है, इस जगत की धाराएं जैसी हैं, इस जगत के अतर्वाच जैसे हैं, इस जगत में भेद और विरोध जैसे हैं—उनके प्रति तटस्थता हो सकती है लेकिन तटस्थता कभी भी प्रसन्नता नहीं हो सकती। तटस्थता बहुत गहरे में उदासी बन जाएगी। इसलिए जीसस उदास है और अगर वे किसी आनन्द को पाते भी हैं, तो वह इस उदासी के रास्ते से ही उन्हे उपलब्ध होता है। लेकिन उनका पूरा रास्ता उदास है। वे जीवन के पथ पर गीत गते हुए नहीं निरुत्ते। तटस्थता उदासी बन ही जाएगी। और जीसस की तटस्थता बहुत उदासी बन गई है। अगर न मैं यह चूनू, न वह चूनू, अगर कोई चुनाव न हो तो मेरे भीतर की बहने वाली सारी धाराएँ रुक जाएँगी। नशी न पूरब बढ़े न पश्चिम बढ़े, न दक्षिण बढ़े न उत्तर बढ़े, तटस्थ हो जाय तो वह उदास ताताव बन जाएगी। तालाब भी सागर तक पहुच जाता है लेकिन नदी के राम्पे से नहीं, सूर्य की किरण के रास्ते से पहुचता है। नदी, जो बीच का राम्पा नाचते हुए, गीत गते हुए तथ करती है वह भय ताताव का नहीं है। ताताव सूखता है धूप में, गर्मी में उत्तन होता है, उड़ना है, भाप बनता है, बादल बनता है। सागर तक पहुच जाता है। लेकिन नदी की मुदित, उनकी प्रकृतता, उनकी 'एकपट्टी' तालाब को नहीं मिलती। तालाब नाचता हुआ बादलों पर नहीं चढ़ता, नदी नाचती हुई सागर में उत्तर जाती है। ताताव सीधा कभी सागर तक नहीं पहुचता, बीच में भाप बनता है, किर पहुचता है। तो जीसस एक उदास बादल की तरह है जो आकाश में मढ़राता है और सागर की यात्रा करता है। नाचती हुई नदी की तरह नहीं है।'

बुद्ध और जीसस की जीवन-ध्यवस्था में थोड़ी निकटता है, लेकिन एकदम निकटता नहीं है। क्योंकि बुद्ध और तरह के व्यक्ति हैं। जहा जीसस की तटस्थता जीसस को उदास कर जाती है वहा बुद्ध की उपेक्षा बुद्ध को सिर्फ शात कर जाती है, उदास नहीं। तटस्थता और उपेक्षा में इनना ही फर्क है। उपेक्षा में न उदासी है जीसस जैसी, न कुण्ड जैसा। नाचता हुआ गीत है, न महावीर जैसा झरता हुआ अप्रगट सुख और आनन्द है। बुद्ध शात है, तटस्थ नहीं है वे। तटस्थता तो उदासी ले ही आएगी। वे उपेक्षा को उपलब्ध हैं। पाया है कि यह भी व्यर्थ है, पाया है कि वह भी व्यर्थ है इसलिए उन्नेजित होने का उन्हें कोई उपाय नहीं रहा है। उन्हे कोई भी

‘आस्ट्रनेटिव’, कोई भी विकल्प उत्तेजित नहीं कर पाता। सब विकल्प समान हो गए हैं। जीसस के लिए तटस्थता है। विकल्प समान है, पर जीसस अभी भी कहेगे, यह ठीक है और वह गलत है। यह करो और वह मत करो। यद्यपि वे दोनों से तटस्थ हैं, लेकिन बहुत गहरे में उनका चुनाव जारी है। बुद्ध अचुनाव को, ‘च्वाइमलेसनेस’ को उपलब्ध होते हैं। बुद्ध को अगर हम ठीक से समझें तो बुद्ध के लिए न कुछ सही है न कुछ गलत है। सिर्फ चुनाव ही गलत है और अचुनाव सही होना है। ‘च्वाइस’ गलत है ‘च्वाइसलेसनेस’ मही है, इसलिए जीसस अपनी तटस्थता में, ‘होली इनडिफरेस’ में भी मदिर में जाकर कोडा उठा लेने हैं और सूदखोरों को कोडे से पीट देने हैं, उनके तख्त उलट देते हैं। यूदियों के मदिर में, सिनागाग में पुरोहित व्याज का काम भी करते थे। हर वर्ष लोग इकट्ठे होते थे मेन्स पर, और तब वे उन्हे उधार देते थे और सूद लेते थे। सूद की दरे इतनी बढ़ गई थी कि लोग अपना मूल तो कभी चुका ही नहीं पाते थे। जिदगी भर मेहनत करके वस इतना ही काम करते थे कि वह हर वर्ष आकर पुरोहितों को उनके व्याज का पैसा चुका जाएँ। पूरे मुलक का धन सिनागाग में इकट्ठा होने लगा। तो जीसस कोडा उठा लेने हैं, तख्त उलट देने हैं सूदखोरों के। जीसम तटस्थ है लेकिन चुनाव जारी है। वे कहते हैं कि इस जगत के प्रति एक तटस्थता चाहिए। लेकिन इस जगत में अगर गलत हो रहा है, तो जीसस चुनाव करते हैं। लेकिन बुद्ध को हम हाथ से कोडा उठाए हुए नहीं सोच सकते। उनका कोई चुनाव ही नहीं है। अचुनाव के कारण वे ‘गहरी साइलेस’ में, गहरी शानि को उपलब्ध हुए हैं। इसलिए, बुद्ध की समझते वक्त ‘शानि’ सबसे महत्वपूर्ण शब्द है। बुद्ध की प्रतिमा में जो भाव प्रकट होता है और झरना है चारों तरफ वह शानि का है। कहना चाहिए शानि, मूर्तिमत बुद्ध में हुई है। कोई उत्तेजना नहीं है। तालाब की उत्तेजना भी नहीं है। तालाब भी कम-से-कम धूप की किरणों में भाप बनता है और आकाश की तरफ उड़ता है। बुद्ध इतने शात है कि वे कहने हैं कि मैं सागर की तरफ जाने की भी उत्तेजना नहीं लेता। सागर को आना हो तो आ जाय। वे इतनी भी याकाव करने की तैयारी में नहीं हैं। उतनी याकाव भी तनाव है। इसलिए, बुद्ध ने सागरवाची जितने भी प्रश्न है सबको इन्कार कर दिया। कोई पूछे ईश्वर ह, कोई पूछे ब्रह्म है, कोई पूछे मोक्ष है, कोई पूछे आत्मा का मरने के बाद क्या होता है? इस तरह के जितने भी प्रश्न हैं बुद्ध उनको हस कर टाल देते हैं। वे कहते हैं यह पूछो ही मत। क्योंकि, अगर कुछ भी है तो उस

तक की यात्रा पैदा होती है और यात्रा असाति बन जाती है । वे कहते हैं—मैं जहा हूँ वही हूँ । मुझे कोई यात्रा नहीं करनी है, मुझको कोई तनाव नहीं करना है । इसलिए, अगर बुद्ध की उपेक्षा बहुत गहरे मे देखें तो सिर्फ सासार की उपेक्षा नहीं है । जीसस की उपेक्षा सिर्फ सासार की उपेक्षा है, लेकिन परमात्मा का चुनाव जारी है । बुद्ध की उपेक्षा परमात्मा की भी उपेक्षा है । वे कहते हैं, परमात्मा को भी पाना है तो यह भी तो मन की 'डिजायर', तृष्णा और इच्छा है । आखिर नदी क्यों सागर को पाना चाहे, और नदी सागर को पाकर भी क्या पा लेगी ? अगर सागर मे ज्यादा जल है तो भावा का ही फक्क पड़ता है । नदी मे भी जल है, और सागर के जल मे और नदी के जल मे फक्क क्या है ! बुद्ध कहते हैं, हम जो हैं—हैं, और वही शात है । इसलिए, बुद्ध की उपेक्षा यात्राविहीन है । बुद्ध के बेहरे पर, बुद्ध की आखो मे यात्रा नहीं देखी जा सकती है । वे स्थिर हैं, ठहर गये हैं, वही हैं, जैसे कोई ताल बिल्कुल शात हो । न नदी की तरह भागता हो, न आकाश की तरफ उड़ता हो, बिल्कुल शात हो । एक लहर भी न उठती हो, एक 'रिपल' भी पैदा न होती हो । ऐसे बुद्ध का होना है ।

स्वभावत बुद्ध की शाति 'निगेटिव' होगी, नकारात्मक होगी । उसमे कृष्ण का प्रकट आनंद नहीं हो सकता, उसमे महोबीर का अप्रकट आनंद भी नहीं हो सकता । लेकिन, जो इतना शात होगा कि जिसे मागर तक पहुचने की इच्छा भी नहीं है, क्या वह अतत आनंद को उपलब्ध नहीं हो जायगा ? हो जायगा । लेकिन, वह बुद्ध की भीतरी दशा होगी । उनके अतरतम मे वह आनंद का दिया जालेगा, लेकिन बाहर उनकी सारी-की-सारी आभा, उनका जो प्रभामण्डल है, वह शाति का होगा । दिये की गहरी ज्योति जहा होगी वहा तो आनंद होगा, लेकिन उसका प्रभामण्डल सिर्फ शाति का होगा । बुद्ध को हिलते डुलते सोचना भी कठिन मालूम पड़ता है । बुद्ध की कोई चितना करे, सोचे तो ऐसा भी नहीं लगता कि यह आदमी उठकर चला भी होगा । उनकी प्रतिमा देखें तो ऐसी लगती हैं जैसे यह आदमी सदा बैठा ही रहा हो । यह उठा भी होगा, हिला भी होगा, डुला भी होगा, इसने पैर भी उठाया होगा, इसने ओढ़ ही खोला होगा, यह बोला भी होगा ऐसा भी मालूम नहीं पड़ता । बुद्ध की प्रतिमा 'जस्ट स्टिलनेस' की प्रतिमा है, जहा सब चीजे ठहर गयी है, जहाँ 'मूवमेट' नहीं है, किसी तरह की कोई गति नहीं है । तो, बुद्ध की आभा जो है वह शान्ति की है । फिर, बुद्ध की उपेक्षा समस्त तनावों की उपेक्षा है । चाहे वे तनाव मोक्ष के ही क्यों न हो । कोई आदमी मोक्ष ही क्यों न पाना चाहे, बुद्ध कहेगे, कि पागल हो ! कहीं मोक्ष है ? कोई कहे आत्मा

को पाना है, तो बुद्ध कहेगे, कि पागल हो ! कहीं आत्मा है ? असल में जबतक पाना है तबतक बुद्ध कहेगे, तुम पा न सकोगे । तुम उस जगह खड़े हो जाओ और जहाँ पाना ही नहीं है । तब तुम पा लोगे । लेकिन, यह बात वे कभी साफ कहते नहीं हैं। क्योंकि, अगर वे इतना भी कहे कि तब तुम पा लोगे, तो हम तत्काल पाने को दौड़ पड़ेंगे । तो, बुद्ध सिर्फ निषेध करते जाते हैं । वे कहते हैं—न परमात्मा है, न आत्मा है, न मोक्ष है, कोई भी नहीं है । ही ही नहीं कुछ ! क्योंकि, जबतक कुछ है तबतक तुम पाना चाहोगे । और जबतक, तुम पाना चाहोगे तबतक तुम न पा सकोगे । क्योंकि, जो भी पाना है वह ठहर के, रुक के, मौन में, चिरता में, शून्य में पाना है । और तुम्हारी चाह, तुम्हारी तृष्णा तुम्हें दौड़ाती रहेगी । तृष्णा मूल है बुद्ध के लिए, और उपेक्षा सूत्र है तृष्णा से मुक्ति का । चुनो ही मत, पूछो ही मत कि कहीं जाना है । मजिल बनाओ ही मत, मजिल नहीं है कोई ।

जीसस के लिए मजिल है । इसलिए, जगत के प्रति वे एक 'होली इनडिफरेस' पवित्र तटस्थिता की बात करते हैं । लेकिन, परमात्मा के प्रति उनकी इनडिफरेस नहीं हो सकती । अगर हम जीसस से पूछे कि बुद्ध तो कहते हैं, कोई परमात्मा नहीं है । कौन परमात्मा ? कोई आत्मा नहीं है । कौसी आत्मा ? न कुछ पाने को है, न कोई पानेवाला है । बुद्ध जो बात करते हैं वह बहुत अद्भुत है । अगर उनसे पूछो कि कोई भी नहीं है, तो वे कहते हैं यह जो हमें दिखाई पड़ रहा है सिर्फ सघटन है, सिर्फ सघात है, सिर्फ एक 'कम्पोजीशन' है । जैसे रथ है—उसका चाक अलग कर ले, घोड़े अलग कर ले, बल्ली अलग कर ले, तो फिर रथ पीछे नहीं बचता । रथ सिर्फ एक जोड़ है । ऐसे ही तुम भी एक जोड़ हो । यह सारा जगत एक जोड़ है । चीजे टूट जाती हैं पीछे कुछ भी नहीं बचता । न कोई आत्मा, न कोई परमात्मा और, यहीं पाने योग्य है । लेकिन, यह सदा बुद्ध भीतर कहते हैं । यह कभी बाहर नहीं कहते । इसलिए, जो बहुत गहरे समझ सकते हैं वही समझ पाते हैं, अन्यथा बुद्ध के पास से तृष्णालु व्यक्ति सभी लौट जाते हैं । जिसको कुछ भी पाना है वह कहते हैं यह आदमी व्यर्थ है । इसके पास पाने को कुछ भी नहीं है । शात होने को हम नहीं आये हैं, हम कुछ पाने को आये हैं । बुद्ध उनपर हसते हैं । क्योंकि, वे कहते हैं शात होकर पाया जा सकता है । वह जो परमात्मा है, शात होकर ही पाया जा सकता है । वह जो आत्मा है, उसे शात होकर ही पाया जा सकता है । वह जो मोक्ष है, तुम उसको लक्ष्य मत बनाओ । तुम अगर मुझसे पूछोगे मोक्ष है ? और म कहूँ—है, तो तुम तत्काल लक्ष्य बना लोगे । और, लक्ष्य की तरफ दौड़ता आदमी

कभी शान्त नहीं होता है। इसलिए, बुद्ध की अपनी तकलीफ है। उनकी उपेक्षा शान्ति को ले जाती है—इतनी गहरी शान्ति में जहा कोई यादा ही नहीं है।

महावीर की वीतरागता, बुद्ध की शान्ति से मेल खाती है थोड़ी दूर तक। क्योंकि, इस जगत में वे भी उपेक्षा के पक्ष में हैं। और, थोड़ी दूर तक महावीर की वीतरागता जीमन से मेल खाती है। क्योंकि, उस जगत में मोक्ष के प्रति उनका चुनाव है। महावीर मोक्ष के प्रति अचुनाव में नहीं है। क्योंकि, महावीर कहेगे, अगर मोक्ष भी नहीं है तो फिर शाति होने का प्रयोजन भी क्या है? फिर, अशात होने में हर्जा भी क्या है? अगर कुछ पाने को ही नहीं है तो फिर चुप और मौन बैठने का प्रयोजन भी क्या है? महावीर कहेगे कि मब छोड़ा जाय, यदि कुछ पाने को है, और जो पाने को है उसी के लिए सब छोड़ा जा सकता है। इसलिए, मोक्ष के प्रति महावीर की उपेक्षा नहीं है। वीतरागता उनकी, इस जगत का। जो द्वन्द्व है, उसके पार ले जान वाली है। निर्द्वन्द्व की उपलब्धि वा मार्ग है। लेकिन, महावीर की वीतरागता किसी उपलब्धि का मार्ग है, बुद्ध की उपेक्षा अनुपलब्धि का द्वार है जहा सब शून्य हो जायगा और सब खो जायगा। बुद्ध का सन्यास एक अर्थ म पूर्ण है। उसमें परमात्मा की भी मार्ग नहीं है। महावीर के सन्यास में मोक्ष की जगह है। महावीर यह कहते हैं कि सन्यास सभव ही नहीं है, अगर माथ नहीं है, तो फिर सब किस निए? प्रायः, महावीर का चित्त बड़ा वैज्ञानिक और 'कॉंजन्ट' है। महावीर कहते हैं कोजन्टिंटी के बिना, कायं-कारण बिना कुछ होता ही नहीं। इसलिए, वे बुद्ध से राजी नहीं होंगे कि हम सिर्फ शात हो जाय बिना किसी वजह के। महावीर कहते हैं, अशात होने की भी वजह होती है और शात होने की भी वजह होती है। वे कृष्ण से भी राजा न होग इस बात के लिए कि हम सब कुछ स्वीकार कर रहे। क्याकि, महावीर कहते हैं, अगर हम सब कुछ स्वीकार भर लेते हैं तो हम आत्मवान ही नहीं रह जाते हैं, हम तो पदाथ का तरह हो जाते हैं। आत्मा के होने का अर्थ यह है कि 'डिस-क्रिमिनशन'। महावीर कहते हैं, आत्मवान होने का अर्थ है विवेक—यह ठीक है और यह गलत है, इस बात का विवेक ही आत्मवान होने का अर्थ है। और, जो गलत है उसे छोड़ते जाना है। राग भी गलत है और विराग भी गलत है; इसलिए दोनों को छोड़ देना है और वीतरागता को पकड़ लेना है। महावीर के लिए वीतरागता उपलब्धि है, और वीतरागता से मोक्ष है। तो, महावीर सिर्फ शात ही नहीं है—शात तो है ही, लेकिन आनन्दित भी है। मोक्ष की उपलब्धि की किरणे उनके भीतर ही नहीं फैलती, उनके शरीर से चारों ओर

नाचने लगती है। इसलिए, अगर महावीर और बुद्ध को साथ-साथ खड़ा करे तो युद्ध विल्कुल 'पैसिव साइलेंस' में है, जैसे हों ही नहीं! महावीर 'एक्टिव साइलेंस' में है, बहुत होके हैं। बहुत मजबूती से हैं। हा, उनके होने में चारों तरफ आनंद की प्रखरता है। लेकिन, अगर कृष्ण के पास महावीर को खड़ा करे तो महावीर का आनंद भी साइलेट मालूम पड़ेगा, शात मालूम पड़ेगा, और कृष्ण का आनंद आइलिट मालूम पड़ेगा। कृष्ण नाच सकते हैं, महावीर नाच नहीं सकते। अगर महावीर के नाच को देखना है तो उनकी शाति, मौन, उनकी धिरता में ही देखना होगा। वह दिखायी पड़ सकता है उनके रोयें-रोये से, उनको सास-सास से, उनकी आखो के हिलने-डुलने से, उनके चलने से। सब तरफ से उनका आनंद दिखायी पड़ेगा, लेकिन वे नाच नहीं सकते। यह नाच देखना पड़ेगा। यह 'इनडाइरेक्ट' है, यह परोक्ष है। तो, महावीर की बीतरागता प्रकट रूप से आनंद को घोषित करती है। इसलिए, महावीर की प्रतिमा और बुद्ध की प्रतिमा में वही फर्क है। महावीर की प्रतिमा में आनंद प्रकट होता मालूम पड़ेगा। बुद्ध एकदम भीतर चले गये हैं उनके बाहर कुछ जाता हुआ मालूम नहीं पड़ता। वह विल्कुल ऐसे हो गये हैं जैसे 'न हो'। महावीर ऐसे हो गये हैं जैसे 'हो'। महावीर स्वयं हो गये हैं, जैसे पूरी तरह हैं। उनके अस्तित्व की घोषणा समग्र है, इसलिए महावीर ईश्वर को इन्कार कर देते हैं, लेकिन आत्मा को इन्कार नहीं कर पाते। महावीर कह देते हैं कोई परमात्मा नहीं है—हो भी कैसे सकता है? मैं ही परमात्मा हूँ। इसलिए, महावीर कहते हैं, आत्मा ही परमात्मा है। तुम सब परमात्मा हो, कोई और अलग परमात्मा नहीं है। यह घोषणा उनकी प्रगाढ़ आनंद की 'एक्सटेंसी' से निकलती है। हर्षोन्माद में वे यह घोषणा करते हैं कि मैं ही परमात्मा हूँ। कोई और ऊपर परमात्मा नहीं है। क्योंकि, महावीर कहते हैं, अगर मुझसे ऊपर कोई भी परमात्मा है तो फिर मैं कभी पूरी तरह स्वतंत्र नहीं हो पाऊगा। स्वतंत्रता की फिर कोई सभावना न रही। एक परमात्मा ऊपर बैठा ही है। अगर मेरे ऊपर कोई एक नियता है, जिसके कानून से जगत् चलता है, तो मेरी मुक्ति का क्या अर्थ है? कल अगर वह सोच ले कि वापस भेज दो इस मुक्त आदमी को सासार में, तो मैं क्या कर सकूगा? इसलिए, महावीर कहते हैं— स्वतंत्रता की गारटी मिर्फ़ इसमें है कि परमात्मा न हो। परमात्मा और स्वतंत्रता दोनों साथ-साथ नहीं चल सकते हैं। इसलिए, परमात्मा को इन्कार कर देते हैं, लेकिन आत्मा को बड़ी प्रगाढ़ता से घोषित करते हैं कि आत्मा ही परमात्मा है। इसलिए, महावीर में प्रकट आनंद दिखाई पड़ता है। वह उनकी

बीतरागता है। बीतरागता में वे बुद्ध से सहभत हैं अचुनाव के लिए। राग और विराग में चुनाव नहीं करता है, लेकिन ससार और मोक्ष में चुनाव नहीं करता है, इस बात में वे बुद्ध से राजी नहीं हैं। वे कहते हैं—ससार और मोक्ष में तो चुनाव करना ही है। इस भाष्यले में वे जीसस से राजी हैं। इस भाष्यले में जीसस की तटस्थिता उनके करीब आती है। लेकिन जीसस का परमात्मा परलोक में है और मरने के बाद ही जीसस प्रसन्न हो सकते हैं, जब परमात्मा से मिल जाय। महावीर का कोई परमात्मा परलोक में नहीं है। महावीर का परमात्मा भीतर है और वह यहीं पाकर प्रसन्न है। इसलिए, जीसस उदास है और महावीर उदास नहीं है।

कृष्ण की अनामकित का भी तीनों से कुछ तालमेल है और कुछ बुनियादी भेद भी है। कृष्ण को अगर हम इन तीनों का इकट्ठा जोड़ और कुछ ज्यादा कहे तो कठिनाई नहीं है। कृष्ण की अनामकित उपेक्षा नहीं है। कृष्ण कहते हैं—जिसके प्रति उपेक्षा हो गयी उसके प्रति हम अनासक्त नहीं हो सकते। क्योंकि, उपेक्षा भी विपरीत अस्मकित है। रास्ते से मैं गुजरा और मैंने आपकी तरफ देखा ही नहीं। देखने में भी एक आसक्ति है, न देखने में भी एक आसक्ति है। सिर्फ विपरीत आसक्ति है, कि नहीं देखूँगा। फिर, कृष्ण कहते हैं—उपेक्षा किसके प्रति? क्योंकि, परमात्मा के अतिरिक्त कुछ ही नहीं। जिसके प्रति भी उपेक्षा हुई, वह परमात्मा ही है। यह जगत् पूरा-का-न्पूरा ही अगर परमात्मा है, तो उपेक्षा किसके प्रति? और, उपेक्षा करेगा कौन? और, जो उपेक्षा करेगा वह अहकार से मुक्त कैसे होगा? मैं कहूँगा उपेक्षा? बुरे की उपेक्षा कहूँगा अच्छे के लिए, ससार की उपेक्षा कहूँगा मोक्ष के लिए! करेगा कौन? और, करेगा किसकी? इसलिए, उपेक्षा जैसे नकारात्मक और 'कड़ेमनेटरी', निदात्मक शब्द का उपयोग कृष्ण नहीं कर सकते। तटस्थिता का भी उपयोग वे नहीं कर सकते। क्योंकि, कृष्ण कहेंगे—परमात्मा खुद भी तटस्थ नहीं है, तो हम कैसे तटस्थ हो सकते हैं? तटस्थ हुआ नहीं जा सकता। कृष्ण कहते हैं—हम सदा धारा में हैं, तट पर हो नहीं सकते। जीवन एक धारा है। जीवन का कोई तट है ही नहीं जिस पर हम खड़े हो जाय, और तटस्थ हो जाय, और हम कह दें कि हम धारा के बाहर हैं। हम जहा भी हैं धारा के भीतर हैं, हम जहा भी हैं जीवन में हैं, हम जहा भी हैं अस्तित्व में हैं। तट पर हम खड़े हो नहीं सकते। होना ही, अस्तित्व ही—धारा है। इसलिए, तटस्थ हम होने कैसे? हा, नदी के किनारे हम तट पर खड़े हो जाते हैं। नदी बहती जाती है। हम तट पर खड़े रहते हैं।

लेकिन, जीवन की ऐसी कोई नदी नहीं है जिसके किनारे हम खड़े हो जायें। जीवन की नदी का कोई किनारा ही नहीं है, तो तटस्थला शब्द का प्रयोग वे नहीं कर सकते। उपेक्षा शब्द का वे प्रयोग नहीं कर सकते। बीतराग शब्द का वे इसलिए प्रयोग नहीं कर सकते, क्योंकि वे यह कहते हैं कि अगर राग बुरा है, अगर विराग बुरा है, तो ही क्यों? बुरे का अस्तित्व भी कैसे हो सकता है? या तो हम ऐसा माने कि जगत में दो शक्तियां हैं। एक शुभ की, परमात्मा की शक्ति है। एक अशुभ की, शैतान की शक्ति है। जैसा कि जरथुस्त्र मानते हैं, जैसा कि ईसाई मानते हैं, जैसा कि मुसलमान मानते हैं। उन सबकी तकलीफ यही है कि अगर जगत में अशुभ है तो फिर अशुभ की शक्ति हमें अलग करनी पड़ेगी परमात्मा से, अन्यथा परमात्मा फिर अशुभ का भी स्रोत है। वह जरथुस्त्र नहीं सोच पाये, मोहम्मद नहीं सोच पाये। जीसस भी राजी नहीं है। इसलिए, शैतान, डैविल, अशुभ के लिये हमें कोई जगह बनानी पड़ती है। कृष्ण यह कहते हैं कि अगर अशुभ भी है, अलग भी है, तो भी क्या वह परमात्मा की आज्ञा से है, या परमात्मा की आज्ञा के बिना है? उसके होने में भी परमात्मा के सहारे की ज़रूरत है, या वह स्वतन्त्र रूप से है? तो, वह ठीक परमात्मा के सभतुल शक्ति हो गयी। फिर, इस जगत में शुभ कभी फलित नहीं हो सकता। फिर, वह हारेगा भी क्यों? हारने की ज़रूरत भी क्या है? फिर, इस जगत में दो परमात्मा की कल्पना असभव है। इसलिए, कृष्ण कहते हैं—शक्ति एक है और उसी शक्ति से सब उठता है। जिस शक्ति से स्वस्थ फल लगता है वृक्ष में, उसी शक्ति से सड़ा हुआ फल भी लगता है। उसके लिए किसी अलग शक्ति के होने की ज़रूरत नहीं है। और, जिस चित्त से बुराई पैदा होती है उसी चित्त से भलाई पैदा होती है। उसके लिए अलग शक्ति की ज़रूरत नहीं है। शुभ और अशुभ एक ही शक्ति के रूपातरण हैं। अधिकार और प्रकाश एक ही शक्ति के रूपातरण हैं। इसलिए, कृष्ण यह कहते हैं कि मैं दोनों को छोड़ने को नहीं कहता। दोनों को उनकी समग्रता में जीने को कहता हूँ।

अनासक्ति का अर्थ, एक के पक्ष में दूसरे की आसक्ति नहीं, शुभ के पक्ष में अशुभ की आसक्ति नहीं। आसक्ति ही नहीं, चुनाव ही नहीं, और जीवन जैसा है वह समग्र जीवन की पूर्ण स्वीकृति और इस समग्र जीवन के प्रति स्वयं का पूर्ण समापन, पूर्ण समर्पण। ‘अनासक्ति’ का अर्थ यह है कि मैं अलग हूँ नहीं, एक ही हूँ इस जगत से। कौन चुने, किसको चुने? जगत जैसा करवा रहा है वैसा मैं लहर की तरह सागर में बहा जा रहा हूँ। मैं अलग हूँ ही नहीं। इसमें कुछ

समानताएं मिलेगी । कृष्ण, बुद्ध जैसी शाति को उपलब्ध हो जायेगे, क्योंकि कुछ उन्हे पाना नहीं है । जो भी है, वह पाया हुआ है । वे महावीर जैसे वीतराग दिखायी पड़ेंगे किन्तु अणों में; क्योंकि उनके आनद का कोई पारावार नहीं है । वे जीसस जैसे परमात्मा की घोषणा करते दिखायी पड़ेंगे, इसलिए नहीं कि इस लोक में और उपर के लोक में परमात्मा कहीं बैठा है, बल्कि सब कुछ परमात्मा ही है । कृष्ण की अनासक्ति समग्र समर्पण है, मैं का 'न' हो जाना है, 'मैं' है ही नहीं यह जानना है । इसके जान लेने के बाद, जो हो रहा है वह हो रहा है, इसमें, कोई उपाय ही नहीं है । इसमें हम कुछ कर सकते हैं ऐसा है ही नहीं । इसमें हमारे द्वारा कुछ हो सकता है इसकी कोई सभावना ही नहीं है । कृष्ण अपने को एक लहर की तरह सागर में देखते हैं । कोई चुनाव नहीं करता है, इसलिए कोई आसक्ति नहीं है । अनासक्ति की यह स्थिति अगर ठीक से हम समझे तो स्थिति नहीं है, 'स्टेट्स आफ माइड' नहीं है, यह समस्त 'स्टेट्स आफ माइड' को छोड़ देना है । समस्त स्थितियों को छोड़ देना है और अस्तित्व के साथ एक हो जाना है । इसमें कृष्ण वहीं पहुच जाते हैं जहा अपनी-अपनी सकरी गलियों से महावीर पहुच जाते हैं, जीसस पहुच जाते हैं, बुद्ध पहुच जाते हैं । लेकिन, उनके चुनाव पगड़ियों के हैं । कृष्ण का चुनाव राजपथ का है । पगड़ियोवाला भी पहुच जाता है । पगड़ियों की सुविधाएं भी हैं, असुविधाएं भी हैं । राजपथ की भी सुविधाएं हैं, असुविधाएं हैं ।

व्यक्तिगत चुनाव है । कुछ लोग हैं जो पगड़ियों पर ही चलना पसंद करते । उन्हे चलने का मजा ही तब आयेगा जब पगड़ी होगी, जब वे अकेले होंगे । जब न कोई आगे होगा, न कोई पीछे होगा । जब भीड़ के धक्के न होंगे, और जब प्रतिपल उन्हे रास्ते खोजने पड़ेंगे घने जगल में, तभी उनकी चेतना को चुनौती होगी । वह पगड़ियों को खोजकर ही पहुचेंगे । कुछ लोग हैं जो पगड़ियों पर चलना बिल्कुल आनंदपूर्ण न पर्योगे । अकेला होना उन्हें भारी पड़ जायगा । सबके साथ होना ही उनका होना है, सबके साथ ही उनका आनद है । आनद उनके लिए मह-जीवन, सहयोग में, साथ में है, सग में है । राजपथ पर चलेंगे । निश्चित ही, पगड़ियों पर चलनेवाले उदास चित्त ही चल सकते हैं । राजपथ पर चलनेवाले उदासी से चलेंगे तो पगड़ियों पर धक्का दे दिये जायेंगे । राजपथ पर, जहा लाखों लोग चलेंगे, वहा नाचते हुए ही चला जा सकता है, वहा भीत गाते हुए ही चला जा सकता है । पगड़ियों पर चलनेवाले शाति से चल सकते हैं, राजपथ पर चलनेवालों पर अशाति के बादल भी आते रहेंगे । उनको उसके लिए भी राजी

होना पड़ेगा । यही उनकी शांति होगी । पण छढ़ी पर चलनेवाले अपनी निष्ठ निष्ठता के आनंद में तल्लीन हो सकते हैं । राजपथ पर चलनेवाली को दूसरों के सुख-दुख में आशीर्वाद भी होना पड़ेगा । यह सब श्रेद होते । लेकिन कृष्ण जैसा मैंने कहा, 'मल्टी डाइमेशनल' है । उनका चुनाव राजपथ का है । और ठीक से अगर हम सभीं तो परमात्मा तक पहुँचने का कोई एक मार्ग नहीं बन सकता है कि वह परमात्मा तक पहुँचा दे । परमात्मा तक पहुँचने के लिए कोई बना हुआ मार्ग नहीं है । सब अपनी तरह से, अपने ढग से पहुँच सकते हैं । पहुँचने पर, याकाएँ एक ही मजिल पर पूरी हो जाती हैं—उनकी भी, जो बीतरामता से जाते हैं—उनकी भी, जो तटस्थिता से जाते हैं—उनकी भी, जो उपेक्षा से जाते हैं—उनकी भी, जो आनन्द से जाते हैं ।

मजिल एक है, रास्ते अनेक हैं । प्रत्येक व्यक्ति को उसके क्या अनुकूल है उसे चुन लेना चाहिए । उसे इसकी बहुत चिन्ता नहीं करनी चाहिए कि कौन गलत है, कौन सही है । उसे इस फिक्र से ही पड़ना चाहिए कि उसके अनुकूल, उसके स्वभाव के अनुकूल क्या है ।

प्रश्न गीता में उल्लेख है कि उत्तरायण का सूर्य हो तब जिसका अंत होता है तो भोक्ता होता है यदि दक्षिणायण का सूर्य हो तो क्या कोई तकलीक पड़ती है ? स्थितप्रश्न और अक्षत के विषय में गीता में जो बात कही है इन दोनों में क्या समानता व विभागता है ?

स्थितप्रश्न मनुष्य सुख में अनुद्विग्न रहेगा और दुख में भी अनुद्विग्न रहेगा तो ऐसी सुखीबहुत छड़ी होने की शक्यता नहीं कि सुख-न-दुख दोनों में उसकी संवेदन-शीलता 'सेसिटीविटी' 'ब्लॉट' हो जाय ! अगर सुख की साति और कष्ट को कष्ट की भाँति न लें तो उसकी संवेदनता को मन कैसे करेंगे हम ?

उत्तर. यह सब बहुत बहुमूल्य है । कृष्ण का यह कहना कि सुख और दुख में अनुद्विग्न रहे वही स्थितप्रश्न है । यह प्रश्न बहुत अच्छा है । महत्वपूर्ण है कि यदि सुख में कोई सुखी न हो और दुख में कोई दुखी न हो तो क्या उसकी संवेदन-शीलता, उसकी 'सेसिटीविटी' भर नहीं जायेगी ? दो उपाय हैं, सुख में और दुख में अनुद्विग्न होने के । एक उपाय वही है जो प्रश्न में उठाया गया है कि, अगर संवेदन-शीलता मार डाली जाय तो सुख सुख जैसा मालूम न होगा, दुख दुख जैसा मालूम न होगा । जैसे कि जीभ जला दी जाय तो न प्रीतिकर स्वाद कर पता चलेगा, न अप्रीतिकर स्वाद का पता चलेगा । जैसे, जोहें फोड़ डाली जाय तो न अन्धेरे का हूँ । ३५

पता चलेगा, न उजाले का पता चलेगा। जैसे कि कान नष्ट कर दिये जायं तो न समर्पित का पता चलेगा, न विसर्पित का पता चलेगा। सीधा रास्ता यही मालूम पड़ता है कि सबेदनशीलता नष्ट कर दी जाय, 'सेसिटीविटी' मार डाली जाय तो व्यक्ति दुख-मुख में अनुदिग्न हो जायेगा। और, साधारणत कृष्ण को न समझने वाले लोगों ने ऐसा ही समझा है। और, ऐसा ही करने की कोशिश की है। जिसको हम सन्यासी कहते हैं, त्यागी कहते हैं, विरक्त कहते हैं वह यही करता रहा है। वह सबेदनशीलता को मारता रहा है। सबेदनशीलता मर जाय तो स्वभावत सुख-दुख का पता नहीं चलता। लेकिन, कृष्ण का सूख बहुत और है। कृष्ण कहते हैं, सुख-दुख में अनुदिग्न। वह यह नहीं कहते हैं कि सुख-दुख में असबेदनशील। सुख-दुख के पार, उनके विगत, उनके आगे, उनके ऊपर, साफ है यह बात कि सुख-दुख मिट जाय, ऐसा वह नहीं कहते। अगर सुख-दुख मिट जाय तो उनके पार कैसे होइयेगा? सुख-दुख का अगर पता ही न चले तो सुख-दुख में अनुदिग्नता का क्या अर्थ होगा? कोई अर्थ नहीं होगा। मरा हुआ आदमी सुख-दुख के बाहर होता है, अनुदिग्न नहीं होता। नहीं, इसलिए मैं दूसरा ही अर्थ करता हूँ। एक और मार्ग है जो कृष्ण का मार्ग है। अगर कोई व्यक्ति सुख को पूरा अनुभव करे, इतना पूरा अनुभव करे कि बाहर रह ही न जाय, सुख में पूरा हो जाय। सुख के प्रति पूरा सबेदनशील हो तो अनुदिग्न हो जायेगा। क्योंकि, उद्दिग्न होने को बाहर कोई बचेगा नहीं। अगर कोई व्यक्ति दुख में पूरा डूब जाय, 'टोटल' दुख में डूब जाय तो दुख के बाहर दुखी होने को कौन बचेगा? कृष्ण जो कह रहे हैं वह सबेदनशीलता का अन्त नहीं है, सबेदनशीलता की पूर्णता की बात है। अगर हम पूरे सबेदनशील हो जाय, समझे कि मुझपर दुख आया, यह मुझे पता चलता है कि दुख आया, क्योंकि दुख से अलग लड़ा होकर मैं सोचता हूँ। मैं ऐसा कहता हूँ कि मुझपर दुख आया, मैं ऐसा नहीं कहता हूँ कि मैं दुख ही हो गया हूँ। और, जब हम यह भी कहते हैं कि मैं दुखी हो गया हूँ तब भी फासला बनाये रखते हैं। हम ऐसा नहीं कहते कि मैं दुख हूँ। इसे थोड़ा समझना उपयोगी होगा।

हम जिन्दगी में सब चीजों को तोड़कर रख देते हैं जब कि वे सत्य नहीं हैं। जब मैं किसी से कहता हूँ कि मुझे तुमसे प्रेम है तब भाषागत ठीक बात कही जाने पर भी अस्तित्वगत रूप से गलत है। जब मुझे किसी से प्रेम होता है तो ऐसा नहीं कि मुझे किसी से प्रेम है, बल्कि ऐसा होता है कि मैं किसी के प्रति प्रेम हूँ। मैं पूरा ही प्रेम होता हूँ। मेरे पार कुछ बच ही नहीं रहता जो कि प्रेम न हो। और अगर मेरे पार इतना भी कोई बच रहता है जो कहने को भी हो कि मुझे उससे प्रेम हो गया है

तो मैं पूरा प्रेम में नहीं चला गया हूँ। और जो पूरा प्रेम में नहीं चला गया है वह प्रेष्ठ में गया ही नहीं है। वह जा ही नहीं सकता। जब हम पर दुख आते हैं तब हम पूरे उनमें नहीं हो जाते। अगर हम पूरे हो जाय और उनके बाहर, हमारे भीतर कुछ भी न बचे तो कौन रहेगा, कौन उड़िग्न होगा, कौन पीड़ित होगा? मैं दुख ही हो जाऊँ तो सवेदनशीलता पूर्ण होगी। अपनी पूरी त्वरा में, अपनी पूरी चरमता में होगी। क्योंकि, मेरी पुलक-पुलक और रोया-रोया दुख से भर जायेगा। मेरी आख, मेरा श्वास, मेरा अस्तित्व दुख हो जायेगा। लेकिन तब, उड़िग्न होने को कोई नहीं बचेगा। मैं दुखी हूँ, उड़िग्न कौन होगा? ऐसे ही जब सुख आये तो मैं पूरा सुख हो जाऊँ तो उड़िग्न कौन होगा? मैं सुख ही हो जाऊँगा। और, अगर सुख और दुख में मैं हम तरह पूरा होता चला जाऊँ तो कभी सुख और दुख की 'कम्परीजन', तुलना करने का मौका किस पर आयेगा? कौन तीलेगा कि जब मैं दुखी था तो बहुत बुरा था, अब मैं सुखी हूँ तो बहुत अच्छा हूँ, और अब आगे भी सुख ही होना चाहिए, दुख नहीं होना चाहिए। प्रतिष्ठ द्वारा पूरे अस्तित्व को घेर ले तो सवेदनशीलता समग्र होती है, पूर्ण होती है, लेकिन उड़िग्नना सो जाती है। उड़िग्नता का कोई कारण नहीं रह जाता।

एक मित्र मेरे पास आये अभी दो दिन पहले और उन्होंने कहा, मैं सिगरेट पीता हूँ और इससे बड़ा परेशान हूँ। मैंने कहा कि मालूम होता है कि तुमने अपने को दो हिस्सों में तोड़ा होगा। एक सिगरेट पीने वाला, एक परेशान होने वाला। नहीं तो यह कैसे सभव है? या सिगरेट पियो, या परेशान होओ। ये दो बाले एक साथ तभी सभव हैं जब तुमने अपने को दो हिस्सों में तोड़ लिया। तुमने अपने दो 'सेल्क' बनाये, एक जो सिगरेट पिये चली जाती है, और एक जो पश्चाताप किये चली जाती है। वह जो पश्चाताप करती है वह पश्चाताप करती रहेगी जिन्हीं भर, और जो सिगरेट पीती है वह जिन्दगी भर सिगरेट पीती रहेगी। जो पश्चाताप करती है वह कभी-कभी नियम ब्रत भी कियी। और जो पश्चाताप नहीं करती सिगरेट पीती है, वह नियम ब्रत तोड़ेगी। मैंने उनसे कहा, या तो तुम सिगरेट ही पियो या पश्चाताप ही करो। दो दो काम एक साथ करोगे तो कष्ट पैदा होता है। सिगरेट पियो तो सिगरेट पीने बाले ही हो जाओ। फिर, पीछे बचाओ भर अपने को। वह जो दूर लड़ा होकर कहे कि बुरा कर रहे हो, भला कर रहे हो उसे पार भर बचाओ। और, मैंने उनसे कहा, अगर किसी दिन पूरी सिगरेट पियो और पूरे हो जाओ, तो पूरा आदमी सिगरेट छोड़ भी सकता है। क्योंकि, तब वह पूरी तरह कर सकता है छोड़ना भी। जब पीना पूरा कर सकता है तो छोड़ना भी पूरा कर सकता है।

वह वह दुर्विद्या में नहीं जीता है । यह जो अधूरा-अधूरा बटा हुआ आदमी है वह कष्ट पाता है । इसके कष्ट का अन्त नहीं है, यह कष्ट स्लेही चला जाता है । वह हर हालत में उद्धिन्म होगा । उद्धिन्मता इसका भाग्य बन जायेगी, यह अनुद्धिन्म हो ही नहीं सकता । अनुद्धिन्म वही हो सकता है जो टोटल है, पूरा है । ऐसा व्यक्ति साक्षी नहीं हो सकेगा । ऐसा व्यक्ति साक्षी के पार जा सका । साक्षी सिर्फ साधन है, चिदि नहीं है । कृष्ण साक्षी नहीं है । अर्जुन को कह रहे हैं कि तू साक्षी हो जा । कृष्ण सिद्ध है । सिद्ध मतलब ही यह है कि अब इतना भी फासला नहीं तोड़ा जाता कि कौन देख रहा है और कौन दीखने वाला है । अब तो सिर्फ देखने की किया रह गयी, जिसके दो छोर हैं । एक पर लोग कहते हैं, दिखायी पड़ने वाला है, एक छोर पर लोग कहते हैं कि देखने वाला है । और देखना पूरा हो गया है । वह इकट्ठा है ।

साक्षी जगत को दो मेरे तोड़ता है । 'आब्जेक्ट' और 'सब्जेक्ट' मेरे देखने वाले मेरे, दिखायी पड़ने वाले मेरे । साक्षी कभी भी अद्वैत नहीं है । साक्षी द्वैत की अतिम सीमा-रेखा है । वह जगह है, जहा तस्ती लगी है कि अब अद्वैत शुरू होता है । लेकिन, साक्षी हुए बिना कोई अद्वैत मेरुपिकल से जा पाता है । साक्षी होने का मतलब है, इसने बहुत मेरे तोड़ना बन्द किया, दो मेरे तोड़ना शुरू किया । दो मेरे तोड़ने के बाद बहुत कठिन नहीं है । क्योंकि, जो आदमी साक्षी होगा उसे साक्षी होने मेरे कभी-कभी वे क्षण बीच मेरे आयेंगे जब वह पायेगा, न साक्षी रह गया, न जिसका साक्षी था वह रह गया । सिर्फ साक्षी होना रह गया । जिसे कि मेरे किसी को प्रेम करता है, तो प्रेम करने वाला है, प्रेम किया जा रहा है—वह है । लेकिन, प्रेम मेरे ऐसे क्षण आते हैं जब करने वाला भी नहीं बचता और जिसे किया जा रहा है वह भी नहीं बचता, सिर्फ प्रेम की एक लहर बचती है जो दोनों को छूती है । एक लहर—जिसके एक छोर पर करने वाला होता है, एक छोर पर किया जाने वाला है । प्रेम के बहरे क्षणों मेरे भी और प्रेमिका या प्रेम-पात्र नहीं बचते, प्रेम ही बचता है । वह अद्वैत के क्षण हैं । साक्षी मेरे भी ऐसे क्षण आते हैं जब 'सब्जेक्ट', 'आब्जेक्ट' मिट जाते हैं, सिर्फ 'कासेसनेस' रह जाती है जिसके दो छोर रह जाते हैं । एक दूर वाला छोर, एक पास वाला छोर । पास वाला छोर, जिसे हम 'मैं' कहते रहे हैं, दूर वाला छोर जिसे हम 'तू' कहते रहे हैं, लेकिन अब यह एक ही लहर के दो छोर हैं । जिस दिन वह स्थिति पूर्णता को उपलब्ध हो जाती है और कभी नहीं लोती उस दिन साक्षी मिट जाता है । उस दिन सिद्ध रह जाता है ।

कुण्ड साक्षी नहीं हैं। हमें कुण्ड अवृत्त के साक्षी होने की बात कह रहे हैं। पूरे समय साक्षी होने की बात कह रहे हैं और उस काण की भी जर्चरा चलाये जा रहे हैं जब कि साक्षी भी मिठ आयेगा। वे साथन की भी बात कर रहे हैं, साथ की भी भी बात कर रहे हैं। वे रास्ते की भी बात कर रहे हैं, वे मजिल की भी बात कर रहे हैं। जब वे कह रहे हैं कि सुख-दुख में अनुद्विग्न, तब वे साक्षी की बात नहीं कर रहे हैं। हालांकि भीता समझने वाले बहुत लोगों ने ऐसा ही समझा है कि वे साक्षी की बात कर रहे हैं। यही समझा है कि सुख के तुम साक्षी हो जाओ। देखते रहो, भागो मत तो अनुद्विग्न हो जाओगे। लेकिन, अगर दुख और सुख को कोई मात्र देखे ही, तो देखना भी एक तनाव और उच्चिन्ता होगी। पूरे बक्त 'डिफ़ेर्स' की हालत होगी। वह पूरे बक्त अपने को बचाता रहेगा। मैं जो कह रहा हूँ, बहुत और बात कह रहा हूँ। मैं यह कह रहा हूँ कि 'टोटल इनवाल्वमेट' साक्षी की तरह दूर लड़े होना नहीं, अभिनेता की तरह पूरी तरह कूद जाना। एक ही हो जाना। नदी आपको डुबाती है, क्योंकि आप अलग हैं। आप नदी ही हो गये, ऐसी बात कह रहा हूँ। अब कैसे डुबायेगी? किसको डुबायेगी, कौन डूबेगा, कौन चिल्लायेगा—बचाओ? जो स्थिति है जिस पल में, उस पल में पूरी तरह एक हो जाना है। और, जब वह पल बीत गया, दूसरा पल आयेगा—आपको पल के साथ पूरे एक होने की कला आ गयी तो आप हर पल के साथ एक होते चले जायेगे। और तब, बड़े मजे की बात है, दुख भी आयेगा और आपको निखार जायेगा। सुख भी आयेगा और आपको कुछ दे जायेगा। तब दुख भी मित्र मालूम होगा और सुख भी मित्र मालूम होगा। तब जीवन के अतिम अणों में विदा होते बक्त आप अपने सुखों को भी धन्यवाद दे सकेंगे और अपने दुखों को भी धन्यवाद दे सकेंगे, क्योंकि दोनों ने मिलकर आपको बनाया। यह दिन ही नहीं है जो आपकी जिन्दगी है, अन्धेरा भी आपकी जिन्दगी है। यह जन्म ही नहीं है जो सुस्ती का अवसर है, मृत्यु भी उत्सव का क्षण है। लेकिन, यह तभी होगा जब हम प्रतिपल को पूरा जी लें तब हम यह न कह पायेंगे कि दुख विपरीत था और सुख साथी था, दुख प्रादूर था। नहीं तब हम ऐसा कह पायेंगे कि दुख दायर हाथ था, सुख बाया हाथ था। दोनों के साथ हम चल पाये। दुख बाया पैर था, सुख दाया पैर था। दोनों हमारे पैर हैं। जब आप अपना बाया पैर उठाते हैं तब आप आधा नहीं उठाते, आप पूरे ही अपने बायें पैर के साथ होते हैं। जब आप

अपना दाढ़ों पैर उठाते हैं तब पूरे ही आप अपने दोयें पैर के साथ हीते हैं। जब आप चुप होते हैं तब भी आपको अपनी चुप्पी में पूरा होना चाहिए, जब आप बोलते हैं तब अपने बोलने में पूरा हो जाना चाहिए।

विकल्प जब हम चुनते हैं तभी उद्विग्नता शुरू होती है। और, जब तक चुनने वाला अलग खड़ा है तब तक चुनाव जारी रहता है। इसलिए, साक्षी बहुत ऊची अवस्था नहीं है, मध्य अवस्था है। कर्ता के बजाय अच्छी है, इस अर्थ में कि कर्ता सीधा छलांग नहीं लगा सकता अद्वेत में। साक्षी 'जमिंग बोर्ड' के करीब पहुच जाता है, जहा से छलांग हो सकती है। लेकिन, साक्षी भी तट पर खड़ा है और कर्ता भी तट पर खड़ा है। कर्ता जरा तट से दूर खड़ा है, जहा से सीधी छलांग नहीं हो सकती, साक्षी तट के बिल्कुल किनारे खड़ा है जहा छलांग हो सकती है। लेकिन, दोनों ने जब तक छलांग नहीं ली तब तक दोनों एक ही भूमि के टुकड़े पर खड़े हैं। छलांग के बाद ही अद्वेत बच रहता है। यहा जो अनुद्विग्नता की बात कृष्ण कहते हैं वह अद्वेत की बात है। उद्विग्न होने वाला ही न बचे वह पूरा ही डूब जाय, इसलिए मैं मानता हूँ कि कृष्ण की यह जो दृष्टि है यह 'पटी सेमिटीविटी' की नहीं है। यह सबेदनशीलता के विपरीत नहीं है। बन्धि, पूर्ण सबेदनशीलता की उपलब्धि है।

दक्षिणायन और उत्तरायण की बात कृष्ण ने जो गीता में नहीं है वह हमारे सूर्य और हमारे दक्षिणायन और उत्तरायण की नहीं है। इस पृथकी पर जो सूर्य उत्तर और दक्षिणायन होता रहता है उसकी कोई बात नहीं है। कि, दक्षिणायन के सूर्य के समय मुक्ति हो जायेगी, मोक्ष हो जायेगा और उत्तरायण के सूर्य के समय मुक्ति नहीं होगी, मोक्ष नहीं होगा। यह बहुत 'सिम्बालिक' है। यह हमारे भीतर चित्त के प्रकाश सूर्य की बात है। और जैसे, हमने उस पृथकी को हिस्सों में बाटा हुआ है, ऐसे ठीक हमने मनुष्य के व्यक्तित्व को दो हिस्सों में बाटा है। उस मनुष्य के व्यक्तित्व के भीतर सूर्य की या प्रकाश की या सत्य जो भी हम नाम देना पसंद करें, एक गति है। और, मनुष्य के भीतर चक्रों की एक व्यवस्था है। अगर उस व्यवस्था में एक विशेष जगह तक प्रकाश का अनुभव शुरू नहीं हुआ है तो व्यक्ति मुक्त नहीं होता है। एक विशेष जगह तक भीतर अस्तरजीवन में सूर्य का प्रवेश हुआ है तो व्यक्ति मुक्त होता है। वह लम्बी चर्चा होगी, उसे फिर कभी उठाना ठीक होगा। अभी इतना ही समझ लेना है कि बाहर के उत्तरायण और दक्षिणायन की बात नहीं है। भीतर भी हमारे सूर्य के गति की व्यवस्था है। भीतर भी हमारा एक अस्तित्व है जहा प्रकाश की गतियाँ की वह चर्चा है। उन प्रकाश की गतियों की वह चर्चा है।

और, उसमें पहुँच होता है कि वक्षिणाथन के चक्रों पर जब प्रकाश होगा—ऐसी स्थिति में जीवन से छुटा हुआ व्यक्ति अन्म-प्रणरुपी बन्धन से मुक्त हो जाता है। वह फिर अपने की सदा मुक्त पाता है। ऐसे ही जैसे हम कहते हैं कि सी डिग्री पर पानी गरम होता है तो भाप बन जाता है। सौ डिग्री के नीचे होता है तो भाप नहीं बनता। ऐसी एक विशेष भौतर सूर्य की व्यवस्था की बात है, वह जो हम चक्रों की ओर अन्तर्शरीरों की पूरी बात समझे तभी स्थालमें आ सकती है। इसलिए, उसे फिलहाल न उठायें। अभी इतना भर समझ लेना उचित है।

प्रश्न . स्थितप्रश्न और भक्त में यथा भेद या समानता है ?

उत्तर स्थितप्रश्न का अर्थ है जो भगवान हो गया। भक्त का अर्थ है जो भगवान होने की याका पर है। भक्त रास्ते में है, स्थितप्रश्न पहुँच गया है। रास्ता वही है, पहुँचना वही है। मुकाम पर पहुँचे हुए आदमी का नाम स्थितप्रश्न है और भक्त याकी का नाम है जो चल रहा है। दोनों में समानता होगी ही, क्योंकि रास्ता और मजिल जुड़े होते हैं अन्यथा रास्ता मजिल तक कैसे पहुँचेगा ? समानता होगी ही, क्योंकि मजिल सिर्फ रास्ते की पूर्णता है। जहा रास्ता पूरा हो जाता है वहा मजिल आ जाती है। समानता होगी ही, क्योंकि जो रास्ते पर है वह एक अर्थ में मजिल पर ही है। थोड़ा फासला है बस। अन्तर जो है वह पहुँचने का और पहुँचे होने का है। भक्त चल रहा है, स्थितप्रश्न बैठ गया है, पहुँच गया। इसलिए, भक्त के लिए सारी अपेक्षाएँ हैं जो स्थितप्रश्न की उपलब्धि बनेगी, क्योंकि तभी वह वहा तक पहुँच सकेगा। भक्त की आखिरी मजिल, उसका भक्त होना मिट जाने की है। जब तक वह भगवान न हो जाय तब तक तृप्ति नहीं हो सकती। भक्त कितना ही चिल्लाये और रोये परमात्मा के मिलने को, मिलन हो भी जाय और दोनों आलिङ्गनबद्ध लडे भी हो जाय तो भी भक्त का चिल्लाना बन्द नहीं होगा। क्योंकि, आलिङ्गन कितने ही निकट हो, फिर भी दूर है। हम किसी को कितने ही छाती से लगा ले, फिर भी दोनों के बीच फासला है। अन्तर तो पूर्ण तभी मिट सकता है जब एक ही हो जाय। इच्छा भर का अन्तर उतना ही अन्तर है जितना लाख भील का अन्तर है। अन्तर की मात्रा से कोई फक नहीं पड़ता। इच्छा के हजारबे हिस्से का अन्तर उतना ही अन्तर है जितना कि लाख भील का अन्तर है। तो, भक्त की तृप्ति भगवान की छाती से लगकर बैठ जाय। तब भी नहीं हो सकती। तब भी फासला है। यही तकलीफ तौ प्रेमी की है। प्रेमी का कष्ट ही यही है, क्योंकि कितने ही पास आ जाय तो भी दुखी रहेगा। प्रेमी को कितना ही पा ले तो भी दुखी रहेगा। अगर यह बातें समझ में आ जायें कि उसका

इस अवल में यह है कि जब तक वह प्रेमी ही न हो जाय तब उसी ही रहेगा, और यह होना बड़ा मुश्किल है। प्रेम के तल पर तो होना मुश्किल है, बहुत मुश्किल है, कैसे यह होगा? किसने ही पास आके नहीं सभव है। इसलिए, प्रेमी किसने ही पास आयेगे उसना ही कष्ट शुल्क होने लगेगा। क्योंकि, किसने पास आयेगे उसना 'डिसइलूजनमेट' होगा। दूर थे तो यह स्थाल था कि पास आने से सुख मिल जायेगा। जब पास ही आ गये, अब कैसे सुख मिलेगा? अब और पास आने का कोई उपाय भी न रहा। तब प्रेमी एक दूसरे पर कोधित होना शुल्क हो जाते हैं। शायद सोचते हैं कि दूसरा कुछ बाधा डाल रहा है, दूसरा कोई नुकसान पहुंचा रहा है, दूसरा शायद टीक से प्रेम नहीं कर रहा है, दूसरा शायद धोखा दे गया, दूसरा शायद किसी और के प्रेम में पड़ गया है। इसलिए, प्रेमी की चिन्ता शुल्क हो जाती है पास आने पर। असली कारण यह है कि प्रेमी तब तक तृप्त नहीं हो सकता, जब तक कि वह इतने निकट न आ जाय कि दूरी ही न बचे। यह तब तक नहीं हो सकता है जब तक वह एक न हो जाय। इसलिए, जो भी प्रेमी है वे आज नहीं कल, भक्त बनने शुरू हो जायेगे, क्योंकि जब शरीरधारी अवित के इनने निकट आना असम्भव है तब अशरीरी परमात्मा के निकट ही इतना आया जा सकता है जहा फासला ही न बचे। तो सब प्रेमी, आज नहीं कल, भक्त बनेगे। और, सब प्रेम-निवेदन आज नहीं कल प्रार्थना बन जाते हैं। अन्तत बनने ही चाहिए, अन्यथा दुख देते रहेंगे। जो प्रेमी भक्त नहीं बन पाता वह सदा दुखी रहेगा। क्योंकि, आकाशा उसकी भक्त की है और माग वह प्रेम से पूरी करना चाह रहा है। चाहता कुछ और है, कर कुछ और रहा है। चाहता वह यह है कि बिल्कुल एक हो जाऊ, कि इतना फासला भी न रहे कि मैं और तू का फासला भी बचे। चाहता वह यह है, लेकिन जिससे वह यह करना चाह रहा है उससे यह नहीं हो सकता। उससे मैं और तू का फासल। बना ही रहेगा। दो अवित कभी इतने निकट नहीं आ सकते जहा कि मैं और तू का फासला गिर जाय, सिफँ दो अवित इतने निकट आ सकते हैं जहा मैं और तू का फासला मिट जाय। परमात्मा अवित है। जिस दिन भक्त भी अवित हो जायेगा उस दिन उपलब्धि हो जायेगी। परमात्मा तो ही नहीं इस अर्थ में, जिस अर्थ में भक्त है। परमात्मा का तो होना न होने जैसा है। उसकी उपस्थिति अनु-पस्थिति जैसी है। यह बड़े मजे की बात है, थोड़ी स्थाल में लेनी जरूरी है।

इस निरन्तर पूछते हैं, दुनिया में सारे भक्तों ने पूछा है कि परमात्मा प्रकट क्यों नहीं होता? अबर परमात्मा प्रकट हो जाय तो उससे मिलन असम्भव है। सिफँ अप्रकट से ही पूर्ण बिल्न हो सकता है। भक्तों ने निरन्तर पूछा है कि तुम क्यों

कहों हो ? सामने कहों नहीं आते हो ? अब वह सामने आ जाय तो इतना बड़ा पर्दा चिर जायेगा कि फिर मिलन हो ही नहीं सकता । वह किए हैं ; इसीलिए मिलने की सम्भावना है । वह अदृश्य है ; इसीलिए उसमे ढूबा जा सकता है । वह दृश्य बन जाय तो दीवाल बन जायेगी और मिलन असभव है ।

एक बहुत अद्भुत फकीर एकहाट ने कहा है, परमात्मा को धन्यवाद दिया है कि तेरी अनुकम्पा अपार है कि तू दिखायी नहीं पड़ता । तेरी अनुकम्पा अपार है कि तू पकड़ में नहीं आता । तेरी अनुकम्पा अपार है कि तू सोजे से कही भी नहीं मिलता, कहीं नहीं पाते हैं तुम्हे । क्यों है तेरी अनुकम्पा अपार ? क्योंकि, इस भावि तु हमे भी निरन्तर सिखाये जाता कि जब तक तुम भी ऐसे न हो जाओ कि सोजे से न मिलो, कि जब तक तुम भी ऐसे न हो जाओ कि दिखायी न पडो, कि जब तक तुम ऐसे न हो जाओ कि न होने जैसे हो जाओ, तब तक मिलन असभव है । भगवान तो अरूप है, जिस दिन भक्त अरूप हो जाता है उस दिन मिलन हो जाता है । इसलिए, बाधा सिर्फ भक्त की तरफ से है, भगवान की तरफ से कोई बाधा नहीं है । स्थितप्रज्ञ का अर्थ है, भक्त जो अरूप हो गया । अब वह भगवान को भी नहीं चिल्लाता, क्योंकि कौन चिल्लाये ? अब वह प्रार्थना भी नहीं करता, क्योंकि कौन करे ? किसकी करे ? या अब हम ऐसा कह सकते हैं कि वह जो भी कहता है वही प्रार्थना है । अब वह जो भी चिल्लाता है वही भगवान के लिए निवेदन है । अब हम दोनों तरफ से कह सकते हैं । स्थितप्रज्ञ का अर्थ है कि मनुष्य भी वैसा हो गया जैसा परमात्मा है । भक्त का अर्थ है कि उसने याकृतों शुरू की परमात्मा की तरफ, लेकिन अभी वह मनुष्य है । उसकी सब आकृक्षाएं अपेक्षाएं मनुष्य की हैं । मीरा कितनी चिल्ला रही है । उसके गीत बड़े अद्भुत हैं । इस अर्थ में अद्भुत है कि वे बड़े मानवीय हैं । उसकी सारी चिल्लाहट एक प्रेमी की चिल्लाहट है—एक भक्त की । वह कहती है—सेज सजा दी और तुम आ जाओ । मैं तुम्हारे लिए द्वार खोलकर प्रतीक्षा कर रही हूँ । ये सब मानवीय प्रतीक्षा है । भुजत का मतलब है—मनुष्य, जो परमात्मा की तरफ चल पड़ा । लेकिन, अभी मनुष्य है । स्थितप्रज्ञ का अर्थ है, मनुष्य अब मनुष्य नहीं रहा, अब वह किसी की तरफ नहीं जा रहा है, अब जाने का कोई सवाल नहीं है । अब वह जहां है, वहीं है । वहीं परमात्मा तो सदा था, सिर्फ हम अरूप हो जाते हैं, हम अदृश्य हो जाते हैं, हम न हो जाते हैं । कीसस का बचत है, जो अपने को बचायेगा वह सो देगा । और जो अपने को सो देता है वह पा लेता है ।

स्थितप्रज्ञ ने अपने को खो दिया, इसलिए पा लेता है। भक्त अभी पाने चला है और सुद है। अनुभव उसे धीरे-धीरे मिटायेगा। कबीर का वचन है, 'खोजते खोजते किर मैं ही खो गया। और कोई उपाय न था। खोजने निकले थे किसी को, आखिर मैं पाया कि खोज ने सुद को छोड़ लिया। हेरत हेरत है सखी, गया कबीर हेराइ'। खोजने निकले थे सखी, लेकिन आखिर ऐसा हुआ कि वह तो मिला नहीं। सुद ही खो गया। लेकिन, जिस दिन खो गया उस दिन खोज पुरी हो जाती है। उस दिन वह मिला ही हुआ है। लाओत्से का बहुत अद्भुत वचन है। लाओत्से कहता है—‘सीक एण्ड यु विल नाट फाइन्ड’—मत खोजो, पाओ, ‘विकाज ही इज हियर एण्ड नाऊ’—वह अभी और यही है। खोज की वजह से तुम दूर निकल जाते हो, क्योंकि कोई भी यही और अभी नहीं खोजेगा। खोज का मतलब ही कही और है। खोजने कोई भक्तका जायेगा, कोई मदीना जायेगा, कोई काशी जायेगा, कोई मानसरोवर, कैलाश जायेगा। खोजने को जायेगा। हा, कोई मनाली जायेगा। और वह वही है। यही है, अभी है, इसलिए खोजने वाला उसे जब तक खोजता रहता है तब तक, खोजता चला जाता है। जिस दिन खोजने वाला खोज-खोजकर थक जाता है और मिट जाता है और गिर जाता है, तब वह मनाली में गिरे, कि भक्तका मे, कि मदीना मे, कि कैलाश पर, वह कही भी गिर जाय, वह जहा भी गिर जाय वही पाता है कि वह मौजूद है। वह सदा मौजूद है, हमारी मौजूदी बाधा है। हम गैरमौजूद हो जाय। भक्त अभी मौजूद है, स्थितप्रज्ञ गैरमौजूद हो गया। भक्त की अभी ‘प्रेजेम’ है, स्थितप्रज्ञ की कोई ‘प्रेजेन्स’ नहीं है। वह ‘अब्सेट’ हो गया। वह अब है नहीं। यह समझ लेना जरूरी है कि जब तक भक्त ‘प्रेजेन्ट’ है तब तक ईश्वर ‘एब्सेट’ रहेगा। जब तक भक्त मौजूद है तब तक ईश्वर गैरमौजूद है। और इसलिए भक्त ईश्वर को ‘प्राक्षी’ की तरकीब से मौजूद करता रहता है। कभी मूर्ति बनाकर रख लेता है, कभी मन्दिर बना लेता है। यह ‘प्राक्षी’ है। इससे कोई हल नहीं है। यह भक्त का ही बनाया हुआ खेल है। वह थोड़े ही दिन मे ऊब जायेगा अपने ही बनाये हुए भगवान से। बहुत तृप्ति नहीं मिल सकती, कैसे मिलेगी? प्राक्षी पकड़ मे आ ही जायेगी। तब वह फेक देगा मूर्तियो-बूर्तियो को। वह कहेगा, ऊब मे उसी को चाहता हूँ जो है। लेकिन, वह तभी मिलता है, जब मैं नहीं हूँ, एक ही शर्त है उसकी। मेरा होना ही दीवाल है, मेरा न होना द्वार बन जाता है। बस भक्त और स्थितप्रज्ञ मे उतना ही कर्क है। स्थितप्रज्ञ ढार है, भक्त अभी दीवाल है। दीवाल हम भी है, लेकिन भक्त ऐसी दीवाल है जिसके भीतर चीख-पुकार

शुरू हो गयी। भक्त ऐसी दीवाल है जिसने दद्दाजे होने की तरफ अम शुरू कर दिया। हम एसी दीवाल हैं जो आराम से विश्राम करते हैं जिनकी कोई यादा शु नहीं हुई है।

**प्रश्न :** सेवन के सम्बन्ध में श्रीकृष्ण के विद्वान् और कांतिकारी अनुदान पर सविस्तार प्रकाश डालने की कृपा करें।

श्रीकृष्ण के प्रति स्त्रियों के अति आकर्षित होने में क्या कारण है? हजारों लाखों गोंपियां उनके पीछे दीवानी थीं, ऐसा क्यों होता था?

यदि प्रेम पूर्णता से काम शून्यता आती है तो काम शून्यता की उपलब्धि के बाद बच्चे कैसे पैदा होंगे? अर्थात् काम शून्यता से समोग कैसे घटित होगा? क्या आत्म समाधि, वहा समाधि और निर्बाण समाधि के बाद समोग सम्भव है? क्योंकि समोग के लिए प्राणों की बंचलता आवश्यक है न?

**उत्तर :** इस सम्बन्ध में बहुत सी बात हो गयी है। इसलिए, कुछ थोड़ी बातें और स्थाल में ले लेनी चाहिए।

कृष्ण के प्रति आकर्षण लाखों स्त्रियों का ठीक ऐसा ही है जैसे पहाड़ से पानी भागता है नीचे की तरफ और झील में इकट्ठा हो जाता है। हमने कभी नहीं पूछा कि पहाड़ से पानी झील की तरफ क्यों भागकर इकट्ठा होता है। अगर हम पूछे तो उत्तर यहीं होगा, क्योंकि झील-झील है, गड्ढा है। पानी गड्ढ में भर जाता है। गिरता है पर्वत के शिखर पर, भरता है झील में। पर्वत के शिखर पानी ही नहीं रोक पाते। पानी का स्वभाव है कि वह गड्ढे को खोजे, क्योंकि वही वह निवास कर सकता है। अगर इसको हम ठीक से समझें तो स्त्री का स्वभाव है कि वह पुरुष को खोजे। वह पुरुष में ही निवास कर सकती है। पुरुष का स्वभाव है कि वह स्त्री को खोजे, वह स्त्री में ही निवास कर सकता है। यह स्वभाव है। यह वैसे ही स्वभाव है जैसे और जीवन की सारी चीजों का स्वभाव है। जैसे आग का कुछ स्वभाव है, जैसे पानी का कुछ स्वभाव है, ऐसे ही पुरुष होने का स्वभाव है कि वह स्त्री में अपने को खोजे। स्त्री का मतलब ही वह जो पुरुष भे अपने को खोजती है। स्त्रैण होने का मतलब ही यही है कि जो पुरुष के बिना अधूरी है। पुरुष होने का मतलब ही यही है जो स्त्री के बिना अधूरा है। अधूरा होना स्त्री पुरुष का होना है। इसलिए, उनकी निरन्तर खोज है। जब यह खोज पूरी नहीं ही पाती

तो 'कल्पन' है, दुख है, पीड़ा है। जब यह स्वोज पूरी नहीं हो पाती तो स्वभाव के प्रतिकूल होने के कारण कष्ट है, सताप है, चिन्ता है।

कृष्ण के प्रति इतने आकर्षण का एक ही कारण है कि कृष्ण पूरे पुरुष है। जितना पूर्ण पुरुष होया उतना आकर्षक हो जायेगा स्त्रियों में। जितनी स्त्री पूर्ण होगी उतनी आकर्षक हो जायेगी पुरुषों में। पुरुष की पूर्णता कृष्ण में पूरी तरह प्रकट हो सकी है। महावीर कम पुरुष नहीं है, ठीक कृष्ण जैसे ही पूरे पुरुष है। लेकिन, महावीर की पूरी साधना अपने पुरुष होने को छोड़ देने की साधना है। महावीर की पूरी साधना, वह जो स्त्री-पुरुष के नियम का जगत है; उसके पार हो जाने की साधना है। फिर भी, इस सारी साधना के बावजूद महावीर की भिक्षुणिया चालीस हजार है और भिक्षु दस हजार है। फिर भी, स्त्रिया ही ज्यादा आकर्षित हुई। जहाँ चार साधु महावीर के दीक्षित हुए वहा तीन स्त्रिया हैं और एक पुरुष है। महावीर को छू भी नहीं सकती वे स्त्रियाँ। महावीर के निकट भी नहीं बैठ भक्ती आकर्ष, लेकिन फिर भी स्त्रिया महावीर के लिए कम दीवानी नहीं है। हालांकि इस बात को भी कभी इस तरह देखा नहीं गया। और, जो इस हजार पुरुष महावीर के पास आये हैं इनकी भी अगर हम कभी बहुत स्वोज-बीन करे तो पता चलेगा कि इनके चित्त में कहीं न कहीं स्त्रैणता है। होगी ही। जरूरी नहीं है कि एक आदमी शरीर से पुरुष हो तो मन से भी पुरुष हो। ऐसा भी जरूरी नहीं है कि एक आदमी शरीर से स्त्री हो तो मन से भी स्त्री हो। मन जरूरी रूप से शरीर के साथ सदा तालमेल नहीं रखता। फिर, महावीर का आकर्षण आधी बात है। हमारा चित्त भी तो उस तरफ बहना चाहिए? कृष्ण के साथ तो और भी अद्भुत स्थिति है। कृष्ण तो कुछ छोड़कर भागे हुए नहीं हैं। स्त्रिया उनके पास सिर्फ साथी होकर खड़ी रह सकती है ऐसा नहीं, न सिर्फ उनको देख सकती है, कृष्ण के साथ नाच भी सकती है। तो, अगर कृष्ण के पास लाखों स्त्रिया इकट्ठी हो गयी हो तो कुछ आश्वर्य नहीं है, ये सहज है। बिल्कुल सरलता से है।

बुद्ध वैसे ही पूर्ण पुरुष है इसलिए बहुत मजेदार घटना घटी है। बुद्ध ने स्त्रियों को दीक्षा देने से इन्कार कर दिया। क्योंकि बुद्ध के सामने खतरा बिल्कुल साफ है। वह खतरा यह है कि स्त्रिया दौड़ पड़ेंगी और भारी भीड़ स्त्रियों की इकट्ठी हो जायेगी। और जरूरी नहीं है कि ये स्त्रिया साधना के लिए ही आतुर होकर आयी हो। बुद्ध का आकर्षण बहुत कीमती हो सकता है। कृष्ण के पास जो गोपिया पहुंच गयी हैं वह कोई प्रसात्य-उपलब्धि के लिए

पहुँच नहीं हो, ऐसा नहीं है। कृष्ण भी काफी परमात्मा है। थानी कृष्ण के पास हीना भी बड़ा सुखद हैं। कृष्ण को तो इससे चिनता नहीं होती कि कौन किसलिए आया है, क्योंकि कृष्ण को कोई चुनाव नहीं है। लेकिन, बुद्ध को चुनाव है और बुद्ध सहस्री से इन्कार करते हैं कि स्त्रियों को दीक्षा नहीं देंगे। बहुत दिनों तक यह सवर्ष चलता है और स्त्रिया सहस्री से बुद्ध की इस बात की खिलाफत करती है कि हमारा क्या कसूर है कि हमें दीक्षा नहीं मिलेगी। तब बड़ी मजबूरी में, बड़े दबाव से और बड़े आग्रह से बुद्ध राजी होते हैं। यह थोड़ा सोचने जैसा भासला है—बुद्ध का इतनी देर तक यह कहे चले जाना कि नहीं दूमा दीक्षा। क्योंकि, बुद्ध को इसमें साफ एक बात दिखायी पड़ती है कि जो सी स्त्रिया आती है उसमें निव्यानवे के आने की सम्भावना का कारण बुद्ध है, बुद्धत्व नहीं। यह साफ दिखायी पड़ रहा है। और, यह भी साफ दिखायी पड़ रहा है कि बुद्ध 'रिसिस्ट' करते हैं। तब, कृशा गौतमी नाम की एक स्त्री बुद्ध को कहती है कि क्या हम स्त्रियों को बुद्धत्व नहीं मिलेगा? फिर, आप कब दुबारा आयेंगे हमारे लिए? और, अगर हम चूकें तो जिम्मेदारी तुम्हारी होगी! हमारा कसूर क्या है? हमारा स्त्री होना कसूर है? यह सीधी स्त्री है, निव्यानवे वाली स्त्री नहीं है। इस कृशा गौतमी के लिए बुद्ध को मुकना पड़ता है। यह बुद्ध के लिए नहीं आयी है, यह बुद्धत्व के लिए आयी है। वह कहती है, हमें तुमसे प्रयोगन नहीं, लेकिन तुम्हारे होने का लाभ पुरुष ही उठा पायेगे, हम सिर्फ स्त्री होने से बचित रह जायेगी? स्त्री होने का ऐसा दण्ड हमें मिलेगा? आप भी इसमें चुनाव करते हैं? कृशा गौतमी को आज्ञा दी जाती है, फिर द्वार खुल जाता है। और, फिर वही होता है जो महावीर के पास हुआ कि पुरुष कम पड़ जाते हैं, स्त्रिया रोज ज्यादा होती चली जाती हैं।

बाज भी मदिरों में स्त्रिया ज्यादा है, पुरुष कम है। तब तक पुरुष मदिरों में कम होंगे जब तक स्त्री तीर्थंकर और स्त्री अवतारों की मूर्तियां मदिर में भ हो। क्योंकि, सी जाते हैं, उसमें से निव्यानवे बहुत सहज कारणों से जाते हैं, एक ही असहज कारण से जाता है। कृष्ण के पास तो बहुत ही सरल बात है, कृष्ण के लिए तो कोई बाधा ही नहीं है। कृष्ण तो जीवन की समझता को अभीकार कर लेते हैं। कृष्ण अपने पुरुष होने को स्वीकार करते हैं। किसी के स्त्री होने को स्वीकार करते हैं। सच तो यह है कि कृष्ण ने शायद भूल कर भी, जरा सा भी अपमान, किसी स्त्री का नहीं किया। जीसह के बचनों में भी सम्भावना है, महावीर के बचनों में भी, बुद्ध के बचनों में भी

स्त्री के अपमान की सम्भावना है। और, कारण सिर्फ़ इतना ही है कि वे अपने पुरुष होने को मिटाना चाह रहे हैं। और, कोई कारण नहीं है। स्त्री से कोई बास्ता नहीं है। महावीर या बुद्ध या जीसस अपने 'सेक्सुअल बीइंग' को अपने 'बायोलॉजिकल बीइंग' को, अपने जैविक अस्तित्व को पोछ डालना चाह रहे हैं। स्वभावतः स्त्री उनको न पोछने देगी। स्त्री पास पढ़ूचेगी तो उनका पुरुष होना प्रकट हो सकता है। उनके पुरुष होने को भोजन मिलता है। लेकिन, जीसस जैसे उदास आदमी के पास भी, जिसके ओठ पर बासुरी नहीं है, उसके पास भी स्त्रिया इकट्ठी हो गयी। जीसस की शूली पर से लाश जिन्होंने उतारी वह पुरुष न थे, वे स्त्रिया थी। उस युग की सर्वाधिक सुन्दरी स्त्री 'मेरी मैग्डेलम' ने उम्म लाश को उतारा। पुरुष तो जा चुके थे और स्त्रिया रुकी थी। लेकिन, जीसस ने स्त्रियों के लिए सम्मान का कभी एक वचन नहीं कहा।

महावीर कहते हैं कि स्त्रिया—स्त्री पर्याय से मोक्ष न जा सकेगी। उन्हें एक बार पुरुष का जन्म लेना होगा। फिर, वे मोक्ष जा सकती हैं। बुद्ध तो उनको दीक्षा देने से इन्कार करते हैं कि हम दीक्षा ही न देंगे। और, जब दीक्षा भी दे दी तब भी उन्होंने जो वचन कहे वे हैंगानी के थे। बुद्ध ने कहा मेरा जो धर्म हजारों साल चलता था वह पाच सौ साल से ज्यादा नहीं चल पायेगा, क्योंकि स्त्रिया दीक्षित हो गयी है।

### प्रश्न इस कथन में सचाई तो थी।

उत्तर सचाल यह नहीं है। बुद्ध की तरफ से कथन में सचाई थी क्योंकि बुद्ध का जो मार्ग है उस मार्ग में या महावीर का जो मार्ग है उस मार्ग में स्त्री के लिए उपाय नहीं है बहुत। लेकिन, महावीर और बुद्ध बड़े आकर्षक हैं और स्त्री आ जाती है। सचाई उनके मार्ग के सन्दर्भ में है, सचाई 'एब्स्लूट' नहीं है। स्त्री के लिए कोई बाधा नहीं है मोक्ष जाने में। लेकिन मार्ग अन्यथा होगा। महावीर बाले मार्ग से नहीं हो सकता। ऐसे ही जैसे हमने दो रास्ते में, पहाड़ पर एक सीधी चढ़ाई हो और वहा तस्ती लगा दी हो कि स्त्रियां यहा से नहीं, और एक लम्बी चढ़ाई का गोल रास्ता हो वहा एक तस्ती लगी हो कि स्त्रियां यहा से। बस इतना ही फर्क है। यह रास्ते के सन्दर्भ में सच है। महावीर के रास्ते के सन्दर्भ में यह बिल्कुल सच है कि स्त्री जा नहीं सकती मोक्ष अगर महावीर के मार्ग से ही जाने की को सी स्त्री की जिद हो तो। उसे एक बार पुरुष के रूप में लौटना चाहिए है। क्योंकि, सीधी चढ़ाई का रास्ता है। चढ़ाई के कई कारण हैं।

बदा कारण तो यह है कि न कोई परमात्मा है महाकीर के रास्ते पर, न कोई सभी साथी। नहीं कोई है जिसके कल्पे पर हाथ रखा जा सके। स्त्री का व्यक्तित्व अपने आप में ऐसा है कि कोई क्षुठा कन्धा भी मिल जाए तो भी ठीक है। उसको कल्पे पर हाथ चाहिए। वह किसी के कल्पे पर हाथ रखकर आश्वस्त हो जाती है। यह उसके व्यक्तित्व का ढग है। इसमें और कोई कारण नहीं है। पुरुष किसी के कल्पे पर हाथ रखे तो दीन अनुभव करता है अपने को। स्त्री किसी के कल्पे पर हाथ रखे तो उसकी गरिमा बढ़ जाती है।

यह जो गाधीजी की बात उठायी है, वह भी स्थाल में ले लेनी चाहिए।

गाधी जी स्त्रियों के कल्पे पर हाथ रखकर चले हैं। शायद इस भाति के बे पहले पुरुष हैं। कोई पुरुष कभी किसी स्त्री के कल्पे पर हाथ रखकर नहीं चला है। नहीं, बूढ़े नहीं, गाधीजी बूढ़े नहीं थे तब भी वे रखते थे। गाधीजी का स्त्री के कल्पे पर हाथ रखकर चलना किसी विशेष घोषणा के लिए है। इस मुन्ने में, जहाँ सदा ही स्त्री ने पुरुष के कल्पे पर हाथ रखा हो, जहाँ सदा ही स्त्री अधींगिनी रही हो और नम्बर दो की अधींगिनी, नम्बर एक की कभी नहीं। जहा स्त्री सदा ही पीछे रही हो, आगे कभी नहीं। जहा स्त्री का होना ही 'सेकेन्डरी' हो गया हो, द्वितीय कोटि का हो गया हो, वहा गाधी को लगता है कि किसी पुरुष को यह घोषणा करनी चाहिए कि स्त्री के कल्पे भी इतने कमजोर नहीं, उस पर भी हाथ रखा जा सकता है। यह एक लम्बी परम्परा के खिलाफ प्रयोग है, और कुछ भी नहीं, और कोई कारण नहीं। हालांकि, गाधीजी स्त्रियों के कल्पे पर हाथ रखे हुए बहुत सुन्दर नहीं मालूम पड़ते, और गाधीजी के हाथ के नीचे दबी हुई स्त्रिया भारी बोझ से प्रसित भालूम होती है। असल में यह बिल्कुल स्वभाव के प्रतिकूल किया जा रहा है। यह है नहीं ठीक। सिर्फ एक परम्परा का विरोध है। एक व्यवस्था का विरोध है वह बात अलग है। लेकिन स्त्री और पुरुष के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में गाधी की समझ बहुत गहरी नहीं है। इसलिए, गाधी ने बहुतसी स्त्रियों को करीब-करीब पुरुष बनाकर छोड़ दिया। इसमें स्त्री जाति को फायदा हुआ है ऐसा मैं नहीं कहूँगा। स्त्री जाति को गहरा मूकस्थान हुआ है। क्योंकि, स्त्री को पुरुष नहीं बनाया जा सकता। उसके स्त्री होने का असला इंस है। और उसके इंस की खूबी ही यह है। यह बड़े मजे की बात है कि न केवल स्त्री, बल किसी के कल्पे पर हाथ रखती है तो उद्दीपनाविली होती है, उस पुरुष को भी गरिमा से भर देती है। यह कुछ

सिर्फ़ लेना ही नहीं है, इसमें देना भी है। यह सिर्फ़ कन्दे का सहारा लेकर, ऐसा नहीं है, कि स्त्री को ही कुछ मिल जाता है, पुरुष को भी बहुत कुछ मिलता है। ऐसा पुरुष, जिसके कन्दे पर किसी स्त्री ने कभी हाथ नहीं रखा वह भी बहुत दीनता का अनुभव करता है।

महावीर, बुद्ध, जीसस, इन सारे लोगों के व्यक्तित्व में जैविक व्यक्तित्व का निषेध इनकी साधना का हिस्सा है। कृष्ण के जीवन में समस्त की स्वीकृति साधना है; उसमें जैविक भी स्वीकार है, उसमें वह जो 'सेक्सुअल बीहग' है वह भी स्वीकार है। वह जो काम शरीर है वह भी स्वीकार, वह जो काम चित्त है वह भी स्वीकार है। कृष्ण कहते हैं, सब स्वीकार है, निषेध कुछ भी नहीं है। कृष्ण के हिसाब से तो जो निषेध करता है वह किसी-न-किसी अर्थ में थोड़ा बहुत नास्तिक है। असल में निषेध करना ही नास्तिकता है। कोई कहता है, हम शरीर को स्वीकार नहीं करते, वह शरीर के प्रति नास्तिक है। कोई कहता है, हम योन को स्वीकार नहीं करते तो वह योन के प्रति नास्तिक है। कोई कहता है, हम ईश्वर को स्वीकार नहीं करते तो ईश्वर के प्रति नास्तिक है। लेकिन, अस्वीकृति नास्तिकता का ढग है। स्वीकृति आस्तिकता है। इसलिए, न मैं महावीर को, न बुद्ध को और न जीसस को इतना आस्तिक कह सकता हूँ जितना आस्तिक मैं कृष्ण को कहता हूँ। समस्त स्वीकृति, निषेध तो ही ही नहीं। जो भी है उसकी अपनी जगह है अस्तित्व में। इस वजह से कृष्ण के पास अगर लासो स्त्रिया इकट्ठी हो सकी तो आकस्मिक नहीं है। महावीर के पास इकट्ठी हो तो भी एक 'डिस्टेस' एक 'फार्मल डिस्टेस' जरूरी है। महावीर के पास शिष्टाचार का फासला रखना पड़ेगा। महावीर के गले से स्त्री जाकर मिल जाय तो एकदम अशिष्ट हो जायेगी। न तो महावीर इसे बरदाश्त करेगे, न उस स्त्री को इससे कोई सुख और शांति मिलेगी, अपमान ही मिलेगा।

**प्रश्न महावीर किसलिए बरदाश्त नहीं करेंगे ?**

उत्तर महावीर इसलिए बरदाश्त नहीं करेंगे कि महावीर उसे बिलकुल स्वीकार नहीं करेंगे, वह पत्थर की तरह लड़े रह जायेंगे। उनका पूरा अस्तित्व उसे इन्कार करेगा। वह कहेंगे नहीं कि मत छुओ, अगर ऐसा लगेगा कि कोई शिलालङ्घ को हाथों में ले लिया। और स्त्री का अपमान इससे नहीं होता कि कोई कह दे कि मत छुओने, अपमान इससे होता है कि वह किसी को छूये और दूसरी तरफ से कोई 'रिस्पोस' न हो। इसमें महावीर किसी स्त्री का अपमान करने आ रहे हैं, ऐसा नहीं है, यह उनका अपमान होने का रव है।

लेकिन, कृष्ण के साथ स्थिति बिल्कुल और है। कृष्ण के साथ अगर कोई दूसरा रखना चाहेगी तो मुहिमिल में पड़ जायेगी। वह अगर दूर जाकर होती है तो पायेगी कि खिचती हैं पास। जैसे कि कृष्ण पुकारते हुए हैं, निमत्तण देते हैं। मैंने कहा कि महाबीर एक हिलाखण्ड की तरह रह जायेंगे। कोई कृपया तो पता जलेगा कि पथर है।

हेनरी थारो के सम्बन्ध में इमर्सन ने कहा, कहा है कि अगर हेनरी थारो से हाथ कोई मिलाये तो ऐसा लगता है कि वृक्ष की किसी सूखी आँख को हाथ में ले लिया है। क्योंकि, हेनरी थारो उत्तर ही नहीं देता, तिकं हाथ दे देता था। और, हाथ बिल्कुल मुर्दा होता। उसमें कुछ नहीं होता, उसमें कोई गर्मी नहीं होती, उसमें कोई धारा नहीं होती। उसमें कुछ होता ही नहीं, तिकं हाथ होता है। हेनरी थारो की महाबीर से दोस्ती बन सकती है। कृष्ण से अगर कोई दूर भी खड़ा हो जायगा तो ऐसा लगेगा, वह छू रहे हैं। वह स्पर्श कर रहे हैं। वह बुला रहे हैं। उनका पूरा अस्तित्व निमत्तण है, आमतण है। इस आमतण को अगर हजारों स्त्रियों ने स्वीकार किया हो तो आश्चर्य नहीं है। कोई आश्चर्य नहीं है। यह सहज हुआ।

रह गयी आत यह कि हम पूछते हैं कि क्या कृष्ण के लिए सभोग जैसी बात सम्भव है? कृष्ण के लिए कुछ भी असम्भव नहीं है। हमारे लिए सभोग प्रश्न है, कृष्ण के लिए प्रश्न नहीं है। हम नहीं पूछते कि फूलों के लिए सभोग सम्भव है, हम नहीं पूछते कि पक्षियों के लिए सभोग सम्भव है, हम नहीं पूछते कि सारा जगत् सभोग की एक लीला में लीन है! यह सारा अस्तित्व सभोगरत है। आदमी पूछना शुरू करता है कि क्या कृष्ण के लिए सभोग सम्भव है? क्योंकि, आदमी जैसा है, तनाव से भरा हुआ, जीवन के प्रति निन्दा से भरा हुआ है, उसके लिए सभोग जैसी गहन भीज भी सम्भव नहीं रह गयी। उसके लिए सभोग जैसा अस्तित्व का क्षण भी जटिल जाल बन गया है। वह भी सिद्धातों की दीवालों की ओट में खड़ा हो गया है।

सभोग का अर्थ क्या है? सभोग का अर्थ इतना ही है कि दो शरीर इतने निकट आ जाए जितने कि प्रहृति उन्हें निकट ला सकती है। और कोई अर्थ नहीं है। दो शरीर अपनी जैविक निकटता में, 'बायोलाजिकल इन्टीमेसी' में आ जाए। प्रहृति की आखिरी निकटता सभोग है। प्रहृति के तल पर जो सिकटदाम नादा है वह सभोग है। उसके बारे प्रहृति का उपाय नहीं। उसके बारे फिर परमात्मा का ही कोई सुक होता है। लेकिन, कृष्ण प्रहृति की निकटता -  
कृ. ३६

की स्वीकार करते हैं। यह कहते हैं प्रकृति भी परमात्मा की है। कृष्ण के लिए सभोग विचारणीय नहीं है, समस्या नहीं है, जीवन का एक सत्य है। हमें बहुत कठिनाई होती। हमने सभोग को एक समस्या बना दिया है, जीवन का सत्य नहीं रखा। अभी हमने और जीजों को नहीं बनाया, हम और जीजों को भी कल बना सकते हैं। हम कह सकते हैं कल कि कृष्ण आख सोलते हैं कि नहीं। अगर हम कभी एक सबाल उठा ले और एक सिद्धान्त बना ले कि आंख खोलना पाय है तो किर यह भी हो जायेगा। किर, हम पूछेंगे कि उन्होंने आंख खोली कि नहीं? जिनको हम सबाल बना लेते हैं उनको हम पूछते हैं कि ऐसा करेंगे या नहीं।

मेरी अपनी समझ यह है, कृष्ण के जीवन में कोई मर्यादा नहीं है। यही उनका व्यक्तिरूप है, यही उनकी विशेषता है। मर्यादा वे मानते ही नहीं। मर्यादा ही उनके लिए बन्धन है। और अमर्यादा ही उनके लिए मुक्ति है। लेकिन, जो अर्थ हम लेते हैं अमर्यादा का वह उनके लिए नहीं है। हमारे लिए अमर्यादा का अर्थ मर्यादा का उल्लंघन है, कृष्ण के लिए अमर्यादा का अर्थ मर्यादा की अनुपस्थिति है। इसको स्थाल में ले लेना, नहीं तो कठिनाई होती। कृष्ण के लिए सभोग विचारणीय नहीं है, फलित होता है तो हो जाता है। हो सकता है। नहीं फलित होता है तो नहीं होता है। इसकी चिन्ता से वह नहीं चलते, इसको सोचकर वह नहीं चलते। हमारी बड़ी अजीब हालत है। हमने सभोग को मानसिक, 'साइकोलोजिकल' बना लिया है। हम सभोग को भी सोचते हैं। करते हैं तो सोचते हैं, नहीं करते हैं तो सोचते हैं। सभोग भी हमारा निर्णय बन कर चढ़ता है। कृष्ण के लिए निर्णय नहीं है। अगर किसी का प्रेम-क्षण इतने निकट आ जाय कि सभोग बटित हो जाय, 'हैपनिंग' हो जाय, तो कृष्ण 'एवैलेबल' है, कृष्ण उपलब्ध है। न बटित हो तो कृष्ण आतुर नहीं है। न कृष्ण के मन में कोई विरोध है, न कोई प्रशसा है। जो हो जाता है उसमें सहज जीते की सिर्फ राजी, स्वीकृति, स्वीकार है। मैं फिर दोहराऊंगा कि हमारे अर्थों में स्वीकार नहीं, क्योंकि हम स्वीकार भी अगर करते हैं तो अस्वीकार के खिलाफ करते हैं। कृष्ण का स्वीकार का मतलब है सिर्फ कि अस्वीकार नहीं। इसलिए कृष्ण को समझना हमें सबसे ज्यादा जटिल है। महाकाव्य की समझना आसान, बुद्ध को समझना आसान, जीसस को समझना आसान, युहूम्मद को समझना आसान है। सारी इस पृथ्वी पर कृष्ण को समझना सर्वाधिक कठिन है इसलिए, सर्वाधिक अन्याय उनके साथ हो जाना सहज ही हो जाता है।

हमारी सारी धारणाएँ, महावीर, बुद्ध, जीसस और मुहम्मद ने निर्मित की हैं। हमारी सारी धारणाओं का जनत, हमारे विचार, हमारे सिद्धान्त, हमारे मुख अशुभ की व्यास्था महावीर, बुद्ध, जीसस, मुहम्मद, कन्फूसियस—इन्होंने तथ्य की है। इसलिए हनको समझना हमें सदा आसान है क्योंकि हम इनसे निर्मित हुए हैं। कृष्ण ने हमें निर्मित नहीं किया। असल में कृष्ण किसी को निर्मित ही नहीं करते, वह कहती—जो है ठीक है। निर्माण का सबाल क्या है। इसलिए, कृष्ण को समझना बहुत मुश्किल हो जायेगा। जब भी हम कृष्ण को समझते हैं तो या तो महावीर का चरम हमारी अख्य पर होगा या बुद्ध का चश्मा-होगा या क्राइस्ट का होगा या कन्फूसियस का होगा। किसी-न-किसी मर्यादा को स्वीकार करने वाले ध्यक्ति का चरमः अनिवार्य रूप से हमारी अख्य पर होगा, उससे हम कृष्ण को देखेंगे। और, कृष्ण कहते हैं—तुम्हे अगर मुझे देखना है तो चश्मा उतार दो। बहुत मुश्किल है मामला। चश्मा नहीं उतारेंगे तो कृष्ण में कुछ-न-कुछ गडबड़ दिखावी पड़ेगी। वह आपके चश्मे की बजह से दिखायी पड़ेगी। लेकिन आप चश्मा उतारो तो कृष्ण अत्यत सहज पुरुष है।

पूछा जा सकता है, इतनी सहज स्त्री क्यों पूर्खी पर नहीं हो सकती? एकाध स्त्री तो होनी ही चाहिए न। कृष्ण को एकाध जवाब स्त्री को देना चाहिए था। क्या कारण है। कुछ कारण है। इतना ही कारण नहीं है कि स्त्री दबायी गयी। यह कारण नहीं है कि पुरुष ने उसे स्वतन्त्रता नहीं दी, यह बात फौल है, इसका कोई अर्थ नहीं है। जितनी स्वतन्त्रता जिसे चाहिए उसे सदा मिल जाती है, अन्यथा वह जीने से इन्कार कर देगा। नहीं, कोई स्त्री कृष्ण का उत्तर नहीं दे पायी। शायद अभी और हजार दो हजार वर्ष लग जायेंगे तब शायद स्त्री उत्तर दे पाये।

न देने का कारण है। स्त्री का सारा व्यक्तित्व, सारा डग, उसके होने की प्राकृतिक व्यवस्था 'पोली-गेम्स' है। वह एक पर निर्भर रहना चाहती है। उसका चित्त भोली-गेम्स है अब तक। कल भी रहेगा, ऐसा जरूरी नहीं है। पुरुष 'पोली-गेम्स' है। पुरुष एक से ऊब जाता है, स्त्री एक से बिल्कुल नहीं ऊबती। स्त्री एक के साथ जनन भर जीने की कामना करती है। फिर, दुबारा भी जन्म मिले तो उसी के साथ रहने की कामना करती है। यह जो स्त्री-पुरुष का सबध है यह पुरुष ने कम तथ्य किया है, यह स्त्री ने अधिक तथ्य करवा लिया है। यह पुरुष की बजह से नहीं है एक पत्नीकृत या एक पतिव्रत, यह स्त्री की बजह से है। इसके अवश्यक 'बायोलॉ-जिकल' कारण भी थे; जीविक कारण भी थे; क्योंकि स्त्री की निर्भर होना है।

बहुतों पर निर्भर नहीं हुआ जा सकता । वह ख्याल में ले लेना जल्दी है । स्त्री को कन्धे पर हाथ रखना है, बहुत कम्बी पर हाथ नहीं रखे जाते । निर्भर जिसे होना है वह बहुतों पर निर्भर होगी तो अनिवार्यतमना हो जायेगी । निर्भरता उसकी 'इनडिसीसिव' हो जायेगी । उसमें निर्णय नहीं रह जायेगा । जैसे एक बेल है उसे एक बृक्ष पर निर्भर होना है, वह बहुत बृक्षों पर एक साथ नहीं चढ़ सकती । उसे एक बृक्ष पर ही चढ़ना होगा । लेकिन, एक बृक्ष बहुतसी बेलों को आभवित कर सकता है । एक बृक्ष पर जितनी बेले चढ़ जाय उतनी उसे तृप्ति होगी, क्योंकि उतना ही वह बृक्ष मालूम होने लगेगा । एक पुरुष बहुतसी स्त्रियों के हाथों को निमित्त कर सकता है कि मेरे कन्धे पर रखो, क्योंकि उतनी ही उसके पुरुष होने की गहरी रस की स्थिति उसे उपलब्ध होगी । मगर, स्त्री एक पर निर्भर होना चाहेगी । इस एक पर निर्भर होने का कारण चित्त में तो ही ही, बहुत ज्यादा 'बायोलाजिकल' शारीरिक कारण है, जैविक कारण है । उसके बच्चे होंगे । उस बच्चे के लिए कोई निष्ठारक, कोई नियन्ता, कोई फिक करने वाला होना चाहिए । नौ महीने वह असमर्थ होगी । उसके बाद उसके बच्चे के सम्बालने में उसे सारा बक्त लगाना पड़ेगा । अगर वह बहुतों पर निर्भर है तो इसमें अनिश्चय पैदा होगा और कठिनाई पैदा होगी । इसलिए, मैंने कहा, हजार दो हजार साल लग जायेगे । क्योंकि बहुत जल्दी दैवानिक विकास के साथ स्त्रिया इन्कार कर देंगी बच्चों को पेट में सम्भालने से । वे प्रयोगशालाओं से सम्भालने जायेगी । जिस दिन स्त्री बच्चे को पेट में रखने से मुक्त हो जायेगी उस दिन स्त्री भी कृष्ण जैसा व्यक्ति पैदा कर सकती है । उसके पहले नहीं पैदा कर सकती ।

यह जो मैंने कृष्ण के सहज होने की बात कही, इसे मनुष्यता जितनी गहरे में समझ पाये उतनी चिन्ताओं, तनावों और सतापों से मुक्त हो सकती है । आदमी के अधिक तनाव आदमी के अपने ही स्वभाव से सर्वथ के परिणाम है । आदमी की अधिक चिन्ताएं अपने से ही लड़ने की चिन्ताएं हैं । और, मजा यह है कि हम अपने से लड़ सकते हैं, लेकिन जीत नहीं पाते । हार ही होती है, हार ही होगी । कभी कभी कोई जीत जाता है । बड़ी अनूठी वह घटना है । उस कभी-कभी कोई जीतने वाले के अनुसरण में लाखों लोग अपने से लड़ते जले जाते हैं । और यह लाखों लोग सिर्फ चिन्तित होते हैं, अफल होते हैं । हारते और परेशान होते हैं । भेरी अपनी दृष्टि ऐसी है कि बहावीर के मार्ग से कभी कोई एकाध आदमी उपलब्ध हो सकता है । लेकिन, बहावीर के मार्ग पर सी में से नियन्त्रनवे आदमी चलते हैं । कृष्ण के मार्ग से नियन्त्रनवे आदमी उपलब्ध हो सकते हैं लेकिन कृष्ण के मार्ग से एकाध

आदमी भी नहीं चलता है। महावीर का मार्ग पश्चात्य का है। बुद्ध का जीसस का— इनके मार्ग बहुत सकरे हैं, बहुत 'नैरो' हैं और बड़े दुर्लभ हैं। क्योंकि, व्यक्ति को अपने से ही लड़कर गुजरना है। कभी कभी कोई सफलता उपलब्ध होती है। कृष्ण का मार्ग राजधानी की तरह है, उसपर बहुत लोग जा सकते हैं। लेकिन उस पर बहुत कम लोग जायेंगे। बहुत कम लोग जाते हैं, क्योंकि सहज होने की क्षमता ही जैसे आदमी खोता चला गया है। असहज ही सहज हो गया। रुण होना ही हमारा स्वास्थ्य हो गया है और स्वस्थ होने की धारणा ही भूल गयी है। पुनर्विचार की जरूरत है मनुष्य पर, लेकिन मैं मानता हूँ कि पुनर्विचार पैदा हो रहा है। फायड के बाद अब भविष्य में कृष्ण रोज़ रोज़ सार्थक होते चले जायेंगे क्योंकि फायड के बाद पहली बार मनुष्य के चित्त की सहजता को स्वीकृति मिलने की भूमिका बन रही है। जैसा मनुष्य है उस मनुष्य को ही विकसित करना है। अब तक जैसा मनुष्य होना चाहिए उसको हमने पैदा करने की कोशिश की। अब तक आदर्श कीमती था और मनुष्य को उस आदर्श तक पहुँचना ही जरूरी था। अब फायड के बाद एक रूपातरण पूरी दुनिया के ध्यान में आया, जिसको हम कहे बौद्धिक जगत में एक ऊहापोह शुरू हुआ है, वह यह कि हम आदमी को पहुँचाने की सारी कोशिश करके भी नहीं पहुँचा पाये। कभी कभी कोई एकाध आदमी पहुँच पाता है, उससे कोई हल नहीं होता। वह नियम नहीं है, सिर्फ अपवाद है, अपवाद सिर्फ नियम को सिद्ध करते हैं और कुछ नहीं करते। वह सिर्फ इतना सिद्ध करते हैं कि सब न पहुँच सकेंगे। फायड के बाद पहली दफा 'आनेस्ट चिकित्सा', ईमानदार चिंतन शुरू हुआ है। वह ईमानदार चिंतन यह कह रहा है कि आदमी क्या है। उसको हम समझने चले हैं।

अब एक पत्ती है, उसकी आकाशा है कि उसका पति कभी किसी दूसरी स्त्री को देखकर प्रसन्न न हो। यह आकाशा पुरुष के स्वभाव के बिल्कुल प्रतिकूल है। लेकिन, स्त्री स्वभाव के बिल्कुल अनुकूल है। अगर पुरुष की आकाशा से नीति और नियम बनाये जाय तो स्त्री दुखी और पीड़ित हो जायेगी। अब अर स्त्री की आकाशा से नीति और नियम निर्धारित किये जाय तो पुरुष दुखी हो जाय। और, मजा यह है कि दो में से एक दुखी हो जाय तो दूसरा सुखी नहीं हो सकता। उसका कोई उपाय नहीं रह जाता। लेकिन, अब तक यही हुआ है।

क्या ऐसा नहीं हो सकता कि पुरुष और स्त्री दोनों के स्वभाव को समझने की दोनों कोशिश करे? जब पुरुष किती स्त्री को देखकर प्रसन्न हो तो स्त्री इससे पीड़ित न हो, जाने कि यह पुरुष का स्वभाव है। और जब उसकी स्त्री उकास और

परेशान दिलायी पड़े तो उसका पति उसपर टूट न पड़े, जाने कि यह स्त्री का स्वभाव है। अगर हम एक सतापहोन, तनावमुक्त जगत पैदा करना चाहते हों तो हमें व्यक्तियों के स्वभाव को समझने की कोशिश करनी चाहिए और स्वभाव क्षयों हैं, उसकी जड़ों में जाना चाहिए। अगर स्वभाव बदलना हो तो जड़े बदलनी चाहिए। स्वभाव को बदलने की ऊपर से नैतिक वेष्टा नहीं करनी चाहिए। स्त्री तब तक ईर्ष्यालु रहेगी जब तक आर्थिक रूप से स्वतंत्र नहीं है। तब तक ईर्ष्यालु रहेगी जब तक बच्चे का बोझ अकेले उसपर पड़ जाता है। अगर स्त्री की ईर्ष्या को मिटाना हो तो उसे ठीक पुरुष के बराबर प्रथम कोटि की जगह, पुरुष के बराबर आर्थिक स्वावलम्बन, पुरुष के बराबर उसकी जैविक मजबूरी से मुक्ति की व्यवस्था पर ध्यान देना होगा, तो हम स्त्री को ईर्ष्या से तत्काल मुक्त कर सकेंगे। और, स्त्री उसी तरह हमसे पुरुषों में भी रस लेने को आतुर हो जायेगी जैसा पुरुष सदा से रहा है। यह अभी तक नहीं हो सका, लेकिन अब हो सकता है। मनुष्य की बाबत हमारी समझ गहरी हुई है। पुरानी हमारी सारी व्यवस्था मनुष्य की समझ पर निर्भर नहीं थी, बल्कि मनुष्य की जरूरतों पर थी। मनुष्य के समाज में क्या जहरी है वह हमने नियम बनाये थे। मनुष्य के स्वभाव के लिए क्या जहरी है, वह हमने नियम नहीं बनाये थे। लेकिन फायड के बाद एक क्राति घटित हुई और मैं मानता हूँ, फायड द्वारा बनेगा कृष्ण की वापसी का आलम। कृष्ण वापस लौटेंगे, वह फायड के द्वारा से वापस लौटेंगे। फायड ने बड़ा प्राथमिक काम किया है। अभी बहुत काम उस दिशा में होना जहरी है। फायड का काम बिल्कुल 'क ख ग' का है। अभी बहुत कुछ बाकी है। लेकिन, चोट शुरू हो गयी है। आने वाले भविष्य में निरन्तर अधिक लोगों को कृष्ण के जीवन से रोशनी मिलने की सभावना बढ़ती जाने वाली है। उनकी सहजता धीरे-धीरे हमारे अनुकूल और प्रीतिकार होती जाने वाली है। मेरा अपना मानना है कि भगवान्, बुद्ध, जीसस, कफ्यूसियस को मानकर हम एक स्वस्थ दुनिया पैदा नहीं कर सके। एक प्रयोग जरूर किया जाने जैसा है कि कृष्ण की तरफ देखकर हम दुनिया को एक व्यवस्था दे पायें। और, मेरी अपनी समझ है कि जो दुनिया हमने अब पैदा की है उससे वह दुनिया बेहतर हो सकेगी। क्योंकि, अब तक जो दुनिया हमने पैदा की है वह अपवाव को नियम मानकर की है, अब हम नियम को ही नियम मानकर करेंगे।



## पर्व : चीस

चुनाव 'कॉस' या बंशी का  
बांसुरी के बाबूद महामारत  
कृष्ण आत्मसात करते हुए  
मनुष्य की सम्पत्ता कृष्ण की समझ से ही सहज हो सकेन्दी  
समाप्त





प्रश्न हुण के संदर्भ में जीसस की चर्चा करने समय एक बार आपने कहा, जीसस के 'कास' से जिस सम्पत्ता का प्रारम्भ हुआ उसका अन्त आधुनिक स्थिति में आकर 'एटम बम' पर हुआ। आधुनिक सम्पत्ता को वर्तवान स्थिति में कास या बंसी के बीच छुनाव करता है। इस बात को फिर स्पष्ट करेंगे। तबा जिस प्रकार कास की जल्दीति का अन्त एटम बम पर हुआ है अबी, उसी प्रकार बंसी पर जो जीवन धारा बली उसका भी तो अन्त सुरक्षान्वक और बहुमारत पर हुआ था। मैं यह लेखना चाहूँगा कि आप कास और एटम बम का जोड़ छुनेंगे कि

बंसी और महाभारत का बोड़ भारत के लिए चुनौती ?

दत्तर : कात मृत्यु का सूचक है। कब पर सम्भव है तो उसका अर्थ है, और जब जीवन पर लग जाता है तो अतरनाक है। लेकिन, बहुत सारे तथाकथित धार्मिक लोगों ने मनुष्य के शरीर को कब ही समझा है। उनकी इस समझ का परिणाम खतरनाक होने वाला है। अगर मनुष्य की आती पर कास लटका दिया जाय, जैसे कब पर कास लगा होता है तो हम जीवन को स्वीकार नहीं करते, अस्वीकार करने की ओषण करते हैं। हम जीवन को बरदान नहीं मानते, अभिज्ञाप मानते हैं। इसाइयत, जीसस का नाम नहीं कह रहा है, इसाइयत ऐसा समझती रही है कि जो मनुष्य का जीवन है, पाप का फल है, 'ओरीजनल सिन' का फल है। जिसे हम जिन्दगी समझ रहे हैं, वह जिन्दगी परमात्मा के द्वारा दिया गया बरदान नहीं, परमात्मा के द्वारा ही गयी सजा है। ऐसा चिन्तन गहरे भेदुखवादी और 'पैसीमिस्ट' है। ऐसा चिन्तन गुलाब के फूल के पास खड़े होकर काटो की गिनती करता है और फूल को भूल जाता है। ऐसा चिन्तन दो अन्धेरी रातों के बीच में एक छोटे से दिन को देखता है, दो प्रकाश या प्रकाशित दिनों के बीच में एक अन्धेरी रात को नहीं। ऐसा चिन्तन जीवन के दुखों को बटोरकर इकट्ठा कर लेता है, जीवन के सुखों को विस्मृत कर देता है। असल में दुख को बटोरकर इकट्ठा करना ही रुण चित्त का लक्षण है। जो अस्वाभाविक और भटका हुआ है और फिर उस दुख के आधार पर पूरे जीवन के सम्बन्ध में जो 'फिलॉसोफी', जो दर्शन का फैलाव होता है, वह उदासी का, अन्धेरे का, निषेध का, नकार का और कास का हो जाता है। जीसस का प्रभाव, शायद वे शूली पर न लटकाये गये होते तो दुनिया पर इतना न पड़ता। शायद दुनिया उन्हे भूल ही गयी होती। लेकिन, जीसस का शूली पर लटकाया जाना ही क्रिश्चियनिटी का जन्म बन गया। आज कोई एक अरब आदमी के करीब इसाइयत में सम्मिलित है। यह मैं जीसस की विजय नहीं मानता हूँ। यह मैं कास की विजय मानता हूँ। जीसस शूली पर लटके हुए हमारे उदास और रुण चित्तों को ही ठीक मालूम पड़ेगे। वे हमारे जीवन के प्रतीक ही मालूम पड़ेंगे। हम सब शूली पर लटके हुए लोग हैं। हम सब दुख के द्वे लगाये चले जाते हैं और आखिर मेरुदल ही हाथ में रह जाता है, सुख सब खो जाते हैं।

कृष्ण, बिन्दुल ही विपरीत व्यक्तित्व है। और, कृष्ण की बासुरी का प्रतीक कास के ठीक उल्टा है। जैसे बासुरी को कब पर रखने का कोई अर्थ नहीं होता। उसे जिन्दा ओढ़ चाहिए और सिफ़ ओढ़ ही नहीं चाहिए, न चत्ते हुए ओढ़ भी चाहिए,

गाते हुए बोठ भी चाहिए। और बोठ ऐसे ही नहीं नाचते और पाते हैं, जब तक कि भीतर के प्राण आनंद से उल्लसित नहीं हो। मेरे लिए जीसस के कास और कृष्ण की बासुरी में चुनाव दिखायी पड़ता है। ऐसा नहीं है कि जिन्दगी में सुख नहीं है। दुख जिन्दगी में है। लेकिन, जो आदमी उन्हें इकट्ठा कर लेता है, जो उन्हें समृद्धि रूप से देखते लगता है उसे फिर सुख दिखायी पड़ने बन्द हो जाते हैं। जीवन में तो सुख और दुख दोनों हैं। सब कुछ निर्भर करता है अचित पर कि वह क्या देखता है? मेरी अपनी समझ है कि अगर कोई आदमी गुलाब के फूल को ठीक से देख पाये और प्रेम कर पाये तो उसे काटे दिखायी पड़ने बन्द हो जाते हैं। क्योंकि, जो आखे गुलाब के फूल से रस जाती है, रम जाती है। वे आखे काटो को देखना बन्द कर देती हैं। ऐसा नहीं है कि काटे भिट जाते हैं, बल्कि ऐसा कि काटे भी गुलाब के साथी और भित्र हो जाते हैं। और, वह गुलाब के फूल की रक्षा की तरह ही दिखायी पड़ते हैं। वे एक ही पीढ़े पर फूल की रक्षा के लिए निकले हुए काटे होते हैं। लेकिन, जो आदमी काटो को चुन लेता है उसे फूल दिखायी पड़ना बन्द हो जाता है। जो आदमी काटो को चुनता है वह यह कहेगा कि जहा इतने काटे हैं वहा एक फूल खिल कैसे सकता है? जहा काटे हो काटे है वहा फूल असभावना है। जहर मैं किसी भ्रम में हूँ, इसलिए फूल दिखायी पड़ रहा है। जहा काटे-ही-काटे हैं, वहा फूल हो नहीं सकता। काटा सत्य हो जाता है, फूल स्वप्न हो जाता है। और जो आदमी फूल को देख लेता है, देख पाता है, प्रेम कर पाता है और जी पाता है उस आदमी को एक दिन लगना शुरू होता है कि जिस पीढ़े पर मुलाब जैमा कोमल फूल खिलता हो उस पीढ़े पर काटे कैसे हो सकते हैं? उसके लिए काटे धीरे-धीरे भ्रम और झूठे हो जाते हैं।

मर्जी है आदमी की कि वह क्या चुने? स्वतन्त्रता है आदमी को कि वह क्या चुने। सात्र का एक बचन बहुत अद्भुत है। वह कहता है—‘वी आर कण्डेम्ड टु बी फी’। हम भजबूर हैं स्वतन्त्र होने को। जबरदस्ती है हमारे ऊपर स्वतन्त्रता। हम सब चुन सकते हैं। सिर्फ एक स्वतन्त्रता को नहीं चुन सकते। वह हमें मिली ही हुई है। कोई यह नहीं कह सकता कि मैं परतन्त्रता चुन सकता हूँ; क्योंकि वह चुनना भी उसकी स्वतन्त्रता ही है। इसलिए सात्र कहता है ‘कण्डेम्ड टु बी फी’। कभी भी स्वतन्त्रता के साथ किसी ने ‘कण्डेम्ड’ शब्द का प्रयोग नहीं किया होगा। मनुष्य स्वतंत्र है, और परमात्मा के होने की यह धौषणा है। मनुष्य जो

चुनता जाहे, चुन सकता है। यदि मनुष्य ने दुख चुना तो चुन सकता है। जिदभी उसके लिए दुख बन जायेगी। हम जो चुनते हैं, जिन्दगी वही हो जाती है। हम जो देखने जाते हैं वह दिखायी पड़ जाता है। हम जो खोजने जाते हैं, वह मिल जाता है। हम जो मारते हैं वह 'फुलफिल' हो जाता है, उसकी पूर्ति हो जाती है। दुख चुनने जायेगे, दुख मिल जायेगा। लेकिन, दुख चुनने बाला आदमी अपने लिए ही दुख नहीं चुनता। वही से अनेतिकता शुरू होती है। दुख चुनने बाला आदमी दूसरे के लिए भी दुख चुनता है। यह असभव है कि दुखी आदमी और किसी के लिए सुख देने बाला बन जाय। जो लेने तक मे दुख लेता है वह देने मे सुख नहीं दे सकता। यह भी व्यान रखना जरूरी है कि जो हमारे पास नहीं है उसे हम कभी दे नहीं सकते। हम वही देते हैं जो हमारे पास है। यदि मैंने दुख चुना है तो मैं दुख ही दे सकता हूँ। दुख मेरा प्राण हो गया है। जिसने दुख चुना है वह दुख देगा। इस-लिए, दुखी आदमी अकेला दुखी नहीं होता। अपने चारों तरफ दुख के हजार तरह की तरणे कंकता रहता है। अपने उठने बैठने, अपने होने, अपनी चुप्पी, अपने बोलने, अपने कुछ करने न करने, सबसे चारों तरफ दुख के वर्तुल फैलाता है। उसके चारों तरफ दुख की लहरे धूमती रहती है और परिव्याप्त होती रहती है। जब आप अपने लिए दुख चुनते हैं तो अपने ही लिए नहीं चुनते, आप इस पूरे सप्ताह के लिए भी दुख चुनते हैं। जब मैंने कहा, दुख के चुनाव ने मनुष्य को युद्ध तक पहुँचा दिया है और एक ऐसे युद्ध तक, जो कि 'टोटल स्वीसाइड' बन सकता है। जो कि समझ-आत्मधात बन सकता है। यह मनुष्य के दुख का चुनाव है जो हमे उस जगह ले आया।

हमने सुना है बहुत बार, आनते हैं हम कि कभी कोई दुखी आदमी आरम्भात कर लेता है। लेकिन, हमे इस बात का स्थाल नहीं था कि एक ऐसा बस्त भी आ सकता है कि पूरी मनुष्यता इतनी दुखी हो जाय कि आत्मधात कर ले। हमारे बड़ते हुए युद्ध आत्मधात के बढ़ते हुए जारण है। यह दुख के चुनाव से सम्बन्ध हुआ है। और, दुख को जब हम धर्म की तरह चुन लेते हैं तो फिर अधर्म की तरह चुनने को कुछ बचता भी नहीं। जब दुख को हम धर्म बना लेते हैं तो फिर अधर्म क्या करेगा? और, जब दुख धर्म बन जाता है तो गौरवान्वित भी हो जाता है, 'ग्लोरी-फाइड' भी हो जाता है।

यह जो दुख की आरा कास के आस-पास निर्मित हुई, मैं नहीं कहता जीसस के आस-पास, क्योंकि जीसस का कास से कोई अनिवार्य सम्बन्ध नहीं है। जीसस बिना कास के भी हो सकते थे। जिन लोगों ने जीसस को शूली दी, जिन्होंने कास

दिया, इसाइयत उन्ने पैदा की है। इसलिए, मैं निरन्तर ऐसा कहता हूँ कि इसाइयत को पैदा करने वाले वे पड़े और पुरोहित हैं जिन्होंने जीसस को शूली दी। ईसाइयत का जन्म क्रास से होता है, जीसस से नहीं। जीसस तो बेचारा क्रास पर लटकाया गया है। यह बिल्कुल ही 'सेकेषन्टी' बात है। कोई लेना देना नहीं है। वह क्रास महत्वपूर्ण होता चला गया हमारे चित्त में। और, जो जो लोग अपने को क्रास पर अनुभव करते हैं, लटका हुआ शूली पर—चाहे वह शूली परिवार की हो, चाहे वह शूली प्रेम की हो, चाहे वह शूली राष्ट्रों की हो, चाहे वह शूली धर्मों की हो, चाहे वह शूली दैनिक जीवन की हो। जो लोग भी अनुभव करते हैं, शूली पर लटके हैं, उन्हे जीवन एक महापाप हो जाता है। वे सारे महापाप को अनुभव करने वाले लोग क्रास से प्रभावित होते चले गये हैं। और, 'पेसिमिस्टो' का एक बड़ा गिरोह सारी दुनिया में इकट्ठा हो गया।

पिछले दो महायुद्ध ईसाई मुल्कों ने लड़े और पैदा किये। गैर ईसाई मुल्क, अगर उन युद्धों में आये भी तो घसीटे गये हैं। सिफे एक जापान ऐसा मुल्क था जो गैर ईसाई था, जो युद्ध से आक्रमक की तरह आया था। लेकिन, जापान को अब पूर्वी मुल्क कहना मुश्किल है। जापान बहुत गहरे अर्थों में (भूगोल का स्थाल छोड़ दे तो) अब पश्चिम का हिस्सा है। और, जापान के पास भी 'स्वीसाइड' की लम्बी परम्परा है जिसको वे हाराकिरी कहते हैं। जरा सा आदमी दुखी हो जाय तो मर जाय, बस इसके सिवाय कोई उपाय नहीं है। जैसे कि कल कूल खिलने की कोई सम्भावना न रही। आज शाम कूल मुर्झा गया, तो मर जाओ। कल सुबह कूल खिलने का कोई उपाय नहीं। इतनी प्रतीक्षा भी नहीं, इतना संघर्ष भी नहीं। तो हाराकिरी वाला एक मुल्क और पश्चिम के क्रास वाले मुल्कों ने इधर पिछले दो बड़े युद्ध लड़े हैं। तीसरा युद्ध पूरी मनुष्यता का अन्त हो सकता है। जैसे जीसस शूली पर लटके हैं ऐसे पूरी मनुष्यता शूली पर लटक सकती है। मैं भी कहता कि इसमें जीसस का हाथ है, मैं कहता हूँ, क्रास पर लटकने वाले लोगों का हाथ है। और, मैं यह भी नहीं कहता हूँ कि जीसस से प्रभावित होकर जीसस के पास आये हैं, क्रास से प्रभावित होकर जीसस के पास आये हैं। दूसरी बात पूछी है, यह तो मैं मानता हूँ कि क्रासवादी, दुखवादी, 'सेडिस्ट' सभ्यता मनुष्य को अन्तत अत्मघात में ले जाने वाली है। असल में क्रास को लेकर चलने का कोई अर्थ नहीं है। और अगर जिन्हीं क्रास भी रख दे तो कूल लटका देना भी हमारा चुनौत है।

कुछ ठीक मुझे विपरीत मालूम पड़ते हैं। उनकी बासुरी मुझे ठीक विपरीत

मालूम पड़ती है। और, यह भी मैं आपको कह दूँ कि जीवन को कास पर दूसरे लटकाते हैं, कृष्ण के ओठों पर कोई बासुरी नहीं रखता। इसलिए, यह स्थाल में रख लेना चर्चा है कि कृष्ण की बासुरी उनके व्यक्तित्व का प्रतीक है। और, जीसस का कास उनके व्यक्तित्व का प्रतीक नहीं है, उसे दूसरों ने दिया है। कृष्ण की बासुरी अपने हाथों से ओठों पर रखी गयी है। कृष्ण की बासुरी में मुझे जीवन के अहोभाव, जीवन के अनुश्वास, जीवन के प्रति 'ग्रेटीट्डूट' का गीत, प्रमदाद, आभार मालूम होता है। कृष्ण का चुनाव जीवन में सुख का चुनाव है, आनन्द का चुनाव है। और जैसा मैंने कहा, जो दुख को चुनता है वह दुख देने वाला बन जाता है, जो आनन्द को चुनता है वह आनन्द देने वाला बन जाता है। यह भी योड़ी समझ लेने वाली बात है कि अगर कृष्ण बासुरी बजायेंगे, यह आनन्द कृष्ण तक ही सीमित नहीं रहेगा, यह उन कानों तक भी पहुँच जायेगा जिनपर उस बासुरी के स्वर पड़ते हैं। अगर जीसस को आप शूली पर लटका हुआ देखेंगे और उनके पास से गुजरेंगे तो आप भी उदास हो जायेंगे। कृष्ण को अगर नाचते हुए देखेंगे किसी वृक्ष की छाया में, और पास से गुजरेंगे तो आप भी प्रफुल्लित होंगे।

सुख भी सकामक है, दुख भी सकामक है। मैं सब फैलते हैं और दूसरे तक हो जाते हैं। इसलिए, जो आदमी अपने लिए दुख चुनता है वह सारी दुनिया के लिए 'कण्डमनेशन' चुनता है। वह यह कह रहा है कि दुखी होकर अब सारी दुनिया के दुखी होने का नियंत्रण करता हूँ। जो आदमी जीवन में सुख का चुनाव करता है वह सारी दुनिया के लिए गीत, सणीत और नृत्य चुनता है। मैं धार्मिक आदमी उसी को कहता हूँ जो दूसरे के लिए भी सुख चुनता है। मेरे लिए धार्मिक का अर्थ आनन्द के अतिरिक्त कुछ और हो ही नहीं सकता है। कृष्ण इस अर्थ में मेरे लिए धार्मिक है। उनका सारा होना आनन्द के एक स्फुरण के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

लेकिन, पूछा गया है कि कृष्ण की बासुरी के बाद तो महाभारत का युद्ध हुआ! यह कृष्ण की बासुरी के बावजूद हुआ। यह कृष्ण की बासुरी के कारण नहीं हुआ। क्योंकि, बासुरी से युद्ध होने का कोई आन्तरिक सम्बन्ध नहीं है। कास का और युद्ध का तो एक आन्तरिक सम्बन्ध है, एक 'लाजिकल रिलेशनशिप' है। लेकिन, बासुरी से युद्ध का कोई भी तार्किक सम्बन्ध नहीं है। कृष्ण की बासुरी के बावजूद यह युद्ध हुआ। इसका भललब यह है कि हम इतने दुखवादी हैं कि कृष्ण की बासुरी भी हमे प्रफुल्लित नहीं कर पायी। बासुरी बजती रही और हम युद्ध से उत्तर गये। बासुरी बजती रही; लेकिन हम अहोभाव से नहीं भर पाये। बासुरी

बासुरी नहीं हो पायी। अह भी बहुत मजे की बात है कि दूसरे का सुख अपना सुख बनाना बहुत मुश्किल है। दूसरे का सुख अपना सुख बनाना बहुत आसान है। इसलिए, आप दूसरे के रोने में रो सकते हैं लेकिन दूसरे के हसने में हसना मुश्किल हो जाता है। अगर किसी के मकान में आग लग गयी है तो आप सहानुभूति बता पाते हैं, लेकिन किसी का मकान बड़ा हो गया है तो उसके आनन्द में आग नहीं ले पाते। इसमें उनियादी कारण है।

जीसस के क्रास के साथ हम निकट हो पाते हैं। लेकिन, कृष्ण की बासुरी के साथ, ही सकता है हम ईर्ष्या से भर कर लौट जाय। कृष्ण की बासुरी हममें सिर्फ ईर्ष्या ही जगाये, कोई समानुभूति, कोई ‘सिम्पैथी’ पैदा न करे। लेकिन, जीसस का क्रास हस्तलिए भी ईर्ष्या पैदा नहीं करता है, ईर्ष्या पैदा नहीं करता। जीसस का क्रास हस्तलिए भी ईर्ष्या पैदा नहीं करता कि हम कोई क्रास पर लटकने के लिए तैयार तो नहीं हैं। कृष्ण बासुरी बजा रहे हैं तो हमारा भन ईर्ष्या से भर सकता है और ईर्ष्या दुख बन सकती है। सुख में सहभागी होना बड़ी कठिन बात है। दुख में सहभागी होना बड़ी सरल बात है। अति साधारण चित्त का व्यक्ति भी दुख में सहभागी हो जाता है। लेकिन, अति असाधारण चित्त का व्यक्ति चाहिए जो सुख में सहभागी हो सके। दूसरे के सुख में ‘पार्टीसिपेट’ करना, दूसरे के सुख में डूबना और दूसरे के सुख को अपने जैसा अनुभव कर पाना बड़ी ऊचाई की बात है। दूसरे के दुख में कठिनाई नहीं है। कारण है इसके।

पहला कारण तो वह है कि हम दुखी हैं ही ‘आल-रेडी’, कोई भी दुखी हो, हमें कोई दिक्षित नहीं आती। हम उसमें डूब पाते हैं। सुखी हम नहीं हैं। कोई सुखी हो तो हमारा कोई तालमेल नहीं बन पाता। कोई सम्बन्ध नहीं बन पाता। युद्ध हुआ, कृष्ण की बासुरी के बाद भी। और भी मजे की बात है कि जीसस के क्रास के बाद युद्धों की गति बढ़ते बढ़ते अभी दो हजार साल लगी, तब हुआ। कृष्ण तो बासुरी बजा रहे थे तभी युद्ध हो गया। मैं किर से दोहराता हूँ कि कृष्ण की बासुरी के बावजूद युद्ध हुआ है। कृष्ण की बासुरी न तो समझी जा सकी है, न पकड़ी जा सकी है, न पहचानी जा सकी है। यह भी सोचने जैसा है कि कृष्ण तो सुद युद्ध में उतरे हैं, जीसस को युद्ध में नहीं उतारा जा सकता। जीसस को अगर कोई कहेगा कि आप युद्ध में उतरे तो जीसस कहेगे, पागल हो गये हो? पुराने पैगम्बरों ने कहा था कि जो तुम्हारी तरफ ईंट केके, तुम उसकी तरफ पत्थर मारना। और, जो तुम्हारी एक आँख फौड़े तुम उसकी दोनों आँखें छीन लेना। लेकिन, मैं तुमसे कहता हूँ कि जो तुम्हारे एक गाल “पर आंटा मारें”, तुम दूसरा गाल उसके सामने

कर देना, और मैं तुमसे कहता हूँ कि कोई सुम्हारा अगर कोट छीने तो तुम अपनी कमीज भी दे देना । और मैं तुमसे कहता हूँ कि कोई अगर एक मील तक बेचा ढोने को कहे तो तुम दो मील तक ढो देना । हो सकता है सकोच में हो बेचारा, ज्यादा न कह पा रहा हो । यह जो जीसस है, इसको हम युद्ध में नहीं उतार सकते । यह बीज थोड़ी बटिल मालूम पड़ेगी । जीसस को युद्ध में नहीं उतारा जा सकता, लेकिन कृष्ण युद्ध में उतार जाते हैं । जीसस को इसलिए युद्ध में नहीं उतारा जा सकता कि जीवन इतना बदतर है कि उसके लड़ने का कोई अर्थ नहीं । कृष्ण को युद्ध में उतारा जा सकता है । जीवन इतना आनन्दपूर्ण है कि उसके लिए लड़ा जा सकता है । इसे थोड़ा समझ लें ।

जीसस के लिए जीवन इतना व्यर्थ है, जैसा जीवन है वह इतना दुखपूर्ण है कि आपने एक चाटो मार दिया तो दुख में कोई बढ़ती नहीं होती । कहना चाहिए कि जीसस पहले से ही इतने पिटे हुए है कि आपके इस चाटे से कोई फर्क नहीं यड़ता । वह दूसरा गाल भी सामने कर देते हैं कि आपको उनका गाल फेरने की तकलीफ भी न हो । जीसस इतने दुखी हैं कि उन्हे और दुखी नहीं किया जा सकता । इसलिए, जीसस को तो लड़ने के लिए तैयार नहीं किया जा सकता । लड़ने के लिए तो केवल वे ही तैयार हो सकते हैं जो जीवन के, आनन्द के घोषक हैं । अगर जीवन के आनन्द पर हमला हो तो वह लड़ेगी । वह जीवन के आनन्द के लिए अपने को दाव पर लगा देंगे । वे जीवन के आनन्द को बचाने के लिए सब कुछ करने को तैयार हो सकते हैं । महाकावीर को तैयार नहीं किया जा सकता युद्ध के लिए, बुद्ध को भी तैयार नहीं किया जा सकता युद्ध के लिए । सिर्फ कृष्ण को तैयार किया जा सकता है, या एक और आदमी मुहम्मद, उसे तैयार किया जा सकता है युद्ध के लिए । मुहम्मद किसी बहुत गहरे रास्ते से कृष्ण के थोड़े समीप आते हैं । पूरा आना तो मुश्किल है । जिनको ऐसा लगता है कि जीवन में कुछ बचाने योग्य है, केवल वे लड़ने के लिए तैयार किये जा सकते हैं । जिनको ऐसा लगता है कि जीवन में कुछ बचाने योग्य ही नहीं है, उनके लड़ने का क्या सवाल है । लेकिन, कृष्ण युद्धसेर नहीं है । युद्धबादी नहीं है । है तो जीवनबादी, लेकिन अगर जीवन पर सकट हो तब वह लड़ने को भी तैयार है । कृष्ण ने पूरी कोशिश की है कि युद्ध न हो । इसके सब उपाय कर लिये गये हैं कि यह न हो । इस युद्ध को ढाला जा सके और जीवन बचाया जा सके, इसके लिए कृष्ण ने कुछ भी उठा नहीं रखा । लेकिन, जब ऐसा लगता है कि कोई उपाय ही नहीं, वब मृत्यु की शक्तियां लड़ेंगी ही, और अशर्म

की शक्तिमा झुकने के लिए तैयार नहीं, समझने के लिए भी तैयार नहीं है तब कृष्ण जीवन के पक्ष में और धर्म के पक्ष में लड़ने को खड़े हो जाते हैं।

मेरे देखे कृष्ण के लिए जीवन और धर्म दो चीजें नहीं हैं। वे लड़ने को तैयार हो जाते हैं। स्वभावत कृष्ण जैसा आदमी जब लड़ता है तब भी प्रफुल्लित और आनन्दित होता है। और जीसस जैसा आदमी अगर न भी लड़े तो भी उदास मिलेगा। कृष्ण जैसा व्यक्ति जब लड़ता है तब भी आनन्दित है, क्योंकि लड़ना भी जीवन के एक हिस्से की तरह आया है। इसे जीवन से अलग बाटा नहीं जा सकता। और, जैसा मैंने पीछे आपको बार-बार कहा, कृष्ण की जिन्दगी में ऐसा चुनाव नहीं है जैसा कि आमतीर से साधुओं और 'प्लूरेटन' और नैतिकवादियों का होता है। कृष्ण ऐसा नहीं कहते हैं कि युद्ध हर हालत में बुरा है। कृष्ण कहते हैं, युद्ध बुरा भी हो सकता है, अच्छा भी हो सकता है। हर हालत में कोई चीज न बुरी होती है, न कोई चीज हर हालत में अच्छी होती है। ऐसे क्षण होते हैं जब जहर अमृत होता है और अमृत जहर हो जाता है। और ऐसे क्षण भी होते हैं, जब अभिशाप वरदान बन जाता है और वरदान अभिशाप हो जाते हैं। कृष्ण कहते हैं, हर हालत में कुछ तय नहीं है। यह प्रतिपल और प्रति परिस्थिति में तय होता है कि क्या शुभ है। इसे कोई पहले से तय करके नहीं चल सकता कि यह शुभ है। परिस्थिति बदले तो कठिनाई हो सकती है। इसलिए, कृष्ण तो प्रतिपल निर्णय के लिए राजी है। उन्होंने कोशिश कर ली है कि युद्ध न हो, लेकिन देखते हैं कि युद्ध होगा ही, तो फिर बेमन से लड़ना बेकार है। कृष्ण जैसा आदमी बेमन से नहीं लड़ेगा। लड़ने भी जायेगा तो फिर पूरे मन से ही जायेगा। पूरे मन से कोशिश कर ली है कि युद्ध न हो। अब युद्ध होना ही है तो कृष्ण पूरे मन से लड़ने जाते हैं। युद्ध करने का स्थाल न था कि वह सीधे युद्ध में भागीदार बनेगे। वे सीधे सक्रिय होने युद्ध में, इसका स्थाल न था। लेकिन, ऐसा क्षण आ जाता है कि उन्हें सीधे ही भागीदार हो जाना पड़ता है और वे सुदर्शन हाथ में ले लेते हैं।

जैसा मैंने पीछे कहा, कृष्ण क्षणजीवी है। सभी आनन्दवादी क्षणजीवी होते हैं। सिर्फ दुखवादी क्षणजीवी नहीं होते। सिर्फ दुखवादी लबा हिसाब रखते हैं और लबे हिसाब की बजह से दुखी रहते हैं। वे पृथ्वी जबसे बनी हैं तबसे सारा दुख इकट्ठा कर लेते हैं। और जब जगत का अन्त होगा तब तक का सारा दुख इकट्ठा करके अपने ऊपर रख लेते हैं। दुख इतना ज्यादा मालूम पड़ता है कि वह उसके नीचे दबकर भर जाते हैं। आनन्दवादी क्षणवादी हैं, वह कहता है क्षण के अतिरिक्त अस्तित्व नहीं है।

जब भी अस्तित्व है तब क्षण में है। 'भोमेट टु मोमेट', क्षण से क्षण में उसकी याक्षा है। न वह कल का हिसाब रखता है जो बीत गया, न वह आने वाले कल का हिसाब रखता है जो आने वाला है। क्योंकि, वह कहता है, जो बीत गया वह बीत गया और जो अभी नहीं आया वह अभी नहीं आया है—इस क्षण में जो है—इस क्षण के प्रति पूरी 'रिस्पोटिव्लिटी', इस क्षण के प्रति पूरा-का-पूरा 'रिस्पोस', इस क्षण के प्रति पूरा सुला होना उसका आनन्द है। दुखवादी 'क्लोज्ड' है। वह इस क्षण की तरफ देखता नहीं। अगर आप उसको फूल के पास ले जाय और कहे फूल लिले हैं तो वह कहेगा कि साझा मुझा जायेगे। दुखवादी से आप कहे कि देखे, यह योवन है। वह कहेगा, देख लिया, बहुत योवन, सब योवन बुढ़ापे के अतिरिक्त और कही नहीं जाता है। आप उससे कहेगे यह सुख है। वह कहेगा, हमने बहुत सुख देखे, जरा उल्टा के देखो, सब सुखों के पीछे दुख छिपा है। हमे दोखा नहीं दिया जा सकता है। दुखवादी विस्तार में देखता है, क्षण में होता ही नहीं। सुखवादी कहता है, माझ जब मुझायिए तब मुझायिए, लेकिन साझा तो आने दो, अभी से दुखी होने का क्या कारण है? आनन्दवादी कहता है, साझा आने दो, अभी से दुखी होने का क्या अर्थ? जब फूल ही दुखी नहीं है माझ की बजह से और आनन्द से नाच रहे हैं तो हम क्यों 'दुखी हो जाय' और, मैंजा यह है कि आनन्दवादी चित्त साझे को गिरते हुए फूलों का भी मजा ले पाता है। क्योंकि किसने कहा है कि सिफ़ खिलते हुए फूलों में सुख होता है, गिरते हुए फूलों में नहीं होता? शायद नहीं देखा हमने, वह हमारे दुख के कारण है। किसने कहा की बच्चे ही सुन्दर होते हैं और बूढ़े नहीं होते हैं? बुढ़ापे का अपना सौदर्य है। जब कोई आदमी सच में ही बढ़ा होता है—जैसे रवीन्द्रनाथ, तो उसके सौन्दर्य का कोई हिसाब नहीं। कोई बाल्ट विटमैन, उसके सौदर्य का बुढ़ापे में कोई हिसाब नहीं है। बाल्ट विटमैन का बुढ़ापे में देखकर ऐसा लगता है कि और क्या सौदर्य होगा? असल में बचपन में अपना ढग है सौदर्य का, जवानी का अपना ढग है, बुढ़ापे का अपना ढग है लेकिन ढगों की फुर्सत किसे है? जब सारे बाल शुश्र हो जाते हैं और जीवन की जब सारी याक्षा पूरी होने के करीब आती हैं तो जैसा ही सौदर्य होता है जैसा सूर्यास्त का होता है। किसने कहा कि सूर्योदय में ही सौदर्य है। सूर्यास्त का अपना सौदर्य है। लेकिन, दुखवादी सूर्योदय के मध्य भी सौदर्य नहीं देखता। वह कहता, क्या पागलपन में पड़े हो, अभी घड़ी भी नहीं बीत पायेगी और ये सब सूर्यास्त हो जानेवाला है। अन्धकार हो जायेगा।

कृष्ण क्षणवादी है। समस्त आनन्द की याक्षा क्षण की याक्षा है। कहना चाहिए याक्षा ही नहीं, क्योंकि क्षण में याक्षा कैसे हो सकती है, क्षण में सिफ़ ढूबना होता है।

समय से यात्रा होती है। क्षण में आप लम्बे नहीं जा सकते, गहरे जा सकते हैं। क्षण में आप डुबकी ले सकते हैं। क्षण में कोई लम्बाई नहीं है, सिर्फ गहराई है, समय में लम्बाई है, इसलिए जो क्षण में डूबता है वह समय के पार हो जाता है। जो क्षण में डूबता है वह 'इटरनिटी' को, शाश्वत को उपलब्ध हो जाता है। कृष्ण क्षण में है साथ ही शाश्वत में है। जो क्षण में है वह शाश्वत में है। जो समय में है 'टाइम एज ए सीरीज' वह कभी शाश्वत से सम्बन्ध नहीं जोड़ पाता। वह तो समय के क्षणों का हिसाब लगाता रहता है। क्षणों का हिसाब लगाता रहता है। जब वह जीता है तो मरने का हिसाब लिखता रहता है। जब सुबह होती है तब साक्ष की सोचता रहता है। जब प्रेम आता है तब बिछोह की सोचता है। जब मिलन होता है तब वह विरह के आसुओं में पीड़ित हो जाता है। इसलिए, कृष्ण को अगर किसी क्षण में ऐसी घड़ी आ गयी कि मुदर्शन हाथ में ले लेना पड़ा तो वह पिछले कृष्ण की 'प्राप्तिस' के लिए रुकेंगे नहीं जिसने कहा था कि युद्ध में मैं सक्रिय होने को नहीं हूँ। क्योंकि, वह कहेंगे कि अब वह कृष्ण ही कहा, जिसने वायदा किया था। अब गगा वहा कहा है जहा थी, अब फूल वहा कहा है जहा थे, अब चादर वहा कहा हैं जहा थे? अब सब बदल गया है तो मैंने कोई ठेका लिया है वही होने का। सब जा चुका है। अब मैं जहा हूँ वहा हूँ। और, इस क्षण से मेरा जो 'रिस्पैस' है, इस क्षण में मेरी जो प्रतिध्वनि है, मेरा वही अस्तित्व है। वे क्षमा नहीं मांगते, वे कोई पश्चाताप नहीं करते, वे यह नहीं कहते कि मैंने भूलकर यह बचन दिया था। वे यह नहीं कहते कि बुरा हो गया, गलत हो गया, मैं दुखी हूँ, पश्चाताप कर लूगा, पीछे प्राप्तिश्वचत कर लूगा। वे ऐसा कुछ भी नहीं कहते। वे क्षण के प्रति बड़े सच्चे हैं। अब इसको पोड़ा समझना चाहिए। 'टु बी ट्रू टु दी मोमेट'। वे इतने सच्चे हैं कि क्षण ऐसी घटना ले आता है जिसको उन्होंने कभी सोचा भी नहीं था, तो भी वे डूब जाते हैं, वे कूद जाते हैं। हा, हमें बहुत बार लघेगा कि हमारे प्रति वे सच्चे नहीं मालूम होते, क्योंकि कहा था कि युद्ध में नहीं उतरेंगे और अब युद्ध में उतर गये। जो क्षण के प्रति सच्चा है वह अस्तित्व के प्रति सच्चा है, लेकिन समाज के प्रति बहुत सच्चा नहीं हो सकता। क्योंकि समाज समय में जीता है और वह 'इटरनिटी' में जीता है। समाज समय में जीता है, वह पीछे का हिसाब रखता है, आगे का हिसाब रखता है। कृष्ण जैसा आदमी क्षण में जीता है। वह हिसाब रखता ही नहीं।

मैंने सुनी है एक कहानी, एक बहुत बड़े जैन फकीर रिक्षाई के पास एक गुरुक मिलने आया। उस युवक ने कहा कि मैं सत्य की खोज में आपके पास आया

हूँ। रिक्साई ने कहा, सत्य की बात छोड़ो, अभी कुछ मैं पूछना चाहता हूँ। तुम पेंकिंग से आते हो? उसने कहा, हा। तो रिक्साई ने पूछा, पेंकिंग में चावल क्या भाव है? वह आदमी इतनी लम्बी यात्रा करके आया है उसके पास। यह सोचकर नहीं आया था कि चावल के दाम बताने पड़ेंगे। उस आदमी ने कहा कि माफ करिये पहले यह आपको सूचित कर दू, ताकि और इस तरह के सवाल आप न पूछे कि मैं जिन रास्तों से गुजर जाता हूँ उन्हें तोड़ देता हूँ। और जिन पुलों को पार कर जाता हूँ उन्हें गिरा देना हूँ। और जिन सीढ़ियों से चढ़ जाता हूँ उन्हें मिटा देता हूँ। मेरा कोई अतीत नहीं है। रिक्साई ने कहा, फिर बैठो, फिर सत्य की कोई बात हो सकती है। मैंने तो जानने के लिए यह पूछा कि कहीं पेंकिंग में चावल के जो दाम है वह तुम्हे याद तो नहीं है। अगर वह याद है तो सत्य से तुम्हे मिलाना बहुत मुश्किल हो जायेगा, क्योंकि मत्य मदा क्षण में है, वर्तमान में है, उसका अतीत से कोई लेना देना नहीं है। और, जो अतीत में जीता है वह वर्तमान में नहीं जी पाता। जो अतीत में जीता है भवित्य में हो सकता है उसका मन, वर्तमान में नहीं हो पाता।

कृष्ण के बावजूद युद्ध हुआ है और कृष्ण युद्ध में भागीदार हो सके हैं, क्योंकि आनन्द का पक्षपाती लड़ भी सकता है। फिर कृष्ण का कहना यह है कि लड़ना जीवन के भीतर का हिस्सा है। जीवन जब तक है, नब तक किसी-न-किसी भाँति का युद्ध जारी रहेगा। युद्ध के तल बदलेंगे, युद्ध के आधार बदलेंगे, युद्ध के मार्ग बदलेंगे, 'प्लेन' बदलेंगे युद्ध के, गुण बदलेगा युद्ध का, लेकिन युद्ध जारी रहेगा। ऐसा नहीं हो सकता है, कि युद्ध बन्द हो जाय। युद्ध उसी दिन बन्द हो सकता है कि या तो मनुष्यता न रहे, समाप्त हो जाय या मनुष्यता पूर्ण हो जाय। दो ही अर्थों में युद्ध बन्द हो सकता है। मनुष्य पूर्ण हो जाय तो समाप्त हो जाता है, या मनुष्य समाप्त हो जाय तो समाप्त हो सकता है। मनुष्य जैसा है, उस मनुष्य के जीवन में युद्ध जारी रहेगा। फिर स्थान क्या करना है, युद्ध न हो इसका? नहीं, कृष्ण इतना ही कहते हैं, युद्ध धर्मयुद्ध हो, इतना। शांति धर्मशांति हो, इतना। ध्यान रहे, शांति भी धर्मार्थिक हो सकती है और युद्ध भी धर्मार्थिक हो सकता है। लेकिन, शान्तिकादी सोचता है कि शांति सदा ही धर्मार्थिक है और युद्धकादी सोचता है कि युद्ध सदा ही ठीक है। कृष्ण कोई वादी नहीं है। वे बहुत 'लिकिवड' हैं, बहुत तरल हैं। जिन्दगी में वहा पत्थर की तरह कटी हुई चीजें नहीं हैं। उनकी जिन्दगी में सब हवा की तरह तरल है। वे कहते हैं, मान लो मैं रास्ते से गुजर रहा हूँ, एक शान्त आदमी हूँ और कोई

किसी को लूट रहा है। मैं शाति से गुजर जाऊँगा, क्योंकि मैं कहता हूँ कि लड़ना मेरे लिए नहीं है। मैं शाति से गुजर रहा हूँ, लेकिन मेरी शाति अधार्मिक हो गयी, क्योंकि मेरी शाति भी सहयोगी हो रही है किसी के लुटने में और किसी के लूटने में। अनिवार्य नहीं है कि शाति सदा ही धर्म हो। बट्टेंड रसेल जैसे लोग 'पैसिफिस्ट' शाति को सदा ही ठीक मान लेते हैं। वे मान लेते हैं शाति ही ठीक है, शान्त होना ही ठीक है। लेकिन, ऐसी शाति 'इम्पोटेंस' भी बन सकती है। ऐसी शाति नपुसकता हो सकती है। इसलिए, कृष्ण बारबार अर्जुन को कहते हैं, दौर्बल्य त्याग। मैंने कभी सोचा न था कि तू 'कलीब' हो सकता है। तू नपुसक हो सकता है। तू कैसी नपुसकों जैसी बातें कर रहा है? जबकि युद्ध सामने हो और जबकि युद्ध (कृष्ण की दृष्टि में) धर्म के लिए हो, तब तू कैसी कमजोरी की बातें कर रहा है? तेरी शक्ति कहा स्तो गयी? तेरा पौरुष कहा गया? शान्ति, जरूरी नहीं है कि धर्म हो। युद्ध भी, जरूरी नहीं है कि धर्म हो। कहा जा सकता है कि तब तो सब युद्धखोर कह सकते हैं कि हमारा युद्ध धर्म है। कह सकते हैं, जिन्दगी जटिल है। कोई उन्हे रोक नहीं सकता। लेकिन, धर्म क्या है, इसका विचार स्पष्ट फैलता चला जाय तो कठिन होता जायेगा उनका ऐसा दावा करना। कृष्ण की दृष्टि में धर्म क्या है, वह मैं कहूँ

कृष्ण की दृष्टि में जीवन को जो विकसित करे, जीवन को जो खिलाये, जीवन को जो नचाये, जीवन को जो आनंदित करे वह धर्म है। जीवन के आनन्द में जो बाधा बने, जीवन की प्रफुल्लता में जो रुकावट डाले, जीवन को जो तोड़े, मरोड़े, जीवन को जो खिलने न दे, फूलने न दे, फलने न दे, वह अधर्म है। जीवन में जो बाधा बन जाए वह अधर्म हैं। और, जीवन में जो सीढ़िया बन जाय वह धर्म है।

प्रश्न कृष्ण को सही ढग से किसने और कब आत्मसात किया? हमें उनको आत्मसात करना हो तो क्या करें?

कृष्ण को आत्मसात कर मानव सम्यता और संस्कृति जिन औरेन-आयामों में प्रवेश कर पायेगी उसकी रूपरेखा प्रस्तुत करने की कृता करें।

उत्तर कोई किसी दूसरे को आत्मसात कैसे कर सकता है? करे भी क्यों? दायित्व भी ऐसा नहीं है। मैं अपने को ही आत्मसात करूँगा। कृष्ण को कैसे करूँगा? और, जब कृष्ण लुद को आत्मसात करते हैं तो कृष्ण को कोई दूसरा आत्मसात करने क्यों जाय? नहीं दूसरे को आत्मसात करना व्यभिचार है। दूसरे को आत्म-सात करना अपने साथ अन्याय है। दूसरे को आत्मसात करने की बात ही गलत

है । मेरी अपनी आत्मा है । वह खिलनी चाहिए । अगर मैं दूसरे को आत्मसात करूँ तो मेरी आत्मा का क्या होगा ? दूसरा मुक्षपर हावी हो जाय, दूसरा मुक्षपर छा जायेगा, दूसरे को मैं ओढ़ लूँगा तो मेरा क्या होगा ? मेरा दायित्व मेरे होने के प्रति है । नहीं, कृष्ण को समझना काफी है, आत्मसात करने की कोई भी जरूरत नहीं है । समझना पर्याप्त है । और, समझना इसलिए नहीं कि उनके पीछे जाना है । समझना इसलिए कि कृष्ण जैसा व्यक्ति जब खिलता है तो उसके खिलने के नियम क्या है ? कृष्ण जैसा व्यक्ति जब अपनी सहजता में प्रकट होता है तो उसकी सहजता के नियम क्या है ? मैं भी अपनी सहजता में प्रगट हो सकता हूँ । कृष्ण को समझने से एक सूत्र तो यह मिलेगा कि अगर कृष्ण खिल सकते हैं तो मेरे रोये चले जाने की जरूरत क्या है ? जब कृष्ण नाच सकते हैं तो मैं क्यों न नाच सकूँगा ? ऐसा नहीं है कि कृष्ण का नाच और आपका नाच एक हो जायेगा । आपका नाच आपका होगा, कृष्ण का नाच कृष्ण का होगा । लेकिन, कृष्ण के समझने से आपके आत्म आविर्भाव में सहायता मिल सकती है, आत्मसात करने में नहीं ।

इसलिए, यह कहता हूँ कि किमी को आत्मसात करने की जरूरत नहीं है, हालांकि कुछ नासमझों ने करने की कोशिश की है । पूरा तो कोई भी नहीं कर पायेगा, क्योंकि वह असभव है । मैं दूसरे को ओढ़ ही सकता हूँ, दूसरे को आत्मा नहीं बना सकता । कितना ही गहरा ओढ़ तो भी मैं पीछे अलग रह ही जाऊँगा । अभिनय ही कर सकता हूँ दूसरे का । होना तो सदा अपना ही होता है, दूसरे का कभी नहीं होता । 'बारोड बीइंग', उधार आत्मा नहीं होती, हो नहीं सकती । रहूँगा तो मैं 'मैं' ही । कृष्ण को आत्मसात करने की कोशिश बहुत लोगों ने की है, बुद्ध को करने ही कोशिश की है, राम को करने की कोशिश की है, काइस्ट को करने की कोशिश की है, लेकिन कोई किसी को आत्मसात नहीं कर पाता है । वहा असफलता सुनिश्चित है । जो बैसा करने चलता है उसने असफलता को ही अपनी नियति बना लिया है । और, तब असफलता ही नहीं होगी, आत्मघात भी होगा । और, जो लोग आत्मघात करते हैं साधारणत उनको हमें आत्मघाती नहीं कहना चाहिए, क्योंकि वे केवल शरीर-आधाती हैं, वे केवल अपने शरीर की हत्या करते हैं । लेकिन जो दूसरे को आत्मसात करते हैं वे वास्तव में आत्मघाती हैं, वे अपनी आत्मा को ही मार डालने की कोशिश करते हैं । सब अनुयायी, सब शिष्य, सब अनुकरण करने वाले, सब पीछे चलने वाले आत्मघाती होते हैं । लेकिन, कुछ लोगों ने ऐसा करने की कोशिश की है और उस कोशिश में दोहरे परिणाम

निकलते हैं। एक तो वह आदमी सिफ़ ओढ़ पाता है, अभिनव कर पाता है। दूसरा, उसके ओढ़ने में ही कृष्ण का पूरा रूप बदल जाता है। क्योंकि, मैं ओढ़ूगा कृष्ण को, तो मेरे ढग से ओढ़ूगा, उतना तो कम-से-कम मैं रहूगा ही। आप ओढ़ेंगे तो आपके ढग से ओढ़ेंगे, उतने तो कम-से-कम आप रहेंगे ही। इसलिए, न केवल अपने साथ व्यभिचार होता है; बल्कि कृष्ण के साथ भी व्यभिचार हो जाता है। जितने भी 'यियोलाजियन' हैं, जितने भी धर्म शास्त्री हैं—चाहे क्राइस्ट, चाहे कृष्ण, चाहे बुद्ध, चाहे महावीर—इनको ओढ़ने की चेष्टा में चलते हैं वे सब ऐसा ही करते हैं। वे मनुष्यता की विफलता की अद्भुत कहानियाँ हैं और मनुष्यता के आत्मधाती होने के अद्भुत प्रमाण हैं।

लेकिन, मीरा या चैतन्य जैसे लोग कृष्ण को ओढ़ते नहीं। जरा नहीं ओढ़ते। मीरा कृष्ण को ओढ़ती नहीं। चैतन्य कृष्ण को ओढ़ते नहीं। वे कृष्ण को आत्मसात नहीं करते हैं। वे तो जो हैं—हैं। उसको ही पूरा प्रगट करते हैं। मीरा के प्रगट होने में कृष्ण का व्यक्तित्व ओढ़ा नहीं जाता है। मीरा के प्रगट होने या चैतन्य के नाच में और चैतन्य के गीतों में कृष्ण ओढ़े नहीं गये हैं, न आत्मसात किये गये हैं। चैतन्य चैतन्य है, अपने ढग है। हा, उनके ढग में कृष्ण के प्रति जो प्रेम की धारा है, वह है। जैसे जैसे यह धारा बड़ी होती है वैसे वैसे चैतन्य खोते जाते हैं। वैसे वैसे कृष्ण भी खोते जाते हैं। और एक बड़ी आती है कि सब खो जाता है। उस सब खो जाने में न कृष्ण बचते हैं, न चैतन्य बचते हैं—उस क्षण अगर हम पूछें कि तुम कृष्ण हो कि चैतन्य? तो चैतन्य कहेंगे कि मुझे कुछ पता नहीं चलता कि कौन है। मैं हूँ, या शायद मैं भी नहीं बचता। 'ए प्योर एक्सीस्टेंस' है और यह जो उपलब्धि है, यह चैतन्य की अपनी ही आत्मा का फूल है। इसमें कोई ओढ़ना नहीं है, इसमें किसी को आत्मसात करना नहीं है। ऐसी भूल कभी करनी भी नहीं चाहिए। ऐसी भूल करने का हमारा मन होता है। मन होता है इसलिए कि 'रेडी-मेड' कपड़े खरीद लेना सदा आसान है। तत्काल पहने जा सकते हैं, बड़ी सुविधा जो है। उधार तो कभी भी हो सकता है, कमाई बक्त माग सकती है। इसलिए ओढ़ने का मन होता है कि किसी को भी ओढ़ ले और झक्कट के बाहर हो जाय। लेकिन, कभी कोई उस तरह झक्कट के बाहर नहीं हुआ, और गहरी झक्कट के भवर में पड़ गया है।

इसलिए धार्मिक आदमी मैं उसे कहता हूँ जो अपना आविष्कार करता है। हा, इस आविष्कार करने में महावीर, बुद्ध, कृष्ण, क्राइस्ट की समझ सही हो सकती है। क्योंकि, जब हम हूँसरे को समझते हैं तब हम अपने को समझने के भी

आधार रख रहे होते हैं। जब हम दूसरे को समझते हैं तब उसको समझना आसान पड़ता है बजाय अपने को समझने के। क्योंकि, दूसरे से एक फासला है, एक दूरी है, और समझ के लिए उपाय है। अपने को समझने के लिए बड़ी जटिलता है क्योंकि फासला नहीं है समझने वाले मेरे और जिसे समझना है उसमें। तब समझ के लिए दूसरा उपयोगी होता है। लेकिन, उसे समझ लेने के बाद हमारी अपनी ही समझ बढ़नी चाहिए। हमारी अपने प्रति समझ बढ़नी चाहिए।

अपने कई बार अनुभव किया होगा कि अगर कोई आदमी आये और अपनी कोई मुसीबत आपके पास लाये तो आप जितनी योग्य सलाह उसे दे पाते हैं, वही मुसीबत आप पर पड़ जाय तो उतनी योग्य सलाह अपने को नहीं दे पाते हैं। यह बड़े मजे की बात है। क्या मामला है? यह आदमी बड़ा बुद्धिमान है, किसी की भी दिक्कत हो तो उसको सलाह दे पाता है। जब दिक्कत उसी पर आती है, वही दिक्कत, तो अचानक वह खुद सलाह मारने चला जाता है। नहीं, इतनी निकटता होती है कि समझने के लिए अवकाश नहीं मिल पाता। दूसरे को समझना आसान होता है। और जब दूसरे की समझ हमारी धीरे धीरे अपनी समझ बनती चली जाय तो कृष्ण बाद में भूल जायेगे, किर काइस्ट भूल जायेगे, बुद्ध-महावीर भूल जायेगे, अन्ततः हमी रह जायेगे। आखिर मेरी शुद्धता ही बचनी चाहिए। वैसी शुद्धता की उपलब्धि ही मुक्ति है। वैसे परम शुद्ध हो जाने का नाम निर्वाण है। वैसे परम शुद्ध हो जाने का नाम ही भागवत चैतन्य की उपलब्धि है। हाँ, लेकिन जो कृष्ण को समझकर वहा तक पहुंचेगा वह ही सकता है, कृष्ण नाम का उपयोग करे, वह कहे कि मैंने कृष्ण को पा लिया। यह सिर्फ पुराने कृष्ण का छुटकारा है। यह सिर्फ पुराने कृष्ण के प्रति अनुश्रूत है। और कुछ भी नहीं है। वैसा पहुंचने वाला कह सकता है, मैंने जीसस को पा लिया है। वह सिर्फ जीसस के प्रति, जीसस को समझने से जो समझ उसे भिली थी, उसके प्रति कृष्ण का छुटकारा है। इससे ज्यादा नहीं है। पाते तो सदा हम अन्ततः अपने को ही हैं। कोई दूसरे को नहीं पा सकता। लेकिन जिस दिन हम अपने को पाते हैं उस दिन कोई दूसरा रह नहीं जाता है। इसलिए हम कोई न कोई शब्द का उपयोग करेंगे। जो हमने यात्रा पर उपयोगी पाया होगा, वह हम उपयोग करेंगे। एक छोटी सी बात आपके एक प्रश्न के सदर्भ में –

दो तीन शब्द कहे जा सकते हैं— मनुष्य की सम्पत्ता, कृष्ण की समझ से सहज हो सकेगी, अणजीवी हो सकेगी, आनन्द समर्पित हो सकेगी, दुखवादी नहीं रहेगी, समयवादी नहीं रहेगी, निषेधवादी नहीं रहेगी। अनुग्रहपूर्वक जीवन को वरदान समझा जा सकेगा। जीवन और परमात्मा मेरे नहीं रहेगा। जीवन ही परमात्मा

है ऐसी प्रतिष्ठा धीरे धीरे बढ़ती जायेगी । जीवन के विरोध में कोई परमात्मा कहीं बैठा है ऐसा नहीं, जीवन ही परमात्मा है । सृष्टि के अतिरिक्त कोई स्थाप्ता कहीं बैठा है ऐसा नहीं—सृष्टि की प्रक्रिया, सृजन की शक्ति, 'क्रियेटिविटी इटसेल्फ' परमात्मा है ।

ये पूरी बातें जो मैंने इस बीच कहीं हैं उनको स्थाल में लेंगे तो जो मैंने अतिम बात कहीं है वह स्पष्ट हो जायेगी । इन दिनों मैं बहुत सी बातें मैंने आपसे कहीं, कुछ रुचिकर लगी होगी, कुछ अरुचिकर लगी होगी । रुचिकर लगने से भी समझने में बाधा पड़ती है, अरुचिकर लगने से भी समझने में बाधा पड़ती है । जो रुचिकर लगती है उसे हम बिना समझे पी जाते हैं, जो अरुचिकर लगती है उसे हम बिना समझे द्वारा बन्द करके बाहर छोड़ देते हैं । मैंने जो बातें कहीं वह इसलिए नहीं कि आप उनको पी जाय या द्वार के बाहर छोड़ दे । मैंने सिर्फ़ इसलिए कहीं कि आप उनको सहजता और सरलता से समझ पाये । मेरी बातों को घर मत ले जाइए । उन बातों को समझने में जो समझ आपके पास आयी हो, जो प्रश्ना, जो 'विजडम' आयी हो, उसको घर ले जाइए । फूलों को यही छोड़ जाइए, इत्र कुछ बचा हो आपके हाथ में तो उसे ले जाइए । मेरी बातों को ले जाने की कोई भी जरूरत नहीं है । मेरी बातें जैसी ही बेकार हैं, जैसी सब बातें बेकार होती हैं । लेकिन इन बातों के सन्दर्भ में, इन बातों के सघर्ष में, इन बातों के आमने-सामने 'एनकाउण्टर' में आपके भीतर कुछ पैदा हुआ हो — वह तभी पैदा हो सकता है जब आपने पक्ष-पात न लिये हो । वह तभी पैदा हो सकता है जब आपने ऐसा न कहा हो कि ठोक कह रहे हैं, ऐसा ही मैं मानता हूँ । कि गलत कह रहे हैं, ऐसा मैं मानता नहीं । तभी आपने समझ, 'अण्डरस्टैंडिंग' पैदा हो सकती है । अगर आपने समझा हो कि ये तो कृष्ण के पक्ष में बोल रहे हैं, हमारे महाबीर के पक्ष में नहीं बोलते तो आप दुख ले जायेंगे, समझ नहीं ले जायेंगे । उसका जिम्मा मेरा नहीं होगा । जिम्मा महाबीर का भी नहीं होगा । आपका ही होगा । आपने सोचा कि यह तो हमारे जीसस के पक्ष में नहीं बोले तो आप समझ नहीं ले जायेंगे । या आपने ऐसा समझा कि ये तो हमारे कृष्ण के सम्बन्ध में बोल रहे हैं तो आप नासमझ ही लौट जायेंगे । आपके कृष्ण से मुझे क्या लेना-देना है? न रुचि, न अरुचि, न पक्ष, न विपक्ष—मुझे जो दिखायी पड़ता है उसे सीधा मैंने आपकी आँखों के सामने फैला दिया है । और मैं खुद ही क्षणजीवी व्यक्ति हूँ । इसलिए भरोसे का नहीं । कल क्या कहूँगा, इससे आज कोई 'प्राप्तिस' नहीं बनती है । इससे आज कोई आशवासन नहीं है । आज जैसा मुझे दिखायी पड़ता था वैसा मैंने कहा । आज जो आपकी

समझ में आया हो—समझ में आया हो उसका मूल्य नहीं है — समझ में आपकी समझ बढ़ी हो उसका मूल्य है । मैं आशा करता हूँ, इन दस दिनों में सबके पास थोड़ी बहुत समझ का विकास हुआ होगा । थोड़ी बहुत दृष्टि फैली होगी, द्वार थोड़े बहुत खुले होंगे । सूरज को आने के लिए थोड़ी बहुत जगह बनी होगी । मैं नहीं कहता हूँ कि आपके भीतर जब सूरज आये तो आप उसे क्या नाम दें—कृष्ण कहे, बुद्ध कहे, राम कहे यह आपकी मर्जी है । मैं इतना ही कहता हूँ, दरवाजा आपके चित्त का खुला हो तो समझ में आ जायेगा । नाम आप पर निर्भर होगा क्योंकि सूरज अपना कोई नाम कहता नहीं कि मेरा नाम क्या है ? नाम आप अपना दे लेगे । लेकिन दरवाजा । सिर्फ उनके ही चित्त का खुलता है जो समझपूर्वक, समझ में, समझ के साथ जीते हैं । पक्षों और धारणाओं और सिद्धातों के साथ नहीं । सिद्धातों और धारणाओं और पक्षों के साथ वे लोग जीते हैं जिनको अपनी समझ का भरोसा नहीं है । तो वे पक्षके, बधे बधाये, सीमेट काक्रिट के, बाजार में विकते हुए सिद्धातों को ले आने हैं । समझ तो पानी की तरह तरल है । समझ तो बहाव है । एक 'फलों' है । लेकिन सिद्धान्त ? सिद्धात कोई बहाव नहीं है । अगर आपने सिद्धातों की आड़ से मुझे सुना हो—चाहे मित्र हो उन सिद्धान्तों के, चाहे शत्रु—तो फिर आप नहीं समझ पायेगे कि मैंने क्या कहा है ।

आखिरी बात आपसे कह दूँ कृष्ण से मुझे कुछ लेना-देना नहीं, कृष्ण से कोई सम्बन्ध ही नहीं है । कृष्ण के पक्ष में आप हो जाय इसलिए नहीं कहा है, कि कृष्ण के विपक्ष में आप हो जाय इसलिए नहीं कहा है । कृष्ण को तो मैंने एक 'कैनवस' की तरह उपयोग किया, जैसे कि एक चित्रकार एक 'कैनवस' का उपयोग करता है । 'कैनवस' से उसका कोई मतलब ही नहीं होता । कुछ रग उसे फैलाने होते हैं 'कैनवस' पर । वह उन रगों को फैला देता है । कुछ रग मुझे फैलाने ये आपके सामने वह कृष्ण के 'कैनवस' पर मैंने फैला दिये । मुझे महावीर का कैनवस भी काम दे जाता है, बुद्ध का कैनवस भी काम दे जाता है । मुझे जीसम का कैनवस भी काम दे जाता है । और एक कैनवस पर जिन रगों का मैं उपयोग करता हूँ, कोई जरूरी नहीं है कि दूसरे कैनवस पर भी उन्हीं रगों का उपयोग करूँ । और ऐसा भी मुझसे कोई कभी नहीं कह सकता कि कल आपने जो चित्र बनाया था, आज तो उससे बिल्कुल विपरीत बना दिया । अगर मैं चित्रकार हूँ तो विपरीत बनाऊगा ही और अगर सिर्फ़ 'कापीहस्ट' हूँ तो कल उसी की नकल करूँगा । इसलिए मेरे बक्तव्यों को जड़ता से पकड़ने की कोई भी जरूरत नहीं है । मेरे बक्तव्यों को समझे और

छोड़ दें । समझ पीछे वाकी रह जायेगी , बक्तव्य छूट जायेगा । इससे एक और कायदा होगा कि किसी दिन मुझे पकड़ने का सतरा पैदा नहीं होगा । नहीं तो मेरे बक्तव्यों को पकड़ा पक्ष से या विपक्ष से, तो मैं पकड़ा जाऊँगा । नहीं, मुझे कोई हर्जा नहीं होगा, हर्जा आपको हो जायेगा । जब भी हम किसी को पकड़ लेते हैं तभी हम अपने को खो देते हैं ।

जब हमारे हाथ सबसे खाली हो जाते हैं तब अचानक हमारे हाथों में हम ही भर जाते हैं । इस आशा में ये सारी बातें कहीं । मेरी बातों को इतने प्रेम, दृढ़ती शाति, इतने मौन, इतने आनन्द से सुना, उसके लिए बहुत अनुग्रहीत हैं । और अन्त में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूँ । मेरे प्रणाम स्वीकार करे ।

